GL H 294.5563
SAT

Accession No.

ari सख्या

Class No.

Accession No.

GL H 294.5563

Accession No.

GL H 294.5563

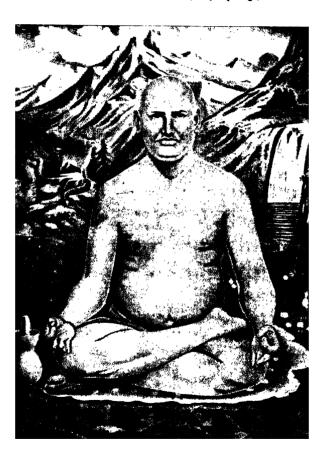
Accession No.

GL H 294.5563

पुस्तक संख्या Book No.



# सत्यार्थेप्रकाश



\* श्रो३म् \*

सत्यार्थ प्रकाश पर होने बाली शंकात्रों का समाधान व श्वव रादिकम से प्रमाण तथा विषय सूची सहित

# सत्यार्थप्रकाश

वेदादिविश्विषसञ्ज्ञास्त्रप्रमाणसम् नित्तः श्रीमस्यरमद्दंसपरित्राजकाचार्यं श्रीम् इयानन्दसरस्वतीस्वामिविश्वितः श्रजमस्य

श्रजमेर वैदिक यन्त्रालय के बाइसवें संस्करणके श्रनुकृतिक

#### de 34

प्रकाशकः — गोविन्दराम हासानन्दं आर्थ साहित्य भवन, नई सङ्क देहली

मुद्रक-म्मार्थ प्रिन्टिङ्ग प्रेस, चानड़ी बाजार देहली संवत् १६६६ वि० दयानन्दाब्द ११६

छठीवार सन { देहली से बाहर ॥—) प्रति देहली में ॥) " १६३६ (२४ प्रतियें एक साथ ।≤) "

# 🟶 धन्यवाद 🏶

इस संस्करण की विशेषता एवं उपयोगिता की देख कर, आर्य-जगत के त्रसिद्ध पत्र 'आर्थ-मित्र' आगग 'वेदोदय' प्रयाग, ''आर्थ'' साहीर तथा आर्थ विद्वानों ने इसकी प्रशंसा की है तथा आर्थ जनता ने भी इसके पाँचों संस्करकों को अपना कर हमारा उत्साह बदाया है। हमारा आरम्भ से ही यह सन्य रहा है कि साहित्य की सस्ता रखने के साथ २ उसे बढ़िया भी स्कला जाय। आशा है जनता भविष्य में भी हमारे उत्साह को इसी प्रकार निरन्तर बदाती रहेगी।

हम इ अमेर ( राजरथान ) के प्रसिद्ध आर्थ श्रीमान् सेठ ग्रुलराज मोनाल सुन्त जी के सुपुत्र श्रीमान् सेठ इंसराज जी गुन्त के भी निशेष श्रासी हैं जिन्होंने इस प्रकाशन में क्योंन्त सहयोग दिया है। सेठ जी अनिष्य में भी इसी प्रकार आर्थ-साहित्य प्रकाशन में सहयोग प्रदान करते रहेंगे-ऐसी हमें प्रकल आशा है।

# ग्रन्थकार का परिचय

महिषे इयानन्य सरस्वती का जन्म काठियावाव के मोरवी राज्य के बान्तर्गत टंकारा ज्ञाम में सन्दर्द १८८१ (सब् १८२४) में हुआ या । यह बीदीच्य ब्राह्मया थे। इन का बचपन का नाम मृत्वजी था बीर इन के पिता का नाम करसन जी था। करसन जी एक प्रतिष्ठित व्यमीदार थे।

सामिषक कुल-मथा के आधुतार स्वामी की को बारपावस्था में रही शीर शुक्त पञ्चिंद का अध्ययन आरम्भ कराया गया था। जब इन की आधु १४ वर्ष की हुई तो इनके पिता ने इन को शिवरात्रि पर व्रत (उपकात) रखने की आज़ा दी। इन्होंने बड़ी अखा से व्रत रक्षा। रात्रि को जागरक के समय मन्दिर में शिव की की पिंडी पर चूहे के कड़ने और चढ़ाई हुई सामग्री की स्वाने से इन की मूर्ति प्ता से अदा जाती रही शीर उसी दिन से यह सक्वे शिव की सोज में लग संये।

कुछ समय बीतने पर इस के काका और मिना की मृत्यु हो गई। इस घटना ने इन को अमरत्व की खीज की धोर कुकांशा। सच्चे शिव की खोज के साथ र अब अमरत्व प्राप्ति के लिये योना का अभ्यास करने के विचार से यह किसी अच्छे थोगी की भी खोज में रहने खोगे। कि भी खोज में रहने खोगे। कि भी खोज में रहने खोगे। कि मी खोज में रहने खोगे। कि काली-आदि स्थानों में जाना चाहते थे। जहां यह घर बार से प्रथक हो जाने की उनेइ इन में खंजम्म थे, माता पिता इन्हें विवाह-कम्बन में जकड़ कर अपने कारोज़ार में खाम देने के मीठे स्वम से रहे थे। विश्व कहाँ पता था कि 'मूख इस पिजदे में बच्च रहने वाला पत्नी नहीं हैं, वह लो स्वयं मुक्त होकर समग्र संसार की सच्ची मुक्ति का सम्बेश देगा।"

भन्त में स्वामी जी घर से निकल हो पड़े। असया करते हुए सिक्युर के मेले में पहुंचे। परन्तु अधर पिता के गुप्तचर छाया की मांति पीछे लगे हुए थे, उन्होंने इन्हें जा ही पकदा । एक बार मूल जी को पकद कर घर की श्रोर ले चलने में वह सकता हो गये, किन्तु मूल जी के वैराग्य की कोई सीमा न रही थी, वह रास्ते में ही रात्रि को भाग निकले। फिर ती इन्होंने उत्तर में श्रक्तकमन्दा के तट पर पहुंच कर विश्राम किया । यहां रहते हुए इन्होंने कई साथु महात्माश्रों से योग—क्रियाएं सीलीं । परन्तु इन्हें विद्या-प्राप्ति की बढ़ी उत्कट इच्छा थी। जब इन्होंने स्वाट विरजानन्द जी के विषय में धुना तो तुरन्त मथुरा पहुँचे। स्वाभी विरजानन्द जी कर वर्ष के बयोवृद्ध सन्यासी थे। श्रांकों से श्रम्थे थे। इतना होते हुए भी विलक्ष विद्यान् श्रीर महात्मा थे। स्वामी त्यानम्द जी ने इन की बढ़ी सेवा की श्रीर वेदों का बढ़े मन से श्रध्ययन किया। विद्यान्समाप्ति पर गुरु जी को दीचान्त के श्रवसर पर लोंगें भेंट की, तो गुरू ने उन को श्रादेश दिया कि 'संसार वेदों को भूल गया है, तुम उसे सन्मार्ग पर लाओ। श्रनाचारों का नाश करके लोगों को वेद-विहित सदावार पर श्रारुड़ करो।''

स्वामी जी ने अपने शुरु की आज्ञा का अक्ररशः पालन किया, जिसकी साकी उन के जीवन भर के कार्यों ने भली भांति दी है। स्वामी जी के विस्तृत जीवन-चरित्र का सम्यक् रूप से अध्ययन करने पर पता लगता है कि किस प्रकार स्वामी जी किंदन तपस्या के अनन्तर विद्या-प्राप्ति के अधिकारी बने थे और परचात् कितनी लगन के साथ पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर संसार को उपदेश देने के योग्य बने थे। स्वामी जी दे अख्य अक्षाचर्य, महान् त्याग और सर्वांग कुशलता (शारीरिक ए आध्यास्मिक) एवम् अद्भुत तर्कशांकि ने भारतवर्ध के सभी चोत्रों कि कान्ति की धूम मचा दी। स्वामी जी की प्रतिभा, सत्यप्रहण्यास्मिक ए सत्य-प्रतिपादन स्थामर्थ ने अपना चमत्कार भारत में ही नहीं दिखाय अपितु सात समुद्र पार योरुपीय देशों के विद्वानों पर भी अपना भार सिक्का बैटा दिया। जो विदेशी विद्वान् संसार के पुस्तकालय की प्रथम पुस्तक वेद को गडरियों के गीत मात्र कहने का दुस्साहस्स कर रहे थे, उन

की धारणाओं में मूल-परिवर्तन करने का सब-प्रथम श्रेय यदि किसी को मिल सकता है तो वह जगद् गुरु महर्षि दयानम्द को ही; जिन्होंने धंग्रेजो शिचा धौर पाश्चात्य जगत् से कोसींदूर रहते हुए भी धर्म श्रीर वेदों का सबेश्रेय्ठ वैज्ञानिक रूप उपस्थित किया है।

स्वामी जी के प्रचार के पूर्व की स्थिति सचमुच बड़ी शोचनीय थी। हिन्दू-जात् के बहुत से विद्वान् वेदों के सच्चे प्रथों से हीन होने के कारण पथ-अध्य हो रहे थे, उन की मंस्रधार में ड्बती हुई नस्या को ऋषि ने ही बचाया, अन्यया वेद-शास्त्र, हिन्दू धर्म एवं बड़े २ विद्या-केन्द्र श्रद तक इतिहास की भूतपूर्व घटनायें मात्र रह जाते। जिन कठिनाइयों का स्त्रामी जी की सामना करना पड़ा है, उनका उल्लेख यद्यपि इस संचित्त परिचय में नहीं किया जा सकता. तथापि इतना भ्रवश्य कहा जा सकता है कि समस्त किनाइयों का वर्णन स्वार्थियों के पर्यन्त्र श्चोर भोलो जनता के श्वन्ध-विश्वःसों से भरा पड़। है \* । विष-पान करते हए, पत्थरों की मार सहते हुए भी ऋषि ने भारतवर्ष के लोगों के अन्धविश्वास रूपी फीडों की चीर-फाइ करके उन्हें सदा के लिये जीवित जायत बना दिया। ऋषि ने निर्भय होकर बुराइयों की कड़ी आलोचना की, इस के लिये उन्होंने सर्वेत्रियता, मानापमान यहाँ तक कि अपने प्राचों तक की पर्वा न की । उन्हें सारे संसार द्वारा प्रजने का खोभ खेश-मात्र भी न था, श्रम्यथा वह श्रन्य धर्मावलम्बियों से कोई समसौता करके पर्याप्त यश और नाम कमा सकते थे. परन्तु उन्हें इस की चिन्ता ैन थी। धार्मिक सच्चाइयों के सामने उन्हें 'बाबा वाक्यं प्रमाण्यम्' श्रथवा 'यद्यपि शुद्धम् लोक-विरुद्धम् नाचरणीयं नाचरणीयम्' के पचड़े ्क भाँल भी न भाते थे। अपनी श्रकाव्य युक्तियों भीर प्रमाणों से ं उन्होंने प्रत्येक रुद्धि और अन्ध-विश्वास को निर्मुख सिद्ध कर दिया।

श्विष दयानन्द जहाँ एक महाच पण्डित और संशोधक हुए हैं,

\* देखिये श्रीमहयानन्द-प्रकाश (स्वामी द्याक्षण्द जी का
स्थामा सत्यानन्द जी द्वारा रचित जीवन चरित्र ).

वहाँ सामाजिक एवं अन्य चोन्नों में भी उन्होंने मौतिक परिवर्तन करने के लिये महान् प्रयत्न किये हैं। मातृ-शक्ति का अपमान करके भारतीयों ने जो पाप किये थे, उनका प्रायश्चित करने के लिये आपने उन्हें आदेश दिया और समाज में स्त्रियों को समान अधिकार देने के खिये उन्होंने अपने अन्यों और उपदेशों द्वारा बनी प्रेरणा की। छूत-छात का भूत हिन्तू-जाति पर सवार हो गया था, उसे गुरा कम स्वभाव द्वारा वर्ण-म्यवस्था का प्रतिपादन कर सदा के लिये मिटाने का महान् प्रयस्त ऋषि ने किया।

ऋषि ने राजकीय िषय को भी श्राञ्चता नहीं छोड़ा ! स्वराज्य की र विदेशी पर उन्होंने कितना अधिक बल दिया है। स्वराज्य को उन्होंने 'सुराज्य' से कितना उत्तम ठैराया है, पढ़ने ही योग्य है ब्रिक्ष सार्राष्ट्र में भारत-वें एवं समस्त संसार में शान्ति का प्रचार कर सर्व प्रकार की उन्नति करना ही उनका महान उद्देश था।

उपरोक्त उद्देश को भली प्रकार सफल बनाने के लिये आपने सर्वप्रथम बम्बई में सम्बत् १६३२ (सन् १८७४) में आर्थ-समाज की स्थापना की । इस के पश्चात् अन्य स्थानों में भी आर्थ-समाज की स्थापना की गई। आज प्रायः समस्त संसार में आर्थ-समाजें स्थापित ही चुकी हैं।

ऋषि त्यानन्द जी ने राजप्ताने के राजाणों को भी समय २ पर अम्लय उपदेश दिये। उन्हें सदाचार—पाजन की अपूर्व शिक्षा दी। इसी महान् कार्य के लिये ऋषि को अपने प्रायों की भी बाज़ी जगानी पदी। जीधपुर राज्य के राज्य महलों में महिंदी ने वेश्याओं के नृत्य बन्द करा दिये थे, इसी से रुट हो एक वेश्या ने जगन्नाथ नामक ऋषि के पाचक द्वारा ऋषि को पिसा हुआ काँच दूध में ढलवा कर पिजना दिया। और ऋषि देयानन्द समग्र संसार को बिजखता हुआ कोंब कर कार्तिक की अमावस्या को सम्बद् १६४० (सन् १८८६) में अजमेर-स्थान पर इस नश्वर देह को त्याग इस संसार से बिदा हुए।

अइसी प्रन्थ के श्रष्टम् समुक्षास को देखिये।

# <sub>चौत्र</sub> सत्याथप्रकाशः

# विषय सूचीः

#### *→*>&&

समुक्लास	विषय	पृष्ठ से पृष्ट
१—ईश्वर	के ओंकारादिसी न	ामों
	ग्राख्या तथा मंगल	ाच-
_	ामीक्षा	१ २⊏
_	राक्षा, भूतप्रीत जन	मप-
-	समीक्षा (	38 38
	र्य, पठनपाठन, गुरू	
	ग, सत्यासत्य प्रन्थे	
_	और पढ़ने पड़ानेकी	
४विवाह	(और गृहाश्रमका ब	पव-
इार		६३ १५४
	स्य और संन्यासाश्र	
	और कर्राच्याकर्राव्य	
•	धजा धर्म हास्य ध्यव	स्था
	<u> सर्तच्याकर्तच्य</u>	१७५ २२=
७—ईरवर,	, बेद तथा जीव अ	वीर

स <i>ु</i> ल्लास	्र विषय	वृष्ट	से १३८
प्रार्थन	ोपासना विषय	२२६	२७१
८—जगत्	को उत्पत्ति, स्थिति औ	र	
प्रलय			३०६
६भ्विद्या	अविद्या, बन्ध औ	र	
मोक्षव	<b>ही व्या</b> ख्या	३०७	इ४१
१०—आव	गर, अनाचार और भ	<b>'-</b>	
क्ष्याभ	क्ष्य विषय	<i>ं</i> ३४२	इद्द
११—आय	र्याव <mark>त्तीय मतमतान्</mark> त	· <b>-</b>	
सेंका	खण्डन-मण्डन	३६५	<b>५३</b> ५
१२—चःव	कि, बौद्ध और जैनमत	7	
खण्डन	ा-मण्ड <b>न</b>	५३⊏	<b>ह</b> २ ह
१३—ईसा	ईमतका ख़ण्डनमण्डन	६३०	७०१
१४—मुसर	रुमानोंके मतका खंडन	₹	
ः मण्डन		७०४	ಅದದ
शेषमें—स्वमन	नन्मामन्तव्य प्रकाश	320	ગ્રુટ
परिशिष्टमें—स	रांका <b>समाधान</b>	330	=२१
स्चन।—विस्तृ	न विषय सूची तथा	प्रमाण	सूची
.पुस्त इ	हके दोष भाग <b>में अव</b>	तारादिः	क्रमसे
देग्वि	ये।		

#### ओ३म्

# सचिदानन्देश्वराय नमो नमः।

# भूमिका

#### JUDITA

जिस समय मैंने यह प्रनथ "सत्यां प्रकाश" बेर्ससा हुए, इस समय सौर उससे पूर्व संस्कृत भाषण करने, पठनपाठनमें संस्कृत ही बोलने सौर जनमभूमिकी भाषा गुजराती होने के कारणसे मुक्तकों इस भाषाका विशेष परिज्ञान न था, इससे भाषा अगुद्ध बन गई थीं। क्षव भाषा बोलने और लिखनेका अभ्यास हो गया है। इसलिये हस् प्रनथको भ.ष. न्याकरणानुसार गुद्ध करके दूसरी वार छपवाया है कहीं २ शब्द, वाक्य, रचनाका भेद हुआ है सो करना उचित था क्योंकि इसके भेद किये विना भाषाकी परिपाटी सुधरनी कठिन थी; परन्तु अर्थका भेद नहीं किया गया है प्रत्युत विशेष तो लिखा गया है। हां जो प्रथम छपनेमें कहीं २ भूल रही थी वह निकाल शोधकर ठीक २ कर दी गई है।।

यह प्रनथ १४ (चौदह) समुद्धास अर्थात् चौदह विभागों रेचा गया है। इसमें १० (दश) समुद्धास पूर्वार्द्ध और ४ (चार) उत्त-रार्द्धमें बने है, परन्तु अन्त्यक दो समुद्धास और पश्चात् स्वसिद्धन्त किसी कारणसे प्रथम ननी छप सके थे अर्वे वे भी छपेवी दिये हैं।

- (१) प्रथम समुद्धासमें ईश्वरके ओंकारादि नामोंकी व्याख्या।
- (२) द्वितीय समुक्लासमें सन्तानोंकी शिक्षा।
- '( भः) तृतीय समुह्लासमें ब्रह्मचर्च्य, पठनपाठन

- व्यवस्था, सत्यासत्य प्रन्थोंके नाम और पढ़ने पढ़ानेकी रीति ।
- (४) चतुथ समुह्रासमें विवाह और गृहाश्रमका व्यवहार।
- ( ५ ) पश्चम समुह्णास**में ब्रानप्रस्थ और संन्यासा-**श्रमकी विधि ।
- (६) छठे समुख्लासमें राजधर्म।
- (७) सप्तम समुक्लासमें बेदेश्वर बिषय।
- ( = ) अष्टम समुक्लासमें जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय ।
- (६) नवम समुख्लासमें विचा, अविद्या, बन्ध और मोक्षकी व्याख्या।
- (१०) दशवें समुक्लासमें आचार, अनाचार और भक्ष्याभक्ष्य विषय ।
- (११) एकाद्दा समुक्लादामें आर्थ्यावर्तीय मतः मतान्तरका खण्डन मण्डन विषय ।
- (१२) द्वाद्या सम्रुक्लासमें चार्चाक, बौद्ध और जैनमतका विषय।
- (१३) त्रयोदश समुक्लासमें ईसाईमतका विषय।
- (१४) चौदहवें समुक्लासमें मुसलमानोंके मतका

## विषय । और चौदह समुख्हासोंके अन्तमें आर्थ्योंके सनातन वेदविहित मतकी विदो-षतः व्याख्या लिखी है, जिसको मैं भी यथाषत् मानता हूं॥

मेरा इस प्रत्यके बनानेका मुख्य प्रयोजन सत्य २ वर्षका प्रकाश करना है अर्थान जो सत्य है उसको सत्य और जो मिथ्या है उसको मिथ्या ही प्रतिपादन करना सत्य अर्थका प्रकाश सममा है। वह सत्य नहीं कहाता जो सत्यके स्थानमें असत्य और असत्यके स्थानमें सत्यका प्रकाश किया जाय । किन्तु जो पदार्थ जैसा है उसको वैसा 🕆 ही कहना लिखना और मानना सत्य कहाता है। जो मनुष्य पक्षपाती होता है वह अपने असत्यको भी सत्य और दूसरे विरोधी मत वालेके सत्यको भी असत्य सिद्ध करनेमें प्रवृत्त होना ह इसलिये वह सत्य मतको प्राप्त नहीं हो सकता। इसीलिये विद्वान् अन्तोंका यही मुख्य काम है कि उपदेश वा लेखद्वारा सब मनुष्यों के सामने सत्यासत्यका 🎕रूप समर्पित करदें, पश्चात् वे स्वयं अपना हिताहित सममुकर सत्यार्थका प्रहण और मिथ्यार्थका परित्याग करके सदा आनन्द्रमें रहें। मनुष्यका आत्मा सत्यासत्यका जाननेवाला है। तथापि अपने प्रयोजनकी सिद्धि, हठ, दुरामह और अविद्यादि दोषोंसे सत्यको छोड़ असत्यमें झुक जाता है। परन्तु इस मन्थमें ऐसी बात नहीं रक्ली हैं। बौर न किसीका मन दुखाना वा किसीकी हानि पर सात्पर्य है। किन्तु जिससे मनुष्यजातिकी उन्नति और उपकार हो, सत्यासत्यको मनुष्य लोग जानकर सत्यका प्रहण और असत्यका परित्याग करें क्योंकि सत्योपदेशके विना अन्य कोई भी मनुष्यजातिकी उन्नतिका कारण नहीं है ॥

) इस प्रन्थमें जो कहीं र्े भूछ चूकते अथवा शोधने तथा छापनेमें ' भूख चूर्क रह जार्य 'उसको जानेने जनाने पर जिसा वह सत्य होगा ' वैसा ही कर दिया जायण। और जो कोई पक्षपातसे अन्यथा शङ्का वा खण्डन मण्डन करेगा उसे पर ध्यान न दिया जायगा। हां जो वह मनुष्यमात्रका ितेषी होकर कुछ जनावेगा उसको सत्य सत्य सम-कते पर उसका मत संगृधित होगा। यद्यपि आजकल बहुतसे विद्वान प्रत्येक मतों में हैं वे पश्चपात छोड सर्वतन्त्र सिद्धान्त अर्थात् जो २ वार्ते सबके धनुकू उ सबमें सत्य हैं उनका ग्रहण और जो एक दसरेसे विरुद्ध बार्ने हैं उनका त्याग कर परस्वर प्रीतिसे वर्त्ते वर्तावें तो जगन्का पूर्ण हित होते। क्योंकि विद्व नों के विरोध ते अविद्वानों में विरोध बढ कर अनेकविध दः खकी वृद्धि और सुखकी हानि होती हैं। इस हानिने, जोकि स्त्रार्थी मतुष्यांको प्रिय है, सत्र मनुष्योंको दुःखसागरमें डुबा दिया है। इनमेंसे जो कोई सार्वजनिक हित लक्ष्यमें धर प्रवृत्त होता है उससे स्वार्थी लोग विरोध करनेमें तत्पर होकर अनेक प्रकार विघन करते हैं । परन्तु "सत्यमेव जयते न न न सत्येन पन्था विततो देवयानः" **अ**र्थात् सर्वदः सत्यकः विजय और असत्यका पराजय और सत्य ही से विद्वानोंका मार्ग विस्तृत होता है, इस दढ निश्चयके आलम्बनसे अ.प्त लोग परोपकार करनेसे उदासीन होकर कभी सत्यार्थप्रकाश करनेसे नहीं हटते। यह बडा टढ निश्चय है कि "यत्तदमे विषमिव परिणामेऽमृनोपमम्" यह गीताका वचन है इसका अभिप्राय यह है कि जो २ विद्या और धर्मप्र: प्तिके कर्म हैं वे प्रथम करनेमें विषके तुल्य और परचात् अमृतकं सदश होते हैं। ऐसी बातोंको चित्तमें धरके मैंने इस प्रनथको रचा है। श्रोता वा पाठकगण भी प्रथम प्रेमसे देखके इस प्रनथका सत्य २ तात्पर्य जानकर यथेष्ट करें। इसमें यह अभिप्राय रक्सा, गया है कि जो जो सब मतों में सत्य २ बातें हैं वे २ सब में अविरुद्ध होनेसं उनका स्वीकार करके जो २ मतमतान्तरोंमें मिथ्या बातें हैं उन २ का खण्डन किया है। इसमें यह भी अभिप्राय रचला है कि जब मतमन्तारों ही गुप्त वा प्रकट बुरी बातोंका प्रकाश कर विद्वान् अविद्वान् सब साधारण मनुष्योंके सामने रक्का है, जिससे सबसे सबका विचार होकर परस्पर प्रेमी होके एक सत्य मतस्थ हों । यहापि में आर्यावर्स देशमें उत्पन्न हुआ और बसता हूं तथापि जैसे इस देशके मतमतान्तरोंकी सूठी बातों हा पक्षात न कर याथ तथ्य प्रकाश करता हूं वैसे ही दूसरे देशस्थ वा मनोत्रतिवालोंके साथ भी वर्ताता हूं जैसा स्वरेश वालोंके साथ मनुष्योन्नतिके विषयमें वर्ताता हूं वैसा विदेशियों के साथ भी तथा सब सजाोंको भी वर्त्तता योग्य है । क्योंकि में भी जो किसी एकका पक्षपाती होता तो जैसे आजकलके स्वमतकी स्तुति, मण्डन और प्रवार करते और दूसरे मतकी निन्दा, हानि और बन्द करनेमें तत्पर होते हैं वैसे में भी होता, परन्तु ऐसी बातें मनुष्यपनसे बाहर हैं। क्योंकि जैसे पगु बलवान होकर निंबलोंको दुःख देते और मार भी डालो हैं! जब मनुष्य शरीर पाके वैसा ही कर्म करते हैं तो वे मनुष्यस्वभावयुक्त नहीं किन्तु पशुवत् हैं। और जो बलवान होकर निंबलोंकी रक्षा करता है वही मनुष्य कहाता है और जो स्वांधवश होकर परहानिमात्र करता रहता है वह जानों पशुओंका भी बड़ा भाई है।

अब आर्यावित्योंके विषयमें विशेष कर ११ ग्यारहवें समुक्षास तक लिया है। इन समुक्षासोंमें जो कि सत्यमत प्रकाशित किया है वह वेदोक्त होनेसे मुक्तको सर्वथा मन्तव्य हैं। और जो नवीन पुराण तन्त्रादि प्रन्थोक्त वातोंका खण्डन किया है वे त्यक्तव्य हैं। जो १२ बारहवें समुक्षासमें दर्शाया चार्वाकका मत यद्यपि इस समय क्षीणा-स्तसा है और यह चार्वाक बौद्ध जैनसे बहुत सम्बन्ध अनीधरवादादिमें रखता है। यह चार्वाक सबसे बड़ा नास्तिक है। उसकी चेष्टाका रोकना अवश्य है। क्योंकि जो मिथ्या बात न रोकी जाय तो संसारमें बहुतसे अर्वध प्रवृत्त हो जायँ। चार्वाकका जो मत है वह तथा बौद्ध और जैनका जो मत है वह तथा बौद्ध और जैनका जो मत है वह तथा बौद्ध और बौद्धों तथा जैनिथोंका भी चार्वाकके मनके साथ मेळ है और क्रुछ थोड़ासा विरोध भी है। और जैन भी बहुतसे अंशोंमें चार्वाक और बौद्धों के साथ मेळ रखता है और थोड़ीसी बार्तोमें मेद है। इस-

िस्ये जैनोंकी जिल साला गिनी जाती है। यह मेद १२ बारहवे समुक्ता समें छिल दिया है यथायोग्य वहीं समम्म लेना। जो इसकी मेद है सो २ बारहवें समुस्कासमें दिखलाया है बौद्ध और जैन मतका विषय भी छिला है। इनमेंसे बौद्धोंक दीपवंशादि प्राचीन प्रन्योंमें बौद्धमतः संप्रह सर्वदर्शनसंप्रहमें दिखलाया है इसमेंसे यहां छिला है जोर जैनियोंके निम्निछिलित सिद्धान्तोंक पुस्तक हैं उनमेंसे चार मूछ सूत्र, जैसे—

१---आवश्यकसूत्र, २ विशेष आवश्यकसूत्र, ३ दशवैकाळिकसूत्र ं और ४ पाक्षिकसूत्र ॥ ११ (ग्यारह) अङ्ग, जैसे--- '

१—आचारांगसूत्र, २ सुंगडांगसूत्र, ३ थाणांगसूत्र, ४ समवायां-गसूत्र, ४ भगवतीसूत्र, ६ ज्ञाताधर्मकथासूत्र, ७ उपसक्दरससूत्र, ८, अन्तगढ़दशासूत्र, ६ अनुत्तरोवनाईसूत्र, १० विपाकसूत्र, ११ प्रश्नव्या-करणसूत्र ॥ १२ (बारह) उपांग, जैसे—

१ १--- उपन ईस् न, २ रायपसेनीस्त्र, ३ जीवाभिगमस्त्र, ४ ज्यापस-णास्त्र, ४ जंबुद्वीपपन्नतीस्त्र, ६ चन्दपन्नतीस्त्र, ७ स्रपन्नतीस्त्र, ८ निरियावळीस्त्र, ६ किप्यास्त्र, १० कपवड़ीसयास्त्र, ११ प्रिया-स्त्र, और १२ पुप्यच्चियास्त्र, ॥ ४ कस्पस्त्र, जैसे---

१—-उत्तराध्ययनसूत्र, २ निशीयसूत्र, ३ कल्पसूत्र, ४ व्यवहार-१भूत्र, और ४ जीतकल्पसूत्र,॥ छः छेर,जैसे—

१—महानिशीधबृश्द्वेचनास्त्र, २ महानिशीश्रक्षपुनाचनासूत्र, ३ सम्यमवाचनासूत्र, ४ विडनिहक्तिसूत्र, ४ ओचनिहक्तिसूत्र, ६ वर्म्यूवणा-सूत्र, ॥ १० ( दश ) पयन्नासूत्र, जैसे—

१—चतुस्सरणसूत्र, २ पन्चलाणसूत्र, ३ तदुक्रवैयाक्षिकसूत्र, ४ अक्तिपरिज्ञानसूत्र, ५ महाप्रत्याख्यानसूत्र, ६ चन्द्राविजयसूत्र, ७ गणीविजयसूत्र, ८ तराणसमाधिसूत्र, ६ देवेन्द्रस्तमनसूत्र और १० संसारसूत्र, तथा नन्दीसूत्र योगोद्धारसूत्र, भी प्रामाणिक मानते हैं।। ५ पश्चाक्र, जैसे—

🦜 १— पूर्व सब बन्धोंकी टीका, २ निकक्ति, ३ वरणी, ४ आद्या के

बाह अवयव कौर सब मूछ मिलके प्रश्वांग कहाते हैं, इनमें इंदिया · अवयंत्रोंको नहीं मानते और इनसे भिन्न भी अनेक क्रम है कि जिनको े बैसी छोग मानते हैं। इनके मत पर विशेष विचार १२ (बारहवें) समुख्यासमें देख लीलिये। जैनियोंके प्रन्थोंमें लाखों पुनक्क दोष हैं। और इनका यह भी स्वभाव है कि जो अपना अन्य दूसरे मत बालेके हाबमें हो वा छपा हो तो कोई २ उस प्रनथको अप्रमाण कहते हैं। यह बात उनकी मिथ्या है क्योंकि जिसको कोई माने कोई नहीं इससे वह अन्थ जनमतसे बाहर नहीं हो सकता। हा ! जिसको कोई न माने चौर न कभी किसी जैनीने माना हो तब तो अशहा हो सकता है। परन्त ऐसा कोई प्रनथ नहीं है कि जिसको कोई भी जैनी न मानता हो इसलिये जो जिस प्रनथको मानता होगा उस प्रनथस्य विषयक सण्डन मण्डन भी उसीके छिये समभा जाता है। परन्तु कितने ही ऐसे भी हैं कि उस प्रनथको मानते जानते हों तो भी सभा वा सवादमें बदर्छ जाते है, इसी हैतले जैन क्षेग अपने मन्थोंको छिपा रखते हैं। और दूसरे मतस्थकों न इते न सुनाते और न पढ़ाते इसिख्ये कि उनमें ऐसी २ **असम्भव बातें भरी हैं।** जिनका कोई भी उत्तर के निर्वोमेंसे नहीं दे सकता । सूठ बातको छोड़ देना ही उत्तर है।।

१३ वें संगुल्लासमें ईसाइयोंका मत लिखा है। ये लोग बाबबिलको व्यवना धर्मपुस्तक मानते हैं। इनका विशेष समावार वसी १३ तेरहवें संगुल्लासमें देखिये। और १४ चौदहवें संगुल्लासमें गुसलमानोंक मत विषयमें लिखा है ये लोग कुरानको अपने मतका मूलपुस्तक मानते हैं। इनका भी विशेष व्यवहार १४ वें संगुल्लासमें देखिये। और इसके बागे बैदिक मतके विषयमें लिखा है। जो कीई इसे प्रम्थकत्तांके तात्यव्यंसे विवद्ध मनसासे देखेगा उसको हुल भी अभिप्राय विदित न होगा। क्योंकि वाक्यांखवियमें बार कारण होते हैं, आकार क्षा, बोग्यता, आसित और तात्ववं "जब इन कारों बातों पर ध्यान केंद्र जो पुरुष मन्यको देखता है तक इसको मन्यका अभिप्राय यथा-किंद्र विदित होता हैं। "अकार क्षा किंद्रा विवद पर वकाको और

वाक्यस्थपदोंकी आकांक्षा परस्पर होती है। "ग्रोग्यत।" वह कहाती है कि जिससे जो होसके जैसे जलते सींचता। "आसति" जिस पदके साथ जिसका सम्बन्ध हो उसीके समीप उस पदको बोलना वा लिखना। "तात्पर्य" जिसके लिये वक्ताने शब्दोच्चारण वा लेख किया हो उसीके साथ उस वचन वा लेखको युक्त करना । बहुतसे हुठी दुराप्रही मनुष्य होते हैं कि जो वक्ताके अभिप्रायसे विरुद्ध कल्पना किया करते हैं. विशेषकर मत वाले लोग। क्योंकि मतके आप्रहसे उनकी बृद्धि अन्धकारमें फँसके नष्ट हो जाती है। इसलिये जैसा मैं पराण, जैनि-योंके प्रत्थ, वायबिल और कुरानको प्रथम ही बुरी दृष्टिले न देखकर उनमेंसे गुणोंका प्रहण और दोषोंका त्याग तथा अन्य मनुष्यजानिकी उन्नितिके लिये प्रयन्न करता हूं, वैसा सबको करना योग्य है। इन मतोंके थोड़े २ ही दोष प्रकाशित किये हैं जिनको देखकर मनुष्य छोग सत्यासत्य मतका निर्णय कर सकें और सत्यका ग्रहण तथा असत्यका त्याग करने करानेमें समर्थ होवें। क्योंकि एक मनुष्य जातिमें, बेहका कर, बिरुद्ध बुद्धि कराके, एक दूसरेको शत्रु बना, छडा मारना विद्वा-नोंके स्वभावसे बहिः है। यद्यपि इस प्रन्थकी देखकर अविद्वानः लोग अन्यथा ही विचारेंगे तथापि बुद्धिमान् लोग यथायोग्य इसका अभि-प्राय समर्भेंगे। इसलिये में अपने परिश्रको सफल समस्तना और अपना अभिप्राय सब सज्जनोंके सामने धरता हूं। इसको देख दिख-छाके मेरे श्रमको सफल करें। और इसी प्रकार पश्चपात न करके सत्यार्थका प्रकाश करना मेरा वा सब महाशयोंका मुख्य कर्त्तात्र्य काम है। सर्वातमा सर्वान्तर्यामी सचिचदानन्द परमातमा अपनी क्रशसं इस आशयको विस्तृत और चिरस्थायी करे।

।। अलमति विस्तरेण बुद्धिमद्वरशिरोमणिषु ॥ ।। इति भूमिका ॥

्रात पूर्णका ।। व्यक्तिक

स्थान महाराणाजीका उदयपुर, भाद्रपर ग्रुक्खपञ्च सवत्१६३६

#### <sub>ओ३म्</sub> सचिदानन्देश्वराय नमो नमः ।

# **ग्र**थ सत्यार्थप्रकाशः

#### प्रथम समुह्यासः

-CATES

ईश्वरके ओंकारादि नामोंकी व्याख्या **।** 

श्रोरेम शन्नो मित्रः शं वरुणः शन्नो भवत्व-र्यमा। शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः शन्नो विष्णुरुरु-क्रमः॥ नमो ब्रह्मणे नमस्ते वायो त्वमेव प्रत्यत्तं ब्रह्मासि। त्वामेव प्रत्यत्तं ब्रह्म वदिष्यामि ऋतं वदिष्यामि सत्यं वदिष्यामि तन्मामवतु तहक्ता-रमवतु। श्रवतु मामवतु वक्तारम् ॥ श्रोरेम् शान्तिश्शान्तिश्शान्तिः॥ १॥

अर्थ—(ओ३म्) यह ओंकार शब्द परमेश्वरका सर्वोत्तम नाम है क्योंकि इसमें जो अ, उ और म् तीन अक्षर मिछकर एक (ओम्) समुदाय हुआ है। इस एक नामसे परमेश्वरके बहुतसे नाम आते है, जैसे—अकारसे विराट्, अग्नि और विश्वादि। उकारसे हिरण्य-गर्भ, वायु और तैजसादि। मकारसे ईश्वर, आदित्य और प्राज्ञादि नामोंका वाचक और प्राह्मक है। उसका ऐसा ही वेदादि सत्यशास्त्रों-में स्पष्ट व्याख्यान किया है कि प्रकरणानुकूछ ये सब नाम परमेश्वर ही के हैं।

प्रभ—परमेश्वरसे भिन्न अर्थोंके वाचक विराट् आदि नाम क्यों नहीं ? ब्रह्माण्ड, पृथिवी आदि भूत, इन्द्रादि देवता और वैद्यकशास्त्रमें शुण्ड्यादि ओषधियोंके भी ये नाम हैं वा नहीं ?

जत्तर—हैं, परन्तु परमात्माके भी हैं।
प्रश्न—केवल देवोंका प्रहण इन नामोंसे करते हो वा नहीं ?
जत्तर—आपके प्रहण करनेमें क्या प्रमाण है ?
प्रश्न—देव सब प्रसिद्ध और वे उत्तम भी हैं इससे मैं उनका प्रहण

उत्तर-क्या परमेश्वर अप्रसिद्ध और उससे कोई उत्तम भी है ? पुनः ये नाम परमेश्वरके भी क्यों नहीं मानते ? जब परमेश्वर अप्रसिद्ध सीर उसके तुल्य भी कोई नहीं तो उससे उत्तम कोई क्योंकर हो सकेगा. इससे आपका यह कहना सत्य नहीं। क्योंकि आपके इस कहनेमें बहुतसे दोष भी आते हैं जैसे—"उपस्थितं परित्यज्यानुपस्थितं याचत इति बाधितन्यायः" किसीने किसीके लिये भोजनका पढार्थ रखके कहा कि आप भोजन कीजिये और वह जो उसको छोडके **अ**प्राप्त भोजनके लिये जहां तहां भ्रमण करे, उसको बुद्धिमान न जानना चाहिये। क्योंकि वह उपस्थित नाम समीप प्राप्त हुए पदार्थको छोडके अनुपस्थित अर्थात् अप्राप्त पदार्थकी प्राप्तिके लिये श्रम करता है। इसलिये जैसा वह पुरुष बुद्धिमान नहीं वैसा ही आपका कथन हुआ। क्योंकि आप उन विराट् आदि नामोंके जो प्रसिद्ध प्रमाणसिद्ध परमेश्वर धीर ब्रह्माण्डादि उपस्थित अर्थोका परित्याग करके असम्भव और अनुपस्थित देवादिके प्रहणमें श्रम करते हैं। इसमें कोई भी प्रमाण वा युक्ति नहीं। जो आप ऐसा कहें कि जहां जिसका प्रकरण है वहां उसीका शहण करना योग्य है, जैसे किसीने किसीसे कहा कि "हे भृत्य ! त्वं सैन्धवमानय" अर्थात् तु सैन्धवको हे आ, तब उसको समय **अ**र्थात् प्रकरणका विचार करना अवश्य है क्योंकि सैन्धव नाम दो पदार्थीका है एक घोड़े और दूसरे छवणका। जो स्वस्वामीका गमन-

समय हो तो घोड़ और भोजनकाल हो तो लवणको ले आना उचित है। और जो गमनसमयमें लवण और भोजन समयमें घोड़को ले आवे तो उसका स्वामी उस पर कुद्ध होकर कहेगा कि तू निर्वृद्धि पुरुष है। गमनसमयमें लवण और भोजनकालमें घोड़ेके लानेका क्या प्रयोजन था? तू प्रकरणवित नहीं है नहीं तो जिस समयमें जिसको लाना चाहिये था उसीको लाता। जो तुमको प्रकरणका विचार करना खावश्यक था वह तूने नहीं किया, इससे तु मूर्ख है, मेरे पाससे चला जा। इससे क्या सिद्ध हुआ कि जहां जिसका प्रहण करना उचित हो वहां उसी अर्थका प्रहण करना चाहिये तो ऐसा ही हम और आप सब लोगोंको मानना और करना भी चाहिये।

#### - KEE

# अथ मन्त्रार्थः।

ओ ३म् खम्ब्रह्म ॥१॥ यज्ञः अ० ४० मं० १७॥ देखिये वेदोंमें ऐसे २ प्रकरणोंमें 'ओम्' आदि परमेश्वरके नाम हैं। ओमित्येतदक्षरमुद्गीथसुपासीत ॥२॥ छान्दोग्य उपनिषत् [मं० १]

अोमित्येतदक्षरमिद्धं सर्वं तस्योपव्याख्यानम्॥३॥ माण्ड्क्य [ मं० १ ]

सर्वे वेदा यत्पदमामनित तपा ऐसि सर्वाणि च यद्भदन्ति । यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं छंग्रहेण ब्रबीम्योमित्येतत् ॥४॥ कठोपनिषदि [बह्री २ मं० १५]

प्रशासितारं सर्वेषामणीयांसमणोरपि। स्क्माभं

स्वप्रधीगम्यं विद्यात्तं पुरुषं परम् ॥५॥ ं एतमग्निं वदन्त्येके मनुमन्ये प्रजापतिम् । इन्द्रमेके परे प्राणमपरे ब्रह्म द्यास्वतम् ॥६॥

[मनु० अ० १२ रलो० १२२ । १२३ ] स ब्रह्मा स विष्णुः स रुद्रस्स शिवस्सोऽक्षरस्स परमः स्वराट्। सङ्ग्द्रस्स कालाग्निस्स चन्द्रमाः॥७॥ कैवल्य उपनिषत्॥

इन्द्रं मित्रं वरुणमित्रमाहुरथो दिव्यस्स सुपर्णी गरुत्मान् । एकं सिद्धिया बहुधा वदन्त्यिनं यमं मातरिश्वानमाहुः॥८॥ऋ०मं०१सू०१६४ मं०४६ भ्रतिस म्मिरस्यदितिरसि विश्वधाया विश्वस्य सुवनस्य धर्ती । एथिवीं यच्छ एथिवीं दुऐह एथिवीं मा हिऐसीः ॥६॥ यजुः अ०१३ मं०१८॥

इन्द्रो महा रोदसी प्रथच्छव इन्द्रः सूर्यमरोचयत्। इन्द्रे ह विश्वा स्वनानि येमिर इन्द्रे श्वानास इन्द्रवः ॥१०॥ सामवेद प्रया ६ त्रिक मां २ ॥ प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वद्यो । यो भृतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्त्सर्व प्रतिष्ठितम् ॥११॥ अथर्ववेद काण्ड ११ अ० २ सू० ४ मं० १ ॥

अर्थ—यहां इन प्रमाणोंके लिखनेमें तात्पर्य यही है कि जो ऐसे ६ प्रमाणोंमें ओंकारादि नामोंसे परमात्माका प्रहण होता है यह लिख

आये। तथा परमेश्वरका कोई भी नाम अनर्थक नहीं। जैसे छोकमें इरिट्री आदिके धनपति आदि नाम होते हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि कहीं गौणिक, कहीं कृमिक और कहीं खाभाविक अर्थोंके वाचक हैं। "ओम्" आदि नाम सार्थक हैं जैसे—

(ओं खं०) "अवतीत्योम्, आकाशमिव व्यापकत्वात् खम्, सर्वेभ्यो बृहत्वाद् ब्रद्ध" रक्षा करनेसे (ओशम्) आकाशवत् व्यापक होनेसे (खम्) और सबसे बड़ा होनेसे (ब्रद्ध) ईश्वरका नाम है ॥१॥

(ओमित्येत०) (ओ३म्) जिसका नाम है और जो कभी नष्ट नहीं होता उसीकी उपासना करनी योग्य है। अन्यकी नहीं ॥ २॥

(ओमित्येत•) सब बेदादि शास्त्रोंमें परमेश्वरका प्रधान और निज नाम (ओ३म्) को कहा है। अन्य सब गौणिक नाम है॥३॥

( सर्वे वेदा०) क्योंकि सब वेद सब धर्मानुष्ठानरूप तपश्चरण जिसका कथन और मान्य करते और जिसकी प्राप्तिकी इच्छा करके ब्रह्मचर्याश्रम करते हैं उसका नाम "ओ३म्" है॥ ४॥

(प्रशासिता॰) जो सबको शिक्षा देनेहोरा, सूक्ष्मसे सूक्ष्म, स्वप्नकाशस्वरूप, समाधिस्थ बुद्धिसे जानने योग्य है, उसको परमपुरूष जानना चाहिये॥ ४॥

और स्वप्रकाश होनेसे "अपिन" विज्ञानस्वरूप होनेसे "मनु" सबका पालन करनेसे "प्रजापित" और परमैश्वर्यवान होनेसे "इन्द्र" सबका जीवनमूल होनेसे "प्राण" और निरन्तर व्यापक होनेसे परमैश्वरका नाम "ब्रह्म" है ॥ ६ ॥

(स ब्रह्मा स विष्णु०) सब जगत्के बनानेसे "ब्रह्मा" सर्वत्र व्यापक होनेसे "विष्णु" दुष्टोंको दण्ड देके रुठानेसे "रुद्र" मङ्गळमय और सदका कल्याणकर्ता होनेसे "शिव" "यः सर्वमश्तुते न क्षरति न विनश्यति तदक्षरम्"॥ १॥ "यः स्वयं राजते स स्वराट्"॥ २॥ "योऽग्निरिव काळः कळियता प्रळयकर्ता स काळाग्निरीश्वरः" № ३॥ अक्षर) जो सर्वत्र व्याप्त स्रविनाशी (स्वराट् ) स्वयं प्रकाशस्वरूप

(इन्द्रं मित्रं॰) जो एक अद्वितीय सत्यश्रद्धा वस्तु है उसीके इन्द्रादि सब नाम हैं। "शुष्र शुद्धेषु पदार्थेषु भवो दिव्यः" "शोभनानि पर्णानि पाळनानि पूर्णानि कर्माणि वा यस्य सः" "यो गुर्वात्मा स गरुत्मान्" "यो मातरिश्वा वायुरिव बळवान् स मातरिश्वा" (दिव्य) जो प्रकृत्यादि दिव्य पदार्थोमें व्याप्त (सुपर्ण) जिसके उत्तम पाळन और पूर्ण कर्म हैं (गरुत्मान्) जिसका आत्मा अर्थात् स्वरूप महान है (मातरिश्वा) जो वायुके समान अनन्त बळवान् हैं इसिळिये परमात्माके दिव्य, सुपर्ण, गरुत्मान् और मातरिश्वा ये नाम हैं। शेष नामोंका अर्थ आगे ळिखेंगे॥ ८॥

( भूमिरसि॰ ) "भवन्ति भूतानि यस्यां सा भूमिः" जिसमें सब भूत प्राणी होते हैं इसल्यि ईश्वरका नाम "भूमि" है। शेष नामोंका अर्थ आगे लिखेंगे॥ ६॥

(इन्द्रो महा०) इस मन्त्रमें इन्द्र परमेश्वर ही का नाम है इस लिये यह प्रमाण लिखा है।। १०॥

(प्रणाय०) जैसे प्राणके वश सब शरीर और इन्द्रियां होती हैं वैसे परमेश्वरके वशमें सब जगत् रहता है ॥ ११॥

इत्यादि प्रमाणोंके ठीक २ अथोंके जाननेसे इन नामों करके परमे-रवरहीका प्रहण होता है। क्योंकि ओइम् और अग्न्यादि नामोंके मुख्य अथसे परमेरवर ही का प्रहण होता है। जैसा कि व्याकरण, निरुक्त, ब्राह्मण, सूत्रादि कृषि मुनियोंके व्याख्यानोंसे परमेश्वरका प्रहण देखनेमें आता है वैसा प्रहण करना सबको योग्य है परन्तु 'ओइम्' यह तो केवल परमात्मा ही का नाम है और अग्नि आदि नामोंसे परमेश्वरके ब्रहणमें प्रकरण और विशेषण नियमकारक हैं। इससे क्या सिद्ध हुआ कि जहाँ २ स्तुति, प्रार्थना, उपासना, सर्वज्ञ, व्यापक, शुद्ध, सनातन और सृष्टिकर्त्ता आदि विशेषण लिखे हैं वहीं वहीं इन नामोंसे परमेश्वरका प्रहण होता है और जहां २ ऐसे प्रकरण है कि :--

ततो विराडजायत विराजो अधि प्रवः । श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत । तेन देवा अयजन्त । पश्चाद्भूमिमधो पुरः ॥ यजुः अ० ३१ ॥
तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः । आकाशाद्वायुः । वायोरग्निः । अग्नेरापः । अद्भ्यः
पृथिवी । पृथिन्या ओषधयः । ओषधिभ्योऽन्नम् ।
अन्नाद्वेतः । रेतसः पुरुषः । स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः ॥ [ब्राह्म, वल्ली अ १ ]

यह तैत्तिरीयोपनिषद्का बचन है। ऐसे प्रमाणोंमें विराट्, पुरुष, देव, आकाश, वायु, अग्नि, जल, भूमि आदि नाम लौकिक पदार्थोंके होते हैं। क्योंकि जहां २ उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय, अल्पझ, जड़, दृश्य आदि विशेषण भी लिखे हों वहां २ परमेश्वरका प्रहण नहीं होता। वह उत्पत्ति आदि व्यवहारोंसे पृथक् है और उपरोक्त मन्त्रोंमें उत्पत्ति आदि व्यवहार हैं। इसीसे यहां विराट् आदि नामोंसे परमात्माका प्रहण न होके संसारी पदार्थोंका प्रहण होता है। किन्तु जहां २ सर्व- झादि विशेषण हों वहां २ परमात्मा और जहां २ इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, प्रख, दुःख और अल्पझादि विशेषण हों वहां २ जीवका प्रहण होता है। ऐसा सर्वत्र समम्प्तना चाहिये। क्योंकि परमेश्वरका जन्म, मरण कभी नहीं होता इससे विराट् आदि नाम और जन्मादि विशेषणोंसे जगत्के जड़ और जीवादि पदार्थोंका प्रहण करना उचित है परमेश्वर का नहीं। अब जिस प्रकार विराट् आदि नामोंसे परमेश्वरका प्रहण होता है वह प्रकार नीचे लिखे प्रमाणे जानो।

अथ ओङ्कारार्थः। (वि) उपस्र्गपूर्वक (राजृ दीन्ते) इस

धातुसे क्विप् प्रत्यय करनेसे "विराट्" शब्द सिद्ध होता है। "यो . विविधं नाम चराऽचरं जगद्राजयित प्रकाशयित स विराट्" विविध अर्थात् जो बहु प्रकारके जयत्को प्रकाशित करे इससे विराट् नामसे ह परमेश्वरका ग्रहण होता है।

(अञ्चु गतिपूजनयोः) (अग, अगि, इण् गत्यर्थक) धातु हैं इनसे "अगिन" शब्द सिद्ध होता है। "गतेख्ययोऽर्थाः ज्ञानं गमनं । प्राण्तिश्चेति, पूजनं नाम सत्कारः" "योऽश्वतिअन्यतेऽगत्यङ्गत्येति वा । सोऽयमगिनः" जो ज्ञानस्वरूप, सर्वज्ञ, जानने, प्राप्त होने और पूजा करने योग्य है इससे उस परमेश्वरका नाम "अगिन" है।

(विश प्रवेशने) इस धातुसे "विशव" शब्द सिद्ध होता है। किशानित प्रविष्टानि सर्वाण्याकाशादीनि भूनानि यस्मिन् यो बाऽऽकाशादिपु सर्वेषु भूतेषु प्रविष्टः सः विश्व ईश्वरः" जिसमें आकाशादि सब भूत प्रवेश कर रहे हैं अथवा जो इनमें व्याप्त होके प्रविष्टः हो रहा है इसिल्ये उस परमेश्वरका नाम "विश्व" है। इत्यादि प्रमाणों का प्रहण अकारमात्रसे होना है।

"ज्योतिर्वे हिरण्यं तेजो वे हिरण्यमित्यैतरेये शतपथे च ब्राह्मणे" "यो हिरण्यानां सूर्यादीनां तेजसां गर्भ उत्पत्तिनिमित्तमधिकरणं स हिरण्यार्भः" जिसमें सूर्यादि तेजवाले लोक उत्पन्न होके जिसके भाधार रहते हैं अथवा जो सूर्यादि तेजःरवह्म पदार्थोका गर्भ नाम उत्पत्ति और निवासस्थान है इससे उस परमेश्वरका नाम 'हिरण्यगर्भ' है। इसमें यजुर्वेदके मन्त्रका प्रमाण है—

हिरण्यगर्भः समवर्ताताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। स दाधार पृथिवीं चामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विषेम॥ [ यज्ञः अ १३ मं ४ ]

इत्यादि स्थलोंमें "हिरप्रयगभ" से परमेश्वरहीका प्रहण होता है। ( या गतिगन्धनयोः ) इस धातुसे "बायु" शब्द सिद्ध होता है। )( गन्धनं हिंसनम् ) "यो वाति चराऽचरश्चगद्धरति बलिलां बलिष्टः स वायुः" जो चराऽचर जगन्का धारण, जीवन और प्रलय करता और सब बलवानोंसे बलवान् है इससे उस ईश्वरका नाम "वायु" है।

(तिज निशाने) इस धातुसे "तेजः" और इससे तद्धित करनेसे "तैजस" शब्द सिद्ध होता है। जो आप स्वयंप्रकाश और सूर्यादि तेजस्वी छोकोंका प्रकाश करनेवाला है इससे उस ईश्वरका नाम "तैजस" है। इत्यादि नामार्थ उकारमात्रसे प्रहण होते हैं।

( ईश ऐश्वर्षे ) इस धातुसे "ईश्वर" शब्द सिद्ध होता है। "य ईष्टे सर्वेश्वयंवान वर्तते स ईश्वरः" जिसका सत्य विचारशील ज्ञान और सनन्त ऐश्वर्ष है इससे उस परमांत्माका नाम "ईश्वर" है।

( दो अवखण्डने ) इस धातुसे "अदिति" और इससे तद्धित करनेसे "आदित्य" शब्द सिद्ध होता है । "न विद्यते विनाशो यस्य सोऽयमदितिः+अदितिरेव आदित्यः" जिसका विनाश कभी न हो स्सी ईश्वरकी "आदित्य" संज्ञा है ।

( ज्ञा अववोधने ) 'प्र' पूर्वक इस धातुसे "प्रज्ञ" और इससे तद्धित करनेसे "प्राज्ञ" शब्द सिद्ध होता है। "यः प्रकृष्टतया चराऽचरस्य जगतो व्यवहारं जानाति स प्रज्ञः+प्रज्ञ एव प्राज्ञः" जो निर्श्नात्त ज्ञान-युक्त सब चराऽचर जगत्के व्यवहारको थथावत् जानता है इससे इंश्वरका नाम "प्राज्ञ" है। इत्यादि नामांथ मकारसे गृहीत होते हैं।

जैसे एक २ मात्रासे तीन २ अर्थ यहां व्याख्या किये हैं बेसेही अन्य नामार्थ भी ऑकारसे जाने जाते हैं। जो (शन्नो मित्रः शंव०) इस मन्त्रमें मित्रादि नाम हैं वे भी परमेश्वरके हैं क्योंकि स्तुति, प्रार्थना, उपासना श्रेष्ठहीकी की जाती है। श्रेष्ठ उसकों कहते हैं जो गुण, कर्म स्वभाव और सत्य सत्य व्यवहारोंमें सबसे अधिक हो। उन सब श्रेष्ट्रीमें भी जो अत्यक्त श्रेष्ठ उसको परमेश्वर कहते हैं। जिसके तुत्य कोई न हुआ, न है जोर स होगा। जब तुत्य नहीं तो उससे अधिक क्योंकर हो सकता है जोर के स्तुत्र करते हैं।

इया, सर्वसामर्थ्य और सर्वज्ञत्वादि अनन्त गुण हैं वैसे अन्य किसी जड़ पदार्थ वा जीवके नहीं हैं। जो पदार्थ सत्य है उसके गुण, कम्मं स्वभाव भी सत्य होते हैं इसिल्ये मनुष्योंको योग्य है कि परमेश्वर हीकी स्तुति, प्रार्थना और उपासना करें, उससे भिन्नकी कभी न करें क्योंकि ब्रह्मा, विष्णु, महादेव नामक पूर्वज महाशय विद्वान, दैत्य दानवादि निकुष्ट मनुष्य और अन्य साधारण मनुष्योंने भी परमेश्व-रहीमें विश्वास करके उसीकी स्तुति, प्रार्थना और उपासना की, उससे भिन्न की नहीं की। वैसे हम सबको करना योग्य है। इसका विशेष विचार युक्ति और उपासना विषयमें किया जायगा।

प्रश्न—मित्रादि नामोंसे सखा और इन्द्रादि देवोंके प्रसिद्ध व्यवहार देखनेसे उन्हींका प्रहण करना चाहिये।

उत्तर—यहां उनका प्रहण करना योग्य नहीं क्योंकि जो मनुष्य किसीका मित्र है वही अन्यका शत्रु और किसीसे उदासीन भी देखनेमें आता है। इससे मुख्यार्थमें सखा आदिका प्रहण नहीं हो सकता। किन्तु जैसा परमेश्वर सब जगत्का निश्चित मित्र, न किसीका शत्रु और न किसीसे उदासीन है, इससे भिन्न कोई भी जीव इस प्रकारका कभी नहीं हो सकता। इसख्यि परमात्माहीका प्रहण यहां होता है। हां। गौण अर्थमें मित्रादि शब्दसे सुहदादि मनुष्योंका प्रहण होता है।

( श्रिमिदा स्नेहने ) इस धातुसे औणादिक "क्त" प्रत्ययके होनेसे "मित्र" शब्द सिद्ध होता है । "मेश्यति स्निहाति स्निहाते वा स मित्रः" जो सबसे स्नेह करके और सबको प्रीति करने योग्य है इससे उस परमेश्वरका नाम मित्र है ।

( वृष् वरणे, वर ईप्सायाम् ) इन धातुओंसे उणादि 'उनन्' प्रत्यव होनेसे "वरुण" शब्द सिद्ध होता है। "यः सर्वान् शिष्टान् मुसुक्षून्व-र्मात्मनो वृणोत्यथवा यः शिष्टिर्मुसुक्षुभिर्धर्मात्मभिर्वयते वर्ष्टाते वा स वरुणः परमेश्वरः" जो आत्मयोगी, विद्वान, मुक्तिकी इच्छा करने वाठे मुक्त और धर्मात्माओंका स्वीकार करता, अथवा जो शिष्ट, मुमुक्कु, मुक्त और धर्मात्माओं से प्रहण किया जाता है वह ईश्वर "वरूण" संज्ञक है। अथवा "वरुणो नाम वरः श्रेष्ठः" जिसलिये परमेश्वर सबसे श्रेष्ठ है, इसलिये उसका नाम "वरुण" है।

( भू गतिप्रापणयोः ) इस धातुसे "यत्" प्रत्यय करनेसे "अर्थ्य" शब्द सिद्ध होता है और "अर्थ्य" पूर्वक ( माङ् माने ) इस धातुसे "किनन्" प्रत्यय होनेसे "अर्थ्या" शब्द सिद्ध होता है। "योऽर्यान् स्वामिनो न्यायाधीशान् मिमिते मान्यान करोति सोऽर्थमा" जो सत्य न्यायके करनेहारे मतुष्योंका मान्य और पाप तथा पुण्य करनेवालोंको पाप और पुण्यकं फलोंका यथावत् सत्य २ नियमकर्ता है इसीसे उस परमेशवरका नाम "अर्थमा" है।

( इदि परमैश्वर्ये ) इस धातुसे 'रन' प्रत्यय करनेसे "इन्द्र" शब्द सिद्ध होता है "य इन्द्रित परमैश्वर्यवान भवित स इन्द्रः परमेश्वरः" जो अखिल ऐश्वर्ययुक्त है इससे उस परमात्माका नाम "इन्द्र" है।

"बृहत्" शब्दपूर्वक (पा रक्षणे) इस धातुसे "डति" प्रत्यय बृहत्के तकारका लोप और सुडागम होनेसे "बृहस्पित" शब्द सिद्ध होता है। "यो बृहतामाकाशादीनां पितः स्वामी पालयिता स बृहस्पितः' जो बड़ोंसे भी बड़ा और बड़े आकाशादि ब्रह्माण्डोंका स्वामी है इससे एस परमेश्वरका नाम "बृहस्पित" है।

( विब्लू व्याप्तो ) इस धातुसे "नु" प्रत्यय होकर "विष्णु" शब्द सिद्ध हुआ है। "वेवेष्टि व्याप्नोति चराऽचरं जगत् स विष्णुः" चर और अचररूप जगत्में व्यापक होनेसे परमात्माका नाम "विष्णु" है।

"उरुर्महान् क्रमः पराक्रमो यस्य स उरुक्रमः" अनन्त पराक्रमयुक्त होनेसे परमारमाका नाम "उरुक्रम" है।

जो परमात्मा (उरुक्रमः) महापराक्रमयुक्त (मित्रः) सबका सुहृत अविरोधी है वह (शम्) सुलकारक, वह (वरुणः) सर्वोत्तम, वह (शम्) सुलस्वरूप, वह (अर्थमा) न्यायाधीश, वह (शम्) सुखप्रचारक, वह (इन्द्रः) जो सकल ऐश्वर्यवान्, वह (शम्) सकल ऐश्वर्यदायक, वह (बृहस्पतिः) सबका अधिष्ठाता (शम्) विद्यापद स्रोर (विष्णु) जो सबमें व्यापक परमेश्वर है, वह (नः) हमारा कल्याणकारक (भवतु) हो ॥

(वायो ते ब्रह्मणे नमोऽस्तु ) (बृह बृहि वृद्धौ ) इन धातुओंसे 📆 हा" शब्द सिद्ध होता है। जो सबके ऊपर विराजमान, सबसे बड़ा, अनन्तबलयुक्त परमातमा है उस ब्रह्मको हम नमस्कार करते हैं। है परमेश्वर । (त्वमेव प्रत्यक्षम्ब्रह्मासि ) आपही अन्तर्यामिरूपसे प्रत्यक्ष ब्रह्म हो (त्वामेव प्रत्यक्ष ब्रह्म वदिष्यामि ) में आपहीको प्रत्यक्ष ब्रह्म कहंगा क्योंकि आप सब जगतमें व्याप्त होके सबको नित्यही प्राप्त हैं ( भृतं विद्ग्यामि ) जो आपकी वेदस्थ यथार्थ आज्ञा है उसीका मैं सबके छिये उपदेश और आचरण भी करूंगा (सत्यं बदि्ध्यामि) सत्य बोलूं, सत्य मानूं और सत्यही करूंगा (तन्मामवतु) सो आप मेरी रक्षा कीजिये (तद्वकारमवतु ) सो आप मुक्त आप्त सत्यवकाकी रक्षा कीजिये कि जिससे आपकी आज्ञामें मेरी बुद्धि स्थिर होकर विरुद्ध कभी न हो। क्योंकि जो आपकी आज्ञा है वही धर्म और जो उससे विरुद्ध वही अधर्म है (अवतु मामवतु वक्तारम्) यह दूसरी बार पाठ अधिकार्थके लिये हैं। जैसे "कश्चित् कंचित्प्रति बद्ति त्वं प्रामं गच्छ गच्छ" इसमें दो वार क्रियाके उच्चारणसे तू शीघही **भा**मको जा ऐसा सिद्ध होता है। ऐसे ही यहां कि आप मेरी अवश्य रक्षा करो अर्थात धर्मसे सुनिश्चित और अधर्मसे घृणा सदा करूं ऐसी **5**पा मुक्त पर कीजिये में आपका बड़ा उपकार मानूंगा।

(ओश्न् शान्तिः शान्तिः ) इसमें तीन वार शान्तिपाठका यह प्रयोजन है कि त्रिविधताप सर्थात् इस संसारमें तीन प्रकारके दुःख है एक 'आध्यात्मिक' जो सातमा शरीरमें स्विद्या, राग, देव मूर्काता स्वोर ज्वर पीड़ादि होते हैं। दूसरा "स्विधनीतिक" जो शहु, ज्याझ स्वोर सर्पादिसे प्राप्त होता है। तीसरा "स्विदिविक" अर्थात् जो

स्मितृहिष्ट, अतिशीत, अति उष्णता, मन और इन्द्रियोंकी अशान्तिसे होता है। इन तीन प्रकारके क्लेशोंसे आप हम छोगोंको दूर करके क-ल्याणकारक कमोंमें सदा प्रवृत्त रिखये। क्योंकि आपही कल्याणकर्त्त सब संसारके कल्याणकर्त्ता और धार्मिक मुमुक्कुओंको कल्याणके दाता हैं। इसिछये आप खयं अपनी करुणासे सब जीवोंके हृदयमें प्रकाशित हूजिये कि जिससे सब जीव धर्मका आचरण और अधर्मको छोड्के परमानन्दको प्राप्त हों और दुःखोंसे पृथक् रहें।

"सुर्य्य आत्मा जगतस्तस्थुपश्च" इस यजुर्वेदके वचनसे जो जगत् नाम प्राणी चेतन और जंगम वर्थात् जो चलते फिरते हैं "तस्थुपः" अप्राणी वर्थात् स्थावर जड़ वर्थात् पृथिवी आदि हैं उन सबके आत्मा होने और स्वप्रकाशरूप सबके प्रकाश करनेसे परमेश्वर का नाम "सूर्य्य" है।

(अत सातत्यगमने ) इस धातुसे 'आत्मा' शब्द सिद्ध होता है। "योऽतित व्याप्नोति स आत्मा" जो सब जीवादि जगत्में निरन्तर व्यापक हो रहा है।

"परश्चासावात्मा च य आत्मभ्यो जीवेभ्यः सुक्ष्मेभ्यः परोऽतिसृक्ष्मः स परमात्मा" जो सब जीव आदिसे उत्कृष्ट और जीव प्रकृति तथा आकाशसे भी अतिसृक्ष्म और सब जीवोंका अन्तर्यामी आत्मा है इससे ईश्वरका नाम "प्रमात्मा" है।

सामर्थ्यवालेका नाम ईश्वर है। "य ईश्वरेषु समर्थेषु परमः श्रेष्टः स परमेश्वरः" जो ईश्वरों अर्थात् समर्थोमं समर्थ, जिसके तुल्य कोई भी न हो इसका नाम "परमेश्वर है।

( वुज् अभिषवे, षूड् प्राणिगर्भविमोचने ) इन घातुओंसे 'सविता' शब्द तिद्ध होता है । "अभिषवः प्राणिगर्भविमोचनं चोत्पादनम् । यश्चराचरं जगत् सुनोति सूते वोत्पादयित संस्विता परमेश्वरः" जो स्रव जगत्की उत्पत्ति करता है इसिल्ये परमेश्वरका नाम 'संविता' हैं। वे ( दिवु क्रीड़ाविजिगीषाव्यवहारस्रुतिस्तुतिमोदमदस्वप्रकान्तिगतिषु )

इस धातसे 'देव' शब्द सिद्ध होता है। ( क्रीड़ा ) जो शुद्ध जगत्को क्रीडा कराने (विजिगीषा) धार्मिकोंको जितानेकी इच्छायक्त (व्यव-हार ) सब चेष्टाके साधनीपसाधनोंका दाता ( द्युति ) स्वयंप्रकाशस्वरूप सबका प्रकाशक (स्तुति ) प्रशंसाके योग्य (मोद् ) आप आनन्दस्व-ह्म और दसरोंको आनन्द देनेहारा ( मद् ; मदोनमत्तोंका ताड़नेहारा ( स्वप्र ) सबके शयनार्थ रात्रि और प्रख्यका करनेहारा (कान्ति ) कामनाके योग्य और ( गति ) ज्ञानस्वरूप है इसलिये उस परमेश्वर-का नाम "देव" है। अथवा "यो दीव्यति क्रीडित स देव:" जो अपने स्वरूपमें आनन्दसे आप ही आप क्रीडा करे अथवा किसीके सहायताके बिना क्रीडावत् सहजस्वभावसे सब जगत्को बनाता वा सब क्रीडाओंका आधार है। "विजिगीषते स देवः" जो सबका जीतनेहारा स्वयं अजेय अर्थात जिसको कोई भी न जीत सके। "व्यवहारयति स देवः" जो म्याय और अन्यायरूप व्यवहारोंका जाननेहारा और उपदेश "यश्च-राचरं जगत द्योतयति" जो सबका प्रकाशक "यः स्त्यते स देवः" जो सब मनुष्योंको प्रशंसाके योग्य और निन्दाके योग्य न हो "यो मोदयति स देवः" जो स्वयं आनन्दस्वरूप और दसरोंको आनन्द कराता. जिसको दःखका लेश भी न हो "यो माद्यति स देवः" जो सदा हर्षित, शोकरहित और दसरोंको हर्षित करने और दुःखोंसे पृथक् रखने बाळा "यः स्वापयति स देवः" जो प्रलय समय अव्यक्तमें सब **जीवोंको** सुलाता "यः कामयते काम्यते वा स देवः" जिसके सब सत्य काम और जिसकी प्राप्तिकी कामना सब शिष्ट करते हैं तथा "यो गच्छति गम्यते वा स देवः" जो सबमें व्याप्त और जाननेके योग्य हैं इससे उस परमेश्वरका नाम "देव" है।

(कुवि आच्छादने) इस धातुसे "कुवेर" शब्द सिद्ध होता है। "वः सर्व कुवित खन्याप्याच्छादयति स कुवेरो जगदीश्वरः" जो अपनी ज्याप्तिसे सबका आच्छादन करे इससे उस परमेश्वरका नाम "कुवेर" है। ( प्रथ विस्तारे ) इस धातुसे "पृथिवी" शब्द सिद्ध होता है "यः प्रथते सर्वजगद्विस्तृणाति स पृथिवी" जो सब विस्तृत जगत्का विस्तार करनेवाला है इसलिये उस परमेश्वरका नाम पृथिवी है।

(जल घातने) इस धातुसे "जलें शब्द सिद्ध होता है "जलित धातयित दुष्टान्, संघातयित—अन्यक्तपरमाण्वादीन् तद् ब्रह्म जल्रम्" जो दुष्टोंका ताड़न और अन्यक्त तथा परमाणुओंका अन्योऽन्य संयोग वा वियोग करता है वह परमात्मा "जलें संज्ञक कहाता है।

(काश्व दीप्तों) इस धातुसे "आकाश" शब्द सिद्ध होता है, "यः सर्वतः सर्व जगत् प्रकाशयित स आकाशः" जो सब ओरसे जगत्का प्रकाशक है इसिल्प्ये उस परमात्माका नाम "आकाश" है।

( अद भक्षणे ) इस धातुसे "अन्न" शब्द सिद्ध होता है।

अद्यतेऽति च भूतानि तस्मादन्नं तदुच्यते॥१॥ अहमन्नमहमन्नमहमन्नम्। अहमन्नादोहमन्नादो-हमन्नादः॥२॥तैत्ति०उपनि०[अनुवाक २।१०] अत्ताचराचरग्रहणात् [वेदान्तदर्शने अ०१।पा० २।सू०६]

यह व्यासमुनि कृत शारीरिक सूत्र है। जो सबको भीतर रखने वा सबको प्रहण करने योग्य, चराचर जगत्का प्रहण करनेवाला है, इससे ईश्वरके "अन्न" "अन्नाद" और "अत्ता" नाम हैं। और जो इसमें तीन वार पाठ है सो आदरके लिये है। जैसे मृलरके फल्में कृमि उत्पन्न होके उसीमें रहते और नष्ट होजाते हैं वैसे ही परमेश्वरके बीचमें सब जगत्की अवस्था है।

(क्स निकासे) इस धातुसे "क्सु" शब्द सिद्ध हुआ है। "वसन्ति भूतानि यस्मिन्नथका यः सर्वेषु भूतेषु क्सति स वसुरीश्वरः" जिसमें सब आकाशादि भूत वसते हैं और जो सक्में वास कर रहा है इसलिये उस परमेश्वरका नाम "वसु" है।

(रुदिर् अश्वविमोचने) इस धातुसे "णिच्" प्रत्यय होनेसे "रुद्र" शब्द सिद्ध होता है। "यो रोदयत्यन्यायकारिणो जनान् स-रुद्रः" जो दुष्ट कर्म करनेहारोंको रुलाता है इससे उस परमेश्वरका नाम "रुद्र" है।

### यन्मनसा ध्यायति तद्वाचा वदति यद्वाचा वदति तत् कर्मणा करोति यत् कर्मणा करोति तदभिसम्पद्यते॥

यह यजुर्वेदके ब्राह्मणका वचन है। जीव जिसका मनसे ध्यान करता उसको वाणीसे बोलता, जिसको वाणीसे बोलता उसको कर्मसे करता, जिसको कर्मसे करता उसीको प्राप्त होता है। इससे क्या सिद्ध हुआ कि जो जीव जैसा कर्म करता है वैसाही फल पाता है। जब दुष्ट कर्म करनेवाले जीव ईश्वरकी न्यायरूपी व्यवस्थासे दुःखरूप फल पाते तब रोते हैं और इसी प्रकार ईश्वर उनको रुलाता है, इस-लिये परमेश्वरका नाम "रुद्र" है।

### आपो नारा इति घोक्ता आपो वै नर सूनवः। ता यदस्यायनं पूर्व तेन नारायणः स्मृतः॥

मनु• [अ• १ रहोक १०]

जल और जीवोंका नाम नारा है वे अयन अर्थात् निवासस्थान हैं जिसका इसलिये सब जीवोंमें व्यापक परमात्माका नाम "नारायण" है।

(चिद् आह्वादे) इस धातुसे "चन्द्र" शब्द सिद्ध होता है। "य-इचन्द्रित चन्द्रयति वा स चन्द्रः" जो आनन्द्स्वरूप और सबको जानन्द् देनेवाला है इसल्यि ईश्वरका नाम "चन्द्र" है।

(मिंग गत्यर्थक ) धातुसे "मङ्गोरलच्" इस सूत्रसे "मङ्गल्" शृद्ध सिद्ध होता है। "यो मङ्गति मङ्गयति वा स मङ्गलः" जो आप मङ्गलः स्वरूप और सब जीवोंके मङ्गलका कारण है इसल्पिये उस परमेश्वरका नाम "मङ्गल" है।

( बुध अवगमने ) इस धातुसे "बुध" शब्द सिद्ध होता है। "यो बुध्यते बोधयति वा स बुधः" जो स्वयं बोधस्वरूप और सब जीवेंकि बोधका कारण है इसिछिये उस परमेश्वरका नाम "बुध" है। "बृहस्पति" शब्दका अर्थ कह दिया।

(ईशुचिर् पूतीभावे) इस धातुसे "शुक्र" राब्द सिद्ध हुआ है। "यः शुच्यित शोचयित वा स शुक्रः" जो अयन्त पवित्र और जिसके सक्कसे जीव भी पवित्र हो जाता है इसिलये ईश्वरका नाम "शुक्र" है।

(चर गतिभक्षणयोः) इस घातुसे "शनैस्" अव्यय उपपद होनेसे "शनैश्चर" शब्द सिद्ध हुआ है। "यः शनैश्चरति स शनैश्चरः" जो सबमें सहजसे प्राप्त धैर्यवान् है इससे उस परमेश्वरका नाम "शनैश्चर" है।

(रह त्यागे) इस धातुसे "राहु" शब्द सिद्ध होता है। "यो रहिति किस्त्यजित दुष्टान राहयित त्याजयित वा स राहुरीश्वरः" जो एकान्कः स्वरूप जिसके स्वरूपमें दूसरा पदार्थ संयुक्त नहीं हो दुष्टोंको छोड़ने और अन्यको ह्युड़ाने हारा है इससे परमेश्वरका नाम "राहु" है।

(कित निवास रोगापनयने च) इस धातुसे "केतु" शब्द सिद्धः होता है "यः केतयति चिकित्सित वा स केतुरीश्वरः" जो सब जगत्काः निवासस्थान सब रोगोंसे रहित और मुमुक्षुओंको मुक्ति समयमें सकः रोगोंसे हुड़ाता है इसल्यि उस परमात्माका नाम "केतु" है।

(यज देवपूजासङ्कृतिकरणदानेषु) इस धातुसे "यज्ञ" शब्द सिद्ध होता है। "यज्ञो वे विष्णुः" यह ब्राह्मणप्रन्थका वचन है। "यो यजिति विद्धितिरुयते वा स यज्ञः" जो सब जगतके पदार्थोंको संयुक्त करता स्मीर सब विद्वानोंका पूज्य है स्मीर ब्रह्मासे छे के सब ऋषि मुनियोंका पूज्य था, है स्मीर होगा इससे उस परमात्माका नाम "यज्ञ" है क्योंकि वह सर्वत्र व्यापक है।

(हु दानाऽदनयोः, भादाने चेत्येके ) इस धातुसे "होता" शब्द सिद्ध हुआ है "यो जुहोति स होता" जो जीवोंको देने योग्य पदार्थोंका दाता और म्रहण करने योग्योंका माहक है इससे उस ईश्वरका नाम "होता" है।

(बन्ध बन्धने) इससे "बन्धु" शब्द सिद्ध होता है "यः स्वस्मिन चराचरं जगद्बध्नाति बन्धुबद्धर्मात्मानां सुखाय सहायो वा वर्तते स बन्धुः" जिसने अपनेमें सब लोकलोकान्तरोंको नियमोंसे बहु कर रक्तवे और सहोदरके समान सहायक है इसीसे अपनी २ परिधि वा नियमका उल्लंघन नहीं कर सकते। जैसे श्राता भाइयोंका सहायकारी होता है वैसे परमेश्वर भी पृथिव्यादि लोकोंके धारण रक्षण और सुख देनेसे "बन्धु" संज्ञक है।

(पा रक्षणे) इस थातुसे "पिता" शब्द सिद्ध हुआ है। यः पाति सर्वान् स पिता" जो सबका रक्षक जैसे पिता अपने सन्तानों पर सदा कृपालु होकर उनकी उन्नति चाहता है बैसेही परमेश्वर सब जीवोंकी उन्नति चाहता है इससे उसका नाम "पिता" है। "यः पित्वणां पिता स पितामहः" जो पिताओंका भी पिता है इससे उस परमेश्वरका नाम "पितामहः" जो पिताओंका नाम "पितामहः" जो पिताओंके पितरोंका पिता है इससे परमेश्वरका नाम "क्षपितामहः" है।

"यो मिमीते मानयति सर्वाञ्जीकन स माता" जैसे पूर्णकृपायुक्त जननी अपने सन्तानोंका सुख और उन्नति चाहती है वैसे परमेश्वर भी सब जीवोंकी बढ़ती चाहता है इससे परमेश्वरका नाम "माता" है।

(चर गतिभक्षणयोः) आङ् पूर्वक इस धातुसे "आचार्य्य" शब्द सिद्ध होता है "य आचारं प्राह्मयित सर्वा विद्या बोधयित स आचार्य्य ईखरः" जो सत्य आचारका प्रहण करानेहारा खोर सब विद्याओंकी प्राप्तिका हेतु होके सब विद्या प्राप्त कराता है इससे **परवेशकरका नाम** "आचार्य" है।

(गृ शब्दे ) इस धातुसे "गुरु" सन्द बना है। "यो धम्बांच

शब्दान् गृणात्युपदिशति स गुरुः" ॥

#### स पूर्वेषामपि गुरुः काछेनानवच्छेदात्॥ योग स्र०। समाधिपादे स्र० २६॥

यह योगसूत्र है। जो सत्यध्मंप्रतिपादक, सकल विद्यायुक्त वेदोंका उपदेश करता, सृष्टिकी आदिमें अग्नि, वायु, आदित्य, अङ्किरा और ब्रह्मादि गुरुओंका भी गुरु ब्येर जिसका नाश कभी नहीं होता इसलिये उस परमेश्वरका नाम "गुरु" है।

(अज गतिक्षेपणयोः, जनी प्रादुर्भावे) इन धातुओंसे "अज" शब्द बनता है "योऽजित सृष्टि प्रति सर्वान् प्रकृत्यादीन् पदार्थान् प्रिक्षिपति जानाति वा कड़ाचित्र जायते सोऽजः" जो सब प्रकृतिके अवयव आकाशादि भूत परमाणुओंको यथायोग्य मिछाता शरीरके साथ जीवोंका सम्बन्ध करके जन्म देता और स्वयं कभी जन्म नहीं होता इससे उस ईश्वरका नाम "अज" है।

(बृह बृहि वृद्धे) इन धातुओंसे "ब्रह्मा" शब्द सिद्ध होता है "योऽखिल जगनिनर्माणेन बृहित बर्द्धयित स ब्रह्मा" जो सम्पूर्ण जगत् को रचके बढ़ाता है इसिलये परमेश्वरका नाम "ब्रह्मा" है।

"सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" यह तैत्तिरीयोपनिषद्का वचन है
"सन्तीति सन्तस्तेषु सत्सु साधु तत्सत्यम्। यज्जानाति चराऽचरं
जगत्तज्ज्ञानम्। न विद्यतेऽन्तोऽविधिमयादा यस्य तदनन्तम्। सर्वेभ्यो
बृहत्वाद् ब्रह्म" जो पदार्थ हो उनको सत् कहते हैं उनमें साधु होनेसे
परमेश्वरका नाम सत्य है। जो सब जगत्का जाननेवाला है इससे
परमेश्वरका नाम "ज्ञ न" है। जिसका अन्त अविध मर्यादा अर्थात्
इतना लम्बा, चौड़ा, छोटा, बड़ा है ऐसा परिमाण नहीं है इसल्बि
परमेश्वरका नाम "अनन्त" है।

(ड्राष्ट् दाने ) आङ्पूर्वक इस धतुसे "आदि" शब्द और नष्ट्पूर्वक "अनादि" शब्द सिद्ध होता है। "यस्मात् पूर्व नास्ति परं चास्ति स झादिरित्युच्यते [महाभाष्य १।१।२१] न विद्यते आदि कारण यस्य सोऽनादिरीरवरः" जिसके पूर्व कुछ न हो और परे हो, उसको आदि कहते हैं। जिसका आदिकारण कोई भी नहीं है इसिंख्ये परमेश्वरका नाम अनादि है।

( टुनिंद समृद्धी ) आङ्पूर्वक इस धातुसे "आनन्द" शब्द बनता है "आनन्दन्ति सर्वे मुक्ता यस्मिन यद्वा यः सर्वाश्वोवानानन्दयित स आनन्दः" जो आनन्दस्वरूप जिसमें सब मुक्त जीव आनन्दको प्राप्त होते और जो सब धर्मात्मा जीवोंको आनन्दयुक्त करता है इससे ईश्वरका नाम "आनन्द" है।

(अस मुिव) इस धातुसे "सन्" शब्द सिद्ध होता है "यदस्ति विषु कालेषु न बाध्यते सत्सद् ब्रह्म" जो सद्दा वर्तमान अर्थात् भूत, भविष्यत्, वर्तामान कालोंमें जिसका काथ न हो उस परमेश्वरको "सन्" कहते हैं।

(चिती संज्ञाने) इस धातुले "चित्" राब्द सिद्ध होता है। "यश्चेतित चेतयित संज्ञापयित सर्जान् सज्जनान् योगिनस्ति चितपरं ब्रह्म" जो चेतनस्वरूप सब जीवोंको चिताने ओर सज्ञाऽसत्यका जनानेहारा है इसिलये उस परमात्माका नाम "चित्" है, इन तीनों शब्दोंके विशे-षण होनेसे परमेश्वरको "सच्चिदानन्दस्वरूप" कइते हैं।

"यो नित्यध्वोऽचलोऽविनाशी स नित्यः"। जो निश्चल अविनाशी है सो नित्य शब्दवाच्य ईरवर है।

( गुन्थ गुद्धों ) इससे "ग्रुद्ध" शब्द सिद्ध होता है। "यः ग्रुन्थित सर्वान् शोधयित वा स ग्रुद्ध ईश्वरः" जो स्वयं पवित्र सब अग्रुद्धियोंसे पृथक् और सबको ग्रुद्ध करने वाला है इससे उस ईश्वरका नाम "ग्रुद्ध" है।

( बुध अवगमने ) इस धातुसे "क" प्रत्यय होनेसे "बुद्ध" शब्द सिद्ध होता है। "यो बुद्धवान् सदैव झाताऽस्ति स बुद्धो जगदीश्वरः" को सदा सबको जाननेहारा है इसते ईश्वरका नाम "बुद्ध" है। ( मुच्ल मोचने ) इस धातुसे "मुक्त" सब्द सिद्ध होता है "यो मुश्चित मोचयित वा मुमुक्षूत स मुक्तो जगदीश्वरः" जो सर्वदा समुद्धियोंसे अलग और सब मुमुक्षुओंको क्लेशसे हुड़ा देता है इसिल्ये परमात्माका नाम "मुक्त" है। "अतएव नित्यग्रुद्धबुद्धमुक्तस्वभावो जगदीश्वरः" इसी कारणसे परमेश्वरका स्वभाव नित्य ग्रुद्ध [ बुद्ध ] मुक्त है।

"निर् और आड् पूर्वक (डुक्क्व् करणे) इस धातुसे "निराकार" शब्द सिद्ध होता है। "निर्गत आकारात्स निराकार" जिसका आकार कोई भी नहीं और न कभी शरीर धारण करता है इसिंख्यें परमेश्वरका नाम "निराकार" है।

(अञ्जू व्यक्तिम्लक्षणकान्तिगतिषु) इस धातुसे "अजन" शब्द और निर् उपसंगके योगसे "निरजन" शब्द सिद्ध होता है "अजनं व्यक्तिम्लक्षणं कुकाम इन्द्रियेः प्राप्तिश्चेत्यस्माद्यो निर्गतः पृथग्भूताः स निरजनः" जो व्यक्ति अर्थात् आकृति, म्लेच्छाचार, दुष्टकामना और चक्षुरादि इन्द्रियोंके विषयोंके पथसे पृथ्क है इससे ईश्वरका नाम "निरजन" है।

(गण संख्याने) इस धातुसे "गण" शब्द सिद्ध होता और इसके आगे "ईश" वा "पति" शब्द रखनेसे "गणेश" और "गणपित" शब्द सिद्ध होते हैं। "ये प्रकृत्याद्यो जड़ा जीवाश्च गण्यन्ते संख्यायन्ते तेषामीशः स्वामी पतिः पालको वा" जो प्रकृत्यादि जड़ और सब जीव प्रख्यात पदार्थोका स्वामी वा पालन करनेहारा है इससे उस ईश्वरका नाम "गणेश" वा "गणपित" है।

"यो विश्वमीष्टे स विश्वेश्वरः" जो संसारका अधिष्ठाता है इससे इस परमेश्वरका नाम "विश्वेश्वर" है।

"यः कूटेऽनेकविधव्यवहारे स्वस्वरूपेणैव तिष्ठति स कूटस्थः परमेश्वरः" जो सब व्यवहारोंमें व्याप्त और सब व्यवहारोंका आधार होके भी किसी व्यवहारमें अपने स्वरूपको नहीं बद्दलता इससे परमेश्वरका नाम "कूटस्थ" है। जितने "देव" शब्दके अर्थ लिखे हैं खतने "देवी" शब्दके भी हैं। परमेश्वरके तीनों लिङ्कोंमें नाम है जैसे—

"ब्रह्म चितिरीश्वश्चेति" जब ईश्वरका विशेषण होगा तब "देव" जब चितिका होगा तब "देवी" इससे ईश्वरका नाम "देवी" है।

( शक्लृ शक्तों ) इस धातुसे "शक्ति" शब्द बनता है "यः सर्वे जगत् कर्तुं शक्नोति स शक्तिः" जो सब जगत्के बनानेमें समर्थ है इसलिये उस परमेश्वरका नाम "शक्ति" है।

(श्रिञ् सेवायाम्) इस धातुसे "श्री" शब्द सिद्ध होता है। "यः श्रीयते सेव्यते सर्वेण जगता विद्वद्भियोगिभिश्च स श्रीरीश्वरः" जिसका सेवन सब जगत् विद्वान् और योगीजन करते हैं उस परमात्माका नाम "श्री" है।

(लक्ष दर्शनाङ्कनयोः) इस धातुसे "लक्ष्मी" शब्द सिद्ध होता है "यो लक्ष्यित परयत्यङ्कते चिह्नयित चराचरं जगद्यवा वेदैगान्तैयोंगि-भिन्न यो लक्ष्यते सलक्ष्मीः सर्वप्रियेरवरः" जो सब चराचर जगत्को देखता चिह्नित अर्थात् दृश्य बनाताः जैसे शरीके नेत्र, नासिका और कृष्के पत्र, पुष्प, पत्ल, मूल, पृथिवी, जलके कृष्ण, रक्त, श्वेत, मृत्तिका, पाषाण, चद्र, सूर्य्यादि चिह्न बनाताः, तथा सबको देखताः, सब शोभा-आंक्षी श्रोभा और जो वेदादि शास्त्र वा धार्मिक विद्वान् योगियोंका लक्ष्य अर्थात् देखने योग्य है इससे उस परमेश्वरका नाम "लक्ष्मी" है।

(सृ गतौ) इस धातुसे "सरस्" उससे मतुष् और डीप् प्रत्यय होनेसे "सरखती" शब्द सिद्ध होता है, "सरो विविध ज्ञानं विद्यते यस्यां चितौ सा सरखती" जिसको विविध विज्ञान अर्थात् शब्द अर्थ सम्बन्ध प्रयोगका ज्ञान यथावत् होवे इससे उस परमेश्वरका नाम "सरखती" है।

"सर्वाः शक्तयो विद्यन्ते यस्मिन् स सर्वशक्तिमानीश्वरः" जो अपने कांग्र करनेमें किसी अन्यकी सहायताकी इच्छा नहीं करता, अपने ही सामर्थ्यसे अपने सब काम पूरा करता है इसिल्ये उस पर-मात्माका नाम "सर्वशक्तिमान" है।

(णीक् प्रापणे) इस धातुसे 'न्याय' शब्द सिद्ध होता है। प्रमाणे-रर्धपरीक्षणं न्यायः" यह वचन न्यायसूत्रोंपर वात्स्यायमुनिकृत भाष्य-का है। "पक्षपातराहित्याचरणं न्यायः" जो प्रत्यक्षादि प्रमाणोंकी परीक्षासे सत्य २ सिद्ध हो तथा पक्षपात रहित धर्मरूप आचरण है वह न्याय कहाता है। "न्यायं कर्तुं शील्प्रस्य स न्यायकारीश्वरः" जिसका न्याय अर्थात् पक्षपातरहित धर्म करने ही का खभाव है इससे उस ईश्वरका नाम "न्यायकारी" है।

ं (दय दानगितरक्षणिहिंसादानेषु ) इस धातुसे "दया" शब्द सिद्ध होता है। "दयते ददाति जानाित गच्छिति रक्षिति हिनस्ति यया सा दया बह्वी दया विद्यते यस्य स दयाद्वः परमेश्वरः" जो अभयका दाता सत्याऽसत्य सर्व विद्याओंको जानने, सब सञ्जनोंकी रक्षा करने और दुष्टोंको यथायोग्य दण्ड देनेवाला है इससे परमात्माका नाम "दयालु" है।

'द्वयोभींबो द्वाभ्यामितं सा द्विता द्वीतं वा सैव तदेव वा दैतम्, न बिद्यते द्वैतं द्वितीयेश्वरभावो यस्मिस्तद्द्वैतम्" अर्थात् "सजातीयविजा-लियस्वातभेदशून्यं ब्रह्म" दो का होना वा दोनोंसे युक्त होना वह द्विता बा द्वीत अथवा द्वैत इससे जो रहित है सजातीय जैस मनुष्यका सजा-लीय दूसरा मनुष्य होता है, विजातीय जैसे मनुष्यसे भिन्न जातिवाला श्रृक्ष, पाषाणादि, स्वगत बर्थान् शारीरमें जैसे आंख, नाक, कान आदि अवयवोंका भेद है वैसे दूसरे रबजातीय ईश्वर, विजातीय ईश्वर वा अपने आत्मामें तस्त्वान्तर वस्तुओंसे रहित एक परमेश्वर है इससे परमात्माका नाम "अदैत" है।

"मण्यन्ते ये ते गुणा वा वैर्गणयन्ति ते गुणाः, यो गुणान्यो निगतः स्न निर्गुण ईश्वरः" जितने सत्व, रज, तम, रूप, रस, स्परं, गन्धादि जड़के गुण, अविद्या, अल्पञ्चता, राग, द्वेष और अविद्यादि क्छेश

जीवके गुण हैं उनसे जो पृथक् है, इसमें "अशब्दमस्पर्शमरूपमन्ययम्" इत्यादि उपनिषदोंका प्रमाण है। जो शब्द, स्पर्श, रूपादि गुणरहित है. इससे परमात्माका नाम "निंगुण" है।

"यो गुणैः सह वर्ताते म सगुणः" जो सबका ज्ञान सर्वसुख पिनप्रता अनन्त बलादि गुणोंसे युक्त है इसलिये परमेश्वरका नाम "सगुण?"
है। जैसे पृथिवी गन्धादि गुणोंसे "सगुण" और इच्छादि गुणोंसे रिहत होनेसे "निर्गुण" और सर्वज्ञादि गुणोंसे जीवके गुणोंसे पृथक् होनेसे परमेश्वर "निर्गुण" और सर्वज्ञादि गुणोंसे सिहत होनेसे "सगुण" है। अर्थान् ऐसा कोई भी पदार्थ नहीं है जो सगुणता और निर्गुणनासे पृथक् हो। जैसे चेतनके गुणोंसे पृथक् होनेसे जड़ पदार्थ निर्गुण और अपने गुणोंसे सिहत होनेसे सगुण वैसे ही जड़के गुणोंसे पृथक् होनेसे जीव निर्गुण और इच्छादि अपने गुणोंसे सिहत होनेसे सगुण। ऐसे ही परमेश्वरमें भी सममना चाहिये।

'अन्तर्यन्तुं नियन्तुं शीलं यस्य सोऽयमन्तर्यामी" जो सब प्राणि और अत्राणिरूप जगत्के भीतर न्यापक होके सबका नियम करता है. इसलिये उस परमेश्वरका नाम "अन्तर्यामी" है।

'यो थर्मे राजते स धर्मराजः" जो धर्म ही में प्रकाशमान और अधर्मसे रहित धर्म ही का प्रकाश करता है इसल्यि उस परमेश्वरका नाम "धर्म्मराज" है।

(यमु उपरमे) इस धातुसे "यम" शब्द सिद्ध होता है। "यः सर्वान् प्राणिनो नियच्छति स यमः" जो सब प्राणियोंके कर्मफळ देनेकीः व्यवस्था करता और सब अन्यायोंसे पृथक् रहता है इसिळ्ये परमात्मा का नाम "यम" है।

(भज सेवायाम्) इस धातुसे "भग" इससे मतुष् होनेसे "भग-वान्" शब्द सिद्ध होता है। "भगः सक्छेश्वर्थ्य सेवनं वा विद्यते यस्यः स भगवान्" जो समप्र ऐर्ध्यसे युक्त वा भजनेके योग्य है इसीछियेः उस ईश्वरका नाम "भगवान्" है। ं ( मन ज्ञाने ) धातुसे "मनु" शब्द बनता है । "यो मन्यते स मनुः" जो मनु अर्थात् विज्ञानशील और मानने योग्य है इसलिये उस ईश्वरका नाम "मनु" है ।

(पू पालनपूरणयोः) इस घातुसे "पुरुष" शब्द सिद्ध हुआ है। "यः सक्याप्या चराऽचरं जगत् गृणाति पूरयति वा स पुरुषः" जो सब जगतमें पूर्ण हो रहा है इसिलये उस परमेश्वरका नाम "पुरुष" है।

( डुभ्रेच् धारणपोषणयोः ) "विश्व" पूर्वक इस धातुसे "विश्वम्मर" शब्द सिद्ध होता है। "यो विश्वं विभर्ति धरति पुष्णाति वा स विश्वम्मरो जगदीश्वरः" जो जगत्का धारण और पोषण करता है इसिल्ये उस परमेश्वरका नाम "विश्वम्भर" है।

( कल संख्याने ) इस धातुसे "काल" शब्द बना है। "कलयति संख्याति सर्वान् पदार्थान् स कालः" जो जगत्के सब पदार्थ और जीवोंकी संख्या करता है इसलिये उस परमेश्वरका नाम "काल" है।

(शिष्लृ विशेषणे ) इस धातुसे "शेष" शब्द सिद्ध होता है। "यर शिष्यते स शेषः" जो उत्पत्ति और प्रलयसे शेष अर्थात् बच रहा है इसिलिये उस परमात्माका नाम "शेष" है।

(आप्कृ व्याप्तौ) इस धातुसे "आप्त" शब्द सिद्ध होता है। "यः सर्वान् धर्मात्मन आप्नोति वा सर्वेधर्मात्मिभराप्यते छलादिरहितः स आप्तः" जो सत्योपदेशक सकल विद्यायुक्त सब धर्मात्माओंको प्राप्त होता और धर्मात्माओंको प्राप्त होता और धर्मात्माओंको प्राप्त होते योग्य छल कपटादिसे रहित है इसलिये उस परमात्माका नाम "आप्त" है।

( डुक्रच् करणे ) "शम्" पूर्वक इस घातुसे "शङ्कर" शब्द सिद्ध हुआ है । "यः शङ्कल्याण सुख करोति स शङ्करः" जो कल्याण अर्थात् सुखका करनेहारा है इससे उस ईश्वरका नाम "शङ्कर" है ।

"महत्" शब्द पूर्वक "देव" शब्दसे "महादेव" शब्द सिद्ध होता है। "यो महता देवः स महादेवः" जो महान् देवोंका देव अर्थात् विद्वानोंका भी विद्वान्, सूर्यादि पदार्थोका प्रकाशक दे इसलिये उस परमातमाका नाम "महादेव" है।

( प्रीच् तपंणे कान्तौ च ) इस धातुसे "प्रिय" शब्द सिद्ध होता है। "यः गृगाति प्रीयते वा सं प्रियः" जो सब धर्मात्माओं, मुमुक्कुओं और शिष्टोंको प्रसन्न करता और सबको कामनाके योग्य है इसिल्ये उस ईश्वरका नाम "प्रिय" है

(भू सत्तायाम्) "स्वयं" पूर्वक इस धातुसे "स्वयम्भू" शब्द सिद्व होता है। "यः स्वयं भवति स स्वयम्भूरीश्वरः" जो आपसे आप ही है किसीसे कभी उत्पन्न नहीं हुआ है इससे उस परमात्माका नामः "स्वयम्भू" है।

(कु शब्दे) इस धातुसे "कवि" शब्द सिद्ध होता है। "यः कौति शब्दयित सर्वा विद्या स कविरीश्वरः" जो वेदद्वारा सब विद्याओंका उपदेश और वेत्ता है इसलिये उस परमेश्वरका नाम "कवि" है।

्र (शिवु कल्याणे ) इसधातुसे "शिव" शब्द सिद्ध होता है। "बहु-लमेनिनवर्शनम्" इससे शिवु धातु माना जाता है, जो कल्याणस्वरूप और कल्याणका करनेहारा है इसलिये उस परमेश्वरका नाम "शिव" है।।

ये सो नाम परमेश्वरके लिखे हैं। परन्तु इनसे भिन्न परमात्माके असंख्य नाम हैं। क्योंकि जैसे परमेश्वरके अनन्त गुण, कर्म, स्वभाव हैं वैसेही उसके अनन्त नाम भी हैं। उनमेंसे प्रत्येक गुण कर्म और स्वभावका एक २ नाम है। इससे ये मेरे लिखे नाम समुद्रके सामने विन्दुवत् हैं, क्योंकि वेदादि शास्त्रोंमें परमात्माके असंख्य गुण कर्म स्वभाव व्याख्यात किये हैं। उनके पढ़ने पढ़ानेसे बोध हो सकता है और अन्य पदार्थोंका ज्ञान भी उन्हींको पूरा २ हो सकता है जो वेदादि शास्त्रोंको पढ़ते हैं॥

प्रश्त—जैसे अन्य प्रन्थकार लोग आदि, मध्य और अन्तमें मङ्गलाचरण करते हैं वैसे आपने कुछ भी न लिखा न किया १

उत्तर-ऐसा इमको करना योग्य नहीं क्योंकि जो आदि, मध्य

स्रोर अन्तमें मङ्गल करेगा तो उसके प्रन्थमें आदि मध्य तथा अन्तके बीचमें जो दुछ लेख होगा वह अमङ्गलही रहेगा, इसलिये "मङ्गला-चंरणं शिष्टाचारात फल्रदर्शनाच्छ्र तितरचेति" यह सांख्यशास्त्र [ अ० ६ । सू० १ ] का वचन है । इसका यह अभिप्राय है कि जो न्याय, पक्षपातरहित, सत्य वेदोक्त ईश्वरकी आज्ञा है उसीका यथावत् सर्वत्र और सदा आचरण करना मङ्गलाचरण कहाता है । प्रन्थके आरम्भसे लेके समाप्तिपर्यन्त सत्याचारका करनाही मङ्गलाचरण है, न कि कहीं मङ्गल और कहीं अमङ्गल लिखना । देखिये महाशय महर्षियोंके लेखको—

#### यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि नो इतराणि ॥

यह तैत्तिरीयोपनिषद् [ प्रपाठक ७। अनु० ११ ] का वचन है। हे सन्तानो ! जो "अनवध" अनिन्दनीय अर्थात् धर्मयुक्त कर्म हैं वे ही तुमको करने योग्य हैं अर्धमयुक्त नहीं । इसिलये जो आधुनिक अन्थोंमें "श्रीगणेशाय नमः" "सीतारामाभ्यां नमः" "राधाकृष्णाभ्यां नमः" "श्रीगुरुचरणारविन्दाभ्यां नमः" "हनुमते नमः" "तुर्गाये नमः" "बदुकाय नमः" "भैरवाय नमः" "शिवाय नमः" "सरस्वत्ये नमः" "नारायणाय नमः" इत्यादि लेख देखतेमें आते हैं इनको बुद्धिमान् लोग वेद और शास्त्रोंसे विरुद्ध होनेसे मिथ्याही समम्को हैं, क्योंकि वेद , और श्रृष्योंके अन्थोंमें कही ऐसा मङ्गलाचरण देखनेमें नहीं आता और आर्षप्रन्थोंमें "ओ३म्" तथा "अथ" शब्द तो देखनेमें आते हैं। देखो—

"अथ राज्दानुशासनम्" अथेत्ययं राज्दोऽ-धिकारार्थः प्रयुज्यते । इति ज्याकरणमहाभाष्ये ॥ "अथातो धर्मजिज्ञासा" अथेत्यानन्तर्ये वेदाध्यय- नानन्तरम् । इति पूर्वमीमांसायाम् ॥ "अथातो धर्मं व्याख्यास्यामः" अथेति धर्मकथनानन्तरं धर्मलक्षणं विद्योषेण व्याख्यास्यामः । वैद्योषिकदर्शने ॥ "अथ योगानुद्यासनम्" अथेत्ययमधिकारार्थः । योगद्यास्त्रो ॥ "अथ त्रिविधदुःखात्यन्तिनवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः" सांसारिकविषयभोगानन्तरं त्रिविधदुःखात्यन्तिनवृत्त्यर्थः प्रयत्नः कर्त्तव्यः । सांख्यद्यास्त्रो ॥ "अथातो ब्रह्मजिज्ञासा" । "चतुष्ट्यसाधनसम्पत्त्यनन्तरं ब्रह्म जिज्ञास्यम्" । इदं वेदान्तस्त्रत्रम् ॥ "ओमित्येतद्क्षरसुद्गीथसुपासीत"। इदं छान्दोग्योपनिषद्व-चनम् ॥ "ओमित्येतद्क्षरमिद्धं सर्वं तस्योपव्याख्यानम्" इदं च माण्ड्रस्योपनिषद्ववचनम् ॥

ऐसेही अन्य ऋषि मुनियोंके प्रन्थोंमें "ओइम्" और "अथ" राब्द लिखे हैं बैसेही (अग्नि इट् अग्नि, ये त्रिपप्ताः परियन्ति ) ये राब्द चारों वेदोंके आदिमें लिखे हैं। "श्रीगणेशाय नमः" इत्यादि शब्द कहीं नहीं। और जो बैदिक लोग वेदके आरम्भमें "हिरः ओइम्" लिखते और पढ़ते हैं यह पौराणिक और तान्त्रिक लोगोंकी मिथ्या कल्पनासे सीखे हैं। वेदादि शास्त्रोंमें "हिरि" शब्द आदिमें कहीं नहीं। इसलिये "ओइम्" वा "अथ" शब्द ही प्रन्थके आदिमें लिखना चाहिये। यह कि विनमात्र ईरवरके विषयमें लिखा इसके आगे शिक्षाके विषयमें लिखा जायगा॥

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे सुभाषाविभूषित ईश्वरनामविषये प्रथमः समुहासः सम्पूर्णः ॥

# कृष्ट्राच्या स्थान स्था स्थान स्थान

#### अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामः

#### मातृमान् पितृमानाचार्यवान् पुरुषो वेद ।

यह शतपथ ब्राह्मणका वचन है। वस्तुतः जब तीन उत्तम शिक्षक अर्थात एक माता, दूसरा पिता और तीसरा आचार्य होवे तभी मनुष्य ज्ञानवान् होता है। वह कुछ धन्य! वह सन्तान बड़ा भाग्यवान्! जिसके माना और पिता धार्मिक विद्वान् हों। जितना मातासे सन्तान्नोंको उपदेश और उपकार पहुंचता है उतना किसीसे नहीं। जसे माता मन्तानों पर प्रेम [और] उनका हित करना चाहती है उतना अन्य कोई नहीं करता, इसिछिये (मानुमान्) अर्थात् "प्रशस्ता धार्मिकी माता विद्यते यस्य स मानुमान्" धन्य वह माता है कि जो गर्भाधानसे छेकर जबतक पूरी विद्या न हो तबतक सुशीछताका उपदेश करे।।

माता और पिताको अति उचित है कि गर्भाधानके पूर्व, मध्य और पश्चान् मादक द्रव्य, मद्य, दुर्गन्य, रूक्ष, वुद्धिनाशक पदार्थोको छोड़के जो शान्ति, आरोग्य, बल बुद्धि, पराक्रम और सुशीलतासे सम्यताको प्राप्त कर बैसे घृत, दुग्ध, मिष्ट, अज्ञपान अदि श्रेष्ठ पदार्थोका सेवन करें कि जिससे रजस् बीर्च्य भी दोषोंसे रहित होकर अत्युक्तम गुणयुक्त हों। जैसा अनुगमनका विधि अर्थात् रजोदर्शनके पांचवें दिवससे लेकर सोलड्वें दिवस तक अनुदान देनेका समय है उन दिनोंमें से प्रथमके चार दिन त्याज्य हैं, रहे १२ दिन उनमें एकादशी और अयोदशीको छोड़के बाक़ी १० राजियोंमें गर्भाधान करना उक्तम है। और रजोदर्शनके दिनसे ले के १६ वीं राजिके पश्चात् न समागम करना। पुनः जबतक अनुदुदानका समय पूर्वोक्त न आवे तबतक और

गंभस्थितिके पश्चात् एक वर्ण तक संयुक्त न हों। जब दोनोंके शरीरमें आरोग्य, परस्पर प्रसन्नता, किसी प्रकारका शोक न हो। जैसा चरक और सुश्चतमें भोजन छादनका विधान और मनुस्मृतिमें रत्रो पुरुषकी प्रसन्नताकी रीति लिखी है उसी प्रकार करें और वर्ते। गर्भाधानके पश्चात् स्त्रीको बहुत सावधानीसे भोजन छादन करना चाहिये। पश्चात् एक वर्ष पर्यन्त स्त्री पुरुषका सङ्ग न करे। बुद्धि, बल, रूप, आरोग्य, पराक्रम, शान्ति आदि गुणकारक द्रव्योहीका सेवन स्त्री करती रहे कि जबतक सन्तानका जन्म न हो।

जब जन्म हो तब अच्छे सुगन्धियुक्त जलसे बालुक को स्तान, नाड़िछेदन करके सुगन्धियुक्त वृतादिके होम \* और खीके भी स्तान भोजनका यथायोग्य प्रबन्ध करे कि जिससे बालक और खीका शरीर कमशः आरोग्य और पृष्ट होता जाय। ऐसा पदार्थ उसकी माता वा धाबी खावे कि जिससे दूधमें भी उत्तम गुण प्राप्त हों। प्रसृताका दूध छः दिन तक बालकको पिलावे प्रधात् धायी पिलाया करे परन्तु धायीको उत्तम पदार्थोका खान पान माता पिता करावें। जो कोई दरिद्र हों धायीको न रख सकें तो वे गाय वा बकरीके दूधमें उत्तम औषधि जो कि बुद्धि, पराक्रम, आरोग्य करनेहारी हों उनको शुद्ध जलमें भिगो औटा छानके दूधके सनान जल मिलाके बालक को पिलावें। जन्मके पश्चात् बालक और उसकी माताको दूसरे स्थानमें जहांका वायु शुद्ध हो बहां रक्खें, सुगन्य तथा दर्शनीय पदार्थ भी रक्खें और उस देशमें अमण करना उचित है कि जहांका वायु शुद्ध हो। और जहां धायी, गाय, वकरी आदिका दूध न मिल सके वहां जैसा उचित सममें वैसा करें। क्योंकि प्रसृता खीके शरीरके अंशसे बालकका शरीर होता है

<sup>\*</sup> बालकके जन्म-समयमें "आतकर्मसंस्कार" होता है उसमें हवनादि वेदीक्त कर्म होते हैं वे "संस्कारविधि" में सविस्तर लिख दिये हैं।

इसींसे की प्रसवसमय निर्वल होजाती है, इसलिये प्रस्ता की दूध न पिछावे। दूध रोकनेके लिये स्तनके छिद्र पर उस औषधिका लेप करे जिससे दूध स्ववित न हो। ऐसे करनेसे दूसरे महीनेमें पुनरिप युवती होजाती है। तबतक पुरुष ब्रह्मचर्च्यसे वीर्यका निग्रह रक्खे, इस प्रकार जो जी वा पुरुष करेंगे उनके उत्तम सन्तान, दीर्घायु, बल पराक्रमकी बृद्धि होती ही रहेगी कि जिससे सब सन्तान उत्तम बल, पराक्रमयुक्त, द्वीर्घायु, धार्मिक हों। स्त्री योनिसकोचन, शोधन और पुरुष वीर्च्यका स्तम्भन करे। पुनः सन्तान जितने होंगे वे भी सब उत्तम होंगे।

बालकोंको माता सदा उत्तम शिक्षा करे जिससे सत्तान सभ्य हों और किसी अङ्गसे कुचेष्टा न करने पावें। जब बोलने लगे तब दसकी माता बालककी जिह्ना जिस प्रकार कोमल होकर स्पष्ट उच्चारण कर सके वैसा उपाय करे कि जो जिस वर्णका स्थान, प्रयक्त अर्थात जैसे "q'' इसका ओष्ठ स्थान और स्पष्ट प्रयत्न दोनों ओष्ठोंको मिला-कर बोलना, हस्व, दीर्घ प्लत अक्षरोंको ठीक २ बोल सकना। मधर, गम्भीर, सन्दर, खर, अक्षर, मात्रा, पद, वाक्य, संहिता, अव-सान भिन्न २ श्रवण होवे । जब वह कुछ २ बोलने और समम्भने छने तव सुन्दर वाणी और बड़े, छोटे, मान्य, पिता, माता, राजा विद्वान अदिसे भाषण, उनसे वर्त्तमान और उनके पास बैठने आदिकी भी शिक्षा करें जिससे कहीं उनका अयोग्य व्यवहार न होके सर्वत्र प्रतिष्ठा हुआ करे। जैसे सन्तान जितेन्द्रिय तिद्याप्रिय और सत्संगर्मे रुचि करें वैसा प्रयत्न करते रहें। व्यर्थ क्रीडा, रोइन, हास्य, लडाई, हुष, शोक, किसी पदार्थमें छोछुपता, ईर्ष्या, द्वेषादि न करें। उपस्थे निर्देय-के स्पर्श और मईनसे वीर्यकी क्षीणता नपुंसकता होती और हस्तमें दुर्गन्थ भी होता है इससे उसका स्पर्श न करें। सदा सत्रभाषण शौर्य धैर्च्य, प्रसन्तवदन आदि गुणोंकी प्राप्ति जिस प्रकार हो, करावें । जब पांच २ वर्षके लडका लडकी हों तब देवनागरी अक्षरोंका अभ्यास करावें। अत्यदेशीय भाषाओंके अक्षरोंको भी। उसके पश्चात जिनसे

सन्छी शिक्षा, विद्या, धर्म, परमेशवर, माता, पिता, आचार्य, विद्यान्, स्मितिथ, राजा, प्रजा, कुटुम्ब, बन्धु, भिगनी, भृत्य आदिसे कैसे २ वर्त्तना इन बातोंके मन्त्र, रहोक, सूत्र, गद्य, पद्य भी अर्थसिहन कंठस्थ करावें। जिनसे सन्तान किसी धूर्तके बहकानेमें न आवें और जो २ विद्याधमिविरुद्ध भ्रान्तिजालमें गिरानेवाले व्यवहार हैं उनका भी उपदेश करहें, जिससे भूत प्रेत आदि मिथ्या वातोंका विश्वास न हो।

गुरोः प्रेतस्य ज्ञिष्यस्तु पितृमेधं समाचरन् । प्रेतहारैः समं तत्र दशरात्रेण शुध्यति ॥

मनु० [अ०५। ६५]

अर्थ-जब गुरुका प्राणान्त हो तब मृतक-शरीर जिसका नाम प्रेत है उसका दाह करनेहारा शिष्य प्रेतहार अर्थात् मृतकको उठाने-वालोंके साथ दशमें दिन शुद्ध होता है। और जब उस शरीरका दाह होचुका तब उसका नाम भूत होता है अर्थान् वह अमुकनामा पुरुष था। जितने उत्पन्न हों वर्तामानमें आके न रहें वे भूतस्य होनेसे जनका नाम भूत है। ऐसा ब्रह्मासे छेके आज पर्यन्तके विद्वानोंका सिद्धान्त है, परन्तु जिसको शङ्का, कुसंग, कुसंस्कार होता है उसको भय और शङ्कारूप भूत, प्रेत, शाकिनी, डाकिनी आदि अनेक भ्रम-जाल दुःखदायक होते हैं। देखो जब कोई प्राणी मरता है तब उसका जीव पाप, पुण्यके वश होकर परमेश्वरकी व्यवस्थासे सुख दुःखके **फ**ळ भोगनेके अर्थ जन्मान्तर धारण करता है। क्या इस अविनाशी परमेश्वरकी व्यवस्थाका कोई भी नाश कर सकता है ? अज्ञानी स्रोग वैद्यकशास्त्र वा पदार्थविद्याके पढ़ने, सुनने और विचारते रहित होकर सन्निपात ज्वरादि शारीरिक और उन्मादकादि मानस रोगोंका नाम भूत प्रेतादि धरते हैं। उनका औषधसेवन पथ्यादि उचित न्यव-ह्यार न करके उन घूर्न, पाखण्डी, महामूर्ख, अनाचारी, स्वार्थी, भङ्गी, चमार शूद्र, म्लेच्छादि पर भी विश्वासी होकर अनेक प्रकारके ढोंग,

छळ, कपट और उच्छिष्ट भोजन, डोरा, घागा आदि मिथ्या मन्त्र यन्त्र बान्धते बन्धवाते फिरते हैं, अपने धनका नाश, सन्तान आदिकी दुईशा और रोगोंको बढ़ाकर दुःख देते फिरते हैं। जब आंखके अन्धे और गांठके पूरे उन दुईद्धि पापी स्वार्थियोंके पास जाकर पूछते हैं कि "महाराज। इस छड्का, छड्की, स्त्री और पुरुषको न जाने क्या होगया है ?" तब वे बोलते हैं कि "इसके शरीरमें बड़ा भूत, प्रेत, भैरव, शीतला आदि देवी आगई है जबतक तुम इसका उपाय न करोगे तबतक ये न छूटेंगे और प्राण भी छेछेंगे। जो तुम मछीदा वा इतनी मेट दो तो इस मन्त्र जप पुरश्चरणसे माड़के इनको निकाल दें।" तब वे अन्धे और उनके सम्बन्धी बोलते हैं कि "महाराज। चाहे हमारा सर्वस्व जाओ परन्तु इनको अच्छा कर दीजिये।" तब तो उनकी बन पड़ती है। वे धूर्त कहते हैं "अच्छा लाओ इतनी सामग्री, इतनी दक्षिणा, देवताको भेट और प्रहदान कराओ।" मांमा, मृद्क्क, ढोल, थुली हेके उसके सामने बजाते गाते और उनमेंसे एक पाखण्डी उन्मत्त होके नाच कूदके कहता है "मैं इसका प्राण ही ले लूंगा।" तब वे अन्धे उस भङ्गी चमारादि नीचके पर्गोमें पड़के कहते हैं "आप चाहें सो लीजिये इसको बचाइये।" तब वह धूर्त बोलता है "मैं हनुमान हूं, लाओ पक्की मिठाई, तेल, सिन्दूर, सवा मनका रोट और लाल लंगोट 🖺 "में देवी वा भैरव हूं, छाओ पांच बोतल मद्य, बीस मुर्गी, पांच बकरे, मिठाई और वस्त्र" जब वे कहते हैं कि "जो चाहो सो लो" तब तो वह पागल बहुत नाचने कूदने लगता है। परन्तु जो कोई बुद्धिमान् उनकी भेट पांच जूना दण्डा वा चपेटा लातें मारे तो उसके हनुमान, देवी और भैरव माट प्रसन्न होकर भाग जात है, क्योंकि वह उनका केवल धनादि हरण करतेके प्रयोजनार्थ ढोंग है।

और जब किसी ब्रह्मस्त, ब्रह्म्स्, ज्योतिर्विदाभासके पास जाके वे कहते हैं "हे महाराज! इसको क्या है ?" तब वे कहते हैं कि "इस पर सूर्यादि कूर बह चढ़े हैं। जो तुम इनकी शान्तिपाठ, पूजा, दान कराक्षो तो इसको सुख होजाय, नहीं तो बहुत पीड़ित होकर मर जाय तो भी काश्चर्य नहीं।"

उत्तर—कहिये ज्योतिर्वित् ! जैसी यह पृथिवी जड़ है बसे ही -सृद्यांदि लोक हैं। वे ताप और प्रकाशादिए भिन्न कुछ भी नहीं कर सकते। क्या ये चेतन हैं जो क्रोधित होके दुःख और शान्त होके सुख दं सकें ?

प्रन्त—क्या जो यह संसारमें राजा प्रजा सुक्की दुक्की हो रहे हैं यह महोंका फळ नहीं है ?

उत्तर—नहीं ये सब पाप पुण्योंके फळ हैं। प्रश्न—तो क्या ज्योतिःशास्त्र भूठा है १

उत्तर — नहीं, जो उसमें अंक, बीज, रेखागणित विद्या है वह सब सन्दी, जो फलकी ळीळा है वह सब भूठी है।

प्रश्न-क्या जो यह जनमपत्र है सो निष्पळ है १

उत्तर—हां, वह जन्मपत्र नहीं फिन्तु उद्यक्ता नाम "शोकपत्र" रखना चाहिये क्यों फि जब सन्तानका जन्म होता है, तब सबको जानन्द होता है परन्तु वह आनन्द तक्तक होता है कि जवतर जनमपत्र बनाने के अहाँका पढ़ न सुने, जब पुरोहित जनमपत्र बनाने के फहता है तब उसके माता, पिता पुरोहितसे कहते हैं "महाराज ! आप बहुत अच्छा जनमपत्र बनाइये" जो धनाह्य हो तो बहुतसी छाछ पीळी रेखाओंसे चित्र विचित्र और निर्धन हो तो साधारण रीतिसे जनमपत्र बनाके सुनानेको आता है । तब उसके मा बाप अ्योतिषीजीके सामने बेठके कहते हैं "इनका जनमपत्र अच्छा तो है १ ज्योतिषी कहता है "जो है सो सुना देता हूं । इसके जनमप्रह बहुत अच्छे और मित्रप्रह भी बहुत अच्छे हैं जिनका फछ धनाह्य और प्रतिष्ठावान, जिस सभामें जा बैठेगा तो सबके उपर इसका तेज पढ़ेगा, शरीरसे आरोग्य और राज्यमानी होगा ।" इसादि बातें सुनके पिता आदि बोळते हैं "बाह २ अयोतिषीजी आप बहुत अच्छे हो ।" अयोतिषीजी सममते हैं इन

बार्तोसे कार्य सिद्ध नहीं होता। तब ज्योतिषी बोलता है कि "यह पह बो बहुत अच्छे हैं, परन्तु ये प्रह कूर हैं अर्थात् फलाने २ प्रहके योगसे द वर्षमें इसका मृत्ययोग है।" इसको सुनके माता पितादि पुत्रके बत्मके आनन्दको छोडके, शोकसागरमें इवकर ज्योतिषीजीसे कहते हैं ि "महाराजर्जी। अब हम क्या करें ?" तब ज्योतिषीजी कहते हैं **"स्पाध करो**।" गृहस्थ पछे "क्या उपाय करें" ज्योतिषीजी प्रस्ताव •प्रते छगते हैं कि "ऐसा २ दान करो। प्रतके मन्त्रका जप कराओं। और नित्य ब्राह्मणोंको भोजन कराओगे तो अनुमान है कि नवप्रहोंके विद्य हट जायेंगे।" अनुमान शब्द इसलिये हैं कि जो मर जायगा तो कहेंगे हम क्या करें, परमेश्वरके ऊपर कोई नहीं है, हमने तो बहतसा यत्न किया और तुमने कराया उसके कर्म ऐसे ही थे। और जो बच जाय तो कहते हैं कि देखो, हमारे मन्त्र, देवता और ब्राह्मणोंकी कैसी शक्ति है ! हुम्हारे इडकेको बचा दिया । यहां यह बात होनी चाहिये कि जो इनके जप पाठसे कुछ न हो तो दूने तिगुने रुपये उन धूर्तीसे हे हेने चाहिये। और बचजाय तो भी है हेने चाहियें क्योंकि जैसे ज्योतिषियोंने कहा कि "इसके कर्म और परमेश्वरके' नियम तोडनेका सामर्थ्य किसीका नहीं" वैसे गृहस्थ भी कहें कि "यह अपने कर्म और परमेश्वरके नियमसे बचा है तुम्हारे करनेसे नहीं" और तीसरे गुरु आदि भी पुण्यदान कराके आप हे छेते हैं तो उनको भी बही उत्तर देना, जो ज्योतिषीयोंको दिया था।

अब रह गई शीतळा और मन्त्र तन्त्र यन्त्र आदि। ये भी ऐसेही होंग मचाते हैं। कोई कहता है कि "जो हम मन्त्र पढ़के डोरा वा यन्त्र बना देवें तो हमारे देवता और पीर उस मन्त्र यन्त्रके प्रतापसे उसको कोई विम नहीं होने देते।" इनको वही उत्तर देना चाहिये कि क्या . द्वम मृत्य, <sup>9</sup>ररमेश्वरके नियम और कर्मफलसे भी बचा सकोगे १ वुम्हारे इस प्रकार करनेसे भी कितनेही लड़के मर जाते हैं और तुम्हारे **घर**में भी मर जाते हैं और क्या तुम मरणसे बच सकोगे ? तब वे

कुछ भी नहीं कह सकते और वे धूर्त जान छेते हैं कि यहां हमारी दाल नहीं गलेगी, इससे इन सब मिथ्या न्यवहारोंको छोड़कर धार्मिक, सब देशके उपकारकर्ता, निष्कपटतासे सबको विद्या पढाने वाले, उत्तम . विद्वान लोगोंका प्रत्युपकार करना, जैसा वे जगत्का उपकार करते हैं, इस कामको कभी न छोड़ना चाहिये। और जितनी छीछा रसायन, मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण आदि करना कहते हैं उनको भी महापामर समम्भना चाहिये। इत्यादि मिथ्या बातोंका उपदेश बाल्या-बस्थाहीमें सन्तानोंके हृदयोंमें डाल दें कि जिससे स्वसन्तान किसीके भ्रमजालमें पड़के दुःख न पावें और वीर्यकी रक्षामें आनन्द और नाश करनेमें दःखप्रानि भी जना देनी चाहिये। जैसे "देखी जिसके शरीर में सम्ब्रित वीर्य रहता है तब उसको आरोग्य, बुद्धि, बल, पराक्रम बढके बहुत सुखकी प्राप्ति होती है। इसके रक्षणमें यही रीति है कि विषयों की कथा, विषयी लोगोंका संग, विषयोंका ध्यान, स्त्रीका दशन, एकान्त सेवन, सम्भाषण और स्पर्श आदि कर्मसे ब्रह्मचारी लोग पृथक् रह कर उत्तम शिक्षा और पूर्व विद्याको प्राप्त होवें। जिसके शरीरमें वीर्य नहीं होता वह नपुंसक महाकुलक्षणी और जिसको प्रमेह रोग होता है वह दुर्बल, निस्तेज, निर्बुद्धि, उत्साह, साहस, धैर्य, बल, पराक्रमादि गुणोंसे रहित होकर नष्ट हो जाता है। जो तुम छोग सुशिक्षा और विद्याके प्रहण, वीर्यकी रक्षा करनेमें इस समय चूकोगे तो पुनः इस जन्ममें तुमको यह अमूल्य समय प्राप्त नहीं हो सकेगा। जब तक हम लोग गृहकर्मीके करनेवाले जीते हैं तभी तक तमकी विद्याप्रहण और शरीरका बल बढाना चाहिये।" इसी प्रकारकी अन्य २ शिक्षा भी माता और पिता करें। इसीलिये "मातुमान पितृमान् शब्दका प्रहण उक्त वचनमें किया है अर्थात जन्मसे ४ वें बर्ण तक बालकोंको माता, ६ ठे वर्णसे 🖵 वें वर्ष तक पिता शिक्षा करे भौर ६ वें वर्षके आरम्भमें द्विज अपनी सन्तानोंका उपनयन करके आचार्यकुलमें अर्थात् जहां पूर्ण विद्वान् और पूर्ण विदुषी स्त्री शिक्षाः

#### समुक्लास] कुशिक्षा निवारण।

और विद्यादान करनेवाली हों वहां लड़के और लड़कियोंको मेज हें और श्रूदादि वर्ण उपनयन किये विना विद्याभ्यासके लिये गुरुकुलमें मेज हें। उन्होंके सन्तान विद्वान, सभ्य और सुशिक्षित होते हैं, जो पढ़ानेमें सन्तानोंका लाड़न कभी नहीं करते किन्तु ताड़ना ही करते रहते हैं। इसमें व्याकरण महाभाष्यका प्रमाण है:—

#### सामृतैः पाणिर्घ्नन्ति गुरवो न विषोक्षितैः । सास्रना-श्रयिणो दोषास्ताडनाश्रयिणो गुणाः॥ [अ०८-१-८]

अर्थ-जो माता पिता और आचार्य्य सन्तान और शिष्योंका ताडन करते हैं वे जानो अपने सन्तान और शिष्योंको अपने हाथसे अमृत पिला रहे हैं और जो सन्तानों वा शिष्योंका लाइन करते हैं वे अपने सन्तानों और शिष्योंको विष पिछाके नष्ट भ्रष्ट कर देते हैं। योंकि लाडनसे सन्तान और शिष्य दोषयुक्त तथा ताड़नासे गुणयुक्त होते हैं। और सन्तान और शिष्य लोग भी ताडनासे प्रसन्न और लाडनसे अप्रसन्न सदा रहा करें । परन्तु माता, पिता तथा अध्यापक लोग ईर्ध्या, द्वेषसे ताहन न करें । किन्तु ऊपरसे भयप्रदान और भीतरसे क्रपाटिष्ट रक्खें । जैसी अन्य शिक्षाकी वैसी चोरी, जारी, क्षालस्य, प्रमाद, मादक द्रव्य, मिथ्याभाषण, हिंसा, क्ररता, ईर्व्या, द्वेष मोह आदि दोषोंके छोडने और सत्याचारके ग्रहण करनेकी शिक्षा करें क्योंकि जिस पुरुषने जिसके सामने एक वार चोरी, जारी, मिथ्या-भाषणादि कम किया उसकी प्रतिष्ठा उसके सामने मृत्युपर्ध्यन्त नहीं होती । जैसी हानि प्रतिज्ञा मिथ्या करनेवालेकी होती है वैसी अन्य किसीकी नहीं । इससे जिसके साथ जैसी प्रतिज्ञा करनी उसके साथ वैसे ही पूरी करनी चाहिये अर्थात् जैसे किसीने किसीसे कहा कि "प्रें तुमको वा तुम मुम्मसे अमुक समयमें मिळूंगा वा मिळना अथवा अमुक वस्तु अमुक समयमें तुमको मैं दूंगा" इसको वैसे, ही पूरी करे नहीं तो उसकी प्रतीति कोई भी न करेगा । इसलिये सदा सत्यभाषण

स्रोर सत्यप्रतिज्ञायुक्त सबको होना चाहिये । किसीको अभिमान न करना चाहिये । छछ, कपट वा कृतव्नतासे अपना ही हृद्य ुःखित होता है तो दूसरेकी क्या कथा कहनी चाहिये । छछ और कपट उसको कहते हैं जो भीतर और बाहर और रख दूसरेको मोहमें डाछ और दूसरेकी हानि पर ध्यान न देकर स्वप्रयोजन सिद्ध करना । "कृतव्नता उसको कहते हैं कि किसीके किये हुए उपकारको न मानना । कोधादि होष और कटुवचनको छोड़ शान्त और मधुर वचन ही बोले और बहुत बकवाद न करे । जितना बोलना चाहिये उससे न्यून वा अधिक न बोले । बड़ोंको मान्य दे, उनके सामने उठकर जाके उद्यासन पर बैठावे प्रथम "नमस्त" करे । उनके सामने उत्तकर जाके उद्यासन पर बैठावे प्रथम "नमस्त" करे । उनके सामने उत्तकर जाके उद्यासन पर न बैठे । समामें वैसे स्थानमें बैठे जैसी अपनी योग्यता हो और दूसरा कोई न उठावे । विरोध किसीसे न करे । सम्पन्न होकर गुणोंका प्रहण और दोषोंका त्याग रक्खें । सज्ञतोंका संग और उप्टोंका स्थाग, अपने माता, पिता और आचार्यकी तन मन और धनादि उत्तम उत्तम पदा-धोंस प्रीतिपूर्वक सेवा करे ।।

#### यान्यस्माक्ष सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि ॥ तैसि० [प्रपा० ७ अनु० ११]

इसका यह अभिप्राय है कि माता पिता आचार्य्य अपने सन्तान और शिष्योंको सद्दा सत्य उपदेश करें और यह भी कहें कि जो २ हमारे अंग्रेज़ कर्म हैं उन उनका प्रहण करों और जो २ दुष्ट कर्म हों उनका त्याग कर दिया करों । जो २ सत्य जाने उन २ का प्रकाश और प्रचार करें । किसी पाख डी, दुष्टाचारी मनुष्य पर विश्वास न करें और जिस २ उत्तम कर्मके लिये माता, पिता और आचार्य आहा देवें उस २ का यथेष्ट पालन करें जैसे माता, पिताने धर्म, विद्या, अच्छे आचरणके श्लोक "निष्ठण्टु" "निरुक्त" "अष्टाध्यायी" अथवा अन्य सूत्र वा वेदमन्त्र कण्ठस्थ कराये हों उन २ का पुनः अर्थ विद्यार्थियोंको

विदित करावें । जैसे प्रथम समुक्षासमें परमेश्वरका व्याख्यान किया है उसी प्रकार मानके उसकी उपासना करें । जिस प्रकार आरोग्य. विद्या और वल प्राप्त हो उसी प्रकार भोजन छादन और व्यवहार करें करावें अर्थात् जितनी भ्राया हो उससे कुछ न्यून भोजन करें । मह मांसादिके सेवनसे अलग रहें। अज्ञात गम्भीर जलमें प्रवेश न करें क्योंकि जलजनतुवाकिसीअन्य पदार्थसे दुःख और जो तैरना त जाने तो डूब ही जा सकता है "माविज्ञाते जलाशये" यह मनुष्ठा वचन है. अविज्ञात जलाशयमें प्रविष्ट होके स्नानादि न करें।।

दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं, वस्त्रपूतं जलां पिबेत् । सत्यपूतां वदेद्वाचं, मनःपूतं समाचरेत् ॥ मनु० [ ६-४६ ]

अर्थ-नीचे रुष्टि कर उन्ने नीचे स्थानको देखके चले. वस्रते कानके जल पीवे. सत्यसे पवित्र करके वचन बोले. मनसे विचारके आचरण करे।।

माता शत्रुः पिता वैरी येन बालो न पाठितः। न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये बको यथा॥ चाणक्यनीति अ० २ श्लो० ११ ॥

वे माता और पिता अपने सन्तानोंके पूर्ण वैरी हैं जिन्होंने उनकी विद्याकी प्राप्ति न कराई, वे विद्रानोंकी संभामें वैसे तिरस्कृत और कुशोभित होते हैं जैसे हंसोंके बीचमें बगुला । यही माता, पिताका कर्त्तव्य कर्म परमधर्म और कीर्तिका काम है जो अपने सन्तामोंची तन, मन, धनसे विद्या, धर्म सभ्यता और उत्तम शिक्षायक्त करना । यह बालशिक्षामें थोड़ासा किस्ता इतने ही से बुद्धिमान् छोग बहुर समक्र हेंगे ॥

इति श्रीमइयानन्दसरस्वतीस्वामिक्कते सत्यार्थप्रकाशे सुभाषात्रिभूषिते बालशिक्षाविषये द्वितीयः समुहासः सम्पूर्णः ॥

## श्रियं तृतीयसमुद्धासारम्भः

#### अथाऽध्ययनाध्यापन विधिं व्याख्यास्यामः

अब तीसरे समुझासमें पढ़ने पढ़ानेका प्रकार लिखते हैं । सम्ता-नोंको उत्तम विद्या, शिक्षा, गुण, कर्म्म और स्वाभावरूप आभूषणोंका धारण कराना माता, पिता, आचार्य और सविन्धयोंका मुख्य कर्म है। सोने, चांदी, माणिक, मोती, मूंगा आदि रत्नोंसे युक्त आभूषणोंके धारण करानेसे मनुष्यका आत्मा सुभूपित कभी नहीं हो सकता। क्योंकि आभूषणोंके धारण करनेसे केवल देहाभिमान, विषयासिक और चोर आदिका भय तथा मृत्युका भी सम्भव है। ससारमें देख-नेमें आता है कि आभूषणोंके योग्यसे वालकादिकोंका मृत्यु दुष्टोंके हाथसे होता है।

#### ैविद्याबिलासमनसो धृतशीलशिक्षाः, सत्यवृता रहितमानमलापहाराः।संसारदुःखदलनेन सुभूषिता ये, धन्या नरा विहितकर्मपरोपकाराः॥

जिन पुरुषोंक। मन विद्याके विद्यासमें तत्वर रहता, सुन्दर शील-स्वभावयुक्त, सत्यभाषणादि नियम पालनयुक्त, और जो अभिमान अपवित्रतासे रहित, अन्यकी मलीनताके नाराक, सत्योपदेश, विद्या-दानसे ससारी जनोंके दुःखोंके दूर करनेसे सुभूषिन, वेदविहित कर्मोंसे पराये उपकार करनेमें रहते हैं वे नर और नारी धन्य हैं। इसलिये आठ वर्षके हों तभी लड़कोंको लड़कोंकी और लड़िक्योंको लड़िक्योंकी पाठशालामें भेज देवें। जो अध्यापक पुरुष वा स्त्री दुष्टाचारी हों उनसे शिक्षा न दिलावें। किन्तु जो पूर्ण विद्यायुक्त धार्मिक हों वे ही

पढाने और शिक्षा देने योग्य हैं । द्विज अपने घरमें छडकोंका यही-प्रवीत और कल्याओंका भी यथायोग्य संस्कार करके यथोक्त आचार्य्य कुछ अर्थात् अपनी २ पाठशास्त्रामें भेज दें । विद्या पढनेका स्थान एकान्त देशमें होना चाहिये और वे लडके और लडकियोंकी पाठ-शाला दो कोस एक दूसरेसे दूर होनी चाहिये। जो वहां अध्यापिका और अध्यापक पुरुष वा भृत्य, अनुचर हों वे कन्याओंकी पाठशालामें सब स्त्री और पुरुषोंकी पाठशालामें पुरुष रहें। स्त्रियोंकी पाठशालामें पांच वर्षका लडका और पुरुषोंकी पाठशालामें पांच वर्षकी लडकी भी न जाने पावे। अर्थात् जबतक वे ब्रह्मचारी वा ब्रह्मचारिणी रहें तबतक स्त्री वा पुरुषका दर्शन, स्पर्शन, एकान्तसेवन, भाषण, विषयकथा, पर-स्परक्रीडा, विषयका ध्यान और सङ्ग इन आठ प्रकारके मैथुनोंसे अलग रहें और अध्यापक लोग उनको इन बातोंसे बचावें जिससे उत्तम विद्या, शिक्षा, शील, स्वभाव, शरीर और आत्मासे बलयुक्त होके **आ**नन्दको नित्य बढा सकें । पाठशालाओंसे एक योजन अर्थात चार कोस दूर प्राप्त वा नगर रहै । सबको तुल्य वस्त्र, खान पान, आसन दिये जायं, चाहे वह राजकुमार वा राजकुमारी हो चाहे दरिद्रके सन्तान हों, सबको तपस्वी होना चाहिये । उनके माता पिता अपने सन्तानसे वा सन्तान अपने माता पिताओं से न मिल सर्के और न किसी प्रकारका पत्रव्यवहार एक दूसरेसे कर सकें, जिससे संसारी चिन्तासे रहित होकर केवल विद्या पढानेकी चिन्ता रक्खें। जब भ्रमण करनेको जार्ये तब उनके साथ अध्यापक रहें जिससे किसी प्रकारकी **\$**चेष्टा न कर सकें और न आलस्य प्रमाद करें।

कन्यानां सम्प्रदानं च कुमाराणां च रक्षणम् ॥ मनु० [ अ० ७ । रलोक १५२ ]

्रह्मका अभिप्राय यह है कि इसमें राजनियम और जातिनियम होना चाहिये कि पांचवें अथवा आठवें वर्षसे आगे कोई अपने लड़कों जोर लड़िकयोंको घरमें न रख सकें। पाठशालामें अवश्य भेज देवें, जो न भेजे वह दण्डनीय हो। प्रथम लड़कोंका यज्ञोपवीत घरमें हो और इसरा पाठशालामें आचार्य्यकुलमें हो। पिता माता ना अध्यापक जपने लड़के लड़िकयोंको अर्थसिहत गायत्री मन्त्रका उपदेश करदें। वह मन्त्र यह है—

#### ओ३म् मूर्जुबः त्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। वियो यो नः प्रचोदयात् ॥ य० ३६। ३॥

इस मन्त्रमें जो प्रथम ( ओ३म् ) है उसका अर्थ प्रथमसगुहासमें कर दिया है, वहींसे जान लेना । अब सीन महाव्याहृतियोंके अर्थ संक्षेपसे छिखते हैं। "भूरिति वै प्राणः" "यः प्राणयति चराऽचरं जगत् स भूः खयम्भूरीश्वरः जो सब जगत्के जीवनका आधार, प्राणसे भी प्रियं और स्वयम्भू है उस प्राणका वाचक होके "भू:" परमेश्वरका नाम है । "भुविरत्यपानः" "यः सर्वं दुःखमपानयतिसोऽपानः" जो सव दुःखोंसे रहित, जिसके सङ्गसे जीव सब दुखोंसे छूट जाते हैं इसकिये उस परमेश्वरका नाम "सुवः" है । "खरिति व्यानः" "यो विविधं जगद् ज्यानयति ज्याप्नोति स ज्यानः" जो नानाविध जगतुमें स्यापक होके सबका धारण करता है इसलिये उस परमेश्वरका नाम "खा" है। यें तीनों क्यान तैत्तिरीय आरण्यक [प्रपा● ७ । अनु० ४] के 💐 (सवितुः ) "यः सुनोत्युत्पादयति सर्वं जगत् स सविता तस्य" जो सब जगत्का उत्पादक और सब ऐश्वर्यका दाता है (देवस्य) "यो दीव्यति दीव्यते वा स देवः" जो सर्व सुखोंका देनेहारा और जिसकी प्राप्तिकी कामना सब करते हैं उस परमात्माका जो (वरेण्यम्) "बर्तुमर्हम्" स्वीकार करने योग्य अति श्रोष्ठ (भर्गः) "शुद्धस्वरूपम्" श्रद्धस्तरूप और पवित्र करनेवाला चेतन ब्रह्मस्वरूप है (तत् ) उसी परमात्माके स्वरूपको हम छोग (धीमहि) "धरेमहि" धारण करें। किस प्रयोजनके लिये कि (यः) "जगदीश्वरः" जो सविता देख

पातमा (नः) "अस्माकम्" हमारी (धियः) "बुद्धिः" बुद्धियोंको ( प्रचोदयात् ) "प्रेरयेत्" प्रेरणा करे अर्थात् बुरे कार्मोसे ह्युडाकर अच्छे कामोंमें प्रवृत्त करे। "हे परमेश्वर ! हे सच्चिदानन्दानन्तस्वरूप ! है नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव ! हे अज निरञ्जन निर्विकार ! हे सर्वा-न्सर्यामिन् । हे सर्वाधार जगत्पते । सकलजगदुत्पादक । हे अनादे । विश्वम्भर । सर्वव्यापिन् । हे करणामृतवारिधे । सवितुर्देवस्य तव बरों भूर्भुवः स्ववरेण्यं भगोंऽस्ति तद्वयं धीमहि दधीमहि धरेमहि ध्यायेम का कस्मै प्रयोजनायेत्यत्राह । हे भगवन ! यः स्रविता देवः परमेश्वरो भवानस्माकं घियः प्रचोदयात् । स एवास्माकं पूज्य उपासनीय इष्टरेवो भवतु नातोऽन्यं भवत्तुस्यं भवतोऽधिकं च किञ्चत् कदाचिन्मन्यामहे" हे मनुष्यो । जो सब समधौमें समर्थ सिच्चदानन्दानन्तस्वरूप, नित्व शुद्ध, नित्य वुद्ध, नित्य मुक्तस्वभाववाला, कृपासागर, ठीक २ न्यायका करनेहारा, जनममरणादि क्लेशरहित, आकार रहित सबके घर्ट २ का काननेवाला, सबका धर्ता पिता, उत्पादक, अन्नादिसे विश्वका पोषण करनेहारा, सकल ऐश्वयंयुक्त, जगत्का निर्माता, शुद्धस्वरूप और जो ब्राप्तिकी कानना करने सोग्य है उस परमात्माका जो शुद्ध चेतनस्वरूप है उसीको हम धारण करें । इस प्रयोजनके लिये कि वह परमेश्बर इमारे आतमा और बुद्धियोंका अन्तर्यामिस्वरूप हमको दुष्टाचार अधर्मयुक्त मार्गसे हटाके श्रेष्ठाचार सत्य मार्गमें चलावें, उसकी छोड़-कर दूसरे किसी वस्तुका ध्यान हम छोग नहीं करें। क्योंकि न कोई उसके <u>त</u>ल्य और न अधिक है । वही हमारा पिता राजा न्यायाधीश जोर सब सुखोंका देनेहारा है N

इस प्रकार गायत्रीमनत्रका उपदेश करके सन्ध्योपासनकी जो स्नान, आचमन, प्राणायाम आदि क्रिया हैं सिखलावें। प्रथम स्नान इसिलये हैं कि जिससे शरीरके बाह्य अवयवोंकी शुद्धि और आरोग्य आदि होते हैं। इसमें प्रमाण—

अद्गिर्गात्राणि शुध्यन्ति, मनः सत्येन शुध्यति ।

### विचातपोभ्यां भृतात्मा, बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति ॥

#### [ मनु० अ० ५ । रलोक १०६ ]

जल्से शरीरके बाहरके अवयव, सत्याचरणसे मन, विद्या और सप अर्थात् सब प्रकारके कष्ट भी सहके धर्म ही के अनुष्टान करनेसे जीवातमा ज्ञान अर्थात् पृथिवीसेलेके परमेश्वर पर्यन्त पदार्थोंके विवेकसे बुद्धि, दृढ़ निश्चय पित्रत्र होते हैं। इससे स्नान भोजनके पूर्व अवश्य करना। दूसरा प्राणायाम इसमें प्रमाण—

#### योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः॥

#### [ योगशास्त्र साधनपादे सूत्र २८]

जब मनुष्य प्राणायाम करता है तब प्रतिक्षण उत्तरोत्तर कालमें भशुद्धिका नाश और ज्ञानका प्रकाश होता जाता है। जब तक मुक्ति न हो तबतक उसके आत्माका ज्ञान बराबर बढ़ता जाता है।

दह्यन्ते ध्यायमानानां घातूनां हि यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्॥

[मनु० अ०६। ७१]

जैसे अग्निमें तपानेसे सुवर्णादि धातुओंका मल नष्ट होकर शुद्ध होते हैं वैसे प्राणायाम करके मन आदि इन्द्रियोंके दोष क्षीण होकर निर्मल हो जाते हैं। प्राणायामकी विधि—

### प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य॥

#### योग० [ समाधिपादे ] स्ट. ३४॥

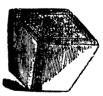
जैसे अत्यन्त वेगसे वमन होकर अन्न जल बाहर निकल जाता है वैसे प्राणको बल्से बाहर फेंकके बाहर ही यथाशक्ति रोक देवे। जब बाहर निकालना चाहे तब मूलेन्द्रियको ऊपर खींच रक्ले तबतक प्राण बाहर रहता है। इसी प्रकार प्राण बाहर अधिक ठहर सकता है। जब

घबराइट हो तब धीरे २ भीतर वायुको हैके फिर भी वैसे ही करता जाय, जितना सामर्थ्य और इच्छा हो । और मनमें (ओ३म्) इसका जप करता जाय । इस प्रकार करनेसे आत्मा और मनकी पवित्रता और स्थिरता होती है। एक "बाह्यविषय" अर्थात् बाहर ही अधिक रोकना । दसरा "आभ्यन्तर" अर्थात् भीतर जितना प्राण रोका जाय उतना रोकके । तीसरा "स्तम्भवृत्ति" अर्थात् एक ही वार जहांका तहां प्राणको यथाशक्ति रोक देना । चौथा "बाह्याभ्यन्तराक्षेपी" अर्थात जब प्राण भीतरसे बाहर निकलने लगे तब उससे विरुद्ध न निकलने देनेके लिये बाहरसे भीतर ले और जब बाहरसे भीतर आने लगे तब भीतरसे बाहरकी और प्राणको धका देकर रोकता जाय । ऐसे एक दुसरेके विरुद्ध किया करें तो दोनोंकी गति रुककर प्राण अपने वशमें होनसं मन और इन्द्रिय भी स्वाधीन होते हैं । बल पुरुषार्थ बढकर बुद्धि तीव सुक्ष्मरूप होजाती है कि जो बहुत कठिन और सूक्ष्म विष-यको भी शीघ प्रहण करती है । इससे मनुष्य शरीरमें वीर्य्य वृद्धिको प्राप्त होकर स्थिर बल, पराक्रम, जितेन्द्रियता सब शात्रोंको थोडे ही कालमें समम कर उपस्थित कर लेगा । स्त्री भी इसी प्रकार योगा-भ्यास करे । भोजन, छादन, बैठने, उठने, बोछने, चाछने, बडे छोटेसे यथायोग्य व्यवहार करनेका उपदेश करें । सन्ध्योपासन जिसको ब्रह्मयज्ञ भी कहते हैं । "आचमन" उतने जलको हथेलीमें हेके उसके मूल और मध्यदेशमें ओष्ठ लगाके करे कि वह जल कण्ठके नीचे हृदेय तक पहुंचे, न उससे अधिक न न्यून । उससे कण्ठस्थ कफ और पित्तकी निवृत्ति थोड़ीसी होती है । पश्चात् "मार्जन" अर्थात् मध्यमा और अनामिका अंगुलीके अग्रभागसे नेत्रादि अङ्कों पर जल छिड्के उससे आलस्य दूर होता है । जो आलस्य और जल प्राप्त न हो तो न करे । पुनः समन्त्रक प्राणायाम, मनसापरिक्रमण, उपस्थान, पीछे क्रमेश्वरको स्तुति, प्रार्थना और उपासनाकी रीति सिखळावे। पश्चात् "अधर्मकण" अर्थात् पाप करनेकी इच्छा भी कभी न करे। यह सत्ध्यो-

पासन एकान्त देशमें एकामचित्तसे करे।।

अयां समीपे नियतो नैत्यिकं विधिमास्थितः।सावि-श्रीमप्यधीयीत गत्वारण्यं समाहितः ॥ मनु० २-१०४

जङ्करुमें अर्थात् एकान्त देशमें जा, सावधान होके जलके समीप स्थित होकं नित्यकर्मको करता हुआ सावित्री अर्थात् गायत्री मन्त्रका **ज्यारण, अर्थज्ञान और** उसके अनुसार अपने चाल चलनको करे, **परन्तु यह जप म**नसे करना उत्तम है । दूसरा देवयज्ञ जो अग्निहोत्र भौर विद्वानोंका संग सेवादिकसे होता है । सन्ध्या और अग्निहोत्र 🖏 बं प्रातः हो ही कालमें करें । दो ही रात दिनकी सन्धिवेला हैं अन्य नहीं । न्यूनसे न्यून एक घंटा ध्यान अवश्य करे । जैसे समाधिस्थ होकर योगी छोग परमात्माका ध्यान करते हैं वैसे ही सन्ध्योपासन बी किया करे। तथा सूर्योदयंके पश्चात् और सूर्यास्तके पूर्व अग्निहोत्र **करनेका समय है** उसके लिये एक किसी धातु वा म**ट्टी**के ऊपर १२ वा १६



अंगुल चौकोन उतनी ही गहरी और नीचे ३ वा ४ अंगुल परिमाणसे वेदी इस प्रकार बनावें अर्थात् ऊपर जितनी चौडी हो उसकी अतुर्था श नीचे चौडी रहे । उसमें चन्दन पलारा वा आम्रादिके श्रेष्ठ काष्ठोंके दुकड़े उसी वेदीके परिमाणसे बडे छोटे

इरके उसमें रक्खे उसके मध्यमें अग्नि रखके पुनः उस पर समिधा

वर्धात् पूर्वोक्त इन्धन रखदे एक प्रोक्षणीपात्र



**जोर** तीसरा प्रणीतापात्र क्षिपा क्षेपा क्षिपा क्ष्म क्षिपा क्षेप क्षिपा क्षेप क





इस प्रकारकी आज्बस्था**ळी वर्थात् पृत** रखनेका



ऐसा स्रोते, चांदी 🖷

🗬 छका बनवाके प्रणीता और प्रोक्षणीमें जल तथा 🦷 रखके घृतको सपा लेवे । प्रणीता जल रखने और प्रोक्षणी इसलिये है कि उससे हाव षोनेको जल लेना सुगम है । पश्चात् उस घीको **अच्छे प्रकार दे**ख <mark>ले</mark>वे फिर इन मन्त्रोंसे होम करे।।

भों भूरम्नये प्राणाय खाहा । मुचर्वायवेऽपानाय स्वाहा । स्वरादित्याय ब्यानाय स्वाहा । भूभृवः स्वरनिवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा ॥

इत्यादि अगिनहोत्रके प्रत्येक मन्त्रको पढ़कर एक २ आहुति देवे और जो अधिक आहुति देना हो तोः—

विश्वानि देव संवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आसुव ॥ यजुः ३० । ३ ॥

इस मन्त्र और पूर्वोक्त गायत्री मन्त्रसे आहुति देवें । "ओं भूः" बीर "प्राणः" आदि ये सब नाम परमेश्वरके हैं । इनके अर्थ कह चुके 🍍 । स्वाहा शब्दका अर्थ यह है कि जैसा ज्ञान आत्मामें हो वैसा ही जीभसे बोले, विपरीत नहीं । जैसे परमेश्वरने सब प्राणियोंके सुखके मर्थ इस सब जगतुके पदार्थ रचे हैं वैसे मनुष्योंको भी परोपकार करना चाहिये।।

प्रश्न-होमसे क्या उपकार होता है ?

उत्तर—सब लोग जानते हैं कि दुर्गन्धयुक्त बायु और जलसे रोग, रोगसे प्राणियोंको दुःख और सुगन्धित वायु तथा जस्से आरोग्य और

रोगके नष्ट होनेसे सुख प्राप्त होता है।

प्रश्न-चन्द्रनादि घिसके किसीके लगावे या घृतादि खानेको देवे तो बड़ा उपकार हो। अग्निमें डालके व्यर्थ नष्ट करना बुद्धिमानोंका काम नहीं।

उत्तर—जो तुम पदार्थविद्या जानते तो कभी ऐसी बात न कहते क्योंकि किसी द्रव्यका अभाव नहीं होता । देखो जहां होम होता है बहांसे दूर देशमें स्थित पुरुषके नासिकासे सुगन्धका प्रहण होता है वैसे दुर्गन्धका भी । इतने ही से सममत्ने कि अग्निमें डाला हुआ पदार्थ सूक्ष्म होके फैलके वायुके साथ दूर देशमें जाकर दुर्गन्थकी निष्टृति करता है।

प्रश्न—जब ऐसा ही है तो केशर, कस्तुरी, सुगन्धित पुष्प और अतर आदिके घरमें रखनेसे सुगन्धित वायु होकर सुखकारक होगा।

उत्तर—उस सुगन्यका वह सामर्थ्य नहीं है कि गृहस्थ वायुको बाहर निकाल कर शुद्ध वायुका प्रवेश करा सके, क्योंकि उसमें मेदक शक्ति नहीं है और अपिन ही का सामर्थ्य है कि उस वायु और दुर्ग-न्थयुक्त पदार्थोंको छिन्न भिन्न और हलका करके बाहर निकाल कर पवित्र वायुका प्रवेश कर देता है।

प्रश्न—तो मन्त्र पढ़के होम करनेका क्या प्रयोजन है ?

डतर—मन्त्रोंमें वह व्याख्यान है कि जिससे होम करनेके लाभ विदित हो जायं और मन्त्रोंकी आवृत्ति होनेसे कण्ठस्थ रहें वेद-पुस्तकोंका पठन पाठन और रक्षा भी होवे ।

प्रश्न-क्या इस होम करनेकं विना पाप होता है ?

जतर—हां । क्योंकि जिस मतुष्यके शरीरसे जितना दुर्गन्थ दरपत्र होके वायु और जलको बिगाड़ कर रोगोत्पत्तिका निमित्त होनेसे प्राणियोंको दुःख प्राप्त कराता है उतना ही पाप उस मनुष्यको होता है। इसल्पि उस पापके निवारणार्थ उतना सुगन्ध वा उससे कथिक बायु और जल्मों फैलाना चाहिये। और खिलाने पिलानेसे **एसी एक व्यक्तिको** सुखिवशेष होता है। जितना घृत और सुगन्धाहिः पदार्थ एक मनुष्य खाता है उतने द्रव्यके होमसे लाखों मनुष्योंका **एपकार** होता है। परन्तु जो मनुष्य लोग घृतादि उत्तम पदार्थ न खावें तो उनके शरीर और आत्माके बलकी उन्नति न होसके, इससे अच्छे पदार्थ खिलाना पिलाना भी चाहिये परन्तु उससे होम अधिक करना उचित है इसलिये होम करना अत्यावश्यक है।

प्रश्न—प्रत्येक मनुष्य कितनी आहुति करे और एक २ आहुतिका कितना परिमाण है ?

बत्तर—प्रत्येक मनुष्यको सोलह २ आहुति और छः छः मारो धृतादि एक एक आहुतिका परिमाण न्यूनसे न्यून चाहिये और जो इससे अधिक करे तो बहुत अच्छा है। इसलिये आयंवरशिरोमणि महाशय ऋषि, महर्षि, राजे, महाराजे, लोग बहुतसा होम करते और कराते थे। जवतक इस होम करनेका प्रचार रहा तबतक आर्यावर्त्त देश रोगोंसे रहित और सुर्खोंसे पूरित था, अब भी प्रचार हो तो वैसा ही होजाय। ये दो यज्ञ अर्थात् ब्रह्मयज्ञ जो पढ़ना पढ़ाना संध्योपा सक ईश्वरकी स्तुति प्रार्थना उपासना करना, दूसरा देवयज्ञ जो अगिनहोक्तरे अर्थनेय पर्यन्त यज्ञ और विद्वानोंकी सेवा संग करना परन्तु, ब्रह्मचर्यमें केवल ब्रह्मयज्ञ और अग्निहोत्रको ही करना होता है।।

ब्राह्मणस्त्रयाणां वर्णानामुपनयनं कर्तुमहिति । रा-जन्यो द्वयस्य । वैश्यो वैश्यस्यैवेति । शूद्रमपि कुल-गुणसम्पन्नं मन्त्रवर्जमनुपनीतमध्यापयोदित्येके ॥

यह सुश्चतके सूत्रस्थानके दूसरे अध्यायका वचन है। ब्राह्मणः तीनों वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य; क्षत्रिय क्षत्रिय और वैश्य; तथा वैश्य एक वैश्य वर्णका यज्ञोपवीत कराके पढ़ा सकता है। और जो कुळीन शुश्यत्रक्षणयुक्त शूद्र हो तो उसको मन्त्रसंहिता छोड़के सब शास्त्र पढ़ावे, शूद्र पढ़े परन्तु उसका उपनयन न करे, यह मत अनेक आचा- बौका है। पश्चात् पाचर्वे वा आठवें वर्षसे छड़के छड़कोंकी पाठशालामें बौर छड़की छड़कियोंकी पाठशालामें जावें। और निम्नलिखि**स** नियमपूर्वक अध्ययनका आरम्भ करें।।

षट्त्रिंशदाब्दिकं चर्यं गुरौ त्रैंवेदिकं वृतम्। तदः धिंकं पादिकं वा ग्रहणान्तिकमेव वा ॥ मतुः ३। है

अर्थ—काठवें वर्षसे आगे छत्तीसवें वर्ष पर्यन्त अर्थात् एक १ बेदके साङ्गोपाङ्ग पढ़नेमें बारह २ वर्ष मिलके छत्तीस और आठ मिलके चवालीस अथवा अठारह वर्षीका ब्रह्मचर्य और आठ पूर्वके मिलके छन्द्रीस वा नौ वर्ष तथा जवतक विद्या पूरी ध्रहण न कर लेवे सवतक ब्रह्मचर्य रक्खे ।।

पुरुषो वाव यज्ञस्तस्य यानि चतुर्वि ज्ञाति वर्षाणि तत्प्रातःसवनं, चतुर्वि ् शत्यक्षरा गायत्री गायत्रं प्रातःसवनं, तदस्य वसवोऽन्वायत्ताः प्राणा वाव वसव एते हीद जंसव वस्त्रीय वस्त्रीय ॥ १॥

तञ्चेदेतस्मिन् वयसि किश्चिदुपतपेत्सब्रूयात्प्राणा वसव इदं मे प्रातःसवनं माध्यन्दिन्धंसवनमनु-संतनुतेति माहं प्राणानां वसूनां मध्ये यज्ञो विलो-प्सीयेत्युद्धैव तत एत्यगदो ह भवति ॥ २॥

अथ यानि चतुश्चत्वारि एशद्वर्षाणि तन्माध्यन्दि-न ्सवनं चतुश्चत्वारि ्शदक्षरा त्रिष्दुप् त्रेष्टुभं माध्यंदिन ए सवनं तदस्य रुद्रा अन्वायत्ताः प्राणा याव रुद्रा एते हीद् ए सर्व ए रोद्यन्ति ॥ ३ ॥ तं चेदेतस्मिन्वयसि किश्चिदुपतपेत्स ब्र्यात्प्राणा रुद्रा इदं में माध्यंदिन सवनं तृतीयसवनसनुसन्त-नुतेति माहं प्राणाना रुद्राणां मध्ये यज्ञो विलोप्सी-स्युद्धे व तत एत्यगदो ह भवति ॥ ४॥

अथ यान्यष्टाचत्वारि ्ँ शद्वर्षाणि तत्तृतीयसवन-मष्टाचत्वारि ्ँ शदक्षरा जगती जागतं तृतीयसवनं तदस्यादित्यान्वायत्ताः प्राणा वावादित्या एते हीद्र सर्वमाददते ॥ ५ ॥

तं चेदेतस्मिन्वयसि किश्चिदुपतपेत्स ब्र्यात्प्राणाः आदित्या इदं मे तृतीयसवनमायुरनुसंतनुतेति माहं प्राणानामादित्यानां मध्ये यज्ञो विलोप्सीये-त्युद्धेव तत एत्यगदो हैव भवति ॥ ६ ॥

यह छान्दोग्योपनिषद् [प्रपाठक ३ खण्ड १६] का वचन है। ब्रह्मचंय तीन प्रकारका होता है। कनिष्ठ, मध्यम, और उत्तम। उनमेंसे किनिष्ठ-जो पुरुष अन्नरसमय देह और पुरि अर्थात् देहमें शयन करनेवाला जीवातमा यह अर्थात् अतीव युभगुणोंसे सङ्गत और सत्कर्त्तव्य है इसको आवश्यक है कि २४ वर्ष पर्य्यन्त जितेन्द्रिय अर्थात् ब्रह्मचारी रहकर वेदादि विद्या और सुसिक्षाका प्रहण करे और विवाह करके भी लम्पटता न करे तो उसके शरीरमें प्राप्त ब्रह्मचारी होते हैं। इस प्रथम ब्रह्ममें जो बसको विद्याभ्यासमें संतप्त करें और वह आचार्य वैसा ही पर्देश किया करें और ब्रह्मचारी ऐसा निश्चय रक्षेत्र कि जो में प्रथम ब्रह्मचों ठीक २ ब्रह्मचारी रहुंगा तो मेरा शरीर और आत्मा

आरोग्य वलवान् होके शुभगुणोंको बसानेवाले मेरे प्राण होंगे। हे मन्त्यो । तुम इस प्रकारसे सुस्रोंका विस्तार करो, जो में ब्रह्मचर्यका छोप न करूं २४ वर्षके पश्चात् गृहाश्रम करूंगा तो प्रसिद्ध है कि रोगरहित रहुंगा और आयु भी मेरी ७० वा ८० वर्ष तक रहेगी। मध्यम ब्रह्मचर्य यह है-जो मनुष्य ४४ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचारी रहकर वेदाभ्यास करता है उसके प्राण, इन्द्रियां, अन्तःकरण और आत्मा बलयुक्त होके सब दुष्टोंको रुलाने और शेष्ठोंका पालन करनेहारे होते हैं। जो मैं इसी प्रथम वयमें जैसा आप कहते हैं कुछ तपश्चर्या करूं तो मेरे में सदस्य प्राणयुक्त यह मध्यम ब्रह्मचर्य सिद्ध होगा। है ब्रह्मचारी लोगो । तुम इस ब्रह्मचर्यको बढाओ जैसे मैं इस ब्रह्मचर्यका लोप न करके यज्ञखरूप होता हूं और उसी आचार्यकुलसे आता और रोगरहित होता हूं जैसा कि यह ब्रह्मचारी अच्छा काम करता है वैसा तम किया करो । उत्तम ब्रह्मचर्य ४८ वर्ष पर्यन्तका तीसरे प्रका-रका होता है, जैसे ४८ अक्षरकी जगती वैसे जो ४८ वर्ष पर्यन्त यथावत् ब्रह्मचर्य करता है, उसके प्राण अनुकूल होकर सकल विद्या-ओंका प्रहण करते हैं। जो आचार्य और माता पिता अपने सन्ता-नोंको प्रथम वयमें विद्या और गुणप्रहणके लिये तपस्वी कर और इसीका उपदेश करें और वे सन्तान आप ही आप अखण्डित ब्रह्मचर्य सेवनसे तीसरे उत्तम ब्रह्मचर्यका सेवन करके पूर्ण अर्थात् चारसौ वर्ष पर्यन्त आयुको बढ़ावें वैसे तुम भी बढ़ाओ। क्योंकि जो मनुष्य इस ब्रह्मचर्यको प्राप्त होकर लोप नहीं करते वे सब प्रकारके रोगोंसे रहित होकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्षको प्राप्त होते हैं ॥

चतस्रोऽवस्थाः शरीरस्य वृद्धिर्यौवनं सम्पूर्णता किञ्चित्परिहाणिश्चेति । आषोडशाद्वृद्धिः । आ-पञ्चविंशतेर्यौवनम् । आचत्वारिंशतः सम्पूर्णता ।

#### समुल्लास] तीन प्रकारके ब्रह्मचर्य।

ततः किंचित्परिहाणिश्चेति॥

पश्चिवंद्यो ततो वर्षे पुमान् नारी तु षोडद्यो। समत्वागतवीर्यौ तौ जानीयात्कुदालो भिषक्॥

यह सुश्रुतके सूत्रस्थान ३५ अध्यायका वचन हैं । इस शारीरकी चार अवस्था हैं एक (बृद्धि ) जो १६ वें वर्षसे छेके २५ वें वर्ष पर्यन्त सब धातुओंकी बढ़ती होती है। दूसरी (योवन ) जो २६ वें वर्षके अन्त और २६ वें वर्षके आदिमें युवावस्थाका आरम्भ होता है। तीसरी (सम्पूर्णता) जो पच्चीसवें वर्षसे छेके चालीसवें वर्ष पर्यन्त सब धातुओंकी पुष्टि होती है। चौथी (कि व्चित्परिहाणि) जब सब साङ्गोपाङ्ग शरीरस्थ सकल धातु पुष्ट होके पूर्णताको प्राप्त होते हैं। तदनन्तर जो धातु बढ़ता है वह शरीरमें नहीं रहता, किन्तु स्वप्न, प्रस्वेदादि द्वारा बाहर निकल जाता है, वही ४० वां वर्ष उत्तम समय विवाहका है अर्थान उत्तमोत्तम तो अड़तालीसवें वर्षमें विवाह करना। प्रश्न—क्या यह ब्रह्मचर्यका नियम की वा पुरुष दोनोंका तुल्य

प्रश्न—क्या यह ब्रह्मचयका नियम स्त्रा वा पुरुष दोनीका तुल्य ही है ?

चत्तर—नहीं जो २५ वर्ष पर्यन्त पुरुष ब्रह्मचर्य करे तो १६ (सोछह) वर्ष पर्यन्त कन्या, जो पुरुष ३० वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचारी रहे तो स्त्री १७ वर्ष, जो पुरुष ३६ वर्ष तक रहे तो स्त्री १८ वर्ष, जो पुरुष ४० वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य करे तो स्त्री २० वर्ष, जो पुरुष ४४ वर्ष पयन्त ब्रह्मचर्य करे तो स्त्री २२ वर्ष, जो पुरुष ४८ वर्ष ब्रह्मचर्य करे तो स्त्री २४ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य सेवन रक्खे अर्थात् ४८ वें वर्षसे स्त्रागे पुरुष और २४ वं वर्षसे आगे स्त्रीको ब्रह्मचर्य न रस्ता चाहिये, परन्तु यह नियम विवाह करने वाले पुरुष और स्त्रियोंका है और जो विवाह करना ही न चाहें वे मरण पर्यन्त ब्रह्मचारी रह सकते हों तो मले ही रहें परन्तु यह काम पूर्ण विद्यावाले जितेन्द्रिय और निर्दोष योगी स्त्री और पुरुषका है। यह बडा कठिन काम है कि जो कामके वेगको थांभके इन्द्रियोंको अपने वशमें रखना।

ऋतं च खाध्यायप्रवचने च । सत्यं च खाध्याय प्रवचने च । तपश्च स्वाध्यायप्रवचने च । दमश्च स्वाध्यायप्रवचने च । शमश्च स्वाध्यायप्रवचने च । अग्नयश्च स्वाध्यायप्रवचने च । अग्निहोन्नश्च स्वाध्या-यप्रवचने च । अतिथयश्च स्वाध्यायप्रवचने च । मानुषं च स्वाध्यायप्रवचने च । प्रजा च स्वाध्याय-प्रवचने च । प्रजनश्च स्वाध्यायप्रवचने च । प्रजाति-स्च स्वाध्यायप्रवचने च ॥

यह तैत्तिरीयोपनिषद् [प्रपा० ७। अनु० ह] का वचन है। पढ़ने पढ़ानेवालों के नियम हैं। (ऋतं०) यथार्थ आचरणसे पढ़ें और पढ़ावें (सत्यं०) सत्याचारसे सत्य विद्याओं को पढ़ें वा पढ़ावें (तपः०) तपस्वी अर्थात् धर्मानुष्ठान करते हुए वेदादि शास्त्रों को पढ़ें और पढ़ावें (दमः०) वाह्य इन्द्रियों को बुरे आचरणों से रोकके पढ़ें और पढ़ावें (दमः०) वाह्य इन्द्रियों को बुरे आचरणों से रोकके पढ़ें और पढ़ावें जायें (शमः) मनकी वृत्तिको सब प्रकारके दोषों से इटाके पढ़ते पढ़ावें जायें (शमः) मनकी वृत्तिको सब प्रकारके दोषों से इटाके पढ़ते पढ़ावें जायें (शमन्यः०) आहवनीयादि अगिन और विद्युत् आदिको जानके पढ़ते पढ़ावें जायें और (अगिनहोत्रं०) अगिनहोत्रं करते हुए पठन और पाठन करें करावें (अतिथयः०) आतिथयों की सेवा करते हुए पढ़ें और पढ़ावें (मानुषं०) मनुष्य-सम्बन्धी व्यवहारों को यथायोग्य करते हुए पढ़ते पढ़ावें (प्रजातः०) सन्तान और राज्यका पाछन करते हुए पढ़ते पढ़ावे जायें (प्रजातः०) वर्षिकी रक्षा और वृद्धि करते हुए पढ़ते पढ़ावे जायें (प्रजातिः०) अपने सन्तान और शिष्यका पाछन करते हुए पढ़ते पढ़ावे जायें (प्रजातिः०) अपने सन्तान और शिष्यका पाछन करते हुए पढ़ते पढ़ावे जायें (प्रजातिः०) अपने सन्तान और शिष्यका पाछन करते हुए पढ़ते पढ़ावे जायें । प्रमान सेवेत सततं जायें शिष्यका पाछन करते हुए पढ़ते पढ़ावे जायें ।

यमान्पतत्यकुर्वाणो नियमान् केवलान् भजम्॥ मनु० [अ०४। २०४]

यम पांच प्रकारके होते हैं:-

### तत्राहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः॥ योग० [साधनपादे स्व०३०]

अर्थात् (अहिंसा) वैराग्य (सत्य) सत्य मानना, सःय बोळना भौर सत्य ही करना (अस्तेय) अर्थात् मन वचन कमंसे चोरी त्याग (ब्रह्मचर्य) अर्थात् उपस्थेन्द्रियका संयम (अपरिप्रह) अत्यन्त छोळुपता स्वत्वाभिमानरहित होना इन पांच यमोंका सेवन सदा करें, केवल नियमोंका सेवन अर्थात्ः—

# शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः॥ योग० [ साधनपादे सु० ३२ ]

(शौच) अर्थात् स्तानादिसे पिवत्रता (सन्तोप) सम्यक् प्रसन्न होकर निरुद्यम रहना सन्तोष नहीं किन्तु पुरुषार्थ जितना होसके उतना करना हानि लाभमें हर्ष वा शोक न करना (तप) अर्थात् कष्टसेवनसे भी धमेयुक्त कमोका अनुष्ठान (स्वाध्याय) पढ़ना पढ़ाना (ईश्वरपणिधान) ईश्वरकी भक्तिविशेषसे आत्माको अर्पित रखना ये पांच नियम कहाते हैं। यमोंके विना केवल इन नियमोंका सेवन न करे किन्तु इन दोनोंका सेवन किया करे जो यमोंका सेवन छोड़के केवल नियमोंका सेवन करता है वह उन्नतिको नहीं प्राप्त होता किन्तु अधोगति अर्थात् संसारमें गिरा रहता है:—

कामात्मता न प्रशस्ता न चैवेहास्त्यकामता। काम्यो हि वेदाचिणमः कर्मयोगस्य वैदिकः॥ मनु०[२।२८] अर्थ-अत्यन्त कामातुरता और निष्कामता किसीके लिये भी श्रेष्ठ नहीं क्योंकि जो कामना न करे तो वेदोंका ज्ञान और वेद्विहित कर्मादि उत्तम कर्म किसीसे न होसकें। इसलिये:—

स्वाध्यायेन वृतैहोंमैस्त्रैविद्यो नेज्यया सुतैः। महायज्ञौरच यज्ञौरच ब्राह्मीयं क्रियते तनुः॥ मनु० [अ०२।२६]

अर्थ—(स्वाध्याय) सकल क्या पढ़ने पढ़ाने (त्रत) ब्रह्मचर्ध्य सत्यभाषणादि नियम पालने (होम) अग्निहोत्रादि होम सत्यका प्रहण अमत्यका त्याग और सत्य क्याओंका दान देने (त्रेविद्येन) वेदस्थ कर्मोणसाना झान विद्याके प्रहण (इज्यया) पक्षेष्ट्यादि करने (सुतैः) सन्तानोत्पत्ति (महायझैः) ब्रह्म, देव, पितृ, वैरवदेव और अ्वतिध्योंके सेवनस्ब चंचमहायझ और (यझैः) अग्निष्टोमादि तथा शिल्पविद्या क्यानादि यझौंके सेवनसे इस शरीर को ब्राह्मी अर्थात् वेद और परमेश्वरकी भक्तिका आधाररूप ब्राह्मणका शरीर किया जाता है। इतने साधनोंके विना ब्राह्मणशरीर नहीं वन सकताः—

# इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारिषु । संयमे यत्न-मातिष्ठेद्विद्वान्यन्तेव बाजिनाम् ॥ मनु० [२ । ८८]

अर्थ—जैसे विद्वान् सारिथ घोड़ोंको नियममें रखता है वैसे मन बौर आत्माको खोटे कार्मोमें खैंचनेवाले विषयोंमें विचरती हुई. इन्द्रियोंके निम्रहमें प्रयत्न सब प्रकारसे करे क्योंकि—

इन्द्रियाणां प्रसंगेन दोषमृच्छत्यसंशयम्। संनियम्य तु तान्येव ततः सिद्धिं नियच्छति ॥ मनु० [२१६३]

अर्थ—जीवात्मा इन्द्रियोंके वश होके निश्चित बड़े २ दोषोंको प्राप्त होता है और जब इन्द्रियोंको अपने वशमें करता है तभी सिद्धिको प्राप्त होता है:—

वेदास्त्यागरच यज्ञारच नियमारच तपांसि च। न विप्रदुष्टभावस्य सिद्धिं गच्छन्ति कहिंचित् ॥ मनु० [२। ६७]

जो दृष्टाचारी अजितेन्द्रिय पुरुष है उसके वेद, त्याग, यज्ञ, नियम और तप तथा अन्य अच्छे काम कभी सिद्धिको प्राप्त नहीं होते— वेदोपकरणे चैव स्वाध्याये चैव नैत्यिके । नानुरो-धोऽस्त्यनध्याये होममंत्रेषु चैव हि। १। नैत्यिके नास्यनध्यायो ब्रह्मसर्गं हिं तत्स्मृतम् । ब्रह्माहुतिहुतं पुंण्यमनध्यायवषट्कृतम्।२। मनु० २। १०५-१०६

वेदके पढने पढाने, सन्ध्योपासनादि पंचमहायज्ञोंके करने और होममन्त्रोंमें अनध्याय विषयक अनुरोध (आग्रह) नहीं हे क्योंकि नियुक्रमेमें अनध्याय नहीं होता जैसे श्वास प्रश्वास सदा लिये जाते हैं वन्द नहीं किये जा सकते वैसे नित्यकर्म प्रतिदिन करना चाहिये न किसी दिन छोडना क्योंकि अनध्यायमें भी अग्निहोत्रादि उत्तम कर्म किया हुआ पुण्यरूप होता है जैसे मूठ बोलनेमें सदा पाप और सत्य बोलने में सदा पुण्य होता है वैसे ही बुरे कर्म करनेमें सदा अन-ध्याय और अच्छे कर्म करनेमें सदा स्वाध्याय ही होता है।।

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः । चत्वारि तस्य वर्द्धन्त आयुर्विचा यशो बलम् ॥ मनु, २।१२१॥

जो सदा नम्र सुरील विद्वान् और वृद्धोंकी सेवा करता है उसका आयु, विद्या, कीर्ति और बल ये चार सदा बढ़ते हैं और जो ऐसा नहीं करते उनके आयु आदि चार नहीं बढ़ते॥

अहिंसयैव भूतानां कार्यं श्रे योऽनुशासनम्। वाक् चैव मधुरा रलक्ष्णा प्रयोज्या धर्ममिच्छता॥१॥

# यस्य वाङ्मनसे शुद्धे सम्यग्गुप्ते च सर्वदा। स वै सर्वमवाप्नोति वेदान्तोपगतं फलम् ॥२॥

मनु० २ । १५६-१६० ॥

विद्वान और विद्यार्थियों को योग्य है कि वैरबुद्धि छोड़ के सब मनुष्यों को कल्याण के मांगका उपदेश करें और उपदेश सदा मधुर सुशीलनायुक्त वाणी बोलें। जो धर्मकी उन्नति चाहे वह सदा सत्यमें चलें और सत्य ही का उपदेश करे।। १।। जिस मनुष्यके वाणी और मन शुद्ध तथा सुरक्षित सदा रहते हैं वही सब वेदान अर्थान सब वेदों के सिद्धान्तरूप फलको प्राप्त होता है।। २।।

संमानाद् ब्राह्मणो नित्यमुद्धिजेत विषादिव । अमृत-स्येव चाकाङ्क्षेदवमानस्य सर्वदा ॥ मनु० २-१६२

वही ब्राह्मण समप्र वेद ओर परमेश्वरको जानता है जो प्रतिश्वासे विषके तुल्य सदा डरता है और अपमानकी इच्छा अमृतके समान किया करता है॥

अनेन क्रमयोगेन संस्कृतात्मा द्विजः शनैः।गुरौ वसन् संश्चितुयाद् ब्रह्माधिगमिकं तपः॥ मनु० २-१६४

इसी प्रकारसे कृतोपनयन द्विज ब्रह्मचारी कुमार और ब्रह्मचारिणी कन्या धीरे २ वेदार्थके ज्ञानरूप उत्तम तपको बढाते चले जायें॥

योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुक्ते श्रमम् । स जीव-न्नेव सूद्रत्यमाशुगच्छति सान्वयः ॥ मनु० २।१६⊏

जो वेदको न पढ़के अन्यत्र श्रम किया करता है वह अपने पुत्र पौत्र सहित शूद्रभावको शीघ ही प्राप्त होजाता है ॥

बर्जयेन्मधु मांसश्र गन्धं माक्यं रसान् स्त्रियः।

शुक्तानि यानि सर्वाणि प्राणिनां चैव हिंसनम्॥१॥
अभ्यङ्गमञ्जनं चाक्षणोरुपानच्छन्नधारणम्।
कामं कोघं च लोभं च नर्तनं गीतवादनम्॥२॥
चूतं च जनवादं च परिवादं तथाऽन्तम्।
स्त्रीणां च प्रक्षणालम्भमुप्घातं परस्य च ॥३॥
एकः दायीत सर्वन्न न रेतः स्कन्दयेत्कचित्।
कामाद्धि स्कन्दयन्रेतो हिनस्ति वृतमात्मनः॥४॥
मनु० २। १७७-१८० ॥

ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी मद्य, मांस, गन्ध, माला, रस, की और पुरुषका सङ्ग, सब खटाई, प्राणियोंकी हिंसा ।। १।। अङ्गोंका मर्दन, विना निमित्त उपस्थेन्द्रियका स्पर्श, आंखोंमें अञ्चन जूते और छत्रका धारण, काम, कोध, छोभ, मोह, भय, शोक, ई या, हेव, नाच, गान और बाजा बजाना।। २।। श्रूत, जिस िसीकी कथा निन्दा, मिथ्याभाषण, खियोंका दर्शन, आश्रय, दूसंकी ह नि आदि कुकं को सदा छोड़ देवें।। ३।। सर्वत्र एकाकी सोवे वीर्थस्खिलत इसी न करें, जो कामनासे वीर्थस्खिलत करदे तो जानो कि अपने ब्रह्मचर्यक्रतका नाश करदिया।। ४।।

वेदमनुच्याचार्योऽन्तेवासिनमनुद्यास्ति । सत्यं वद । धर्मं चर । स्वाध्यायानमा प्रमदः । अव्चार्याय प्रियं धनमाह्नत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः । स-त्यात्र् प्रमदितव्यम् । धर्मात्र प्रमदितव्यम् । कुद्या-छात्र प्रमदितव्यम् । भृत्ये न प्रमदितव्यम् । स्वा-

ध्यायप्रवचानाभ्यां न प्रमदितव्यम् । देविपितृकार्याः-भ्यां न प्रमदितव्यम् । मातृदेवो भव । पितृदेवो भव । आचार्यदेवो भव । अतिथिदेवो भव । या-न्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि नो इत-राणि। यान्यस्माकः सुचिरितानि तानि त्वयोगा-स्यानि नो इतराणि । ये के चास्मच्छ्रेयाॐसो ब्रा-ह्मणास्तेषां त्वयासनेन प्रश्वसितव्यम् । श्रद्धया दै-यम्। अश्रद्धया देयम्। श्रिया देयम्। हिया देयम्। भिया देयम् । संविदा देयम् । अथ यदि ते कर्म-विचिकित्सा वा वृत्तविचिकित्सा वा स्यात् । ये तत्र ब्राह्मणाः सम्मर्शिनो युक्ता अयुक्ता अॡक्षा धर्मकामा स्युर्यथा ते तत्र वर्तेरन् । तथा तत्र वर्ते-थाः। एष आदेश एष उपदेश एषा वेदोपनिषत्। एतदनुशासनम् । एवमुपासितव्यम् । एवमु चेत-दुपास्यम् ॥ तैत्तिरीय० प्रपा० ७ । अनु० ११ । क० १।२।३।४॥

आचार्य अन्तेवासी अर्थात् अपने शिष्य और शिष्याओंको इस प्रकार उपदेश करे कि तू सदा सत्य बोल, धर्माचरण कर, प्रमा-दरित होके पढ़ पढ़ा, पूर्ण, ब्रह्मचर्ध्यसे समस्त विद्याओंको ब्रहण और आचार्यके लिये प्रिय धन देकर विवाह करके सन्तानोत्पत्ति कर प्रमादसे सत्यको कभी मत छोड़, प्रमादसे धर्मका त्याग मत कर, प्रमादसे आरोग्य और चतुराईको मत छोड़, प्रमादसे उत्तम ऐश्वर्यकी

वृद्धिको मत छोड, प्रमादसे पढ़ने और पढ़ानेको कभी मत छोड़, देव विद्वान और माता पितादिकी सेवामें प्रमाद मत कर, जैसे विद्वानका सत्कार करे उसी प्रकार माता, पिता, आचार्य्य और अतिथिकी सेवा सदा किया कर। जो अनिन्दित धर्मयुक्त कर्म हैं उन सत्यभाषणादि को किया कर, उनसे भिन्न मिथ्याभाषणादि कभी मत कर। जो हमारे सुचरित्र अर्थात् धर्मयुक्त कर्म हों उनका प्रहण कर और जो हमारे पापाचरण हों उनको कभी मत कर जो कोई हमारे मध्यमें उत्तम विद्वान् धर्मातमा ब्राह्मण हैं, उन्हींके समीप बैठ और उन्हींका विश्वास किया कर, श्रद्धांसे देना, अश्रद्धांसे देना, शोभासे देना, ळज्जासे देना, भयसे देना और प्रतिज्ञासे भी देना चाहिये। जब कभी तुस्तको कर्म वा शील तथा उपासना ज्ञानमें किसी प्रकारका संशय उत्पन्न हो तो जो वे विचारशील पक्षपातरहित योगी अयोगी आईचित्त धर्मकी कामना करनेवाला धर्मातमा जन हों जैसे वे धर्म-मार्गमें वर्ते वैसे तू भी उसमें वर्ता कर। यही आदेश, आज्ञा, यही उपदेश, यही वेदकी उपनिषत् और यही शिक्षा है। इसी प्रकार वर्त्तना और अपना चालचलन सुधारना चाहिये॥

# अकामस्य किया काचिद् दृश्यते नेह कर्हिचित् । यद्यद्धि कुरुते किश्चित् तत्तत्कामस्य चेष्टितम् ॥

मनुः २।४॥

मनुष्योंको निश्चय करना चाहिये कि निष्काम पुरुषमें नेत्रका संकोच विकाशका होना भी सर्वथा असम्भव है इससे यह सिद्ध होता है कि जो २ कुछ भी करता है वह २ चेष्टा कामनाके विना नहीं है।।

आचारः परमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्ते एव च । तस्मादस्मिन्सदा युक्तो नित्यं स्यादात्मवान् द्विजः।१।

# आचाराद्विच्युतो विघो न वेदफलमग्तुते। आचारेण तु संयुक्तः सम्पूर्णफलभाग्भवेत्॥२॥

मनुः १। १०८-१०६॥

कहते, सुनने, सुनाने, पढ़ने, पढ़ानेका फल यही है कि जो वेद और वेदानुकूल स्मितियोंमें प्रतिपादित धर्मका आचरण करना इस-लिये धर्माचारमें सदा युक्त रहे।। १।। क्योंकि जो धर्माचरणसे रहित है वह वेद्यतिपादित धर्मजन्य सुखरूप फलको प्राप्त नहीं हो सकता और जो विद्या पढ़के धर्माचरण करता है वही सम्पूर्ण सुखको प्राप्त होता है।। २॥

योऽवमन्येत ते मुखे हेतुशास्त्राश्रयाद् द्विजः। स साधुभिषेहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिन्दकः॥

मनुः २। ११॥

जो वेद और वेदानुकूछ आप्त पुरुषोंके किये शास्त्रोंका अपमान करता है उस वेदनिन्दक नास्तिकको जाति, पङ्कि और देशसे बाह्य कर देना चाहिये, कोंकिः—

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः। एतचतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्॥

मनुः २।१२६

वेद, स्मृति, वेदानुकूल आप्तोक्त मनुस्मृत्यादि शास्त्र, संत्पुरुषोंका साचार जो सनातन अर्थात् वेदद्वारा परमेश्वरप्रतिपादित कर्म्म और सपने आत्मामें प्रिय अर्थात् जिसको आत्मा चाहता है जैसा कि सत्यभाषण, ये चार धर्मके लक्ष्मण अर्थात् इन्हींसे धर्माऽधर्मका निश्चय होता है जो ,पञ्चपातरहित न्याय सत्यका महण असत्यका सर्वथा परित्यागरूप आचार है उसीका नाम धर्म और इससे विपरीत जे

पक्षपातसहित अन्यायाचरण सत्यका त्याग और असत्यका प्रहणहत्त्व कर्म है उसीको अर्थम कहते हैं।।

# अर्थकामेष्यसक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते । धर्म जि-ज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः ॥ मनु २। १३ ॥

जो पुरुव (अर्थ) सुवर्णादि रत्न और (काम) स्त्रीसेवनादिमें नहीं फंसते हैं उन्हींको धर्मका ज्ञान प्राप्त होता है जो धर्मके ज्ञानकी इच्छा करें वे वेद द्वारा धर्मका निश्चय करें क्योंकि धर्माऽधर्मका निश्चय विना वेदके ठीक २ नहीं होता।।

इस प्रकार आचार्य अपने शिष्यको उपदेश करे और विशेषकर राजा इतर क्षत्रिय, वैश्य और उत्तम शूद्र जनोंको भी विद्याका सभ्यास अवश्य करावें। क्योंकि जो ब्राह्मण हैं वे ही केवल विद्या-भ्यास करें और क्षत्रियादि न करें तो विद्या, धर्म, राज्य और धना-दिकी वृद्धि कभी नहीं हो सकती। क्योंकि ब्राह्मण तो केवल पढ़ने पढाने और क्षत्रियादिसे जीविकाको प्राप्त होके जीवन धारण कर अकते हैं। जीविकाके आधीन और क्षत्रियादिके आज्ञादाता और बथावत् परीक्षक दण्डदाता न होने से ब्राह्मणादि सब वर्ण पाखण्ड ही में फंस जाते हैं और जब क्षत्रियादि विद्वान होते हैं तब ब्राह्मण भी अधिक विद्याभ्यास और धर्मपथमें चलते हैं और उन क्षत्रियादि विद्वानोंके सामने पाखण्ड मूठा व्यवहार भी नहीं कर सकते और जब क्षत्रियादि अविद्वान् होते हैं तो वे जैसा अपने मनमें आता है **बै**सा ही करते कराते हैं। इसिछिये ब्राह्मण भी अपना कल्याण चाहें तो क्षत्रियादिको वेदादि सत्यशास्त्रका अभ्यास अधिक प्रयत्नसे करावें क्योंकि क्षत्रियादि ही विद्या, धर्म राज्य और लक्ष्मीकी वृद्धि करनेहारे हैं; वे कभी भिक्षावृत्ति नहीं करते इसलिये वे विद्यान्यवहारमें पक्षपातीः भी नहीं हो सकते और जब सब वर्णोंमें विद्या सुशिक्षा होती है तब कोई भी पालण्डरूप अधर्मयुक्त मिथ्या व्यवहारको नहीं चला सकता

तितीय

इससे क्या सिद्ध हुआ कि क्षत्रियादिको नियममें चलानेवाले ब्राह्मण और संन्यासी तथा ब्राह्मण संन्यासीको सुनियममें चलानेवाले क्षत्रि-यादि होते हैं। इसलिये सब वर्णीके स्त्री पुरुषोंमें विद्या और धर्मका प्रचार अवश्य होना चाहिये। अब जो २ पढ़ना पढ़ाना हो वह अच्छे प्रकार परीक्षा करके होना योग्य है-परीक्षा पांच प्रकारसे होती है। एक - जो २ ईश्वरके गुण, कर्म, स्वभाव और वेदोंसे अनुकुछ हो वह २ सत्य और उससे विरुद्ध असत्य है। दूसरी जो २ सृष्टिकः-मसे अनुकूछ वह २ सत्य और जो २ सृष्टिकमसे विरुद्ध है वह सब असत्य है जैसे कोई कहे कि विना माता पिताकें योगसे लडका उत्पन्न हुआ ऐसा कथन सृष्टिक्रमसे विरुद्ध होनेसे सर्वथा असत्य हैं। तीसरी "आप्त" अर्थात् जो धार्मिक विद्वान्, सत्यवादी, निष्कपटियोंका संग **उपदेशके अनुकू**ल है वह २ माह्य और जो २ विरुद्ध वह २ अमाह्य है। चौथी—अपने आत्माकी पवित्रता विद्यांके अनुकुछ अर्थान् जैसा अपनेको सुख प्रिय और दुःख अप्रिय है वैसे ही सर्वत्र समम्र लेना कि मैं भी किसीको दुःख वा सुख ढूंगा तो वह भी अप्रसन्न और प्रसन्न होगा । और पांचवीं—आठों प्रमाण अर्थात् प्रत्यक्ष, अनुमान, **उ**पमान, शब्द, ऐतिहा, अर्थापत्ति, सम्भव और अभाव इनमेंसे प्रत्य-क्षके लक्ष्णादिमें जो २ सूत्र नीचे लिखेंगे वे २ सब न्यायशास्त्रके प्रथम और दिनीय अध्यापक जानो ॥

इन्द्रियार्थसित्रिकर्षीत्पन्नं ज्ञानमञ्चपदेश्यमञ्चिभ-चारि व्यवसायात्मकम्प्रत्यक्षम् ॥ न्याय० अ०१। आहिक १। सूत्र ४॥

जो श्रोत्र, त्वचा, चञ्च, जिह्वा और ब्राणका शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्धक साथ अव्यवहित अर्थात् आवरणरहित सम्बन्ध होता है, इन्द्रियोंक साथ मनका और मनके साथ आत्माके संयोगसे ज्ञान उत्पन्न होता है उसको प्रत्यक्ष कहते हैं, परन्तु जो व्यपदेश्य अर्थात् संज्ञासंज्ञीके सम्बन्धसे उत्पन्न होता है वह ज्ञान न हो। जैसा किसीने किसीसे कहा कि "तू जल ले आ" वह लाके उसके पास धरके बोखा कि "यह जल है" परन्तु वहां "जल" इन दो अक्षरोंकी संज्ञा लाने वा मंगानेवाला नहीं देख सकता है। किन्तु जिस पदार्थका नाम जल है बही प्रत्यक्ष होता है और जो शब्दसे ज्ञान उत्पन्न होता है वह शब्द-प्रमाणका विषय है। "अव्यभिचारि" जैसे किसीने रात्रिमें खम्मेको देखके पुरुषका निश्चय कर लिया जब दिनमें उसको देखा तो रात्रिका पुरुषज्ञान नष्ट होकर स्तम्भज्ञान रहा ऐसे विनाशीज्ञानका नाम व्यभिचारि है सो प्रत्यक्ष नहीं कहाता। "व्यवसायात्मक" किसीने दूरसे नदीके बालुको देखके कहा कि "वहां वस्न सूख रहे हैं जल है वा और कुल है" "वह देवदत्त खड़ा है वा यज्ञदत्त" जवतक एक निश्चय न हो सवतक वह प्रत्यक्षज्ञान नहीं है किन्तु जो अव्यपदेश्य, अव्यभिचारि और निश्चयात्मक ज्ञान है उसीको प्रत्यक्ष कहते हैं।

दूसरा अनुमान\_

# अथ तत्पूर्वकं त्रिविधमनुमानं पूर्ववच्छेषवत्सामा-न्यतो दृष्टश्च ॥ न्याय० अ० १ आ० १ सू० ५ ॥

जो प्रत्यक्षपूर्वक अर्थात् जिसका कोई एकदेश वा सम्पूर्ण द्रव्य किसी स्थान वा कालमें प्रत्यक्ष हुआ हो उसका दूर देशसे सहचारी एक देशके प्रत्यक्ष होनेसे अदृष्ट अवयवीका ज्ञान होनेको अनुमान कहते हैं। जैसे पुत्रको देखके पिता, पर्वतादिमें धूमको देखके अग्नि, जगत् में सुख दुःख देखके पूर्वजन्मका ज्ञान होता है। वह अनुमान तीन प्रकारका है।

एक "वृ्बवत्" जैसे बादलोंको देखके वर्षा, विवाहको देखके सन्ता-नोत्पत्ति, पढ़ते हुए विद्यार्थियोंको देखके विद्या होनेका निश्चय होता है, इसादि जहां २ कारणको देखके कार्यका ज्ञान हो वह "पूर्ववत्"।

दूसरा "शेषवत" अर्थात् जहां कार्यको देखके कारणका

ज्ञान हो जैसे नदीके प्रवाहकी बढ़ती देखके अपर हुई वर्षाका, पु<sup>्राको</sup> देखके पिनाका, सृष्टिकी देखके अनादि कारणका तथा कर्त्ता ईश्वरक<sup>ा</sup> जीर पाप पुण्यके आचरण देखके सुख दुःखका ज्ञान होता है \* इसीको कैशेशकत<sup>्र</sup> कहते हैं।

तीसरा "सामान्यतोदृष्ट" जो कोई किसीका कांग्र कारण नहीं परन्तु किसी प्रकारका साथम्य एक दूसरेके साथ हो जैसे कोई भी विना चले दूसरे स्थानको नहीं जा सकता वैसे ही दूसरोंका भी स्थानान्तरमें जाना विना गमनके कभी नहीं हो सकता। बनुमान शब्दका अर्थ यही है कि "अनु अर्थात् प्रत्यक्षस्य पश्चान्मीयते झायतं येन तद्नुमानम्" जो प्रत्यक्षके पश्चात् उत्पन्न हो जैसे धूमके प्रत्यक्ष देखं विना अदृष्ट अगिनका झान कभी नहीं हो सकता।

तीसरा उपमान-

### प्रसिद्धसाधर्म्यात्साध्यसाधनमुपमानम् ॥

न्याय० अ०१। आ०१। सू• ६॥

जो प्रसिद्ध प्रत्यक्ष साथम्यमें साथ्य अर्थान् सिद्ध करने योग्य ह्यानका सिद्धि करनेका साथन हो उसको उपमान कहते हैं। "उपमीयते येन तदुपमानम्" जैसे किसीने किसी भृत्यसे कहा कि "तू विष्णुमित्रको बुळा छा" वह बोळा कि "मैंने उसको कभी नहीं देखां" उसके स्वामीने कहा कि "जैसा यह देवरृत्त है वसा ही वह विष्णुमित्र है" वा जैसी यह गाय है वैसी ही गवय अर्थान् नीळगाय होती है, जब वह वहां गया और देवदृत्तके सहश उसको देख निश्चय कर ळिया कि यही विष्णुमित्र है उसको छे आया। अथवा किसी जङ्गळमें जिस पशुको गायके तुल्य रेखा उसको निश्चय कर ळिया कि इसीका नाम गवय है।

चोथा शब्दप्रमाण--

<sup>\*</sup> स्पेर पाप पुण्यक आचरणका सुख दुःख देखके **झान होता है।** 

#### आप्तोपदेश: शब्द:॥ न्या० अ०१ आ०१ स्०७॥

जो आप्त अर्थात् पूर्ण विद्वान, धर्मातमा, परोपकारप्रिय, सत्यवादी, पुरुषार्थी, जितेन्द्रिय पुरुष जैसा अपने आत्मामें जानता हो और जिससे सुख पाया हो उसीके कथनकी इच्छासे प्रेरित सब मनुष्योंक कस्याणार्थ उपदेश हो अर्थात् [जो ] जितने पृथिवीसे लेके परमेश्वर पर्यन्त पदार्थीका ज्ञान प्राप्त होकर उपदेश होता है। जो ऐसे पुरुष और पूर्ण आप्त परमेश्वरके उपदेश वेद हैं उन्हींको शब्दप्रमाण जानो। पांचवां ऐतिह्य—

# 🔑 न चतुष्ट्वमैतिह्यार्थीपत्तिसम्भवाभावप्रामाण्यात्।

न्याय• २ | २ | १ |।

जो इतिह अर्थात् इस प्रकारका था उसने इस प्रकार किया अर्थात् किसीके जीवनचरित्रका नाम ऐतिहा है।

#### **छठा** अर्थापत्ति—

"अर्थादापत्यते सा अर्थापत्तिः" केनिच दुच्यते "सत्सु घनेषु वृष्टिः स्रित कारणे कार्य्यं भवतीति किमत्र प्रसच्यते, असत्सु घनेषु वृष्टिर-स्रित कारणे च कार्यं न भवति" जैसे किसीने किसीसे कहा कि "बहुल के होनेसे वर्षा और कारणके होनेसे कार्य उत्पन्न होता है" इससे विना कहे यह दूसरी बात सिद्ध होती है कि विना बहुल वर्षा और विना कारणके कार्य्य कभी नहीं हो सकता।

#### सातवां सम्भव--

"सम्भवित यस्मिन् स सम्भवः" कोई कहे कि "माता पिताके विना सन्तानोत्पत्ति, किसीने मृतक जिलाये, पहाड़ उठाये, समुद्रमें पत्थर तराये, चन्द्रमाके दुकड़े किये, परमेश्वरका अवतार हुआ, मनुष्यके सींग देखे और वन्ध्याके पुत्र और पुत्रीका विवाह किया" इत्यादि सब असम्भव हैं क्यों कि ये सब सुष्टिकमसे विकद्ध हैं। और जो बात सुष्टिकमके अनुकूल हो वही सम्भव है।

*बाठवां अभाव*—

"न भवन्ति यस्मिन् सोऽभावः" जैसे किसीने किसीसे कहा कि "हाथी हे आ" वह वहां हाथीका अभाव देखकर जहां हाथी था वहांसे हे आया। ये आठ प्रमाण। इनमेंसे जो शब्दमें ऐतिहा और अनु-मानमें अर्थापत्ति, सम्भव और अभावकी गणना करें तो चार प्रमाण रह जाते हैं। इन पांच प्रकारकी परीक्षाओंसे सत्यासत्यका निश्चय मनुष्य कर सकता है अन्यथा नहीं।

धर्मविशेषप्रस्नताद् द्रव्यग्रणकर्मसामान्यविशेषस-मवायानां पदार्थानां साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां तत्वज्ञाना-न्निःश्रेयसम्॥ वैशेषिक ।अ०१ आ०१ स्र०४॥

जब मनुष्य धर्मके यथायोग्य अनुष्ठान करनेसं पवित्र हाकर "साधर्म्य" अर्थान् जो तुल्य धर्म है जैसा पृथिवी जड़ और जल भी जड़ "वैधर्म्य" अर्थान् पृथिवी कठोर और जल कोमल इसी प्रकारसे द्रव्य गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय इन छः पदार्थोंके तत्वज्ञानसे अर्थान् स्वरूपज्ञानसे "निःशेयसम्" मोक्षको प्राप्त होता है । पृथिव्याऽपस्तेजोवायुराकादां कालो दिगात्मा मन

#### ्रशयव्याऽपस्तजावायुराकाश काला दिगात्मा म इति द्रव्याणि ॥ वै० अ० १ आ० १ सू० ५ ॥

पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा और मन ये नव **इ**न्य हैं।

# कियागुणवत्समवायिकारणमिति द्रव्यलक्षणम् ॥

वैशे० १ । १ । १५ ॥

"क्रियाश्च गुणाश्च विद्यन्ते यस्मिन्स्तत् क्रियागुणवत्' जिसमें क्रियागुण और केवल गुण रहें उसको द्रव्य कहते हैं। उनमेंसे पृथिबी, जल, तेज, वायु, मन और आत्मा ये छः द्रव्य क्रिया और गुणवाले हैं। तथा आकाश, काल और दिशा ये तीन क्रिया रहित गुणवाले हैं।

(समनायि) "समवेतुं शीलं यस्य तत् समनायि, प्राग्वृत्तित्वं कारणं समनायि च तत्कारणं च समनायिकारणम्" "लक्ष्यते येन तत्कप्रणम्" जो मिलनेके स्वभावयुक्त कार्यसे कारण पूर्वकालस्थ हो उसीको द्रव्य कहते हैं जिससे लक्ष्य जाना जाय जैसा आंखसे रूप जाना जाता है उसको लक्षण कहते हैं।

# रूपरसगन्धरपर्शवती पृथिवी॥ वै०। २। १। १॥

रूप, रस, गन्ध, स्पर्शवाली पृथिवी है। उसमें रूप, रस और स्पर्श अग्नि, जल और वायुके योगसे हैं॥

### व्यवस्थितः पृथिव्यां गन्धः ॥ वै० २ । २ । २ ॥

पृथिवीमें गन्य गुण स्वामाविक है। वैसे ही जलमें रस, अग्नि**में** ह्रुप, वायुमें स्पर्श और आकाशमें शब्द स्वामाविक है।।

## रूपरसस्पर्शवत्य आपो द्रवाः स्निग्धाः॥

वैशे० २ । १ । २ ॥

रूप, रस ओर स्पर्शवान् द्रवीभूत और कोमल जल कहाता है। परन्तु इनमें जलका रस स्थाभाविक गुण तथा रूप स्पर्श अग्नि और वायुके योगसे हैं।।

# अप्सु शीतता॥ वै०२।२।५॥

और जलमें शीतलत्व गुण भी खाभाविक है।।

# तेजो रूपस्पर्ञावत् ॥ वै०२।१।३॥

जो रूप और स्पर्शवाला है वह तेज है। परन्तु इसमें रूप स्वाभाविक और स्पर्श वायुके योगसे है।।

### स्पर्शवान् वायुः ॥ वै० २।१।४॥

स्पर्श गुणवाला वायु है। परन्तु इसमें भी ख्याता, शीतल्या, क्रेज और जलके योगसे रहते हैं॥

### त आकादो न विद्यन्ते ॥ वै०२।१।५॥

रूप, रस, गन्ध और स्पर्श आकाशमें नहीं हैं। किन्तु शब्द ही सकाशका गुण है।।

### निष्क्रमणं प्रवेदानमित्याकादास्य लिङ्गम्॥

वैशे० २ । १ । २० ॥

जिसमें प्रवेश और निकलना होता है वह आकाशका लिङ्ग है।।

# कार्य्यान्तराष्ट्रादुर्भावाच्च राब्दः स्पर्शवतामग्रणः॥

वैशे॰ २ । १ । २५ ॥

अन्य पृथिवी आदि कार्योंसे प्रकट न होनेसे शब्द स्पर्श गुणवाछे भूमि आदिका गुण नहीं है किन्तु शब्द आकाश ही का गुण है।।

# अपरस्मिन्नपरं युगपच्चिरं क्षिप्रमिति काललिङ्गानि॥

वैशे० २ | २ । ६॥

जिसमें अपर पर (युगपत्) एकवार (चिरम्) विलम्ब (श्रिप्रम्) शीव इत्यादि प्रयोग होते हैं उसको काल कहते हैं॥

# नित्येष्वभावादनित्येषु भावात्कारणे कालाख्येति॥

.वैशे॰ २**।२**।६॥

जो नित्य पदार्थोंमें न हो और अनित्योंमें हो इसलिये कारणमें ही काल संज्ञा है।।

## इत इदमिति यतस्तिद्दिश्यं लिङ्गम् ॥ वै० २।२।१०॥

यहांसे यह पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, ऊपर नीचि जिसमें यह व्यवहार होता है उसीको दिशा कडते हैं॥

आदित्यसंयोगाद् भूतपूर्वीद् भविष्यतो भूताच्च प्राची ॥ वै० २ । २ । १४ ॥

जिस ओर प्रथम आदिखको संयोग हुआ, है, होगा, उसको पूर्व

दिशा कहते हैं। और जहां अस्त हो उसको पश्चिम कहते हैं पूर्वा-भिमुख मनुष्यके दाहिनी ओर दक्षिण और बाई ओर उत्तर दिशा कहाती है।।

#### एतेन दिगन्तरालानि व्याख्यातानि॥

वैशे• २ | २ | १६ ||

इससे पूर्व दक्षिणके बीचकी दिशाको आग्नेयी, दक्षिण पश्चिमके बीचको नैऋ ति, पश्चिम उत्तरके बीचको वायवी और उत्तर पूर्वके बीचको ऐशानी दिशा कडते हैं।।

इच्छाद्वे षप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनो लिङ्ग-मिति ॥ न्याय० अ०१ सु०१०॥

जिसमें (इच्छा ) राग, (द्वेष ) वैर, (प्रयत्न ) पुरुषांथ, सुख, दुःख, (ज्ञान ) जानना गुण हों वह जीवात्मा [कहाता ] है। वैशेषिकमें इतना विशेष है।।

# प्राणाऽपाननिमेषोन्मेषजीवनमनोगतीन्द्रियान्तर्वि-काराः सुखदुःखेच्छाद्वे षप्रयत्नाश्चात्मनो लिङ्गानि॥

वैंशे० ३ | २ | ४ ||

(प्राण) बाहरसे वायुको भीतर लेना (अपान) भीतरसे वायुको निकालना (निमेष) आंखको नीचे ढांकना (उन्मेष) आंखको उत्तर उठाना (जीवन) प्राणका धारण करना (मनः) मनन विचार अर्थात् ज्ञान (गित) यथेष्ठ गमन करना (इन्द्रिय) इन्द्रियोंको विषयोंमें चलाना उनसे विषयोंका प्रहण करना (अन्तर्विकार) क्षुया, तृषा, ज्वर, पीड़ा आदि विकारोंका होना, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष और प्रयत्न ये सब आत्माके लिङ्क अर्थात् कर्म और गुण हैं।।

युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिंगम् ॥

जिससे एक कालमें दो पदार्थोंका प्रहण शान नहीं होता उसको मन कहते हैं। यह द्रव्यका स्वरूप और लक्षण कहा अब गुणोंको कहते हैं--

रूपरसगन्धस्पर्ञाः संख्यापरिमाणानि पृथक्त्वं संयोगविभागौ परत्वाऽपरत्वे बुद्धयः सुखदुःखे इ-च्छाद्वेषौ प्रयत्नाश्च गुणाः॥ वै०१।१।६॥

रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, पग्त्व, अपरत्व, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेप, प्रयत्न, गुरुत्व, द्रवत्व, स्तेह, संस्कार, धर्म, अधूर्म और शब्द ये २४ गुण कहाते हैं॥

द्रव्याश्रय्यगुणवान् संयोगविभागेष्वकारणमनपेक्ष इति गुणलक्षणम् ॥ वै० १। २। १६ ॥

गुण उसको कहते हैं कि जो द्रव्यके आश्रय रहे अन्य गुणका धारण न करें संयोग और विभागमें कारण न हो ( अनपेक्ष ) अर्थात् एक दूसरेकी अपेक्षा न करें ॥

श्रोत्रोपलन्धिर्द्व द्विनिर्गाद्यः प्रयोगेणाऽभिज्वलित आकारादेशः रान्दः॥ महाभाष्ये॥

जिसकी श्रोत्रोंसे प्राप्ति, जो बुद्धिसे प्रहण करने योग्य और प्रयोगसे प्रकाशित तथा आकाश जिसकः देश है वह शब्द कहाता है। नेत्रसे जिसका प्रहण हो वह रूप, जिह्नासे जिस प्रिष्टादि अनेक प्रकारका प्रहण होता है वह रस, नासिकासे जिसका प्रहण हो वह गन्ध, त्वचासे जिसका प्रहण होता है वह स्पर्श एक दि इत्यादि गणना जिससे होती है वह संख्या, जिससे तोल अर्थात् हलका भारी विदित होता है वह परिमाण, एक दूसरेसे अलग होना वह प्रथक्त्व, एक दूसरेके साथ मिलना वह संयोग, एक दूसरेसे मिं दूष के अनेक इकड़े होना वह विभाग, इससे यह पर है वह पर, उससे यह उरे हैं

वह अपर, जिससे अच्छे बुरेका ज्ञान होता है वह बुद्धि, आनन्दका नाम सुल, क्लेशका नाम दुःल, इच्छा-राग, द्वेष-विरोध, (प्रयत्न) अनेक प्रकारका बल पुरुषार्थ, (गुरुत्व) भारीपन, (द्रवत्व) पिघ-छजाना, (स्नेह) प्रीति और चिकनापन, (संस्कार) दूसरेके योगसे वासनाका होना, (धर्म) न्यायाचरण और कठिनत्वादि, (अधर्म) अन्यायाचरण और कठिनत्वादि, (२४) मुण हैं।।

ँ उत्क्षेपणमवक्षेपणमाकुश्चनं प्रसारणं गमनमिति कर्माणि ॥ वै०१।१।७॥

"उत्स्पिण" उत्परको चेष्टा करना "अवस्पण" नीचेको चेष्टा करना "आकुञ्चन" सङ्कोच करना "प्रसारण" फैछाना "गमन" आना जाना घूमना आदि इनको कर्म कहते हैं। अब कर्मका छक्षण—

# एकद्रव्यमगुणं संयोगविभागेष्वनपेक्षकारणमिति कर्मलक्षणम् ॥ वै० १ । १ । १७ ॥

"एकन्द्रव्यमाश्रय आधारो यस्य तदेकद्रव्यं न विद्यते गुणो यस्य यस्मिन् वा तद्गुणं संयोगेषु विभागेषु चापेक्षारहितं कारणं तत्कर्म-उक्षणम्" अथवा "यत् क्रियते तत्कर्म, उक्ष्यते येन तङ्क्षणम्, कर्मणो उक्क्षणं कर्मठक्षणम्" द्रव्यके आश्रित गुणोंसे रहित संयोग और विभाग होनेमें अपेक्षारहित कारण हो उसको कर्म कहते हैं।।

#### द्रव्यगुणकर्मणां द्रव्यं कारणं सामान्यम् ॥

वैशे॰ १।१।१८॥

जो कार्य द्रव्य गुण और कर्मका कारण द्रव्य है वह सामान्य द्रव्य है।।

द्रव्याणां द्रव्यं कार्यं सामान्यम् ॥ वै०१।१।२३॥ जो द्रव्योंका कार्यं द्रव्य है वह कार्यपनसे सब कार्योंने सामान्य है।

[तृतीरीय

# द्रव्यत्वं गुणत्वं कर्मत्वश्च सामान्यानि विशेषाश्चरि॥

बैशे०१।२।५५।।

द्रव्योंमें द्रव्यपन, गुणोंमें गुणपन, कर्मोंमें कर्मपन ये सब सामान्धेष और विशेष कुला हैं क्योंकि द्रव्योंमें द्रव्यत्व सामान्य और गुणत्व क्रमरवान द्वव र र िरोप है इसी प्रकार सर्वत जानना ।

### सामान्यं विशेष इति बुदध्यपेक्षम्॥

वैशे० १। २ । ३ ॥

सामान्य और विशेष बुद्धिकी अपेक्षासे सिद्ध होते हैं। जैसं---मनुष्य व्यक्तियोमें मनुष्यत्व सामान्य और पशुत्वादिसे विशेष तथा स्त्रीत्व और पुरुपत्व इनमें ब्राह्मणत्व क्षत्रियत्व वैश्यत्व शुद्रत्व भी विशेष है। ब्राह्मण व्यक्तियोमं ब्राह्मणत्व सामान्य और क्षत्रियादिसे विशेष है इसी प्रकार सर्वत्र जानो ॥

# इहेद्मिति यतः कार्यकारणयोः स समवायः॥

वैशे• ७।२।२६॥

कारण अर्थात् अवयवोंमं अवयवी कार्योमं क्रिया क्रियावान् गुण गुणी जाति व्यक्ति कार्य कारण अवयव अवयवी इनका नित्य सम्बन्ध होनेसं समवाय कहाता है और जो दूसरा द्रव्यांका परस्पर सम्बन्ध होता है वह संयोग अर्थात् अनित्य सम्बन्ध है ॥

# द्रव्यगुणयोः सजातीयारम्भकत्वं साधम्र्यम् ॥

वैशे०१।१।६॥

जो द्रव्य और गुणका समान जातीयक कार्यका आरम्भ होता है ष्यको सःधम्य कहते हैं। जैसे पृथिवीमें जड़त्व धर्म और घटादि कार्योत्यादकत्व स्वसदृश धर्म है वैसे ही जलमें भी जड़त्व और हिम सादि असदश कार्यका आरम्भ पृथिवीके साथ जलका और जलके साथ पृथिबीका तुल्य धर्म हे अर्थात् "द्रव्यगुणयोविजातीयारम्भकत्वं

91

वैधर्म्यम्" यह विदित हुआ है कि जो द्रव्य और गुणका विरुद्ध की और कार्यका आरम्भ है उसको वैधर्म्य कहते हैं। जैसे पृथिवीमें किन्न-नत्व शुष्कत्व और गन्धवत्व धर्म जलसे विरुद्ध और जलका द्रवक कोमलता और रस गुणयुक्तता पृथिवीसे विरुद्ध है।।

कारणभावात् कार्यभावः ॥ वै० ४ । १ । ३ ॥

कारणके होने ही से कार्य होता है।

न तु कार्याभावात्कारणाभावः ॥ वै०१।२।२॥ कार्यके अभावसे कारणका अभाव नहीं होता॥

कारणाऽभावात्कार्याऽभावः॥ वै०।१।२।१

कारणके न होनेसे कार्य कभी नहीं होता।।

कारणगुणपूर्वेकः कार्यगुणो दृष्टः॥वै०२।१।२४॥ जैसे कारणमें गुण होते हैं वैसे ही कर्यमें होते हैं। परिणाम है

प्रकारका है :--

अणु महदिति तस्मिन्विशेषभावाद्विशेषाभावाच्य॥

वैशे० ७ । १ । ११ 🏗

(अणु) सुरूम (महत्) बड़ा जैसे त्रसरेणु लिक्षासे छोटा और द्व्यणुकसे बड़ा है तथा पहाड़ प्रथिवीसे छोटे वृक्षोंसे बड़े हैं॥

सदिति यतो द्रव्यगुणकर्मसु सा सत्ता ॥

वैशे॰ १।२।७

जो द्रव्य गुण और कर्मोमें सत् शब्द अन्वित रहता है अर्थात् "सद् द्रव्यम् – सद् गुणः – सद् सत्कर्म" सत् द्रव्य, सत् गुण, सत् कर्म अर्थात् वर्तमान काळवाची शब्दका अन्वय सबके साथ रहता है।

भावोतुवृत्ते रेवहेतुत्वात्सामान्यमेव ॥

वैशे०१।२।४॥

को सबके साथ अनुवर्त्तमान होनेसे सत्तारूप भाव है सो महासामान्य

इहाता है यह क्रम भावरूप द्रव्योंका है और जो अभाव है वह पांच प्रकारका होता है।

### कियागुणव्यपदेशाभावात्प्रागसत् ॥ वै० ६ । १ । १ ॥

क्रिया और गुणके विशेष निमित्तके अभावसे प्राक् अर्थात् पूर्व ( असत् ) न था जैसे घट, वस्त्रादि उत्पत्तिके पूर्व नहीं थे इसका नाम प्रागभाव । दूसराः—

### सदसत्॥ वैद्योषिक । ६ । १ । २ ॥ .

जो होके न रहे जैसे घट उत्पन्न होके नष्ट होजाय यह प्रध्वंसाभाव कहाता है । तीसराः—

#### सच्चासत् ॥ वैद्योषिक । ६ । १ । ४ ॥

जो होवे और न होवे जैसे "अगौरश्वोऽनश्वो गौः" यह घोड़ा गाय नहीं और गाय घोड़ा नहीं अर्थात् घोड़ेमें गायका और गायमें घोड़ेका अभाव और गायमें गाय, घोड़ेमें घोड़ेका भाव है। यह अन्योन्न्याभाव कहाना है। चौथाः—

### यच्चान्यदसदतस्तदसत्॥ वैद्योषिक ६।१।५॥

जो पूर्वोक्त तीनों अभावोंसे भिन्न है उसको अत्यन्ताभाव कहते है। बैसे—"नरशृङ्ग" अर्थात् मनुष्यका सींग "खपुष्प" आकाशका फूछ बौर बन्ध्यापुत्र" बन्ध्याका पुत्र इत्यादि । पांचवां—

# नास्ति घटो गेह इति सतो घटस्य गेहसंसर्ग प्रति-षेघः ॥ वैशेषिक ६ । १ । १० ॥

घरमें घड़ा नहीं अर्थात् अन्यत्र है घरके स.थ थड़ेका सम्बन्ध नहीं है, ये पांच अभाव कहाते हैं।

#### इन्द्रियदोषात्संस्कारदोषाच्चाविद्या ॥

ं वैशे० है। २ ११० ॥

इन्द्रियों और संस्कारके दोषसे अविद्या उत्पन्न होती है !

# तद्दुष्टज्ञानम् ॥ वै० ६ । २ । ११ ॥

जो दृष्ट अर्थान् विषरीन ज्ञान है उसको अविद्या कहते हैं।

### अदुष्टं विद्या॥ वै० ६। २। १२॥

जो अदुर अर्थात् अवार्थ ज्ञान हे उसको विद्या कहते हैं।
पृथिवयादिरूपरसगन्धस्पर्शा द्रव्या नित्यत्वादनि-

त्यास्य ॥ वै० ७ । १ । २ ॥

# एतेन नित्येषु नित्यत्वमुक्तम् ॥ वै० ७ । १ । ३ ॥ 🌣

जो कार्यरूप पृथिन्यादि पदार्थ और उनमें रूप, रस, गन्ध, स्पर्श गुण हैं ये सब द्रव्योंके अतित्य होतेसे अतित्य हैं और जो इससे कारणरूप पृथिन्यादि निःय द्रन्योंमें गन्धादि गुण हैं वे नित्य हैं।

#### सद्कारणवन्नित्यम् ॥ वै० ४ । १ । १ ॥

जो विद्यमान हो और जिसका कारण कोई भी न हो वह नित्य है अर्थात्—"सत्कारणवदनित्यम्" जो कारणवाले कार्यरूप गुण हैं वे अनित्य कहाते हैं।

# ्यस्येद कार्यं कारणं संयोगि विरोधि समवायि चेति लैंगिकम्॥ वै०६।२।१॥

इसका यह कार्य वा कारण है इत्यादि समनायी, संयोगि, एकार्थ-समनायि और विरोधि यह चार प्रकारका छैङ्किक अर्थात् छिङ्कछिङ्की के सम्बन्धसे ज्ञान होता है। "समनायि" जैसे आकाश परिमाण बाळा है "संयोगि" जैसे शरीर त्वचावाळा है इत्यादिका नित्य संयोग है "एकार्थसमनायि" एक अर्थमें दोका रहना जैसे कार्यरूप स्पर्श कार्य का छिङ्क अर्थात् जाननेवाळा है "विरोधि" जैसे हुई वृष्टि होनेवाळी इष्टिका विरोधी छिङ्क है "व्याप्ति":—

नियतभर्मसाहित्यमुभयोरेकतरस्य वा व्याप्तिः।

# निजञ्ञात्त्युद्भवमित्याचार्याः । आधेयञ्चक्तियोग इति पश्चित्राखः ॥ सांख्य० ५ । २६-३१-३२ ॥

जो दोनों साध्य साधन अर्थात् सिद्ध करने योग्य और जिससे सिद्ध किया जाय उन दोनों अथवा एक, साधनमात्रका निश्चित धर्म का सहचार है उसीको व्याप्ति कहते हैं जैसे धूम और अग्निका सहचर है।। २६।। नथा व्याप्त जो धूम उसकी निज शक्तिसे उत्पन्त होता है अर्थात् जब देशान्नरमें दूर धूम जाता है तब विना अग्निको के छेदन सेदन, सामर्थ्यसे जलादि पदार्थ धूमरूप प्रकट होता है।।३१।। भैसे महत्तत्वादिमें प्रकृत्यादिकी व्यापकता बुद्ध्यादिमें व्याप्ता धर्मके सम्बन्धका नाम व्याप्ति है। जैसे शक्ति आधेयरूप और शक्तिमान् साधाररूपका सम्बन्ध है।।३२।। इत्यादि शास्त्रोंके प्रमाणादिसे परीक्षा करके पहें और पढ़ावं। अन्यथा विद्यार्थियोंको सत्य बोध कभी नहीं हो सकता। जिस २ प्रत्थको पढ़ावं उस २ की पूर्वोक्त प्रकारसे परीक्षा करके जो सत्य ठहरे वह २ प्रत्थ पढ़ावं जो २ इन परीक्षाओं से विरुद्ध हों उन प्रत्थोंको न पढ़ें न पढ़ावें क्योंकि—

### रुक्षणप्रमाणाभ्यां वस्तुसिद्धिः।

लक्क्षण जैसा कि "गन्धवती पृथिवी" जो पृथिवी है वह गन्धवाली है ऐसे लक्क्षण और प्रत्यक्षादि प्रमाण इनसे सब सत्याऽसत्य और पदार्थोंका निर्णय हो जाता है इसके विना कुछ भी नहीं होता।

### अथ पठनपाठनविधिः॥

अब पढ़ने पढ़ानेका प्रकार लिखते हैं—प्रथम पाणिनिमुनिक्कत शिक्षा जो कि सूत्ररूप है उसकी रीति अर्थात् इस अक्षरका यह स्थाक यह प्रयत्न यह करण है जैसे "प" इसका ओष्ठ स्थान स्पृष्ट प्रयत्न और प्राण तथा जीभकी किया करनी करण कहाता है। इसी प्रकार यथा-

बोग्य सब अक्षरोंका उच्चारण माता पिता आचार्य सिखळावें । तरन-न्तर व्याकरण अर्थान् प्रथम अष्टाध्यायीके सूत्रोंका पाठ जैसे ैंचृद्धि-रादैच्" फिर पदच्छेद जैसे "बृद्धिः, आत्, ऐच् वा आदैच्" फिर समास "आच ऐच आदैच्" और अर्थ जैसे "आदैचां वृद्धिसंख्या कि-यते" अर्थात् आ, ऐ, औं की वृद्धि संज्ञा [ कीजाती ] है "तः परो य-स्मात्स तपरस्कादपि परस्तपरः" तकार जिससे परे और जो तकार सं भी परे हो वह तपर कहाता है इससे क्या सिद्ध हुआ जो आकारसे परंत् और त्से परे ऐच् दोनों तपर हैं तपरका प्रयोजन यह है कि इस्व और प्छुतकी वृद्धि संज्ञा न हुई। उदाहरण (भागः ) यहां 'भज्' धातुसं "वञ्" प्रत्ययके परं "व, ब्" की इत्संज्ञा होकर लोप होगया पश्चात् "भज् अ" यहां जकारके पूर्व भकारोत्तर अकारको बृद्धिसंज्ञक आकार होगया है। तो भाज पुनः "ज्" को ग् हो अकारके साथ मिलकं "भागः" ऐसा प्रयोग हुआ । "अध्यायः" यहां अधि-पूर्वक "इङ्" धातुके हस्व इके स्थानमें "घन्" प्रत्ययके परे "ऐ" बृद्धि और उसको "आय्" हो मिलके "अध्यायः"। "नायकः" यहां "नीच्" धातुके दीर्घ ईकारके स्थानमें "ण्वुल्'' प्रत्ययके परे "ऐ" बृद्धि और एसको आय होकर मिलके "नायकः"। और "स्तावकः" यहां "स्तु" धातुसे "ज्वुल्" प्रत्यय होकर हस्व उकारके स्थानमें औ वृद्धि आव् आदेश होकर अकारमें मिल गया तो "स्तावकः"। (कृष्) धातुसे आगे "ण्वुल्" प्रत्यय ल् की इत्संज्ञा होके लोप "वु" के स्थानमें अक आदेश और भृकारके स्थानमें "आर्" वृद्धि होकर "कारकः" सिद्ध डुंआ। जो २ सूत्र आगे पीछेके प्रयोगमें लगे उनका कार्य सब बतलाता नाय और स्लेट अथवा लकड़ीके पट्टे पर दिखला दिखलाके कचा रूप धरके जैसे "भज्+घञ्+सु" इस प्रकार धरके प्रथम घकारका फिर च्का लोप होकर "भृज्+अ+सु" ऐसा रहा फिर अ को आकार षृद्धि और ज् के स्थानमें "ग्" होनेसे "भाग्+अ+सु" पुनः अकारमें मिल जानेसे "भाग+सु" रहा, अब उकारकी इत्संज्ञा "सु" के स्थानमें

"रु" होकर पुनः उकारकीं इत्संज्ञा लोप होजाने पश्चात् "भागर्" ऐसा रहा अब रेफके स्थानमें (:) विसर्जनीय होकर "भागः" यह रूप सिद्ध हुआ। जिस २ सूत्रसे जो २ कार्य होता है उस उसको पढ़ पढाके और लिखवा कर कार्य कराता जाय इस प्रकार पढने पढानेसे बहुत शीध हढ़ बोध होता है। एक वार इसी प्रकार अष्टाध्यायी पढाके धातुपाठ अर्थसहित और दश लकारोंके रूप तथा प्रक्रिया सहित सत्रों के उत्सर्ग अर्थात् सामान्य सूत्र जैसे "कर्मण्यण्" कर्म उपपद लगा हो तो धातुमात्रसे अण् प्रत्यय हो जैसे "कुम्भकारः" पश्चात् अपवाद सूत्र जैसे "आतोऽनपसर्गे कः" उपसंग भिन्न कर्म उपपद लगा हो तो **आकारान्त** धातुसे "क" प्रत्यय होवे अर्थात् जो बहुव्यापक जैसा कि कर्मोपपद लगा हो तो सब धातुओंसे "अण्" प्राप्त होता है उससे विशेष अर्थात् अल्प विषय उसी पूर्व सुत्रके विषयमेंसे आकारान्त धातुको "क" प्रत्ययने महण कर लिया जैसे उत्सर्गके विषयमें अपवाद सुत्रकी प्रवृत्ति होती है वैसे अपवाद सूत्रके विषयमें उत्संग सूत्रकी प्रश्नत्ति नहीं होती। जैसे चक्रवर्ती राजाके राज्यमें माण्डलिक और भूमिवाळोंकी प्रवृत्ति होती है वैसे माण्डलिक राजादिके राज्यमें चक्र-वर्त्तीकी प्रवृत्ति नहीं होती इसी प्रकार पाणिनि महर्षिने सहस्र श्लोकोंके बीचमें अखिल शब्द अर्थ और सम्बन्धोंकी विद्या प्रतिपादित करदी है। धातुपाठके पश्चात् उणादिगणके पढ़ानेमें सर्व सुबन्तका विषय अच्छे प्रकार पढ़ाके पुनः दूसरी वार शङ्का, समाधान, वार्त्तिक, कारिका, परिभाषाकी घटनापूर्वक, अष्टाध्यायीकी द्वितीयानुवृत्ति पढ़ावे । तदनन्तर महाभाष्य पढ़ावे । अर्थात् जो बुद्धिमान् पुरुषार्थी, निष्कपटी, विद्यावृ-द्धिकं चाहनेवाले नित्य पढ़ें पढ़ावें तो डेढ़ वर्षमें अष्टाध्यायी और डेढ़ वर्षमें महाभाष्य पढ़के तीन वर्षमें पूर्ण वैयाकरण होकर वैदिक और लौकिक शब्दोंका व्याकरणसे बोध कर पुनः अन्य शास्त्रोंको शीघ सह-जमें पढ़ पढ़ा सकते हैं। किन्तु जैसा बडा परिश्रम व्याकरणमें होता है वैसा श्रम अन्य शास्त्रोंमें करना नहीं पहता और जिन्हना बोध इनके

पढनेसे तीन वर्षोमें होता है उतना बोध कुप्रन्थ अर्थात् सारस्वन, चिन्द्रका, कौमुदी, मनोरमादिके पढनेसे पचास वर्षीमें भी नहीं हो सकता। पर्योकि जो महाशय महर्षि लोगोंने सहजतासे महान विषय अपने प्रन्थोंमें प्रकाशित किया है वैसा इन क्षुद्राशय मनुष्योंके किएक प्रन्थोंमें क्योंकर हो सकता है। महर्षि छोगोंका आशय, जहांतक होसके वहांतक सुगम और जिसके प्रहणमें समय थोड़ा छगे इस प्रका-रका होता है और क्षद्राशय लोगोंकी मनसा ऐसी होती है कि जहांतक बने वहांतक कठिन रचना करनी जिसको बड़े परिश्रमसे पढ़के अहफ लाभ उठा सकें जैसे पहाड़का खोदना कौडीका लाभ होना। और आर्घ प्रनथोंका पढ़ना ऐसा है कि जैसा एक गोता लगाना बहुमूल्य मोतियोंका पाना व्याकरणको पढ़के यास्कमुनिकृत निघण्डु और निरुक्त छः वा आठ महीनेमें सार्थक पढें और पढावें। अन्य नास्तिककृत अमरकोशादिमें अनेक वर्ष व्यर्थ न खोवें । तदनन्तर पिङ्गलाचार्यकृत छन्दोग्रन्थ जिससे बैदिक लौकिक छन्टोंका परिज्ञान, नवीन रचना और ख्लोक बनानेकी रीति भी यथावत् सीखें। इस प्रन्थ और श्लोकोंकी रचना तथा प्रस्ता-रको चार महीनेमें सीख पढ पढ़ा सकते हैं। और वृत्तरत्नाकर आदि अल्पवृद्धिप्रकल्पित प्रन्थोंमें अनेक वर्ष न खोवें। तत्पश्चात् मनुस्मृति,.. वाल्मीकीय रामायण और महाभारतके उद्योगपर्वान्तर्गत विदुरनीकि **भादि अच्छे २ प्रकर**ण जिनसे दुष्ट व्यसन दूर हों और उत्तमता सान्यता प्राप्त हो वैसे काव्यरीतिसे अर्थात् पदच्छेद, पदार्थोक्ति **अ**न्वय, विशेष्य विशेषण और भावार्थको अध्यापक लोग जनावें और विद्यार्थी छोग जानते जायें। इनको वर्षके भीतर पढ़छें। तदनन्तर पूर्वमीमांसा वैशेषिक, न्याय, योग, सांख्य और वेदान्त अर्थात् जहां-तक बन सके वहांतक अनुषिकृत व्याख्यासहित अथवा उत्तम विद्वानोंकी सरलव्याख्यायुक्त छः शास्त्रोंको पढें पढ़ावें । परन्तु वेदान्त सूत्रोंके पढ-नेके पूर्व ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य और बृहदारण्यक इन दश उपनिषदोंको पढ़के छः शास्त्रोंकेः भाष्य वृत्तिसिंहत सूत्रोंको दो वर्षके भीतर पढ़ावें और पढ़ हेवें। पश्चात् छः वर्षोके भीतर चारों ब्राह्मण अर्थात् ऐतरेय, शतपथ, साम और गोपथ ब्राह्मणोंके सिंहत चारों वेदोंके स्वर, शब्द, अर्थ, सम्बन्ध तथा क्रियासिंहत पढ़ना योग्य है। इसमें प्रमाणः—

स्थागुरयं आरहारः किलाभृद्धीत्य वेदं न विजा-नाति योऽर्थम् । योऽर्थज्ञ इत्सकलं भद्रमस्तुते नाक-मेति ज्ञानविधूतपाप्मा ॥ निरुक्त १ । १८॥

यह निक्क्तमें मन्त्र है। जो वेदको स्वर और पाठमात्र पढ़के अर्थ नहीं जानता वह जैसा वृक्ष, डाळी, पत्ते, फळ, फूळ और अन्य पर्यु धान्य आदिका भार उठाता है वैसे भारवाह अर्थान् शारका उठानेवाळा है और जो वेदको पढ़ता और उनका यथावन् अर्थ जानता है वही सम्पूर्ण आनन्दको प्राप्त होके देहान्तक पश्चात् ज्ञानसे पापोंको छोड़ पवित्र धर्माच्याके प्रतापसे सर्वानन्दको प्राप्त होता है।।

उत त्वः पश्यन्न दद्दर्श वाचमुत त्व श्रुण्वन्न श्रु-णोत्येनाम् । उतो त्वस्मै तन्वं विसस्रे जायेव पत्य उद्याती सुवासाः ॥ ऋ०मं०१० सू० ७१ मं० ४॥

जो अविद्वान हैं वे सुनते हुए नहीं सुनते, देखते हुए नहीं देखते, बोछते हुए नहीं बोछते अर्थान् अविद्वान छोग इस विद्या वाणीके रहस्यको नहीं जान सकते किन्तु जो शब्द अर्थ और सम्बन्धका जाननेवाछा है एसके छिये विद्या जैसे सुन्दर वस्त्र आभूषण धारण करती अपने पतिकी कामना करती हुई स्त्री अपना शरीर और स्वरूपका प्रकाश पतिके सामने करती है वैसे विद्या विद्वान्के छिये अपने स्वरूपका प्रकाश करती है अविद्वानोंके छिये नहीं॥

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन्देवा अधिविश्वे

# निषेदुः। यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्त-, द्विदुस्त इमे समासते॥ ऋ०१।१६४।३६॥

जिस व्यापक अविनाशी सर्वोत्कृष्ट परमेश्वरमें सब विद्वान और पृथिवी सूर्य आदि सब लोक स्थित हैं कि जिसमें सब वेदोंका गुरूय तात्पर्य है उस ब्रह्मको जो न जानना वह भगवेदादिसे क्या कुछ सुखको प्राप्त हो सकता है १ नहीं २ किन्तु जो वेदोंको पढ़के धर्मातमा योगी होकर उस ब्रह्मको जानते हैं वे सब परमेश्वरमें स्थित होके मुक्तिरूपी परमानन्दको प्राप्त होते हैं। इसलिये जो कुछ पढ़ना वा पढ़ाना हो वह अर्थज्ञान सहित चाहिये । इस प्रकार सब वंदोंको पढके आयुर्वेद अर्थात् जो चरक, सुश्रुत आदि भृषि मुनिप्रणीत वैद्यक शास्त्र हैं उसको अर्थ, क्रिया, शस्त्र, छेदन, भेदन, लेप, चिकित्सा, निदान, औषध, पथ्य, शरीर, देश, काल और वस्तुके गुण ज्ञानपूर्वक ४ (चार) वर्षके भीतर पहें पढ़ावें। तदनन्तर धनुर्वेद अर्थात् जो राजसम्बन्धी काम करना ह इसके दो भेद एक निज राजपुरुषसम्बन्धी और दसरा प्रजासम्बन्धी होता है। राजकार्यमें सभा सेनाके अध्यक्ष शखास्त्र-विद्या नाना प्रकारके व्यूहोंका अभ्यास अर्थात् जिसको आजकळ "क्रवायद" कहते हैं जो कि शत्रुओंसे लडाईके समयमें क्रिया करनी होती है उनको यथावत् सीखें और जो २ प्रजाके पालन और वृद्धि करनेका प्रकार है उनको सीखके न्यायपूर्वक सब प्रजाको प्रसन्न रक्खे दुष्टोंको यथायोग्य दण्ड श्रेष्ठोंके पालनका प्रकार सब प्रकार सीखर्छ । इस राजविद्याको दो २ वर्षमें सीखकर गान्धर्ववेद कि जिसको गान• विद्या कहते हैं उसमें स्वर, राग रागिणी, समय, ताल, प्राम, तान, वादित्र, नृत्य, गीत आदिको यथावत् सीखें परन्तु मुख्य करके साम-बेदका गान वादित्रवादनपूर्वक सीखें और नारदसंहिता आदि जो २ आर्ष प्रनथ हैं उनको पढ़ें परन्तु भड़ुवे वेश्या और विषयासक्तिकारक बैरागियों के गर्दभराज्दवत व्यर्थ आलाप कभी न करें। अर्थवेट कि

जिसको सिल्पिविद्या कहते हैं उसको पदार्थ गुण विज्ञान कियाकोशल नानाविध पदार्थोका निर्माण पृथिवीसे छेके आकाश पर्यन्तकी विद्याको यथावत् सीखके अर्थ अर्थात् जो ऐश्वर्यको बढ़ानेवाला है उस विद्याको सीखक हो वर्षमें ज्योतिष्शास्त्र सूर्यसिद्धान्तादि जिसमें बीजगणित, अङ्क, भूगोल, खगोल और भूगभविद्या है इसको यथावत सीखें। तत्प-श्चात् सब प्रकारको हस्तक्रिया, यन्त्रकला आदिको सीख परन्तु जितने प्रह, नक्षत्र, जनमपत्र, राशि, मुहूर्त आदिके फलके विधायक प्रत्य हैं उनको मूठ सममके कभी न पहें और पढ़ावें ऐसा प्रयत्न पढ़ने और पढ़ानेवाले करें कि जिससे बीस वा इक्कीस वर्षके भीतर समग्र विद्या उत्तम शिक्षा प्राप्त होके मनुष्य लोग कृतकृत्य होकर सदा आनन्दमें रहें जितनी विद्या इस रीतिसे वीस वा इक्कीस वर्षोमें हो सकती है उतनी अन्य प्रकारस शतवर्षमें भी नहीं हो सकती॥

मृषिप्रणीत प्रन्थोंको इसिलये पढ़ना चाहिये कि वे बड़े विद्वान् सब शास्त्रवित् और धर्मात्मा थे और अनृषि अर्थान जो अल्प शास्त्र पढ़े हैं और जिनका आत्मा पश्चपातसहित है उनके बनाये हुए प्रन्थ भी वैसे ही हैं॥

पूर्वमीमांसा पर व्यासमुनिकृत व्याख्या, वैशेषिक पर गौतममुनिकृत, न्यायसूत्र पर वात्स्यायनमुनिकृत भाष्य, पतश्विसमुनिकृत सूत्र
पर व्यासमुनिकृत भाष्य, किपलसुनिकृत सांख्यसृत्र पर भागुरिमुनिकृत
भाष्य, व्यासमुनिकृत नेदान्तसूत्र पर वात्स्यायनमुनिकृत भाष्य अथवा
बौधायनमुनिकृत भाष्य वृत्तिसिहत पढ़ें पढ़ात्रें इत्यादि सूत्रोंको कस्स्र
अङ्गमं भी गिनना चाहिये जैसे ऋग्यजु, साम और अथवं चारों देद
ईश्वरकृत हैं वैसे ऐतरेय, शतपथ, साम और गोपथ चारों ब्राह्मण,
शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निघण्डु, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष छः
वेदोंके अङ्ग, मीमांसादि छः शास्त्र वेदोंके उपाङ्ग, आयुर्वेद, धनुर्वेद,
गान्धवंवद और अथवेद ये चार वेदोंके उपवेद इत्यादि सब ऋषि
मुनिके किये प्रन्थ है इनमें भी जो २ वेदविकद्ध प्रतीत हो उस २ को

A COM

छोड़ देना क्योंकि वेद ईश्वरकृत होनेसे निर्मान्त स्वतंत्रमाण सर्थान् वेदका प्रमाण वेदहीसे होता है ब्राह्मणादि सब प्रन्थ परतःप्रमाण सर्थान् इनका प्रमाण वेदाधीन है वेदकी विशेष व्याख्या श्रृग्वेदादिमा-ध्यभूमिकामें देख छीजिये और इस प्रन्थमें भी आगे खिंखंगे॥

सब जो परिद्यागके योग्य प्रनथ हैं उनका परिगणन संक्षेपसे किया जाता है अर्थात् जो २ नीचे प्रनथ लिखेंगे वह २ जाल्प्रन्थ समस्तना चाहिये। व्याकरणमें कातन्त्र, सारस्वत, चिन्द्रका, सुग्ध-बोध, कौमदी, शेखर, मनोरमादि। कोशमें अमरकोशादि। छन्दो-प्रनथमें वृत्तरत्नाकरादि। शिक्षामें अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि पाणिनीयं मतं यथा इत्यादि। ज्योतिष्में शीघबोध, सुर्वृत्तचिन्तामणि आदि। काव्यमें नायिकाभेद, छुवल्यानन्द, रधुवंश, माध, किरातार्जुनीयादि। मीमांसामें धर्मसिन्धु, व्रताकादि। वैशेषिकामें तर्कसंग्रहादि। न्यायमें जागदीशी आदि। योगमें हठप्रदीपिकादि। सांख्यमें सांख्यतत्त्व-कौसुद्यादि। वेदान्तमें योगवासिष्ठ पञ्चद्रयादि। वंद्यकमें शार्क्वयरादि। स्मृतियोंमें मनुस्मृतिके प्रक्षिप्त श्लोक और अन्य सब स्मृति, सब तन्त्र प्रन्थ, सब पुराण, सब उपपुराण, तुल्सीदासकृत भाषारामायण, हिम्मणीमङ्गलादि और सर्व भाषाप्रनथ ये सब कपोलकहिपत मिथ्या प्रनथ हैं।

प्रश्न--क्या इन प्रन्थोंमें कुछ भी सत्य नहीं ?

डत्तर—थोड़ा सत्य तो है परन्तु इसके साथ बहुतसा असत्य भी है इससे 'विषसम्प्रकान्नवत् त्याज्याः" जैसे अत्युत्तम अन्न विषसे युक्क होनेसे छोड़ने योग्य होता है वैसे ये प्रन्थ हैं।

प्रश्न—क्या आप पुराण इतिहासको नहीं मानते १ उत्तर—हां मानते हैं परन्तु सत्यको मानते हैं मिथ्याको नहीं। प्रश्न—कौन सत्य और कौन मिथ्या है १

क्तर-ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानि करपान्

# गाथा नाराशंसीरिति॥

यह गृह्यसूत्रादिका वचन है। जो ऐतरेय, शतपथादि, ब्राह्मण लिख स्माये उन्होंके इतिहास, पुराण, कल्प, गाथा और नाराशंसी पांच नाम हैं श्रीमद्भागवतादिका नाम पुराण नहीं।

प्रश्न—जो त्याज्य प्रन्थोंमें सत्य है उसका प्रहण क्यों नहीं करते ? उत्तर—जो २ उनमें सत्य है सो २ वेदादि सत्य शाकोंका है जोर मिथ्या उनके घरका है। वेदादि सत्य शास्त्रोंके स्वीकारमें सब सत्यका प्रहण होजाता है। जो कोई इन मिथ्या प्रन्थोंसे सत्यका प्रहण करना चाहे तो मिथ्या भी उसके गले लिपट जावे। इसल्यिये "असत्यिमिश्रं सत्यं दूरतस्त्याज्यिमिति" असत्यसे युक्त प्रन्थस्थ सत्यको भी वैसे लोड़ देना चाहिये जिसे विषयुक्त अन्नको।

प्रश्न--- तुम्हारा मत क्या है १

उत्तर —वेद अर्थात् जो २ वेदमें करने और छोड़नेकी शिक्षा की है उस २ का हम यथावत् करना छोड़ना मानते हैं। जिसिल्ये वेद हमको मान्य है इसिल्ये हमारा मत वेद है। ऐसा ही मानकर सब मनुष्योंको विशेष आर्ग्योंको ऐकमस्य होकर रहना चाहिये।

प्रश्न जिसे सत्यासत्य और दूसरे प्रन्थोंका परस्पर विरोध है वैसे अन्य शाक्षोंमें भी है जिसा सृष्टिविषयमें छः शास्त्रोंका विरोध है:—मीमांसा कर्म, वैशेषिक काल, न्याय परमाणु, योग पुरुषार्थ, सांख्य प्रकृति और वेदान्त ब्रह्मसे सृष्टिकी उत्पत्ति मानता है क्या यह विरोध नहीं है ?

उत्तर—प्रथम तो विना सांख्य और वेदान्तके दूसरे चार शास्त्रोंमें सृष्टिका उत्पत्ति प्रसिद्ध नहीं लिखी और इनमें विरोध नहीं क्योंकि तुमको विरोधाविरोधका ज्ञान नहीं। में तुमसे पृक्षता हूं कि विरोध किस स्थलमें होता है ? क्या एक विषयमें अथवा भिन्न २ विषयोंमें ? प्रशन—एक विषयमें अनेकोंका परस्पर विरुद्ध कथन हो उसको

विरोध कहते हैं यहां भी सृष्टि एक ही विषय है।

उत्तर-क्या विद्या एक है वा दो, एक है, जो एक है तो ब्याक-रण, वैद्यक, ज्योतिषु आदिका भिन्न २ विषय क्यों है जैसा एक विद्यामें अनेक विद्याके अयुथवोंका एक दूसरेसे भिन्न प्रतिपादन होता है वैसे ही सृष्टिविद्याके भिन्न भिन्न छः अवयवोंका शास्त्रोंमें प्रतिपा-दन करनेसे इनमें कुछ भी विरोध नहीं जैसे घडेके बनानेमें कर्म, समय, भिट्टी, विचार, संयोग, वियोगादिका पुरुषार्थ, प्रकृतिके गुण और कुंभार कारण है वैसे ही सृध्टिका जो कर्म कारण है उसकी व्याख्या मीमांसामें, समयकी व्याख्या वैशेषिकमें, उपादान कारणकी ■याख्या न्यायमें, पुरुपार्थकी व्याख्या योगमें, तत्वोंके अनुक्रमसे परिगणनकी व्याख्या सांख्यमें और निमित्तकारण जो परमेश्वर है उसकी न्याक्या वेदान्तशास्त्रमें है। इससे कुछ भी विरोध नहीं। जैसे वैद्यकशास्त्रमें निदान, चिकित्सा, औषि, दान और पथ्यके प्रकः रण भिन्न २ कथित हैं परन्तु सबका सिद्धान्त रोगकी निवृत्ति है वैसे ही सृष्टिके छः कारण हैं इनमेंसे एक-एक कारणकी व्याख्या एक-एक शास्त्रकारने की है इसलिये इनमें कुछ भी विरोध नहीं इसकी विशेष व्याख्या सुष्टिप्रकरणमें कहेंगे॥

जो विद्या पढ़ने पढ़ानेके विष्न हैं उनको छोड़ देवें जैसा कुसक्क अर्थात् दुष्ट विषयीजनोंका संग, दुष्टव्यसन जैसा मद्यादि सेवन और वेश्यागमनादि, वाल्यावस्थामें विवाह अर्थात् पच्चीसवें वर्षसे पूर्व पुक्ष और सोखहवें वर्षसे पूर्व श्लीका विवाह होजाना, पूर्ण ब्रह्मचर्म्य न होना, राजा, माता पिता और विद्वानोंका प्रेम, वेदादि शास्त्रोंके प्रचारमें न होना, अतिभोजन, अतिजागरण करना, पढ़ने पढ़ाने परीक्षा छेन वा दनमे आलस्य वा कपट करना, सर्वोपरि विद्याका लाम च समम्मना, ब्रह्मचर्यसे बल, बुद्धि, पराक्रम, आरोग्य, राज्य, धनकी शिद्धे न मानना, इंश्वरका ध्यान छोड़ अन्य पाषाणादि जड़ मूर्तिके दर्शन पूजनमं व्यर्थ काल खाना, माता पिता, अतिथि और आवार्य्य विद्वान् इनको सत्य मूर्ति मानकर, सेवा सत्संग न करना, वर्णाश्रमक धर्मको छोड़ अर्ध्वपुण्ड्र, त्रिपुण्ड्र, तिलक, कंठी, मालाधारण, एकादशी, श्रयोदशी आदि त्रन करना, काश्यादि तीर्थ और राम, कृष्ण, नारायण, श्रिव, भगवती, गणेशादिके नामस्मरणसे पाप दूर होनेका विश्वास, पाखणिडयोंके उपदेशसे विद्या पढ़नेमें अश्रद्धाका होना, विद्या धर्म योग परमेश्वरकी उपासनाके विना मिथ्या पुराणनामक भागवतादिकी कथा-दिसे मुक्तिका मानना, लोभसे धनादिमें प्रवृत्त होकर विद्यामें प्रीति न रखना, इधर उधर व्यर्थ पूमते रहना इत्यादि मिथ्या व्यवहारोंमें फंसके कहाचर्य्य और विद्याके लाभसे रहिन होकर रोगी और मूर्ख बने रहते हैं ॥

बाजकलके संप्रदायी और स्वार्थी ब्राह्मण आदि जो दूसरोंको विद्या स्रत्संगसे हटा और अपने जालमें कंसाके उनका तन, मन, धन नष्ट कर देते हैं और चाहते हैं कि जो क्षत्रियादि वर्ण पढ़कर विद्वान हो जायेंगे तो हमारे पाखण्डजालसे छूट और हमारे छलको जानकर हमारा अपमान करेंगे। इत्यादि विघ्नोंको राजा और प्रजा दूर करके अपने उड़कों और उड़कियोंको विद्वान करनेके लिये तन, मन, धनसे प्रयक्ष किया करें।

प्रश्न—क्यास्त्रीओं र शूद्र भी वेद पढ़ें १ जो ये पढ़ेंगे तो हम फिर क्या करेंगे १ और इनके पढ़नेमें प्रमाण भी नहीं है जैसा यह निषम्र हैं:—

# स्तीसूद्रोः नाधीयतामिति अतुतेः॥

बी बौर शुद्र न पढें यह अति है।

स्तर सब स्त्री और अष्य अर्थात् मनुष्यमात्रको पढ़नेका अधि-कार है। तुम कुआमें पड़ो और यह श्रुति तुम्हारी कपोलकल्पनासे हुई है। किसी प्रामाणिक प्रन्थकी नहीं। और सब मनुष्योंके वेदादि शास्त्र पढ़ने सुननेके अधिकारका प्रमाण राजुर्नेदके छब्बीसर्वे अध्यायमें दूसरा मन्त्र हैः—

# यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः। ब्रह्म-राजन्याभ्याणं श्द्राय चार्याय च स्वाय चारणाय॥

[ यजु० अ० **२**६ । २ ]

परमेरवर कहता है कि (यथा) जैसे मैं (जनेभ्यः) सब मनु-ध्यों के लिये (इमाम्) इस (कल्याणीम्) कल्याण अर्थात् संसार और मुक्तिके सुख देनेहारी (वाचम्) श्रुग्वेदादि चारों वेदों की वाणीका (आ, धदाति) उपदेश करता हूं वैसे तुम भी किया करो। यहां कोई ऐसा प्रश्न करे कि जन शब्दसे द्विजों का महण करना चाहिये क्यों कि स्मृत्यादि प्रन्थों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ही के वेदों के पढ़नेका अधिकार लिखा है स्त्री और श्रूदादि वर्णों का नहीं।

खतर — ( ब्रह्मराजन्याभ्याम् ) इत्यादि देखो परमेश्वर स्वयं कहता है कि हमने ब्राह्मण, क्षत्रिय, ( अर्घ्याय ) वैश्य, ( श्रूद्राय ) श्रूद्र और ( स्वाय ) अपने भृत्य वा ित्रयादि ( अर्णाय ) और अतिशू-द्रादिके लिये भी वेदोंका प्रकाश किया है अर्थात् सब मतुष्य वेदोंको पढ़ पढ़ा और सुन सुनाकर विज्ञानको बढ़ाके अच्छी बातोंका प्रश्ण और सुरी बातोंका त्याग करके दुःखोंसे छूट कर आनन्दको प्राप्त हों। किहए अब तुम्हारी बात माने वा परमेश्वरकी १ परमेश्वरकी बात अवश्य माननीय है। इतने पर भी जो कोई इसको न मानेगा वह नास्तिक कहावेगा। क्योंकि "नास्तिको वेदिनन्दकः" वेदोंका निन्दक और न मानने वाला नास्तिक कहाता है। क्या परमेश्वर श्रूर्योका भला करना नहीं चाहता १ क्या ईश्वर पक्षपाती है कि वेदोंको पढ़ने सुननेका श्रूरोंके लिये निषेध और द्विजोंके लिये विधि कर १ जो परमेश्वरका अभिप्रःय श्रूरादिके पढ़ाने सुनानेका न होता ता इनके शरीरमें बाक् और ओत्र इन्द्रिय क्यों रचता। जैसे परमात्माने पृश्चित, जल, क्यिन, वायु, चन्द्र, सूर्य्य और अनादि पदार्थ सबके लिये बनाये हैं

[तृतीय

वैसे ही वेद भी सबके लिये प्रकाशित किये हैं। और जहां कहीं निषेध किया है उसका यह अभिन्नाय है कि जिसको पढ़ने पढ़ानेसे कुछ भी न आवे वह निर्वृद्धि और मूर्ख होनेसे सूद्र कहाता है। उसका पढ़ना पढ़ाना व्यर्थ है और जो स्त्रियोंके पढ़नेका निषेध करते हो वह तुम्हारी मूखता, स्वार्थता और निर्वृद्धिताका प्रभाव है। देखो वेदमें कन्याओंके पढ़नेका प्रमाणः—

## ब्रह्मचर्य्येण कन्या युदानं विन्दते पतिम् ॥

अथर्व | कां० ११। प्र० २४। अ० ३। मं० १८ ] जैसे उड़के ब्रह्मचर्य सेवनसे पूर्ण विद्या और सुशिक्षाको प्राप्त होके युवति, विद्युषी, अपने अनुकूछ प्रिय सहरा स्त्रियोंके साथ विवाह करते हैं वैसे (कन्या) कुमारी (ब्रह्मचर्यण) ब्रह्मचर्य सेवनसे वेदादि शास्त्रोंको पढ़ पूर्ण विद्या और उत्तम शिक्षको प्राप्त युवति होके पूर्ण युवावस्थामें अपने सहरा प्रिय विद्वाम् (युवानम्) पूर्ण युवावस्थायुक्त पुरुषको (विन्दते) प्राप्त होवे इसिंठिये स्त्रियोंको भी ब्रह्मचर्य और विद्याका प्रहण अवश्य करना चाहिये।

प्रभ—क्या स्त्री लोग भी वेदोंको पहें ? उत्तर—अवश्य देखो श्रीतसूत्रादिमें:—

#### इमं मन्त्रं पत्नी पठेत्॥

अर्थात् स्त्री यज्ञमें इस मन्त्रको पहे। जो वेदादि शास्त्रोंको न पही होवे तो यज्ञमें स्वरसिहत मन्त्रोंका उच्चारण और संस्कृतभाषण कैसे कर सके भारतवर्षकी स्त्रियोंमें भूषणरूप गर्गों आदि वेदादि शास्त्रोंको पहके पूर्ण विदुषी हुई थीं यह रातपथन्नाह्मणमें स्पष्ट लिखा है। मला जो पुरुष विद्वात् और स्त्री अविदुषी और स्त्री विदुषी और पुरुष अविद्वात् होतो निखप्रति देवासुर संमाम घरमें मचा रहे फिर सुख कहां १ इसल्चि जो स्त्री न पहें तो कन्याओंकी पाठशालामें अध्या-पिका क्योंकर होसकें तथा राजकार्य्य न्यायाधीशत्वादि गृहाश्रमका कार्य्य जो पतिको स्त्री और स्त्रीको पति प्रसन्न रखना, घरके सब काम स्त्रीके आधीन रहना इयादि काम विना विद्याके अच्छे प्रकार कभी ठीक नहीं हो सकते।।

देखो आर्घ्यार्वत्तके राजपुरुषोंकी स्त्रियां धनुर्वेद अर्थात् युद्धविद्या भी अच्छे प्रकार जानती थीं क्योंकि जो न जानती होती तो केक्यी आदि दशरथ आदिके साथ यहमें क्योंकर जा सकती ? और यह कर सकती। उसलिये ब्राह्मणी और अजियाको सब विद्या, वैश्याको व्यवहार विद्या और शुद्राको पाकाहि सेवाकी विद्या अवश्य पढ़नी चाहिये। जैसे पुरुषोंको व्याकरण, धर्म और अपने व्यवहारको विद्या न्युनसे न्युन अवश्य पढ़नी चाहिये वैसं स्त्रियोंको भी व्याकरण, धर्म, वैद्यक, गणित, शिल्पविद्या तो अवश्यही सीखनी चाहिये। क्योंकि इनके सीखे विना सत्यासत्यका निर्णय, पति आदिसे अनुकुछ वर्त्तमान. यथायोग्य सन्तानोत्पत्ति, उनका पालन वर्द्धन और सुशिक्षा करना, वरके सब कार्य्योंको जैसा चाहिये वैसा करना कराना वैद्यकविद्यासे औपयवत अन्न पान बनाना और वनवाना नहीं कर सकतीं जिससे घरमें रोग कभी न आवे और सब छोग सदा आनन्दित रहैं। शिल्प-िद्याके जाने विना घरका बनवाना, वस्त्र आभूषण आदिका बनाना बनवाना. गणितविद्याके विना सबका हिसाब समम्तना समम्ताना, वेदादि शास्त्रविद्याके विना ईश्वर और धर्मको न जानके अधर्मसे कभी नहीं बच सके। इसिंछिये वे ही धन्यवादाई और कृतकृत्य हैं कि जो अपने सन्तानोंको ब्रह्मचर्य, उत्तम शिक्षा और विद्यासे शरीर और आत्माके पूर्ण बलको बढ़ावें जिससे वे सन्तान मातृ, पितृ, पति, सासु श्वशुर, राजा, प्रजा, पड़ोसी इष्ट मित्र और सन्तानादिसे यथायोग्य धर्मसे बर्ते । यही कोश अक्षय है इसको जितना व्यय करे उतना ही बढ़ता जाय अन्य सब कोश व्यय करनेसे घट जाते हैं और दायभागी भी निजभाग छेते हैं और विद्याकोशका चोर वा दायभागी कोई भी नहीं हो सकता इस कोशकी रक्षा और बृद्धि करनेवाला विशेष राजा

और प्रजा भी हैं॥

#### कन्यानां सम्प्रदानं च कुमाराणां च रक्षणम्॥

मनु० [७।१५२]

राजाको योग्य है कि सब कन्या और लड़कोंको उक्त समयसे इक्त समय तक ब्रह्मचर्यमें रखके, विद्वान कराना। जो कोई इस झाझाको न माने तो उसके माता पिताको दण्ड देना अर्थात् राजाकी झाझासे आठ वर्षके पश्चात् लड़का वा लड़की किसीके वरमें न रहने पावें किन्तु आचार्य्यकुलमें रहें जबतक समावर्त्तनका समय न आंके सबसक विवाह न होने पावें।।

## सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते । वार्यन्न-गोमहीवासस्तिलकाश्चनसर्पिषाम्॥ मनु०४। २३३॥

संसारम जितने दान हैं अर्थात् जल, अन्न, गौ, पृथिवी, वस्न, तिल, सुवर्ण और घृतादि इन सब दानोंसे वेदविद्याका दान अतिश्रेष्ठ हैं! इसल्यि जितना बन सके उतना प्रयन्न तन, मन, धनसे विद्याकी दृद्धिमें किया करें। जिस देशमें यथायोग्य ब्रह्मचर्य विद्या और वेदोक्त धर्मका प्रचार होता है वही देश सोभाग्यवान होता है। यह ब्रह्मचर्या-श्रमकी शिक्षा संक्षेपसे लिखी गई है इसके आगे चौथे समुहासमें समावर्त्तन और गृहाश्रमकी शिक्षा लिखी जायगी।।

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिऋते सत्यार्थप्रकाशे सुभाषाविभूषिते शिक्षाविषये तृतीयः समुक्षासः सम्पूर्णः ॥



# कृष्टिक स्थानिक स्थान

## अथ समावर्त्त निवाहग्रहाश्रमविधिं वक्ष्यामः ।

وملا المناهدي

वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम् । अविष्कुतब्रह्मचर्यौ गृहस्थाश्रममाविद्योत्॥

नु∘ [३।२.]

जव यथावत् ब्रह्मचर्थ्य [में ] आचार्यातुकूळ वर्तकर, धर्मसे चारों वेद, तीन वा दो अथवा एक वेदको साङ्कोपाङ्ग पढ़के जिसका ब्रह्म-चर्य खण्डित न हुआ हो वह पुरुष वा स्त्री गृहाश्रममें प्रवेश करें।।

तं प्रतीतं स्वधर्मेण ब्रह्मदायहरं पितुः। स्रग्विणं तल्प आसीनमईयेत्प्रथमं गवा॥ मनु० ३।३॥

जो स्वधम अर्थात् यथावत् आचार्य और शिष्यका धर्म है उससे व युक्त पिना जनक वा अध्यापकसे ब्रह्मदाय अर्थात् विद्यारूप भागका अहण, माळाका धारण करनेवाला अपने पळक्कमें बेंठे हुए आचार्य्यको प्रथम गोदानसे सत्कार करे वैसे लक्षणयुक्त विद्यार्थीको भी कन्याका विता गोदानसे सत्कार करे ।।

गुरुणानुमतः स्नात्वा समावृत्तो यथाविधि । उद्रहेत द्विजो भार्या सवर्णा लक्षणान्विताम् ॥

मनु• [३।४]

गुरुकी आज्ञा ले स्नान कर गुरुकुलसे अनुक्रमपूर्वक आके ब्राह्मण,
 अति 4, वैश्य अपने वर्णानुकुल सुन्दर लक्षणयुक्त कन्यासे विवाद करें।।

## असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः। सा प्रदास्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने॥

मनु० [३।४]

जो कन्या माताके कुलकी छः पीढ़ियोंमें न हो और पिताके गोत्रकी न हो उस कन्यासे विवाह करना उचित है। इसका यह प्रयोजन है कि:—

#### परोक्षप्रिया इव हि देवाः प्रत्यक्षद्विषः ॥ दातपथ० ॥

यह निश्चित बात है कि जैसी परोक्ष पदार्थमें प्रीति होती है वैसी प्रत्यक्षमें नहीं । जैसे किसीने मिश्रीके गुण सुने हों और खाई न हो तो उसका मन उसीमें लगा रहता है, जैसे किसी परोक्ष वस्तुकी प्रशंसा सुनकर मिलनेकी उत्कट इच्छा होती है वैसे ही दूरस्थ अर्थात् जो अपने गोत्र वा माताके कुछमें निकट सम्बन्धकी न हो उसी कन्यासं वरका विवाह होना चाहिये। निकंट और दृर विवाह करनेमें गुण ये हैं:—(१)—एक जो बालक बाह्यावस्थासे निकट रहते हैं परस्पर कीडा, लडाई और प्रेम करते एक दूसरेके गुण, दोप, खभाव, बाल्यावस्थाके विपरीत आचरण जानते और जो नङ्के भी एक दस-रंको देखते हैं उनका परस्पर विवाह होनेसे प्रेम कभी नहीं हो सकता, (२) दुसरा—जैसं पानीमें पानी मिलानेसं विलक्षण गुण नहीं होता वैसे एक गोत्र पितृ वा मातृकुलमें विवाह होनेमें धातुओंमें अदल बदल नहीं होनेसे उन्नति नहीं होती, (३) तीसरा—जैसे दूधमें मिश्री या शुण्ड्यादि ओषधियोंके योग होनेसे उत्तमता होती है वैसे ही भिन्न गीत मातृ पितृकुछसे पृथक् वर्तमान स्त्री पुरुषोंका विवाह होना उत्तम है, (४) चौथा—जैसे एक देशमें रोगी हो वह दूसरे देशमें वायु और खान पानके बदछनेसे रोगरहित होता है वैसे ही दूर देशस्थोंके विवाह होनेमें उत्तमता है, ( ६ ) पांचर्वे—निकट सम्बन्ध करनेमें एक दूसरेके निकट होनेमें सुख दुःखका भान और विरोध होना भी सम्भव है.

दूरदेशस्थोंमें नहीं और दूरस्थेंकि विवाहमें दूर २ प्रेमकी डोरी लम्बी बढ़ जाती है निकटस्थ विवाहमें नहीं, (६) छठे—दूर २ देशके वर्तमान और पदार्थोकी प्राप्ति भी दूर सम्बन्ध होनेमें सहजतासे हो सकती है, निकट विवाह होनेमें नहीं। इसल्विः—

#### दुहिता दुर्हिता भवतीति ॥नि०३। ४॥

कन्याका नाम दुहिता इस कारणसे है कि इसका विवाह दूर देशमें होने से हिनकारी होता है निकट रहनेमें नहीं, (७) सातवें—कियाक पितृकुछमें दारिद्रध होनेका भी सम्भव है क्योंकि जब २ कन्या पितृकुछमें आवेगी तब तब इसको छुछ न छुछ देना ही होगा, (८) आठवां—कोई निकट होने से एक दूसरेको अपने २ पितृकुछके सहायका वमंड और जब छुछ भी दोनोंमें वैमनस्य होगा तब स्नी मन्द ही पिताक छुछमें चछी जायगी एक दूसरेकी निन्दा अधिक होगी। स्नोर विरोध भी, क्योंकि प्रायः स्नियोंका स्वभाव तीक्ष्ण और मृदु होता है इत्यादि कारणोंसे पिताके एक गोत्र माताकी छः पीढ़ी और समीप देशमें विवाह करना अच्छा नहीं।

## महान्त्यपि समृद्धानि गोऽजाविधनधान्यतः। स्त्रीसम्बन्धे दशैताति कुलानि परिवर्जयेत्॥

मनु० [३।६]

चाहें कितने ही धन, धान्य, गाय, अजा, हाथी, घोड़े, राज्य, श्री आदिसे समृद्व ये कुछ हों तो भी विवाहसम्बन्धमें निम्निछिखित दश कुळोंका त्याग करदे:—

#### हीनिकयं निष्पुरुषं निरछन्दो रोमशार्शसम्। क्षय्यामयाव्यपस्मारिश्वितृकुष्टिकुलानि च॥

मनु• [ ३। ७ ]ः को कुछ संक्त्रियासे हीन, सत्पुरुषोंसे रहित, वेदाध्ययनसे विमुख, शरीर पर बड़े २ लोम अथवा ववासीर, क्षयी, दमा, खांसी, आमाशय, भिरगी, रवेतकुष्ट और गलिनकुष्टयुक्त हों, उन कुर्लोकी कन्या वा वरके साथ विवाह होना न चाहिये क्योंकि ये सब दुर्गुण और रोग विवाह करनेवालेके कुलमें भी प्रविष्ट होजाते हैं इसलिये उत्तम कुलके लड़के और लड़कियोंका आपसमें विवाह होना चाहिये।।

## नोद्वहेत्कपिलां कन्यां नाधिकाङ्गीं न रोगिणीम् । नालोमिकां नातिलोषां न वाचाटात्र, पिङ्गलाम् ॥

मनु• [३।८]

न पीले वर्णपाली, न अधिकाङ्गी अर्थात् पुरुषसे लम्बी, चौड़ी, अधिक बल्रवाली, न रोगयुक्ता, न लोमरहित, न बहुन लोमवाली, न बकवाद करनेहारी और भूरे नेवबाली।

## नर्क्षवृक्षनदीनान्नीं नान्त्यपर्वतनामिकाम् । न पक्ष्य-हिन्ने ष्यनान्नीं न च भीषणनामिकाम् ॥ मनु० ३।६॥

न ऋक्ष अर्थात् अध्वती, भरणी, रोहिणीदेई, रेवतीवाई, चित्तरी खादि नक्षत्र नामवाळी, तुल्लिसा, गेंदा, गुलाबी, चंपा, चमेली आदि ऋस नामवाळी गङ्गा यमुना आदि नदी नामवाळी, चांडाळी आदि अन्त्य नामवाळी, विन्ध्या, दिमालया, पांवती आदि पंवत नामवाळी, कोकिळा, मेना आदि पक्षी नामवाळी, नागी, भुजंगा आदि सर्प नामवाळी, माधो-दासी मीरादासी आदि प्रेष्य नामवाळी, भीमकुवरी, चंडिका, काळी खादि भीषण लालाळी कन्याके साथ विवाह न करना चाहिये क्योंकि ये नाम कुत्सित आर अन्य पदार्थोंके भी हैं।

## अव्यङ्गाङ्गी सौम्यनाम्नीं हंसवारणगामिनीम् । तनुलोमकेशदशनां मृद्रङ्गीमुद्रहेस्स्त्रियम् ॥

मनु० [३।१•]

जिसके सरछ सूचे अक्क हों विरुद्ध न हों, जिसका नाम सुन्दर

कृमर्थात् यस्रोदा, सुखदा आदि हो हंस और हथिनीके तुल्य जिसकी कुछ हो, सूक्ष्म क्रेम केश और दांतयुक्त और जिसके सब अङ्ग कोमळ हो वैसी स्त्री के साथ विवाह करना चाहिये।

प्रश्न-विवाहका समय और प्रकार कौनसा अच्छा है।

उत्तर—सोखहवें वर्षसे छेके चौवीसवें वर्ष तक कत्या और पच्ची-सवें वर्षसे छेके अड़ताछीसवें वर्ष तक पुरुपका विवाह समय उत्तम हैं। इसमें जो सोछह और पच्चीसमें विवाह करे तो निक्रप्ट, अठारह बीसकी स्त्री तीस फैतीस वा चालीस वर्षके पुरुपका मध्यम, चौवीस वर्षकी स्त्री और अड़ताळीस वर्षके पुरुपका विवाह होना उत्तम है। जिस देशमें इसी प्रकार विवाहकी विधि थेण्ठ और ब्रह्मचर्य विद्याम्यास अधिक होता है वह देश सुखी और जिस देशमें ब्रह्मचर्य विद्याबहण-रहित बाल्यावस्था और अयोग्योंका विवाह होता है वह देश दुःखमें हुव जाता है। क्योंकि ब्रह्मचर्य विद्याक प्रहणपूर्वक विवाहके सुधार है से सब बातोंका सुधार और विगड़नेस विगाह हो जाता है।

प्रश्न---

अष्टवर्षा भवेद् गौरी नववर्षा च रौहिणीम्। द्वावर्षा भवेत्कन्या तत ऊर्ध्व रजस्वला ॥१॥ माता चैव पिता तस्या ज्येष्ठो भ्राता तथैव च। त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम्।२।

ये रलोक पाराशरी और शीघबोधमें लिख हैं। अर्थ यह है कि फन्याकी आठवें वर्ष विवाहमें गौरी, नववें वर्ष रोहिणी, दशवें वर्ष कन्या और उसके आगे रजस्वला संज्ञा होती है।। १।।

जो दशवें वर्ष तक विवाह न करके रजखळा कन्याको माता पिता खौर बडा भाई ये तीनों देखके नरकमें गिरते हैं ॥२॥

उत्तर--

#### ंब्रह्मोवाच (

एकक्षणा भवेद् गौरी द्विक्षणेयन्तु रोहिणी। क्षित्रं विक्षणा सा भवेत्कन्या ह्यत कथ्वे रजस्वला। रे. माता पिता तथा भ्राता मातुलो भगिनी स्वका। सर्वे तेनरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम्। २।

यह सद्योनिर्मित ब्रह्मपुराणका वचन है।

अर्थ—जितने समयमें परमाणु एक पलटा खावे उनने समयको भ्रण कहते है जब कन्या जनमे तब एक क्षणमें गौरी, दूसरेमें रोहिणी, तीसरेमें कन्या और चौथेमें रजखला हो जाती है।। १।।

उस रजस्वलाको देखके उसके माता, पिता, भाई, मामा और बहिन सब नरकको जाते हैं ॥ २॥

प्रश्न-ये श्लोक प्रमाण नहीं।

उत्तर—क्यों प्रमाण नहीं ? क्या जो ब्रह्माजीके श्लोक प्रमाण नहीं तो उम्हारे भी प्रमाण नहीं हो सकते।

प्रश्त—वाह २ पराशर और काशीनाथका भी प्रमाण नहीं करते। उत्तर—वाह जी बाह क्या तुम ब्रह्माजीका प्रमाण नहीं करते, पराशर काशीनाथसे ब्रह्माजी बड़े नहीं हैं ? जो तुम ब्रह्माजीके श्लोकोंको नहीं मानते तो हम भी पराशर काशीनाथके श्लोकोंको नहीं मानते।

प्रश्न-तुम्हारे रलोक असंभव होनेसे प्रमाण नहीं क्योंकि सहस्क क्षण जनम समय ही मे बीत जाते हैं तो विवाह कैसे हो सकक्ष्मी और इस समय विवाह करनेका कुछ फल भी नहीं दीखता।

जतर—जो हमारे रहीक असंभव हैं तो तुम्हारे भी असंभव हैं क्योंकि आठ, नौ और दशवें वर्षमें भी विवाह करना निष्फल है, क्योंकि सोलहवें वर्षके पश्चात् चौबीसवें वर्ष पर्यन्त विवाह होनेसे

#### सर्जास] विवाहका समय और प्रकार

कि वीर्य परिपक, शरीर विलिष्ठ, स्त्री का गर्भाशय पूरा और हैं। सी बल्युक होनेसे सन्तान उत्तम होते हैं \* जैसे आठवें वर्षकी क्ष्मामें सन्तानकेटपत्तिका होना असंभव है वैसे ही गौरी, रोहिणी नाम हेना भी अयुक्त है। यदि वोरी कन्या न हो किन्तु काली हो तो उसका नाम गौरी रखना व्यर्थ है। अपैर मौरी महादेवकी स्त्री, रोहिणी वासु- देवकी स्त्री थी उसको तुम पौराणिक लोग मानुसमान मानते हो जब कन्यामात्रमें गौरी आदिकी भावना करते हो तो फिर उनसे विवाह करना कैसे सम्भव और धर्मयुक्त हो सकता है। इसलिये तुम्हारे और

\* उचित समयसे न्यून आयुवाले स्त्री पुरुषको गर्भाधानमें सुनिवर धन्वन्तरिजी सुश्रुतमें निषेध करते हैं:—

उनषोडशवर्षायामप्रक्षः पश्चविंशतिम्। यद्याधते पुमान् मर्भं कुद्धिस्थः स विपद्यते ॥ १॥ जातो वा न चिरंज्जीवेज्जीवेद्वा दुविलेन्द्रियः। सस्मादत्यन्तवाळायां गर्भाधानं न कारयेत्॥

सुञ्जत शारीरस्थाने अ०१०। श्लोक ४०। ४८॥ वर्षस—सोल्ह वर्षसे न्यून वयवाली स्त्रीमें पच्चीस वर्षसे न्यून ब्यायुवाला पुरुष जो गर्भको स्थापन करे तो वह कुश्चिस्थ हुआ। गर्भ विपत्तिको प्राप्त होता अर्थात् पूर्ण काल तक मर्भाशयमें रहकर उत्पन्न नहीं होता ॥१॥

भथवा उत्पन्न हो तो फिर चिरकाल तक न जीवे सा जीवे तो दुवलेन्द्रिय हो, इस कारणसे अतिसास्यावस्थावाळी स्त्रीमें गर्म स्थापन न करें और ॥

्रेंसे २ शास्त्रोक्त नियम और सृष्टिक्तमको देखने और बुद्धिसे विचारनेसे यही सिख होता है कि १६ वर्षसे न्यून स्त्री और २५ वर्षसे न्यून आयुवाळा पुरुष कभी गर्भाधान करनेके योग्य नहीं होता, इन नियमोंसे विपरीत जो करते हैं वे दुःखभागी होते हैं ॥ स० दा•॥

I A

हमारे दो २ रहोक मिथ्या ही हैं क्योंकि जैसा हमने "ब्रह्मोवांच्या करके रहोक बना लिये हैं वैसे वे भी पराशर आदिके सामसे बनी लिये हैं। इसलिये इन सबका प्रशाण छोड़के वेदोंके प्रमाणसे सब कामे किया करो। देखों मनुमें—

#### त्रीणि बर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यृतुमती सती। कर्ष्वे तु कालादेतस्माद्विदेत सदशं पतिम्॥

मनु० [ ६ । ६० ]

कन्या रजस्वछा हुए पीछे तीन वर्ष पर्यन्य पतिकी खीज करके अपने तुल्य पतिको प्राप्त होते । जब प्रतिमास रजोदशन होता है तो तीन वर्षोमें ३६ वार रजस्वछा हुए पश्चाप् विवाह करना योग्य है इससे पूर्व नहीं ॥

## काममामरणात्तिष्ठेद् गृहे कन्यर्त्तुमत्यपि। न चैवैनां प्रयच्छेत् गुणहीमाय कर्हिचित्॥

मनु• ६। ८१ ॥

चाहे लड़का लड़की मरणपर्यन्त कुमारे रहें परन्तु असदश अर्थात् परस्पर विरुद्ध गुण कर्म स्वभाववालोंका विवाह कभी न होना चाहिये। इसमें सिद्ध हुआ कि न पूर्वोक्त समयसे प्रथम वा असदशोंका विवाह होन: योग्य है।

प्रश्त—विवाह करना माता पिताके आधीन होना चाहिये बा लड़क: लड़कीके आधीन रहे १

उत्तर—लड़का लड़कीके आधीन विवाह होना उत्तम है। जो माता पिता विवाह करना कभी विचारें तो भी लड़का लड़की की प्रसन्नताके विना न होना चाहिये क्योंकि एक दूसरेकी प्रसन्नतासे विवाह होनेमें विरोध बहुत कम होता और सन्तान उत्तम होते हैं। अप्रसन्नताके विवाहमें नित्य क्लेश ही रहता हैं विवाहमें मुख्य प्रयोजन वर और कन्याका है माता पिताका नहीं क्योंकि जो उनमें परस्पर प्रसन्नता

रहे तो उन्हींको सुख और विरोधमें उन्हींको दुःख होता और ं तेन्-सन्तुष्टो भार्यया भर्त्ता भर्त्रा भार्य्या तथेव च । यस्मिन्नेव कुछे नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम् ॥ मतु॰ [३।६०]

जिस कुछमें स्त्रीसे पुरुष और पुरुषसे स्त्री सदा प्रसन्न रहती है उसी कुछमें आनन्द, छक्ष्मी और कीर्त्त निवास करती है और जहां विरोध, कछह होता है वहां दुःख, दिद्रता ओर निन्दा निवास करती है। इसिछये जैसी स्वयंवरकी रीति आर्व्यावर्त्तमें परम्परासे चळी आती है वही विवाह उत्तम है। जब स्त्री पुरुष विवाह करना चाहैं तब विद्या, विनय, शीछ, रूप, आयु, बछ, कुछ, शरीरका परिमाणादि यथा-योग्य होना चाहिये जबतक इनका मेछ नहीं होता तबतक विवाहमें कुछ भी सुख नहीं होता और न बाल्यावस्थामें विवाह करनेसे सुख होता।

युवा सुवासाः परिवीत आगात्स उ श्रेयान्भवति जायमानः। तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्तः ॥१॥ ऋ० मं० ३ सू० द्र मं० ४॥ आधेनवो धुनयन्तामशिश्वीः शबर्दुधाः शशया अप्रदुग्धाः। नव्यानव्या युवतयो भवन्तीर्महद्देवा-नामसुरत्वमेकम् ॥२॥ ऋ० ३। ५५। १६॥

पूर्वीरहं शरदः शश्रमाणा दोषावस्तोस्वसो जर-यन्तीः । मिनाति श्रियं जरिमा तन्नामप्य नु पत्नी-वृषणो जगम्युः ॥३॥ ऋ०१। १७६। १॥

जो पुरुप (परिवीतः) सब ओरसे यज्ञोपवीत ब्रह्मचर्य सेवनसे चत्तम शिक्षा और विद्यासे युक्त (सुवासाः) सुन्दर वस्त्र धारण किया

#### सत्यार्थप्रकाशः।

्रक्षाचर्ययुक्त (युवा) पूर्ण ज्वान होके विद्याप्रहण कर गृहाश्रममें अगात्) आता है (स, ड) वही दूसरे विद्याजन्ममें (जायमानः) प्रसिद्ध होकर (श्रेयान) अतिशय शोभायुक्त मङ्गलकारी (भवित) होता है (स्वाध्यः) अच्छे प्रकार ध्यानयुक्त (मनसा) विज्ञानसे (देवयन्तः) विद्याबृद्धिकी कामनायुक्त (धीरासः) धैर्य्ययुक्त (कवयः) विद्वान लोग (तम्) उसी पुरुषको (उभयन्ति) उन्नतिशील करके प्रतिष्ठित करते हैं और जो ब्रह्मचर्यधारण विद्या उत्तम शिक्षाका प्रहण किये विना अथवा बाल्यावस्थामें विवाह करते हैं वे स्त्री पुरुष नष्ट भ्रष्ट होकर विद्वानोंमें प्रतिष्ठाको प्रस्म नहीं होते॥ १॥

जो (अप्रदुग्धाः) किसीने दुही नहीं उन ( धेनवः) गौओं के समान (अशिश्वीः) वाल्यावस्थासे रहित (शबहुंघाः) सब प्रकारके उत्तम व्यवहारों को पूर्ण करनेहारी (शशयाः) कुमारावस्थाको उन्हं चन करनेहारी (नव्यानव्याः) नवीन २ शिक्षा और अवस्थासे पूर्ण (भवन्तीः) वर्तमान (युवतयः) पूर्ण युवावस्थास्थ स्त्रियां (देवानाम्) ब्रह्मचंय सुनियमोंसे पूर्ण विद्वानोंके (एकम्) अदितीय (महत्) बड़े (असुरत्वम्) प्रज्ञा श्रमस्य शिक्षायुक्त प्रज्ञामें रमणके भावायंको प्राप्त होती हुई तरुण पतियोंको प्राप्त होते (आधुनयन्ताम्) गर्भ धारण करें । कभी भूलके भी बाल्यावस्थामें पुरुषका मनसे भी ध्यान न करें स्योंकि यही कर्म इस लोक और परलोकके सुखका साधन है। बाल्यावस्थामें विवाहसे जितना पुरुषका नाश उससे अधिक खीका नाश होता है। २।।

जैनं (नु) शीत्र (शश्रमाणाः) अत्यन्त श्रम करनेहारे (बृषणः) वीर्य लींचनेमें समर्थ पूर्ण युवाबस्थायुक्त पुरुष (पत्नीः) युवाबस्थास्थ हृद्योंको प्रिय क्षियोंको (जगम्युः) प्राप्त होकर पूर्ण शतवर्ष वा उससे अध्क आयुको आनन्दसे भोगते और पुत्र पौत्रादिसे संयुक्त रहते हैं वैसे स्त्री पुरुष सदा वर्ते जैसे (पूर्वीः) पूर्व वर्त्तमान (शरदः) शरद् अतुओं और (जरयन्तीः) बृद्धावस्थाको प्राप्त कराने वाळी (उषसः)

प्रातःकालकी वेलाओंको (दोषा) रात्री और (वस्तोः) दिन (तेनू-नाम्) शरीरोंकी (श्रियम्) शोभाको (जिरमा) अतिशय बृद्धपन बल और शोभाको दूर कर देता है वैसे (अहम्) में स्त्री वा पुरुष (उ) अच्छे प्रकार (अपि) निश्चय करके ब्रह्मचर्यसे विद्या शिक्षा शरीर 'और आत्माके बल और युवावस्थाको प्राप्त हो ही के विवाह करूं इससे विरुद्ध करना वेदविरुद्ध होनेसे सुखदायक विवाह कभी नहीं होता ॥३॥

जबतक इसी प्रकार सब ऋषि मुनि राजा महाराजा आर्य छोग ब्रह्मवर्यसे विद्या पढ़ ही के खयंवर विवाह करते थे तबतक इस देशकी सदा उन्नति होनी थी। जबसे यह ब्रह्मवर्यसे विद्याका न पढ़ना, बाल्या-वस्थामें पराधीन अर्थात् माता पिताके आधीन विवाह होने छगा तबसे क्रमशः अस्पर्वर्त्त देशकी हानि होती चळी आई हैं। इससे इस दुष्ट कामको छोड़के सज्जन छोग पूर्वोक्त प्रकारसे खयंवर विवाह किया करें। सो विवाह वर्णानुक्रमसे करें और वर्णव्यवस्था भी गुण, कर्म स्वभावके अनुसार होनी चाहिये।

प्रश्न—क्या जिसके माता पिता ब्राह्मण हों वह ब्राह्मणी ब्राह्मण होता है और जिसके माता पिता अन्यवर्णस्थ हों उनका सन्तान कभी ब्राह्मण हो सकता है ?

उत्तर—हां बहुतसे होगये, होते हैं और होंगे भी जैसे छान्दोग्य उपनिषद्में जावाल ऋषि अज्ञातकुल, महाभारतमें विश्वामित्र क्षत्रिय वर्ण और मातङ्ग ऋषि चांडाल कुलसे ब्राह्मण होगये थे, अब भी जो उत्तम विद्या स्वभाव वाला है बही ब्राह्मणके योग्य और मूर्ख शृद्धके योग्य होता है और वैसा ही आगे भी होगा।

प्रश्न—भला जो रज वीर्यसे शरीर हुआ है वह बदल कर दूसरे वर्णके योग्य कैसे हो सकता है ?

उत्तर—रज वीर्यके योगसे ब्राह्मण-शरीर नहीं होता किन्तुः— स्वाध्यायेन जपैहोंमैस्त्रै विद्ये नेज्यया सुतैः i

## महायज्ञेश्च यज्ञेश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः॥

मनु॰ [२।२८]

इसका अर्थ पूर्व कर आग्रे हैं अब यहां भी संक्षेपसे कहते हैं। (साध्यायेन) पढ़ने पढ़ाने (जपैः) विचार करने कराने, नानाविध होमके अनुष्ठान, सम्पूर्ण वेदोंको राब्द, अर्थ, सम्बन्ध, स्वरोचारण-सहित पढ़ने पढ़ाने (इज्यया) पौर्णमासी इष्टि आदिके करने, (सुतैः) पूर्वोक्त विधिपूर्वक धर्मसे सन्तानोत्पत्ति (महायज्ञेश्व) पूर्वोक्त ब्रह्मख्यक्क, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, वैश्वदेवयज्ञ और अतिथियज्ञ (यज्ञेश्व) अग्निष्टो-मादियज्ञ, विद्वानोंका संग, सत्कार, सत्यभाषण, परोपकारादि सत्य-कर्म और सम्पूर्ण शिल्पविद्यादि पढ़के दुष्टाचार छोड़ श्रेष्ठाचारमें वर्त्तनेसे (इयम्) यह (तनुः) शरीर (बाह्मी) ब्राह्मणका (क्रियते) किया जाता है। क्या इस रछोकको तुम नहीं मानते ? मानते हैं, फिर क्यों रज वीर्यके योगसे वर्णव्यवस्था मानते हो ? में अकेळा नहीं मानता किन्तु बहुतसे छोग परम्परासे ऐसा ही मानते हैं।

े प्रश्र—क्या तुम परम्पराका भी खण्डन करोगे ?

उत्तर---नहीं परन्तु तुम्हारी उल्र्टी समम्प्तको नहीं मानके खण्डन भी करते हैं।

त्रभ—हमारी उलटी और तुम्हारी सूधी समम्म है इसमें क्या प्रमाण १

उत्तर—यही प्रमाण है कि जो तुम पांच सात पीढ़ियों के वर्तमान-को सनातन व्यवहार मानते हो और हम वेद तथा सृष्टिक आरम्भसे आज पर्यन्तकी परम्परा मानते हैं देखो जिसका पिता श्रेष्ठ वह पुत्र दुष्ट और जिसका पुत्र श्रेष्ठ वह पिता दुष्ट तथा कहीं दोनों श्रेष्ठ वा दुष्ट देखनेमें आते हैं इसिख्ये तुम खोग भ्रममें पढ़े हो देखो मनु महा-राजने क्या कहा है:—

#### वेयेनास्य पितरो याता येन याता पितामहाः

## तेन यायात्सतां मार्गं तेन गच्छन्न रिष्यते ॥

मनु० [४।१७८]

जिस मार्गसे इसके पिता पितामह चले हों उसी मार्गमें सन्तान भी चलें परन्तु ( सताम् ) जो सत्पुरुष पिता पितामह हों उन्हींके मार्ग में चलें और जो पिता, पितामह दुए हों तो उनके मार्गमें कभी न चलें। क्योंकि उत्तम धर्मात्मा पुरुषोंके मार्गमें चलनेसे दुःख कभी नहीं होता इसको तुम मानते हो वा नहीं ? हां २ मानते हैं । और देखों जो परमेश्वरकी प्रकाशित वेदोक्त बात है वही सनातन और उसके विरुद्ध 🕃 वह सनातन कभी नहीं हो सकती। ऐसा ही सब छोगोंको मानना चाहिये वा नहीं ? अवश्य चाहिये । जो ऐस् न माने उससे कही कि किसीका पिता दुरिद्र हो और उसका पुत्र धनाड्य होवे तो क्या अपने पिताकी दरिदाबस्थाके अभिमानसे धनको फेंक देवे। क्या जिसका पिता अम्धा हो उसका पुत्र भी अपनी आंखोंको फोड छेवे। जिसका पिता कुकर्मी हो क्या उसका पुत्र भी कुकर्म ही करे। नहीं २ किन्तु जो जो पुरुषोंके उत्तम कर्म हों उनका सेवन और दुष्ट कर्मोंका त्याग कर देना सबको अत्यावश्यक है। जो कोई रज वीर्यके योगसे वर्णा-अपम व्यवस्था माने और गुण कर्मोंके योगसे न माने तो उससे पूछना चाहिये कि जो कोई अपने वर्णको छोड नीच अन्त्यज अथवा कृश्चीन मुसळमान हो गया हो उसको भी ब्राह्मण क्यों नहीं मानते ? यहां यही कहोगे कि उसने ब्राह्मणके कर्म छोड दिये इसलिये वह ब्राह्मण नहीं हैं। इससे यह भी सिद्ध होता है कि जो ब्राह्मणादि उत्तम कर्म करते हैं वेही **ब्राह्म**णादि और जो नीच भी उत्तम बर्णके गुण, कर्म स्वभाववाला **होवे** तो उसको भी उत्तम वर्णमें और जो उत्तम वर्णस्थ होके नीच काम करे तो उसको नीच वर्णमें गिनना अवश्य चाहिये।

**प्रभ**—

ब्राह्मणोस्य मुखमासीद्बाह्र राजन्यः कृतः। उस

## तदस्य यद्वैश्यः पंदुभ्याँ शुद्रो अजायत ॥

यह यजुर्वेदके ३१ वें अध्यायका ११ वां मन्त्र है। इसका यह अर्थ है कि ब्राह्मण ईश्वरके मुख, क्षत्रिय बाहू, वैश्य ऊरू और श्रूह पगोंसे उत्पन्न हुआ है इसल्यि जैसे मुख न बाहू आदि और बाहू आहि न मुख होते हैं। इसी प्रकार ब्राह्मण न क्षत्रियाहि और श्वत्रियादि न ब्राह्मण हो सकते।

उत्तर—इस मन्त्रका अर्थ जो तुमने किया सो ठीक नहीं क्योंकि यहां पुरुष अर्थात् निराकार व्यापक परमात्माकी अनुवृत्ति है। जब वह निराकार है तो उसके मुखादि अङ्ग नहीं हो सकते, जो मुखादि अङ्गवाला हो वह पुरुष अर्थात् व्यापक नहीं और जो व्यापक वह सर्वशिक्तमान् जगन्का स्नष्टा, धर्ता, प्रलयकर्ता, जीवोंके पुण्य पापोंको जानके व्यवस्था करनेहारा, सर्वज्ञ, अजन्मा, मृत्यु रहित आदि, विशेषणवाला नहीं हो सकता इसिंखये इसका यह अर्थ है कि जो (अस्य) पूर्णव्यापक परमात्माकी सृष्टिमें मुखके सहश सबमें मुख्य उत्तम हो वह (ब्राह्मणः) ब्राह्मण (बाहू) "बाहुवें बलं बाहुवें वीर्यम्" शतपथब्राह्मण। बल वीर्यका नाम बाहु है वह जिसमें अधिक हो सो (राजन्यः) क्षत्रिय (ऊक्त) कटिके अधोभाग और जानुके उपरिस्थ भागका उक्त नाम है जो सब पदार्थों और देशोंमें उक्तके बलसे जावे आवे प्रवेश करे वह (वैश्यः) वैश्य और (पद्भ्याम्) जो पगके अर्थात् नीचे अङ्गके सहश मूर्यव्यादि गुणवाला हो वह शूद्र है। अन्यत्र शतपथ ब्राह्मणादिमें भी इस मन्त्रका ऐसा ही अर्थ किया है जैसेः—

#### यस्मादेते मुख्यास्तस्मान्मुखतो श्वम्रज्यन्त इत्यादि।

जिससे ये मुख्य हैं इससे मुखसे उत्पन्न हुए ऐसा कथन संगत होता है अर्थान जैसा मुख सब अङ्गोंमें शेष्ठ है वैसे पूर्ण विद्या और उत्तम गुण कम स्वभावसे युक्त होनेसे मनुष्यजाति उत्तम श्रक्षण कहाता है। जब परमेश्वरके निराकार होनेसे मुखादि अङ्ग ही नहीं है तो मुख मादिसे उत्पन्न होना असम्भव है। जैसा कि बन्ध्या स्त्रीके पुत्रका विवाह होना ! और जो मुखादि अङ्गोंसे ब्राह्मणादि उत्पन्न होते तो उपादान कारणके सहरा ब्राह्मणादिकी आकृति अवश्य होती। जैसे दुखका आकार गोलमाल है वैसेही उनके शरीरका भी गोलमाल मुखा- कृतके समान होना चाहिये। क्षत्रियोंके शरीर भुजाके सहरा, वैश्योंके स्रुह्मके स्तरान वाले होने चाहिये ऐसा नहीं होता और जो कोई तुमसे प्रश्न करेगा कि जो २ मुखादिसे उत्पन्न हुए थे उनकी ब्राह्मणादि संज्ञा हो परन्यु तुम्हारी नहीं क्योंकि जैसे और सब लोग गर्भाशयसे उत्पन्न होते हैं बैसे तुम भी होते हो। तुम मुखादिसे उत्पन्न न होकर ब्राह्मणादि [संज्ञा का] अभिमान करते हो इसलिये तुम्हारा कहा अर्थ व्यथ है और जो हमने अर्थ किया है वह सन्ना है। ऐसा ही अन्यत्र भी कहा है जैसाः—

## शुद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शृद्रताम्। क्षत्रियाज्ञातमेवन्तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च॥

मनु• [ १०। ६६ ]

जो शूद्रकुलमें उत्पन्न होके ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यके समान गुण कर्म स्वभाव वाला हो तो वह शूद्र ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य होजाय वैसे ही जो ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्यकुलमें उत्पन्न हुआ हो और उसके गुण कर्म स्वभाव शूद्रके सदश हों तो वह शूद्र होजाय। वैसे क्षत्रिय वा वैश्यके कुलमें उत्पन्न होके ब्राह्मण ब्राह्मणी वा शूद्रके समान होनेसे ब्राह्मण और शूद्र भी होजाता है। अर्थात् चारों वर्णोमें जिस २ वर्णके सदश जो २ पुरुष वा स्त्री हो वह २ उसी वर्णमें गिनी जावे।

धर्मचर्यया जाघन्यो वर्णः पूर्वं पूर्वं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ ॥ १ ॥ अधम्मेचर्यया पूर्वी वर्णी जाघन्यं जाघन्यं वर्णमा-

## पद्यते जातिपरिवृत्तौ ॥२॥ ये आपस्तम्बके सूत्र हैं।

अर्थ—धर्माचरणसे निकृष्ट वर्ण अपनेसे उत्तम २ वर्णोंको प्राप्त होता है और वह उसी वर्णमें गिना जावे कि जिस २ के योग्य होवे ॥१॥

वैसे अधर्माचरणसे पूर्व २ अर्थात् उत्तम २ वर्णवाला मनुष्य अप-नेसं नीचे वाले वर्णीको प्राप्त होता है और उसी वर्णमें गिना जाये ॥२॥

जैसे पुरुष जिस जिस वर्णके योग्य होता है वैसं ही स्त्रियोंकी भी व्यवस्था समझती चाहिये। इससे क्या सिद्ध हुआ कि इस प्रकार होतंसे सब वर्ण अपने २ गुण कर्म खमावयुक्त होकर शुद्धताके साथ रहते हैं अर्थात् ब्राह्मणकुलमें कोई क्षत्रिय वैश्य और शूद्रके सहश न रहे और क्षत्रिय वैश्य तथा शूद्र वर्ण भी शुद्ध रहते हैं अर्थात् वर्णसंकरता प्राप्त न होगी। इससे किसी वर्णकी जिन्दा वा अयोग्यता भी न होगी।

प्रश्त—जो किसीके एक ही पुत्र वा पुत्री हो वह दूसरे वर्णमें प्रविष्ठ होजाय तो उसके मा वापकी सेवा कौन करेगा और वंशच्छेदन भी हो जायगा। इसकी क्या व्यवस्था होनी चाहिये ?

उत्तर—न किसीकी सेवाका भङ्ग और न वंशच्छेदन होगा क्योंकि उनको अपने छड़के छड़िकयोंके वद्छे स्वर्वणके योग्य दूसरे सन्तान विद्यासभा और राजसभाकी व्यवस्थासे मिछेंगे, इसिछये कुछ भी अव्यवस्था न होगी। यह गुण कमोंसे वणोंकी व्यवस्था कल्याओंकी सोछहेंवें वर्ष और पुरुषोंकी पच्चीसवें वर्षकी परीक्षामें नियन करनी चाहिये और इसी कमसे अर्थात् ब्राह्मण वर्णका ब्राह्मणी, क्षत्रिय वर्णका क्षत्रिया, वैश्य वर्णका वैश्या, शूद्र वर्णका शूद्राके साथ विवाह होना चाहिये तभी अपने २ वर्णोंके कर्म और परस्पर प्रीति भी यथायोग्य रहेगी। अब इन चारों वर्णोंके कर्त्तव्य कर्म और गुण ये हैं—

अध्यापनमध्ययनं यज्ञानं याज्ञानं तथा । दानं प्रति-ग्रहरचैव ब्राह्मणानामकरपयत् ॥१॥ मनु० १ । ८८ ॥

## शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च। ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मदर्मे स्वभावजम् ।२।

१२।5।७ भ०गी० [अध्याय १८। श्लोक ४२]

ष्ठ'क्षणके पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ करना, कराना, दान देना, छेना, ये छः कर्म है परन्तु "प्रतिप्रहः प्रत्यवरः" मनु । अर्थात् (प्रतिप्रहः) छेना नीच कर्म है।। १।। (शमः) मनसे बुरे कामकी इच्छा भी न करनी और उसकी अवस्मिनें कसी प्रवृत्त न होने देना (दमः) भीत्र और चक्षु आदि इन्द्रियोंको अन्यायाचरणसे रोक कर धर्ममें चळाना (तपः) सदा प्रज्ञपानी जितेन्द्रिय ोके वर्शानुस्थात करना (शोच)—

## अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति । विद्या तपोभ्यां मृतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति ॥

मनु• [४।१०६]

जलसे बाहरके अङ्ग, सत्याचारसे मन, विद्या और धर्मानुष्ठानसे जीवात्मा और झानसे बुद्धि पित्र होती है। भीतर रागद्वेषादि दोष भीर बाहरके मलोंको दूर कर शुद्ध रहना अर्थात् सत्याऽसस्यके विवे- अपूर्वक सत्यके प्रहण और असत्यके त्यागसे निश्चय पित्रत्र होता है। (शान्ति) अर्थात् निन्दा स्तुति सुख दुःख शीतोष्ण क्षुधा तृषा हानि छाभ मानापमान आहि हर्ष शोक छोड़के धर्ममें दृढ़ निश्चय रहना (आर्जव) कोमलता निरिममान सरलता सरलसभाव रखना कुटि- छनादि दोष छोड़ देना (ज्ञान) सव वेदादि शास्त्रोंको साङ्गोणङ्ग पढ़के पढ़ानेका सामर्थ्य विवेक सत्यका निर्णय जो वस्तु जैसा हो अर्थात् जड़को जड़ चेतनको चेतन जानना और मानना (विज्ञान) पृथिवीसे लेक परमेशवर पर्ध्यन्स पढ़ाथेंको विशेषतासे जानकर उनसे यथायोग्य पपयोग लेना (आस्तिक्य) कभी वेद, ईश्वर मुक्ति, पूर्व परजन्म, धर्म, विद्या, सत्सङ्ग, माता, पिता, आचार्य्य और अतिथियोंकी सेवाको न

छोड़ना और निन्दा कभी न करना।। २।। वे पन्द्रह कर्म और गुण ब्राह्मण वर्णस्थ मनुष्योंमें अवश्य होने चाहिबे।। क्षत्रिय—

प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च । विषये-ब्बप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः ॥ मनु०१। ८६ ॥ शौर्यं तेजो धृतिद्धियं युद्धे चाप्यपलायनम् । दानमीश्वरभावश्च क्षात्र कर्म स्वभावजम् ॥२॥

भ० गी० [ अध्याय १८ ) रहोक ४३ ]

न्यायसे प्रजाकी रक्षा अर्थात् पक्षपात छोड्के श्रेष्ठोंका सत्कार और दुष्टोंका तिरस्कार करना सब प्रकारसे सबका पालन (दान) विद्या धर्मकी प्रवृत्ति और सुपात्रोंकी सेवामें धनादि पदार्थीका व्यय करना (इज्या) अग्निहोत्रादि यज्ञ करना वा कराना (अध्ययन) वेदादि शास्त्रोंका पढ़ना तथा पढ़वाना और (विषयेषु ) विषयोंमें न फंस कर जितेन्द्रिय रहके सदा शरीर और आत्मासे वलवान रहना १ ( शौर्य्य )्रसैकड़ों सहस्त्रोंसे भी युद्ध करनेमें अकेला भय न होना ( तंजः ) सदा तेजस्वी अर्थात् दीनतारहित प्रगल्भ दृढ़ रहना ( धृति ) **घैर्घ्यवान् होना (दाक्ष्य) राजा और प्रजासम्बन्धी व्यवहार और** सब शास्त्रोंमें अति चतुर होना (युद्धे ) युद्धमें भी दृढ़ निःशंक रहके इससे कभी न हटना न भागना अर्थात् इस प्रकारसे छड़नाकि जिससे निश्चित बिजय होवे आप बचे जो भागनेसे वा शत्रुओंको घोखा देनेसे कीत होती हो तो ऐसा ही करना (दान) दानशीलता रखना (ईश्व-रभाव ) पक्षपातरहित होके सबके साथ यथायोग्य वर्तना, विचारके देना, प्रतिज्ञा पूरी करना उसको कभी भङ्ग होने न देना। ये ग्यारह क्षत्रिय वर्णके कर्म और गुण हैं।। २ ।। वैश्यः—

पश्नूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च । विणिक्-पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च । [मनु० १।६०]

( पशुरक्षा ) गाय आदि पशुक्रोंका पालन वर्द्धन करना ( दान ) बिद्या धर्मकी बृद्धि ऋएने करानेके लिये धनादिका व्यय करना (इज्यः) अग्निहोत्रादि यहाँका करना (अध्ययन ) वेदादि शास्त्रोंकः पढना (वणिक्पथ) सब प्रकारके ब्यापार करना (क़सीद) एक सैकडेमें चार, छः, आठ, बारह, सोलह वा वीस आनोंसे अधिक व्याज और मुलसे दूना अर्थान् एक रूपया दिया हो तो सौ वर्षमें भी दो रूपयेसे अधिक न लेना और देना ( कृषि ) खेती करना, ये वैश्यके गण कर्म हैं। शूद्रः--

एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत्। एते-षामेव वर्णानां शुञ्जूषामनसूयया । मनुः [१।६१]

श्रद्रको योग्य है कि निन्दा, ईर्ध्या, अभिमान आदि दोषोंको छोडके ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्योंकी सेवा यथावत् करना और उसीसे अपना जीवन [ब्यतीत] करना यही एक शूद्रका गुण, कर्म है। ये संक्षेप से वर्णीके गुण और कर्म छिखे। जिस २ पुरुषमें जिस २ वर्णके गुण कर्म हों उस ३ वर्णका अधिकार देना। ऐसी व्यवस्था रखनेसे सब मनुष्य उन्नतिशील होते हैं। क्योंकि उत्तम बर्णोंको भय होगा कि जो इमारे सन्तान मूर्खत्वादि दोषयुक्त होंगे तो शूद्र होजायेंगे और सन्तान भी डरते रहेंगे कि जो हम उक्त चाल चलने और विद्यायुक्त न होंगे तो शुद्र होना पड़ेगा। और नीच वर्णोंको उत्तम वर्णस्थ होनेके लिये **उस्साह बढेगा । विद्या और धर्मके प्रचारका अधिकार ब्राह्मणको देना** क्यों कि वे पूर्ण विद्याबान् और धार्मिक होनेसे उस कामको यथायोग्य कर सकते हैं। क्षत्रियोंको राज्यके अधिकार देनेसे कभी राज्यकी हानि वा विष्म नहीं होता। पशुपालनादिका अधिकार बैश्यों ही को होना योग्य है क्योंकि वे इस कामको अच्छे प्रकार कर सकते हैं। श्रूदको, सेवाका अधिकार इसलिये है कि वह विद्यारहित मूर्ख होनेसे विशानसम्बन्धी काम कुछ भी नहीं कर सकता किन्तु शरीरके काम

सब कर सकता है। इस प्रकार वर्णोंको अपने अपने अधिकारमें प्रवृत्त करना रःजा आदिका काम है।।

#### विवाहके लक्षण।

#### ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथाऽसुरः। गान्धर्वी राक्षसश्चैव पैज्ञाचश्चाष्टमोऽधमः॥ मनु० ६। २१

विवाह आठ प्रकारका होता है एक ब्राह्म, दूसरा दैव, तीसरा आर्थ, चौथा प्राजापत्य, पांचवां आसुर, छठा गान्धर्व, सातवां राक्षस, बाठवां पैशाच । इनमें से विवाहोंकी यह व्यवस्था है कि-वर कन्या होनों यथावत ब्रह्मचर्यसे पूर्ण विद्वान् धार्मिक और सुशील हों उनका धरस्पर प्रसम्बतासे विवाह होना "ब्राह्म" कहाता है। विस्तृत यज्ञ करनेमें भारिवक् कर्म करते हुए जामाताको अलङ्कारयुक्त कन्याका देना "दैव"। वरसे कुछ लेकर विवाह होना "आर्थ"। दोनोंका विवाह धर्मकी वृद्धिके वर्ध होना "प्रजापस"। वर और कन्याको कुछ देके विवाह होना "आसुर"। अनियम, असमय किसी कारणसे दोनोंकी इच्छापूर्वक वर कन्याका परस्पर संयोग होना "गान्धर्व"। लडाई करके बलातकार अर्थात छीन भूतपट वा कपटसे कल्याका ग्रहण करना "राक्ष्स"। शयन वा मद्यादि पीई हुई पागल कन्यासे बलात्कार संयोग करना "पैशाच"। इन सब विवाहोंमें ब्राह्मविवाह सर्वेत्कृत्ट, दैव बौर प्राजापत्य मध्यम, आर्ष, आसुर और गान्धर्व निकृष्ट, राक्षस अधम और पैशाच महाभ्रव्ट है। इसलिये यही निश्चय रखना चाहिये कि कन्या और वरका विवाहके पूर्व एकान्तमें मेल न होना चाहिये क्योंकि युवावस्थामें स्त्री पुरुषका एकान्तवास दृषणकारक है। परन्तु मब कन्या वा वरके विवाहका समय हो अर्थात् जव एक वर्ष वा छः महीने ब्रह्मचर्याश्रम और विद्या पूरी होनेमें शेष रहें तब उन कन्या कौर कुमारोंका प्रतिबिम्ब अर्थात् जिसको "फोटोप्राफ" कहते हैं अथवा प्रतिकृति उतारके कन्याओंकी अध्यापिकाओंके पास कुमारोंकी.

क्रमारोंक अध्यापकोंके पास कन्याओंकी प्रतिक्रति भेज देवें जिस २ का रूप मिल जाय उस २ के इतिहास अर्थीत जो जन्मसे लेके उस दिन पर्यन्त जनमचरित्रका पुस्तक हो उनको अध्यापक छोग मंगवाके देखें जब होतों के गण कर्म स्वभाव सदश हों तब जिस २ के साथ जिस २ का विवाह होना योग्य सममें उस २ पुरुष और कन्याका प्रतिबिम्ब और इतिहास कन्या और वरके हाथमें देवें और कहें कि इसमें जो तम्हारा अभिप्राय हो सो हमको विदित कर देना। जब उन होतोंका निरुचय परस्पर विवाह करनेका होजाय तब उन दोनोंका समावर्तत एक ही समयमें होवे। जो वे दोनों अध्यापकोंके सामने विवाह करना चाहें तो वहां, नहीं तो कन्याके माता पिताके घरमें विवाह होता योग्य है। जब वे समक्ष हों तब उन अध्यापकों वा कन्याके माना पिता आदि भद्रपुरुषोंके सामने उन दोनोंकी आपसमें बातचीत, शास्त्रार्थ कराना और जो कुछ ग्रप्त व्यवहार पूछें सोभी सभा में छिलके एक दूसरेके हाथमें देकर प्रश्नोत्तर कर होवें । जब दोनोंका दृढ प्रेम विवाह करनेमें होजाय तबसे उनके खानपानका उत्तम प्रबन्ध होना चाहिये कि जिससे उनका शरीर जो पूर्व ब्रह्मचर्य और विद्या-ध्ययनरूप तपश्चर्या और कप्टसे दुवंछ होता है वह चन्द्रमाकी कछाके समान वढ़के थोड़े ही दिनोंमें पुष्ट होजाय। पश्चात् जिस दिन कन्या र ऋखला होकर जब सुद्ध हो तब वेदी और मण्डप रचके अनेक सुगन्धादि द्रव्य और घतादिका होम तथा अनेक विद्वान पुरुष और क्षियोंका यथायोग्य सत्कार करें। पश्चात जिस दिन ऋतदान देना योग्य समभें उसी दिन "संस्कारविधि" पुस्तकस्थ विधिके अनुसार सब कर्म करके मध्य रात्रि वा दश बजे अति प्रसन्नतासे सबके सामने पाणिप्रहणपूर्वक विवाहकी विधिको पूरा करके एकान्तसेवन करें। पुरुष बीर्य्यस्थापन और स्त्री वीर्याकर्षणकी जो विधि है उसीके अनुसार दोनों करें। जहांतक बने वहांतक ब्रह्मचर्यके वीर्यको व्यर्थ न जाने दें क्योंकि उस वीर्यका रजसे जो शरीर उत्पन्न होता है वह अपूर्व उत्तम

सन्तान होता है। जब वीर्यका गर्भाशयमें गिरनेका समय हो उस समय स्त्री पुरुष दोनों स्थिर और नासिकाके सामने नासिका, नेत्रके सामने नेत्र अर्थात सुधा शरीर और अयन्त प्रसन्नचित्त रहें, डिंग नहीं। पुरुष अपने शरीरको ढीला छोडे और खी वीर्यप्राप्ति समय अपान वायुको ऊपर खोंचे। योनिको ऊपर संकोच कर वीर्य्यका ऊपर आकर्षण करके गर्भाशयमें स्थिति करे \*। पश्चात् दोनों श्रद्ध जलसे स्नान करें। गर्भस्थिति होनेका परिज्ञान विदुषी स्नीको उसी समय होजाता है परन्तु इसका निश्चय एक मासके पश्चात रजखला न होने पर सबको हो जाता है। सोंठ, केसर, असगन्ध, सफेद इलायची और सालमिश्री डाल गर्म कर रक्खा हुआ जो ठण्डा दूध है उसकी यथारुचि दोनों चीह अलग अलग अपनी २ शय्यामें शयन करें। यही विधि जब २ गर्भाधान क्रिया करें तब २ करना उचित है जब महीने भरमें रजस्वला न होनेसे गर्भस्थितिका निश्चय होजाय तबसे एक वर्ष पर्य्यन्त स्त्री पुरुषका समागम कभी न होना चाहिये। क्योंकि ऐसा होनेसे सन्तान उत्तम और पुनः दूसरा सन्तान भी वैसा ही होता है। अन्यथा वीर्य व्यर्थ जाता दोनोंकी आयु घट जाती और अनेक प्रका-रके रोग होते हैं परन्तु ऊपरसे भाषणादि प्रेमयुक्त व्यवहार अवश्य रखना चाहिये। पुरुष वीर्य्यकी स्थिति और स्त्री गर्भकी रक्षा और भोजन छादन इस प्रकारका करे कि जिससे पुरुषका वीर्घ्य स्वप्नमें भी नष्ट न हो और गर्भमें बालकका शरीर अत्युत्तम रूप, लावण्य, पुष्टि, बल, पराक्रमयुक्त होकर दशवें महीनेमें जन्म होवे। विशेष उसकी रक्षा चौथे महीनेसे और अतिविशेष आठवें महीनेसे आगे करनी चाहिये। कभी गर्भवती स्त्री रेचक, रूक्ष, मादकद्रव्य, बुद्धि और बल्नाशक पदार्थोंके भोजनादिका सेवन न करे किन्तु ची, दूध,

<sup>\*</sup> यह बात रहस्यकी है इसिलये इतने ही से समप्र बातें समम्ब केना चाहिये विशेष किखना उचित नहीं ।।

**उत्तम चावल, गेहुं, मूंग, उर्द आदि अन्न पान और देश कालका भी** सेवन युक्तिपूर्वक करे। गर्भमें दो संस्कार एक चौथे महीनेमें पुंसवन और दूसरा आठवें महीनेमें सीमन्तोन्नयन विधिके अनुकूछ करे। जब सन्तानका जन्म हो तब स्त्री और लड़केके शरीरकी रक्षा बहुत साव-धानीसे करे अर्थात् शुण्ठीपाक अथवा सौभाग्य शुण्ठीपाक प्रथम ही बनवा रक्खे उस समय सुगन्धियुक्त उष्ण जल जो कि किविचत उष्णः रहा हो उसीसे स्त्री स्नान करे और बालकको भी स्नान करावे। तत्प-श्चात नाडीछेदन बालककी नाभिके जड़में एक कोमल सृतसे बांध चार अंगुल छोडके ऊपरसे काट डाले। उसको ऐसा बांधेकि जिससे शरीरसे रुधिरका एक विन्दु भी न जाने पावे । पश्चात् उस स्थानको श्रद्ध करके उसके द्वारके भीतर सुगन्धादियुक्त घृतादिका होम करे। तत्पश्चात् सुन्तानके कानमें पिता "वेदोसीति" अर्थात् तेरा नाम वेद है' सुनाकर घी और सहतको लेके सोनेकी शलाकासे जीभ पर "ओ३म्" अक्षर ढिखकर मधु और घृतको उसी शलाकासे चटवावे। पश्चात् उसकी माताको देदेवे। जो दूध पीना चाहे तो उसकी माता पिछावे, जो उसकी माताके दूध न हो तो किसी स्त्री की परीक्षा करके उसको दुध पिलावे। पश्चात् दूसरी शुद्ध कोठरी वा कमरेमें कि जहांका वाय शुद्ध हो उसमें सुगन्धित घीका होम प्रातः और सायंकाल किया करें और उसीमें प्रसूता स्त्री तथा बालकको रक्ले। छः दिन तकः माताका दुध पिये और स्त्री भी अपने शरीरकी पुष्टिके अर्थ अनेक प्रकारके उत्तम भोजन करे और योनिसंकोचादि भी करे। छठे दिन स्त्री बाहर निकले और सन्तानके दूध पीनेके लिये कोई धायी रक्खें उसको खान पान अच्छा करावे। वह सन्तानको दूध पिलाया करे भीर पालन भी करे परन्तु उसकी माता लड़के पर<sup>े</sup>पूर्णहष्टि रक्खे किसी प्रकारका अनुचित व्यवहार उसके पालनमें न हो। स्त्री दूधः बन्द करनेके अर्थ स्तनके अप्रभाग पर ऐसा लेप करे कि जिससे द्रश् स्रवित न हो । उसी प्रकारका खान पानका व्यवहार भी यथायोग्क

रक्खे । परचात् नामकरणादि संस्कार "संस्कारविधि" की रीतिसे यथाकाल करता जाय । जब स्त्री फिर रजस्वला हो तब शुद्ध होनेके परचान उसी प्रकार ऋतुदान देवे ॥

ऋतुकालाभिगामी स्यात्स्वदारनिरतः सदा । ब्रह्मचार्येव भवति यत्र तत्राश्रमे वसन् ॥

मनु• [३। ५०]

जो अप नहीं स्त्रीसे प्रसन्न और ऋतुगामी होता है वह गृहस्थ भी ब्रह्मचारीके सहशह ॥

सन्तुष्टो भार्यया भत्ती भन्नी भार्या तथैव च।
विकिन्ते को नित्यं कल्याणं तथ वै अ वम्। १।
यदि हि स्त्री न रोचेत पुमांसन्न प्रमोदयेत्।
अप्रमोदात्पुनः पुंसः प्रजनं न प्रवत्तेते॥ २॥
स्त्रियां तु रोचमानायां सर्वे तद्रोचते कुलम्।
तस्यां त्वरोचमानायां सर्वमेव न रोचते॥ ३॥

न्यु० [६।३० हर्]

जिस कुछमें भध्यांसि भर्ता और पतिसे पत्नी अच्छे प्रकार प्रसन्न रहती है इसी छुछने सब सौभाग्य और ऐश्वर्य निवास करते हैं। जहां कछ हो । है वहां दौर्भाग्य और दारित्य स्थिर होता है ॥१॥ जो रत्री पतिसे प्रीते और पतिको प्रसन्न नहीं करती तो पतिके अपसन्न होने । काम उदयन्त नहीं होता ॥ २॥ जिस स्त्री की प्रसन्नतामें सब छुछ प्रसन्त होता उसकी अप्रसन्ततामें सब अप्रसन्त अर्थात् दुःपदायक होनाता है॥३॥

पितृभिर्श्रातृभिरचैताः पतिभिर्देवरैस्तथा । पूज्या भूषयितच्याश्च बहुकच्याणमीप्सुभिः ॥१॥ समुल्लास] गृहस्थोंके धर्म और व्यवहार । ११७ यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः । यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राऽफलाः कियाः ॥२॥ शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम् । न शोचन्ति तु यत्रैता वर्द्धते तद्धि सर्वदा ॥३॥ तस्मादेताः सदा पूज्या भूषणाच्छादनाश्चनैः । भूतिकामैनेरैनित्यं सस्कारेष्ट्रसवेषु च ॥४॥ मन्तु [३।४५-५०।४६]

पिता, भाई, पित और देवर इनको सन्कारपूर्वक भूषणादिसे प्रसन्न रक्खें, जिनको बहुत कल्याणकी इच्छा हो वे ऐसे करें ॥ १ ॥ जिस घरमें स्त्रियोंका सत्कार होता है उसमें विद्यायुक्त पुरुष होके देवसंझा धराके आनन्दसे कीड़ा करते हैं और जिस घरमें स्त्रियोंका सत्कार नहीं होता वहां सब किया निष्फळ होजाती हैं ॥ २ ॥ जिस घर वा कुळमें स्त्री छोग शोकातुर होकर दुःख पाती हैं वह कुळ शीम वष्ट श्रष्ट होजाता है और जिस घर वा कुळमें स्त्री छोग आनन्दसे इत्साह और प्रसन्ततासे भरी हुई रहती हैं वह कुळ सर्वदा बढ़ता रहता है ॥ ३ ॥ इसळिये ऐश्वर्यकी कामना करनेहारे मनुष्योंको योग्व है कि सत्कार और उत्सवके समयोंमें भूषण वस्त्र और भोजनादिसे स्त्रियोंका नित्य प्रति सत्कार करें ॥ ४ ॥ यह बात सदा ध्यानमें रखनी चाहिये कि "पूजा" शब्दका अर्थ सत्कार है और दिन रातमें जब २ श्रम मिळें वा प्रथक हों तब २ प्रीति र्वक 'नमस्ते" एक दूसरेसे करें ॥

सदा प्रहृष्ट्या भाव्यं गृहकार्येषु दक्षया। सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया ॥

मनु• [४।१६०]

स्त्री को योग्य है कि अतिप्रसन्नतासे घरके कार्मोमें चतुरर्म्युक्त

सब पदार्थीं के उत्तम संस्कार तथा घरकी शुद्धि रक्ष्ले और न्ययमें अत्यन्त उदार [न] रहै अर्थात् [यथायोग्य खर्च करे और] सब बीज़ें पवित्र और पाक इस प्रकार बनावे जो औषधिरूप होकर शरीर वा अन्तमामें रोगको न आने देवे, जो जो व्यय हो उसका हिसाब यथावन् रखके पति आदिको सुना दिया करे घरके नौकर चाकरोंसे यथायोग्य काम छेवे घरके किसी कामको विगड़ने न देवे॥

## स्त्रियो रत्नान्यथो विद्या सत्यं शौचं सुभाषितम्। विविधानि च शिल्पानि समादेयानि सर्वतः॥

मनु• [२।२४०]

उत्तर स्त्री, नाना प्रकारके रत्न, विद्या, सत्य, पवित्रता, श्रेष्ठभा-षण और नाना प्रकारकी शिल्पविद्या अर्थात् कारीगरी सब देश तथा सब मनुष्योंसे पहण करे ॥

सत्यं ब्र्यात् प्रियं ब्र्यात् ब्र्यात् सत्यमप्रियम् । प्रियं च नान्ततं : ब्र्यादेष धर्मः सनातनः ॥ १ ॥ भद्रं भद्रमिति ब्र्याद्गद्रमित्येव वा वदेत् । शुष्कवैरं विवादं च न कुर्यात्केनचित्सह ॥ २ ॥ मनुः [४ । १३८ । १३८ ।

सदा प्रिय सत्य दूसरेका हितकारक बोले अप्रिय सत्य अर्थात् काणको काणा न बोले, अनृत अर्थात् भूठ दूसरेको प्रसन्न करनेके अर्थ न बोले।। १॥ सदा भद्र अर्थात् सबके हितकारी बचन बोला करे शुष्कवैर अर्थात् विना अपराध किसीके साथ विरोध वा विवाद न करे। जो २ दूसरेका हितकारक हो और बुरा भी माने तथापि कहे विना न रहे॥ २॥

पुरुषा बहवो राजन् सततं प्रियवादिनः।

## समुल्लास] गृहस्थेंकि धर्म और व्यवहार ११६ अप्रियस्य तु पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्ल्लभः॥

**ज्योगपर्व—विदुरनीति० ॥** 

हे धृतराष्ट्र ! इस संसारमें दूमरेको निरन्तर प्रसन्त करनेके लिये प्रिय बोलने वाले प्रशंसक लोग अहुत हैं परन्तु सुननेमें अप्रिय विदित हो और वह कल्याण करनेवाला क्चन हो उसका कहने और सुननेवाला पुरुष दुर्लभ है। क्योंकि सत्पुरुषोंको योग्य है कि मुखके सामने दूसरेका दोष कहना और अपना दोष सुनना परोक्षमें दूसरेके गुण सदा कहना। और दुष्टोंकी यही रीति है कि सम्मुखमें गुण कहना और परोक्षमें दोषोंका प्रकाश करना। जबतक ग्नुष्य दूसरेसे अपने दोष नहीं कहता तबनक मनुष्य दोषोंसे छूटकर गुणी नहीं हो सकता। कभी किसीकी निन्दा न करे जैसे:—

"गुणेषु दोषारोपणमसूया" अर्थात "दोषेषु गुणारोपणमप्यसूया" "गुणेषु गुणारोपणं दोषेषु दोषारोपणं च स्तुतिः" जो गुणोंमें दोष दोषोंमें गुण लगाना वह निन्दा और गुणोंमें गुण दोषोंमें दोषोंका कथन करना स्तुति कहाती है अर्थात् मिथ्याभाषणका नाम निन्दा स्रोर सत्यथाषणका नाम स्तुति है ॥

बुद्धिबृद्धिकराण्याशु धन्यानि च हितानि च । नित्यं शास्त्राण्यवेक्षेत निगमांश्चैव वैदिकान् ॥१॥ यथा यथा हि पुरुषः शास्त्रं समधिगच्छति । तथा तथा विजानाति विज्ञानं चास्य रोचते ॥२॥ मनु० [४ । १६ । २०]

जो शीघ बुद्धि धन और हितकी बृद्धि करनेहारे शास्त्र और वेद हैं उनको नित्य सुनें और सुनावें ब्रह्मचर्याश्रममें पढ़े हों उनको स्त्री पुरुष नित्य विचारा और पढ़ाया करें ॥ १ ॥

क्योंकि जैसे २ मनुष्य शास्त्रोंको यथावत् जानता है वैसे २ उस

विद्याका विज्ञान बढ़ता जाता और उसोमें रुचि बढ़ती रहती है ॥२॥
ऋषियज्ञंदेवयज्ञं भूतयज्ञंच सर्वदा । नृयज्ञं
पितृयज्ञंच यथादाक्ति न हापयेत् ॥१॥ मनु० [४।२१]

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञाः पितृयज्ञाश्च तप्पणम् । होमो दैवे बलिभीतो तृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥२॥ मतुरु [३।७०]

स्वाध्यायेनार्चयेदषीन् होमैदेंवान् यथाविधि । पितृन् श्राद्धैश्च नॄनन्नैर्भूतानि बलिकर्मणा ॥ ३ ॥ मनु॰ [३ । ८१]

दो यज्ञ बह्मचर्यमें लिख आये वे अर्थान् एक वेदादि शास्त्रोंका पढ़ना पढ़ाना सन्ध्योपासन, योगाभ्यास, दूसरा देवयज्ञ विद्वानोंका संग सेवा पवित्रना दिव्य गुणोंका धारण दातृत्व विद्याकी उन्निति करना है ये दोनों यज्ञ सायं प्रानः करने होते हैं।।

सायंसायं गृहपतिर्नी अग्निः प्रातः प्रतिमनस्य दाता ॥ १ ॥ प्रातः प्रातगृहिपतिर्नी अग्निः सायं सायं सौमनस्य दाता । २ ॥ अथर्व० कां० १६ । अनु० ७ । मं० ३ । ४ ॥

तस्मादहोराञ्चस्य स्योगे ब्राह्मणः सन्ध्यासुपा-सीत । उचन्तमस्तं यान्तभादित्यमभिध्यायन् ॥३॥ ब्राह्मणे [ पड्विंशब्राह्मणे प्र०४ । स्व०४ ]

न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यस्तु पश्चिमाम् ।

## स शुद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः ॥४॥

मनु० [२ । **१०**३]

जो सन्ध्या २ कालमें होम होता है वह हुत द्रव्य प्रातःकाल तक वायु ग्रुद्धि द्वारा सुस्तकारी होना है ॥ १ ॥

जो अग्निमें प्रातः २ कालमें होम किया जाता है वह २ हुत द्रव्य सायङ्काल पर्यन्त वायुकी शुद्धि द्वारा बल बुद्धि और आरोग्यकारक होता है।।२।।

इसील्रिये दिन और रात्रिके सन्धिमें अर्थात् सूर्योदय और अस्त समयमें परमेश्वरका ध्यान और अग्निहोत्र अवश्य करना वाहिये ॥३।

और जो ये दोनों काम साथ और प्रातःकालमें उ करे उसकी सज्जनलीग सब द्विजोंके कमोंसे बाहर निकाल देवें अर्थान् उसे सूद्र-बत् सममें ।। ४ ।।

प्रश्न-जिकाल सन्ध्या क्यों नहीं करना ?

उत्तर—तीन समयमें सिन्ध नहीं होती प्रकाश और अन्यकारकी सिन्ध भी साथ प्रातः दो ही वेळामें होती है। जो इसको न मानकर मध्याहकालमें तीसरी सिन्ध्या माने वह मध्यरात्रिमें भी सिन्ध्योपासन करें ? जो मध्यरात्रिमें भी करना चाहे तो प्रहर २ घड़ी २ पळ २ और क्षण २ की भी सिन्ध होती है, उनमें भी सिन्ध्योपासन किया करें । जो ऐसा भी करना चाहे तो हो ही नहीं सकता और किसी शास्त्रका मध्याहसन्ध्यामें प्रमाण भी नहीं इसिल्ये दोनों कालोंमें सिन्ध्या और अग्निहोत्र करना समुचित है, तीसरे कालमें नहीं । और जो तीन काल होते हैं वे भूत, भिवष्यत् और वर्त्तमानके भेदसे हैं सिन्ध्योपासनके भेदसे नहीं ।

शीसरा "पितृयज्ञ" अर्थात् जिसमें देव जो विद्वान, ऋषि जो पढ़ने बढ़ानेहारे, पितर जो माता पिता आदि बृद्ध ज्ञानी और परम योगि-बोंकी सेवा करनी। पितृयज्ञके दो भेद हैं एक आद्ध और दूसरा तर्पण । श्राद्ध अर्थात् "श्रत्" सत्यका नाम है "श्रत्सत्यं द्धाति यया कियया सा श्रद्धा श्रद्धया यत् कियते तच्छ्राद्धम्" जिस कियासे सत्य का महण किया जाय उसको श्रद्धा और जो श्रद्धासे कम किया जाय उसको श्रद्धा और जो श्रद्धासे कम किया जाय उसको नाम श्राद्ध है। और "तृष्यन्ति तर्पयन्ति येन पितृत तत्तर्पणम्" जिस जिस कमसे तृप्त अर्थात् विद्यमान माता पितादि पितर प्रसन्न हों और प्रसन्न किये जायँ उसका नाम तर्पण है, परन्तु यह जीवितों के लिये है मृतकोंके लिये नहीं।।

#### अथ देवतर्पम्

ओं ब्रह्माद्यो देवास्तृप्यन्ताम् । ब्रह्मादिदेवपत्न्य-स्तृप्यन्ताम् । ब्रह्मादिदेवसुतास्तृप्यन्ताम् । ब्रह्मा-दिदेवगणास्तृप्यन्ताम् ॥

"विद्वार्थसो हि देवाः" यह शतपथ ब्राह्मणका वचन है — जो विद्वान् हैं उन्होंको देव कहते हैं जो साङ्गोपाङ्ग चार वेदोंके जाननेवाले हों उनका नाम ब्रह्मा और जो उनसे न्यून पढ़े हों उनका भी नाम देव अर्थान् विद्वान् है। उनके सदश उनकी विदुषी स्त्री ब्राह्मणी देवी और उनके तुल्य पुत्र और शिष्य तथा उनके सदश उनके गण अर्थान् सेवक हों उनकी सेवा करना है उसका नाम श्राद्ध और तर्पण है।। इति देवतर्पणम् ।।

#### अथर्षितर्पणम्

ओं मरीच्यादय ऋषयस्तृष्यन्ताम् । मरीच्याचृ -षिपत्न्यस्तृष्यन्ताम् । मरीच्याचृ षिस्रतास्तृष्यन्ताम् । मरीच्याचृ षिगणास्तृष्यन्ताम् ॥

जो ब्रह्मके प्रपौत्र मरीचिवत् विद्वान होकर पढ़ावें और जो उनके सहश विद्यानुक्त उनकी स्त्रियां कन्याओंको विद्यादान देवें उनके तुल्य पुत्र और शिष्य तथा उनके समान उनके सेवक हों उनका सेवन और सत्कार करना ऋषितर्पण है ॥ इति ऋषितर्पणम् ॥

#### अथ पितृतर्पणम्

अं सोमसदः पितरस्तृष्यन्ताम् । अग्निष्वात्ताः पितरस्तृष्यन्ताम् । बर्हिषदः पितरस्तृष्यन्ताम् । सोमपाः पितरस्तृष्यन्ताम् । हविर्भुजः पितरस्तृष्यन्ताम् । हविर्भुजः पितरस्तृष्यन्ताम् । आज्यपाः पितरस्तृष्यन्ताम् । [ सुकालिनः पितरस्तृष्यन्ताम् । ] यमादिभ्यो नमः यमादीस्तर्वामा । पित्रे स्वधा नमः पितरं तर्पयामि । पितामहाय स्वधा नमः पितामहं तर्पयामि । [ प्रपितामहाय स्वधा नमः प्रपितामहं तर्पयामि । ] मात्र स्वधा नमो मातरं तर्पयामि । पितामहाँ स्वधा नमः प्रपितामहाँ स्वधा नमः प्रपितामहाँ तर्पयामि । [ प्रपितामहाँ स्वधा नमः प्रपितामहाँ तर्पयामि । ] स्वपत्नयै स्वधा नमः स्वपत्नीं तर्पयामि । सम्बन्धिभ्यः स्वधा नमः सम्बन्धिनस्त-र्पयामि । सम्बन्धिभ्यः स्वधा नमः सम्बन्धिनस्त-र्पयामि । सात्रे भ्यः स्वधा नमः सगोत्रांस्तर्पयामि ॥

"ये सोमे जगदीरवरे पदार्थिविद्यायां च सीदन्ति त सोमसदः" जो परमात्मा और पदार्थिविद्यामें निषुण हों वे सोमसद । "यैरानविद्यतो विद्या गृहीता ते अग्निष्वात्ताः" जो अग्नि अर्थात् विद्युदादि पदार्थीक

जाननेहारे हों वे अनिन्छाल । ''ये बहिषि उत्तमे व्यवहारे सीदन्ति ते वहिषदः'' जो उत्तम विद्यावृद्धियुक्त व्यवहार में स्थित हों वे बहिषद् । ''ये सोमनेश्वयंमीषधीरसं वा पान्ति पिबस्ति वा ते सोमपाः'' जो ऐश्व- १२४

चौथा वैश्वदेव-अर्थात् जब भोजन सिद्ध हो तब जो कुछ भोज-नार्थ बने उसमें खट्टा लवणान्न और भारको छोडके वृत मिष्टयुक्त अन्त लेकर चूल्हेसे अग्नि अलग धर निम्नलिखित मन्त्रोंसे आहुति और भागः करे।

वैश्वदेवस्य सिद्धस्य गृहेऽग्रौ विधिपूर्वकम्।

## आन्यः कुर्यादे वतान्यो ब्राह्मणो होममन्त्रहम् ॥

मनु• [३८४]∙

जो कुछ पाकशालामें भोचनार्थ सिद्ध हो उसका हिन्य गुर्णोंके अर्थ इसी पाकाग्निमें निम्नलिखित मन्त्रोंस विधिपूर्वक होम नित्य करे— होम करनेके मन्त्र ।

ओं अग्रये स्वाहा । सोमाय स्वाहा । अग्नीषोमा-भ्यां स्वाहा । विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा । धन्वन्तरये स्वाहा । कुह्वँ स्वाहा । अनुमत्यै स्वाहा । प्रजापतये स्वाहा । सह चावापृथिवीभ्यां स्वाहा । स्विष्टकृते स्वाहा ॥

इन प्रत्येक मन्त्रोंसे एक २ वार आहुति प्रज्विलत अग्निमें छोड़े पश्चात थाली अथवा भूमिमें पत्ता रखके पूर्व दिशादि कमानुसार यथा-क्रम इन मन्त्रोंसे भाग रक्के:—

श्रों सानुगायेन्द्राय नमः। सानुगाय यमाय नमः। सानुगाय वरुणाय नमः। सानुगाय सोमाय नमः। मरुद्भ्यो नमः। वनस्पतिभ्यो नमः। श्रियै नमः। भद्रकाल्यै नमः। ब्रह्मपतये नमः। बास्तुपतये नमः। विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः। दिवाच-रेभ्यो भूतेभ्यो नमः। सर्वात्मभूतये नमः। सर्वात्मभूतये नमः। सर्वात्मभूतये नमः।

इन भागोंको जो कोई अतिथि हो तो उसको जिमा देवे अथवा अगिनमें छोड़ देवे । इसके अनन्तर छवणान अर्थात् दाछ, भात, शाक, रोटी आदि छेकर छः भाग भूमिमें धरे । इसमें प्रमाण—

#### शुनां च पतितानां च श्वपचां पापरोगिणाम्। वायसानां कृमीणां च शनकैर्निवेषेद्भुवि॥

मनु० [३।६२]

इस प्रकार "श्वभ्यो नमः, पतितेभ्यो नमः, श्वपग्भ्यो नमः, पाप-रोगिभ्यो नमः वायसेभ्यो नमः, कृमिभ्यो नमः" धरकर पश्चात् किसी दुःखी बुनुश्चित प्राणी अथवा कुत्ते कौवे आदिको देवे। यहां नमः शब्दका अर्थ अत्र अर्थात् कुत्ते, पापी, चांडाल, पापरोगी, कौवे और कृमि अर्थात् चींटी आदिको अत्र देना यह मनुस्मृति आदिकी विधि है। ह्वन करनेका प्रयोजन यह है कि पाकशालास्थ वायुका ग्रुद्ध होना और जो अज्ञात अदृष्ट जीवोंकी हत्या होती है उसका प्रत्युप-कार कर देना।।

अव पांचवी अतिथिसेवा—अतिथि उसको कहते हैं कि जिसकी कोई तिथि निश्चित न हो अर्थात् अकस्मात् धार्मिक, सत्योपदेशक, सबके उपकारार्थ सर्वत्र घूमने वाला पूर्णविद्वान, परमयोगी, सन्यासी गृहस्थके यहाँ आवे तो उसको प्रथम पाय अर्थ और आचमनीय तीन प्रकारका जल देकर पश्चात् आसन पर सत्कारपूर्वक बैठा कर खान पान आदि उत्तमोत्तम पदार्थोंसे सेका शुक्रूषा करके उसको प्रसन्न करे। पश्चात् सत्सङ्ग कर उनसे झान विझान आदि जिनसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी प्राप्ति होवे ऐसे ऐसे उपदेशोंका अवण करे और अपना चाल चलन भी उनके सदुपदेशानुसार रक्से। समय पाके गृहस्थ और राजादि भी अतिथिवत् सत्कार करने योग्य हैं परन्तु—

पाषण्डिनो विकर्मस्थान् वैडालपृत्तिकान् शठान्। हैतुकान् वकवृत्तींश्च वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत्॥ मनु० [४ । ३०]

(पाषण्डी) अर्थात् वेदनिन्दक, वेदविरुद्ध आचरण कनेहारा

( विकर्मस्थ ) जो वेदविरुद्ध कर्मका कर्त्ता मिथ्याभाषणाढि यक्त जैसे विडाला छिप और स्थिर रहकर ताकता २ मापटसे मूर्वे बादि प्राणि-थोंको मार अपना पेट भरता है वैसे जनोंका नाम वैदालवृत्तिक (शठ) अर्थात् हठी, दुराप्रही, अभिमानी, आप जाने नहीं औरोंका कहा माने नहीं (हैतक) कुतकीं व्यथं वकनेवाले जैसे कि आजकलके वेदान्ती बकते हैं हम ब्रह्म और जगत मिध्या है वेदादि शास्त्र और ईश्वर भी कल्पित है इत्यादि गपोड़ा हांकनेवाले (बकवृत्ति) जैसे वक एक पैर ह्या ध्यानावस्थितके समान होकर मह मछलीके प्राण हरके अपना खार्थ सिद्ध करता है वैसे आजकलके वैरागी और खाकी आदि हठी दराप्रही वेदविरोधी हैं ऐसोंका सत्कार वाणीमात्रसे भी न करना चाहिये। क्योंकि इनका सत्कार करनेसे ये बुद्धिको पाकर संसारको अधर्मयुक्त करते हैं। आप तो अवनतिके काम करते ही हैं परन्तु साथमें सेवकको भी अविद्यारूपी महासागरमें ड्वो देते हैं। इन पांच महाय-क्लोंका फल यह हैं कि ब्रह्मयज्ञके करनेसे विञ्चा, शिक्षा, धर्म, सभ्यता आदि शुभ गुणोंकी वृद्धि । अग्निहोत्रसे वायु, वृष्टि, जलकी शुद्धि होकर वृष्टि द्वारा संसारको सुख प्राप्त होना अर्थात् शुद्ध वायुका श्वासास्पर्श खान पानसे आरोग्य, बुद्धि, बल, पराक्रम बढके धर्म, अर्थ काम और मोक्षका अनुष्ठान पूरा होना इसीलिये इसको देवयज्ञ कहते हैं। पितयज्ञसे जब माता पिता और ज्ञानी महात्माओंकी सेवा करेगा तव उसका ज्ञान बढ़ेगा। उससे सत्यासत्यका निर्णय कर सत्यका प्रहण और असत्यका त्याग करके सुखी रहेगा। दूसरा कृतज्ञता अर्थात जैसी सेवा माता पिता और आचार्यने सन्तान और शिष्योंकी की है उसका बदला देना उचित ही है बलिवश्वदेवका भी फल जो पूर्व कह आये वही है। जबतक उत्तम अतिथि जगतमें नहीं होते तबतक उन्नति भी नहीं होती उनके सब देशोंमें घूमने और सत्योपदेश कर-नेसे पाखण्डकी बृद्धि नहीं होती और सर्वत्र गृहस्थोंको सहजसे सत्य विज्ञानकी प्राप्ति होती रहती है और मनुष्यमात्रमें एक ही धर्म स्थिर

रहता है। विना अतिथियोंके सन्देहनिवृत्ति नहीं होती सन्देहनिवृत्तिके विना दृढ़ निश्चय भी नहीं होता। निश्चयके विना सुख कहां!

## ब्राह्मे मुहूर्त्ते बुध्येत धर्मार्थी चानुचिन्तयेत्। कायक्लेशाँश्च तन्मूलान् वेदतत्त्वार्थमेव च॥

मनु• [४। ६२]

रात्रिके चौथे प्रहर अथवा चार घड़ी रातसे उठे आवश्यक कार्य करके धर्म और अर्थ, शरीरके रोगोंका निदान और परमात्माका ध्यान करे कभी अधर्मका आचरण न करे क्योंकि:—

# नाधर्मश्चरितो लोके सद्यः फलति गौरिव। शनैरावर्त्त मानस्तु कर्त्तु मूलानि कृन्ति॥

मनु• [४।१७२]

किया हुआ अर्थमं निष्फल कभी नहीं होता परन्तु जिस समय अर्थमं करता है उसी समय फल भी नहीं होता इसल्थि अज्ञानी कोग अर्थमंसे नहीं डरते तथापि निश्चय जानो कि वह अध्मांचरण धीरे धीरे तुम्हारे सुखके मूलोंको क.टसः चला जाता है। इस कमसे—

## अधर्मेणैधते तावत्ततो भद्राणि पश्यति । ततः स-पत्नाञ्जयति सम्लस्तु विनश्यति ॥ मनु० ४।१७४॥

जब अथर्मातमा मनुष्य थर्मकी मर्यादा छोड़ (जैसे तालाबके बंध को तोड़ जल चारों ओर फैल जाता है वैसे ) मिथ्याभाषण, कपट, पाखण्ड अर्थात् रक्षा करनेवाले वेदोंका खण्डन और विश्वासघातादि कर्मोंसे पराये पदार्थोंको लेकर प्रथम बढ़ता हैं, पश्चात् धनादि ऐश्व-र्यंसे खान, पान, वस्त, आभूषण, यान, स्थान, मान, प्रतिष्ठाको प्राप्त होता है अन्याक्से शब्दुओंको भी जीतता है पश्चात् शीघ नष्ट हो जाता है जैसे अधर्मी नष्ट भ्रष्ट हो जाता है वैसे अधर्मी नष्ट भ्रष्ट हो जाता है।

#### सञ्जलासा सत्यधर्मार्यवृत्तेषु व्यक्तिचे चैवारमेत्सदा । शिष्यांश्च श्चिष्याद्धर्मेष्य वाग्वाहृद्रसंयतः ॥ मनु० ४।१७५॥

जो [विंद्रात्] वेद्रो ह सत्य धर्म अर्थात् पक्षपात्र हित होकर सत्यके प्रहण और असत्यक परित्याग न्यायरूप वेदोक्त धर्माद आर्थ अर्थात धर्ममें चलते हुए के समान धर्ममें शिष्योंको शिक्षा किया करे।।

ऋत्विक्पुरोहिताचार्धेर्मातुलातिथिसंश्रितैः। बालवृद्धातुरैर्वेच र्जातिसम्बन्धिवान्धवैः ॥ १॥ मातापितभ्यां यामीमिर्भात्रा पुत्रेण भार्यया। दुहित्रा दासवर्गेण विवादं न समाचरेत् ॥ २ ॥

मनु० [४।१७६।१८०]

(अमृत्विक्) यज्ञका करनेहारा (पुरोहित) सदा उत्तम चाल चलनकी शिक्षाकारक (आचार्य) विद्या पढानेहारा (मातुल ) मामा (अतिथि) अर्थात् जिसकी कोई आने जानेकी निश्चित तिथि न हो ( संश्रित ) अपने आश्रित ( बाल ) बालक ( वृद्ध ) बुड्ढा ( आतुर ) पीडित (वैद्य ) आयुर्वेदका ज्ञाता (ज्ञाति ) स्वगीत्र वा स्ववंगस्थ (सम्बन्धी) श्वशुर आदि (बान्धव) मित्र ॥ १॥ (माता) माता ( पिता ) पिता ( यामी ) वहिन ( भ्रता ) भाई ( भार्या ) स्त्री (दृहिता) पुत्री और संवक लोगोंसे विवाद अर्थात् विरुद्ध लड़ाई बखेड़ा कभी न करे।। २।।

अतपास्त्वनधीयानः प्रतिग्रहरुचिर्द्धिजः। अम्भस्य-रमप्लवेनैव सह तेनैव मञ्जति ॥ मनु० [४। १६०]

एक ( अतपः ) श्रहाचर्य सत्यभाषणादि तपरदित दूसर! ( अन-धीयानः ) विना ५ इ. इ. इ. तीसरा (प्रतिमक्किचः ) अत्यन्त धर्मार्थ दूसरोंसे दान छेनेवाला ये तीनों पत्थरकी नौकास समुद्रमें तरनेकें समान अपने दुष्ट कमोंके साथ ही दुःखसागरमें डूबते हैं वे तो डूबते हीं हैं परन्तु दाताओंको साथ डुबा छेते हैं:—

ित्रिष्वप्येतेषु दत्तं हि विधिनाप्यर्जितं धनम्। दातुर्भवत्यनर्थाय परत्रादातुरेव च ॥मनु०४।१६३

जो धर्मसे प्राप्त हुए धनका उक्त तीनोंको देना है वह दान दाताका नाश इसी जन्म और छेनेवालेका नाश परजन्ममें करता है।। जो के ऐसे हों तो क्या हो:—

यथा प्लवेनौपलेन निमज्जत्युदके तरन् ।तथा निम-ज्जतोऽधस्तादज्ञौ दातृप्रतीच्छकौ ॥मनु० [४।१६४]

जैसे पत्थरकी नौकामें बैठके जलमें तरनेवाला हूब जाता है बैसे अज्ञानी दाता और प्रदीना दोनों अधोगति अर्थान् दुःखको प्राप्त होते हैं।।

## पाखण्डियोंके स्रक्षण

धर्मध्वजी सदालुब्धरछाद्मिको लोकदम्भकः। वैडालव्रतिको ज्ञेयो हिस्त्रः सर्वाभिसन्धकः॥१॥ अधोद्दष्टिनेष्कृतिकः स्वार्थसाधनतत्परः।

श्वाठो मिथ्याविनीतश्च वकत्रतचरो द्विजः॥ २॥ मनु० [४।१६४।१६६]

(धर्मध्वजी) धर्म कुछ भी न करे परन्तु धर्मके नामसे लोगोंको ठगे (सदालुज्धः) सर्वदा लोभसे युक्त (छाद्रमिकः) कपटी (लोकदम्भकः) संसारी मनुष्यके सामने अपनी बड़ाईके गपोड़े मारा करे (हिंकः) प्राणियोंका घातक अन्यसे वैरचुद्धि रखनेवाला (सर्वाभिसन्धकः) सब अच्छे और बुरोंसे मेल रक्खे उसको वैडालब्रितिक अर्थात् विडालेक समान धूर्न और नीच सममो ॥ १॥ (अथोहच्टिः) कीर्तिके लिये नीचे दृष्टि रक्खे (नैष्कृतिकः) ईर्ध्यक किसीने उसका

पैसा भर अपराध किया हो तो उसका बद्छा प्राण तक ठेनेको तत्पर रहै (खार्थसाधन॰) चाहें कपट अधम विश्वासघात क्यों न हो अपना प्रयोजन साधनेमें चतुर (शठः) चाहें अपनी बात मूठी क्यों न हो परन्तु हठ कभी न छोड़े (मिथ्याविनीतः) मूठ पूठ ऊपरसे शीछ सैतोष और साधुता दिखलावे उसको (वक्वत) बगुलेके समान नीच सममो ऐसे २ लक्ष्णों बाले पाखण्डी होते हैं उनका विश्वास वा सेवा कभी न करें।

धर्मं शनैः सिश्चनुयाद् वल्मीकिमव पुत्तिकाः ।
परलोकसहायार्थं सर्वभृतान्यपीडयन् ॥ १ ॥
नामुत्र हि सहायार्थं पिता माता च तिष्ठतः ।
न पुत्रदारं न ज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठति केवलः ॥ २ ॥
एकः प्रजायते जन्तुरेक एव प्रलीयते ।
एकोनुसुङ्क्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम् ॥३॥
मनु० [४ । २३८—२४०]

एकः पापानि कुरुते फलं भुङ्क्ते महाजनः। भोक्तारो विप्रमुच्यन्ते कर्त्ता दोषेण लिप्यते॥४॥ [महाभारते उद्योगप॰ प्रजागरप०॥ अ० ३२]

्मृतं चारीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्ठसमं क्षितौ । विमुखा बान्धवा यान्ति धर्मस्तमनुगच्छति ॥४॥ मनु०५। २४१

स्त्री और पुरुषको चाहिये कि जैसे पुत्तिका अर्थात् दीमक वल्मीक सर्थात् बांमीको बनाती है वैसे सब भूतोंको पीड़ा न देकर परछोक सर्थात् परजन्मके सुखार्थ धीरे २ धमका संचय करे।। १॥ क्योंकि परछोकमें न माता न पिता न पुत्र न स्त्री न ज्ञाति सहाय कर सकते हैं किन्तु एक धम ही सहायक होता है ॥ २॥ देखिये अक्छा ही जीव

जन्म और मरणको प्राप्त होता, एक ही धर्मका फल जो सुख और अधर्मका जो दुःखरूप फल उसको भौगता है।। ३।। यह भी समक हो कि कुटुप्बमें एक पुरुष पाप करके पदार्थ छाना है और महाजन अर्थात् सब कुटुम्ब उसको भोगता है भोगनेवाले दोषभागी नहीं होते किन्तु अधर्मका कर्ता ही दोपका भागी होता है ॥ ४॥ जब कोई किसीका सम्बन्धी मर् जाता है उसको मट्टीके ढेलेकेसमान भूमिमें छोड कर पीठ दे बन्धुवर्ग विमुख होकर चले जाते हैं कोई उसके साथ जाने बाला नहीं होता किन्तु एक धर्म ही उसका सङ्गी होता है।। ४।।

तस्माद्धर्भं सहायार्थं नित्यं सश्चित्रयाच्छनैः। धम्मेंण हि सहायेन तमस्तरति दुस्तरम् ॥ १ ॥ धर्त्रप्रधानं पुरुषं तपसा इतकि व्विषम्। परलोकं नयत्याशु भास्वन्तं खदारीरिणम् ॥ २ ॥ मनु० [४।२४२।२४३]

उस हेतुसे परलोक अर्थान् परजन्ममें सुख और जन्मके <mark>सहायार्थ</mark> नित्य धर्मका सञ्चय धीरं २ करता जाय क्योंकि धर्म ही के सहायसे बहे २ दुस्तर दुःखसागरको जीव तर सकता है ॥१॥ किन्तु जो पुरुष धर्म ही को प्रधान समस्तना जिसका धर्मके अनुष्ठानसे कर्तव्य पाप द्र होगया उसको प्रकःशस्त्रहर और आकाश जिसका शरीरवत् है उस परलोक अर्थात् परमद्शनीय परमात्माको धर्म ही शीव्र प्राप्त कराता 🖁 ॥ २ ॥ इसलियेः—

दृढकारी मृदुर्दान्तः क्रूराचारैरसंवसन्। अहिंस्रो दमदानाभ्यां जयेत्स्वर्गं तथाव्रतः ॥ १ ॥ ं बाच्यार्था नियताः सर्वे वाङ् मूला वाग्विनिःसृताः। तान्तु यः स्तेनयेद्वाचं स सर्वस्तेयकुन्नरः ॥ २ ॥

# आचाराल्लभते ह्यायुराचारादीप्सिताः प्रजाः । आचाराद्धनमक्षय्यमाचारो हन्त्यलक्षणम् ॥ ३ ॥

मनु• [४। २४६। १४६]

सदा टढ़कारी, कोमल रूपाय, जिपेन्द्रिय, हिंसक, क्रूर ट्रुप्टाचारी पुरुषोंसे प्रथक रहनेहारा, धर्मातमा मनको जीत और विग्र दि दानसे सुखको प्राप्त होवे ॥१॥ परन्तु यह भी ध्यानमें रक्खे कि जिस वाणी है सब अर्थ अर्थान् व्यवहार निश्चित होते हैं वह वाणी ही उनका मूल ब्राप्त हो से सब व्यवहार सिद्ध होते हैं उस वाणीको जो चोरता अर्थान् मिथ्याभाषण करता है वह सब चोरी आदि पापोंका करनेवाला है ॥ २॥

इसिलये मिथ्याभाषणादिरूप अधर्मको छोड़ जो धर्माचार अर्थात् ब्रुज्ञचर्य जितेन्द्रियतास पूर्ण आयु और धर्माचारसे उत्तम प्रजा तथा अक्षय धनको प्राप्त होता है तथा जो धर्माचारमें वर्त्तकर दृष्ट लक्षणोंका नाश करना है उसके आचरणको सदा किया करे॥ क्योंकि—

्दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः। दुःख-भागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च ॥ मनु० ४।१५७

जो दुष्टाचारी पुरुष है वह संसारमें सज्जनोंके मध्यमें निन्द को प्राप्त दुः बभागी और निरन्तर व्याधियुक्त होकर अल्पायुका भी भोग-नेहार। होता है। इसिंखये ऐसा प्रयत्न करेः—

यचत्परवशं कर्म तत्तचत्नेन वर्जयेत्। यचदात्मवशं तु स्यात्तत्तत्त्तेवेत यवतः॥१॥ सर्व परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम्। एतद्विचात्समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः॥२॥ मन• शि। १५० । १६०

जो २ पराधीन कर्म हो उस २ का प्रयत्नसे त्याग और जो २ स्वाधीन कर्म हो उस २ का प्रयक्षके साथ सेवन करे।। १।। क्योंकि जो २ पराधीनता है वह २ सब दःख और जो २ स्वाधीनता है वह २ सब सम्ब यही संक्षेपसे सुख और दुःखका लक्षण जानना चाहिये।।२।। परन्तु जो एक दूसरेके आधीन काम है वह २ आधीनतासे ही करना चाहिये जैसा कि स्त्री और पुरुष एक दूसरेके आधीन व्यवहार । अर्थान स्त्री पुरुषका और पुरुष स्त्री का परस्पर प्रियाचरण अनुकुछ रहना व्यभिचार वा विरोध कभी न करना पुरुषकी आज्ञानुकुछ घरके काम स्त्री और बाहरके काम पुरुषके आधीन रहना दुष्ट व्यसनमें फंसनेसे एक दूसरेको रोकना अर्थात् यही निश्चय जानना । जब विवाह होवे तब स्त्रीके साथ पुरुष और पुरुषके साथ स्त्री बिक चुकी अर्थात् जो स्त्री और पुरुषके साथ हाव, भाव, नखशिखात्रपर्यन्त जो कुछ हैं वह वीर्यादि एक दूसरेके आधीन हो जाना है। स्त्री वा पुरुष प्रसन्न-ताके विना कोई भी व्यवहार न करें। इनमें बड़े अप्रियकारक व्यभि-चार. वेश्या. परपुरुषगमनादि काम हैं। इनको छोडके अपने पतिके साथ स्त्री और स्त्रीके साथ पति सदा प्रसन्न रहें। जो ब्रह्मणवर्णस्थ हों तो पुरुष लड़कोंको पढ़ावे तथा सुशिक्षिता स्त्री लड़कियोंको पढ़ावे नानाविध उपदेश और वङ्कत्व करके उनको विद्वान करें। स्त्रीका पूजनीय देव पति और पुरुपकी पूजनीय अर्थात् सत्कार करने योग्य देवी स्त्री है। जवतक गुरुकुलमें रहें तबतक माता पिताके समान अध्यापकोंको समफ्रें और अध्यापक अपने सन्तानोंके समान शिष्योंको सममें। पढानेहारे अध्यापक और अध्यापिका कैसे होने चाहियें-

आत्मज्ञानं समारम्भस्तितिक्षा धर्मनित्यता। यमर्था नापकर्षन्ति स वै पण्डित उच्यते॥१॥ निषेवते प्रशास्तानि निन्दितानि न सेवते।

अनास्तिकः अद्द्धान एतत्पण्डितलक्षणम् ॥ २ ॥ क्षिप्रं दिजानाति चिरं शृणोति, विज्ञाय चार्थ भजते न कामात् । नासम्पृष्टो ह्युपयुङ्क्ते परार्थे, तत्प्रज्ञानं प्रथमं पण्डितस्य ॥ ३ ॥ नाप्राप्यमभिवाञ्छन्ति नष्टं नेच्छन्ति शोचितुम्। आपत्सु च न मुह्यन्ति नराः पण्डितबुद्धयः ॥४॥ प्रवृत्तवाक् चित्रकथ ऊहवान् प्रतिभानवान्। आशु ग्रन्थस्य वक्ता च यः स पण्डित उच्यते ॥५॥ श्रुतं प्रज्ञानुगं यस्य प्रज्ञा चैव श्रुतानुगा। असंभिन्नार्यमर्यादः पण्डिताख्यां लभेत सः ॥६॥ **षे सब महाभारत** उद्योगपर्व विदुरप्रजागर [अध्याय ३२] के *श्लो*क हैं वर्थ-जिसको आत्मज्ञान सम्यक् आरम्भ अर्थात् जो निकम्मा **बाल्सी कभी** न रहे, सुख, दुःख, हानि, लाभ, मानापमान, निन्दा, स्तुतिमें हुंष शोक कभी न करे, धर्म ही में नित्य निश्चित रहै, जिसके मनको उत्तम २ पदार्थ अर्थात् विषय सम्बन्धी वस्तु आकर्षण न कर सकें वही पण्डित कहाता है ॥ १॥ सदा धर्मयुक्त कर्मीका सेवन, अधर्मयुक्त कार्मोका त्याग, ईश्वर, वेद, सत्याचारकी निन्दा न करने-हारा, ईश्वर अःदिमें अत्यन्त श्रद्धालु हो यही पण्डितका कर्त्तव्या-कर्त्तव्य कर्म है ॥ २ ॥ जो कठिन विषयको भी शीघ जान सके, बहुत कालपर्य्यन्त शास्त्रोंको पढ़े, सुने और विचारे, जो कुछ जाने उसकी परोपकारमें प्रयुक्त करे, अपने स्वार्थके लिये कोई काम न करे, विना पूछे वा विना योग्य समय जाने दृसरेके अर्थमें सम्मति न दे वही प्रथम प्रज्ञान पण्डित होना चाहिये ॥ ३ ॥ जो प्राप्तिके अयोग्यकी इच्छा

कभी न करे नष्ट हुए पदार्थ पर शोक न करे, आपत्कालमें मोहको न

प्राप्त अर्थात् व्याकुळ न हो वही बुद्धिमान् पण्डित है। १८। जिसकी व णीः सव विद्याओं और प्रश्नोत्तरोंके करनेमें अतिनिपुण, विचित्र, शास्त्रोंके प्रकरणोंका वक्ता, यथायोग्य तर्क और स्मृतिमान् अन्थोंके यथार्थः अर्थका शीव वक्ता हो बही पण्डित कहाता है॥ १॥ जिसकी प्रज्ञाः सुने हुए सत्य अर्थकं अनुकूळ और जिसका श्रवण बुद्धिकं अनुसार हो जो कभी आर्य अर्थात् श्रेष्ठ धार्मिक पुरुषोंकी मयादाका छेदन क करे वही पण्डित संज्ञाको प्राप्त होवे॥ ६॥ जहां ऐसे ऐसे स्त्री पुरुष पढ़ानेवाले होते हैं दहां विद्या धर्म और उत्तमाचारकी बृद्धि होकर प्रतिदिन आनन्द ही बढ़ता रहता है।

पढ़नेमें अयोग्य और मूर्विके लक्षणः—

अश्रुतश्च समुन्नद्धो दरिद्रश्च महामनाः।

अर्थारचाऽकर्मणा प्रेप्सुर्मूढ इत्युच्यते बुधैः ॥ १॥

अनाहृतः प्रविद्यति सप्रष्टो बहु भाषते ।

अविश्वस्ते विश्वसिति सृढचेता नराधमः॥ २॥

ये रहोक भी महा • उद्योगि विदुरप्रजागर [अध्याय ३२] के हैं। अध—जिसने कोई शास्त्र न पढ़ा न सुना और अनीव घमण्डी द्रिरी होकर बड़े २ मनोरथ करनेहारा विना कमसे पदार्थों की प्राप्तिकी इच्छा करनेवाला हो उसीको बुद्धिमान लोग मृद्ध कहते हैं॥ १॥ जो विना बुलाये सभा व किसीके घरमें प्रविष्ट हो। उद्य आसन पर बैठना चाहे, विना पूछे सभामें बहुतसा बके, विश्वासके अयोग्य वस्तु वा मनुष्यमें विश्वास करे बही मृद्ध और सब मनुष्योंमें नीच मनुष्य कहाता है॥ २॥ जहाँ ऐसे पुरुष अध्यापक, उपदेशक, गुरु और

आलस्यं मदमोहौ च चाएलं गोष्ठिरेव च । स्तब्ध-

माननीय होते हैं वहां अविद्या, अधर्म, असभ्यता, कलह, विरोध और फूट बढ़के दुःख ही बढ़ जाता है। अब विद्यार्थियोंके लक्षणः— ता चाभिमानित्वं तथाऽत्यागित्वमेव च ॥ एते वं सप्त दोषाः स्यः सदा विद्यार्थिमां मताः ॥१॥

सुखार्थिनः क्रुतो विद्या कुतो विद्यार्थिनः सुखम्। सुखार्थी वा त्यजेद्वियां विद्यार्थी वा त्यजेत्सुखम् ।२।

ये भी विदुप्र त.गर [ अध्याय ३६ ] के रहोक हैं

अर्थ—( आलस्य ) अर्थात् शरीर और बुद्धिमें जड़ता, नशा, मोह किसो वस्तुमें फंसावट, चपलता और इधर उधरकी व्यर्थ कथा करना सुनना, पढते पढाते रुक जाना, अभिमानी, अत्यागी, होना ये सात दोष विद्यार्थियों में होते हैं।। १॥ जो ऐसे हैं उनको विद्या कभी नहीं आती ।। सुख भोगनेकी इच्छा करने वालेको विद्या कहां १ और विद्या पढ़नेवालेको सुख कहां ? क्योंकि विषयसुखार्थी विद्याको और विद्यार्थी विषयसुखको छोड़ दे॥ २॥ ऐसे किये विना विद्या कभी नहीं हो सकती और ऐसेको विद्या होती है:-

## सत्ये रतानां सततं दान्तानामूर्ध्वरेतसार्। ब्रह्मचर्यं दहेद्राजन् सर्वपापान्युपासितम्॥

जो सदा सत्याचारमें प्रवृत जितेन्दिय और जिनका वीर्य अधः-स्खिलित कभी न हो उन्हीं का ब्रह्मचर्य सचा और वे ही विद्वान् होते हैं।। १॥ इसिछिये शुभ लक्षणयुक्त अध्यापक और विद्यार्थियोंको होना चाहिये। अध्यापक लोग ऐसा यत्न किया करें जिससे विद्यार्थी लोग सत्यवादी, सत्यमानी, सत्यकारी सभ्यता, जितेन्द्रियता, सशीलतादि शुभगुणयुक्त शरीर और आत्माका पूर्ण बल बढ़ाके समय वेदादि शास्त्रोंमें विद्वान हों सदा उनकी कुचेष्टा ह्युड़ानेमें और विद्या पढ़ानेमें चेष्टा किया करें। और विद्यार्थी लोग सदा जितेन्द्रिय, शान्त, पढ़ने-हारोंमें प्रेम विचारशील परिश्रमी होकर ऐसा पुरुषार्थ करें जिससे पूर्ण विद्या, पूर्ण आयु, परिपूर्ण धर्म और पुरुषार्थ करना

काजाय इत्यादि ब्राह्मणवर्णों के काम हैं। क्षत्रियों का कर्म राजधर्ममें कहेंगे। [वैश्यों के कम ब्रह्मचर्या दिसे वेदादि विद्या ] पढ़ [विवाह करके ] देशों की भाषा, नाना प्रकारके व्यापारकी रीति, उनके भाव जानना, बेचना, खरीदना, द्वीपद्वीपान्तरमें जाना आना, छामार्थ काम का आरम्भ करना, पशुपाछन और खेतीकी उन्नति चतुराईसे करनी करानी, धनका बढ़ाना, विद्या और धर्मकी उन्नतिमें व्यय करना, सत्यवादी निष्कपटी होकर सखतासे सब व्यवहार करना, सब वस्तुओं की रक्षा ऐसी करनी जिससे कोई नष्ट न होने पावे। शूद्र सब सेवाओं में चतुर, पाकविद्यामें निपुण, अतिप्रेमसे द्विजों की सेवा और उन्हीं से अपनी उपजीविका करें और द्विज लोग इनके खान, पान, बस्न, स्थान, विवाहादिमें जो कुछ व्यय हो सब कुछ देवें। अथवा मासिक कर देवें। चारों वर्णों को परस्पर प्रीति, उपकार, सज्जनना, सुख, दु:ख, हानि, छाभमें ऐकमत्य रहकर राज्य और प्रजाकी उन्नतिमें तन, मन, धनका व्यय करते रहना। स्त्री और पुरुषका वियोग कभी न होना चाहिये क्यों कि—

## पानं दुर्जीनसंसर्गः पत्या च विरहोऽटनम् । स्वप्नोन्यगेहवासश्च नःरीसन्दृषणानि षट् ॥

मनु० [ ६ । १३ ]

मद्य भांग आदि मादक द्रश्योंका पीना, दुष्ट पुरुशेंका सङ्ग, पितिवयोग, अकेली जहां तहां व्यर्थ पाखण्डी आदिक दर्शनके मिससे फिरती रहना और पराये घरमें जाके शयन करना वा वास। ये छः स्त्रीको दृषित करने वाले दुर्गुण हैं। और ये पुरुषोंके भी हैं पित और स्त्रीकः वियोग दो प्रकारका होता है कहीं कार्यार्थ देशान्तरमें जाना और दूसरा मृत्युसे वियोग होना इनमेंसे प्रथमका उपाय यही है कि दूर देशमें यात्रार्थ जावे तो स्त्रीको भी साथ रक्ले इसका प्रयोजन यह है कि बहुत समय तक वियोग न रहना चाहिये।

प्रश्न—स्त्री और पुरुषोंके बहु विवाह होने योग्य हैं वा नहीं ? उत्तर — युगपत् न अर्थात् एक समयमें नहीं । प्रश्न—क्या समयान्तरमें अनेक विवाह होने चाहियें ? उत्तर—हां जैसे:—

## सा चेदक्षतयोनिः स्याद्गतप्रत्यागतापि वा । पौनभवेन भन्नी सा पुनः संस्कारमहिति ॥

मनु• [ ६ । १७६ ]

जिस स्त्री वा पुरुषका पाणिप्रहणमात्र संस्कार हुआ हो और संयोग न हुआ हो अर्गत् अक्षतयोनि स्त्री और अक्षतवीय पुरुष हो उनका अन्य स्त्री वा पुरुषके साथ पुनर्विवाह होना चाहिये किन्तु ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य वर्णोमें क्षतयोनि स्त्री क्षतवीय पुरुषका पुनविवाह न होना चाहिये।

प्रश्न-पुनर्विवाहमें क्या दोष है ?

उत्तर—पहिला स्त्री पुरुषमें प्रेम न्यून होना क्योंकि जब चाहे तब पुरुषको स्त्री और स्त्री को पुरुष छोड़ कर दूसरेके साथ सम्बन्ध कर छे (दूसरा) जब स्त्री वा पुरुष पति व स्त्री के 'मरनेके पश्चात् दूसरा विवाह करना चाहे तब प्रथम स्त्री वा पूर्व पतिके पदार्थोंको उड़ा लेजाना स्नीर उनके कुटुम्ब वालोंका उनसे समाड़ा करना (तीसरा) बहुतसे भद्रकुलका नाम वा चिह्न भी न रह कर उसके पदार्थ छित्र भिन्न हो जाना (चौथा) पतिन्नत स्नीर स्नीन्नत धर्म नष्ट होना इत्यादि दोषोंके अर्थ द्विजोंमें पुनर्विवाह वा अनेक विवाह कभी न होना चाहिये।

प्रश्न—जब वंशच्छेदन हो जाय तब भी उसका कुछ नष्ट होजा-यगा और स्त्री पुरुष व्यभिचारादि कर्भ करके गर्भपातनःदि बहुत दुष्ट कर्भ करेंगे इसिंख्ये पुनर्विवाह होना अच्छा है।

उत्तर—नहीं २ क्योंकि जो स्त्री पुरुष ब्रह्मचर्यमें स्थित रहना चाहें तो कोई भी उपद्रव न होगा और जो कुछकी परम्परा रखनेके िख्ये किसी अपने खजातिका 'छड़का गोद हे छैंगे उससे छुछ चलेगा भौग व्यभिचार भी न होगा और जो ब्रह्मचर्य न रख सकें तो नियोग करके सन्तानोत्पत्ति करलें।

प्रभ-पुनविवाह और नियोगमें क्या भेद है ?

डतर—(पहिला) कैसं विवाह करनेमें कन्या अपने पिताका घर छोड़ पतिक घरको प्राप्त होती है और पितासे विशेष सम्बन्ध नहीं रहता और विधवा स्त्री उसी विवाहित पतिके घरमें रहती है। (दूसरा) उसी विवाहित। स्त्रीके लड़के उसी विवाहित पतिके दायभागी होते हैं। ओर विधवा स्त्रीके लड़के वीर्यदाताके न पुत्र कहलाते न उसका गोत्र होता न उसका स्वत्व उन लड़कों पर रहता किन्तु वे सृतपितके पुत्र वजते, उसीका गोत्र रहता और उसीके पदार्थोंके दायभागी होकर उसी घरमें रहते हैं। (तीसरा) विवाहित स्त्री पुरुषको परस्पर सेवा और पालन करना अवश्य है और नियुक्त स्त्री पुरुषको परस्पर सेवा और पालन करना अवश्य है और नियुक्त स्त्री पुरुषको परस्पर सेवा और नियुक्त स्त्री पुरुषको कार्यके परचात् छूट जाता है। (पांचवां) विवाहित स्त्री पुरुष आपसों गृहके कार्योकी सिद्धि करनेमें यन्न किया करते और नियुक्त स्त्री पुरुष अपने २ घरके जाम किया करते हैं।

प्रभ—विवाह और नियोगके नियम एकसे हैं वा प्रथक् २ ? उत्तर — कुछ थोड़ासा भेद है जितने पूर्व कह आये और यह कि विवाहित स्त्री पुरुष एक पति और एक ही स्त्री मिछके दश सन्तान उत्पन्न कर सकते हैं और नियुक्त स्त्री पुरुष दो वा चारसे अधिक सन्तानोत्पत्ति नहीं कर सकते अर्थात् जैसा कुमार कुमारीहीका विवाह होता है वैसे जिसकी स्त्री वा पुरुष मर जाता है उन्हींका नियोग होता है कुमार कुमारीका नहीं। जैसे विवाहिता स्त्री पुरुष सदा सङ्गर्म रहते हैं वैसे नियुक्त स्त्री पुरुषका व्यवहार नहीं किन्तु विना म्रुट्यूनके समय एकत्र न हों जो स्त्री अपने लिंगे नियोग करे तो जब दमरा

गर्भ रहे उसी दिनसे स्त्री पुरुका सम्बन्ध छूट जाय । और जो पुरुष अपने लिये करे तो भी दूसरे गर्भ र निसे सम्बन्ध छूट जाय। परन्तु वही नियक्त स्त्री दो तीन वर्ष पर्ध्यन्त उन छड़कोंको पाछन करके नियक्त पुरुषको दे देवे। ऐसे एक विधवा स्त्री दो अपने छिपे और दो २ अन्य चार नियुक्त परुषोंके लिये सन्तान कर सकती और एक मृतस्त्रीक पुरुष भी दो अपने छिये और दो २ अन्य २ चार विध-बाओं के छिये पुत्र उत्पन्न कर सकता है ऐसे मिछकर दश २ सन्तानी त्पत्तिकी आज्ञा वेदमें है ॥

## इमां त्वमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रां सुभगां कृणु । द्शास्यां पुत्रानाधेहि पतिमेकाद्शं कृथि॥

शृ•।। म• १० । सू• ८५ । मं० ४५ ॥

हे ( मीढ्व, इन्द्र ) वीर्य सिंचनेमें समर्थ ऐश्वर्ययुक्त पुरुष तू इस ्विवाहित स्त्री वा विधवा स्त्रियोंको श्रेष्टपुत्र और सौभाग्ययुक्त कर विवाहित स्त्रीमें दश पुत्र उत्पन्न कर और ग्यारहवीं स्त्रीको मान। हे स्त्री ! तू भी विवाहित पुरुष वा नियुक्त पुरुषोंसे दश सन्तान उत्पन्न कर और ग्यारहवें पतिको सममा। इस वेदकी आज्ञासे ब्रह्मण क्षत्रिय **और वैश्यवर्णस्य स्त्रो और पुरुष दश दश सन्तानसे अधिक उत्पन्न** न करें। क्योंकि अधिक करनेसे सन्तान निर्वल, निर्दृद्धि, अल्पाय होते हैं और स्त्री तथा पुरुष भी निर्वल, अल्पाय और रोगी होकर बृद्धावस्थामें बहुतसे दुःख पाते हैं।

प्रश्न—यह नियोगकी बात व्यभिचारके समान दीखती है।

उत्तर-जैसे विना विवाहितोंका व्यभिचार होता है दैसे विना नियुक्तोंकः गिमचार कहाता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि जैसा नियमसे विवाह होने पर व्यभिचार नहीं कहाता तो नियमपूर्वक नियोग होनंसं व्यभिचार न कहावेगा। जैसे-दूसरेकी कन्याका दूसरेके कुमारके साथ शास्त्रीक विधिपूर्वक विवाह होते पर समागममें

ब्यभिचार वा पाप छजा नहीं होती वैसेही वेदशास्त्रोक्त नियोगमें ब्यभिष्तार पाप छजा न मानना चाहिये।

प्रश्न—है तो ठीक, परन्तु यह वेश्याके सदृश कर्म दीखता है।
 उत्तर—नहीं, क्योंकि वेश्याके समागममें किसी निश्चित पुरुष वा
 कोई नियम नहीं है और नियोगमें विवाहके समान नियम हैं जैसे दूस रैको छड़की देने दूसरेके साथ समागम करनेमें विवाहपूर्वक छज्ञा नहीं
 होती वैसेही नियोगमें भी होनी चाहिये। क्या जो व्यभिचारी पुरुष
 वा स्त्री होते हैं वे विवाह होने पर भी कुकर्मसे बचते हैं ?

प्रश्न-हमको नियोगकी बातमें पाप माल्यम पहुता है।

उत्तर-जो नियोगकी बातमें पाप मानते हो तो विवाहमें पाप क्यों नहीं मानते ? पाप तो नियोगके रोकनेमें है क्योंकि ईश्वरके सृष्टिकमानुकुल स्त्री पुरुषका स्वाभाविक व्यवहार रुक ही नहीं सकता, सिवाय वैराग्यवान् पूर्णविद्वान योगियोंके। क्या र्गभपातनरूप भ्राणहत्या और विधवा स्त्री और मृतकस्त्री पुरुषोंके महासन्तापको पाप नहीं गिनते हो क्योंकि जबतक वे युवावस्थामें हैं मनमें सन्तानोत्पत्ति और विषयकी चाहना होनेवालोंको किसी राज्य-व्यवहार वा जातिव्यवहारसे रुकावट होनेसे गुप्त २ कुकर्म बुरी चालसे होते रहते हैं इस व्यभिचार और कुकर्मके रोकनेका एक यही श्रेष्ठ डपाय है कि जो जितेन्द्रिय रह सर्कें वे विवाह वा नियोग भी न करें तो टीक है । परन्तु जो ऐसे नहीं हैं उनका विवाह और आपत्का-लमें नियोग अवश्य होना चाहिये। इससे व्यभिचारका न्यून होना प्रेमसे उत्तम सन्तान होकर मनुष्योंकी वृद्धि होना सम्भव है और गर्भ-ह्या सर्वथा छूट जाती है। नीच पुरुपोंसे उत्तम स्त्री और वेश्यादि नीच स्त्रियोंसे उत्तम पुरुषोंका व्यभिचाररूप कुकर्म, उत्तम कुळमें कलंक, वंशका उच्छेद, स्त्री पुरुषोंको सन्ताप और गर्भहत्यादि कुकर्म विवाह और नियोगसे निवृत्त होते हैं इसिक्ष्ये नियोग करना चाहिये।

प्रश्न-नियोगभें क्या २ बात होनी चाहिये १

उत्तर—जैसे प्रसिद्धिसे विवाह, थैसे ही प्रसिद्धिसे नियोग, जिस प्रकार विवाहमें भद्र पुरुषोंकी अनुमिन और कन्या वरकी प्रसन्तता होती है वैसे नियोगमें भी अर्थान जब स्त्री पुरुषका नियोग होना हो तब अपने कुटुम्बमें पुरुष रिवयोंक सामने [प्रकट करें कि ] हम दोनों नियोग सन्तानोत्पत्तिके लिये करते हैं। जब नियोगका नियम पूरा होगा तब हम संयोग न करेंगे। जो अन्यथा करें तो पापी और जाति वा राज्यके दण्डनीय हों। महीने २ में एकवार गर्भाधानका काम करेंगे, गर्भ रहे पश्चान एक वर्ष पर्यन्त पुथक रहेंगे।

प्रश्त—नियोग अपने वर्णमें होना चाहिये वा अन्य वर्णोके साथ भी ?

उत्तर—अपने वर्णमें वा अपनेसे उत्तम वर्णस्थ पुरुषके साथ अर्थात् वैश्या स्त्री वैश्य, अत्रिय और ब्राह्मणके साथ, अत्रिया अत्रिय और ब्राह्मणके साथ, अत्रिया अत्रिय और ब्राह्मणके साथ, अह्मिया अत्रिय और ब्राह्मणके साथ कर सकती है। इसका तात्पर्य्य यह है कि वीर्य सम वा उत्तम वर्णका चाहिये अपनेसे नीचेके वर्णका नहीं। स्त्री और पुरुषकी सृष्टिका यही प्रयोजन है कि धमसे अर्थात् वेदोक्त रीतिसे विवाह वा नियोगसे सन्तानोत्पत्ति करना।

प्रश्न— पुरुषको नियोग करनेकी क्या आवश्यकता है क्योंकि वह दूसरा विवाह करेगा ?

बत्तर—हम लिख आये हैं द्विजोंमें स्त्री और पुरुषका एक ही वार विवाह होना वेदादि शास्त्रोंमें लिखा है, द्वितीयवार नहीं। कुमार और कुमारीका ही विवाह होनेमें न्याय और विधवा स्त्रीके साथ कुमार पुरुष और कुमारी स्त्रीके साथ मृतस्त्रीक पुरुषके विवाह होनेमें अन्याय अर्थात् अर्थमं है जैसे विधवा स्त्रीके साथ पुरुष विव ह नहीं किया बाहता वैसे ही विवाह और स्त्री से समागम किये हुए पुरुषके साथ विवाह करनेकी इच्छा कुमारी भी न करेगी। जब विवाह किये हुए पुरुषको कोई कुमारी कन्या और विधवा स्त्री का प्रहंण कोई कुमार

[पतुर्थ

पुरुष न करेगा तब पुरुषं और स्त्री को निगोश करनेकी आवश्यकता होगी। और यही धर्म है कि जैसेके साथ वैसे ही का सम्बन्ध होना चाहिये।

प्रश्न—जैसे विवाहमें वेदादि शान्त्रोंका प्रमाण है वैसे नियोगमें प्रमाण है वा नहीं।

उत्तर-इस विषयमें वहुत प्रमाण हैं देखो और सुनोः-

कुहस्विद्दोषा कुह वस्तोरश्विना कुहाभिपित्वं करतः कुहोषतुः। को वां रायुत्रा विधवेव देवरं मर्यं न योषा कृणुते सधस्थ आ॥ ऋ०॥ मं०१०। सू० ४०। मं०२॥

उदीर्ष्वं नार्यभिजीवलोकं गतासुमेतमुप शेष एहि । इस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवेदं पत्युजैनित्वमभि सं बसूथ ॥ ऋ० ॥ मं० १० । छू० १८ । मं० ८ ॥

हे (अश्वना) स्त्री पुरुषो ! जैते (देवरं विधवेव) देवरको विधवा और (योषा मर्थन्न) विवाहिता स्त्री अपने पिको ' सधस्थे) समान स्थान शब्यामें एकत्र होकर सन्तानोत्पत्तिको (आ, कृणुते) सब प्रकारसे उत्पन्न करती है वेसे तुम दोनों स्त्री पुरुष (कुहस्विद्-होषा) कहां पात्रि और (कुह वस्तः) करां दिनमें बसे थे १ (कुहा-भिपित्वम्) कहां पदार्थोंकी प्राप्ति (करतः) की १ और (कुहोषतुः) किस समा करां वास करते थे १ (को वां शयुत्रा) तुम्हारा शयन-स्थान कहां है १ तथा कौन वा किस देशके रहनेवाले हो १ इससे यह सिद्ध हुआ कि देश विदेशमें स्त्री पुरुष सङ्ग ही में रहें। और विवाहित पतिके समान नियुक्त पतिको प्रहण करके विधवा स्त्री भी सन्तानोत्पत्ति कर लेवे।

#### समुक्लास] "नियोगकी आवश्यकता। १४५

प्रश्त--यदि किसीका छोटा भाई ही न हो तो विधवा नियोग किसके साथ करे ?

उत्तर—देवंरके साथ परन्तु देवर शब्दका व्यर्थ जैसा तुम सम-मते हो वैसा नहीं देखो निरुक्तमें—

#### देवरः कस्माद् द्वितीयो वर उच्यते॥

निरु० अ० ३। ख० १५॥

देवर उसको कहते हैं कि जो विधवाका दूसरा पति होता है चाहे छोटा भाई वा बड़ा भाई अथवा अपने वर्ण वा अपनेसे उत्तम वर्ण वास्त्र हो जिससे नियोग करे उसीका नाम देवर है।।

हे (नारी) विधवे तू (एतं गतासुम्) इस मरे हुए पतिकी आशा छोड़के (शेषे) बाकी पुरुषोंमेंसे (अभि, जीवलोकम् जीते हुए दूसरे पतिको (उपेहि) प्राप्त हो और (उदीष्वं) इस वातका विचार और निश्चय रख कि जो (हस्तप्राभस्य दिविषोः) तुम्त विधवाके पुनः पाणिप्रहण करनेवाले नियुक्त पतिके सम्बन्धके लिये नियोग होगा सो (इदम्) यह (जिनत्वम्) जना हुआ बालक उसी नियुक्त (पत्युः) पतिका होगा और जो तू अपने लिये नियोग करेगी तो यह सन्तान (तव) तेरा होगा। ऐसे निश्चययुक्त (अभि, सम्, बमूथ) हो और नियुक्त पुरुष भी इसी नियमका पालन करे।।

अदेवृष्ट्यपतिष्नी हैंघि शिवा पशुभ्यः सुयमाः सुवर्चाः। प्रजावती वीरसृदेवृकामा स्योनेममिन गाईपत्यं सपर्य॥ अथर्व०॥ १४। २। १८॥

हे ( अपतिष्न्यदेवृष्टिन ) पति और देवरको दुःख न देनेवाली स्त्री तु ( इह ) इस गृहाश्रममें ( पशुभ्यः ) पशुओं के लिये (शिवा) कल्याण करनेहारी ( सुयमाः ) अच्छे प्रकार धर्म नियममें चलने ( सुवर्चाः ) रूप और र्स्व शास्त्र विद्यायुक्त ( प्रजावती ) उत्तम पुत्र पौत्रादिसे सहित

^ 3

(वीरसूः) शूरवीर पुत्रोंको जनने (देवृकामा) देवरकी कामना करनेवाली (स्योना) और सुख देनेहारी पति वा देवरको (एधि) प्राप्त होके (इमम्) इस (गार्हपत्यम्) गृहस्थ सम्बन्धी (अग्निम्) अग्निहोत्रको (सपर्य) सेवन किया कर।

#### तामनेन विधानेन निजो विन्देत देवरः॥

मनु• [६।६६]

जो अक्षतयोनि स्त्री विधवा हो जाय तो पतिका निज छोटा भाई भी उससे विवाह कर सकता है।

प्रश्न-एक स्त्री वा पुरुष कितने नियोग कर सकते हैं और विवाहित नियुक्त पतियोंका नाम क्या होता है।

उत्तर--

## सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वी विविद उत्तरः। तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः॥ '

श्रु० ॥ मं० १० । सू• ८४ । मं० ४०॥

हे स्त्री । जो (ते ) तेरा (प्रथमः ) पहिला विवाहित (पितः ) पति तुम्को (विविदे ) प्राप्त होता है उसका नाम (सोमः ) सुकुमा-रतादि गुणयुक्त होनेसे सोम जो दूसरा नियोगसे (विविदे ) प्राप्त होता वह (गन्धर्वः) एक स्त्रीसे संभोग करनेसे गन्धर्व जो (तृतीय-उत्तरः ) दो के पश्चात् तीसरा पति होना है वह (अग्निः ) अत्युष्ण-तायक होनेसे अग्निसंज्ञक और जो (ते ) तेरे (तुरीयः ) चौथेसे लेके ग्यारहवें तक नियोगसे पति होते हैं वे ( मनुष्यजाः ) मनुष्य नामसे कहाते हैं। जैसा (इमां त्विमन्द्र) इस मन्त्रसे ग्यारहवें पुरुष तक स्त्री नियोग कर सकती है वैसे पुरुष भी ग्यारहवीं स्त्री तक नियोग कर सकता है।

प्रश्न--एकादश शब्दसे दश पुत्र और ग्रारहवें पतिको क्यों न गिनें १

ज्तर—जो ऐसा अर्थ करोगे तो "विधवैव देवरम्" "देवरः कस्माद् द्वितीयो वर उच्यते" "अदेवृष्टिन" और "गन्धर्वो विविद उत्तरः" इत्यादि वेदप्रमाणोंसे विरुद्धार्थ होगा। क्योंकि तुम्हारे अर्थसे दूसरा भी पति प्राप्त नहीं हो सकता।

देवराद्वा सिपण्डाद्वा स्त्रिया सम्यङ् नियुक्तया।
प्रजेप्सिताधिगन्तव्या सन्तानस्य परिक्षये॥१॥
ज्येष्ठो यवीयसो भार्य्या यवीयान्वाग्रजस्त्रियम्।
पतितौ भवतो गत्वा नियुक्तावण्यनापदि॥२॥
औरसः क्षेत्रजरचैव॥३॥ मगु० ६। ५६।५८।१५६

इत्यादि मनुजीने लिखा है कि (सिपण्ड) अर्थात् पतिकी छः पीढ़ियोंमें पतिका छोटा वा वड़ा भाई अथवा स्वजातीय तथा अपनेसे उत्तम जातिस्थ पुरुषसे विधवा स्त्रीका नियोग होना चाहिये। परन्तु जो वह मृतस्त्रीक पुरुष और विधवा स्त्री सन्तानोत्पत्तिकी इच्छा करती हो तो नियोग होना उचित है। और जब सन्तानका सर्वथा क्षय हो तब नियोग होवे। जो आपत्काल अर्थात् सन्तानोंके होनेकी इच्छा न होनेमें बड़े भाईकी स्त्रीसे छोटेका और छोटेकी स्त्रीसे बड़े भाईका नियोग होकर सन्तानोत्पत्ति होजाने पर भी पुनः वे नियुक्त आपसमें समागम करें तो पतित होजायें अर्थात् एक नियोगमें दूसरे पुत्रके गर्भ रहनेतक नियोगकी अवधि है इसके पश्चात् समागम न करें। और जो दोनोंके लिये नियोग हुआ हो तो चौथे गर्भ तक अर्थात् पूर्वोक्त रीति से दश सन्तान तक हो सकते हैं। पश्चात् विषयासक्ति गिनी जाती है, इससे वे पतित गिने जाते हैं। और जो विवाहित स्त्री पुरुष भी दशवें गर्भसे अधिक समागम करें तो कामी और निन्दित होते हैं व्यर्थात् विवाह वा नियोग सन्तानोंही के अर्थ किये जाते हैं पशुवत् कामकीडाके लिये नहीं।

प्रश्न—नियोग मरे पीछे ही होता है वा जीते पतिके भी १ ज् उत्तर—जीते भी होता है—

#### अन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत् ॥ ऋ० मं १० सू० १०

जब पित सन्तानोत्पत्तिमें असमर्थ होवे तब अपनी स्त्रीको आज्ञा देवे कि हे सुभगे! सौभाग्यकी इच्छा करनेहारी स्त्री तू (मत्) सुमसे (अन्यस्) दूसरे पितकी (इच्छस्व) इच्छा कर क्यों कि अब सुमसे सन्तानोत्पत्ति न हो सकेगी। तब स्त्री दूसरेसे नियोग करके सन्तानोत्पत्ति करे। परन्तु उस विवाहित महाशय पितकी सेवामें तत्पर रहे वैसे स्त्री भी जब रोगादि दोषोंसे प्रस्त होकर सन्तानोत्पत्तिमें असमर्थ हो तब अपने पितको आज्ञा देवे कि हे स्वामी आप सन्तानोत्पत्तिमें असमर्थ हो तब अपने पितको आज्ञा देवे कि हे स्वामी आप सन्तानोत्पत्तिकी इच्छा सुमसे छोड़के किसी दूसरी विधवा स्त्रीसे नियोग कर के सन्तानोत्पत्ति कीजिये। जैसाकि पाण्डु राजाकी स्त्री कुन्ती और माद्री आदिने किया और जैसा व्यासजीत चित्राङ्गद और विचित्रवीय के मर जाने पश्चात् उन अपने भाइयोंकी स्त्रियोंसे नियोग करके अम्विकामें घृतराष्ट्र और अम्वालिकामें पाण्डु और दासीमें विदुरकी उत्पत्ति की इत्यादि इतिहास भी इस बातमें प्रमाण हैं।

प्रोषितो धर्मकार्यार्थं प्रतीक्ष्योऽष्टो नरः समाः। विद्यार्थं षड् यशोर्थं वा कामार्थं त्रींस्तु वत्सरान्।१। वन्ध्याष्टमेऽधिवेद्याब्दे दशमे तु मृतप्रजा। एकादशे स्त्रीजननी सद्यस्विप्रयादिनी॥ २॥

मनु० ६ । ७६ । ८१ ॥

विवाहित स्त्री जो विवाहित पति धर्मके अर्थ परदेश गया हो तो आठ वर्ष, विद्या और कीर्तिके लिये गया हो तो छः और धनादि कामनाके लिये गया हो तो तीन वर्ष तक बाट देखके पश्चात् नियोग करके सन्तानोपत्ति करले, जब विवाहित पति आवे तब नियुक्त पति

छूट जावे ॥ १ ॥

े वैसे ही पुरुषके लिये भी नियम है कि वन्ध्या हो तो आठवें (विवाहसे आठ वर्ष तक स्त्रीको गर्भ न रहे), सन्तान होकर मरजावे तो दशवें, जब २ हो तब २ कन्या ही होवें पुत्र न हों तो ग्यारहवें वर्ष तक और जो अप्रिय बोल्रने वाली हो तो सद्यः उस स्त्रीको छोड़के दूसरी स्त्रीसे नियोग करके सन्तानोत्पत्ति कर लेवे ॥ २ ॥

बैसे ही जो पुरुष अत्यन्त दुःखदायक हो तो स्त्रीको उचित है कि उसको छोड़के दूसरे पुरुषसे नियोग कर सन्तानोत्पित करके उसी विवाहित पतिके दायभागी सन्तान कर छेवे। इत्यादि प्रमाण और युक्तियोंसे स्वयंवर विवाह और नियोगसे अपने २ कुळकी उन्नित करे जैसा "औरस" अर्थात् विवाहित पतिसे उत्पन्न हुआ पुत्र पिताके पदार्थक। स्वाभी होता है वैसे ही "क्षेत्रज" अर्थात् नियोगसे उत्पन्न हुए पुत्र भी मृतिपताके दायभागी होते हैं। अब इस पर स्त्री और एक्को ध्यान रखना चाहिये कि वीर्य और रजको अमृल्य सममें। जो कोई इस अमृल्य पदार्थको परस्त्री, वेश्या वा दुष्ट पुरुषके सङ्गमें जोते हैं वे महामुर्ख होते हैं। क्योंकि किसान वा माळी मूर्ख होकर भी अपने खेन वा वाटिकांक दिना अन्यत्र बीज नहीं बोते। जो कि साधारण योज और मूर्थक। ऐसा वर्तमान है वो जो सर्वोत्तम मनुष्य-प्रतिरह्म दुक्षके बीजको छुक्षेत्रमें खोता है वह महामुर्ख कहाता है क्योंकि उसका फळ उसको नहीं मिळता और "आत्मा वै जायते पुत्रः" यह बाह्मण प्रन्थांका वचन है।।

#### अङ्गादङ्गात्सम्भवति हृदयादिध जायसे। आत्मा वै पुत्रनामासि स जीव शरदः शतम्॥

निः० ३ । ४ ॥

हे पुत्र तू अङ्ग २ सं उत्पन्त हुए वीर्यसे और हृदयसं उत्पन्त होता है इसि अये तू मेरा आत्मा है सुम्मसे पूर्व मत मरे किन्तु सौ वर्ष तक जी। जिससे ऐसे २ महात्मा और महाशयोंके शरीः उत्पन्न होते हैं उसको वेश्यादि दुष्टक्षेत्रमें बोन वाा दुष्टबीज अच्छे क्षेत्रमें बुवाना महापापका काम है।

प्रश्न—विवाह क्यों करना ? क्योंकि इससे स्त्री पुरुषको कन्धनमें पड़के बहुत संकोच करना और दुःख भोगना पड़ता है इसिंख्ये जिसके साथ जिसकी प्रीति हो तब तक वे मिले रहें जब प्रीति छूट जाय तो छोड़ देवें।

उत्तर—यह पग्नु पिक्षयोंका व्यवहार है मनुष्योंका नहीं। जो मनुष्योंमें विवाहका नियम न रहे तो सब गृहाश्रमके, अच्छे २ व्यवहार सब नष्ट श्रष्ट हो जायं। कोई किसीकी सेवा भी न करे और 
महा व्यभिचार बढ़कर सब रोगी निर्वल और अल्पायु होकर शीघ २ 
मर जायें। कोई किसीसे भय वा लजा न करे। बृद्धावस्थामें कोई 
किसीकी सेवा भी नहीं करे और महाव्यभिचार बढ़कर सब रोगी 
निर्वल और अल्पायु होकर कुलोंके कुल नष्ट होजायें। कोई किसीके 
पदार्थोंका स्वामी बा दायभागी भी न हो सके और न किसीका किसी 
पदार्थ पर दीर्घकालप्रयन्त सत्व रहै इत्यादि दोषोंके निवारणार्थ विवाह 
ही होना सर्वथा योग्य है।

प्रश्न-- जब एक विश्वह होगा एक पुरुषको एक स्त्री और एक स्त्री को एक पुरुष रहेगा तब स्त्री गर्भवती स्थिररोगिणी अथवा पुरुष दीर्घ-रोगी हो और दोनोंकी युवावस्था हो रङ्ग जाय, तो फिर क्या करें १

उत्तर—इसका प्रत्युत्तर नियोग (बषयमें दे चुके हैं। और गर्भ-क्ती स्त्रीसे एक वर्ष समागम न करनेके समयमें पुरुषसे वा दीर्घरोगी पुरुषकी स्त्रीसे न रहा जाय तो किसीसे नियोग करके उसके लिये पुत्रोत्पत्ति करदे, परन्तु वेश्यागमन वा व्यभिचार कभी न करें। जहां तक हो वहां तक अप्राप्त वस्तुकी इच्छा, प्राप्तका रक्षण और रिश्चतकी शृद्धि, बढ़ेडुए धनका व्यय देशोपकार करनेमें किया करें। सब प्रकारके क्यांत् पूर्वोक्त रीतिसे अपने २ वर्णाश्रमके व्यवहारोंको अत्युत्साह

पूर्वक प्रयक्षसे तन, मन, धनसे सर्वदा परमार्थ किया करें। अपने माता पिता, शाशु, श्वशुरकी अयन्त शुश्रूषा करें। मित्र और अडोसी, पडोसी, राजा, विद्वान, वैद्य और सन्पुरुषोंसे प्रीति रखके और जो दुष्ट अधर्मी हैं उनसे उपेक्षा अर्थात् द्रोड छोडकर उनके सुधारनेका यह किया करें। जहांतक बने वहांतक प्रेमसे अपने सन्तानोंके विद्वान भौर सुशिक्षा करने करानेमें धनादि पदार्थोंका व्यय करके **उनको पूर्ण** विद्वान सशिक्षायुक्त करदें और धर्मयुक्त व्यवहार करके मोक्षका भी स.धन किया करें कि जिसकी प्राप्तिसे परमानन्द भोगें और ऐसे व श्लोकोंको न माने जैसे:--

पतितोपि द्विजः श्रेष्ठो न च शद्रो जितेन्द्रियः। निर्दग्धा चापि गौ: पूज्या न च दुग्धवती खरी।१। अर्वालम्भं गवालम्भं संन्यासं पलपैत्रिकम् । देवराच सुनोत्पत्तिं कली पश्च विवर्जयेत् ॥ २ ॥ नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबे च पतिते पती। पश्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते॥ ३॥

यं क्रेवोलकित्वत पाराशरीके श्लोक हैं। जो दुष्ट कर्मकारी द्विजकी श्रेष्ठ और शेष्ठ कर्मकारी शुद्रको नीच माने तो इससे परे पक्षपात, अन्याय, अधर्म दूसरा अधिक क्या होगा ? क्या दूध देनेवाळी वा न देनेवाली गाय गोपालोंको पालनीय होती हैं वैसे कुम्हार आदिको गदही पाळनीय नहीं होती ? और यह दृशन्त भी विषम है क्योंकि द्विज और शुद्र मनुष्य जाति, गाय और गदही भिन्न जाति हैं कथिबत परा जातिसे दृष्टान्तका एक देश दार्ष्टान्तमें मिल भी जावे तो भी इसका आशय अाक्त होनेसे यह श्लोक विद्वानोंके माननीय कभी नहीं हो सकते ॥ १ ॥

जब अधालम्भ अर्थान घोडेको मारके अथवा [गवालम्भ]

गायको मारके होम करना ही वेद्विहित नहीं हैं। तो उसका किल्युगमें निषेध करना वेद्विरुद्ध क्यों नहीं ? जो किल्युगमें इस नीच कर्मका निषेध मानः जाय तो त्रेता आदिमें विधि आजाय। तो इनमें ऐसे दुष्ट काम . श्रेष्ठ युगमें होना सर्वथा असंभव है। और संग्यासकी वेदादि शास्त्रोंमें विधि है। उसका निषेध करना निर्मूल है। जब मांसका निषेध है तो सर्वदा ही निषेध है। जब देवरसे पुत्रोत्पत्ति करना वेदोंमें लिखा है तो यह रलोककर्ता क्यों मूंसना है ?॥ २॥

यदि (नष्टे) अर्थात् पति किसी देश देश न्तरको चला गया हो घरमें स्त्री नियोग कर लेवे उसी समय विवाहित पति अजाय तो वह किसकी स्त्री हो ? कोई कहे कि विवाहित पतिकी, हमने माना परन्तु ऐसी व्यवस्था पाराशरीमें तो नहीं लिखी। क्या स्त्री के पांच ही आपत्काल हैं जो रोगी पड़ा हो वा लड़ाई हो गई हो इयादि आपत् काल पांचसे भी अधिक हैं इसलिये ऐसे ऐसे श्लोकोंको कभी न मानना चाहिये ।। ३।।

प्रश्न-क्योंजी तुम पराशर मुनिके वचनको भी नहीं मानते ?

उत्तर—चाहें किसीका वचन हो परन्तु वेद्धिरुद्ध होनेस नहीं मानते और यह तो पराशरका वचन भी नहीं है क्योंकि जैसे "शह्मी-वाच, विश्विष्ठ उवाच, राम उवाच, शिव उवाच, विष्णुरुवाच, दंब्युवाच," इत्यादि श्रेष्ठोंका नाम लिखके प्रन्थरचना इसलिये करते हैं कि सर्वन्मान्यके नामसं इन प्रन्थोंको सब संसार मान लेवे और हमारी पुष्कल जीविका भी हो। इसलिये अनर्थ गाथायुक्त प्रन्थ बनाते हैं। कुछ र प्रिक्षित रलोकोंको छोड़के मनुस्मृति ही वेदानुकूल है अन्य स्मृति नहीं ऐसे ही अन्य जालप्रन्थोंकी व्यवस्था समस्तलो।

प्रश्न-गृहाश्रम सबसे छोटा वा बड़ा है १ उत्तर-अपने २ कर्तव्यकर्मोमें सब बड़े हैं पर तुः--

यथा नदीनदाः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम्।

तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम् ।१।

मनु॰ [६। ६०] यथा वार्यु समाश्रित्य वर्त्तन्ते सर्वजन्तवः। तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्त्तन्ते सर्वे आश्रमाः ॥२॥ यस्मात्त्रयोप्याश्रमिणो दानेनान्नेन चान्वहम्। गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही ॥३॥ स संधार्यः प्रयत्नेन स्वर्गमक्षयमिच्छता । सुखं चेहेच्छता नित्यं योऽधार्यो दुर्बछेन्द्रियै: ।४।

महु० [३।७७-७६]

जैसे नदी और बड़े २ नद तबतक भ्रमते ही रहते हैं जबतक समुद्रको प्राप्त नहीं होते, वैसे गृहस्थ ही के आश्रयसे सब आश्रम स्थिर रहते हैं विना इस आश्रमके किसी आश्रमका कोई व्यवहार सिद्ध नहीं होता। जिससे ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी तीन आश्रमोंको दान और अन्नादि दे के प्रतिदिन गृहस्थ ही धारण करता है इससे गृहस्य ज्येप्ठाश्रम है अर्थात् सब व्यवहारोतं धुरन्धर कहाता है इसिलिये जो मोक्ष और संसारके सुखकी इच्छा करता हो वह प्रयत्न से गृहाश्रमका धारण करे। जो गृहाश्रम दुर्बलेन्द्रिय अर्थात् भीर और निर्वे पुरुषोंसे धारण करने अयोग्य है उसको अच्छे प्रकार धारण करे । इसिछिये जितना कुछ व्यवग्रार संसारमें है उसका आधार गृहाः। श्रम है। जो यर गृहाश्रम न होता हो सन्तानोत्पत्तिके न होने से 📭 🖫 चर्च्य, वानप्रस्थ और संन्यासाश्रम कहां से हो सकते ? जो कोई गृहा-श्रमकी निन्दा करता है वही निन्दनीय है और जो प्रशंसा, करता है वही प्रशंसनीय है। परन्तु तभी गृहाश्रममें सुख होता है जब स्त्री और पुरुष दोनों परस्पर प्रस्त विद्वान, पुरुषार्थी और सब प्रकारके व्यव-हारोंके ज्ञाता हों। इसलिये गृहाश्रमके सुखका मुख्य कारण ब्रह्मचर्य्य

# सत्यार्थप्रकाश ।

[चतुर्थ

१५४

और पूर्वोक्त स्वयंवर विवाह है। यह संक्षेपसे समावर्तन, विवाह और गृहाश्रमके विषयमें शिक्षा लिख दी । इसके आगे व नपस्य और सन्य:-सके विपयमें लिखा जायगा।

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकारो सुभाषाविभूषिते समावर्त्तनविवाहगृहाश्रमविषये चतुर्थः समुहासः सम्पूर्णः ॥४॥



# श्रथं पञ्चमसमुहासारम्भः श्रु

#### अथ वानप्रस्थसंन्यासविधं वक्ष्यामः ।

ब्रह्मचर्य्याश्रमं समाप्य गृही भवेत् गृही भृत्वा वनी भवेद्वनी भृत्वा प्रवजेत्॥ शत० कां० १४॥

मनुष्योंको उचित है कि ब्रह्मचर्याध्यमको समाप्त करके गृ**हस्थ** होकर वानप्रस्थ और वानप्रस्थ हो व संन्यासी होवें अर्थात् यह अनुः कमसे आश्रमका विधान है ॥

एवं गृहाश्रमे स्थित्वा विधिवत्स्नातको द्विजः।
वने वसेन्तु नियतो यथावद्विजितेन्द्रियः॥१॥
गृहस्थस्तु यदा पःचेद्वलीपिलतमात्मनः।
अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत्॥२॥
संत्यज्य ग्राम्यमाहारं सर्वं चैव परिच्छदम्।
पुत्रेषु भार्यां निःक्षिप्य वनं गच्छेत्सहैव वा॥३॥
अग्निहोत्रं समादाय गृह्यं चाग्निपरिच्छदम्।
ग्रामादरण्यं निःसृत्य निवसेन्नियतेन्द्रियः॥४॥
सुन्यन्नैर्विविधेमेंध्यैः शाकम्लफ्लेन वा।
एतानेव महायज्ञान्निर्वपेद्विधिपूर्वकम्॥५॥
मन्वा हि।१०००

पश्चम

इस प्रकार स्नातक अर्थान् ब्रह्मचर्यपूर्वक गृहाश्रमका कर्ता द्विज अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य गृहाश्रममें ठहर कर निश्चितात्मा और यथावत् इन्द्रियोंको जीनके वनमें बसे ॥१॥ परन्तु जब गृहस्थ [के] शिरके श्वेत केश और त्वचा ढीछी हो जाय और छड़केका छड़का भी हो गया हो तब वनमें जाके बसे ॥२॥ सब प्राप्तके आहार और वस्तादि सब उत्तमोत्तम पदार्थोंको छोड़ पुत्रोंके पास स्त्रीको रख वा अपने साथ छेके वनमें निवास करे॥३॥ साङ्गोंपाङ्म अगिनहोत्रको छे के प्राप्तसे निकछ हट्टेन्ट्रिय होकर अरण्यमें जाके बसे॥४॥ नाना प्रकारके सामा आदि अन्न, सुन्दर २ शाक, मूछ, फछ, फूछ कंदादिसे पूर्वोक्त पंच महायञ्चोंको करे और उसीसे अतिथिसेवा और स्नाप भी निर्वाह करे॥ ४॥

स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद्दान्तो मैत्रः समाहितः । दाता नित्यमनादाता सर्वभूतानुकम्पकः ॥ १ ॥ अप्रयत्नः सुखार्थेषु ब्रह्मचारी धरादायः । दारणेष्वममश्चैव वृक्षमूलनिकेतनः ॥ २ ॥

मनु• [६। ८। २६]

स्वाध्याय अर्थात् पढ़ने पढ़ानेमें नि [त्य ] युक्त, जिनात्मा, सबका मित्र, इन्द्रियोंका तमनशील, विद्यादिका दान देनेहारा और सब पर द्यालु, किसीसे कुछ भी पदार्थ न लेवे इस प्रकार सदा वर्तमान करे ॥ १ ॥ शरीरके सुखके लिये अति प्रयत्न न करे हिन्तु ब्रह्मचारी [ रहे अर्थान् अपनी स्त्री साथ हो, तथापि उससे विषयचेटा कुछ न करे, भूमिमें सोवे, अपने अध्यत्न वा स्वकीय पदार्थोंमें ममता न करे, बृक्षके मूलमें वसे ॥ २ ॥

तपःश्रद्धे ये स्नुपवसन्त्यरण्ये ज्ञान्ता विद्वांसो भैक्षचर्यां चरन्तः । सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति

#### यत्राऽेमृतः स पुरुषो ह्यव्ययात्मा ॥ मु० २ । ११ ॥

जो शान्त विद्वान् लोग वनमें तप धम्मांनुष्ठान और सत्यकी श्रद्धा करके भिक्षाचरण करते हुए जंगलमें वसते हैं वे जहां नाशरहित पूर्ण पुरुष हानि लाभरहित पर आत्मा है, वहां निर्मल होकर प्राणद्वारसे इस परमात्माको प्राप्त होके आनन्दित हो जाते हैं॥ १॥

#### अभ्यादधामि समिधमग्ने व्रतपते त्विय । व्रतश्च श्रद्धां चोपैमीन्धे त्वा दीक्षितो अहम्॥

यजुर्वेद् ॥ अध्याय २०। मं० २४॥

वानप्रस्थको उचित है कि—में अग्निमें होम कर दीक्षित होकर व्रत, सत्याचरण और श्रद्धाको प्राप्त होऊं—ऐसी इच्छा करके वानप्रस्थ हो। नाना प्रकारको तपश्चर्या, सत्संग, योगाभ्यास, सुविचारसे झान और पवित्रता प्राप्त करें। पश्चात् जब संन्यासम्बर्णको इच्छा हो तब स्त्रीको पुत्रोंके पास मेज देवे फिर संन्यास महण करे। इति संक्षेपेण वानप्रस्थविधिः॥

#### अथ संन्यासविधिः।

वनेषु च विह्नत्यैवं तृतीयं भागमायुषः। चतुर्थमायुषो भागं त्यक्तवा सङ्गान् परिव्रजेत्॥

मनुo [ ६ । ३३ ]

इस प्रकार वनमें आयुका तीसरा भाग अर्थात् पचार ें वर्षसे पचहत्तरवें वर्ष पर्यन्त वानप्रस्थ होके आयुके चौथे भागमें संगोंको छोड़के परिवाद अर्थात् संन्यासी हो जावे।

प्रश्त—गृहाश्रम और वानप्रस्थाश्रम न करके संन्यासाश्रम करे । उसको पाप होता है वा नहीं ?

उत्तर—होता है और नहीं भी होता। प्रश्न – वेहें दो प्रकारकी बात क्यों कहते हो १ उत्तर—दो प्रकारकी नहीं क्योंकि जो वाल्यावस्थामें ब्रिवरक्त होकर विषयोंमें फँसे वह महापापी और जो न फँसे वह महापुण्यात्मा सत्पुरुष है।।

#### यदहरेव विरजेत्तदहरेव प्रब्रजेद्वनाद्वा ग्रहाद्वा ब्र-ह्यचर्यादेव प्रव्रजेत् ॥ ये ब्राह्मणग्रन्थके वचन हैं ॥

जिस दिन वैराग्य प्राप्त हो उसी दिन घर वा वनसे संन्यास प्रहण करलेवे पिहले संन्यासका पक्षक्रम कहा और इसमें विकल्प अर्थात् बानप्रस्थ न करे, गृहस्थाश्रमहीसे संन्यास प्रहण करे। और तृतीय पक्ष यह है कि जो पूर्ण विद्वान् जितेन्द्रिय विषयभोगकी कामनासे रहित परोपकार करनेकी इच्छासे युक्त पुरुष हो ब्रह्मचर्याश्रम ही से संन्यास छेवे और वेदोंमें भी (यतयः ब्राह्मणस्य, विजानतः) इत्यादि पदोंसे संन्यासका विधान है, परन्तुः—

#### नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः। नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात्॥

कठ०। वल्ली २। मं० ३३॥

जो दुराचारसे पृथक् नहीं, जिसको शान्ति नहीं, जिसका आत्मा योगी नहीं और जिसका मन शान्त नहीं है वह संन्यास छेके भी प्रज्ञा-नसे परमात्माको प्राप्त नहीं होता इसिछयेः—

# यच्छेद्वांमनसी प्राज्ञस्तयच्छेद् ज्ञान आत्मिन । ' ज्ञानमात्मिन महति नियच्छेत्तयच्छेच्छान्त आत्मिन ।

**क**ठ०। वल्ली ३। मं• १३॥

संन्यासी बुद्धिमान् वाणी और मनको अधर्मसे रोकके उनको ज्ञान और आत्मामें लगावे और उस ज्ञानस्वात्माको परमात्मामें लगावे और उस विज्ञानको शान्तस्वरूप आत्मामें स्थिर करे॥ परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणो निर्वेदमाया-ब्रास्त्यकृतः कृतेन । तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवामिग-च्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्टम् ॥

मुण्ड०। खं•२। मं•१२॥

सब छौकिक भोगोंको कर्मसे संचित हुए देखकर ब्राह्मण अर्थात् संन्यासी वैराग्यको प्राप्त होने क्योंकि अकृत अर्थात् न किया हुआ परमात्मा कृत अर्थात् केवल कर्मसे प्राप्त नहीं होता इसलिये कुछ अर्प-णके अर्थ हाथमें ले के वेदिवत् और परमेश्वरको जाननेवाले गुरुके पास विज्ञानके लिये जावे, जाके सब सन्देहोंकी निष्टत्ति कर परन्तु सदा इनका संग लोड़ देवे कि जो:—

अविद्यायामन्तरे वर्त्त मानाः स्वयं धीराः पण्डित-म्मन्यमानाः । जङ्घन्यमानाः परियन्ति मृदा अन्धे-नैव नीयमाना यथान्धाः ॥ १ ॥ अविद्यायां वहुधा वर्त्तमाना वयं कृतार्था इत्यभिमन्यन्ति बालाः । यत्कर्मिणो न प्रवेदयन्ति रागात् तेनातुराः श्लीण-लोकारच्यवन्ते ॥२॥ मुण्ड० खं० २ मं० ८ । ६ ॥

जो अविद्याके भीतर खेळ रहे अपनेको धीर और पण्डित मानते हैं वे नीच गतिको जानेहारे मूढ़ जैसे अधेके पीछे अन्धे दुर्दशाको प्राप्त होते हैं वैसे दुःखोंको पाते हैं॥ १॥

जो बहुया अविद्यामें रमण करनेवाले बालबुद्धि हम कृतार्थ हैं ऐसा मानते हैं जिसको केवल कर्मकांडी लोग रागसे मोहित होकर नहीं जान और जना सकते वे आतुर होके जन्म मरणरूप दुःखमें गिरे रहते हैं ॥ २ ॥ इसलिये:—

वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाचतयः

#### शुद्धसत्वाः । ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे ॥ मुण्ड० खं० २ मं० ६ ॥

जो बदान्त अर्थात परमेश्वर प्रतिपादक वेदमन्त्रोंके अर्थज्ञान और अच्च रमें अच्छे प्रकार निश्चित् संन्यासयोगसे शुद्धान्तः करण संन्यासी होते हैं वे परमेश्वरमें मुक्तिमुखको प्राप्त हो भोगके पश्चात् जब मुक्तिमें सुखकी अविध पूरी हो जाती है तब वहांसे छूटकर संसारमें आते हैं मुक्तिके बिना उपबक्त नाश नहीं होता क्योंकिः—

न वै सद्यारीस्य सतः प्रियाप्रिययोरपहतिरस्त्यदा-रीरं वावसन्तं न प्रियाप्रिये स्ट्रज्ञातः॥

छान्दो• [।प्र०८। खं० १२]

जो देह्यारी है वह सुख दुःखकी प्राप्तिसे पृथक् कभी नहीं रह सकता और जो शरीर रहित जीवातमा मुक्तिमें सर्वव्यापक परमेश्वरके । साथ शुद्ध होकर रहता है तब उसको सांसारिक सुख दुःख प्राप्त नहीं होता इसिंख्ये:—

पुत्र षणायाश्च वित्त षणायाश्च लोकेषणायाश्च व्युत्थायाथभिक्षाचर्यं चरन्ति ॥

शत. • कां० १४ [ प्र० ६ | आर० २ | कं • १ ]

छोकमें प्रतिष्ठा वा छाभ धनसे भोग वा मान्य पुत्रादिके मोहसे अलग होके सन्यासी छोग भिक्षुक होकर रात दिन मोक्षके साधर्नोमें तत्पर रहते हैं॥

प्राजापत्यां निरूप्येष्टिं तस्यां सर्ववेदसं द्वुत्वा ब्रा-द्याणः प्रवजेत् ॥१॥ यजुर्वेदब्राह्मणे ॥ प्राजापत्यां निरूप्येष्टिं सर्ववेदसदक्षिणाम् । आत्मन्यग्रीन्समारोप्य ब्राह्मणः प्रवजेद गृहात् ।२। यो दत्वा सर्वभृतेभ्यः प्रवृजैत्यभयं गृहात् । तस्य तेजोमया लोका भवन्ति ब्रह्मवादिनः ॥३॥

मनु० [६।३८।३६]

प्रजापति अर्थात् परमेश्वरकी प्राप्तिके अर्थ इंग्टि अर्थात् यह करके उसमें यज्ञोपवीत शिखादि चिन्होंको छोड़ आहवनीयादि पांच अगिनयोंको प्राण, अपान, ज्यान, उदान और समान इन पांच प्राणोंमें आरोपण करके ब्राह्मण ब्रह्मवित् घरसे निकल कर संन्यासी हो जावे॥ १॥ २॥

जो सब भूत प्राणिमात्रको अभयदान देकर घरसे निकलके सन्यासी होता है उस ब्रह्मवादी अर्थात् परमेश्वरप्रकाशित वेदोक्त धर्मादि विद्याओं के उपदेश करनेवाले सन्यासीके लिये प्रकाशमय अर्थात् मुक्तिका आनन्दस्वरूप लोक प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

प्रश्न-संन्यासियोंका क्या धर्म है ?

उत्तर —धर्म तो पक्षपातरहित न्यायाचरण, सत्यका प्रहण, अस-त्यका परित्याग, वेदोक्त ईश्वरकी आज्ञाका पालन, परोपकार, सत्यभा-बणादि लक्षण सब आश्रमियोंका अर्थात् सब मनुष्यमात्रका एक ही है परन्तु सन्यासीका विशेष धर्म यह है कि:—

हिष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत् । सत्यपूतां वदेद्वाचं मनःपूतं समाचरेत् ॥१॥ कृद्ध्यन्तं न प्रतिकृध्येदाकुष्टः कुशालं वदेत् । सप्तद्वारावकीर्णां च न वाचमन्दतां वदेत् ॥२॥ अध्यात्मरितरासीनो निरपेक्षो निरामिषः । आत्मनैव सहायेन सुखार्थी विचरेदिह ॥ ३ ॥ ूः पात्री दण्डी कुसुम्भवात् । विचरेन्नियतो नित्यं सर्वभृतान्यपीडयन् ॥ ४॥ इन्द्रियाणां निरोधेन रागद्वेषक्षयेण च। अहिंसया च भूतानाममृतत्वाय कल्पते ॥ ५ ॥ द्षितोऽपि चरेद्धर्मं यत्र तत्राश्रमे रतः। समः सर्वेषु भूतेषु न छिंगं धर्मकारणम् ॥ ६ ॥ फलं कतकवृक्षस्य यद्यप्यम्बुप्रसादक्रम्। न नामग्रहणादेव तस्य वारि प्रसीद्ति॥॥७॥ प्राणाचामा ब्राह्मणस्य त्रयोपि विधिवत्कृताः। ब्याहृतिप्रणवैर्यक्ता विज्ञेयं परमन्तपः ॥ ८॥ द्द्यन्ते ध्यायमानानां धातूनां हि यथा मलाः। तथेन्द्रियाणां दश्चन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात् ।६। **प्रा**णायामैर्दहेदोषान् धारणाभिश्च किल्विषम् । प्रत्याहारेण संसर्गान् ध्यानेनानीश्वरान् गुणान्।१०। उचावचेषु भूतेषु दुर्जे यामकृतात्मभिः। ध्यानयोगेन संपश्येद गतिमस्यान्तरात्मनः ॥११॥ अहिंसयेन्द्रियासङ्गैवेंदिकरचैव कर्मभिः। तपसश्चरणैश्चोग्रैस्साधयन्तीह तत्पदम् ॥१२॥ यदा भावेन भवति सर्वभावेषु निरुष्टः। तदा सुखमवाप्रोति प्रेत्य चेह च शाश्वतम् ।१३। चंतुर्भिरपि चैवैतैर्नित्यमाअमिमिर्द्विजै:।

वज्ञालक्षणको धर्मः सेवितव्यः प्रयन्नतः॥१४॥ धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः। धीर्विद्या सत्यमकोधो ददाकं धर्मलक्षणम् ॥१५॥ अनेन विधिना सर्वा स्टानवा संगानदानैः शनैः। सर्वद्वनद्वविनिर्मक्तो ब्रह्मण्येवावतिष्ठते ॥१६॥

मनु अ के | प्रिक्ष ४८ । ४८ । ६२ । ६० । ६६ । ६७ । . ७०-७३।७५।८०।८१।६१।६२॥

जब संन्यासी मार्गमें चले तब इधर उधर न देखकर नीचे पृथि-बीपर दृष्टि रखके चले। सदा बखसे छानके जल पिये निरन्तर सत्य ही बोळे सर्वहा मनसे विचारके सत्यका ग्रहण कर असत्यको छोड देवे ॥ १ ॥

जब कहीं उपदेश वा संवादादिमें कोई सन्यासी पर क्रोध करे अथवा निन्दा करे तो संन्यासीको उचित है कि उस पर आप कोध न करे किन्तु सदा उसके कल्याणार्थ उपदेश ही करे और एक मुखका, हो नासिकाके, दो आंखके और दो कानके छिद्रोंमें विखरी हुई बाणीको किसी कारणसे मिथ्या कभी न बोले ।। २ ।।

अपने आत्मा और परमात्मामें स्थिर अपेक्षारहित मद्य मासाहि वर्जित होकर आत्मा ही के सहायसे सुखार्थी होकर इस संसारमें धर्म और विद्याके बढ़ानेमें उपदेशके लिये सदा विचरता रहे ॥ ३॥

केश, नख, डाढ़ी, मूछको छेदन करवावे सुन्दर पात्र दण्ड **और** इसुम्भ आदिसे रंगे हुए वस्नोंको प्रहण करके निरिचतात्मा सब भूतोंको पीड़ा न देकर सर्वत्र विचरे ॥ ४॥

इन्द्रियोंको अधर्माचरणसे रोक, रागद्वेषको छोड़, सब प्राणियोंसे निर्वेर वर्राकर मोक्षके लिये सामर्थ्य बढाया करे ॥ ४॥

कोई संसारमें उसको द्षित वा भूषित करे तो मी जिस किसी

आश्रममें वर्ताता हुआ पुरुष अर्थात् संन्यासी सब प्राणियोंमें पश्चपात-रहित होकर स्वयं धर्मातमा और अन्योंको धर्मातमा करनेमें प्रयत्न किया करे। और यह अपने मनमें निश्चित जाने कि दण्ड, कमण्डलु और काषायवस्त्र आदि चिह्न धारण धर्मका कारण नहीं हैं, सब मनु-व्यादि प्राणियोंके सत्योपदेश और विद्यादानसे उन्नति करना संन्या-सीका मुख्य कर्म है।। है।।

क्योंकि यद्यपि निर्मली क्र्यका फल पीसके गन्दे जलमें डालनेसे जलका शोधक होता है तद्पि विना [ उसके ] डाले उसके नामकथन वा श्रवणमात्रसं जल गुद्ध नहीं हो सकता ॥ ७॥

इसिल्ये ब्राह्मण अर्थात् ब्रह्मिक्त् संन्यासीको उचित है कि ओंका-रपूर्वक सप्तव्याहृतियोंसे विधिपूर्वक प्राणायाम जितनी शक्ति हो उतने कर परन्तु तीनसं तो न्यून प्राणायाम कभी न करे यही संन्यासीका परमतप है ॥ ८ ॥

क्योंकि जैसे अग्निमें तपाने और गलानेसे धातुओंके मल नष्ट होजाते हैं वैसे ही प्राणोंके निष्रहसे मन आदि इन्द्रियोंके दोष अस्मीभूत होते हैं ॥ १ ॥

इसलिये संन्यासी लोग नित्यप्रति प्राणायामोंसे आत्मा, अन्तःक-रण और इन्द्रियोंके दोष, धारणाओंसे पाप, प्रत्याहारसे संगदोष, ध्यानसे अनीश्वरके गुणों अर्थात् हर्ष शोक और अविद्यादि जीवके दोषोंको भस्मीभूत करें ॥ १०॥

इसी ध्यानयोगसे जो अयोगी अविद्वानोंको दुःखसे जानने योग्य छोटे बड़े पदार्थोमें परमात्माकी व्याप्ति उसको ओर अपने आत्मा और अन्तर्यामी परमेश्वरकी गतिको देखे।। ११।।

जब भूतोंसे निर्देर इन्द्रियोंके विषयोंका त्याग, वेदोक्त कर्म और अत्युप तपश्चरणसे इस संसारमें मोक्षपदको पूर्वोक्त संन्यासी ही सिद्ध कर और करा सकते हैं अन्य कोई नहीं ॥ १२॥

जब सन्यासी सब भाषोंमें अर्थात् पदार्थोंमें निःस्पुद्द कांक्षारहित

जोर स्रंत बाहर भीतरके व्यवहारों में भावसे पवित्र होता है तभी इस हैहमें जोर मरण पाके निरन्तर सुखको प्राप्त होता है।। १३।।

इसिक्टिये 'ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासियोंको योग्य हैं कि प्रयक्तसे हश कक्षणयक्त निम्नलिखित धर्मका सेवन करें ॥ १४ ॥

पहिला लक्षण-(धृति) सदा धैर्य रखना दसरा-(क्षमा) जो कि निन्दा स्तुति मानापमान हानिलाभ आदि दुःखोंमें भी सहन-शील रहना। तीसरा—(दम) मनको सदा धर्ममें प्रवृत्त कर अध-मसे रोक देना अर्थात् अर्थम करनेकी इच्छा भी न उठे। चौथा-( अस्तेय ) चोरीत्याग अर्थात् विना आज्ञा वा छल कपट विश्वासघात बा किसी व्यवहार तथा वेदविरुद्ध उपदेशसे पर पदार्थका प्रहण करना बोरी और उसको छोड देना साहकारी कहाती है। पांचवां — (शोच) रागद्वेष पक्षपात छोडके भीतर और जल मृत्तिका मार्जन आदिसे बाह-रकी पवित्रता रखनी । छठा—( इन्द्रियनिप्रह् ) अधर्माचरणोंसे रोक के इन्द्रियोंको धर्महीमें सदा चलाना । सातवां—( धीः ). मादकद्रव्य बुद्धिनाशक अन्य पदार्थ दुष्टोंका सङ्ग आलस्य प्रमाद आदिको छोडके श्रेष्ठ पढार्थीका सेवन सत्परुषोंका सङ्घ योगाभ्याससे बुद्धिको बढाना। धाठवां-- (विद्या ) प्रथिवीसे लेके परमेश्वर पर्यन्त यथार्थज्ञान और इनमें यथायोग्य उपकार होना सत्य जैसा आत्मामें वैसा मनमें. जैसा मनमें वैसा बाणीमें, जैसा वाणीमें वैसा कर्ममें वर्तना विद्या, इससे विप-रीत अविद्या है। नववां-( सत्य ) जो पदार्थ जैसा हो उसको वैसा ही समम्पना, वैसा ही बोलना और वैसा ही करना भी। तथा दशवां-( अक्रोध ) क्रोधादि दोषोंको छोडके शान्त्यादि गुणोंको प्रहण करना धर्मका लक्षण है। इस दश लक्षणयुक्त पक्षपातगहित न्यायाचरण धर्मका सेवन चारों आश्रमवाले करें और इसी वेदोक्त धर्महीमें आप चलना और दूसरोंको सममा कर चलाना संन्यासियोंका विशेष धर्म है।। १४।।

इसी प्रकारसे धीरे २ सब संगदीबोंको छोड़ हर्ष शोकादि सः

इन्होंसे विमुक्त होकर संन्यासी ब्रह्म ही में अवस्थित होता है संन्यासि॰ बोंका मुख्य कर्म यही है कि सब गृहस्थादि आश्रमोंकी सब प्रकारके व्यवहारोंका सत्य निश्चय करा अधर्म व्यवहारोंसे हुड़ा सब संशयोंका छेदन कर सत्य धर्मयुक्त व्यवहारोंमें प्रवृत्त कराया करें ॥ १६॥

प्रश्न-संन्यासप्रहण करना ब्राह्मण ही का धर्म है वा क्षत्रियाहि

का भी ?

उत्तर-श्राह्मण ही को अधिकार है क्योंकि जो सब वर्णीमें पूर्ण विद्वान धार्मिमक परोपकारप्रिय मनुष्य है उसीका ब्राह्मण नाम है विना पूर्ण विद्याके धर्म, परमेश्वरकी निष्ठा और वैराग्यके संन्यास शहण करनेमें संसारका विशेष उपकार नहीं हो सकता इसीलिये लोकश्चित है कि ब्राह्मणको संन्यासका अधिकार है अन्यको नहीं यह मनका प्रमाण भी है:--

#### एष वोऽभिहितो धर्मी ब्राह्मणस्य चतुर्विधः। पुण्योऽक्षयफलः प्रेत्य राजधर्मान् निबोधत ॥ मनु• [६।६७]

यह मनुजी महाराज कहते हैं कि दे भृषियो ! यह चार प्रकार अर्थात् ब्रह्मचर्च्य, [ गृहस्थ ], वाणप्रस्थ संन्यासाश्रम करना ब्राह्मणका धर्म है यहां वर्तमानमें पुण्यस्वरूप और शरीर छोड़े प्रधात् मुक्तिरूप अक्षय आनन्दका देनेवाला संन्यास धर्म है इसके आगे राजाओंका धर्म मुक्तसे सुनो । इससे यह सिद्ध हुआ कि संन्यासप्रहणका अधिकार मुख्य करके ब्राह्मणका है और क्षत्रियादिका ब्रह्मचर्याश्रम है।

प्रश्न-संन्यासप्रहणकी आवश्यकता क्या है १

**उत्तर—जैसे शरीरमें शिरकी आवश्यकता वैसे ही आश्रमोंमें** सन्यासाश्रमकी आवश्यकता है क्योंकि इसके विना विद्या धर्म कभी नहीं बढ़ सकता और दूसरे आश्रमोंको विद्यापहण गृहकृत्य और वपश्चर्यादिका सम्बन्ध होनेसे अवकाश बहुत कम मिछवा है। प्रश्नपाव

#### समुद्धास] संन्यासकी आवश्यकता। ,१६७

छोड़ कर वर्त्तना दूसरे आश्रमोंको दुष्कर है जैसा संन्यासी सर्वतोमुक होकर जगत्का उपकार करता है वैसा अन्य आश्रमी नहीं कर सकता क्योंकि संन्यासीको सत्यविद्यासे पदार्थोंके विज्ञानकी उन्नतिका जितना अवकाश मिलता है उतना अन्य आश्रमीको नहीं मिल सकता। परन्तु जो ब्रह्मचर्थ्यसे संन्यासी होकर जगत्को सत्य शिक्षा करके जितनी उन्नति कर सकता है, उतनी गृहस्थ वा वानप्रस्थ आश्रम करके संन्यासाश्रमी नहीं कर सकता।

प्रश्न—संन्यास प्रहण करना ईश्वरके अभिप्रायसे विरुद्ध है क्यों-कि ईश्वरका अभिप्राय मनुष्योंकी बढ़ती करनेमें है जब गृहाश्रम नहीं करेगा तो उससे सन्तान ही न होंगे। जब सन्यासाश्रम ही मुख्य है और सब मनुष्य करें तो मनुष्योंका मूलच्छेदन हो जायगा।

उत्तर—अच्छा, विवाह करके भी बहुतोंके सन्तान नहीं होते अथवा होकर शीघ्र नष्ट हो जाते हैं फिर वह भी ईरवरके अभिप्रायसे विरुद्ध करने वाला हुआ जो तुम कहो कि "यत्ने कृते यदि न
सिध्यति कोऽत्रदोषः" यह किसी कविका वचन है, अर्थ—जो यत्न
करनेसे भी कार्य्य सिद्ध न हो तो इसमें क्या दोष ? अर्थात कोई भी
नहीं। तो हम तुमसं पूछते हैं कि गृहाश्रमसे बहुत सन्तान होकर आपसमें विरुद्धाचरण कर लड़ मरें तो हानि कितनी बड़ी होती है, सममके विरोधसे लड़ाई बहुत होती है, जब संन्यासी एक वेदोक्तधर्मके
उपदेशसे परस्पर प्रीति उत्पन्न करावेगा तो लाखों मनुष्योंको क्या
देगा सहसों गृहस्थके समान मनुष्योंकी बढ़ती करेगा और सब मनुष्य
संन्यासप्रहण कर ही नहीं सकते क्योंकि सबकी विषयासक्ति कभी
नहीं छूट सकेगी, जो २ संन्यासियोंके उपदेशसे धार्मिक मनुष्य होंगे
वे सब जानो संन्यासीके पुत्र तुल्य हैं।

प्रश्न—संन्यासी लोग कहते हैं कि हमको कुछ कर्तव्य नहीं अन्न सक्ष छेकर आनन्दमें रहना, अविद्यारूप संसारसे माथापञ्ची क्यों करना १ अपनेको तथा मानकर सन्द्राष्ट्र रहना, कोई आकर पूछे तो उसको भी बैसा ही उपदेश करना कि तू भी ब्रह्म है तुमको पाप पुण्य नहीं लगता क्योंकि शीतोष्ण शरीर, क्षुधा तृषा प्राण, और सुख दुःख मनका धर्म है। जगत् मिथ्या और जगत्के व्यवहार भी सब कल्पित अर्थात् भू ठे हैं इसलिये इसमें फँसना बुद्धिमानोंका काम नहीं। जो इन्छ पाप पुण्य होता है वह देह और इन्द्रियोंका धर्म है आत्माका नहीं, इत्यादि उपदेश करते हैं और आपने कुछ विलक्षण संन्यासका धर्म कहा है अब हम किसकी बात सच्ची और किसकी मूंठी मानें?

उत्तर-क्या उनको अच्छे कर्म भी कर्त्तव्य नहीं ? देखी "वैदिक-इनैव कर्मभिः" मनुजीने वैदिक कर्म जो धर्मयुक्त सत्य कर्म हैं, संन्या-सियोंको भी अवश्य करना लिखा है। क्या भोजन छादनादि कर्म वे छोड़ सकेंगे १ जो ये कर्म नहीं छूट सकते तो उत्तम कर्म छोड़नेसे वे पतित और पापभागी नहीं होंगे ? जब गृहस्थोंसे अन्न वसादि छेते हैं और उनका प्रत्युपकार नहीं करते तो क्या वे महापापी नहीं होंगे ? जैसे आंखसे देखना कानसे सनना न हो तो आंख और कानका होना व्यर्थ है वैसे ही जो संन्यासी सत्योपदेश और वेदादि सत्यशा-स्रोंका विचार, प्रचार नहीं करते तो वे भी जगत्में व्यर्थ भारहप हैं। और जो अविद्याहर संसारसे माथापच्ची क्यों करना आदि लिखते और कहते हैं वैसे उपदेश करनेवाले ही मिथ्यारूप और पापके बढाने-हारे पापी हैं। जो कुछ शरीरादिसे कर्म्म किया जाता है बात्मा ही का और उसके फलका भोगने वाला भी आत्मा है। जो नीवको ब्रह्म बतलाते हैं वे अविद्या निद्रामें सोते हैं। क्योंकि जीव **अरुप, अरुपज्ञ और ब्रह्म** सर्वव्यापक सर्वज्ञ है ब्रह्म नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वभावयुक्त है और जीव कभी बद्ध कभी मुक्त रहता है। ब्रह्मको सर्वव्यापक सर्वज्ञ होनेसे भ्रम वा अविद्या कभी नहीं हो सकती और जीवको कभी विद्या और कभी अविद्या होती है ब्रह्म जन्ममरण दुःख-को कभी नहीं प्राप्त होता और जीव प्राप्त होता है इसलिये वह उनका उपदेश मिथ्या है।

प्रश्न — संन्यासी सर्व कर्म्मविनाशी और अग्नि तथा धातुको स्पर्श नहीं करते यह बात सच्ची है वा नहीं।

उत्तर—नहीं "सम्यङ् नित्यमास्ते यस्मिन् यद्वा सम्यङ् न्यस्यन्ति दुःखानि कर्माणि येन स संन्यासः स प्रशस्तो विद्यते यस्य स सन्यासी" जो ब्रह्म और जिससे दुष्ट कर्मोका त्याग किया जाय वह उत्तम स्वभाव जिसमें हो वह संन्यासी कहाता है इसमें सुकर्मका कर्ता और दुष्ट कर्मोका नाश करनेवाला संन्यासी कहाता है।

प्रश्त-अध्यापन और उपदेश गृहस्थ किया करते हैं पुनः संन्या-सीका क्या प्रयोजन है ?

उत्तर—सत्योपदेश सब आश्रमी करें और सुनें परन्तु जितना अवकाश और निष्पक्षपातता संन्यासीको होती है उतनी गृस्थोंको नहीं। हां, जो ब्राह्मण हैं उनका यही काम है कि पुरुष पुरुषोंको और की स्त्रियोंको सत्योपदेश और पढ़ाया करें। जितना श्रमणका अवकाश संन्यासीको मिलता है उतना गृहस्थ ब्राह्मणादिकोंको कभी नहीं मिल सकता। जब ब्राह्मण वेदविरुद्ध आचरण करें तब उनका नियन्ता संन्यासी होना है। इसल्ये संन्यासका होना उचित है।

प्रश्न---"एकरात्रिं वसेट् प्रामें" इत्यादि वचनोंसे संन्यासीको एकत्र एकरात्रिमात्र रहना अधिक निवास न करना चाहिये।

उत्तर-यह बात श्रेड्से अंशमें तो अच्छी है कि एकत्रवास कर-नेसे जगत्का उपकार अधिक नहीं हो सकता और स्थानान्तरका श्री अभिमान होता है राग द्वेष भी अधिक होता है परन्तु जो विशेष उपकार एकत्र रहनेसे होता हो तो रहे जैसे जनक राजाके यहां चार चार महीने तक पश्चशिखादि और अन्य संन्यासी कितने ही वर्षो तक निवास करते थे। और "एकत्र न रहना" यह बात आज कलके पाखण्डी सम्प्रदायियोंने बनाई है। क्योंकि जो संन्यासी एकत्र अधिक रहेगा तो हमारा पाखण्ड खण्डित होकर अधिक न बढ़ सकेगा।

#### यतीनां काश्चनं दचात्ताम्बूलं ब्रह्मचारिणाम् । चौराणामभयं दचात्स नरो नरकं ब्रजेत्॥

इत्यादि वचनोंका अभिप्राय यह है कि सन्यासियोंको जो सुवर्ण हान दे तो दाता नरकको प्राप्त होवे।

उत्तर—यह बात भी वर्णाश्रमिवरोधी सम्प्रदायी और स्वार्थिस-म्थुवाले पौराणिकोंकी करुपी हुई है, क्योंकि सन्यासियोंको धन मिलेगा तो वे हमारा खण्डन बहुत कर सकेंगे और हमारी हानि होगी, तथा वे हमारे आधीन भी न रहेंगे और जब भिक्षादि व्यवहार हमारे आधी-न रहेगा तो डरते रहेंगे जब मूर्ख और स्वार्थियोंको दान देनेमें अच्छा समम्बते हैं तो विद्वान और परोपकारी संन्यासियोंको देनेमें कुछ भी दोष नहीं हो सकता देखों मनु•—

#### विविधानि च रक्नानि विविक्ते पूपपाद्येत्॥

नाना प्रकारके रब्न सुवर्गादि धन (विविक्त ) अर्थात् संन्यासि-योंको देवे और वह रुखेक भी अनर्थक है क्योंकि संन्यासीको सुवर्ण देनेसे यजमान नरकको जावे तो चांदी, मोती, हीरा आदि देनेसे स्वर्गको जायगा।

प्रभ—यह पण्डितजी इसका पाठ बोलते भूल गये यह ऐसा है कि "यतिहस्ते धनं दद्यात्" अर्थात् जो संन्यासियोंके हाथमें धन देता है वह नरकमें जाता है।

उत्तर—यह भी वचन अविद्वानने क्योलकल्पनासे रचा है। क्योंकि जो हाथमें धन देनेसे दाता नरकको जाय तो पग पर धरने का गठरी बांधकर देनेसे स्कंको जायगा इसल्यि ऐसी कल्पना मानने योग्य नहीं। हां, वह बात तो है कि जो संन्यासी योग्य्येमसे अधिक रक्लेगा तो चोराबिसे केंद्रित और मोहित भी हो जायगा परन्तु जो विद्वान है वह अयुक्त व्यवहार कभी नहीं करेगा, न मोहमें फंसेगा क्योंकि वह प्रथम गृहाश्रमणें अध्यस ब्रह्मचंबों सब भोग कर वा सब

समुस्लास] संन्यासी और आदा। १७१ देख चुका है और जो ब्रह्मचयंसे होता है वह पूर्ण वैराग्ययुक्त होनेसे करी कहीं नहीं फंसता।

प्रभ—स्मेग कहते हैं कि श्राद्धमें संन्यासी आवे वा जिमावे तो समके पितर भाग जायें और नरकमें गिरे।

उत्तर—प्रथम तो मरे हुए पितरोंका आना और किया हुआ आह मरे हुए पितरोंको पहुंचांना ही असम्भव वेद और युक्तिविकद्ध होनेसे मिथ्या है। और जब आते ही नहीं तो भाग कौन जायेंगे जब अपने पाप पुण्यके अनुसार ईश्वरकी व्यवस्थासे मरणके प्रधात जीव जन्म लेते हैं तो उनका आना कैसे हो सकता है ? इसल्यिय यह भी बात पेटाओं पुराणा और वैरागियोंकी मिथ्या कल्पी हुई हैं। यह तो कि है कि जहां संन्यासी जायेंगे वहां यह मृतकश्राद्ध करना वेदादि शाकोंसे विकद्ध होनेसे पाखण्ड दूर भाग जायगा।

प्रश्न—जो ब्रह्मचर्च्यसे संन्यास लेक्गा उसका निर्वाह कठिनतासे होगा और कामका रोकना भी अति कठिन है इसलिये गृहाश्रम वान-प्रस्थ होकर जब कृद्ध होजाय तभी संन्यास लेना अच्छा है।

उत्तर—जो निर्वाह न कर सके इन्द्रियोंको न रोक सके वह क्यां न छेवे ? क्यां प्रथमें संन्यास न छेवे, परन्तु जो रोक सके वह क्यों न छेवे ? जिस पुरुषने विषयके दोष और वीर्य्यसरक्ष्मके गुण जाने हैं वह विषयासक्त कभी नहीं होता और उनका वीर्य्य विचारागिनका इन्धन्वत् है अर्थात् उसीमें व्यय होजाता है। जैसे वैद्य और औषधोंकी आवश्यकता रोगीके छिये होती है वैसी नीरोगीके छिये नहीं। इसी प्रकार जिस पुरुष वा को को विद्या धर्ममृद्धि और सब संसारका उपकार करना ही प्रयोजन हो वह विवाह न करे। जिसे पंचशिखाहि पुरुष और गार्गी आदि स्त्रियां हुई थीं इसिंख्ये संन्यासीका होना अधिकारियोंको उचित है और जो अनिधिकारी संन्यासम्बद्धण करेगा तो आप द्वागा औरोंको भी हुवावेगा जैसे "सम्नाट" चक्रवर्ती राजा होता है वैसे "परिवाह" संन्यासी होता है प्रस्तुत राजा अपने देशमें वा

सम्बन्धियों में सत्कार पाता है ओर सन्यासी सर्वत्र पूजित होता है। विद्वस्त्वं च नृपत्वं च नैच तुरुयं कदाचन। स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते ॥

[यह ] चाणक्य नीतिशाक्षका श्लोक है—विद्वान् और राजाकी कभी तुल्यता नहीं हो सकती क्योंकि राजा अपने राज्य ही में मान और सत्कार पाता है और विद्वानं सर्वत्र मान और प्रतिष्ठाको प्राप्त होता है इसिल्ये विद्या पढ़ने, सुशिक्षा लेने और बल्बान् होने आदिके लिये ब्रह्मचर्य, सब प्रकारके उत्तम व्यवहार सिद्ध करनेके अर्थ गृहस्थ विचार ध्यान और विज्ञान बढ़ाने तपश्चर्या, करनेके लिये क्षनप्रस्थ और वेदादि सत्यशास्त्रोंका प्रचार, धर्म व्यवहारका प्रहण और दृष्ट व्यवहारके त्याग, सत्योपदेश और सबको निःसंदेंह करने आदिके लिये संन्यासाध्यम है। परन्तु जो इस संन्यासके मुख्य धर्म सत्योपदेश लिये संन्यासाध्यम है। परन्तु जो इस संन्यासके मुख्य धर्म सत्योपदेश हित्य संत्यासकों का अध्याप्त के विद्वाल धर्मकी बृद्धि प्रयत्नसे करके सब संस्थारकी ब्रद्धि प्रयत्नसे करके सब संस्थारकी ब्रद्धि क्या करें।

प्रश्न—जो संन्यासीसे अन्य साधु, वैरागी, गुसाई, खासी आदि हैं वे भी संन्यासाश्रममें गिने जायेंगे वा नहीं ?

उत्तर—नहीं क्योंकि उनमें संन्यासका एक भी तक्ष्य नहीं, वे बेदविरुद्ध मार्गमें प्रवृत्त होकर वेदसे [अधिक ] अपने संप्रदासके आचाय्योंके वचन मानते और अपने ही मतकी प्रशंसा करते मिथ्या प्रपंचमें फंसकर अपने खार्थके लिये दूसरोंको अपने २ मतमें फंसाते हैं सुधार करना तो दूर रहा उसके बदलेमें संसारको बहका कर अथोगितको प्राप्त कराते और अपना प्रयोजन सिद्ध करते हैं इसिब्बे इनको संन्यासाअममें नहीं गिन सकते किन्तु ये स्वार्थाअमी तो पके हैं। इसमें कुछ सन्देह नहीं। जो स्वयं धमें में बलकर सब संसारको

घळाते हैं जिससे आप और सब संसारको इस लोक अर्थात् वर्त्तमान जन्ममें परलोक अर्थात् दूसरे जन्ममें स्वर्ग अर्थात् सुखका मोग करते कराते हैं वे ही धर्मातमा जन सन्यासी और महातमा हैं। यह संक्षेपसे संन्यासाश्रमकी शिक्षा लिखी। अब इसके आगे राजप्रजाधर्म विषय लिखा जायगा ।।

इति श्रीमह्यानन्दसरस्वतीस्वामिक्टते सत्यार्थप्रकाशे सुभाषाविभृषिते वानप्रस्थसंन्यासाश्रमविषये पश्चमः समुहासः सम्पूर्णः ॥५॥



# ्रे **ग्रथ षष्ठसमु**ह्णासारम्भः

### अथ राजधर्मान् व्याख्यास्यामः ।

राजधर्मान् प्रवक्ष्यामि यथावृत्तो भवेन्द्रपः । संभवश्च यथा तस्य सिद्धिश्च परमा यथा ॥१॥ ब्राह्मं प्राप्तेन संस्कारं क्षत्रियेण यथाविधि । सर्वस्यास्य यथान्यायं कर्तव्यं परिरक्षणम् ॥२॥

मनु• [७॥१।२]

अब मतुजी महाराज ऋषियोंसे कहते हैं कि चारों वर्ण और चारों आश्रमोंके व्यवहार कथनके पश्चात् राजधमोको कहेंगे कि किस प्रकारका राजा होना चाहिये और जैसे इसके होनेका सम्भव तथा जैसे इसको परमसिद्धि प्राप्त होवे उसको सब प्रकार कहते हैं।।१।।

कि जैसा परम विद्वान ब्राह्मण होता है वैसा विद्वान सुशिक्षित होकर अभित्रयको योग्य है कि इस सब राज्यकी रक्षा न्यायसे यथावत् करे।। २।। उसका प्रकार यह है—

त्रीणि राजाना विद्ये पुरूणि परि विश्वानि भूषथः सदांसि ॥ भ्रा० मं० ३ । सू० ३८ । मं० ६ ॥

ईश्वर उपदेश करता है कि (राजाना) राजा और प्रजाके पुरुष मिलके (विदये) सुखप्राप्ति और विद्यानदृद्धिकारक राजा प्रजाके सम्बन्धरूप व्यवहारमें (त्रीणि सदांसि) तीन सभा अर्थात् विद्यार्थसभा, धर्मार्थ्यसभा, राजार्थ्यसभा नियत करके (पुरुषि)

बहुत प्रकारके (विश्वानि ) समप्र प्रजासन्बम्धी मनुष्यादि प्राणियोंको (परिभूषथः) सब ओरसे विद्या स्वातन्त्र्य धर्म सुशिक्षा और धना-दिसे अलंकृत करें।।

#### तं सभा च समितिश्च सेना च ॥१॥

ु अथर्व० कॉ० १४ । अनु● २ । व● ६ । मं० २ ॥

सभ्य सभां मे पाहि ये च सभ्याः सभासदः ॥२॥

अर्थवं० कां॰ २६ अनु॰ ७। व॰ ५५। मं० ६॥

(तम्) उस राजधर्मको (सभा च) तीनों सभा (समितिश्च) संप्रामादिकी न्यवस्था और (सना च) सेना मिळकर पाळन करें॥श।

सभासद् और राजाको योग्य है कि राजा सब सभासदोंकों आज्ञा देवे कि है (सभ्य) सभाके योग्य मुख्य सभासद् तू (मे) मेरी (सभाम्) सभाको धर्मयुक्त व्यवस्थाका (पाहि) पाउन कर और (ये च) जो (सभ्याः) सभाके योग्य (सभासदः) सभासद् हैं वे भी सभाकी व्यवस्थाका पाउन किया करें।। २।।

इसका अभिप्राय यह है कि एकको स्वतन्त्र राज्यका अधिकार न देना चाहिये किन्तु राजा जो सभापति तदाधीन सभा, सभाधीन राजा, राजा और सभा प्रजाके आधीन और प्रजा राजसभाके आधीन रहे यदि ऐसा न करोगे तोः—

राष्ट्रमेव विश्याहन्ति तस्माद्राष्ट्री विश्वं घातुकः। विश्वमेव राष्ट्रायाचां करोति तस्माद्राष्ट्री विश्व-मित्त न पुष्टं पश्चं मन्यत इति॥

शत को १३। प्र २। त्रा २। [कं ७। ८]

जो प्रजासे स्वतन्त्र स्वाधीन राजवर्ग रहे तो ( राष्ट्रमेव विश्वा-इन्ति ) राज्यमें प्रवेश करके प्रजाका नाश किया करें जिसक्षिये अकेका राजा स्वाधीन वा बन्मत होके (राष्ट्री विशंशातुकः) प्रजाका नाशक होता है अर्थात (विशमेव राष्ट्रायाद्यां करोति) वह राजा प्रजाको खाये जाता (अत्यन्त पीड़ित करता) है इसिंख्ये किसी एकको राज्यमें स्वाधीन न करना चाहिये जैसे सिंह वा मांसा-हारी हुष्ट पुष्ट पशुको मारकर खालेते हैं वैसे (राष्ट्री विशमित्त) स्वतन्त्र राजा प्रजाका नाश करता है अर्थात् किसीको अपनेसे अधिक न होने देता श्रीमान्को छूट खूट अन्यायसे दण्ड छेके अपना प्रयोजन पूरा करेगा, इसिंख्ये:—

#### इन्द्रो जयाति न परा जयाता अधिराजो राजसु राजयाते । चर्क्वत्य ईड्यो वन्यश्चोपसचो नमस्यो भवेह ॥ अथर्व कां० ६ । १० । ६८ । १ ॥

हे मनुष्यो ! जो (इह ) इस मनुष्यके समुद्रायमें (इन्द्रः ) परम ऐश्वर्यका कर्त्ता शत्रुओंको (जयाति ) जीत सके (न पराजयाते ) जो शत्रुओंसे पराजित न हो (राजसु) राजाओंमें (अधिराज ) सर्वोपिर विराजमान (राजयाते ) प्रकाशमान हो (चर्कृत्यः ) समा-पति होनेको अत्यन्त योग्य (ईड्यः ) प्रशंसनीय गुण कर्म स्वभावयुक्त (वन्यः ) सत्करणीय (चोपसद्यः ) समीप जाने और शरण छेने योग्य (नमस्यः ) सबका माननीय (भव ) होवे उसीको सभापति राजा करे ।

#### इमन्देवा असपव्रणं सुबध्वं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ट्याय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय ॥

यजु॰ अ॰ १। म॰ ४०॥ है (देवाः) विद्वानो राजप्रजाजनो तुम (इमम्) इस प्रकारके पुरुषको (महते अत्राय) बड़े चक्रवर्ति राज्य (महते ज्येष्ट्रयाव) सबसे बड़े होने (महते जानराज्याय) बड़े २ विद्वानोंसे युक्त राज्य पास्ते और (इन्द्रस्येन्द्रियाय) परम ऐश्वर्ययुक्त राज्य और धनके

पालनेके लिये ( असपत्नर्थः सुवध्वम् ) सम्मित करके सर्वत्र पक्षपात-रहित पूर्ण विद्यां बिनययुक्त सबके मित्र सभापति राजाको सर्वाधीश मानके सब भूगोल शहुरहित करो और—

स्थिरा वः सन्त्वायुधा पराणुदे वीडू उत प्रतिष्क-भे। युस्माकमस्तु तविषी पनीयसी मा मर्त्यस्य मा-यिनः॥ ऋ मं०१। सू०३६। मं०२॥

ईश्वर उपदेश करता है कि हे राजपुरुषो ! (वः) तुम्हारे (आयुधा) आग्नेयादि अस्त्र और सतध्नी अर्थात् तोप भूशुण्डी अर्थात् बन्द्क धनुष बाण तलवार आदि शस्त्र राबुओंके (पराणुदे) पराजय करने ( उत प्रतिष्कमे ) और रोकनेके लिये ( वीडू ) प्रशं-सित और (स्थिरा) इट् (सन्तु) हों (युष्माकम्) और तुम्हरी ( तिवषी ) सेना ( पनीयसी ) प्रशंसनीय ( अस्तु ) होवे कि जिससे तुम सदा विजयी होओ परन्तु (मा मर्त्यस्य मायिनः ) जो निन्दित अन्यायरूप काम करता है उसके छिये पूर्व वस्तु मत हों अर्थात् जनतक मनुष्य धार्मिक रहते हैं तभी तक राज्य बढ़ता रहता है और जब दुष्टाचारी होते हैं तब नष्ट भ्रष्ट होजाता है। महाविद्वानोंको विद्या-सभाऽधिकारी, धार्मिक विद्वानोंको धर्मसभाऽधिकारी, प्रशसनीय धार्मिक पुरुषोंको राजसभाके सभासद् और जो उन सबमें सर्वोत्तम गुण कम स्वभावयुक्त महान् पुरुष हो उसको राजसभाका पतिरूप मानके सब प्रकारसे उन्नति करें। तीनों सभाओंकी सम्मतिसे राज-चीतिके उत्तम नियम और नियमोंके आधीन सब छोग वर्ते सबके हितकारक कार्मोंमें सम्मति करें सर्वेहित करनेके लिये परतन्त्र और धर्मयुक्त कार्मोमें अर्थात् जो २ निजके काम हैं उन २ में स्वतस्त्र रहें। पुनः उस सभापतिके गुण कैसे होने चाहिये:—

्इन्द्राऽनिलयमार्काणामग्नेश्च वरुणस्य च ।

चन्द्रवित्ते शयोरचैव मात्रा निर्हृत्य शास्वतीः।१। तपत्यादित्यवच्चैष चक्षूंषि च मनांसि च। न चैनं भुवि शक्तोति करिचद्प्यभिवीक्षितुम्।२। सोऽग्निर्भवति वायुरच सोऽर्कः सोमः स धर्मराट्। स कुवेरः स वरुणः स महेन्द्रः प्रभावतः॥३॥

मनु• [७॥४।६।७[

वह समेश राजा इन्द्र अर्थात् विद्युत्के समान शीव ऐश्वर्यकर्तां बायुके समान सबके प्राणवत् प्रिय और हृदयकी बात जाननेहारा, यम पक्षपातरहित न्यायाधीशके समान वर्त्तनेवाला, सूर्य्यके समान न्याय धर्म विद्याका प्रकाशक अन्धकार अर्थात् अविद्या अन्यायका निरोधक, अग्निके समान दुष्टोंको भस्म करनेहारा, वरुण अर्थात् बांधनेवालेके सहश दुष्टोंको अनेक प्रकारसे बांधने वाला, चन्द्रके तुल्य श्रेष्ठ पुरुषोंको आनन्ददाता, धनाध्यक्षके समान कोशोंका पूर्ण करने वाला सभापति होवे ॥ १॥

जो सूर्यवत् प्रतापी सबके बाहर और भीतर मनोंको अपने तेजसे तपानेहारा जिसको पृथिवीमें करड़ी दृष्टिसे देखनेको कोई भी समर्थ न हो ॥ २ ॥

और जो अपने प्रभावसे अग्नि, वायु, सूर्य्य, सोम धर्म, प्रकाशक, धनवर्द्धक, दुष्टोंका बन्धनकर्ता, बड़े ऐश्वर्यवाला होवे वही सभाध्यक्ष समेश होनेके योग्य होवे ॥ ३ ॥ सचा राजा क्रौन है:—

स राजा पुरुषो दण्डः स नेता शासिता च सः। चतुर्णामाश्रमाणां च धर्मस्य प्रतिभः स्मृतः॥१॥ दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति। दण्डः सुप्तेषु जागर्ति दण्डं धर्म विदुर्षधाः॥२॥ समीक्ष्य स धृतः सम्यक् सर्वा रञ्जयति प्रजाः। असमीक्ष्य प्रणीतस्तु विनाद्ययति सर्वतः ॥३॥ दृष्येयः सर्ववर्णाश्च भिद्येरन्सर्वसेतवः। सर्वलोक प्रकोपरच भवेदण्डस्य विश्रमात् ॥४॥ यत्र रथामो लोहिताक्षो दण्डरचरति पापहा। प्रजास्तत्र न मुद्यन्ति नेता चे साधु पश्यति ॥५॥ तस्याद्धः संप्रणेतारं राजानं सत्यवादिनम्। समीक्ष्य कारिणं प्राज्ञं धर्मकामार्थकोविदम् ॥६॥ तं राजा प्रणयन्सम्यक् त्रिवर्गेणाभिवद्धते। कामात्मा विषमः क्षुद्रो दण्डेनैव निहन्यते ॥७॥ दण्डो हि सुमहत्तेजो दुर्घरश्चाकृतात्मभिः। धर्माद्विचितं हन्ति नृपमेव सबान्धवम् ॥८॥ सोऽसहायेन मूढेन लुब्धेनाकृतबुद्धिना। न दाक्यो न्यायतो नेतुं सक्तेन विष्येषु च ॥६॥ शुचिना सत्यसन्धेन यथाशास्त्रानुसारिणा। प्रणेतुं शक्यते दण्डः सुसहायेन धीमता ॥१०॥

मतु० [७॥१७-१६॥२४-२८॥३०॥३१] जो दंड है वही पुरुष, राजा, वही न्यायका प्रचारकर्ता और सबका शासनकर्ता, वही चार वर्ण और चार आश्रमोंके धर्मका प्रतिमू अर्थात् ज्ञामिन है॥१॥

वहीं राजाका शासनकर्ता सब प्रजाका रक्षक सोते हुए प्रजास्थ मनु-ध्योंमें जागता है इसीछिये बुद्धिमान् छोग दंडहीको धर्म कहते हैं ॥२॥ जो ं उत्रच्छे प्रकार विचारसे धारण किया जाय तो बह सब प्रजाको किन्दुत कर देता है और जो विना विचारे चळाया जाय सो सब आरसे राजाका विनाश कर देता है ॥ ३ ॥

विना दंडके सब वर्ण दूषित और सब मर्यादा छिन्न भिन्न होजायें। दंडके यथावत् न होनेसे सब छोगोंका प्रकोप होजावे।। ४।।

जहां क्रुष्णवर्ण रक्तनेत्र भयङ्कर पुरुषके समान पार्पोका नाश करने-हारा दंड विचरता है वहां प्रजा मोहको प्राप्त न होके आनन्दित होती है परन्तु जो दंडका चलानेवाला पक्षपात रहित विद्वान हो तो ।। १ ।।

जो उस दंडका चलानेवाला सत्यवादी विचारके करनेहारा बुद्धि-मान् धर्म अर्थ और कामकी सिद्धि करनेमें पंडित राजा है उसीको उस दंडका चलानेहारा विद्वान् लोग कहते हैं ॥ ६॥

जौ दंडको अच्छे प्रकार राजा चलाता है वह धर्म **अर्थ और** कामकी सिद्धिको बढ़ाता है और जो विषयमें लम्पट, टेढ़ा, ईर्ज्या करनेहारा क्षुद्र नीचबुद्धि न्यायाधीश राजा होता है, वह दंडसे ही मारा जाता है।। ७।।

जब दंड बड़ा तेजोमय है उस हो अविद्वात अधर्मात्मा धारण नहीं कर सकता तब वह दंड धर्मसे रहित छुटुम्बसहित राजा ही का नाश कर देता है ।। ८ ।।

क्योंकि जो आप्न पुरुषोंके सहाय, विद्या, सुशिक्षासे रहित, विष-योंमें आसक्त मूढ़ है वह न्यायसे दंडको चलानेमें समर्थ कभी नहीं हो सकता ॥ ६॥

और जो पित्रत्र आत्मा सत्याचार और सत्पुरुषोंका सङ्गी यथा-बत् नीति शास्त्रके अनुकूल चलनेहारा श्रेष्ठ पुरुषोंके सहायसे युक्त बुद्धिमान् है वही न्यायरूपी दंडके चलानेमें समर्थ होता है ॥ १० ॥

इसलिये:--

#### सैनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च।

सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविद्वहिति ॥१॥ दशावरा वा परिषयं धर्मं परिकल्पयेत् । श्यवरा वापि वृत्तस्या तं धर्मं न विचालयेत् ॥२॥ शैवियो हैतुकस्तर्की नैहक्तो धर्मपाठकः । श्रयश्चाश्रमिणः पूर्वे परिषत्स्यादशावरा ॥३॥ श्रयवेदविद्यञ्जविंच सामवेदविदेव च । श्यवरा परिषज्ज्ञे या धर्मसंशयनिणये ॥४॥ एकोपि वेदविद्धर्मं यं व्यवस्येद् द्विजोत्तमः । स विज्ञे यः परो धर्मों नाज्ञानामुद्तितोऽयुतैः ॥५॥ अव्रतानाममन्त्राणां जातिमान्नोपजीविनाम् । सहस्रशः समेतानां परिषत्वं न विद्यते ॥६॥ यं वदन्ति तमोभूता मूर्खा धर्ममतद्विदः । तत्पापं शतधा भूत्वा तद्वकृतृननुगच्छति ॥७॥

मनु । १२ ॥ १०० । ११०-११६ ]

सब सेना और सेनापितयोंके उत्पर राज्याधिकार, दंड देनेकी व्यवस्थाके सब कार्योका आधिपत्य और सबके उत्पर वर्त्तमान सर्वाधिश, राज्याधिकार इन चारों अधिकारोंमें संपूर्ण वेद शाकोंमें प्रवीण पूर्ण विद्यावाले धर्मात्मा जितेन्द्रिय सुशील जनोंको स्थापित करना चाहिये अर्थात् सुख्य सेनापित, मुख्य राज्याधिकारी, मुख्य न्यायाधिश, प्रधान और राजा ये चार सब विद्याओंमें पूर्ण विद्वान होने चाहिये॥ १॥

न्यूनसे न्यून दश विद्वानों अथवा बहुत न्यून हों तो तीन विद्वान नोंकी सभा जैसी व्यवस्था करे इस धर्म अर्थात् व्यवस्थाका इस्त्वन कोई भीन करे॥ २॥

इस सभामें चारों वेद, न्यायशास्त्र, निरुक्त, धर्मशास्त्र आदिके वेत्ता विद्वान् सभासद् हों परन्तु वे ब्रह्मचारी, गृहस्थ और वानप्रस्थ हों तब वह सभा [हो] कि जिसनें दश विद्वानोंसे न्यून न होने चाहिये ॥ ३॥

और जिस सभामें भगवेद यजुर्वेद सामवेदके जाननेवाले तीन सभासद हो के व्यवस्था करें उस सभाकी की हुई व्यवस्थाको भी कोई उल्लंघन न करे ॥ ४ ॥

यदि एक अकेटा सब वेदोंका जाननेहारा द्विजोंमें उत्तम संन्यासी जिस धर्मकी व्यवस्था करे वही श्रेष्ठ धर्म है क्योंकि अज्ञानियोंके सहस्रों ठाखों कोड़ों मिलके जो कुछ व्यवस्था करे उसको कभी न मानना चाहिये।। १।।

जो ब्रह्मचर्य सत्यभाषणादि व्रत वेदविद्या वा विचारसे रहित जन्ममात्रसे शूद्रवत् वर्त्तमान है उन सहस्त्रों मनुष्योंके मिलनेसे भी सभा नहीं कहाती।। ६॥

जो अविद्यायुक्त मूर्ख वेदोंके न जाननेवाले मनुष्य जिस धर्मको कहें उसको कभी न मानना चाहिये क्योंकि जो मूर्खोंके कहें हुए धर्मके अनुसार चलते हैं उनके पीछे सैकड़ों प्रकारके पाप लग जाते हैं।। ७।।

इसिंखिये तीनों अर्थात विद्यासभा धर्मतभा और राजसभाओं में मृखोंको कभी भरती न करे किन्तु सद् विद्वान् और धार्मिक पुरुष्किक स्थापन करे और सब छोग ऐसे:—

शैवियो भ्यस्त्रयीं विद्यां दण्डनीति च शाश्वतीम्। आन्वीक्षिकीं चात्मविद्यां वर्त्तारम्भाँश्च लोकतः।१। इन्द्रियाणां जये योगं समातिष्ठेदिवानिशम्। जितेन्द्रियो हि शक्तोति वशे स्थापयितुं प्रजाः।२।

द्रश काम समुत्थानि तथाष्टी कोधजानि च। व्यसनानि दुरन्तानि प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥३॥ कामजेषु प्रसक्तो हि च्यसनेषु महीपतिः। वियुज्यतेऽर्थधर्माभ्यां कोधजेष्वात्मनैव तु ॥४॥ मृगयाक्षो दिवास्वप्तः परीवादः स्त्रियो मदः। तौर्य्यत्रिकं वृथाट्या च कामजो दशको गणः ।॥ पैशुन्यं साहसं द्वोह ईर्ष्यासुयाथेद्षणम्। वाग्दण्डजं च पारुष्यं क्रोधजोऽपि गणोष्टकः ॥६॥ द्वयोरप्येतयोर्मलं यं सर्वे कवयो विदुः। तं यत्नेन जयेन्लोभं तज्जावेतावुभौ गणौ ॥७॥ पानमक्षाः स्त्रियरचैव मृगया च यथाक्रमम्। एतत्कष्टतमं विचाचतुष्कं कामजे गणे ॥二॥ दण्डस्य पातनं चैव वाक्ष्यः इष्यार्थद्षणे। कोधजेऽपि गणे विद्यात्कष्टमेतित्वकं सदा ॥६॥ सप्तकस्यास्य वर्गस्य सर्वत्रे वातुषङ्गिणः। पूर्व पूर्व गुरुतरं विद्याद्व्यसनमात्मवान् ॥१०॥ व्यसनस्य च मृत्योश्च व्यसनं कष्टमुच्यते। व्यसन्यधोऽघो व्रजति स्वर्यात्यव्यसनी मृतः ॥११॥ मनु॰ [७॥ ४३-५३]

राजा और राजसभाके सभासद तब हो सकते हैं कि जब वे चारों वेदोंकी कर्मोपासना ज्ञान विद्याओंके जानने वालोंसे तीनों विद्या

सनातन दण्डनीति न्याय विद्या आत्मविद्या अर्थात् परमात्माके गुण कर्म स्वभावरूपको यथावत् जाननेरूप ब्रह्मविद्या और छोकसे वार्ता-छोंका आरम्भ (कहना और पूछना) सीखकर सभासद् वा सभा-पति होसकें।। १।।

सब सभासद् और सभापित इन्द्रियोंको जीतने अर्थात् अपने बशमें रखके सदा धर्ममें वर्ता और अर्थमसे हटे हटाए रहें इसिट्यि रात दिन नियत समयमें योगाभ्यास भी करते रहें क्योंकि जो जिते-न्द्रिय कि अपनी इन्द्रियों (जो मन, प्राण और शरीर प्रजा है इस ) को जीते विना बाहरकी प्रजाको अपने वशमें स्थापन करनेको समर्थ कभी नहीं हो सकता ॥ २ ॥

टड़ोत्साही होकर जो कामसे दश और क्रोधसे आठ दुष्ट व्यसन ,
 कि जिनमें फंसा हुआ मनुष्य कठिनतासे निकउ सके उनको प्रयक्षसे
 छोड़ और झुड़ा देवे ।। ३ ।।

क्योंकि जो राजा कामसे उत्पन्न हुए दश दुष्ट व्यसनोंमें फंसता है वह अर्थ अर्थात् राज्य धनादि और धमसे रहित होजाता है और जो क्रोधसे उत्पन्न हुए आठ बुरे व्यसनोंमें फंसता है वह शरीरसे भी रहित होजाता है ॥ ४॥

कामसे उत्पन्न हुए व्यसन गिनाते हैं देखों — मृगया खेळना (अक्ष्र) अर्थात् चौपड़ खेळना जुआ खेळनादि, दिनमें सोना, कामकथा वा दूसरेकी निन्दा किया करना, खियोंका अति संग मादक द्रव्य अर्थात् मद्य, अफीम, भांग, गांजा, चरस आदिका सेवन, गाना, बजाना, नाचना वा नाच कराना सुनना और देखना, वृथा इधर उधर घूमते रहना, ये दश कामोत्पन्न व्यसन हैं ॥ १॥

क कोधसे उत्पन्न व्यसनोंको गिनाते हैं—"पैशुन्यम्" अर्थात् चुगळी करना, विना विचारे बळात्कारसे किसीकी खी से बुरा काम करना, द्रोह रखना, ईर्ष्या, अर्थात् दूसरेकी बड़ाई वा उन्नति देखकर जला करना, "असूया" दोषोंमें गुण, गुणोंमें दोषारोपण करना, "अर्थदूषण" अर्थात् अर्थामयुक्त बुरे कार्मोमें धनादिका व्यय करना, कठोर वचन बोलना और विना अपराध कड़ा वचन वा विशेष दण्ड देना ये आठ दुर्गुण कोधसे उत्पक्ष होते हैं॥ ६॥

जो सब विद्वान् छोग कामज और क्रोधजोंका मूल जानते हैं कि जिससे वे सब दुर्गुण मनुष्यको प्राप्त होते हैं उस छोमको प्रयत्नसे छोड़े ।। ७॥

कामके व्यसनोंमें बड़े दुर्गुण एक मद्यादि अर्थात् मदकारक द्रव्योंका सेवन, दूसरा पासों आदिसे जुआ खेलना, तीसरा स्त्रियोंका विशेष सङ्ग, चोथा मृगया खेलना ये चार महादुष्ट व्यसन हैं।। ८।।

स्रोर क्रोधजोंमें विना अपराध दण्ड देना, कठोर वचन बोल्ना स्रोर धनादिका अन्यायमें खर्च करना ये तीन क्रोधसे उत्पन्न हुए बड़े दु:खदायक दोप हैं।। ह।।

जो ये ७ दुर्गुण दोनों कामज और क्रोधज दोषोंमें गिन हैं इनमें से पूर्व २ अर्थात् व्यर्थ व्ययसे कठोर वचन, कठोर वचनसे [अन्याय] अन्यायसे दण्ड देना, इससे मृगया खेळना, इससे स्त्रियों का अत्यन्त सङ्ग, इससे जुआ अर्थात् ग्रुत करना और इससे भी मद्यादि सेवन करना बड़ा दुष्ट व्यसन है ॥ १०॥

इसमें यह निश्चय है कि दुष्ट व्यसनमें फंसनेसे मर जाना अच्छा है क्योंकि जो दुष्टाचारी पुरुष है वह अधिक जियेगा तो अधिक २ पाप करके नीच २ गित अर्थात अधिक २ दुःखको प्राप्त होता जायगा झौर जो किसी व्यसनमें नहीं फंसा वह मर भी जायगा तो भी सुखको प्राप्त होता जायगा इसलिये विशेष राजा और सब मनुष्योंको उचित है कि कभी मृगया और मद्यपानादि दुष्ट कामोंमें न फेंस और दुष्ट व्यसनोंसे प्रथक् होकर धर्मयुक्त गुण कर्म खभावोंमें सदा वर्राके अच्छे अम किया करें।। ११।।

राजसभासद् और मंत्री कैसे होने चाहियें:---

मौलान् ज्ञास्त्रविदः शूराँक्लब्धलक्षान् कुलोद्गतान्। सचिवान्सस चाष्टौ वा प्रकुर्वीत परीक्षितान् ॥१॥ अपि यत्सुकरं कर्म तदप्येकेन दुष्करम्। विशेषतोऽसहायेन किन्तु राज्यं महोदयम्॥२॥ तैः सार्द्धं चिन्तयेन्नित्यं सामान्यं सन्धिविग्रहम्। स्थानं समुद्रयं गुप्तिं लब्धप्रशामनानि च ॥३॥ तेषां स्वं स्वमभित्रायसुपलभ्य पृथक् पृथक्। समस्तानाश्च कार्येषु विद्ध्याद्वितमात्मनः ॥४॥ अन्यानपि प्रकुर्वीत शुचीन प्रज्ञानवस्थितान्। सम्यगर्थसमाहर्ते नमात्यान्सुपरीक्षितान् ॥५॥ निवर्त्तास्य यावद्भिरिति कर्तव्यता रुभिः। ताबतोऽतन्द्रितान् दक्षान् प्रक्ववीत विचक्षणान् ।६। तेषामर्थे नियुञ्जीत शूरान् दक्षान् कुलोद्गतान्। श्चीनाकरकर्मान्ते भीरूनन्तर्निवेदाने ॥७॥ दृतं चैव प्रकुर्वीत सर्वशास्त्रविशारदम्। इङ्गिताकारचेष्टज्ञं शुचिं दक्षं क्रलोद्गतम् ॥८॥ अनुरक्तः शुचिर्दक्षः स्मृतिमान् देशकालवित्। षपुष्मान्वीतभीर्वाग्मी दृतो राज्ञः प्रशस्यते ॥६॥

मनु० [ ७ ॥ ५४—५७ । ६०—६४ ]

स्वराज्य स्वदेशमें उत्पन्न हुए, वेदादि शास्त्रोंके जाननेवाले, शूरवीर, जिनका लक्ष्य अर्थात् विचार निष्फल न हो और कुळीन, अच्छे प्रकार सुपरीक्षित, सात व आठ उत्तम धार्मिक चतुर "सचि-वान" अर्थान मंत्री करे ।। १ ।।

क्योंकि विशेष सहायके वि ग जो सुगम कर्म है वह भी एकके करनेमें कठिन होजाता है जब ऐसा है तो महान् राज्यकर्म एकसे कैसे हो सकता है ? इसलिये एकको राजा और एककी बुद्धि पर राज्यके कार्यका निभर रखना बहुत ही बुरा काम है।।२।।

इससे सभापितको उचित है कि नित्यप्रित उन राज्यकमों कुश्छ विद्वान मिन्त्रयों के साथ सामान्य करके किसीसे (सिन्ध) मित्रता किसीसे (विषड़) विरोध (स्थान) स्थिति समयको देखके चुपचाप रहना अपने राज्यकी रक्षा करके बैठे रहना (समुद्रयम्) जब अपना उद्य अर्थात् वृद्धि हो तब दुष्ट शत्रु पर चढ़ाई करना (गुप्तिम्) मूछ राजसेना कोश आदिकी रक्षा (छब्धप्रशमनानि) जो २ देश प्राप्त हो उस २ में शान्तिस्थापन उपद्रवरहित करना इन छः गुणोंका विचार नित्यप्रति किया करें।। ३।।

विचारसे करना कि उन सभासदोंका पृथक् २ अगनः २ विचार और अभिपायको सुनकर बहुक्क्षानुसार कार्योमें जो कार्य अपना और अन्यका हितकारक हो वह करने लगना ॥ ४॥

अन्य भी पवित्रात्मा, बुद्धिमान, निश्चितबुद्धि, पदार्थीके संप्रह करनेमें अतिचतुर, सुपरीक्षित मन्त्री करे।। १।।

जितने मनुष्योंसे राज्यकार्य्य सिद्ध होसकें उतने आलस्यरहित बल्दान् और बढ़े २ चतुर प्रधान पुरुषोंको अधिकारी अर्थात् नौकर करे।। ६॥

इनके आधीन शूरवीर बलवान् कुलोत्पन्न पवित्र भृत्योंको बड़े २ कर्मोमें और भीरू डरनेवालोंको भीतरके कर्मोमें नियुक्त करे।।।।।

जो प्रशंसित कुळमें उत्पन्न चतुर, पवित्र, हावभाव और चेष्टासे भीतर हृदय और भविष्यत्में होनेवाळी बातको जाननेहारा सब शास्त्रोंने विशारद चतुर है, उस दूतको भी रक्खे ॥ ८॥ वह ऐसा हो कि राज काममें अत्यन्त उत्साह प्रीतियुक्त, निष्कपटी, पिवत्रात्मा, चतुर, बहुत समयकी बातको भी न भूलनेवाला, देश और कालानुकूल वर्तमानका कर्ता सुन्दर रूपयुक्त, निर्भय और बड़ा वक्ता हो वही राजाका दूत होनेमें प्रशस्त है। १।

किस २ को क्या २ अधिकार देना योग्य है:-अमात्ये दण्ड आयत्तो दण्डे वैनयिकी किया। न्रपती क्रोदाराष्ट्रे च दृते सन्धिविपर्ययौ ॥१॥ दूत एव हि संधत्ते भिनत्त्येव च संहतान्। इतस्तत्क्ररुते कर्म भिद्यन्ते येन वा न वा ॥२॥ बुद्ध्वा च सर्वं तत्त्वेन परराजचिकीर्षितम्। तथा प्रयत्नमातिष्ठेद्यथात्मानं न पीडयेत् ॥३॥ धनुदुंभी महोदुर्गमञ्दुर्ग वाक्षमेव वा। नृ-दुर्गं गिरिदुर्गं वा समाश्रित्य वसेत्पुरम् ॥४॥ एकः शतं योधयति प्राकारस्थो धनुर्धरः। श्वतं दश सहस्राणि तस्मादृदुर्गं विधीयते ॥५॥ तत्स्यादायुधसम्पन्नं धनधान्येन वाहनैः। ब्राह्मणैः शिल्यिभिर्यन्त्रैयवसेनोदकेन च ॥६॥ तस्य मध्ये सुपर्याप्तं कारयेद्गृहमात्मनः। गुप्तं सर्वेर्त्तुकं शुश्रं जलबृक्षसमन्वितम् ॥७॥ तद्ध्यास्योद्धहेद्भार्यां सवर्णां लक्षणान्वितान्। कुले महित सम्भूतां हृचां रूपगुणान्विताम् ॥二॥ पुरोहितं प्रकुर्वीत वृणुयादेव चर्त्विजम् ।

## तेऽस्य गृह्याणि कर्माणि कुर्य्युवें तानि कानि च ।ह।

मनु ि ।। ६४। ६६। ६८। ७०। ७४-७८ ]

अमात्यको दण्डाधिकार, दण्डमें विनय क्रिया अर्थात जिससे अन्यायरूप दण्ड न होने पावे, राजाके आधीन कोश और राजकार्य तथा सभाके आधीन सब कार्य्य और दूतके आधीन किसीसे मेल बा विरोध करना अधिकार देवे ॥ १॥

द्त उसको कहते हैं जो फूटमें मेल और मिले हुए दुष्टोंको फोड़ तोड़ देवे । दूत वह कर्म करे जिससे शत्रुओं में फूट पड़े ॥ २ ॥

वह सभापति और सब सभासद् वा दूत आदि यथार्थसे दूसरे विरोधा राजाके राज्यका अभिप्राय जानके वैसा प्रयत्न करे कि जिस-से अपनेको पीडा न हो।। ३।।

इसलिये सुन्दर जङ्गल धन धान्ययुक्त देशमें (धनुर्दुर्गम्)धनु-र्धारी पुरुषोंसे गहन ( महीदुर्गम् ) मट्टीसे किया हुआ ( अन्दुर्गम् ) जलसे घेरा हुआ (वार्क्षम्) अर्थीत् चारों ओर वन ( नृदुर्गम् ) चारों ओर सेना रहें ( गिरिदुर्गम् ) अर्थात् चारों ओर पहाड़ोंके बीचमें कोट बनाके इसके मध्यमें नगर बनावे ॥ ४ ॥

और नगरके चारों ओर (प्राकार) प्रकोट बनावे, क्योंकि उसमें स्थित हुआ एक वीर धनुर्धारी शस्त्रयुक्त पुरुष सौके साथ और सौ दश हजारके साथ युद्ध कर सकते हैं इसिंख्ये अवश्य दुर्गका बनाना डचित है।। ५॥

वह दुर्ग शस्त्रास्त्र, धन, धान्य, वाहन, ब्राह्मण जो पढ़ाने उपदेश करनेहारे हों (शिल्पि) कारीगर, यन्त्र नाना प्रकारकी कला, (यवसेन) चारा घास और जल आदिसे सम्पन्न अर्थात् परिपूर्ण हो ॥ ६ ॥

उसके मध्यमें जल वृक्ष पुष्पादिक सब प्रकारसे रक्षित सब मृतु-भोंमें सुखकारक श्वेतवर्ण अपने लिये घर जिसमें सब राजकार्यका निर्वाह हो वैसा बनवावे ॥ ७॥

इतना अर्थात् ब्रह्मचर्यसे विद्या पढ़के यहांतक राजकाम करके पश्चात् सौन्दर्य्यरूप गुणयुक्त इदयको अतिविय बड़े उत्तम कुरुमें उत्प-न्न सुन्दर रुक्षणयुक्त अपने क्षत्रियकुरुकी कन्या जो कि अपने सदश विद्यादि गुण कर्म स्वभावमें हो उस एक ही स्त्रीके साथ विवाह करे दूसरी सब स्त्रियोंको अगम्य समम्त कर दृष्टिसे भी न देखे॥ ८॥

पुरोहित और श्रृत्विज्का स्वीकार इसिल्ये करे कि वे अग्निहोत्र और पक्षेष्टि आदि सब राजघरके कर्म किया करें और आप सर्वदा राजकार्यमें तत्पर रहे अर्थात् यही राजाका सन्ध्योपासनादि कर्म है जो रात दिन राजकार्य्यमें प्रवृत्त रहना और कोई राजकांम बिगड़ने न देना।। ह॥

सांवत्सरिकमाप्तैश्च राष्ट्रदाहारयेद्वलिम्।
स्याचाम्नायपरो लोके वर्तेत पितृवन्नृषु ॥१॥
अध्यक्षान् विविधान् कुर्यात् तत्र तत्र विपश्चितः।
तेऽस्य सर्वाण्यवेक्षेरन्नृणां कार्याणि कुर्वताम् ॥२॥
आवृत्तानां गुरुकुलाद्विप्राणां पूजको भवेत्।
नृपाणामक्षयो द्येष निधिर्व्याद्यो विधीयते ॥३॥
समोत्तमाधमै राजा त्वाहृतः पालयन् प्रजाः।
न निवर्तेत संग्रामात् क्षात्रं धर्ममनुस्मरन् ॥४॥
आह्वेषु मिथोऽन्योन्यं जिघांसन्तो महीक्षितः।
युध्यमानाः परं शक्त्या स्वर्गं यान्त्यपरांसुखाः।॥
न च हन्यात्स्यलारूढं न क्षीवं न कृताञ्जलिम्।
न सुक्तं न विसन्नाहं न नग्नं न निरायुधम्।

नायुध्यमानं पश्यन्तं न परेण समागतम् ॥७॥
नायुध्यसनं प्राप्तं नार्तं नाति परीक्षितम् ।
न भीतं न परावृत्तं सतां धर्ममनुस्त्ररन् ॥८॥
यस्तु भीतः परावृत्तः संग्रामे हन्यते परैः ।
भर्त्तु पर्वदुष्कृतं किश्चित्तरसर्वं प्रतिपद्यते ॥६॥
यद्यास्य सुकृतं किश्चिद्यसुत्रार्थमुपार्जितम् ।
भर्ता तत्सर्वमादत्ते परावृत्तहतस्य तु ॥१०॥
रथास्वं हस्तिनं छत्रं धनं धान्यं पश्चित्रयः ।
सर्वद्रव्याणि कुप्यं चयो यज्ञयति तस्य तत् ।११।
राज्ञस्य दयु रुद्धारमित्येषा वैदिकी श्रुतिः ।
राज्ञा च सर्वयोधेभ्यो दातव्यमपृथिजतम् ॥१२॥
मनु० [७॥ ५०-५२ । ५७। ५६ । ६१-६७]

वार्षिक कर आप्तपुरुषोंके द्वारा प्रहण करे और जो सभापतिरूप राजा आदि प्रधान पुरुष हैं वे सब सभा वेदानुकूछ होकर प्रजाके साथ पिताके समान वर्ते ।। १।।

उस राज्यकार्यमें विविध प्रकारके अध्यक्षोंको सभा नियत करे इनका यही काम है जितने २ जिस २ काममें राजपुरुष हों वे निय-मानुसार वर्त कर यथावत् काम करते हैं वा नहीं जो यथावत् करें तो उनका सत्कार और जो विरुद्ध करें तो उनको यथावत् उण्ड किया करें ॥ २ ॥

सदा जो राजाओंका वेदप्रचाररूप अक्षय कोष है इसके प्रचारके ढिये जो कोई यथावत् ब्रह्मचर्यसे वेदादि शास्त्रोंको पढ़कर गुरुकुळसे बाबे बनका सत्कार राजा और सभा यथावत् करें तथा उनका भी जिनके पढ़ाये हुये विद्वान होवें ।। ३ ॥

इस बातके करनेसे राज्यमें विद्याकी उन्नति होकर अत्यन्त उन्नति होती है जब कभी प्रजाका पालन करने वाले राजाको कोई अपनेसे छोटा, तुल्य और उत्तम संप्राममें आह्वान करे तो क्षत्रियोंके धर्मका स्मरण करके संप्राममें जानेसे कभी निवृत्त न हो अर्थात् बड़ी चतु-राईके साथ उनसे युद्ध करे जिससे अपना ही विजय हो।। ४।।

जो संप्रामोंमें एक दूसरेको इनन करनेकी इच्छा करते हुए राजा छोग जितना अपना सामर्थ्य हो विना डर पीठ न दिखा युद्ध करते हैं वे सुखको प्राप्त होते हैं इससे विमुख कभी न हो, किन्तु कभी र शत्रुको जीतनेके लिये उनके सामनेसे छिप जाना उचित है क्योंकि जिस प्रकारसे शत्रुको जीत सके वेसे काम करें जैसा सिंह कोधसे सामने आकर शस्त्राग्निमें शीव्र भस्म होजाता है वैसे मूर्खतासे नष्ट भ्रष्ट न हो जावें।। १।।

युद्ध समयमें न इधर उधर खड़े, न नपुन्सक, न हाथ जोड़े हुए, न जिसके शिरके वाल खुल गये हों, न बैठे हुए, न "में तेरे शरण हुं" ऐसेको ॥ ६ ॥

न सोते हुए, न मूर्छाको प्राप्त हुए, न नग्न हुए, न आयुघसे रहित म युद्ध करते हुओंको देखने वालों, न शत्रुके साथी ॥ ७ ॥

न आयुर्धके प्रहारसे पीड़ाको प्राप्त हुए, न दुःखी न अत्यन्त घायल, न डरे हुए ओर न पलायन करते हुए पुरुषको, सत्पुरुषोंके धर्मका स्मरण करते हुए योद्धा लोग कभी मारें किन्तु उनको पकड़ के जो अच्छे हों बन्दीगृहमें रखदे ओर भोजन आच्छादन यथावत् देवे और जो घायल हुए हों उनकी औषधादि विधिपूर्वक करे। न उनको चिढ़ावे न दुःख देवे। जो उनके योग्य काम हो करावे। विशेष इस पर ध्यान रक्खे कि स्त्री, बालक, बृद्ध और आतुर तथा शोक-युक्त पुरुषों पर शक्ष कभी न चलावे। उनके लड़के बालोंको अपने सन्तानवत् पाले और स्त्रियोंको भी पाले। उनको अपनी बहिन और कन्याके समान समभे, कभी विषयासक्तिकी दृष्टिसे भी न देखे। जब राज्य अच्छे प्रकार जम जाय और जिनमें पुनः २ युद्ध करनेकी शक्का न हो उनको सत्कारपूर्वक छोड़ कर अपने २ घर वा देशको भेज देवे बौर जिनसे भविष्यत् कालमें विष्त होन। सम्भव हो उनको सदा कारागारमें रक्खे ॥ ८॥

स्रोर जो पढ़ायन अर्थात् भागे और डरा हुआ भृत्य शत्रुओंमें मारा जाय वह उस स्वामीके अपरायको यात होकर दण्डनीय होवे।।ह।।

स्रोर जो उसकी प्रतिष्ठा है जिससे इस लोक सौर परलोकमें सुख होनेवाला था उसको उसका स्वामी ले लेता है जो भागा हुआ मारा जाय उसको कुछ भी सुख नहीं होता उसका पुण्यफल सब नष्ट हो जाता स्रोर उस प्रतिष्ठाको वह प्राप्त हो जिसने धर्मसे यथावत युद्ध किया हो ॥ १०॥

इस व्यवस्थाको कभी न तोड़े कि जो २ लड़ाईमें जिस जिस भूत्य वा अध्यक्षने रथ, घोड़े, हाथी, छत्र, धन, धान्य, गाय आदि पशु और स्त्रियाँ तथा अन्य प्रकारके सब द्रव्य और घी, तेल आदिके कुप्पे जीते हों बही उसका प्रहण करे॥ ११॥

परन्तु सेनास्थ जन भी उन जीते हुए पदार्थों मेंसे सोलहवां भाग राजाको देनें और राजा भी सेनास्थ योद्धाओं को उस धनमेंसे जो सबने मिलके जीता हो, सोलहवां भाग देवें। और जो कोई युद्धमें मर गया हो उसकी स्त्री और सन्तानको उसका भाग देवे उसकी स्त्री तथा असमर्थ लड़कों का यथावत् पालन करे। जब उसके लड़के समर्थ हो जावे तब उनको यथायोग्य अधि कार देवे। जो कोई अपने राज्यकी वृद्धि, प्रतिष्ठा, विजय और आनन्दशृद्धिकी इच्छा रखता हो वह इस मर्थ्यादाका उल्लंघन कभी न करे।। १२।।

अलब्धं चैव लिप्सेत लब्धं रक्षेत्प्रयक्षतः। रक्षितं बद्धं येचैव वृद्धं पात्रे षु निःक्षिपेत् ॥१॥

अलब्धमिच्छेद्दण्डेन लब्धं रक्षेद्रवेक्षया। रक्षितं वद्धेयेद् वृद्ध्या वृद्धं दानेन निःक्षिपेत् ।२। अमाययैव वर्त्तेत न कथंचन मायया। बुध्येतारिप्रयुक्तां च मायान्नित्यं स्वसंवृतः ॥३॥ नास्य छिद्रं परो विद्याच्छिद्रं विद्यात्परस्य तु। गृहेत्कूर्म इवाङ्गानि रक्षेद्विवरमात्मनः ॥४॥ वकविबन्तयेदर्थान् सिंहवच पराक्रमेत्। वृकवबावलुम्पेत दादावच विनिष्पतेत् ॥५॥ एवं विजयमानस्य येऽस्य स्युः परिपन्धिनः। तानानयेद्वद्यां सर्वान् समादिभिरुपक्रमैः ॥६॥ पथोद्धरति निर्दाता कक्षं धान्यं च रक्षति। तथा रक्षेन्द्रपो राष्ट्रं ह्रन्याच्च परिपन्थिनः ॥७॥ मोहाद्राजा स्वराष्ट्रं यः कर्षयत्यनवेक्षया। सोऽचिराद्भ्रश्यते राज्याजीविताच्य सवान्धवः। 🛋 शरीरकर्षणात्प्राणाः श्लीयन्ते प्राणिनां यथा। तथा राज्ञामपि प्राणाः क्षीयन्ते राष्ट्रकर्षणात् ।हा राष्ट्रस्य संग्रहे नित्यं विधानमिद्माचरेत्। सुसंग्रहीतराच्ट्रो हि पार्थिवः सुखमेधते ॥१०॥ द्वयोस्त्रयाणां पश्चानां मध्ये गुल्ममधिष्ठितम् । तथा ग्रामशतानां च कुर्याद्वाष्ट्रय संत्रहम् ॥१२॥

ग्रामस्याधिपतिं कुर्याददाग्रामपतिं तथा। विंदातीशं शतेशं च सहस्रपतिमेव च ॥१२॥ ग्रामे दोषान्समुत्पन्नान् ग्रामिकः शनकैः स्वयम् । शंसेद् ग्रामददोशाय दहोशो विंशतीशिनम् ।१३। विंज्ञतीज्ञास्त् तत्सर्वं ज्ञातेज्ञाय निवेद्येत्। शंसेद ग्रामशतेशस्तु सहस्रपतये स्वयम् ॥१४॥ तेषां ग्राम्याणि कार्याणि पृथक्कार्याणि चैव हि। राज्ञोऽन्यः सचिवः स्निग्धस्तानि पश्येदतनिद्रतः।१५। नगरे नगरे चैकं क्यर्यात्सर्वार्थचिन्तकम्। उच्चै: स्थानं घोररूपं नक्षत्राणामिव ग्रहम् ॥१६॥ स ताननुपरिकामेत्सर्वानेव सदा स्वयम्। तेषां वृत्तं परिणयेत्सम्यग्राब्ट्रेषु तच्चरैः ॥१७॥ राज्ञो है रक्षाधिकृताः परस्वादायिनः शठाः। भृत्या भवन्ति प्रायेण तेभ्यो रक्षेद्धिमाः प्रजा ।१८। ये कार्यिकेभ्योऽर्थमेव गृह्वीयुः पापचेतसः। तेषां सर्वस्वमादाय राजा क्रुयीत्प्रवासनम् ॥१६॥

मतु० [७॥ ६६ । १०१। १०४-१०७। ११०-११७। १२०-१२४] राजा और राजसभा अलब्धकी प्राप्तिकी इच्छा प्राप्तकी प्रयत्नसे रक्षा करे, रक्षितको बढ़ावे और बढ़े हुए धनको वेद्विद्या, धर्मका अचार, विद्यार्थी, वेदमार्गीपदेशक तथा असमर्थ अनार्थोके पालनमें खगावे॥ १॥

इस चार प्रकारके पुरुषार्थके प्रयोजनको जाने । आखस्य छोड्कर

इसका भळीभांति नित्य अनुष्ठान करे। दण्डसे अप्राप्तकी प्राप्तिकी इच्छा, नित्य देखनेसे प्राप्तकी रक्षा, रक्षितकी वृद्धि अर्थान् व्याजादिसे बढ़ावे और बढ़े हुए धनको पूर्वोक्त मार्गमें नित्य व्यय करे॥ २॥

कदापि किसीके साथ छलेसे न बर्ते किन्तु निष्कपट होकर सबसे वर्त्ताव रक्खे और नित्यप्रति अपनी रक्षा करके शत्रुके किये हुए छलको जानके निरुत्त करे॥ ३॥

कोई रात्र अपने छिद्र अर्थात् निंबळताको न जान सके और स्वयं रात्रुके छिद्रोंको जानता रहे जैसे कह्नुआ अपने अङ्गोंको गुप्त रखता है वैसे रात्रुके प्रवेश करनेके छिद्रको गुप्त रक्खे ॥ ४ ॥

जैसे बगुळा ध्यानावस्थित होकर मच्छके पकड़नेको ताकता है वैसे अर्थसंप्रहका विचार किया करे, द्रव्यादि पदार्थ और बलकी वृद्धि कर शत्रुको जीतनेक लिये सिंहके समान पराक्रम करे, चीताके समान छिपकर शत्रुकोंको पकड़े और समीपमें आये बलतान् शत्रुओंसे सस्साके समान दूर भाग जाय और पश्चात् उनको छलसे पकड़े।।४॥

इस प्रकार विजय करनेवाले सभापतिके राज्यमें जो परिपन्थी अर्थात डाकू छुटेर हों उनको (साम) मिला लेना (दाम) कुछ देकर (भेद) फोड़ तोड़ करके वशमें करें और जो इनसे बशमें न हों तो अतिकठिन दंडसे वशमें करें ॥ ६॥

जैसे धान्यका निकालने वाला छिलकोंको अलग कर धान्यकी रक्षा करता अर्थात् टूटने नहीं देता है वैसे राजा डाकू चोरोंको मारे और राज्यकी रक्षा करे ॥ ७॥

जो राजा मोहसे, अविचारसे अपने राज्यको दुर्वछ करता है वह राज्य और अपने बन्धु सहित जीवनसे पूर्व ही शीघ नष्ट भ्रष्ट हो जाता है॥ ८॥

जैसे प्राणियोंके प्राण शरीरोंको कृषित करनेसे क्षीण हो जाते हैं वैसे ही प्रजाओंको दुर्बल करनेसे राजाओंके प्राण अर्थात् बलादि बन्धुसहित मछ होजाते हैं।। ह।। इसिंख्ये राजा और राजसभा राजकार्य्यकी सिद्धिके लिये ऐसा प्रयत्न करें कि जिससे राजकार्य्य यथावत् सिद्ध हों जो राजा राज्य-पालनमें सब प्रकार तत्पर रहता है उसको सुख सदा बढ़ता है।।१०।।

इसिलये दो, तीन, पांच और सौ प्रामोंके बीचमें एक राज्यस्थान रक्खे जिसमें यथायोग्य भृत्य अर्थात् कामदार आदि राजपुरुषों को रखकर सब राज्यके कार्योको पूर्ण करे।। ११।।

एक २ प्राममें एक २ प्रधान पुरुषको रक्खे उन्हीं दश प्रामोंके ऊपर दूसरा, उन्हीं बीस प्रामोंके ऊपर तीसरा, उन्हीं सौ प्रामोंके ऊपर चौथा और उन्हीं सहस्र प्रामोंके ऊपर पांचवां पुरुष रक्खे अर्थात जैसे आजकुछ एक प्राममें एक पटवारी, उन्हीं दश प्रामोंमें एक थाना और दो थानों पर एक बड़ा थाना और उन पांच थानों पर एक सहस्सीछ और दश तहसीछों पर एक जिला नियत किया है यह वहीं अपने मनु आदि धर्मशास्त्रसे राजनीतिका प्रकार छिया है ॥ १२॥

ै इसी प्रकार प्रबन्ध करे और आज्ञा देवे कि वह एक २ प्रामोंका पति प्रामोंमें नित्यप्रति जो जो दोष उत्पन्न हों उन २ को गुप्ततासे दश प्रामके पतिको विदित करदे और वह दश प्रामाधिपति उसी प्रकार बीस प्रामके स्वामीको दश प्रामोंका वर्त्तमान नित्यप्रति जना देवे ॥१३॥

और बीस प्रामोंका अधिपति बीस प्रामोंके वर्तमानको शतप्रामा-धिपतिको नित्यप्रति निवेदन करे वैसे सो २ प्रामोंके पति आप सहस्रा-धिपति अर्थात् हज़ार प्रामोंके स्वामीको सो २ प्रामोंके वर्तमानको प्रतिदिन जनाया करें। और बीस २ प्रामके पांच अधिपति सो सो प्रामके अध्यक्षको और वे सहस्र २ के दश अधिपति दशसहस्रके अधि पतिको और ख्रुश्वामोंकी राजसभाको प्रतिदिनका वर्नमान जनाया करें और वे सब राजसभा महाराजसभा अर्थात् सार्वभौमचक्रवर्ति महारा-जसभामें सब भूगोळका वर्तमान जनाया करें।। १४।।

और एक २ दश २ सहस्र प्रामों पर दो सभापति वैसे करें जिन-में एक राजसभामें दूसरा अध्यक्ष आलस्य छोड़कर सब न्यायाधीशादि राजपुरुषोंके कामोंको सदा घूमकर देखते रहें ॥ १५॥

बहे २ नगरों में एक २ विचार करनेवाली सभाका सुन्दर उद्य और विशाल जैसा कि चन्द्रमा है वैसा एक २ घर बनावें उसमें बहे २ विद्यादृद्ध कि जिन्होंने विद्यासे सब प्रकारकी परीक्षा की हो वे बैठकर विचार किया करें जिन नियमोंसे राजा और प्रजाकी उन्नति हों वैसे २ नियम और विद्या प्रकाशित किया करें ॥ १६॥

जो नित्य घूमनेवाला सभापित हो उसके आधीन सव गुप्तचर धर्यात् दृतोंको रक्खे जो राजपुरुष और भिन्न २ जातिके रहें उनसे सब राज और प्रजापुरुषोंके सब दोष और गुण गुप्तरीतिसे जाना करे जिनका अपराध हो उनको दंड और जिनका गुण हो उनकी प्रतिष्ठा सदा किया करे॥ १७॥

राजा जिनको प्रजाकी रक्षाका अधिकार देवे वे धार्मिक सुपरी-श्चित विद्वान कुळीन हों उनके आधीन प्रायः शठ और परपदार्थ हरने-बाठे चोर डाक्नुओंको भी नौकर रखके उनको दुष्ट कर्मसे बचानेके ळिये राजाके नौकर करके उन्हीं रक्षा करनेवाळे विद्वानोंके स्वाधीन करके उनसे इस प्रजाकी रक्षा यथावत् करे॥ रू ॥

जो राजपुरुष अन्यायसे वादी प्रतिवादीसे गुप्त धन लेके पक्षपातसे अन्याय करे उसका सर्वस्वहरण करके यथायोग्य दण्ड देकर ऐसे देशमें रक्खे कि जहांसे पुनः लोटकर न आसके क्योंकि यदि उसकी दण्ड न दिया जाय तो उसको देखके अन्य राजपुरुष भी ऐसे दुष्ट क म करें और दण्ड दिया जाय तो बचे रहें, परन्तु जितनेसे उन राजपुरुषोंका योगक्षेम भीमांति हो और वे मलीमांति धनाल्य भी हों उतना धन वा भूमि राज्यको ओरसे मासिक वा वार्षिक अथवा एक वार मिला करे और जो बुद्ध हों उनको भी आधा मिला करे परन्तु यह ध्यानमें रक्खें कि जवतक वे जियें तवतक वह जीविका बनी रहें पश्चान नहीं, परन्तु इनके सन्तानोंका सत्कार वा नौकरी उनके गुणके अनुसार अवश्य देवे। और जिसके बालक जवतक समर्थ हों और

उनकी स्त्री जीती हो तो उन सबके निर्वाहार्थ राजकी ओरसे यथा-योग्य धन मिला करे परन्तु जो उसकी स्त्री वा लडके क्षकर्मी हो जाये तो कुछ भी न मिले ऐसी नीति राजा बराबर रक्खे ॥ १६ ॥ यथा फलेन युज्येत राजा कर्त्ता च कर्मणाम । तथावेक्ष्य नृषो राष्ट्रे करुपयेत्सततं करात् ॥१॥ यथाल्पाऽल्पमदन्खाऽऽद्यं वार्य्योकोवत्सषट्पदाः। तथाऽल्पाऽल्पो ग्रहीतव्यो राष्ट्राद्वाज्ञान्दिकः करः।२। नोच्छिन्दादात्मनो मूलं परेषां चातितृष्णया। उच्छिन्दन्ह्यात्मनो मूलमात्मानं तांश्च पीडयेत् ॥३॥ तीक्ष्णश्चैव मृद्श्च स्यात्कार्यं वीक्ष्य महीपतिः। तीक्ष्णश्चैव मृद्श्चैव राजा भवति सम्मतः ॥४॥ एवं सर्व विधायेदमिति कर्त्र व्यमात्मनः। युक्तश्चैवाप्रमत्तश्च परिरक्षेदिमाः प्रजाः ॥५॥ ्विकोज्ञान्त्यो यस्य राष्ट्रादुध्रियन्ते दस्युभिः प्रजाः। सम्परयतः सभृत्यस्य मृतः स न तु जीवति ॥६॥ क्षत्रियस्य परो धर्मः प्रजानामेव पालनम् । निर्दिष्टफलभोक्ता हि राजा धर्मेण युज्यते ॥०॥

मनु० [ ७ ॥ १२८ । १२६ । १४१ । १४१ - १४४ ]

जैसे राजा और कर्मोंका कर्ता राजपुरुष वा प्रजाजन सुखरूप फळसे युक्त होने नैसे विचार करके राजा तथा राजसभा राज्यमें कर स्थापन करे॥ १॥

जैसे जोंक बछड़ा ब्लीर भवरा थोड़े २ भोग्य पदार्थको प्रहण

करते हैं वैसे राजा प्रजासे थोड़ा २ वार्षिक कर लेवे ॥ २ ॥

अतिलोभसे अपने वा इसरों के सुखके मूलको उच्छिन्न अर्थात् नष्ट कहापि न करे क्यों कि जो व्यवहार और सुखके मुलका छेदन करता है वह अपने [को] और उन हो पीड़ा हो देता है ॥ ३ ॥

जो महीपित कार्य्यको देखके नीक्ष्ण और कोमल भी होवे वह दुष्टों पर तीक्ष्ण और श्रेष्ठों पर कोमल रहनेसे राजा अतिमाननीय होता है॥ ४॥

इस प्रकार सब राज्यका प्रबन्ध करके सदा इसमें युक्त और प्रमादरहित होकर अपनी प्रजाका पालन निरन्तर करे॥ ४॥

जिस भृत्यसिंहत देखते हुए राजाके राज्यमेंसे डाकू छोग रोती विद्याप करती प्रजाक पदार्थ और प्राणींको हरते रहते हैं वह जानी भृत्य अमात्यसिंहत मृतक है जीता नहीं और महा दुःखका पाने वाला है ॥ ६॥

इसलिये राजाओंका प्रजापालन करना ही परमधर्म है और जो मनुस्मृतिके सप्तमाध्यायमें कर लेना लिखा है और जैसा सभा नियत करे उसका भोका राजा धर्मसे युक्त होकर सुख पाता है इससे विपरीत दुःखको प्राप्त होता है।। ७।।

उत्थाय पश्चिमे यामे कृतदाीचः समाहितः । हुताग्निर्ज्ञास्मणाँश्चाच्च्यं प्रश्विदोत्स शुभां सभाम् ।१। तत्र स्थिताः प्रजाः सर्वाः प्रतिनन्द्य विसर्जयेत् । विस्रुज्य च प्रजाः सर्वा मन्त्रयेत्सह मन्त्रिभाः ॥२॥ १ गिरिष्टुष्ठं समारुद्य प्रासादं वा रहोगतः । अरण्ये निःदालाके वा मन्त्रयेदविभावितः ॥३॥ यस्य मन्त्रं न जानन्ति समागम्य प्रथाजनाः।

स कृत्स्नां प्रथिवीं भुंक्ते को दाही नोऽपि पार्थिवः । ४।

ं मनु• [७। १४५—१४८] जब पिछली प्रहर रात्रि रहे नव उठ शोच और सावधान होकर परमेश्वरका ध्यान अग्निहोत्र धार्मिक विद्वानोंक। सत्कार और भोजन करके भीतर सभामें प्रवेश करे ॥ १ ॥

वहां खड़ा रहकर जो प्रनाजन उपस्थित हों उनको मान्य दे और उनको छोडकर मुख्य मन्त्रीके साथ राज्यव्यवस्थाका विचार करे ॥२॥

पश्चात् उसकं साथ पूमनेको चला जाय पर्वतकी शिखर अथवा एकान्त घर वा जंगल जिसमें एक शलाका भी न हो वैसे एकान्त स्थानमें बैठकर विरुद्ध भावनाको छोड़ मन्त्रीके साथ विचार करे ॥३॥

जिस राजाके मृद्ध विचारको अन्य जन मिलकर नहीं जान सकते अर्थात् जिसका विचार गम्भीर शुद्ध परोपकारार्थ सदा गुप्त रहे वह धनहीन भी राजा सब पृथिवीक राज्य करनेमें समर्थ होता है इसलिये अपने मनसे एक भी काम न करे कि जबतक सभासदोंकी अनुमति न हो ॥ ४ ॥

आसनं चैव यानं च संधिं विग्रहमेव च। कार्यं वीक्ष्य प्रयुञ्जीत द्वौधं संश्रयमेव च ॥१॥ संधि त द्विविधं विद्याद्वाजा विग्रहमेव च। उमे यानासने चैव द्विविधः संश्रयः स्टृतः ॥२॥ समानयानकर्मा च विपरीतस्तथैव च। तथा त्वायतिसंयुक्तः संधिज्ञें यो द्विलक्षणः ॥३॥ स्वयंकृतश्च कार्यार्थमकाले काल एव वा। मित्रस्य चैवापकृते द्विविधो विग्रहः स्मृतः ॥४॥ एकाकिनश्चात्ययिके कार्ये प्राप्ते यद्दच्छया॥

संहतस्य च मित्रेण द्विविधं यानमुच्यते ॥५॥ क्षीणस्य चैव कमशो दैवात्पूर्वकृतेन वा। मित्रस्य चानुरोधेन द्विविधं स्मृतमासनम् ॥६॥ बलस्य स्वामिनश्चैव स्थितिः कार्यार्थसिद्धये। द्विविधं कीर्त्यते द्वैधं षाड्गुण्यगुणवेदिभिः॥॥॥ अर्थसंपादनार्थं च पीड्यमानः स रात्रुभिः। साधुषु व्यपदेशार्थं द्विविधः संश्रयः स्पृतः ॥८॥ यदावच्छेदायत्यामाधिक्यं ध्रुवमात्मनः। तदात्वे चाल्पिकां पीडां तदा सर्निध समाश्रयेत् ।ह। यदा प्रहृष्टा मन्येत सर्वास्तु प्रकृतीर्भृ शम्। अत्युच्छितं तथात्मानं तदा कुर्वीत विग्रहम्॥१०॥ यदा मन्येत भावेन हृष्टं पुष्टं बलं स्वकम् । परस्य विपरीतं च तदा यायाद्रिपं प्रति ॥११॥ यदा तु स्यात्परिश्लीणो वाहनेन बँछेन च। तदासीत प्रयत्नेन शनकैः सांत्वयन्नरीन् ॥१२॥ मन्येतारिं यदा राजा सर्वथा बलवत्तरम्। तदा द्विधा बलं कृत्वा साधयेत्कार्यमात्मनः ॥१३॥ यदा परबलानां तु गमनीयतमो भवेत्। तदा तु संश्रयेत् क्षिप्रं धार्मिकं बलिनं ऋपम्।१४। निग्रहं प्रकृतीतां च कुर्याचोरिषलस्य च।

सुयुद्धमेव तत्राऽपि निर्विशंकः समाचरेत् ॥१६॥

मनु [ ७॥ १६१-१७६ ]

सब राजादि राजपुरुषोंको यह बात रुक्ष्यमें रखने योग्य है जो (आसन) स्थिरता (यान) शत्रुसे रुड़नेके लिये जाना (सन्धी) उनसे मेल करलेना (विष्रह) दुष्ट शत्रुओंसे लड़ाई करना (द्वैथ०) दो प्रकारको सेना करके स्विवनय कर लेना और (संश्रय) निर्वलकतामें दूसरे प्रवल राजाका आश्रय लेना ये छः प्रकारके कम यथायोग्य कार्यको विचार कर उसमें युक्त करना चाहिये॥ १॥

राजा जो संधि, विष्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और संश्रय दो २ प्रकारके होते हैं उनको यथावत् जाने ॥ २ ॥

(सन्धि) शत्रुसे मेळ अथवा उससे विपरीतता करे परन्तु वर्त्त-मान और भविष्यत्में करनेके काम बराबर करता जाय यह दो प्रका-रका मेळ कहाता है ॥ ३॥

(विप्रह) कार्य्यसिद्धिके लिये उचित समय वा अनुचित समयमें स्वयं किया वा नित्रके अपराध करनेवाले शत्रुके साथ विरोध दो प्रकारसे करना चाहिये॥ ४॥

(यान) अकस्मात् कोई कार्य्य प्राप्त होनेमें एकाकी वा मित्रके साथ मिलके शत्रुकी ओर जाना यह दो प्रकारका गमन कहाता है ॥१। स्वयं किसी प्रकार कमसे क्षीया होजाय अर्थात् निंबल होजाय अथवा मित्रके रोकनेसे अपने स्थानमें बैठ रहना यह दो प्रकारका स्थासन कहाता है॥ ह॥

कार्य्यसिद्धिके लिये सेनापित और सेनाके दो विभाग करके विजय करना दो प्रकारका द्वैध कहाता है॥ ७॥

एक किसी अर्थकी सिद्धिके लिये किसी बलवान् राजा वा किसी

महात्माका शरण लेना जिससे शत्रुसे पीड़ित न हो दो प्रकारका बाश्रय लेना कहाता है ॥ 🖂 ॥

जब यह जान हे कि इस समय युद्ध करनेसे थोड़ी पीड़ा प्राप्त होगी आर पश्चात करनेसे अपनी वृद्धि और विजय अवश्य होगी तव शत्रसे मेल करके उचित समय तक घीरज करे ॥ ६ ॥

नव अपनी सव प्रजा वा सेना अत्यन्त प्रसन्न उन्नतिशील और श्रेष्ठ जाने, वैसे अपनेको भी समभे तभी शत्रुसे विषह (युद्ध ) कर छेवे ॥ १०॥

जब अपने वल अर्थात सेनाको हुष और पुष्टियुक्त प्रसन्न भावसे जाने और शत्रुका बल अपनेसे विपरीत निर्वल हो जावे तब शत्रुकी ध्योर युद्ध करनेके छिये जावे ॥ ११ ॥

जब सेना बल वाहनसे क्षीण होजाय तब शत्रुओंको धीरे २ प्रयत्न से शान्त करता हुआ अपने स्थानमें बैठा रहे॥ १२॥

जब राजा शत्रको अत्यन्त बलवान जाने तब द्विगुण वा दो प्रकार की सेना करके अपना कार्य सिद्ध करे।। १३॥

जब आप समम लेवे कि अब शीव शत्रुओंकी चढाई मुम्मपर होगी तभी किसी धार्मिक बलवान राजाका आश्रय शीव हे हेवे ॥१४॥

जो प्रजा और अपनी सेना शत्रुके वलका निप्रह करे अर्थात रोके उसकी सेवा सब यत्नोंसे गुरुके सदृश नित्य किया करे ॥ १४॥

जिसका आश्रय लेवे उस पुरुषके कर्मोंमें दोष देखे तो वहां भी अच्छे प्रकार युद्ध ही को निःशंक होकर करे।। १६॥

जो धार्मिक राजा हो उससे विरोध कभी न करे किन्तु उससे सदा मेल रक्खे और जो दुष्ट प्रवल हो उसीके जीतनेके लिये ये पूर्वोक्त प्रयोग करना उचित है।

सर्वोपायैस्तथा कुर्यान्नीतिज्ञः पृथिवीपति:। यथास्याभ्यधिका न स्युर्मित्रोदासीनशत्रवः ॥१॥ अतीते कार्यशेषज्ञः शत्रुभिर्नाभिभूयते ॥३॥ यथैनं नाभिसंदध्युर्मित्रोदासीनशत्रवः। तथा सर्वे संविदध्यादेष सामासिको नयः॥४॥

मनु [ ७॥ १७७-१८० ]

नीतिका जाननेवाला पृथिवीपति राजा जिस प्रकार इसके मित्र बदासीन (मध्यस्थ) और शहु अधिक न हों ऐसे सब उपायोंसे वर्ते ॥

सब कार्योका वर्तमानमें कर्त्तच्य और भविष्यत्में जो २ करन चाहिये और जो २ काम कर चुके उन सबके यथार्थतासे गुण दोषोंको विचार करे ॥ २ ॥

पश्चात् दोषोंके निवारण और गुणोंकी स्थिरतामें यन करे जो राजा भविष्यत् अर्थात् आगे करनेवाले कर्मोमें गुण दोषोंका ज्ञाता वर्तमानमें तुरन्त निश्चयका कर्ता और किये हुए कार्योमें शेष कर्तव्य को जानता है वह शहुओंसे पराजित कभी नहीं होता ।। ३ ।।

सब प्रकारसे राजपुरुष विशेष सभापति राजा ऐसा प्रयत्न कर कि जिस प्रकार राजादि जनोंके मित्र उदासीन और शङ्घको वशमें करके अन्यथा न करावे ऐसे मोहमें कभी न फँसे यही संक्षेपसे विनय अर्थात् राजनीति कहाती है।। ४।।

कृत्वा विधानं मूळे तु यात्रिकं च यथाविधि । उपगृह्यास्पदं चैव चारान् सम्यग्विधाय च ॥१॥ संशोध्य त्रिविधं मार्गं षड्विधं चं बलं स्वकम् । सांपरायिककल्पेन यायादरिपुरं शनैः ॥२॥

शात्रुसेविनि मित्रे च गुढे युक्ततरो भवेत्। गतप्रत्यागते चैव स हि कष्टतरो रिपुः ॥३॥ दण्डन्यूहेन तन्मार्गं यायात्तु शकटेन वा। वराहमकराभ्यां वा सूच्या वा गरुडेन वा ॥४॥ थतश्च भयमाञ्चंकेत्ततो विस्तारयेद बलम्। पदमेन चैव व्युहेन निविद्योत तदा स्वयम् ॥४॥ सेनापतिबलाध्यक्षो सर्वदिक्षु निवेदायेत्। यतश्च भयमाशंकेत् प्राचीं तां कल्पयेदिशम् ॥६॥ गुल्मांश्च स्थापयेदाप्तान् कृतसंज्ञान् समन्ततः। स्थाने युद्धे च क्रुञालानभीरूनविकारिणः ॥७॥ संहतान् योधयेदल्पान् कामं विस्तारयेद् बहून। सूच्या वज्रेण चैवैतान् व्यूहेन व्यूह्य योधयेत्॥८॥ स्यन्दनारवैः समे युध्येदनूपे नौद्विपैस्तथा। ष्ट्रक्षगुरुभाष्ट्रते चापैरसिचर्मायुधैः स्थले ॥६॥ प्रहर्षयेदु वलं व्युद्य तांश्च सम्यक् परीक्षयेत्। चेष्टाश्चैव विजानीयादरीन् योधयतामपि ॥१०॥ उपरुध्यारिमासीत राष्ट्रं चास्योपपीडयेत्। दूषयेच्चास्य सततं यवसान्नोद्कैन्धनम् ॥११॥ भिन्याच्चैव तडागानि प्राकारपरिखास्तथा। समवस्कन्दयेच्चैनं रात्रौ वित्रासयेत्तथा ॥१२॥

प्रमाष्मानि च कुर्वीत तेषां धर्म्यान्यथोदितान्। रत्नैश्च पूजयेदेनं प्रधानपुरुषैः सह ॥१३॥ आदानप्रप्रियकरं दानश्च प्रियकारकम्। अभीष्सितानामर्थानां काले युक्तं प्रशास्यते ॥१४॥

मतु० [ ७ ॥ १८४-१६२ । १६४-१६६ । २०३ । २०४] जब राजा शत्रुओंके साथ युद्ध करनेको जावे तब अपने राज्यकी रक्षाका प्रबन्ध और यात्राकी सब सामग्री यथाविधि करके सब सेना, यान, वाहन, शक्षास्तादि पूर्ण लेकर सर्वत्र दूतों अर्थात् चारों ओरके समाचारोंको देनेवाले पुरुषोंको गुप्त स्थापन करके शत्रुओंकी ओर युद्ध करनेको जावे ॥ १ ॥

तीन प्रकारके मार्ग अर्थात् एक स्थल (भूमि) में दूसरा जल (समुद्र वा नदियों) में तीसरा आकाशमार्गोको शुद्ध बनाकर भूमि-मार्गामें रथ, अश्व, हाथी, जलमें नौका और आकाशमें विमानादि यानों से जावे और पैदल, रथ, हाथी, घोड़े, शक्व और अक्व खानपानादि सामप्रीको यथावत् साथ ले बलयुक्त पूर्ण करके किसी निमित्तको प्रसिद्ध करके शत्वके नगरके समीप धीरे २ जावे ॥ २ ॥

जो भीतरसे शत्रुसे मिला हो और अपने साथ भी ऊपरसे मित्रता रक्के गुप्ततासे शत्रुको भेद देवे उसके आने जानेमें उससे बात करनेमें भत्यन्त सावधानी रक्के क्योंकि भीतर शत्रु ऊपर मित्र पुरुषको बड़ा शत्रु समम्मना चाहिये ॥ ३ ॥

सब राजपुरुषोंको युद्ध करनेकी विद्या सिखाव और आप सीख तथा अन्य प्रजाजनोंको सिखावे जो पूर्व शिक्षित योद्धा होते हैं वे ही अच्छे प्रकार छड़ छड़ा जानते हैं जब शिक्षा करे तब (दण्डय्यूर्) इण्डके समान सेनाको चछावे (शकट॰) जैसा शकट अर्थात् गाड़ीके समान (वराह०) जैसे सुवर एक दूसरेक पीछे दौड़ते जाते हैं और कभी २ सब मिळकर झुण्ड होजाते हैं वैसे (मकर०) जसे मगर पानीमें चलते हैं वैसे सेनाको बनावे (सूचीन्यूह) जैसे सुईका अप-भाग सूक्ष्म पश्चात् स्थूल और उससे सुत्र स्थूल होता है वैसी शिक्षासे सेनाको बनाने, जैसे (नीलकण्ठ) ऊपर नीचे मत्पट मारता है इस प्रकार सेनाको बनाकर लड़ावे॥ ४॥

जिधर भय विदित हो उसी और सेनाको फैडावे, सब सेनाके पित्रोंको चारों और रखके (पद्मज्यूर्) अर्थात् पद्माकार चारों औरसे सेनाओंको रखके मध्यमें आप रहे।। ४।।

सेनापित और बलाध्यक्ष अर्थात् आझाका देने और सेनाके साथ लड़ने लड़ानेवाले वीरोंको आठों दिशाओंमें रक्खे, जिस ओरसे लड़ाई होती हो उसी ओर सब सेनाका मुख रक्खे परन्तु दूसरी ओर भी पक्का प्रबन्ध रक्खे, नहीं तो पीछे वा पार्श्वसे शत्रुकी घात होनेका सम्भव होता है।। :।।

जो गुल्म अर्थात् हढ़ स्तम्भोंके तुल्य युद्धविद्यासे सुशिक्षित धार्मिक स्थित होने और युद्ध करनेमें चतुर भयरहित और जिनके मनमें किसी प्रकारका विकार न हो उनको चारों और सेनाके रक्खे॥ ७॥

जो थोड़ेसे पुरुषोंसे बहुतोंके साथ युद्ध करना हो तो मिलकर छड़ावे और काम पहे तो उन्हींको मट फैला देवे जब नगर दुर्ग वा शावुकी सेनामें प्रविष्ट होकर युद्ध करना हो तब (सूचीव्यूह् ) अथवा (वज्जव्यूह् ) जैसे दुधारा खड़ग दोनों ओर काट [करता वैसे ] युद्ध करते जायं और प्रविष्ट भी होते चल वैसे अनेक प्रकारके व्यूर्ट अर्थात् सेनाको बनाकर लड़ावे जो सामने शहकी (तोप) वा भुशुण्डी (बन्दूक) छूट रही हो तो (संपव्यूह् ) अर्थात् संपके समान सोते २ चले जायें जब तोपोंके पास पहुंचें तब उनको मार वा पकड़ तोपोंका मुख शावुकी ओर फेर उन्हीं तोपोंसे वा बन्दूक आदिसे उन शावुओंको अथवा बृद्ध पुरुषोंको तोपोंके मुखके सामने घोड़ों पर सवार करा और मार्र बीचमं अच्छे २ सवार रहें एक वार धावा कर

शहकी सेनाको छिन भिन्न कर एकड् छे वथवा भगा दें ॥ ८॥

जो समरभूमिमें युद्ध करना हो तो रथ घोड़े और पदातियोंसे और जो समुद्रमें युद्ध करना हो तो नौका और थोड़े जलमें हाथियों पर, इस और माड़ीमें बाण तथा स्थल बालूमें तल्वार और ढालसे युद्ध करें करावें ॥ ६ ॥

जिस समय युद्ध होता हो उस समय छड़नेवाछोंको उत्साहित और हिर्षित करें जब युद्ध बन्द होजाय तब जिससे शौर्य और युद्धमें उत्साह हो बैसे वक्तृत्वोंसे सबके चित्तको खान पान अका शका सहाव और औषधादिसे प्रसन्न रक्खे व्यूहके विना छड़ाई न करे न करावे, छड़ती हुई अपनी सेनाकी चेष्टाको देखा करे कि ठीक २ छड़ती है बा कपट रखती है।। १०।।

किसी समय उचित सममे तो शत्रुको चारों बोरसे घर कर रोक रक्ते और इसके राज्यको पीड़ित कर स्रत्रुके चारा, अझ, जल और इन्धनको नष्ट दूषित करदे ॥ ११॥

शत्रु [के] तालाव नगरके प्रकोट और खाईको तोड़ फोड़ दे, रात्रिमें उनको (त्रास ) भय देवे और जीतनेका उपाय करे।। १२।।

नीत कर उनके साथ प्रमाण अर्थात् प्रतिहादि लिखा लेवे और जो उचित समय समसे तो उसीके वंशस्थ किसी धार्मिक पुरुषको राजा करदे और उससे लिखा लेवे कि तुमको हमारी आश्वाके अनुकूछ अर्थात् जैसी धर्मयुक्त राजनीति है उसके अनुसार चलके न्यायसे प्रजाका पालन करना होगा ऐसे उपदेश करे और ऐसे पुरुष उनके पास रक्खे कि जिससे पुनः उपद्रव न हो और जो हारजाय उसका सत्कार प्रधान पुरुषोंके साथ मिलकर रत्नादि उत्तम पदार्थोंके दानसे करे और ऐसा न करे कि जिससे उसका योगक्षेम भी न हो जो उसको बन्दीगृह करे तो भी उसका सत्कार यथायोग्य रक्खे जिससे वह हारनेके शोकसे रहित होकर आनन्दमें रहे।। १२।।

क्योंकि संसारमें दूसरेका पदार्थ प्रहण करना अग्रीति और देना

प्रीतिका कारण हैं और विशेष करके समय पर उचित किया करना और उस पराजितके मनोवाञ्छित पदार्थोंका देना बहुत उत्तम है और कभी उसको चिड़ावे नहीं न हंसी और [न] ठट्ठा करे, न उसके सामने हमने तुम्को पराजित किया है ऐसा भी कहे, किन्तु आप हमारे भाई हैं इत्यादि मान्य प्रतिष्ठा सदा करे।। १४॥

हिरण्यभूमिसंप्राप्त्या पार्थिवो न तथैधते।
यथा मित्रं भ्रु वं लब्स्वा कृशमप्यायतिक्षमम् ।१।
धर्मज्ञं च कृतज्ञं च तुष्टप्रकृतिमेव च।
अनुरक्तं स्थिरारम्भं लघुमित्रं प्रशस्यते॥२॥
प्राज्ञं कुलीनं श्रं च दक्षं दातारमेव च।
कृतज्ञं धृतिमन्तश्र कष्टमाहुरिं बुधाः॥३॥
आर्थ्यता पुरुषज्ञानं शौर्य्यं करुणवेदिता।
स्थौललक्ष्यं च सततमुदासीनगुणोदयः॥४॥

मनु॰ [ ७ ॥ २०८-२११ ]

मित्रका लक्षण यह है कि राजा सुवर्ण और भूमिकी प्राप्तिसे वैसा नहीं बढ़ता कि जैसे निश्चल प्रेमयुक्त भविष्यत्की वार्तोको सोचने बौर कार्य सिद्ध करने वाले समर्थ मित्र अथवा दुर्वल मित्रको भी प्राप्त होके बढ़ता है॥ १॥

धर्मको जानने और कृतज्ञ अर्थात् किये हुए उपकारको सदा माननेवाले प्रसन्न स्वभाव अनुरागी स्थिरारम्भी लघु छोटे भी मित्रको प्राप्त होकर प्रशंसित होता है।।२।।

सदा इस बातको टढ़ रक्ष्वे कि कभी बुद्धिमान, कुळीन, शूर, बीर चतूर, ज्ञाता, किये हुएको जाननेहारे और धैर्य्यवान् पुरुषको शत्रु न बनावे क्योंकि जो ऐसेको शत्रु बनावेगा वह दुश्य पावेगा ॥॥॥ बदासीनका लक्षण—जिसमें प्रशंसित गुण युक्त अच्छे बुरे मतु-प्योंका ज्ञान, शूर-वीरता और करुणा भी स्थूललक्ष्य अर्थात उत्तर २ की बातोंको निरन्तर सुनाया करे वह बदासीन कहाता है ॥ ४ ॥ एवं सर्वमिदं राजा सह संमन्त्र्य मन्त्रिभिः । ज्यायाम्याप्लुत्य मध्याह्वे भोक्तुमन्तः पुरं विद्योत् ॥ मतु [ ७ । २१६ ]

पूर्वोक्त प्रातःकाल समय उठ शौचादि सन्ध्योपासन अग्निहोत्र कर वा करा सब मन्त्रियोंसे विचार कर सभामें जा सब भृत्य और सेनाध्यक्षींके साथ मिल, उनको ह बिंत कर, नाना प्रकारकी व्यूहिशिक्षा अर्थात् कवायत् कर करा, सब घोड़े, हाथी, गाय अदि का ] स्थान शस्त्र और अस्त्रका कोश तथा वैद्यालय, धनके कोशोंको देख सब पर हिन्द नित्यप्रति देकर जो कुळ उनमें खोट हों उनको निकाल व्यायामशालामें जा व्यायाम करके [ मध्याह समय ] भोजनके लिये "अंतः-पुर" अर्थात् पत्नी आदिके निवासस्थानमें प्रवेश करें और भोजन सुपरीक्षित, बुद्धिबलपराक्रमबर्द्धक, रोगविनाशक, अनेक प्रकारके अन्न व्याक्षन पान आदि सुगन्धित मिष्टादि अनेक रसयुक्त उत्तम करें कि जिससे सदा सुखी रहे, इस प्रकार सब राज्यके कार्योंकी उन्नति किया करें।। प्रजासे कर लेनेका प्रकारः—

पश्चाशद्भाग आदेयो राज्ञा पश्चहिरण्ययोः । धान्यानामष्टमो भागः षष्ठो द्वादश एव वा ॥ मनु• [७।१३०]

जो न्यापार करनेवाले वा शिल्पीको सुवर्ण और चांदीका जितना लाभ हो उसमेंसे पचासवां भाग, चावल आदि अन्नोंमें छठा, भाठवां वा बारहवां भाग लिया करें और जो धन लेवे तो भी उस प्रकारसे लेवे कि जिससे किसान भादि खाने पीने और धनसे रहित होकर दुःख न पावें॥ १॥ क्योंकि प्रजाके धनाट्य आरोग्य खान पान आदिसे सम्पन्न रहने पर राजाको बड़ी उन्नित होती है प्रजाको अपने सन्तानके सदृश सुख देवे और प्रजा अपने पिता सदृश राजा और राजपुरुषोंको जाने यह बात ठीक है कि राजाओंके राजा किसान आदि परिश्रम करनेवाले हें और राजा उनका रक्षक है जो प्रजा न हो तो राजा किसाका ? और राजा उनका रक्षक है जो प्रजा न हो तो राजा किसाका ? और राजा न हो तो प्रजा किसाकी कहावे ? दोनों अपने अपने काममें स्वतन्त्र और मिले हुए प्रीतियुक्त काममें परतन्त्र रहें। प्रजाकी साधारण सम्मतिके विरुद्ध राजा वा राजपुरुष न हों राजाकी आझाके विरुद्ध राजपुरुष वा प्रजा न चले, यह राजाका राजकीय निज काम अर्थात जिसको "पोलिटिकल" कहते हैं संक्षेपसे कह दिया अब जो विरोष देखना चाहे वह चारों वेद मनुस्पृति शुक्तीति महाभारतादिमें देखकर निश्चय करे और जो प्रजाका न्याय करना है वह व्यवहार मनुस्पृतिके अप्टम और नवमाध्याय आदिकी रीतिसे करना चाहिये, परन्तु यहां भी संक्षेपसे लिखते हैं:—

प्रत्यहं देशहष्टेश्च शास्त्रहष्टेश्च हेतुिमः ।
अष्टादशसु मार्गेषु निबद्धानि एथक् एथक् ॥१॥
तेषामाद्यमुणादानं निक्षेपोऽस्वामिविकयः ।
संभ्य च समुत्थानं दत्तस्यानपकमं च ॥२॥
बेतनस्यैव चादानं संविदश्च व्यतिकमः ।
कयविकयानुशयो विवादः स्वामिपालयोः ॥३॥
सीमाविवादधर्मश्च पारुष्ये दण्डवाचिके ।
स्तेयं च साहसं चैव स्त्रीसंग्रहणमेव च ॥४॥
स्त्रीपंघमी विभागश्च यूतमाहृष एव च ।
पद्यान्यष्टादशैतानि व्यवहारस्थिताविह ॥५॥

एषु स्थानेषु भूयिष्ठं विवादं चरतां नृणाम् । धर्म शारवतमाश्रित्य कुर्यात्कार्यविनिर्णयम् ॥६॥ धर्मी विद्वस्त्वधर्मेण सभां यात्रोपतिष्ठते। ्रशस्यं चास्य न कृन्तन्ति विद्धास्तत्र सभासदः॥॥ सभां वा न प्रवेष्टव्या वक्तव्यं वा समंजसम्। अब्रुवन्विब्रुवन्वापि नरो भवति किल्विषी ॥=॥ यत्र धर्मी ह्यधमंण सत्यं यत्रावृतेन च। इन्यते प्रक्षमाणानां हतास्तत्र सभासदः ॥६॥ धर्म एव इतो इन्ति धर्मी रक्षति रक्षितः। तस्माद्धर्मी न इन्तव्यो मा नो धर्मी हतोऽवधीत्।१० वृषो हि भगवान् धर्मस्तस्य यः क्रुरुते ह्यलम् । वृषलं तं विदुर्देवास्तस्माद्धर्मं न लोपयेत् ॥११॥ एक एव सुहृद्धर्मी निधनेप्यनुयाति यः। शरीरेण समन्नाशं सर्वमन्यद्धि गच्छति ॥१२॥ पादो धर्मस्य कर्त्तारं पादः साक्षिणमृच्छति । पादः सभासदः सर्वान् पादो राजानमृच्छति।१३ राजा भवत्यनेनास्तु मुच्यन्ते च सभासदः। एनो गच्छति कत्तीरं निन्दाहीं यत्र निन्यते ॥१३४॥ मनु० [८।३-८।१२-१६]

स्मा राजा और राजपुरुष सब छोग देशाचार और शास्त्रव्य-बहार हेतुओंसे निम्निछिसित अठारह विवाहास्पद मार्गीयें विवाहयुक्त कमोंका निर्णय प्रतिदिन किया करें और जो २ नियम शास्त्रोक्त न पार्वे और उनके होनेकी आवश्यकता जानें तो उत्तमोत्तम नियम बान्धे कि जिससे राजा और प्रजाकी उन्नति हो ॥ १॥

अठारह मांग ये हैं उनमेंसे १—( ऋणादान ) किसीसे ऋण छेने देनेका विवाद । २—( निक्षेप ) धरावट अर्थात् किसीने किसीके पास पदार्थ धरा हो और मांगे पर न देना । ३—( अस्वामिनिकय ) दूसरे-के पदार्थको दूसरा बेंच छेवे । ४—( सम्भूय च समुत्थानम् ) मिछ मिछाके किसी पर अत्याचार करना । १—( दत्तस्यानएकर्म च ) दिये हुए पदार्थका न देना ॥ २ ॥

६—( वेतनस्येव चादानम् ) वेतन अर्थात् किसीकी "नौकरी" में से छेछेना वा कम देना अथवा न देना। ७—( प्रतिज्ञा) प्रतिज्ञांसे विरुद्ध वत्तना। ८—( क्यविकयानुशय) अर्थात् छेन देनमें म्मगड़ा होना। ६—पशुके ख़ामी और पाछनेवाछेका म्मगड़ा। ३।।

१०—सीमाका विवाद। ११— किसीको कठोर दण्ड देना। १२—कठोर वाणीका बोलना। १३—चोरी डाका मारना। १४—किसी कामको वलात्कारसे करना। १४—किसीकी स्त्री वा पुरुषका व्यभिचार होना।। ४॥

१६—क्षी और पुरुषके धर्ममें व्यतिक्रम होना। १७—विभाग धर्मात् दायभागमें बाद उठना। १८—इस अर्थात् जड़पदार्थ खौर समाह्मय अर्थात् चेतनको दावमें धरके जुआ खेळना। ये अठारह प्रकारके परस्पर विरुद्ध व्यवहारके स्थान हैं।। ५।।

इन व्यवहारोंमें बहुतसे विवाद करनेवाले पुरुषोंके न्यायको सनातनधर्मके आश्रय करके किया करे अर्थात् किसीका पक्षपात कमी न करे।। है।।

जिस सभामें अर्थामें घायल होकर धर्म उपस्थित होता है जो . इसका शस्य अर्थान् तीरवत् धर्मके कलंकको निकालना और अधर्मका छेदन नहीं करते अर्थान् धर्मीको मान अधर्मीको इण्ड नहीं मिलता जुस

सभामें जितने सभासद हैं वे सब घायलके समान सममे जाते हैं।।७॥ धार्मिक मनुष्यको योग्य है कि सभामें कभी प्रवेश न करे और जो प्रवेश किया हो तो सत्य ही बोले जो कोई सभामें **अन्याय होते** हुए को देखकर मौन रहे अथवा सत्य न्यायके विरुद्ध बोले वह महा-पापी होता है ॥ 🖂 ॥

जिस सभामें अधर्मसे धर्म, असत्यसे सत्य सब सभासदें के देखते हुए मारा जाता है उस सभामें सब मृतकके समान हैं जानी उनमें कोई भी नहीं जीता।। १।।

मरा हुआ धर्म मारनेवालेका नाश और रक्षित किया हुआ धर्म रक्षककी रक्षा करता है इसलिये धर्मका हनन कभी न करना इस दरसे कि मारा हुआ धर्म कभी हमको न मार डाछे।। १०॥

जो सब ऐरवर्यीके देने और सुखोंकी वर्षा करनेवाला धर्म है **उसका** छोप करता है उसीको विद्वान् छोग वृषठ अर्थात् शुद्र **और** नीच जानते हैं इसिछिये किसी मनुष्यको धर्मका छोप करना उचित नहीं ।। ११॥

इस संसारमें एक धर्म ही सुहद् है जो मृत्युके पश्चात् भी साथ चळता है और सब पदार्थ वा संगी शरीरके नाशके साथ ही नाशको प्राप्त होते हैं अर्थात् सबका संग छूट जाता है ॥ १२ ॥

परन्तु धर्मका संग कभी नहीं छूटता जब राजसभामें पक्षपातसे अन्याय किया जाता है वहां अधर्मके चार विभाग हो जाते हैं उनमेंसे एक अधर्मके कर्ता, दूसरा साक्षी, तीसरा सभासदों और चौथा पार कंघर्मी सभाके सभापति राजाको प्राप्त होता है ।। १३।।

जिस सभामें निन्दाके योग्यकी निन्दा, स्तुतिके योग्यकी स्तुति, हण्डके योग्यको दण्ड और मान्यके योग्यका मान्य हो ग है वहां राजा और सब सभ सर पापसे रहित और पवित्र हो जाते हैं पापके कर्ता ही को पाप प्राप्त होता है।। १४॥

े अब साक्षी कैसे करने चाहियेः—

1

आप्ताः सर्वेषु वर्णेषु कार्याः कार्येषु साक्षिणः। सर्वधर्मविदोऽलुन्धा विपरीतांस्तु वर्जयेत् ॥१॥ स्त्रीणां साक्ष्यं स्त्रियः कुर्युर्द्विजानां सदद्या द्विजाः। श्द्राश्च सन्तः श्द्राणामन्त्यानामन्त्ययोनयः ॥२॥ साहसेषु च सर्वेषु स्तेयसंग्रहणेषु च। वाग्दण्डयोश्च पारुष्वे न परीक्षेत साक्षिणः ॥३॥ षहुत्वं परिगृह्वीयात्साक्षि द्वे धे नराधिपः। समेषु तु गुणोत्कृष्टान् गुणद्वैधे द्विजोत्तमान् ॥४॥ समक्षदर्शनात्साक्ष्यं अवणाच्चैव सिध्यति । तत्र सत्यं ब्रुवन्साक्षी धर्मार्थाभ्यां च हीयते ॥॥ साक्षी दृष्टभुँतादन्यद्वित्रु बन्नार्यसंसदि । अवांनरकमभ्येति प्रेत्य स्वर्गाच हीयते ॥६॥ स्वभावेनैव यद् ब्रूयुस्तद् ग्राह्यं व्यावहारिकम्। अतो यदन्यद्भिज्ञ युर्धर्मार्थं तदपार्थकम् ॥॥ सभान्तः साक्षिणः प्राप्तानर्थिप्रत्यर्थिसन्निधौ । पाड्विवाकोऽनुयुञ्जीत विधिनाऽनेन सान्त्वयन् ॥二॥ यद् द्वयोरनयोर्वेत्थ कायस्मिन् चेष्टितं मिथः। तद् ब्रृत सर्वं सत्येन युष्माकं द्यत्र साक्षिता ॥१॥ सत्यं साक्ष्ये ब्रुवन्साक्षी लोकानामोति पुष्कलान्। इह चानुत्तमां कीर्त्तिं वागेषा ब्रह्मपूजिता ॥१०॥

सत्येन प्यते साक्षी धर्मः सत्येन वर्द्धते। , तस्मात्सत्यं हि वक्तव्यं सर्ववर्णेषु साक्षिभिः ॥११॥ आत्मैव ह्यात्मनः साक्षो गतिरात्मा तथात्मनः। मावमंस्थाः स्वमात्मानं नृणां साक्षिणमुत्तमम् ॥१२॥ यस्य विद्वान् हि वदतः क्षेत्रज्ञो नाभिशङ्कते। तस्मान्न देवाः श्रेयांसं लोकेऽन्यं पुरुषं विदुः ॥१३॥ एकोऽहमस्मीत्यात्मानं यत्त्वं कल्याण मन्यसे। नित्यं स्थितस्ते हृचे ष पुण्यपापेक्षिता सुनिः ॥१४॥ मनु० । ६३ । ६८ । ७२ ७५ । ७८ ८१ । ८३ । ८४ । ६६ । ६१ सब वर्णोंमें धार्मिक, विद्वान, निष्कपटी, सब प्रकार धर्मको जान-नेवा है, छोभ रहित सत्यवादीको न्यायब्यवस्थामें साञ्ची करे इससे विप-

रीतोंको कभी न करे॥१॥ बियोंकी साभी बी, दिजों के दिन, शुद्रों के शूद्र और अन्त्यजोंके बन्त्यज साक्षी हों।। २।।

जितने बलात्कार काम चोरी, व्यभिवार, कठोर वचन, दण्डनि-पात रूप अपराध हैं उनमें साक्षीकी परीक्षा न करे और अत्यावश्यक भी समभे क्यों कि ये काम सब गुप्त होते है ॥ ३ ॥

दोनों कोरके साक्षियोंमेंसे बहुपक्षानुसार, तुल्य साक्षियोंमें उत्तम गुणी पुरुषकी साक्षीके अनुकूछ और दोनोंके साक्षी उत्तम गुणी और तुल्य हों तो द्विजोत्तम अर्थात् अषि महर्षि और यतियोंकी साक्षीके बनसार न्याय करे ॥ ४ ॥

दो प्रकारके साक्षी होना सिद्ध होता है एक साक्षात् देखने ब्लोर दूसरा सुननेसे, जब सभामें पूछें तब जो साक्षी सत्य बोळें वे धर्महीन और वण्डके योग्य न होवें और जो साक्षी मिथ्या बोळें वे यथायोग्य दण्डनीय हों॥ ४॥

जो राजसभा वा किसी उत्तम पुरुषोंकी सभामें साक्षी देखने और सुननेसे विरुद्ध बोले तो वह ( अवाङ् नरक ) अर्थात् जिह्वाके छेदनसे दुःखरूप नरकको वर्त्तमान समयमें प्राप्त होवे और मरे पश्चात् सुखसे हीन होजाय ॥ ६ ॥

साक्षीके उस वचनको मानना कि जो स्वभाव ही से **न्यवहार** सम्बन्धी बोठे और इससे भिन्न सिखाये हुए जो २ वचन बोठे उस २ को न्यायाधीश व्यर्थ समभे ॥ ७॥

जब अर्थी (वादी ) और प्रत्यर्थी (प्रतिवादी ) के सामने सभाके समीप प्राप्त हुए साक्षियोंको शान्तिपूर्वक न्यायाधीश और प्राड्विवाक स्वर्थात् वकील वा वैरिस्टर इस प्रकारसे पूछें ॥ ८ ॥

हे साक्षी छोगो ! इस कार्यमें इन दोनोंके परस्पर कर्मोंमें जो तुम जानते हो उसको सत्यके साथ बोछो क्योंकि तुम्हारी इस कार्य्यमें साक्षी है ॥ १ ॥

जो साक्षी सत्य बोळता है वह जन्मान्तरमें उत्तम जन्म और उत्तम छोकान्तरोंमें जन्मको प्राप्त होके सुख भोगता है इस जन्म वा परजन्ममें उत्तम कीर्तिको प्राप्त होता है क्योंकि जो यह वाणी है क्यों सत्कार और तिरस्कारका कारण लिखी है। जो सत्य बोळता है बह प्रतिष्ठित और मिथ्यावादी निन्दित होता है। १०॥

सत्य बोछनेसे साक्षी पित्रत्र होता और सत्य ही बोछनेसे धर्म बढ़ता है इससे सब वर्णोमें साक्षियोंको सत्य ही बोछना योग्य है ॥११॥

आत्माका साक्षी आत्मा और आत्माकी गति आत्मा है इसको जानके हे पुरुष ! तू सब मनुष्योंका उत्तम साक्षी अपने आत्माका अप-मान मत कर अर्थात् सत्य भाषण जो कि तेरे आत्मा मन वाणीमें है वह सत्य और जो इससे विपरीत है वह मिथ्याभाषण है ॥ १२ ॥

जिस बोळते हुए पुरुषका विद्वान क्षेत्रज्ञ अर्थात् शरीरका जानने इरा आत्मा भीतर शङ्काको प्राप्त नहीं होता उससे भिन्न विद्वान् छोग किसीको उत्तम पुरुष नहीं जानते ॥ १३॥ है कस्याणकी इच्छा करनेहारे पुरुष ! जो तू "मैं अकेळा हूँ" ऐसा अपने आत्मामें जानकर मिथ्या बोछता है सो ठीक नहीं है किन्तु जो दूसरा तेरे हृदयमें अन्तर्यामी रूपसे परमेश्वर पुण्य पापका देख-नेवाळा मुनि स्थित है उस परमात्मास डरकर सदा सत्य बोळा कर ॥ १४ ॥

लोभान्मोहाद्रयान्मैत्रात्कामात्कोधात्तथैव च। अज्ञानाद्बालभावाच्च साक्ष्यं वितथमुच्यते ॥१॥ एषामन्यतमे स्थाने यः साक्ष्यमनृतं वदेत् । तस्य दण्डविद्रोषांस्तु प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वद्याः ॥२॥ लोभात्सहस्रदण्ड्यस्तु मोहात्पूर्वन्तु साहसम्। भयाद्द्रौ मध्यमी दण्ड्यौ मैत्रात्पूर्वं चतुगुणम् ॥३॥ कामाददागुणं पूर्वं कोधात्तु त्रिगुणं परम्। अज्ञानादृद्वे राते पूर्णं बालिश्याच्छतमेव तु ॥४॥ उपस्थमुद्रं जिह्ना हस्ती पादी च पश्चमम्। चक्ष्-र्नासा च कर्णी च धनं देहस्तथैव च ॥५॥ अनुबन्धं परिज्ञाय देशकालौ च तत्त्वतः । साराऽपराधी चालोक्य दण्डं दण्ड्ये षु पातयेत्॥६॥ अधमदण्डनं लोके यद्योघ्नं कीर्तिनादानम्। अस्त्रर्गञ्च परत्रापि तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥७॥ 🧼 अदण्ड्यान्दण्डयन् राजा दण्ड्यांश्चैवाप्य**दण्डयन्** अयशोमहदामोति नरकं चैव गच्छति ॥८॥ ब्राग्दण्डं प्रथमं क्रुर्याद्विग्दण्डं तद्नन्तरम् । 🗼 🗀

#### तृतीयं धनदण्डं तु बधदण्डमतः परम् ॥१॥

मनु• [८।११८—१२१।१२५—१२६]

जो लोभ, मोह, भय, मित्रता, काम, क्रोध, अज्ञान और बालक-पनसे साक्षी देवे वह सब मिथ्या सममी जावे॥ १॥

इनमेंसे किसी स्थानमें साक्षी भूठ बोळे उसको वक्ष्यमाण अनेकः विध दण्ड दिया करे॥ २॥

जो छोभसे भूठी साक्षी देवे तो उससे १४॥≥) ( पन्द्रह ६पये दश बाने ) दण्ड छेवे, जो मोहसे भूठी साक्षी देवे उससे ३≤) (तीन हपये दो बाने ) दण्ड छेवे, जो भयसे मिथ्या साक्षी देवे उससे ६।) (सवा छः हपये ) दण्ड छेवे और जो पुरुष मित्रतासे भूठी साक्षी देवे उससे १२॥) (साढ़े बारह हपये ) दण्ड छेवे ॥ ३॥

' जो पुरुष कामनासे मिथ्या साक्षी देवे उससे २५) ( पच्चीस हपये ) दण्ड होवे, जो पुरुष कोघसे मूठी साक्षी देवे उससे ४६॥॥॥ ( ह्याळीस रुपये चौदह आने ) दण्ड होवे, जो पुरुष अज्ञानतासे मूठी साक्षी देवे उससे ६) ( हः रुपये ) दण्ड होवे और जो बालकपनसे मिथ्या साक्षी देवे तो उससे १॥॥) ( एक रुपया नो आने ) दण्ड होवे ॥ ४॥

दण्डके उपस्थेन्द्रिय, उदर, जिह्ना, हाथ, पग, आंख नाक, कान, धन और देह ये दश स्थान हैं कि जिन पर दण्ड दिया जाता है ॥५॥

परन्तु जो २ दण्ड लिखा है और लिखा जैसे लोमसे साक्षी देनेमें पन्द्रह रुपये दश आने दण्ड लिखा है परन्तु जो अत्यन्त निधन हो तो उससे कम और धनाह्य हो तो उससे दूना तिगुना और चौगुना तक भी ले लेवे अर्थात् जैसा देश, जैसा काल और पुरुष हो उसका जिसा अपराध हो वैसा ही दंड करें।। ई।।

ै क्योंकि इस संसारमें जो अधर्मसे दंड करना है वह पूर्व प्रतिष्ठा वर्तमान और भविष्यत्में और परजन्ममें होने वाळी कीर्तिका नाश समुद्धास] दण्ड, कोमल और कठोर। २२१ करनेहारा है और परजन्ममें भी दुःखदायक होता है इसल्ये अर्था-युक्त दंढ किसी पर न करे॥ ७॥

जो राजा दंडनीयोंको न दंड और अदंडनीयोंको दंड देता है अर्थात् दंड देने योग्यको छोड़ देता और जिसको दंड देना न चाहिये उसको दंड देना है वह जीता हुआ वड़ी निन्दाको और मरे पीछे बड़े हु:सको प्राप्त होता है इसिछिये जो अपराध करे उसको सदा दंड देवे और अनपराधीको दंड कभी न देवे ॥ ८॥

प्रथम वाणीका दण्ड अर्थात् उसकी "निन्दा" दूसरा "धिक्" दण्ड धर्यात् तुम्मको धिक्कार है तुं ने ऐसा बुरा काम क्यों किया, तीसरा इससे "धन लेन." और चौथा "बध" दंड अर्थात् उसको कोड़ा वा बेंत से मारना वा शिर काट देना ॥ १ ॥

चेन येन यथाङ्गेन स्तेनो च्छु विचेष्ठते।
तत्तदेव हरेदस्य प्रत्यादेशाय पार्थिवः॥१॥
पिताचार्यः सुह्यन्माता भार्या पुत्रः पुरोहितः।
नादण्ड्यो नाम राज्ञोऽस्ति यः स्वधमें न तिष्ठति।२॥
कार्षापणं भवेदण्ड्यो यत्रान्यः प्राकृतो जनः।
तत्र राजा भवेदण्ड्यः सहस्रमिति धारणा ॥३॥
अष्टापाद्यन्तु सुद्रस्य स्तेये भवति किरिवषम्।
षोडशैव तु वैश्यस्य द्वात्रिंशत् क्षत्रियस्य च ॥४॥
ब्राह्मणस्य चतुःषष्ठिःपूर्णं वापि शतं भवेत्।
द्विगुणा वा चतुःषष्ठिःस्तदोषगुणविद्धि सः॥॥॥
ऐन्द्रं स्थानमभिष्रेष्तुर्यश्रक्षाक्षयमन्ययम्।
नोपेक्षेत क्षणमपि राज्य साहसिकं नरम्॥६॥

षाग्दुष्ठात्तस्तराचैव दण्डेनैव च हिंसतः।
साहसस्य नरः कर्ता विज्ञे यः पापकृत्तमः ॥७॥
साहसे वर्त्त मानन्तु यो मर्षयति पार्थिवः।
स विनाशं व्रजत्याशु विद्वेषं चाधिगच्छति ॥८॥
न मित्रकारणाद्राजा विपुलाद्वा धनागमात्।
समुत्सृजेत् साहसिकान्सर्वभृतभयावहान् ॥६॥
गुरुं वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम्।
आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन् ॥१०॥
नाततायिवधे दोषो हन्तुभैवति कश्चन।
प्रकाशं वाऽप्रकाशं वा मन्युस्तन्मन्युमृच्छति ॥११॥
पस्य स्तेनः पुरे नास्ति नान्यस्त्रीगो न दुष्टवाक्।
न साहसिकदण्डश्रौ स राजा शकलोकभाक्॥१२॥
मनु• [८।३३४—३३८।३४४—३४८।३६०।३६०।३६०।३६०।

और जिस प्रकार जिस २ अङ्गसे मनुष्योंमें विरुद्ध चेष्टा करता है उस २ अङ्गको सब मनुष्योंकी शिक्षाके लिये राजा हरण अर्थात् छेदन करदे ॥ १ ॥

चाहे पिता, आचार्य, मित्र, स्त्री, पुत्र और पुरोहित क्यों न हो स्त्रो स्वर्धममें स्थित नहीं रहता वह राजाका अदण्ड्य नहीं होता अर्थात जब राजा न्यायासन पर बैठ न्याय करे तब किसीका पक्षपात न करे किन्तु यथोचित दण्ड देवे ॥ २ ॥

जिस अपराधमें साधारण मनुष्य पर एक पैसा दण्ड हो उसी अपराधमें राजाको सहस्र पैसा दण्ड होने अर्थात् साधारण मनुष्यसे राजाको सहस्र गुणा दण्ड होना चाहिये मन्त्री अर्थात् राजाके दीवान- को आठसो गुणा उससे न्यूनको सातसो गुणा और उससे भी न्यूनको छसो गुणा इसी प्रकार उत्तम २ अर्थात् जो एक छोटेसे छोटा भृत्य अर्थात् चपरासी है उसको आठगुणे दण्डसे कम न होना चाहिये क्योंकि यदि प्रजापुरुषोंसे राजपुरुषोंको अधिक दण्ड न होने तो राजपुरुष प्रजापुरुषोंका नाश कर देने जैसे सिंह अधिक और बकरी थोड़े दण्डसे ही बशमें आजाती है इसिछिये राजासे छेकर छोटेसे छोटे भूख पर्य्यन्त राजपुरुषोंको अपराधमें प्रजापुरुषोंसे अधिक दण्ड होना चाहिये।। ३॥

अोर वैसे ही जो इछ विवेकी होकर चोरी करे उस शूद्रको चोरीसे आठ गुणा, वैश्यको सोल्ड गुणा, क्षत्रियको बीस गुणा ॥ ४ ॥

ब्राह्मणको चौंसठ गुणा वा सौ गुणा अथवा एकसौ अट्टाईस गुणा दंड होना चाहिये अर्थात् जिसका जितना ज्ञान और जितनी प्रतिष्ठां अधिक हो उसको अपराधमें उतनाही अधिक दण्ड होना चाहिये ॥१॥

राज्यके अधिकारी धर्म और ऐश्वर्ध्यकी इच्छा करने वाला राजा बलात्कार काम करने वाले डाक्तओंको दण्ड देनेमें एक क्षण भी देर न करें।। ६॥

साहसिक पुरुषका लक्षण--

जो दुष्ट वचन बोलने, चोरी करने, विना अपराधसे दण्ड देने-बालेसे भी साहस वलातकार काम करनेवाला है वह अतीव पापी दुष्ट है।। ७॥

जो राजा साहसमें वर्त्तमान पुरुषको न दण्ड देकर सहन करता है वह राजा शीघही नाशको प्राप्त होता है और राज्यमें द्वेप उठता है।।<॥

न मित्रता [ और ] न पुष्कल धनकी प्राप्तिसे भी राजा सब प्राणियोंको दुःख देनेवाले साहसिक मनुष्यको बंधन छेदन किये विना कभी छोड़े ॥ १ ॥

चाहे गुरु हो, चाहे पुत्रादि बालक हों, चाहे पिता आदि बृद्ध, चाहे ब्राह्मण और चाहे बृहुत शास्त्रोंका श्रोता क्यों न हो जो धर्मको छोड़ अधर्ममें वर्तमान दूसरेको विना अपराथ मारनेवाले हैं उनको विना विचारे मार डालना अर्थात् मारके पश्चात् विचार करना चाहिये ।। १०।।

दुष्ट पुरुषोंक मारनेमें हन्ताको पाप नहीं होता चाहे प्रसिद्ध मारे चाहे अप्रसिद्ध, क्योंकि क्रोधीको क्रोधसे मारना जानो क्रोधसे क्रोधकी छड़ाई है ॥ ११॥

जिस राजाके राज्यमें न चोर, न परस्त्रीगामी, न दुष्ट वचनको बोलनेहारा, न साहसिक डाकू और न दण्डन्न अर्थात् राजाकी बाजाका भङ्क करनेवाल है वह राजः अतीव श्रेष्ठ है।। १२।। भर्तारं लंघयेचा स्त्री स्वज्ञातिगुणदर्पिता। तां स्विभः खादयेद्राजा संस्थाने बहुसंस्थिते॥१॥ पुमांसं दाहयेत्पापं शयने तस आयसे। अभ्यादध्युरच काष्ठानि तन्न दह्यत पापकृत्॥२॥ दीर्घाध्वनि यथादेशं यथाकालङ्करो भवेत्। वदीतीरेषु तद्विचात्समुद्रे नास्ति लक्षणम् ॥३॥ अहन्यहन्यवेक्षेत कर्मान्तान्वाहनानि च। आयव्ययौ च नियतावाकरान्कोषमेव च॥४॥ एवं सर्वानिमात्राजा व्यवहारान्समापयन्। व्यपोद्य किल्विषं सर्व प्रामोति परमां गतिम्॥५॥

मनु० [८॥ ३७१-३७२।४०६ ।४२० ] जो स्त्री अपनी जाति गुग्रके घमण्डसे पतिको छोड़ व्यभिचार को उसको बहुत स्त्री और पुरुषोंके सामने जीती हुई कुत्तोंसे राजा करवा कर मरवा डाले॥१॥ उसी प्रकार अपनी स्त्री को छोड़के परस्त्री वा वेश्यागमन करे

# समुल्लास] दण्ड, कोमल और स्ट्रार।

उस पापीको लोहेके पढ़क्कको अग्निसे तपाके लाल कर उस पर सुलाके जीतेको बहुत पुरुषोंके सम्मुख भस्म कर देवे ॥ २ ॥

२२५

प्रश्त—जो गजा वा रानी अथवा न्यायाधीश वा उसकी स्त्री व्यभिचारादि कुकर्भ करे तो उसको कौन दण्ड देवे १

उत्तर—सभा अर्थात् उनको तो प्रजापुरुषोंसे भी अधिक दण्ड होना चाहिये ।

प्रश्न-राजादि उनसे दण्ड क्यों प्रहण करेंगे।

उत्तर—राजा भी एक पुण्यात्मा भाग्यशाली मनुष्य है जब उसीको दण्ड न दिया जाय और वह दण्ड ब्रहण न करें तो दूसरे म गुष्य दण्ड को क्यों मार्नेगे ?

ओर जब सब प्रजा और प्रधान राज्याधिकारी और सभा धार्मिकनासे दण्ड देना चाहे तो अक्षेत्र राजा क्या कर सकता है जो ऐसी व्यवस्था न तो तो राजा प्रधान और सब समर्थ पुरुष अन्या-यमें द्वव कर न्यायर्थनको डुब के सब प्रजाका नाश कर आप भी नष्ट होजाथँ अर्थात् उस रलोकके अर्थको स्मरण करो कि न्याययुक्त दण्ड ही का नाम राजा और धम है जो उसका लोप करता है उससे नीच पुषष दूसरा कौन होगा।

प्रश्न-यह कड़ा दण्ड होना उचित नहीं क्योंकि मनुष्य किसी अङ्गका बनानेहारा वा जिल्लानेवाला नहीं है इसलिए ऐसा दण्ड न देना चाहिये।

उत्तर— नो इसको कड़ा दण्ड जानते हैं वे राजनीतिको नहीं समम्मने क्योंकि एक पुरुषको इस प्रकार दण्ड होनेसे सब छोग छुरे काम करनेसे अछग रहेंगे और बुरे कामको छोड़कर धर्म मार्गमें स्थित रहेंगे। सच नृछो तो यही है कि एक राई भर भी यह दण्ड सबके भागमें न आवेगा और जो सुगम दण्ड दिया जाये तो दुष्ट काम बहुत बढ़कर होने छगें वह जिसको तुम सुगम दण्ड कहते हो क्योंकोई गुणा अधिक होनेसे कोड़ों गुणा कठिन होता है क्योंकि

जब बहुत मनुष्य दुष्ट कर्म करेंगे तब थोड़ा २ दण्ड भी देना पड़ेगा धर्यात् जैसे एकको मनभर दण्ड हुआ और दूसरेको पावभर से पावभर अधिक एक मन दण्ड होता है तो प्रत्येक मनुष्यके भागों आधपाव बीस सेर दण्ड पड़ा तो ऐसे सुगम दण्डको दुष्ट छोग क्या सममते हैं १ जैसे एकको मन और सहस्र मनुष्योंको पाव २ दण्ड हुआ तो है। (सवा छः) मन मनुष्य जाति पर दण्ड होनेसे अधिक और यही कड़ा तथा वह एक मन दण्ड न्यून और सुगम होता है। जो छम्चे मांगमें समुद्रकी खाड़ियां वा नदी तथा बड़े नदोंमें जितना छम्चा देश हो उतना कर स्थापन करे और महासमुद्रमें निश्चित कर स्थापन नहीं हो सकता कि नु जैसा अनुकूछ देखे कि जिससे राजा और बड़े २ नौकाओंके समुद्रनें चछानेवाले दोनों छाभयुक्त हों वैसी व्यवस्था करे परन्तु यह ध्यानमें रखना चाहिए कि जो कहते हैं कि प्रथम जहाज नहीं चछते थे वे मूठे हैं और देश-देशान्तर द्वीप-ह्यां नत्रोंमें नौकासे जानेवाले अपने प्रजास्थ पुरुषोंकी सर्वत्र रक्षा कर इनको किसी प्रकारका दुःख न होने देवे।। ३।।

राजा प्रतिदिन कर्मोंकी समाध्तियोंको, हाथी घोड़े आदि वाह-नोंको नियत छाम और खरच, "आकर" रत्नादिकोंकी खाने बीर कोष ( खजाने ) को देखा करे।। ४।।

राजा इस प्रकार सब व्यवहारोंको यथावत् समाप्त करता कराता हुआ सब पापोंको छुड़ाके परमगति मोक्ष सुखको प्राप्त होता है ॥४॥ प्रश्न—संस्कृतविद्यामें पूरी २ राजनीति है वा अधूरी १

उत्तर—पूरी है क्योंकि जो २ भूगोलमें राजनोति चली और चलेगी वह सब संस्कृत विद्यासे ली है और जिनका प्रत्यक्ष लेख नहीं है उनके लियेः—

मत्यहं लोकद्रष्टिश्च शास्त्रद्रष्टिश्च हेतुभिः ॥ मतुः व्य३॥ ेजो नियम राजा और प्रजाके सुसकारक और धर्मयुक्त समस्रे

**इन २ नियमों को पूर्ण विद्वानों की राजसभा वांधा करे। परन्तु इस** पर नित्य ध्यान रक्ते कि जहां तक बन सके वहां तक बाह्यावस्थामें विवाह न करने देवें। युवावस्थामें भी विना प्रसन्नताके विवाह न करना कराना और न करने देना । ब्रह्मचर्यका यथावत सेवन करना कराना । ब्यभिचार और बहुविवाहको बन्द करें कि जिससे शरीर और आत्मामें पूर्ण बल सदा रहे। क्योंकि जो केवल आत्माका बल अर्थात् विद्या ज्ञान बढ़ाये जायं और शरीरका बल न बढ़ावें तो एक ही बल-वान पुरुष ज्ञानी और सैकडों विद्वानोंको जीत सकता है। और जो केवल शरीर ही का बल बढ़ाया जाय आत्माका नहीं तो भी राज्य पालनकी उत्तम व्यवस्था विना विद्याके कभी नहीं हो सकती। विना व्यवस्थाके सब आयलनें ही फूट टूट विरोध छड़ाई मागड़ा करके नष्ट भ्रष्ट होजायं। इसिलये सर्वदा शरीर और आत्माक वलको बढाते रहना चाहिये। जैसा वल और बुद्धिका नाशक व्यवहार व्यभिचार सीर अति विषयासक्ति है वैसा और कोई नहीं है। विशेषतः क्षत्रि-योंको हढांग और बलयुक्त होनः चाहिए। क्योंकि जब वे ही विषया-सक होंगे तो राज्यधर्म ही नष्ट होजायगा। और इस पर भी ध्यान रखना चाहिए कि "यथा राजा तथा प्रजा" जैसा राजा होता है वैसी ही उसकी प्रजा होती है। इसिंछए राजा और राजपुरुषोंको अति चित है कि कभी दुप्टाचार न करें, किन्तु सब दिन धर्म न्यायसे वर्तकर सबके सुधारका दृष्टान्त बने ।

बह संक्षेपसे राजधर्मका वर्णन यहां किया है विशेष वेद, मनुस्य-तिके सन्तम, अष्टम, नवम अध्यायमें और शुक्रनीति तथा विदुरप्रजा-गर और महाभारत शान्तिपर्वके राजधर्म और आपद्धम आदि पुस्त-कोमें देखकर पूर्ण राजनीतिको धारण करके माण्डिक अथवा सार्व-सीम ,चक्रवर्ती राज्य कर और यह समम्बें कि "वयं प्रजापतेः प्रजा समूम" १८। २६ (यह यजुर्वेदका वचन है) हम प्रजापति अर्थान् व परमेश्वरकी प्रजा और परमात्मा हमारा राजा हम उसके किकर भृत्यवत् हैं वह कृपा करके अपनी सृष्टिमें हमको राज्याधिकारी करें भौर हमारे हाथसे अपने सत्य न्यायकी प्रवृत्ति करावे । अब आगे ईश्वर और वेदविषयमें लिखा जायगा ।।

इति श्रीमहयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकारो सुभाषाविभूषिते राजधर्मविषये षष्ठः समुक्षासः सम्पूर्णः ॥६॥



# हुष्टिक्ट व्यवस्था स्थान स स्थान स्था स्थान स्यान स्थान स्य

#### अथेश्वग्वेदविषयं व्याख्यास्यामः ।

-23

मृचो अक्षरे परमे व्योमन्यस्मिन् देवा अघि विश्वे निषेदुः । यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्वि-दुस्त इमे समासते ॥१॥ ऋ०१। १६४। ३६॥ ईशा वास्यमिद्णं सर्व यत्किश्च जगत्याञ्चगत्। तेन त्यक्तेन भुञ्जीधामा ग्रधः कस्य स्विद्धनम् ॥२॥ यज्ञु०॥ अ०४०। म०१॥

अहम्भुवं वसुनः पूर्व्यस्पतिरहं धनानि सं जयामि श्वारवतः । मां हवन्ते पितर न जन्तवोऽहं दाशुषे विभजामि भोजनम् ॥३॥

अंहमिन्दो न परा जिग्य इद्धनं न मृत्यवेऽवतस्ये कदाचन । सोममिन्मा सुन्वन्तो याचता वसु न मे पूरवः सस्ये रिषाथन ॥४॥ ऋ०१०।४८ । १,५॥

(भृचो अक्षरे०) इस मन्यका अर्थ ब्रह्मचर्व्याश्रमकी शिक्षामें छिल चुके हैं अर्थात जो सब दिव्य गुण कम स्वभाव विद्यायुक्त और जिसमें पृथिवी सुर्व्यादि छोक स्थित हैं और जो आकाशके समान स्थापक सब देवोंका देव परमेश्वर है उसको जो मनुष्य न जावते व मानते और उसका ध्यान नहीं करते वे नास्तिक मन्दमित सदा दुःव सागरमें दूवे ही रहते हैं इस**िये सर्वदा उसीको जानकर** सब मनुष्य सुसी होते हैं।

प्रश्न—वेदमें ईश्वर अनेक हैं इस बातको तुम मानते हो वा नर्ही ? उत्तर—नहीं मानते, क्योंकि चारों वेदोंमें ऐसा कहीं नहीं लिखा जिससे अनेक ईश्वर सिद्ध हों किन्तु यह तो लिखा है कि ईश्वर एक है।

प्रश्न—वेदोंमें जो अनेक देवता लिखे हैं उसका क्या अभि प्राय है ?

उत्तर-देवता दिव्य गुर्णोसे युक्त होनेके कारण कहाते हैं जैसी कि पृथिवी, परन्तु इसको कहीं ईश्वर वा उपासनीय नहीं माना है। देखो ! इसी मन्त्रमें कि 'जिसमें सब देवता स्थित हैं वह जानने और **उपासना करने योग्य ईश्वर है। यह उनकी भूल है जो देवता शब्दसे** ईश्वरका प्रहण करते हैं। परमेश्वर देवोंका देव होनेसे महादेव इसी-लिये कहाता है कि वही सब जगत्की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलयकर्ती न्यायाधीरा अधिष्ठाता । "त्रयिक्षशन्त्रिशता" इत्यादि वेदोंमें प्रमाण हैं इसकी व्याख्या शतपथमें की है कि तेंतीस देव अर्थात् पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, चन्द्रमा, सुर्य्य, और नक्षत्र सब सृष्टिके निवा-सस्थान होनेसे [ ये ] आठ वसु । प्राण, अपान, स्थान, [ उदान ], समान, नाग, कूर्म्म, कुकल, देवदत, धनब्जय और जीवात्मा ये ग्यारह रुद्र इसल्यि कडाते हैं कि जब शरीरको छोडते हैं तब रोदन करानेवाले होते हैं। संवत्सरके बारह महीते बारह आदित्य इसलिये हैं कि ये सबकी आयुको छेते जाते हैं। बिजुलीका नाम इन्द्र इस हेतुसे है कि परम ऐश्वर्यका हेतु है। यज्ञको प्रजापित कहनेका कारण यह है कि जिससे बायु वृष्टि जल ओषवीकी सुद्धि, विद्वानोंका सत्कार भीर नाना प्रकारकी शिल्यविद्यासे प्रताका पालन होता है। , ये तेंतीस पूर्वोक गुणोंके योगसे देव कहाते हैं। इनका खामी और सबसे बड़ा

होनेसे परमात्मा चौंतीसवां उपास्यदेव शतपथके चौदहवें काण्डमें स्पष्ट लिखा है। इसी प्रकार अन्यत्र भी लिखा है। जो ये इन शाखों को देखते तो वेदोंमें अनेक ईश्वर माननेरूप भ्रमजालमें गिरकर क्यों बहकृते॥ १॥ )

हे मनुष्य ! जो कुछ इस संसारमें जगन् है उस सबमें व्याप्त होकर नियन्ता है वह ईश्वर कहाता है उससे डर कर तृ अन्यायसे किसीके धनकी आकांक्षा मत कर उस अन्यायका त्याग और न्याया-चरणरूप धर्मसे अपने आत्मासे आनन्दको भोग ॥ २ ॥

ईश्वर सबको उपदेश करता है कि हे मनुष्यो ! मैं ईश्वर सबके पूर्व विद्यमान सब जगत्का पित हूं मैं सनातन जगत्कारण और सब धनोंका विजय करनेवाला और दाता हूं मुम्म ही को सब जीव जैसे पिताको सन्तान पुकारते हैं वैसे पुकारें मैं सबको सुख देने हारे जगत्के छिये नाना प्रकारके भोजनोंका विभाग पालनके लिये करता हूं !! ३ !!

में परमेश्वयंवान सूर्यके सहरा सब जगन्का प्रकाशक हूं कभी पराजयको प्राप्त नहीं होना और न कभी मृत्युको प्राप्त होना हूं में ही जगन्रू धनका निर्माता हूं सब जगन्की उत्पत्ति करने वाले सम ही को जानो, हे जीवो । ऐश्वयं प्राप्तिक यन्न करते हुये तुम लेग विज्ञानादि धनको मुम्मसे मांगो और तुम लोग मेरी मित्रतासे अलग् मत होओ, हे मनुष्यो । में सत्यभाषणरूप स्तुति करनेवाले मनुष्य हो सनातन ज्ञानादि धनको देता हूं में ब्रह्म अर्थात् वेदका प्रकार करनेहारा और मुम्मको वह वेद यथावत् कहता उससे सबके ज्ञानको में बढ़ाता में सत्युह्मका प्रेरक यन्न करनेहारेको फलप्रदाना और इस विश्वमें जो कुळ है उस सब कार्य्यको बनाने और धारण करनेवाल हूं इसल्ये तुम लोग मुम्मको छोड़ किसी दूसरेको मेरे स्थानमें मन पूजो, मत मानो और मत जानो ॥ ४॥

ेहिरण्यगर्भः समवर्त्ताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक

## आसीत्। स दाधार पृथिवीं चामुतेमां कस्मै देवाय इविषा विधेम॥ यज्ञ० [अ०१३।४]

यह यजुर्वेदका मंत्र है—हे मनुष्यो ! जो सृष्टिके पूर्व सब सूर्य्यादि तेजवाले लोकोंका उत्पत्ति स्थान अधार और जो कुछ उत्पन्न हुआ था, है और होगा उसका स्वामी था, है और होगा बह पृथिवीसे लेके सूर्य्यलोक पर्य्यन्त सृष्टिको बनाके धारण कर रहा है। उस सुखस्व-रूप परमात्मा ही की भक्ति जैसे हम करें वैसे तुम लोग भी करो ॥१॥

प्रश्न--आप ईश्वर २ कहते हो परन्तु उसकी सिद्धि किस प्रकार करते हो १

उत्तर—सव प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे । प्रश्न—ईश्वरमें प्रत्यक्षादि प्रमाण कभी नहीं घट सकते ? उत्तर—

### इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानमव्यपदेश्यमव्यभि-चारिव्यवसायात्मकं प्रत्यक्षम् ॥ न्याय० [१ । ४]

यह गौतम महर्षिकृत न्यायद्शनका सूत्र है — जो श्रोत्र, त्वचा, चक्ष, जिद्धा, बाण और मनका शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, सुख, दुख्य, सत्यासत्य विपयों के साथ सम्बन्ध होते से झान उत्पन्न होता है उसको प्रत्यक्ष कर्न है परन्तु वह निर्मम हो। अब विचारना चाहिये कि इन्द्रियों और मनसे गुणोंका प्रत्यक्ष होता है गुणीका नहीं। जैसे चारों त्वचा आदि इन्द्रियों से स्पर्श, रूप, रस और गन्धका झान होने से गुणी जो पृथिबी उसका आत्मायुक्त मनसे प्रत्यक्ष किया जाता है वैसे इस त्यक्ष सृष्टिमें रचना दिशेष आदि झानादि गुणोंके प्रत्यक्ष होने ए एमेरवरका भी प्रत्यक्ष है। और जब आत्मा मन और मन इन्द्रियोंको किसी विषयमें लगाता वा चोरी आदि बुरी वा परोपकार आदि अच्छी बातके करनेका जिस क्षणमें आरम्भ करता है दस सम्य, जीवकी इच्छा झानादि उसी इच्छित विषय पर सुक जाती है।

डसी क्षणमें आत्माके भीतरसे बुरे काम करनेमें भय, शङ्का ओर छजा हथा अच्छे कामेंके करनेमें अभय, निःशङ्कता ओर अ नन्दोत्साह उठता है। वह जीवात्माकी ओरसे नहीं किन्तु परमात्माकी ओरसे है। और जब जीवात्मा शुद्ध होके परमात्माका विचार करनेमें तत्पर रहता है उसको उसी समय दोनों प्रत्यक्ष होते हैं। जब परमे-श्वरका प्रत्यक्ष होता है तो अनुमानादिसे परमेश्वरके झान होनेमें क्या सन्देह है १ क्योंकि कार्यको देखके कारणका अनुमान होता है।

प्रश्न-ईश्वर व्यापक है वा कि ी देश विशेषमें रहता है ?

उतर—ज्यापक है क्योंकि जो एकदेशमें रहता तो सर्वान्तर्यामी, सर्वज्ञ, सर्वितयन्ता, सबका स्रष्टा, सबका धर्ता और प्रख्यकर्ता नहीं हो सकता। अप्राप्त देशमें कर्ताकी क्रियाका असम्भव है।

प्रश्न-परमेश्वर दयालु और न्यायकारी हे वा नहीं १ उत्तर-है।

प्रश्न—ये दोनों गुण परस्पर विरुद्ध हैं जो न्याय करे तो द्वा स्नोर द्वा करे तो न्याय छूट जाय। क्योंकि न्याय उसको कहते हैं कि जो कर्मोंके अनुसार न अधिक न न्यून सुख दुःख पहुंचाना। स्नोर द्वा उसको कहते हैं जो अपराधीको विना दण्ड दिये छोड़ देना।

उत्तर — न्याय और दयाका नाममात्र ही भेद है क्योंकि जो न्यायसे प्रयोजन सिद्ध होता है वही दयासे । दण्ड दनेका प्रयोजन है कि मनुष्य अपराध करनेसे बन्द होकर दुःखोंको प्राप्त न हों । वही ह्या कहाती है जो पराये दुःखोंका हुराना । और जैसा अर्थ द्या कौर न्यायका तुमने किया वह ठीक नहीं, क्योंकि जिसने जैसा जित-ना बुरा कम किया हो उसको उतना वैसाही दण्ड देना चाहिये उसीका नाम न्याय है । और जो अपराधीको दण्ड न दिया जाय तो द्याका नाश होजाय । क्योंकि एक अपराधी डांकूको छोड़ देनेसे सहस्रों धर्मा-रमा पुरुषोंको दुःख देना है जब एकके छोड़नेमें सहस्रों मनुष्योंको दुःख श्राप्त होता है वह दया किस प्रकार हो सकती है । दया वही है कि

उस डांक्रूको कारागारमें रखकर पाप करनेसे बचाना डांक्रू पर और उस डांक्रूको मार देनेसे अन्य सहस्रों मनुष्यों पर दया प्रकाशित होती है।

प्रश्त—िकर दया और न्याय दो शब्द क्यों हुए १ क्यों कि उन दोनोंका अर्थ एक ही होता है तो दो शब्दोंका होना व्यर्थ है इसिख्ये एक शब्दका रहना तो अच्छा था। इससे क्या विदित होता है कि इया और न्यायका एक प्रयोजन नहीं है।

उत्तर —क्या एक अर्थके अनेक नाम और एक नामके अनेक अर्थ नहीं होते ?

प्रश्न-होते हैं।

उत्तर -तो पुनः तुमको शङ्का क्यों हुई ?

प्रश्न—संसारमें सुनते हैं, इसलिये।

उत्तर—संसारमें तो सबा मूठा दोनों सुननेमें आता है परन्तु उसको विचारसे निश्चय करना अपना काम है। देखो ईश्वर की पूर्ण दया तो यह है कि जिसने सब जीवों के प्रयोजन सिद्ध होने के अर्थ जगतमें सकल पदार्थ उत्पन्न करके दान दं रक्खे हैं। इससे भिन्न दूसरी बड़ी दया कौनसी है १ अब न्यायका फल प्रत्यक्ष दीखता है कि सुख दुःखकी व्यवस्था अधिक और न्यूनवासे फलको प्रकाशित कर रही है। इन दोनोंका इतना ही भेद है कि जो मनमें सबको सुख होने और दुःख छूटनेकी इच्छा और किया करना है वह दया और बाह्य चेष्टा अर्थात् बन्धन छेननादि यथावज दण्ड देना न्याय कहाता है। दोनोंका एक प्रयोजन यह है कि सबको पाप और दुःखोंसे पृथक कर देना।

प्रश्न-ईश्वर साकार है वा निराकार ?

उत्तर—निराकार, क्योंकि जो साकार होता तो व्यापक न होता। जब व्यापक न होता तो सर्वज्ञादि गुण भी ईश्वरमें न घट सकते क्योंकि परिमित वस्तुमें गुण कम्म स्वभाव भी परिमित रहते हैं तथा शीतोष्ण, क्षुषा, तृषा और रोग, दोप, छेदन, भेदन आदिसे रहित नहीं हो सकता। इससे यही निश्चित है कि ईश्वर निराकार है। जो साकार हो तो उसके नाक, कान, आंख आदि अवयर्षोका बनानेहारा हुसरा होना चाहिये। क्योंकि जो संयोगसे उत्पन्न होता है उसको संयुक्त करनेवाला निराकार चेतन अवश्य होना चाहिये। जो कोई यहां ऐसा कहे कि ईश्वरने स्वेन्छासे आप ही आप अपना शरीर बना लिया तो भी वही सिद्ध हुआ कि शरीर वननेके पूर्व निराकार था। इसल्ये परमात्मा कभी शरीर धारण नहीं करता किन्तु निराकार होनेसे सब जगत्को सृक्ष्म कारणोंसे स्थूलाकार बना देता है।

प्रश्न-ईश्वर सर्वशक्तिमान् है वा नहीं ?

उत्तर—है, परन्तु जैसा तुम सर्वशिक्तमान् शब्दका अर्थ जानते हो वैसा नहीं । किन्तु सर्वशिक्तमान शब्दका यही अर्थ है कि ईश्वर अपने काम अर्थात् उत्पत्ति, पालन, प्रलय आदि और सब जीवोंके पुण्य पापकी यथायोग्य व्यवस्था करनेमें किंचित् भी किसीकी सहाग्यता नहीं लेता । अर्थात् अपने अनन्त सामर्थ्यसे ही सब अपना काम पूर्ण कर लेता है ।

प्रश्न – हम तो ऐसा मानते हैं कि ईश्वर चाहे सो करे क्योंकि उस के ऊपर दूसरा कोई नहीं है।

उत्तर—वह क्या चाहता है १ जो तुम कहो कि सब कुछ चाहता और कर सकता है तो हम तुमसे पूछते हैं कि परमेश्वर अपनेको मार अनेक ईश्वर बता स्वयं अविद्वान चोरी व्यभिचारादि पाप कर्म कर और दुःखी भी हो सकता है १ जैसे ये काम ईश्वरके गुण कर्म स्वभः-बसे विरुद्ध हैं, तो जो तुम्हारा कहना है कि वह सब कुछ कर सकता है यह कभी नहीं घट सकता। इसिल्ये सर्वशक्तिमान शब्दका अर्थ जो हमने कहा वही ठीक है।

प्रश्त—परमेश्वर सादि है वा अनादि ? **उत्तर—अनादि अर्था**त् जिसका आदि कोई कारण वा समय न हो उसको सनादि काते हैं इत्यादि सब अर्थ प्रथम समुझासमें कर दिया है देख छीजिये।

प्रश्न-परमेश्वर क्या चाहता है ?

उत्तर—सबकी भल.ई ओर सबके लिये सुख चाहता है परन्तु कतन्त्रताके साथ किसीको विना पाप किये पराधीन नहीं करता।

प्रश्न-परमेश्वरकी स्तुति प्रार्थना ओर उपासना करनी चाहिये बा नहीं ?

उत्तर-करनी चाहिये।

प्रश्त—क्या स्तुति अदि करनेसे ईश्वर अपना नियम छोड़ स्तुति प्रार्थना करनेवालेका पार ह्युड़ा देगा।

**उत्तर**—नहीं ।

' प्रश्न—तो फिर स्तुति प्रार्थना क्यों करना १ डत्तर—उनके करनेका फल अन्य ही है।

प्रश्न---क्या है ?

डत्तर—स्तुतिसे ईश्वरमें प्रीति उसके गुण कम स्वभावसे अपने गुण कम स्वभावका सुधारना, प्रार्थनासे निरिममानता उत्साह और सहायका मिळना, उपासनासे परब्रह्मसे मेळ और उसका साक्षात्कार होना।

प्रश्न-इनको २८८ करके समम्पाओ। उत्तर-जैसे--

स पर्यगाच्छकमकायमव्रणमस्नाविर शृद्धमपाप-विद्धम् । कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथा तथ्य-तोऽर्थान् व्यद्धाच्छाः वतीभ्यः समाभ्यः ॥

यजु०॥ अ॰ ४०। मं॰ ८॥ [ ईश्वरकी स्तुति ] वह परमात्मा सबमें व्यापक शीवकारी: और अनन्त बळवान जो शुद्र, सर्वज्ञ, सबका अन्तयांमी, सर्वोपरि विराज- मान, सनातन, स्वयंसिद्ध, परमेश्वर अपनी जीव स्वरूप सनातन अनादि प्रजाको अपनी सनातन विद्यासे यथावत् अयोंका बोध वेदद्वारा कराता है वह सगुण स्तुति अर्थान् जिस २ गुणसे सिहत परमेश्वरकी स्तुति कराना यह सगुण, (अकाय) अर्थात् वह कभी शारीर धारण वा जन्म नहीं लेता जिसमें छिद्र नहीं होता नाड़ी आदिके बन्धनमें नहीं आता और कभी पापाचरण नहीं करना जिसमें क्लेश दुःख अज्ञान कभी नहीं होता इत्यादि जिस २ राग द्वेषादि गुणोंसे पृथक् मानकर परमेश्वरकी स्तुति करना है वह निगुण स्तुति है। इसका फछ यह है कि जैसे परमेश्वरके गुण हैं वैसे गुण कम स्वभाव अपने भी करना। जैसे वह न्यायकारी है तो आप भी न्यायकारी होंवे। और जो केवल भांडके समान परमेश्वरके गुणकोर्त्तन करना जाता और अपने चरित्र नहीं सुधारता उसकी स्तुति करना व्यर्थ है॥ पार्थना—

यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते । तया मामच मेधयाऽग्नेमेधाविनं कुरु स्वाहा॥१॥ यज्ञः ३२।१४॥ तेजोऽसि तेजो मयि धेहि । वीर्य्यमसि वीर्य्यं मयि धेहि । बलमसि बलं मयि धेहि । ओजोऽस्योजो मयि धेहि । मन्युरसि मन्युं मयि धेहि । सहोऽसि सहो मयि धेहि ॥२॥ यज्ञ० १६ । ६॥

यज्ञाग्रतो दृरमुदैति देवन्तदु सुप्तस्य तथेवैति। दृरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकन्तन्मे मनः शिव-संकल्पमस्तु॥३॥

येन कर्माण्यपसो मनीविणो यज्ञे कृण्यन्ति विद

थेबु घीराः। यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवमङ्करपमस्तु ॥ ४ ॥

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु । यस्मान्न ऋते किंचन कर्मे कियते तन्मे मनः चिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ५ ॥

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम्। येन यज्ञस्तायते सप्त होता तन्मे मनः शिवसङ्क-स्पमस्तु॥६॥

यस्मिन्नृचः साम यज्ञुंशिक यस्मिन्यतिष्ठिता रथनाभाविवाराः। यस्मिँश्चित्रश्यविमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥ ७॥

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभि-र्षाजिनऽइव । हृत्प्रतिष्ठं यद्जिरं जविष्ठं तन्मे मनः विावसङ्कलपमस्तु ॥८॥ यज्ञ० ३४ । १—६॥

हे अपने ! अर्थात् प्रकाशस्वरूप परमेश्वर आप[की] छपासे जिस बुद्धिकी उपासना विद्वान, ज्ञानी ओर योगी छोग करते हैं उसी बुद्धिसे युक्त हमको इसी वर्तमान समयमें बुद्धिमान् आप कीजिये॥ १॥

आप प्रकाशस्वरूप हैं कृपा कर मुम्ममें भी प्रकाश स्थापन कीजिये। आप अनन्त पराक्रमयुक्त हैं इसिंखये मुम्ममें भी ॄ कृपाकटा-इस्से पूर्ण पराक्रम धरिये। आप अनन्त बख्युक्त हैं [इसिंखये] मुम्ममें श्री बढ़ धारण कीजिये। आप अनन्त सामर्थययुक्त हैं इसिंखये मुम्मको भी पूर्ण सामर्थ्य दीजिये। आप दुष्ट काम और दुष्टों पर क्रोधकारी हैं मुक्तको भी वैसाही कीजिये। आप निन्दा, स्तुति और स्वअपरा-धियोंका सहन करनेवाले हैं, कृपासे मुक्तको भी वैसाही कीजिये॥२॥

है दयानिथे ! आपकी कुपासे मेरा मन जागतेमें दूर २ जाता, दिव्यगुणयुक्त रहता है और वहीं सोते हुए मेरा मन सुपुष्तिको प्राप्त हो ता वा स्वप्नमें दूर २ जानेके समान व्यवहार करता, सब प्रकाशकोंका प्रकाशक, एक वह मेरा मन शिवसङ्करूप अर्थात् अपने और दूसरे प्राणियोंके अर्थ करयाणका सङ्करूप करनेहारा होवे। किसीकी हानि करनेकी इच्छायुक्त कभी न होवे॥ ३॥

हे सर्वान्तर्यामी ! जिससे कर्म करनेहारे धर्मयुक्त विद्वान् लोग यह जोर युद्धादिमें कर्म करते हैं जो अपूर्व सामर्थ्ययुक्त, पूजनीय और प्रजाके भीतर रहनेवाला है वह मेरा मन धर्म करनेकी इच्छायुक्त होकर सर्घमको सर्वथा छोड देवे ॥ ४॥

जो उत्ऋष्ट झान और दूसरेको चितानेहारा निश्चयात्मकवृत्ति है खौर जो प्रजाओं में भीतर प्रकाशयुक्त और नाशरहित है जिसके विना कोई कुछ भी कर्म नहीं कर सकता वह मेरा मन शुद्ध गुणोंकी इच्छा करके दुष्ट गुणोंसे पृथक् रहे ॥ ५ ॥

हे जगदीश्वर ! जिससे सब योगी छोग इन सब भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान व्यवहारोंको जानते जो नाशरिहत जीवात्माको परमात्माके साथ मिलके सब प्रकार त्रिकालक करता है जिसमें ज्ञान और क्रिया है, पांच ज्ञानेन्द्रिय बुद्धि और आत्मायुक्त रहता है, उस योगरूप यज्ञको जिससे बढ़ाते हैं वह मेरा मन योग विज्ञानयुक्त होकर अबि- शादि क्लेशोंसे पृथक् रहें।। ई।।

है परम विद्वान् परमेश्वर । आपकी कृपासे मेरे मनमें जैसे रथके मध्य धुरामें आरा छो रहते हैं वैसे भृग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, और जिसमें अर्थवेद भी प्रतिष्ठित होता है और जिसमें सर्वह्र सर्वष्ट्यापक प्रजाका साक्षी चित्त चेतन विदित होता है वह मेरा मन अविद्याका अभाव कर विद्यापिय सदा रहे ॥ ७ ॥

हे संविनयन्ता ईश्वर ! जो भेरा मन रस्सीसे घोड़ोंके समान अथवा घोड़ोंके नियन्ता सारथीके तुल्य मनुष्योंको अत्यन्त इधर उधर दिजाता है, जो हृदयमें प्रतिष्ठित गतिमान और अत्यन्त वेग वाला है वह मेरा मन सब इन्द्रियोंको अधर्माचरणसे रोकके धर्मपथमें सदा चलाया करे ऐसी छुपा मुक्त पर कीजिये ॥ ८॥

अग्ने नय सुपथा रायेऽअस्मान् विश्वानि देव वयु-नानि विद्वान् । युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम ॥ यज्ज० ४० । १६ ॥

हे सुखंक दाता स्वप्रकाशस्य सबको जानने तरे परमात्मन्। आप हमको श्रेष्ठ मार्गसे सम्पूर्ण प्रज्ञानोंको प्राप्त कराइये श्रीर जो हममें इंटिल पापाचरणरूप मार्ग है उससे पृथक् की जिये। इसीलिये हम लोग नम्रतापूर्वक आपकी बहुत सी स्तुति करते हैं कि आप हमको पवित्र करें।

मानो महान्तमुत मा नोऽर्भकं मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम्। मा नो वधी पितरं मोत मातरं मानः पियास्तन्वो रुद्र रीरिषः॥ यज्ञ० १६। १५॥

हे रह ! (दुष्टोंको पापके दुःखखरूप फलको देके रूलाने वाले पर-मेश्वर ) आप हमारे छोटे वड़े जन, गर्भ, माता, पिता और प्रिय वन्धु-वर्ग तथा शरीरोंका हनन करनेके लिये प्रेरित मत कीजिये, ऐसे मार्गसे हमको चलाइये जिससे हम आपके दण्डनीय न हों।

असतो मा सद्गमय तमसो मा ज्योतिर्गमय मृत्यो-र्माऽमृतं गमयेति ॥ शतपथब्रा० [१४।३।१।३०]

हे परमगुरो परमात्मन ! आप हमको असत् मार्गसे पृथक् कर सन्मार्गमें प्राप्त कीजिये । अविद्यान्धकारको ह्युड़ाके विद्यारूप सूर्यको प्राप्त कीजिये और मृत्यु रोगसे प्रकारक मोक्षके आनन्दरूप अमृ-तको प्राप्त कीजिये। अर्थात् जिस २ दोष वा दुर्गुणसे परमेश्वर और अपनेको भी प्रथक मानके परमेश्वरकी प्रार्थना कीजाती है वह विधि निषेत्रमुख होनेसे सुगुण, निर्गुण प्रार्थना । जो मनुष्य जिस बातकी प्रार्थना करता है उसको वैसा ही बर्तमान करना चाहिये अर्थात जैसे सर्वोत्तम बुद्धिकी प्राप्तिके छिये परमेश्वरकी प्रार्थना करे उसके छिये जितना अपनेसे प्रयत्न होसके उतना किया करे । अर्थात अपने प्रत्या-र्थके उपरान्त प्रार्थना करनी योग्य है। ऐसी प्रार्थना कभी न करनी चाहिये और न परमेश्वर उसका स्वीकार करता है कि. जैसे हे पर-मेश्वर । आप मेरे शब्बओंका नाश, मुम्मको सबसे बडा, मेरे ही प्रतिश्वा और मेरे आधीन सब हो जायं इत्यादि क्योंकि जब दोनों शत्र एक दूसरेके नाशके लिये प्रार्थना करें तो क्या परमेश्वर दोनोंका नाश करहे को कोई कहे कि जिसका प्रेम अधिक उसकी प्रार्थना सफल हो जावे तब हम कह सकते हैं कि जिसका ब्रेम न्यून हो उसके शत्रुका भी न्यून नाश होना चाहिये। ऐसी मूर्खताकी प्रार्थना करते २ कोई ऐसी भी प्रार्थना करेगा हे परमेश्वर । आप हमको रोटी बनाकर खिळाइये, मेरे मकानमें माड़ छगाइये, वस धो दीजिये और खेती बाडी भी कीजिये इस प्रकार जो परमेश्वरके भरोसे आखसी होकर बैठे रहते वे महा-मूंब हैं क्योंकि जो परमेश्वरकी पुरुषार्थ करनेकी आज्ञा है उसको जो कोई तोडेंगा वह सुख कभी नहीं पावेगा। जैसे-

### कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतर्थ समाः॥

यजु•॥ अ• ४•। मं० २॥

परमेश्वर आज्ञा देता है कि मनुष्य सौ वर्षपर्यन्त अर्थात् जब-तक जीवे तबतक कर्म करता हुआ जीनेकी इच्छा करे आईसी कभी न हो। देखो सृष्टिके बीचमें जितने प्राणी अथवा अप्राणी हैं वे सब अपने २ कर्म और यह करते ही रहते हैं। जैसे पिपीछिका आदि सदा प्रयम्न करते, पृथिवी यादि सदा घूमते और वृक्ष आदि सदा बढ़ते खटते रहते हैं वैसे यह दृष्टान्त मनुष्योंको भी प्रहण करना योग्य है। जैसे पुरुषार्थ करते हुए पुरुषका सहाय दूसरा भी करता है वैसे धर्मसे पुरुषार्थ करते हुए पुरुषका सहाय दूसरा भी करता है वैसे धर्मसे पुरुषार्थी पुरुषका सहाय ईश्वर भी करता है। जैसे काम करने वाले पुरुषको भृत्य करते हैं और अन्य आलसीको नहीं, देखनेकी इच्छा करने बौर नेत्रवालेको दिखलाते हैं अन्येको नहीं, इसी प्रकार परमेश्वर भी सबके उपकार करनेकी प्रार्थनामें सहायक होता है हानिका रक्त कर्ममें नहीं। जो कोई नुड़ मीठा है ऐसा कहता है उसको गुड़ प्राप्त वा उसको स्वाद प्राप्त कभी नहीं होता और जो यत्न करता है उसको शीव वा विलम्बसे गुड़ मिल ही जाता है। अब तीसरी उपासना

समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसो निवेशितस्यात्मनि यत्सुखं अवेत् । न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा स्वयन्तदन्तःकरणेन गृह्यते ॥

यह उपनिषद्का वचन है—जिस पुरुषके समाधियोगसे अवि-श्वादि मल नष्ट होगये हैं, आत्मस्य होकर परमात्मामें चित्त जिसने अगाया है, उसको जो परमात्माके योगका सुख होता है वह वाणीसे कहा नहीं जा सकता क्योंकि उस आनन्दको जीवात्मा अपने अन्तः-करणसे प्रहण करता है। उपासना शब्दका अर्थ समीपस्थ होना है। अष्टांग योगसे परमात्माके समीपस्थ होने और उसको संविष्यापी, सर्वान्तर्यामी रूपसे प्रसन्ध करनेके लिये जो २ काम करना होता है। वह २ सब करना चाहिये, अर्थान्—

### तत्राऽहिंसासलास्तेयब्रद्मचर्यापरिग्रहा यमाः॥

योगसूत्र [साधनपादे । स्॰ ३० ]

इत्यादि सूत्र पातश्वलयोगशास्त्रके हैं —जो उपासनाका आरम्भ करना चाहे उसके क्रिये यही आरम्भ है कि वह किसीसे वैर न रक्से, सर्वदा सबसे प्रीति करे, सत्य बोले, मिथ्या कभी न बोले, चोरी न करे, सत्यव्यवहार करे, जितेन्द्रिय हो, ल्रम्पट न हो और निरिभमानी हो, अभिमान कभी न करे। ये पांच प्रकारके यम मिलके उपासना योगक। प्रथम अङ्ग है।

## शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः॥

योग • [साधनपादे । सू • ३२ ]

राग द्वेष छोड़ भीतर और जलादिसे बाहर पवित्र रहे, धर्मसे पुरु-षार्थ करनेसे लाभमें न प्रसन्नता और हानिमें न अप्रसन्नता करे प्रसन्न होकर आलस्य छोड़ सदा पुरुषार्थ किया करे, सदा दुःख सुलोंका सहन और धर्म ही का अनुष्ठान करे अधर्मका नहीं। सर्वदा सत्य शाखोंको पढ़े पढ़ावे सत्पुरुषोंका सङ्ग करे और "ओइम्" इस एक परमातमाके नामका अर्थ विचार कर नित्यप्रति जप किया करे। अपने आत्माको परमेश्वरकी आज्ञानुकूल समर्पित कर देवे। इन पांच प्रकारके नियमोंको मिलाके उपासनायोगका दूसरा अंग कहाता है। इसके आगे छः अंग योगशास्त्र व भाग्वेदादिभाष्यभूमिका \* में देख होवें। जब उपासना करना चाहें तब एकान्त शुद्ध देशमें जाकर, आसन लगा, प्राणायाम कर बाह्य विषयोंसं इन्द्रियोंको रोक, मनको नाभिप्रदेशमें वा हृदय, कण्ठ, नेत्र, शिखा अथवा पीठके मध्य हाडमें किसी स्थान पर स्थिर कर अपने आत्मा और परमात्माका विवेचन करके परमात्मामें मग्न होजानेसे संयमी होवें। जब इन साधनोंको करता है तब उसका आत्मा और अन्तःकरण पवित्र होकर सत्यसे पूर्ण होजाता है। नित्यप्रति ज्ञान विज्ञान बढ़ाकर मुक्ति तक पहुंच जाता है। जो आठ प्रहरमें एक घडी भर भी इस प्रकार ध्यान **करता**. है वह सदा उन्नतिको प्राप्त होजाता है। वहां सर्वज्ञादि गुणोंके साथ परमेश्वरकी उपासना करनी सगुण और द्वेष, रूप, रस, गन्ध.

**अम्**गवेदादिभाष्यभूमिकाके उपासना विययमें इनका वर्णन है। खा॰ द॰

ससम

स्पर्शादि गुणोंसे पृथक् मान अतिसूक्ष्म आत्माके भीतर बाहर ज्यापक परमेश्वरमें दृढ़ स्थित होजाना निंगुणोपासना कहाती है। इसका पळ — जैसे शीतसे आतुर पुरुषका अग्निके पास जानेसे शीत निवृत्त हो जाता है वैसे परमेश्वरके समीप प्राप्त होनेसे सब दोष दुःख छूट कर परमेश्वरके गुण, कर्म, स्वभावके सदृश जीवात्माके गुण कर्म स्वभाव पवित्र होजाते हैं। इसिक्ष्ये परमेश्वरकी स्तुति प्रार्थना और उपासना अवश्य करनी चाहिये। इससे इसका फळ पृथक् होगा। परन्तु आत्माका बळ इतना बढ़ेगा बह पर्वतके समान दुःख प्राप्त होने पर भी न घवरावेगा और सबको सक्ष्म कर सकेगा। क्या यह छोटी बात है ? ब्यौर जो परमेश्वरकी स्तुति, प्रार्थना और उपासना नहीं करता वह क्रतन्त और महामूर्ख भी होता है ५ व्योक्ति जिस परमात्माने इस जगन्त्रके सब पदार्थ जीवोंको सुखके छिये दे रक्खे हैं उसका गुण भूछ जाना ईश्वर ही को न मानना क्रनम्तता और मूर्खता है।

प्रश्त—जब परमेश्वरके श्रोत्र नेन्नादि इन्द्रियां नहीं हैं फिर वह इन्द्रियोंका काम कैसे कर सकता है ?

उत्तर---

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स श्र-णोत्यकर्णः । स वेत्ति विश्वं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरम् यं पुरुषं पुराणम् ॥ श्वेताश्वेतर उपनिषद्

[अ०३ मं• १६]

यह उपनिषद्का वचन है। परमेशवरके हाथ नहीं परन्तु अपनी शिक्तिए हाथसे सबका रचन ग्रहण करता, पग नहीं परन्तु व्यापक होनेसे सबसे अधिक वेगवान, चक्षुका गोलक नहीं परन्तु सबको यथावन देखता, श्रोत्र नहीं तथापि सबको बातें सुनता, अन्तःकरण नहीं परन्तु सब जगन्को जानता है और उसको अवधिसहित जाननेबाला कोई भी नहीं। उसीको सनातन, सबसे श्रेष्ठ सबमें पूर्ण होनेसे

सुसुस्तास] परमेश्वरका महान् सामर्थ्य । २४५ पुरुष कहते हैं। वह इन्द्रियों और अन्तःकरणसे [होनेवाले] काम अपने सामर्थ्यसे करता है।

, प्रश्न—उसको बहुतसे मनुष्य निष्क्रिय और निर्गुण कहते हैं 🍳 उत्तर—

## न तस्य कार्य्यं करणं च विद्यते न तत्समश्चाभ्य-धिकश्च दृश्यते । परास्य शक्तिर्विविधेव अपूर्यते स्वाभाविकी शानबलिकया च ॥

[ श्वेताश्वेतर उपनिषद् । अ० ६ । मं• ८ ]

यह उपनिषद्का वचन है। परमात्मासे कोई तद्भूप कार्य्य और उसको करण अर्थात् साथकतम दूसरा अपेक्षित नहीं न कोई उसके तुल्य और न अधिक है। सर्वोत्तमशक्ति अर्थात् जिसमें अनन्त ज्ञान, अनन्त बळ और अनन्त क्रिया है वह स्वाभाविक अर्थात् सहज उसमें सुनी जाती है। जो परमेश्वर निष्क्रिय होता तो जगत्की उत्पत्ति स्थिति प्रलय न कर सकता। इसळिये वह विसु तथापि चेतन होनेसे उसमें क्रिया भी है।

प्रश्न-जब वह क्रिया करता होगा तब अन्तवाछी क्रिया होती

होगी वा अनन्त १

उत्तर—जितने देश कालमें क्रिया करनी उचित सममता है उतने ही देश कालमें क्रिया करता है। न अधिक न न्यून, क्योंकि वह विद्वान है।

प्रश्न-परमेश्वर अपना अन्त जानता है वा नहीं ?

इत्तर—परमात्मा पूर्ण शानी है क्यों कि ज्ञान उसको कहते हैं कि जिससे ज्योंका त्यों जाना जाय अर्थात जो पदार्थ जिस प्रकारका हो उसको उसी प्रकार जाननेका नाम ज्ञान है। जब परमेश्वर अनन्त है हो अपनेको अनन्त ही जानना ज्ञान, उससे विकद्व अज्ञान अर्थात् अनन्तको सान्त और सान्तको अनन्त जानना अप कहाता है।

सिसम

"यथार्थदर्शनं झानिमिति" जिसका जैसा गुण कम स्वभाव हो उस पदार्थको वैसा ही जानकर मानना ही झान और विडान कहाता है, [इससे ] उलटा अझान। इसलिये—

क्छेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः । योग सू० [ समाधिपादे । सू० २४ ]

जो अविद्यादि व्हेश, कुशल, अकुशल, इष्ट, अनिष्ट और मिश्र फल्रदायक कर्मोकी वासनासे रहित है वह सब जीवोंसे विशेष ईश्वर कहाता है।

प्रस्त---

ईरवरासिद्धेः ॥१॥ [ सां० अ० १ स्० १२ ] प्रमाणाभावान्न तत्सिद्धिः ॥२॥ सां० ५ । १० ॥ सम्बन्धाभावान्नानुम्नतम् ॥३॥ सां० ५ । ११ ॥

प्रत्यक्षसे घट सकते ईश्वरकी सिद्धि नहीं होती।। १ ॥ क्योंकि जब उसकी सिद्धिमें प्रत्यक्षही नहीं तो अनुमानादि प्रमाण ् नहीं हो सकता।। २ ॥

और व्याप्ति सम्बन्ध न होनेसे अनुमान भी नहीं हो सकता। पुनः प्रत्यक्षानुमानके न होनेसे शब्दप्रमाण आदि भी नहीं घट सकते। इस कारण ईश्वर की सिद्धि नहीं हो सकती॥ ३॥

उत्तर—यहां ईश्वरकी सिद्धिमें प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है। और न ईश्वर जगन्का उपादान कारण है। और पुरुषसे विख्क्षण अर्थात् सर्वत्र पूर्ण होनेसे परमान्माका नाम पुरुष, और शरीरमें शयन करनेसे जीवका भी नाम पुरुष है, क्योंकि इसी प्रकरणमें कहा है—

प्रधानदाक्तियोगाच्चेत्सङ्गापत्तिः ॥१॥ सत्तामात्रा-च्चेत्सर्वेश्वर्यम् ॥२॥ अुतिरपि प्रधानकार्यत्वस्य ॥३॥ सांक्यस्० अ० ५ । स्॰ ८ । ६ । १२ ॥ यदि पुरुषको प्रधानशक्तिका योग हो तो पुरुषमें सङ्ग्रापित होजाय अर्थात् जैसे प्रकृति सुक्ष्मसे मिलकर कार्यरूपमें सङ्गत हुई है वैसे पर-मेश्वर भी स्थूल हो जाय। इसलिये परमेश्वर जगत्का उपादान कारण नहीं किन्तु निमित्त कारण है।। १।।

जो चेतनसे जगत्की उत्पत्ति हो तो जैसा परमेश्वर समप्रैश्वर्ययुक्त है वैसा संसारमें भी सर्वेश्वर्यका योग होना चाहिये, सो नहीं है। इस-छिये परमेश्वर जगत्का उपादान कारण नहीं किन्तु निमित्त कारण है॥ २॥

क्योंकि उपनिषद् भी प्रधान ही को जगत्का उपादान कारण कहती है।। ३॥ जैसे—

अजामेकां लोहितशुक्षकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृज-मानां स्वरूपाः ॥ खेता० अ० ४ मं० ५ ॥

जो जनमरहित सत्व, रज, तमोगुणरूप प्रकृति है वहीं स्वरूपा-कारसे बहुत प्रजारूप हो जाती है अर्थात् प्रकृति परिणामिनी होनेसे ध्वस्थान्तर हो जाती है और पुरुष अपरिणामी होनेसे वह ध्वस्था-तर होकर दूसरे रूपमें कभी नहीं प्राप्त होता, सदा कूटस्थ निर्विकार रहता है। इसिछिये जो कोई कपिछाचार्थ्यको ध्वनीश्वरवादी कहता है जानो वही अनीश्वरवादी है, कपिछाचार्थ्य नहीं। तथा भीमांसा धर्मका धर्मीसे ईश्वर। वैशेषिक और न्याय भी "आत्मा" शब्दते अनीश्व-रवादी नहीं क्योंकि सर्वज्ञत्वादि धर्मयुक्त और "अतित सर्वत्र व्याप्नो-तीत्यात्मा" जो सर्वत्र व्यापक और सर्वज्ञादि धर्मयुक्त सव जीवोंका धारमा है उसको मीमांसा वैशेषिक और न्याय ईश्वर मानते हैं।

प्रश्न—ईश्वर अवतार लेता है वा नहीं ?

उत्तर—नहीं क्योंकि "अज एकपात्" (३४। ४३) "सपर्व्यगा-च्छुकमकायम्" [ ४०। ८ ] ये यजुर्वेदके वचन हैं। इत्यादि वचनोंसे [ सिद्ध है कि ] परमेश्वर जन्म नहीं छेता। प्रश्न--

## यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिभैवति भारत । अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

भ० गीः [ अ० ४। रहो। ७ ]

श्रीकृष्णजी कहते हैं कि जब २ धर्मका छोप होता है तब २ में

शरीर धारण करता हूं।

उत्तर—यह बात वेद्दिकद्ध होनेसे प्रमाण नहीं और ऐसा हो सकता है कि श्रीकृष्ण धर्मात्मा और धर्मकी रक्षा करना चाहते थे कि मैं युग २ में जन्म लेके श्रेष्ठोंकी रक्षा और दुष्टोंका नाश करूं तो कुछ दोष नहीं। क्योंकि "परोपकाराय सतां विभूतयः" परोपकारके छिये सत्पुरुषोंका तन, मन, धन होता है। तथापि इससे श्रीकृष्ण ईश्वर बहीं हो सकते।

प्रश्न—जो ऐसा है तो संसारमें चौबीस ईश्वरके अवतार होते हैं

और इनको अवतार क्यों मानते हैं?

षत्तर—वेदार्थके न जानने, सम्प्रदायी छोगोंके बहकाने और अपने बाप अविद्वान होनेसे भ्रमजालमें फैसके ऐसी २ अप्रामाणिक बातें करते और मानते हैं।

प्रश्न--- जो ईश्वर अवतार न छेवे तो कंस रावणादि दुर्घ्टोंका नास कैसे हो सके ?

द्तर—प्रथम जो जनमा है वह अवस्य मृत्युको प्राप्त होता है। जो ईरवर अवतार शरीर धारण किये विना जगनकी उत्पत्ति, स्थिति, प्रख्य करता है उसके सामने कंस और रावणादि एक कीड़ीके समान भी नहीं। वह सर्वव्यापक होनेसे कंस रावणादिके शरीरोंमें भी परिपृण् हो रहा है, जब चाहे उसी समय मर्भच्छेदन कर नाश कर सकता है। भढ़ा इस अनन्त गुण, कर्म, खभावयुक्त परमात्माको एक श्रुद्र अविके मारनेके क्यि जन्म मरणयुक्त कहनेवालेको मृश्वयनसे अन्य

इंछ विशेष उपमा मिल सकती है ? और जो कोई कहे कि भक्तज-नोंके उद्धार करनेके लिये जन्म लेता है तो भी सत्य नहीं क्योंकि जो भक्तजन ईरवरकी आज्ञानुकूल चलते हैं उनके उद्घार करनेका सामर्थ्य **ई**श्वरमें है । क्या ईश्वरके पृथिवी, सूर्य, चन्द्रादि जगत्**का** बनाने, धारण और प्रलय करने रूप कर्मोंसे कंस रावणादिका वध और गोवर्धनादि पर्वतींका उठाना बड़े कर्म हैं ? जो कोई इस सृष्टिमें परमे-श्वरके कर्मोंका विचार करे तो "न भूतो न भविष्यति" ईश्वरके सदृश कोई न है, न होगा। और युक्तिसे भी ईश्वरका जन्म सिद्ध नहीं होता। जैसे कोई अनन्त आकाशको कहे कि गर्भमें आया वा मूठीमें धर लिया, ऐसा कहना कभी सच नहीं हो सकता क्योंकि आकाश अनन्त और सबमें व्यापक है इससे न आकाश बाहर आता और न भीतर जाता, वैसे ही अनन्त सर्वज्यापक परमात्माके होनेसे उसका **धा**ना जाना कभी सिद्ध नहीं हो सकता। जाना वा आना वहां हो सकता है जहां न हो। क्या परमेश्वर गर्भमें व्यापक नहीं था जो कहीं से आया ? और बाहर नहीं था जो भीतरसे निकला ? ऐसा ईश्वरके विषयमें कहना और मानना विद्याहीनोंके सिवाय कौन कह और मान सकेगा। इसलिये परमेश्वरका जाना आना जन्म मरण कभी सिद्ध नहीं हो सकता इसलिये "ईसा" आदि भी ईश्वरके अवतार नहीं ऐसा समभ हेना। क्योंकि राग, द्वेष, क्षया, तृषा, भय, शोक, दुःख, सुख, जन्म, मरण आदि गुणयुक्त होनेसे मनुष्य थे।

प्रश्न-ईश्वर अपने भक्तोंके पाप क्षमा करता है वा नहीं ?

क्तर—नहीं, क्योंकि जो पाप ध्रमा करे तो उसका न्याय नष्ट होजाय और सब मनुष्य महापापी होजायें। क्योंकि ध्रमाकी बात सुन ही के उनको पाप करनेमें निभयता और उत्साह होजाये। जैसे राजा अपराधको ध्रमा करदे तो वे उत्साहपूर्वक अधिक अधिक बड़े २ पाप करें क्योंकि राजा अपना अपराध ध्रमा कर देगा और उनको भी भरोसा होजाय कि राजासे हम हाथ जोड़ने आदि चेष्टा कर अपने क्षपराध हुड़ा लेगे और जो अपराध नहीं करते वे भी अपराध कर-नेसे न डरकर पाप करनेमें प्रवृत्त हो जायंगे इसल्यिये सब कर्मीका फल यथावन देना ही ईश्वरका काम है क्षमा करना नहीं।

प्रश्न-जीव स्वतन्त्र है वा परतन्त्र १

उत्तर—अपने कर्त्तत्र्य कर्मोंमें स्वतन्त्र स्मीर ईरवरकी व्यवस्थामें परतन्त्र है "स्वतन्त्रः कर्त्ता" यह पाणिनीय व्याकरणका सृत्र है जो स्वतन्त्र अर्थात् स्वाधीन है वही कर्त्ता है।

प्रश्न-स्वतन्त्र किसको कहते हैं ?

खतर — जिसके आधीन शरीर, प्राण, इन्द्रिय और अन्तःकरणा-दि हों। जो खतन्त्र न हो तो उसको पाप पुण्यका फल प्राप्त कभी नहीं हो सकना क्योंकि जैसे मृत्य स्वामी और सेना, सेनाध्यक्षकी आज्ञा अथवा प्रेरणासे युद्धमें अनेक पुरुषोंको मारके अपराधी नहीं होते, वैसे परमेश्वरकी प्रेरणा और आधीनतासे काम सिद्ध हों तो जीवको पाप वा पुण्य न लगे। उस फलका भागी प्रेरक परमेश्वर होवे। नरक स्वर्ग अर्थात दुःख मुखकी प्राप्ति भी परमेश्वरको होवे। जैसे किसी मनुष्यने शक्तविशेषसे किसीको मारडाला तो वही मारने-बाला पकड़ा जाता है और वही दण्ड पाना है, शक्त, नहीं। वैसे ही पराधीन जीव पाप पुण्यका भागी नहीं हो सकना। इसल्लिये अपने सामर्थ्यांतुकूल कर्म करनेमें जीव खतन्त्र परन्तु जब वह पाप कर चुकता है तब ईश्वरकी व्यवस्थामें पराधीन होकर पापके फल भोगता है। इसल्लिये कर्म करनेमें जीव स्वतन्त्र और पापके दुःखरूपफल भोग-नेमें परतन्त्र होता है।

प्रश्न—जो परमेश्वर जीवको न बनाता और सामर्थ्य न देता तो ष्रीव कुछ भी न कर सकता इसल्पिये परमेश्वरकी प्रेरणा ही से जीव कर्म करता है।

उत्तर—जीव उत्पन्न कभी न हुआ, अनादि है जैसा ईश्वर और जगतका उपादान कारण निमित्त है और जीवका शरीर तथा इन्द्रिः बोंके गोलक परमेश्वरके बनाये हुए हैं परन्तु वे सब जीवके आधीन हैं। जो कोई मन, कम वचनसे पाप पुण्य करता है वह भोका है ईश्वर नहीं। जैसे किसी कारीगरने पहाड़से लोहा निकाला, उस लोहेको किसी व्यापारीने लिया, उसकी दुकानसे लोहारन ले तलवार बनाई, उससे किसी सिपाहीने तलवार लेली, फिर उससे किसीको मारडाला। अब यहां जैसे वह लोहेको उत्पन्न करने, उससे लेने, तलवार बनानेकले और तलवारको पकड़ कर राजा दण्ड नहीं देता किन्तु जिसने कलवारसे मारा वही दण्ड पाता है। इसी प्रकार शरीरादिकी उत्पत्ति करनेवाला परमेश्वर उसके कमोका भोका नहीं होता किन्तु जीवको भुगानेवाला होता है। जो परमेश्वर कर्म करता तो कोई जीव पाप वहीं करता क्योंकि परमेश्वर पित्र और धार्मिक होनेसे किसी जीव को पाप करनेमें प्रेरणा नहीं करता। इसलिये जीव अपने काम करनेमें स्वतन्त्र है। जैसे जीव अपने कामोंके करनेमें स्वतन्त्र है वैसे ही परमेश्वर भी अपने कामोंके करनेमें स्वतन्त्र है।

प्रश्त—जीव और ईश्वरका स्वरूप, गुण, कर्म और स्वभाव कैसा है ? उत्तर—दोनों चेतनस्वरूप हैं। स्वभाव दोनोंका पवित्र, अविनाशी और धार्मिकता आदि है। परन्तु परमेश्वरके सृष्टिकी उत्पत्ति, स्थिति, प्रख्य, सबको नियममें रखना, जीवोंको पाप पुण्योंके फख देना आदि धर्मयुक्त कर्म हैं। और जीवके सन्तानोत्पत्ति उनका पाळन, शिल्पविद्यादि अच्छे बुरे कर्म हैं। ईश्वरके नित्यज्ञान, आनन्द, अनन्त बख आदि गुण हैं और जीवके—

इच्छाद्रे पप्रयक्षसुखदुःखज्ञानान्यात्मनो लिङ्गमिति॥

न्यायस्॰ वर्श्वा॰ १। स्॰ १०] प्राणापाननिमेषोन्मेषमनोगतीन्द्रियान्तरविकाराः

सुखदुःखेच्छाद्वेषौ प्रयत्नाश्चात्मनो लिङ्गानि ॥ वैशेषिक सू० [ अ०३। आ०२। सू०४] (इच्छा) पदार्थोंकी प्राप्तिकी अभिखाषा (हेष) दुःखादिकी अनिच्छा वैर (प्रयत्न) पुरुषांध बल (सुख) आनन्द (दुःख) विखाप अप्रसन्नता (ज्ञान) विवेक पहिचानना ये तुल्य हैं परन्तु वैशेषिकमें (प्राण) प्राणको बाहरसे भीतरको लेना (अपान) प्राणवायुको बाहर निकालना (निमेप) आंखको मीचना (उन्मेष) आंखको बोलना (प्रान) निश्चय स्मरण और अहङ्कार करना (गित) चलना (इन्द्रिय) सब इन्द्रियोंका चलाना (अन्तरविकार) भिन्न २ क्षुया, तृषा, हर्ष, शोकादियुक्त होना ये जीवात्माके गुण परमात्मासे भिन्न हैं उन्हींसे आत्माकी प्रतीति करनी, क्योंकि वह स्थूल नहीं है। जवतक आत्मा देहमें होता है तभीतक ये गुण प्रकाशित रहते हैं और जब जीव शरीर छोड़ चला जाता है तब ये गुण शरीरमें नहीं रहते। जिसके होनेसे जो हों और न होनेसे न हों वे गुण उसीके होते हैं जैसे दीप और सुर्यादिके न होनेसे प्रकाशादिका न होना और होनेसे होना है, वैसे ही जीव और परमात्माका विज्ञान गुणद्वारा होता है।

प्रभ—परमेश्वर त्रिकालदर्शी है इससे भविष्यत्की बातें जानता है। वह जैसा निश्चय करेगा जीव वैसा ही करेगा। इससे जीव स्व-तन्त्र नहीं। और जीवको ईश्वर दण्ड भी नहीं दे सकता, क्योंकि जैसा ईश्वरने अपने ज्ञानसे निश्चित किया है वैसा ही जीव करता है।

उत्तर—ईश्वरको त्रिकालदर्शी कहना मूर्वताका काम है, क्योंकि जो होकर न रहे वह भूतकाल और न होके होवे यह भविष्यत्काल कहाता है। क्या ईश्वरका कोई ज्ञान होके नहीं रहता तथा न होके होता है। क्या ईश्वरका कोई ज्ञान होके नहीं रहता तथा न होके होता है। इसल्ये परमेश्वरका ज्ञान सदा एकरस, अखण्डित वर्तमान रहता है। भूत, भविष्यत जीवोंके लिये है। हां! जीवोंके कर्म की अपेश्वासे त्रिकालज्ञता ईश्वरमें है स्वतः नहीं। जैसा स्वतन्त्रतासे जीव करता है, वैसा ही सर्वज्ञतासे ईश्वर जानता है। खोर जैसा ईश्वर जानता है वैसा जीव करता है। अर्थात् भूत, भविष्यत्, वर्तमानके ज्ञान और फल देनेमें ईश्वर स्वतन्त्र खोर जीव किंचित् वर्तन

## समुख्लास] जीव और ईरवरमें भेद । २५३

मान और कर्म करनेमें स्वतन्त्र है। ईरवरका अनादि ज्ञान होनेसे बिसा कर्मका ज्ञान है वैसा ही इण्ड देनेका भी ज्ञान अनादि है। दोनों ज्ञान उसके सत्य हैं। क्या कर्मज्ञान सन्ना और दण्डज्ञान मिथ्या कभी हो सकता है १ इसल्यि इसमें कोई दोष नहीं आता।

प्रभ-जीव शरीरमें भिन्न विभु है वा परिच्छिन ?

इसर—परिच्छिन्न, जो विभु होता तो जानत्, स्वान, सुषुप्ति, मरण, जनम, संयोग, वियोग, जाना आना कभी नहीं हो सकता। इसिख्ये जीवका स्वरूप अरूपझ, अरूप अर्थात् सूक्ष्म है और परमेश्वर खतीव सूक्ष्मात्सूक्ष्मतर, अनन्त, सर्वझ, और सर्वव्यापक स्वरूप है। इसीख्यि जीव और परमेश्वरका व्याप व्यापक सम्बन्ध हैं।

प्रश्न—जिस जगहमें एक वस्तु होती है उस जगहमें दूसरी वस्तु नहीं रह सकती। इसिलये जीव और ईश्वरका संयोग सम्बन्ध हो सकता है व्याप्य व्यापक नहीं।

इत्तर—यह नियम समान आकारवा रे पदार्थों में घट सकता है, बसमानाकृतिमें नहीं। जैसे छोहा स्थूल, अग्नि सूक्ष्म होता है, इस कारणसे छोहेमें विद्युत् अग्नि व्यापक होकर एक ही अवकाशमें दोनों रहते हैं, वैसे जीव परमेश्वरसे स्थूल और परमेश्वर जीवसे सूक्ष्म होनेसे परमेश्वर व्यापक और जीव व्याप्य है। जैसे यह व्याप्य व्यापक सम्बन्ध जीव ईश्वरका है वैसे ही सेव्य सेवक, आधाराधेय, स्वामिशृत्य, राजा प्रजा और दिता पुत्र आदि भी सम्बन्ध है।

प्रभ—जो पृथक् २ हैं तो—

#### श्रज्ञानं त्रग्न ॥१॥ अहं त्रग्नास्मि ॥२॥ तत्यमसि ॥५॥ अयमात्मा त्रग्न ॥४॥

वेदोंके इन महावाक्योंका अर्थ क्या है ?

उत्तर-ये वेदवाक्य ही नहीं हैं, किन्तु ब्राह्मणप्रन्थोंके वचन हैं और इनका नाम महाबाक्य कहीं धत्मशासोंमें नहीं किसा। अर्थ--- (अहम्) में (ब्रह्म) अर्थात् ब्रह्मस्थ (अस्मि) हूं। यहां तात्स्थ्यो पाधि है। जैसे "मञ्चाः क्रोशन्ति" मञ्चान पुकारते हैं। मञ्चान जड़ हैं, उनमें पुकारतेका सामर्थ्य नहीं, इसिलये मञ्चस्थ मनुष्य पुकारते हैं। इसी प्रकार यहां भी जानना। कोई कहे कि ब्रह्मस्थ सब पदार्थ हैं, पुनः जीवको ब्रह्मस्थ कहनेमें क्या विशेष है है इसका उत्तर यह है कि सब पदार्थ ब्रह्मस्थ हैं परन्तु जैसा साधम्ययुक्त निकटस्थ जीव है वैसा अन्य नहीं और जीवको ब्रह्मका झान और मुक्तिमें वह ब्रह्मके साक्षात् सम्बन्धमें रहता है। इसिलये जीवका ब्रह्मके साथ तात्स्थ्य व तत्सहचरितोपाधि अर्थात् ब्रह्मका सहकारी जीव है। इससे जीव और ब्रह्म एक नहीं। जैसे कोई किसीसे कहे कि में और यह एक हैं क्यात् अविरोधी हैं, वैसे जो जीव समाधिस्थ परमेशवरमें प्रेमवह होकर निमग्न होता है वह कह सकता है कि मैं और ब्रह्म एक वर्थात् ब्रह्मिकर निमग्न होता है वह कह सकता है कि मैं और ब्रह्म एक वर्थात् ब्रह्मिकर निमग्न होता है वह कह सकता है कि मैं और ब्रह्म एक वर्थात् ब्रह्मिकर निमग्न होता है वह कह सकता है कि मैं और ब्रह्म एक वर्थात् ब्रह्मिकर निमग्न होता है वह कह सकता है कि मैं और ब्रह्म एक वर्थात् ब्रह्मिकर निमग्न होता है वह कह सकता है कि में और ब्रह्म एक वर्थात् ब्रह्मिक साथ एकता कह सकता है।

प्रभ—अच्छा तो इसका वर्ध कैसा करोगे ? (तत्) प्रद्या (त्वं) तू जीव (असि) है। हे जीव ! (त्वम्) तू (तत्) वह प्रद्या (असि) है।

ज्तर—तुम 'तत्' शब्दसे क्या छेते हो १ "ब्रह्म"। ब्रह्मपदकी बनुवृत्ति कहांसे छाये १

#### सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयं ब्रह्म ॥

इस पूर्ववाक्यसे। तुमने इस छान्दोग्य उपनिषद्का दर्शन भी नहीं किया। जो वह देखी होती तो वहां ब्रह्म शब्दका पाठ ही नहीं है ऐसा मूंठ क्यों कहते। किन्तु छान्दोग्यमें सो—

### सदेव सोम्येदमद्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्॥

[ छा॰ प्र० ६। ख॰ २ | मं• १ ]

## समुल्लास] जीव और ईश्वरमें भेद। २५५

ऐसा पाठ है वहां ब्रह्म शब्द नहीं । प्रभ—तो आप तच्छब्दसे क्या छेते हैं ? उत्तर—

## स य एषोणिमा ॥ ऐतदात्म्यमिद्धं सर्वे तत्स-स्यः स आत्मा तत्वमसि खेतकेतो इति ॥

छा• [प्र० : खं• ८ मं० ६। ७]

वह परमत्मा जानने योग्य है। को वह असन्तसूक्ष्म और इस सब जगत् और जीवका आत्मा है। वही सत्यस्त्ररूप और अपना भारमा आप ही है। हे श्वेतकेतो त्रियपुत्र !

#### तदात्मकस्तदन्तर्यामी त्वमसि॥

उस परमात्मा अन्तर्यामीसे त्युक है। यही अर्थ उपनिषदोंसे अविरुद्ध है। क्योंकि —

य आत्मनि तिष्ठन्नात्म्रनोन्तरोयमात्मा न वेद् पर्यात्मा शरीरम्। आत्मनोन्तरोयमयति सत स्थात्मान्तर्याम्यमृतः॥

यह बृहद्रारण्यकका वचन है। महर्षि याज्ञवल्क्य अपनी सी सैत्रेयीसे कहते हैं कि हे मेंत्रेयि। जो परमेश्वर आत्मा अर्थात् जीवमें स्थित और जीवात्मासे भिन्न है जिसको मूड जीवात्मा नहीं जानता कि वह परमात्मा मेरेमें ज्यापक है, जिस परमेश्वरका जीवात्मा शरीर सर्थात् जैसे शरीरमें जीव रहता है वैसे ही जीवमें परमेश्वर ज्यापक है, जीवात्मासे भिन्न रहकर जीवके पाप पुण्योंका साक्षी होकर उनके कि जीवोंको देकर नियममें रखता है, वही अविनाशी स्वरूप तेरा भी अन्तर्यामी आत्मा अर्थात् तेरे भीतर ज्यापक है उसको तू जान। स्या कोई इत्यादि वचनोंका अन्यथा अर्थ कर सकता है १ "अयमात्मा स्वा अर्थात् समाधिदशामें जब योगीको परमेश्वर प्रत्यक्ष होता है तब वह कहता है कि यह जो मेरेमें व्यापक है वही ब्रह्म सर्वत्र व्यापक है। इसिल्ये जो आजकलके वेदान्ती जीव ब्रह्मकी एकता करते हैं वे वेदान्तशास्त्रको नहीं जानते।

प्रश्न—

अनेन आत्मना जीवेनानुप्रविश्य नामरूपे व्याक-रवाणि ॥ छां० प्र० ६.खं० ३ मं २ ॥ तत्सृष्ट्वातदेवानुप्राविद्यात् ॥ तैत्ति०ब्रा० अ० ६॥

परमेश्वर कहता है कि मैं जगत और शरीरको रचकर जगत्में व्यापक और जीवरूप होके शरीरमें प्रविष्ट होता हुआ नाम और रूपकी व्यारूया करूं। परमेश्वरने उस जगत् और शरीरको बना कर उसमें वही प्रविष्ट हुआ इत्यादि श्वृतियोंका अर्थ दूसरा कैसे कर सकोगे ?

डत्तर — जो तुम पद, पदार्थ और वाक्यार्थ जानते तो ऐसा अनर्थ कभी न करते ! क्योंकि यहां ऐसा समम्हो एक प्रवेश और दूसरा अनुप्रवेश अर्थात् पश्चात् प्रवेश कहाता है परमेश्वर शरीरमें प्रविष्ट हुए जीवोंके साथ अनुप्रविष्टके समान होकर वेदद्वारा सब नाम रूप आदि की विद्याको प्रकट करता है । और शरीरमें जीवको प्रवेश करा आप जीवके भीतर अनुप्रविष्ट हो रहा है । जो तुम अनुशब्दका अर्थ जानते तो वैसा विपरीत अर्थ कभी न करते ।

प्रश्न—"सोऽयं देवदत्तो य उष्णकाले काश्यां दृष्टः स इदानी प्राष्ट्र-द्समये मथुरायां दृश्यते" अर्थात् जो देवदत्ता मेंने उष्णकालमें काशीमें देखा था उसीको वर्षा समयमें मथुरामें देखता हूं। यहां काशी देश उष्णकालको छोड़कर शरीरमात्रमें लक्ष्य करके देवदत्ता लक्षित होता है वैसे इस भागत्यागलक्षणासे ईश्वरका परोक्ष देश, काल, माया, उपाधि और जीवका यह देश, काल, अविद्या और अल्पज्ञता उपाधि छोड़ चेतनमात्रमें लक्ष्य देनेसे एक ही ब्रह्म वस्तु दोनोंम लक्षित होता है।

## सञ्ज्ञास] देदान्तियोंके छः पदार्थ । २५७

इस भागत्यागळक्षणा अर्थात् कुछ प्रहण करना और कुछ छोड़ देना जेसा सर्वज्ञत्वादि वाच्यार्थ ईश्वरका और अल्पज्ञ वादि वाच्यार्थ जीवका छोड़ कर चेतनमात्र ळक्ष्यार्थका प्रहण करनेसे अद्वेत सिद्ध होता है यहां क्या कह सकोगे ?

उत्तर-प्रथम तुम जीव और ईश्वरको नित्य मानते हो वा अनित्य १

प्रश्त—इन दोनोंको उपाधिजन्य किल्पन होनेसे अनित्य मानते हैं १ - उत्तर—उस उपाधिको नित्य मानते हो वा अनित्य । - प्रश्त—इसारे मतमें—

जीवेकाौ च विशुद्धाचिद्विभेदस्तु तयोर्द्वयोः। अविद्या तिवतोर्योगः षडस्माकमनादयः॥१॥ कार्य्योपाधिरयं जीवः कारणोपाधिरीश्वरः। कार्य्यकारणतां हित्वा पूर्णबोधोऽविद्याष्ट्यते॥२॥

ये "संशेपशारीरिक" और "शारीरिकमाष्य" में कारिका है हम वेदान्ती छः पदार्थों अर्थात् एक जीन, दूसरा ईश्वर, तीसरा ब्रह्म, चौथा जीव और ईश्वरका विशेष भेद, पांचवां अविद्या अज्ञान और छठा अविद्या और चेतनका योग इनको अनादि मानते हैं। परन्तु एक ब्रह्म अनादि, अनन्त और अन्य पांच अनादि सान्त हैं, जैसा कि प्रागभाव होता है। जबतक अज्ञान रहता है तबतक ये पांच रहते हैं और इन पांचकी अति विदित नहीं रीती इसल्यि अनादि और ज्ञान होनेके पश्चात् नष्ट हो जाते हैं। इसल्यि सान्त अर्थात् नाश वाले कहाते हैं।

कत्तर —यह तुम्हारे दोनों श्लोक अगुद्ध हैं क्योंकि अविद्याके योग के विना जीव और मायाके योगके विना ईश्वर तुम्हारे मतमें सिद्ध नहीं हो सकता। इससे "तिच्चतोर्योगः" जो छठा पदार्थ तुमने गिना है वह नहीं रहा क्योंकि वह अविद्या माया जीव ईश्वरमें चरितार्थ डोगया और ब्रह्म तथा माया और विद्यांक योगके विना ईश्वर नही बनता फिर ईश्वरको अविद्या और ब्रह्मसे प्रथक गिनना न्यर्थ है। इसलिये दो ही पदार्थ अर्थात् ब्रह्म और अविद्या तुम्हारे मतमें सिद्ध हो सकते हैं छः नहीं। तथा आपका प्रथम कार्योपाधि कारणोपाधिसे जीव और ईश्वरका सिद्ध करना तब हो सकता है कि जब अनन्त. नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वभाव, सर्वन्यापक ब्रह्ममें अज्ञान सिद्ध करें। जो उसके एक देशमें स्वाश्रय और स्वविषयक अज्ञान अनादि सर्वत्र मानोगे तो सब बहा शुद्ध नहीं हो सकता। और जब एक देशमें अज्ञान मानोगे तो वह परिच्छित्र होनेसे इधरउधर आता-जाता रहेगा। जहां २ जायगा वहां २ का ब्रह्म अज्ञाती और जिस २ देशको छोड-ता जायगा उस २ देशका बुद्धा ज्ञानी होता रहेगा ता किसी देशके ब्रह्म को अनादि शुद्ध ज्ञानयुक्त न कह सकोगे। और जो अज्ञानकी सीमामें ब्रह्म है वह अज्ञानको जानेगा। बाहर और भीतरके ब्रह्मके दुकडे हो जायेंगे। जो कही कि दकड़ा हो जाओ, ब्रह्मकी क्या हानि तो अखण्ड नहीं। स्वीर जो अखंड है तो अज्ञानी नहीं। तथा ज्ञानके अभाव वा विपरीत ज्ञान भी गुण होनेसे किसी द्रव्यके साथ नित्य सम्बन्धसे रहेगा। यदि ऐसा है तो समवाय सम्बन्ध होनेसे अनित्य कभी नहीं हो सकता। और जैसे शरीरके एक देशमें फोड़ा होनेसे सर्वत्र दुःख फैल जाता है। वैसे ही एक देशमें अज्ञान सुख दुःख क्लेशोंकी **ए**पलक्यि होनेसे सब ब्रह्म दुःखादिके अनुभवसे ही कार्योपाधि अर्थात् अन्तः करणकी उपाधिके योगसे ब्रह्मको जीव मानोगे तो हम पूछते हैं कि ब्रह्म व्यापक है वा परिच्छित्र ? जो कही व्यापक और हबाधि परिच्छित्र है अर्थात् एक देशी और पृथक् २ हैं तो अन्तःकरण चलता फिरता है वा नहीं ?

**उत्तर—[वेदान्ती] चलता फिरता है।** 

प्रश्न—[सिद्धान्ती] अन्तःकरणके साथ वद्य भी चळता फिरता है वा स्थिर रहता है ? **उत्तर**—[वेदान्ती] स्थिर, रहता है।

प्रश्न-[सिद्धान्ती] जब अन्तःकरण जिस २ देशको छोडुता है चस २ देशका ब्रह्म अज्ञानरहित और जिस २ देशको प्राप्त होता है उस उस देशका शुद्ध बहा अज्ञानी होता होगा। वैसे क्षणमें ज्ञानी और व्यज्ञानी ब्रह्म होता रहेगा । इससे मोक्ष और बन्ध भी क्षणभक्त होगा खोर जैसे अन्यके देखेका अन्य स्मरण नहीं कर सकता वैसे कलकी देखी सुनी हुई वस्तु वा बातका झान नहीं रह सकता। क्योंकि जिस समय देखा सुना था वह दूसरा देश और दूसरा काल, जिस समय स्मरण करता वह दूसरा देश और काल है। जो कही कि ब्रह्म एक है सो सर्वज्ञ क्यों नहीं ? जो कही कि अन्तःकरण भिन्न २ हैं, इससे वह भी भिन्न २ हो जाता होगा, तो वह जड है उसमें ज्ञान नहीं हो सकता। जो कही कि न केवलं ब्रह्म और न केवल अन्तः करणको ज्ञान होता है किन्तु अन्तःकरणस्थ चिदाभासको ज्ञान होता है तो भी चेतन ही को अन्तःकरण द्वारा झान हुआ तो वह नेत्रद्वारा अल्प अल्पन्न क्यों है ?। इसिंख्ये कारणोपाधि और कार्योपाधिके योगसे ब्रह्म जीव और ईश्वर नहीं बना सकोगे। किन्तु ईश्वर नाम ब्रह्मका है और ब्रह्मसे भिन्न अनादि अनुत्पन्न और अमृतस्वरूप जीवका नाम जीव है। जो तुम कही कि जीव चिदाभासका नाम है तो वह क्षणभक्क होनेसे नष्ट हो जायगा तो मोक्षका सुख कौन भोगेगा १ इसल्यि ब्रह्म जीव और जीव ब्रह्म कभी न हुआ न है और न होगा।

प्रश्न — तो "सदेव सोम्येद्रमम आसीदेकमेवाद्वितीयम्" (छान्दोग्य०) खद्वैतसिद्धि केसी होगी ? हमारे मतमें तो ब्रह्मसे पृथक कोई सजातीय, विजातीय और स्वगत अवयवोंके मेद न होनेसे एक ब्रह्म ही सिद्ध होता है। जब जीव दूसरा है तो अद्वैतसिद्धि केसे हो सकती है ?

, उत्तर — इस भ्रममें पड़ क्यों डरते हो ? विशेष्य विशेषण विद्याका ज्ञान करो कि उसका क्या फछ है। जो कहो कि "व्यावर्तक विशेषण भवतीति" विशेषण भेदकारक होता है तो इतना और भी मानो कि **"प्रवर्त्तक प्रकाशकमिप विशेषण भवतीति" विशेषण प्रवर्त्तक और प्रका-**शक भी होता है। तो समस्रो कि अद्वेत विशेषण शहाका है। इसमें ब्यावर्तक धर्म यह है कि अद्वेत वस्तु अर्थात् जो अनेक जीव और तत्व हैं उनसे ब्रह्मको पृथक करता है और विशेषणका प्रकाशक धर्म यह है कि ब्रह्मके एक होनेकी प्रवृत्ति करता है जैसे "अस्मिन्नगरेऽ-द्वितीयो धनाड्यो देवदत्तः । अस्यां सेनायामद्वितीयः शूरवीरो विक्रम-सिंहः"। किसीने किसीसे कहा कि इस नगरमें अद्वितीय धनाट्य देवदत्त और इस सेनामें अद्वितीय शूरवीर विक्रमसिंह है। इससे क्या सिद्ध हुआ कि देवदत्तके सदृश इस नगरमें दूसरा धनांढ्य और इस सेनामें विक्रमसिंहके समान दूसरा शूरवीर नहीं है न्यून तो हैं। और पृथिवी आदि जड पदार्थ, पश्चोदि प्राणि और वृक्षादि भी हैं उनका निषेध नहीं हो संकता । वैसे ही ब्रह्मके सदृश जीव वा प्रकृति नहीं है किन्तु न्यून तो है। इससे यह सिद्ध हुआ कि ब्रह्म सदा एक है और जीव तथा प्रकृतिस्थ तत्व अनेक हैं। उनसे भिन्न कर ब्रह्मके एकत्व-को सिद्ध करने हारा अद्भेत वा अद्भितीय विशेषण है। इससे जीव वा प्रकृतिका और कार्य्यरूप जगत्का अभाव और निषेध नहीं हो सकता, किन्तु ये सब हैं परन्तु ब्रह्मके तुल्य नहीं । इससे न अद्वैतसिद्धि और न दैतसिद्धिकी हानि होती है। धवराहटमें मत पड़ी सोचो और समको ।

प्रश्न-- ब्रह्मके सत्, चित, आनन्द और जीवके अस्ति, भाति, प्रियरूपसे एकता होती है। फिर क्यों खण्डन करते हो १

कत्तर — किंचित् साधर्म्य मिळनेसे एकता नहीं हो सकती। जैसे पृथिवी जड़, दृश्य है वैसे जल और अग्नि आदि भी जड़ और दृश्य हैं, इतनेसे एकता नहीं होती। इनमें वैधर्म्य मेदकारक अर्थात् विरुद्ध धर्म जैसे गन्य, रुक्षता, काठिन्य आदि गुण पृथिवी और रस द्रवत्व कोमलत्वादि धर्म जल और रूप दाहकत्वादि धर्म अग्निके होनेसे एक-ता नहीं। जैसे मनुष्य और कीड़ी आंखसे देखते, मुखसे खाते और

पगसे चलते हैं तथापि मनुष्यकी आकृति दो पग और कीड़ीकी आकृति अनेक पग आदि भिन्न होनेसे एकता नहीं होती, वैसे परमेश्वरके अनन्त ज्ञान, आनन्द, बल किया निर्धानित्त्व और व्यापकता जीवसे और जीवके अल्बज्ञान, अल्पबल, अल्पस्वरूप सब भ्रान्तित्व और परिच्छिन्नतादि गण ब्रह्मसे भिन्न होनसं जीव और परमेश्वर एक नहीं क्योंकि इनका स्तरूप भी (परमेश्वर अति सूक्ष्म और जीव इससे कुछ स्थूल होनेसे ) भिन्न है ।

प्रश्न-

## अथोदरमन्तरं ऋक्ते । अथ तस्य भयं भवति द्वितीयाद्वे भयं भवति॥

यह बहुदारण्यकका वचन है जो बहा और जीवमें थोडा भी मेद करता है उसको भय प्राप्त होता है क्योंकि दूसरे ही से भय होता है। उत्तर—इसका अर्थ यह नहीं है किन्तु जो जीव परमेश्वरका निषध वा किसी एक देश कालमें परिच्छित्र परमात्माको माने वा उसकी आज्ञा और गुण कर्म खभावसे विरुद्ध होवे अथवा किसी दूसरे मनुष्यसे बैर करे उसको भय प्राप्त होता है क्योंकि द्विनीय बुद्धि अर्थात **ईरवरसे भुम्मसे कुछ सम्बन्य नहीं तथा किसी मनुष्यसे कहे कि तम** को मैं कुछ नहीं समकता तू मेरा कुछ भी नहीं कर सकता वा किसी की हानि करता और दुःच देता जाय तो उसको उनसे भय होता है। धीर सब प्रकारका अविरोध हो तो वे एक कहाते हैं जैसा संसारमें कहते हैं कि देवदत्त, यज्ञदत्त विष्णुमित्र एक हैं अर्थात् अविरुद्ध हैं। विरोध न रहनेसे सुख और विरोध से दुःख प्राप्त होता है।

प्रश्न-ग्रह्म और जीवकी सदा एकता अनेकता रहती है वा कभी दोनों मिछके एक भी होते हैं वा नहीं ?

उत्तर-अभी इसके पूर्व कुछ उत्तर देदिया है परन्तु साधर्म्य अन्वयभावसे एकता होती है। जैसे आकाशसे मूर्त द्रव्य जड़त्व

होनेसे और कभी पृथक् न रहनेसे एकता और आकाशसे विस्तृ सुक्ष्म अरूप, अनन्त आदि गुण और मूर्तके परिच्छिन्न द्वरयत्व आदि वैधर्म्यसे भेद होता है अर्थात जैसे पृथिव्यादि द्रव्य आकाशसे भिन्न कभी नहीं रहते क्योंकि अन्वय अर्थान् अवकाशके विना मूर्त द्रव्य कभी नहीं रह सकता और व्यतिरेक वर्धात् स्वरूपसे भिन्न होनेसे पृथक्ता है वैसे ब्रह्मके व्यापक होतेसे जीव और पृथिवी आदि द्रव्य उससे अलग नहीं रहते और स्वरूपसे एक भी नहीं होते जैसे घरके बनानेके पूर्व भिन्न २ देशमें मट्टी लकडी और होहा आदि पदार्थ आकाश ही में रहते हैं जब घर बन गया तब भी आकाशमें हैं और जब वह नष्ट होगया अर्थात् उस घरके सब अवयव मिन २ देशमें प्राप्त होगये तब भी आकाशमें हैं अर्थात् तीन कालमें आकाशसे भिन्छ नहीं होसकते और स्वरूपसे भिन्न होनेसे न कभी एक थे, हैं और होंगे. इसी प्रकार जीव तथा सब संसारक पदार्थ परमेश्वरमें व्याप्त होनेसे परमात्मासे तीनों कालोंमें भिन्न और स्वरूप भिन्न होनेसे **एक कभी नहीं दोते आजक**लके वेदान्तियोंकी दृष्टि काणे पुरुषके समान अन्वयकी ओर पड़के व्यतिरेकभावसे छूट विरुद्ध होगई है। कोई भी ऐसा द्रव्य नहीं है कि जिसमें सगुणनिर्गुणता, अन्वय, व्यति-रेक, साधर्म्य वैधर्म्य और विशेषण भाव न हो ।

प्रश्न—परमेश्वर सगुण है वा निर्गुण १ उत्तर—दोनों प्रकार है।

प्रश्न-भला एक घरमें दो तलकार कभी रह सकती हैं। एक पदार्थमें सगुणता और निर्गुणता कैसे रह सकती हैं ?

उत्तर—जैसे जड़के रूपादि गुण हैं और चेतनके झानादि गुण जड़में नहीं हैं वैसे चेतनमें इच्छादि गुण हैं और रूपादि जड़के गुण नहीं हैं इसल्यि "यद्गुणैम्सड वर्तमान तत्सगुणम्" "गुणेभ्यो यन्निर्गतं पृथम्भूतं तन्निर्गुणम्" जो गुणोंसे सहित वह सगुण और जो गुणोंसे रिदत वह निर्गुण कहाता है अपन २ स्वाभाविक गुणोंसे सहित और दूसरे विरोधीके गुणोंसे रहित होनेसे सब पदार्थ सगुण और निर्गुण हैं कोई भी ऐसा पदार्थ नहीं है कि जिसमें केवल निर्गुणता वा केवल समुणता हो किन्तु एक ही में सगुणता और निर्गुणता सदा रहती है । वैसें ही परमेश्वर अपने अनन्त ज्ञान, क्लादि गुणोंसे सहित होनेसे सगुण और रूपादि जड़के तथा देवादि जीवके गुणोंसे पृथक् होनेसे निर्गुण कहाता है।

प्रश्न—संसारमें निराकारको निर्गुण और साकारको सगुण कहते हैं अर्थात जब परमेश्वर जनम नहीं छेता तब निर्गुण और जब अवतार छेता है तब सगुण कहाता है।

उत्तर—यह कल्पना केवल अज्ञानी और अविद्वानोंकी है। जिन-को विद्या बड़ी होती वे पशुक समान यथा तथा बड़ीया करते हैं। जैसें सिन्निपात ज्वरयुक्त मनुष्य अण्डवण्ड बकता है वेसे ही अविद्वानोंके कहे वा लेखको व्यथ समस्ता चाहिये।

प्रश्न-परमेश्वर रागी है वा विरक्त ?

उत्तर—दोनोंमें नहीं ! क्योंकि राग अपनेसे भिन्न उत्तम पहार्थी-में होता है, स्रो परमेश्वरसे कोइ पदार्थ प्रथक् वा उत्तम नहीं इसिख्ये उसमें रागका सम्भव नहीं । और जो प्राप्तको छोड़ देवे उसको विरक्ष कहते हैं। ईश्वर ज्यापक होनेसे किसी पदार्थको छोड़ ही नहीं सकता, इसिख्ये विरक्त भी नहीं।

प्रश्त-ईश्वरमें इच्छा है वा नहीं ?

उत्तर—वैसी इच्छा नहीं । क्योंकि इच्छा भी अप्राप्त, उत्तम और जिसकी प्राप्तिसे सुख विशेष होते [ उसकी होती है ] तो ईरवरमें इच्छा होसके, न उससे कोई अप्राप्त पदार्थ, न कोई उससे उत्तम और पूर्ण सुखयुक्त होनेसे सुखकी अभिलाषा भी नहीं है, इसिख्ये ईरवरमें इच्छाका तो सम्भव नहीं किन्तु इक्षण अर्थात् सब प्रकारकी विद्याका दर्शन और सब सुष्टिका करना कहाता है वह ईक्षण है। इत्यादि सक्षिप्त विषयोंसे ही सज्जन लोग बहुत िस्तरण कर लेंगे।

ध्यब संक्षेपसे ईश्वरका विषय लिखकर वेदका विषय लिखते हैं॥ यस्मादचो अपातक्षत् यजुर्यस्मादपाकषत्। सामा-नि यस्य लोमान्यथर्वाङ्गिरसो मुखम् । स्कम्भन्तं ब्रु हि कतमः स्विदेव सः॥ अथर्व १०।२३।४।२०॥

जिस परमात्मासे भगवेद, यजुर्वेद, सामवद और अथवेवेद प्रका-शित हुये हैं। वह कौनसा देव है इसका। (उत्तर) जो सबको उत्पन्न करके धारण कर रहा है वह परमात्मा है।

स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यद्धाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ यजु० ४० । ८ ॥

' जो स्वयम्भू, सर्वव्यापक, शुद्ध, सनातन, निराकार परमेश्वर है बह सनातन जीवरूप प्रजाके कल्याणार्थ यथावत् रीतिपूर्वक वेद द्वारा सब विद्याओंका उपदेश करता है।

प्रश्न-परमेश्वरको आप निराकार मानते हो वा साकार १ इत्तर--- निराकार मानते हैं।

प्रश्न-जब निराकार है तो वेदविद्याका उपदेश विना मुखके बर्णीबारण कैसे होसका होगा ? क्योंकि वर्णीके उच्चारणमें ताल्वादि स्थान, जिह्नाका प्रयत्न अवश्य होना चाहिये।

**७त्तर--परमेश्वरके सर्वशक्तिमान् और सर्वव्यापक होनेसे जीवों** को अपनी व्याप्तिसे वेदविद्याके उपदेश करनेमें कुछ भी मुखादिकी अपेक्षा नहीं है, क्योंकि मुख जिह्नासे वर्णीबारण अपनेसे भिन्नके बोध होनेके लिये किया जाता है, कुछ अपने लिये नहीं। क्योंकि मुख जिह्नाके व्यापार करे विना ही मनमें अनेक व्यवहारोंका विचार और शब्दोचारण द्वोता रहता है। कानोंको अंगुलियोंसे मूंदके देखो, सुनी कि विना मुख जिह्ना ताल्वादि स्थानोंके कैसे २ शब्द हो रहे हैं, वैसे नीवोंको अन्तर्यामीरूपसे उपदेश किया है। किन्तु केवछ दूसरोंको समम्मानेक ियं उचारण करनेकी आवश्यकता है। जब परमेश्वर निराकार सर्वज्यापक है तो अपनी अखिछ वेद्विद्याका उपदेश जीवस्य खारूपसे जीवानामें प्रकाशित कर देता है। फिर वह मनुष्य अपने मुखसे उचारण करके दूसरोंको सुनाता है इसिलये ईश्वरमें यह दोष नहीं आ सकता।

प्रश्न--- किनके आत्मामें कब वेदोंका प्रकाश किया। उत्तर---

## अग्नेऋ ग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात्सामवेदः॥

शत० [११। ४। २।३]

प्रथम सृष्टिकी आदिमें परमात्माने अग्नि, वायु, आदित्य तथा अङ्किरा इन भृषियोंक आत्मामें एक २ वेदका प्रकाश किया।

। प्रश्न--

## यो वै ब्रह्माणं विद्धाति पूर्व यो वै वेदांश्च प्रहि-णोति तस्मै ॥ श्वेताश्व० अ० ६ मं० १८॥

यह उपनिषद्का वचन है। इस वचनसे ब्रह्माजीके हृद्यमें वेदोंका खपदेश किया है। फिर अगन्यादि अधियोंके आत्मामें क्यों कहा ?

उत्तर—ब्रह्माके आत्मामें अग्नि आदिके द्वारा स्थापित कराया, देखो ! मतुने क्या छिखा है—

## अग्निवायुरविभ्यस्तु श्रयं ब्रह्म सनातनम् । दुदोह् यज्ञसिद्ध्यर्थस्ययज्ञः सामलक्षणम् ॥ मनुः [१।२३]

जिस परमात्माने आदि सृष्टिमें मनुष्योंको उत्पन्न करके अग्नि आदि चारों महर्षियोंक द्वारा चारों वेद न्नह्माको प्राप्त कराये और इस ब्रह्माने अग्नि, वायु, आदित्य और अङ्किरासे शृग्यजु, साम और अथवंवदका प्रहण किया।

प्रश्न-- उन चारों ही में वेदोंका प्रकाश किया अन्यमें नहीं इससे

**ई**श्वर पक्षपाती होता है।

उत्तर—वे ही चार सब जीवोंसे अधिक पवित्रातमा थे अन्य उनके सदश नहीं थे इसलिये पवित्र विद्याका प्रकाश उन्हींमें किया।

प्रश्न-किसी देशभाषामें वेदोंका प्रकाश न करके संस्कृतमें क्यों किया ?

उत्तर—जो किसी देशभाषामें प्रकाश करता तो ईश्वर पक्षषाती होजाता, क्योंकि जिस देशकी भाषामें प्रकाश करता उनको सुगमता बौर विदेशियोंको कठिनता वेदोंके पढ़ने पढ़ानेकी होती। इसिल्ये संस्कृत ही में प्रकाश किया, जो किसी देशकी भाषा नहीं। और वेदभाषा अन्य सब भाषाओंका कारण है। उसीमें वेदोंका प्रकाश किया। जैसे ईश्वरकी पृथिवी आदि सृष्टि सब देश और देशवालोंके लिये एकसी और सब शिल्पविद्याका कारण है वैसे परमेश्वरकी विद्याकी भाषा भी एकसी होनी चाहिये कि सब देशवालोंको पढ़ने पढ़ानेमें तुल्य परिश्रम होनेसे ईश्वर पक्षपाती नहीं होता। और सब भाषाओंका कारण भी है।

प्रश्न — वेद ईशवरकृत हैं अन्यकृत नहीं, इसमें क्या प्रमाण ?

चतर — जैसा ईश्वर पवित्र, सर्वविद्यावित्, गुद्ध गुणकर्मस्वभाव,
न्यायकारी, दयालु आदि गुणवाला है वेसे जिस पुस्तकमें ईशवरके गुण,
कर्म, स्वभावके अनुकूल कथन हो वह ईशवरकृत अन्य नहीं और जिसमें
सृष्टिकम प्रत्यक्षादि प्रमाण आप्तोंके और पवित्रात्माके व्यवहारसे
विकद्ध कथन न हो वह ईशवरोक । जेसा ईशवरका निर्भम झान वैसा
जिस पुस्तकमें श्रान्तिरहित झानका प्रतिपादन हो वह ईशवरोक्त, जैसा
परमेशवर है और जैसा सृष्टिकम रक्सा है वैसा ही ईशवर, सृष्टिकार्य,
कारण और जीवका प्रतिपादन जिसमें होने वह परमेशवरोक्त पुस्तक
होता है और जो प्रत्यक्षादि प्रमाण विषयोंसे अविरुद्ध गुद्धात्माके
स्वभावसे विरुद्ध न हो, इस प्रकारके वेद हैं । अन्य बाइवल कुरान
च्यादि पुस्तकें नहीं इसकी स्पष्ट व्याख्या बाइवल और कुरानके प्रक-

रणमें तेरहवें और चौदहवें समुहासमें की जायगी।

प्रश्न — वेदको ईश्वरसे होनेकी आवश्यकता कुछ भी नहीं क्योंकि
 मनुष्य छोग कमशः ज्ञान बढ़ाते जाकर पश्चात् पुस्तक भी बना छेंगे।

उत्तर—कभी नहीं बना सकते, क्योंकि विना कारणके कार्योत्प-तिका होना असम्भव है। जैसे जङ्गली मनुष्य सृष्टिको देखकर भी विद्वान नहीं होते और जब उनको कोई शिक्षक मिळजाय तो विद्वान होजाते हैं और अब भी किसीसे पढ़े विना कोई भी विद्वान नहीं होता। इस प्रकार जो परमात्मा उन आदिस्टिके झृषियोंको वेदविद्या न पढ़ाता और वे अन्यको न पढ़ाते तो सब लोग अविद्वान ही रह जाते जैसे किसीके बालकको जन्मसे एकान्त देश अविद्वानों वा पशुओंके संगमें रख देवे तो वह जैसा सग है वैसा ही हो जायगा। इसका दृशन्त जङ्गली भील आदि हैं जबतक आर्यावत देशसे शिक्षा नहीं गई थी तबतक मिश्र, यूगन और यूरोप देश आदिस्थ मनुष्योंमें कुछ भी विद्या नहीं हुई थी और इङ्गलेण्डक कुलुम्बस आदि पुरुष अमेरिकामें जब तक नहीं गये थे तबतक वे भी सहस्रो, लाखों, कोड़ों वर्षोंसे मूखं अर्थात् विद्याहीन थे, पुनः सुशिक्षाके पानस विद्वान् होगये हैं वैसे ही परमात्मासे सृष्टिकी आदिमं विद्या शिक्षाकी प्राप्तिस उत्तरोत्तर कालमें विद्यान होते आये।

### स एष पूर्वेषामपि गुरुः कालेनाऽनवच्छेदात्॥

योगसू• [ समाधिषादे सू० २६ ]

जैसे वर्तमान सगयमें इम छोग अध्यापकोंसे पढ़ ही के विद्वान् होते हैं वैसे परमंश्वर सृष्टिके आरम्भमें उत्पन्न हुए अग्नि आहि भृषियोंका गुरु अर्थात् पढ़ानेहारा है क्योंकि जैसे जीव सुषुष्ति और प्रक्रयमें बानरहित हो जाते हैं वैसा परमेश्वर नहीं होता। उसका ज्ञान नित्य है। इसिल्ये यह निश्चित जानना चाहिये कि विना निमित्तसे नैमिचिक अर्थ सिद्ध कभी नहीं होता है। प्रश्न—वेद संस्कृतभाषामें प्रकाशित हुए और वे अग्नि आदि मृषि छोग उस संस्कृतभाषाको नहीं जानते थे फिर वेदोंका अर्थ उन्होंन कैसे जाना ?

उत्तर-परमेश्वरने जनाया और धर्मातमा योगी महर्षि छोग जब २ जिम २ के अर्थकी जाननेकी इच्छा करके ध्यानावस्थित हो परमेश्वरके स्वरूपमें समाधिस्थित हुए तब २ परमात्माने अभीष्ट मन्त्रों के अर्थ जनाये। जब बहुर्तों के आत्माओं में वेदार्थप्रकाश हुआ तब ऋषि मुनियोंने वह अर्थ और ऋषि मुनियोंके इतिहासपूर्वक मन्थ बनाये। उसका नाम ब्राह्मण अर्थान् ब्रह्म जो वेद उसका व्याख्यान मन्थ होनेसे ब्राह्मण नाम हुआ। और—

## ऋषयो ( मन्त्रदृष्टयः )...मन्त्रान्सम्प्रातुः॥

निरु• [१।२०]

जिस २ मनत्रार्थका द्रश्न जिस २ भृषिको हुआ और प्रथम ही जिसके पहले उस मनत्रका अर्थ किसीने प्रकाशित नहीं किया था, किया और दूसरोंको पढ़ाया भी, इसीलिये अदाविध उस २ मन्त्रके साथ भृषिका नाम समरणार्थ लिखा आता है। जो कोई भृषियोंको मनत्रकर्ता वतलावें उनको मिथ्यावादी समम्में। वे तो मन्त्रोंक अर्थ प्रक शक हैं।

प्रश्न-वेद किन प्रन्थोंका नाम है ?

उत्तर-मृक्, यजुः, साम और अर्थव मन्त्रसंहिताओंका, अन्यका नहीं।

प्रश्न-

#### मन्त्रब्राह्मणयोर्चेदनामधेयम् ॥

हिन्यादि कात्यायनादिकात प्रतिज्ञा सूत्रादिका अर्थ क्या करोगे ? उत्तर—देखो संदिता पुरतकंक आरम्भ अध्यायकी समाप्तिमें बेद शब्द सनातनसं खिला आता है और ब्राह्मण पुस्तकके आरम्भ वा अध्यायकी समाप्तिमें नहीं लिखा । और निरुक्तमें—

# इत्यपि निगमो भवति । इति ब्राह्मणम् ॥

[नि• अ०५। खं•३।४]

## छन्दोब्राह्मणानि च तद्विषयाणि॥ अष्टा० ४-२-६६॥

यह पाणिनीय सूत्र है। इससे भी स्पष्ट विदित होता है कि वेद मन्त्रभाग और ब्राह्मण व्याख्याभाग है। इसमें जो विशेष देखना चाहें तो मेरी बनाई "मुग्वेदादिभाष्यभूमिका" में देख लीजिये। वहां अने-कराः प्रमाणोंसे विरुद्ध होनेसे यह कात्यायनका वचन नहीं हो सकता ऐसा ही सिद्ध किया गया है। क्योंकि जो माने तो वेद सनातन कभी नहीं हो सकें। क्योंकि ब्राह्मण पुस्तकोंमें बहुतसे भृषि महर्षि और राजादिके इतिहास लिखे हैं। और इतिहास जिसका हो उसके जन्मके पश्चात् लिखा जाता। वर् मन्थ भी उसके जन्मके पश्चात् होता है। वेदोंमें किसीका इतिहास नहीं, किन्तु जिस २ शब्दसे विद्याका बोध होवे उस २ शब्दका प्रयोग किया है। किसी विशेष मतुष्यकी संज्ञा वा विशेष कथाका प्रसंग वेदोंमें नहीं।

प्रश्न-वेदोंकी कितनी शाखा है ?

उत्तर-ग्यारहसौ सत्ताईस।

प्रश्न-शाखा क्या कहाती हैं ?

उत्तर-व्याख्यानको शाखा करते हैं।

प्रश्न—संसारमें विद्वान् वेदके अवयवभूत विभागोंको शाखा मानते हैं।

उत्तर—तिकसा विचार करो तो ठीक, क्योंकि जितनी शाखा है वे आश्वलायन आदि मृषियोंके नामसे प्रसिद्ध हैं और मन्त्रसहिता परमेश्वरके नामसे प्रसिद्ध है। जैसे चारों वेदोंको परमेश्वरकृत मानते हैं वैसे आश्वलयनी आदि शाखाओंको उस २ मृषिकृत मानते हैं और प्रव शाखाओंमें मन्त्रोंकी प्रतीक धरके व्याख्या करते हैं, जैसे तैति- रीय शाखामें "इषेत्वोजें त्वेति" इत्यादि प्रतीकें धरके व्याख्यान किया है। और वेदसहिताओं में किसीकी प्रतीक नहीं धरी। इसिटिये परमेश्वरकृत चारों वेद मूल वृक्ष और आधलायनादि सब शाखा भृषि मुनिकृत है परमेश्वरकृत नहीं। जो इस विषयकी विशेष व्याख्या देखना चाहें वे "भृग्वेदादिभाष्यभूमिका" में देख लेवें जैसे माता पिता अपने सन्तानों पर कृपादृष्टि कर उन्नति चाहते हैं वैसे ही परमात्माने सब मनुष्यों पर कृपा करके वेदोंको प्रकाशित किया है, जिससे मनुष्य अविद्यान्थकार अमजालसे छूटकर विद्या विज्ञानरूप सूर्यको प्राप्त होकर अत्यानन्दमें रहें और विद्या तथा मुखोंकी वृद्धि करते जाये।

प्रश्न-वेद नित्य हैं वा अनित्य ?

उत्तर—नित्य हैं क्योंकि परमेश्वरके नित्य होनेसे उसके झानादि
 गुण भी नित्य हैं। जो नित्य पदार्थ हैं उनके गुण, फर्म, स्वभाव नित्य और अनित्य द्रव्यके अनित्य होते हैं।

प्रश्न-क्या यह पुस्तक भी नित्य है।

उत्तर — नहीं, क्योंकि पुस्तक तो पत्र और स्याहीका बना है वह नित्य कैसे हो सकता है ? किन्तु जो शब्द अर्थ और सम्बन्ध हैं वे नित्य हैं ?

प्रश्न—ईश्वरने उन ऋषियोंको ज्ञान दिया होगा और उस ज्ञानसे उन छोगोंने वेद बना लिये हांगे ?

उत्तार—ज्ञान क्षेयके विना नहीं होता गायत्र्यादि छन्द षड्जादि जोर उदात्ताऽनुदातादि स्वरके ज्ञानपूर्वक गायत्र्यादि छन्दोंके निर्माण करनेमें सर्वज्ञके विना किसीका सामर्थ्य नहीं है कि इस प्रकार सर्वे ज्ञानयुक्त शास्त्र बना सर्के, हां । वेदको पढ़नेके पश्चात् व्याकरण, निरुक्त जोर छन्द आदि प्रन्थ अपृषि मुनियोंने विद्याओंक प्रकाशके छिये किये हैं। जो परमात्मा वेदोंका प्रकाश न करे तो कोई कुछ भी न बन्तु सर्के इसिख्ये वेद परमेश्वरोक हैं। इन्हींके अनुसार सन्न छोगोंको चलना चाहिये और जो कोई किसीसे पूछे कि नुम्हारा क्या मत है तो यही

#### ं समुल्लास] वेद नित्य हैं।

च्चार देना कि हमारा मत वेद, अर्थात् जो कुछ वेदोंमें कहा है इम चसको मानते हैं।

अब इसके आगे सृष्टिके विषयमें लिखेंगे। यह संक्षेपसे ईश्वर बंबीर बेद विषयमें व्याह्मयान किया है।। ७।।

• इति श्रीमद्द्यानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे सुभाषाविभूषित ईश्वरवेदविषये सप्तमः समुहासः सम्पूर्णः ॥७॥



# १ त्रत्यत्र त्रत्यत्र त्रत्यत्र त्रत्यत्र त्रत्यत्र त्रत्यत्र त्रत्यत्र त्रत्यत्र त्रत्यत्र त्रत्य त्रत्य त्र है त्राय त्रिष्ट्यत्य त्रत्य त्य त्रत्य त्य त्रत्य त्रत्य त्रत्य त्रत्य त्रत्य त्रत्य त्रत्य त्रत्य त्रत्य

इयं विसृष्टिर्यत आ वभूव यदि वा दधे यदि वा न । यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद ॥१॥

तम आसीत्तमसा ग्रह्मग्रे प्रकेतं सिल्लं सर्वमा इदम्। तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिना जायतेकम् ॥२॥ ऋ० १० । १२६ । ७, ३ ॥

हिरण्यगभेः समवर्त्ताग्रे भृतस्य जातः पतिरेक आसीत्। सदाघार पृथिवीं चामुतेमां कस्मै देवाय इविषा विधेम ॥३॥ ऋ० १०। १२१। १॥

पुरुष एवेद ऐ सर्वं यद्भूतं यच भाव्यम् । उताम्र-तत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति॥४॥ यजः ३१।२॥ यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति । यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्य तद्ब्रह्म ॥५॥ तैत्तियो० [भृगुवल्ली । अनु० १ ] हे (अङ्ग) मनुष्य । जिससे यह विविध सृष्टि प्रकाशित हुई है।

# समुक्लास] सुष्ट्यु स्पत्तिस्थितिप्रलय । 💪 २७३

जो धारण और प्रख्य करता है, जो इस जगन्का स्वामी जिस न्याप कमें यह सब जगन् उत्पत्ति, स्थिति, प्रख्यको प्राप्त होता है, सो पर-मात्मा है। उसको तु जान और दूसरेको सृष्टिकर्त्ता मत मान ॥ १।

यह सब जगत् सृष्टिके पिहले अन्धकारसे आवृत, रात्रिरूपमे जाननेके अयोग्य, आकाशरूप सब जगत् तथा तुच्छ अर्थात् अनन्त परमेश्वरके सन्मुख एकदेशी आच्छादित था पश्चात् परमेश्वरने अपने सामर्थ्यसे कारणरूपसे कार्यरूप कर दिया ॥ २ ॥

हे मनुष्यो ! जो सब सूर्यादि तेजस्वी पदार्थोका आधार और जो यह जगत् हुआ है और होगा उसका एक अद्वितीय पित परमात्मा इस जगत्की उत्पत्तिके पूर्व विद्यमान था और जिसमें पृथिवीसे छेके सूर्यपर्यन्त जगत्को उत्पन्न किया है उस परमात्मा देवकी प्रेमसे भक्ति किया करें।। ३।।

• हे मनुष्यो। जो सबमें पूर्ण पुरुष और जो नाश रहित फारण स्रोर जीवका स्वामी जो पृथिव्यादि जड़ और जीवसे स्रतिरिक्त है वही पुरुष इस सब भून, भविष्यत और वर्तमानस्थ जगत्को बनाने-बाखा हैं।। ४।।

जिस परमात्माकी रचनासे ये सब पृथिज्यादि भूत ब्ह्पन होते हैं जिससे जीव और जिसमें प्रत्यको प्राप्त होते हैं, वह नहा है उसके जाननेकी इच्छा करो ॥ ५॥

#### जन्माचस्य यतः॥ ज्ञारीरिक सू०१।१।२॥

जिससे इस जगत्कः जन्म, स्थिति और प्रख्य होता है वही हहा जानने योग्य है।

प्रश्न—यह जगत् परमेश्वरसे उत्पन्न हुआ है वा अन्यसे १ एतर—निमित्त कारण परमात्मासे उत्पन्न हुआ है परन्तु इसका उपाहान कारण प्रकृति है।

प्रश्न-क्या प्रकृति परमेश्वरने उत्पन्न नहीं की 🏋

अष्ट्रम

उत्तर—नहीं वह अनादि है। प्रश्न—आदि किसको कहते और कितने पदार्थ अनादि हैं ? उत्तर—ईश्वर, जीव और जगत्का कारण ये तीन अनादि हैं। प्रश्न—इसमें क्या प्रमाण है ?

उत्तार--

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्व-जाते । तयोरन्यः पिष्पलं स्वाद्वस्यनभन्नन्यो अभि चाकशीति ॥१॥ ऋ० मं० १ । १६४ । २०॥

शाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥२॥ पजु० ४०। ८॥

्हा) जो ब्रह्म और जीव दोनों (सुपर्णा) चेतनता और पाखमादिगुणोंसे सदश (सयुजा) ज्याप्य ज्यापक भावसे संयुक्त (सखाया)
परस्पर मित्रनायुक्त सनातन अनादि हैं और (समानम्) वैसा ही
( वृक्षम् ) अनादि मूळरूप कारण और शाखारूप कार्ययुक्त वृक्ष अर्थात्
जो स्थूळ होकर प्रळयमें छित्र भिन्न हो जाता है वह तीसरा अनादि
पदार्थ इन तीनोंके गुण, कर्म और स्वभाव भी अनादि हैं। इन जीव
और ब्रह्ममेंसे एक जो जीव है वह इस वृक्षरूप संसारमें पापपुण्यरूप
फर्ळोंको (स्वाहित्ता) अच्छे प्रकार भोगता है और दूसरा परमात्मा
कर्मोंके फर्ळोंको (अनशनन्) न भोगता हुआ चारों स्वोर अर्थात्
भीतर बाहर सर्वत्र प्रकाशमान होरहा है। जीवसे ईश्वर, ईश्वरसे जीव
और दोनोंसे प्रकृति भिन्नत्वरूप तीनों अनादि हैं। १।।

(शाधती) अर्थात अनःदि सनातन जीव रूप प्रजाके लिये वेद द्वारा परमात्माने सब विद्याओंका बोध किया है।। २।।

अजामेकां लोहितशुक्तकृष्णां बहीः प्रजाः सृज-रानां स्वरूपाः। अजो ह्येको जुषमाणोऽनुदोते कहात्येनां सुक्तभोगामजोऽन्यः॥ स्वेता० ४।५॥

# सम्रक्कास] निमित्त और उपादन कारण। २७५

यह उपनिषद्का वचन है। प्रकृति, जीव और परमात्मा तीनों मज अर्थान् जिनका जनम कभी नहीं होता और न कभी ये जनमलेते अर्थान् ये तीन सब जगतके कारण हैं। इनका कारण कोई नहीं। इस अनादि प्रकृतिका भीग अनादि जीव करता हुआ फँसता है और उसमें परमात्मा न फँसता और न उसका भीग करता है। ईश्वर और जीव का स्त्रशण ईश्वर विषयमें कह आये। अब प्रकृतिका स्र्रशण लिखते हैं।

सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रकृतेर्महान् महतोऽहङ्कारोऽहङ्कारात् पश्चतन्मात्राण्युभयमिन्द्रियं पश्चतन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि पुरुष इति पश्चविंद्या-तिर्गणः ॥ सांख्य• [अ०१। स्०६१]

(सत्व) शुद्ध (रज) मध्य (तमः) जाड्य अर्थात् जड़ता तीन वस्तु मिछकर जो एक संघात है उसका नाम प्रकृति है। उससे महत्तत्व बुद्धि, उससे अरह्कार, उससे पांच तन्मात्रा सूक्ष्मभूत और दश इन्द्रियां तथा ग्यारहवां मन, पांच तन्मात्राओं से प्रथिव्यादि पांच भूत, ये चौबीस और पस्चीसवां पुरुष अर्थात् जीव और परमेश्वर है। इनमें से प्रकृति अविकारिणी और महत्तत्व अरह्कार तथा पांच सूक्ष्म-भूत प्रश्वतिका कार्य और इन्द्रियां मन तथा स्थूछभूतों का कारण है। पुरुष न किसीकी प्रकृति उपादानकारण और न किसीका कार्य है।

93----

सदेव सोम्येदमय आसीत् ॥१॥ [ छा० ६ । २ ] असद्वा इदमय आसीत् ॥२॥ [तैत्ति० ब्रह्मा०वक्ली अनु० ७ ] आत्मैवेदमय आसीत् ॥३॥ [बृह० अ० १ ब्रा० ४ मं० १ ] ब्रह्म वा इदमय आसीत् ॥४॥ [शत• ११ । १ । ११ । १

ं ये उपनिषदोंके बचन हैं। हे श्वेतकेतो ! यह जगत् सृब्टिके पूर्व सत् ।१। असत् ।२। आत्मा ।३। और ब्रह्मस्वरूप था ।४। पश्चात्ः—

तदैक्षत बहुः स्यां प्रजायेयेति । सोऽकामयत बहुः स्यां प्रजायेयेति ॥ तैत्ति० बृ०वल्ली । अनु० ६ ॥

वही परमात्मा अपनी इच्छासे बहुरूप हो गया है। सर्वं खिवदं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन॥

यह भी उपनिषद्का वचन है--जो यह जगत् है वह सब निश्चय करके ब्रह्म है। उसनं दूसरे नाना प्रकारके पदार्थ कुछ भी नहीं किन्तु सब ब्रह्मरूप हैं।

उत्तर-क्यों इन बचनोंकः अनर्थकरते हो ? क्योंकि उन्हीं डपनिषदों में---

[एवमेव खलु] सोम्धान्नेन शुंगेनापो मूलमन्वि-च्छद्भिरसोम्य शुंगेन तेजोमूलमन्विच्छ तेजसा सोम्य शुंगेन सन्मूलयन्विच्छ सन्मूलाः सोम्येमाः सर्वाः प्रजाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठाः॥

छान्दोग्य उप० प्र० ६। खं• ८। मं० ४॥

हे श्वेतकेतो ! अन्नरूप पृथिवी कार्यसे जलरूप मूलकारणको तू जान। कर्य्यरूप जलसे तेजोरूप मूल और तेजोरूप कार्यसे सद्रूप कारण जो नित्य प्रकृति है उसको जान । यही सत्यस्वरूप प्रकृति सब नगत्का मूल घर और स्थितिका स्थान है। यह सब जगत् सृष्टिके पूर्व असत्के सदश और जीवात्मा ब्रह्म और प्रकृतिमें लीन होकर वर्त्तमान था, अभाव न था। अरोर जो (सर्व खलु) यह वचन ऐसा है जैसा कि "कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा भानमतीने कुंडवा जोड़ा" ऐसी लीलाका है क्योंकि-

# सर्वे खिलवदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत ॥

छान्दो० प्र• ३ । खं० १४ । मं० १ ।। और

### नेह नानास्ति किंचन ॥ [कठो० २ । ४ । ११ ]

जैसे शरीरके अङ्ग जबतक शरीरके साथ रहते हैं तबतक कामके मौर अलग होनेसे निकम्मे हो जात हैं, बैसे ही प्रकरणस्थ वाक्य सार्थक और प्रकरणसे अलग करने वा किसी अन्यके साथ जोड़नेसे अनर्थक हो जाते हैं। सुनो, इसका अर्थ यह है। हे जीव! तु ब्रह्मकी उपासना कर, जिस ब्रह्मसे जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और जीवन होता है, जिसके बनाने और धारणसे यह सब जगत् विद्यमान हुआ है वा ब्रह्मसे सहचरित है, उसको छोड़ दूसरेकी उपासना न करनी। इस चेतनमात्र अखण्डैकरस ब्रह्मस्पमें नाना वस्तुओंका मेल नहीं है, किन्तु ये सब प्रथक् २ स्वरूपमें परमेश्वरके आधारमें स्थित हैं।

प्रश्न-जगत्के कारण कितने होते हैं ?

उत्तर—तीन, एक निमित, दूसरा उपादान, तीसरा साधारण। निमित्त कारण उसको कहते हैं कि जिसके बनानेसे कुछ बने न बनाने से न बने। आप स्वयं बने नहीं दूसरेको प्रकारान्तर बना देवे। दूसरा उपादान कारण उसको कहते हैं जिसके विना कुछ न बने, वही अवस्थान्तर रूप होके बने और बिगड़े भी। तीसरा साधारण कारण उसको कहते हैं कि जो बनानेमें साधन और साधारण निमित्त हो। निमित्त कारण दो प्रकारके हैं। एक सब सृष्टिको कारणसे बनाने धारने और प्रख्य करने तथा सबकी व्यवस्था रखनेवाला सुख्य निमित्त कारण परमात्मा। दूसरा—परमेश्वरकी सृष्टिमेंसे पदार्थोंको लेकर अनेक विध कार्यान्तर बनानेवाला साधारण निमित्त कारण जीव। उपादान कारण प्रकृति, परमाणु जिसको सब संसारके बनानेकी सामग्री कहते हैं। वह जड़ होनेसे आपसे आप न बन और न बिगड़ सकती है, किन्तु दूसरेके बनानेसे बनती और बिगाड़नेसे बिगड़ती है।

कहीं २ जड़के निमित्तसे जड़ भी बन और बिगड़ भी जाता है, जैसे परमेश्वरके रचित बीज पृथिवीमें गिरने और जल पानेसे वृक्षाकार हो जाते हैं और अग्नि आदि जड़के संयोगसे बिगड़ भी जाते हैं, परन्तु इनका नियमपूर्वक बनना वा बिगड़ना परमेश्वर और जीवके आधीन है। जब कोई वस्तु बनाई जाती है तब जिन २ साधनोंसे अर्थात् झान, दर्शन, बल, हाथ और नाता प्रकारके साधन और दिशा काल और आकाश साधारण कारण जैसे घड़ेको बनाने वाला कुम्हार निमित्त, मट्टी उपादान और दण्ड चक्र आदि सामान्य निमित्त दिशा, काल, आकाश, प्रकाश, आंख, हाथ, ज्ञान, क्रिया आदि निमित्त साधारण और निमित्त कारण भी होते हैं। इन तीन कारणोंके विना कोई भी वस्तु नहीं बन सकती और न बिगड़ सकती हैं।

प्रश्न—नवीन वेदान्ति लोग केवल परमेश्वर ही को जगत्का अ-भिन्न निमित्तोपादान कारण मानते हैं—

#### यथोर्णनाभिः स्रजते गृह्वते च॥ मुण्ड० १।१।७॥

यह उपनिषद्का वचन है। जैसे मकरी बाहरसे कोई पदार्थ नहीं छेती अपने ही में से तन्तु निकाल जाला धनाकर आप ही उसमें खेलती है वैसे ब्रह्म अपनेमेंसे जगत्को बना आप जगदाकार बन आप ही कीड़ा कर रहा है। सो ब्रह्म इच्छा और कामना करता हुआ कि में बहुरूप अर्थान् जगदाकार होजाऊं। सङ्ग्रह्मपात्रसे सब जगत्रू प्रवन्न गया। क्योंकि—

#### आदावन्ते च यन्नास्ति वर्त्त मानेऽपि तत्तथा ॥

गौड़पादीय का॰ श्लोक ३१॥

यह माण्ड्रक्योपनिषद् पर कारिका है, जो प्रथम न हो अन्तर्में न रहे वह वर्तमानमें भी नहीं है, किन्तु स्टिकी आदिमें जगत् न था ब्रह्म था। प्रलयके अन्तमें संसार न रहेगा और केवल ब्रह्म रहेगा हो बर्तमानमें सब जगत् ब्रह्म क्यों नहीं ?

उत्तर—जो तुम्हारे कहनेके अनुसार जगत्का उपादान कारण ह्या होवे तो वह परिणामी, अवस्थान्तरयुक्त विकारी हो जावे । और उपादान कारणके गुण, कर्म, स्वभाव कार्यमें भी आते हैं—

कारणगुणपूर्वकः कार्यगुणो दष्टः ॥ वै० २।१।२४॥

उपादान कारणके सदृश कार्यमें गुण होते हैं तो ब्रह्म सच्चिदान-न्दस्वरूप जगत्कार्यरूपसे असत् जड और आनन्दरहित, ब्रह्म अज और जगत् उत्पन्न हुआ है, ब्रह्म अटरय और जगत दृश्य है, ब्रह्म अखण्ड,और जगत खण्डरूप है, जो ब्रह्मसे प्रथिव्यादि कार्य उत्पन्न होवे तो पृथिव्यादिमें कार्यक जडादि गुण ब्रह्ममें भी होवें अर्थात जैसे पृथिन्यादि जड हैं वैसा ब्रह्म भी जड़ होजाय और जैसा परमेश्वर चेतन है वैसा पृथिव्यादि कार्य भी चेतन होना चाहिये। और जो मकरीका दृष्टान्त दिया वह तुम्हारे मतका साधक नहीं, किन्तु बाधक है, क्योंकि वह मड़रूप शरीर तन्तुका उपादान और जीवात्मा निमित्त कारण है और यह भी परमात्माकी अद्भुत रचनाका प्रभाव है। क्योंकि अन्य जन्तुके शरीरसे जीव तन्तु नहीं निकाल सकता। वैसे ही व्यापक ब्रह्मते अपने भीतर व्याप्य प्रकृति और परमाणु कारणसे स्यूछ जगत्को बनाकर बाहर स्थूछहर कर आप उसीमें स्यापक होके साक्षीभूत आनन्दमय हो रहा है। और जो परमात्माने ईक्षण अर्थात् दर्शन, विचार और कामना की कि मैं सब जगतको बनाकर प्रसिद्ध होऊं अर्थात् जब जगत उत्पन्न होता है तभी जीवोंके विचार, ज्ञान, ध्यान, डपदेश, श्रवणमें परमेश्वर प्रसिद्ध और बहुत स्थूल पदार्थीसे सह वर्तमान होता है। जब प्रख्य होता है तब परमेश्वर और मुक्तजीबों-को छोड़के उसको कोई नहीं जानता। और जो यह कारिका है वह भ्रममूलक है क्योंकि सृष्टिकी आदि अर्थात् प्रख्यमें जगत् प्रसिद्ध नहीं था और सुष्टिके अन्त अर्थात् प्रलयके आरम्भसे जबतक दूसरी वार सृष्टि न होगी तबतक भी जगतका कारण सूक्ष्म होकर अप्रसिद्ध रहता है, क्योंकि -

तम आसीत्तमसा गृहमग्रे ॥ ऋ० १०।१२६।३॥ आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम् । अपतर्क्य-मविज्ञे यं प्रसुप्तमिव सर्वतः ॥ मनु० १। ४॥

यह सब जगत् सृष्टिकं पहिले प्रलयमें अन्यकारसे आवृत आ-च्छादित था और प्रलयारम्भकं पश्चात् भी वैसा ही होता है। उस समय न किसीकं जानने, न तर्कमें लाने और न प्रसिद्ध चिह्नोंसे युक्त इन्द्रियोंसे जानने योग्य था, न होगा, किन्तु वर्तमानमें जाना जाता है और प्रसिद्ध चिह्नोंसे युक्त जाननेके योग्य होता और यथावत् उप-ख्रुच्य है। पुनः उस करिकाकारने वर्नमानमें भी जगत्का अभाव ख्रिखा सो सर्वथा अप्रमाण है क्योंकि जिसको प्रमाता प्रमाणोंसे जानता ख्रीर प्राप्त होता है वह अन्यथा कभी नहीं हो सकता।

प्रश्न—जगतके बनानेमें परमेश्वरका क्या प्रयोजन है ? उत्तर—नहीं बनानेमें क्या प्रयोजन है।

प्रभ—जो न बनाता तो आनन्दमें बना रहता और जीवोंको भी सुख दुःख प्राप्त न होता।

उत्तर—यह आलसी और दिर लोगोंकी बातें हैं पुरुषार्थींकी नहीं। और जीवोंको प्रलयमें क्या सुख वा दुःख है ? जो सृष्टिके सुख दुःखकी तुलना की जाय तो सुख कई गुणा अधिक होता और बहुतस पिवत्रात्मा जीव सुक्तिके साधन कर मोक्षके आनन्दको भी प्राप्त होते हैं। प्रलयमें निकस्मे जैसे सुषुष्तिमें पड़े रहते हैं वैसे रहते हैं बोर प्रलयके पूर्व सृष्टिमें जीवोंके लिये पाप पुण्य कमोंका फल ईश्वर कैसे दे सकता और जीव क्योंकर भोग सकते ? जो दुमसे कोई पृष्ठे कि आंखके होनेमें क्या प्रयोजन हैं ? तुम यही कहोगे, देखना। तो जो ईश्वरमें जनत्की रचना करनेका विज्ञान, यल और कि म है उसका क्या प्रयोजन, विना जगत्की उत्पत्ति करनेके ? दूसरा इन्छ भी न कह सकोगे और परमात्माके न्याय, धारण, दया, आदि गुण

भी तभी सार्थक हो सकते हैं जब जगतुको बनावे। उसका अनन्त मामर्थ्य जगतकी उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय और व्यवस्था करने ही से मफल है। जैसे नेत्रका खाभाविक गुण देखना है वैसे परमेश्वरका खाभाविक गुण जगतकी उत्पत्ति करके सब जीवोंको असंख्य पदार्थ देकर परीपकार करना है।

प्रश्न—बीज पहले है वा व्रश्न ?

खतर—बीज, क्योंकि बीज, हेतु, निदान, निमित और कारण इत्यादि शब्द एकार्थवाचक हैं। कारणका नाम बीज होनेसे कार्यके प्रथम ही होता है।

प्रश्न-जब परमेश्वर सर्वशक्तिमान है तो वह कारण और जीव-को भी उत्पन्न कर सकता है। जो नहीं कर सकता तो सर्वशक्तिमान भी नहीं रह सकता?

उत्तर-सर्वशक्तिमान शब्दका अर्थ पूर्व लिख आये हैं। परन्तु क्या सर्वशक्तिमान वह कहाता है कि जो असम्भव बातको भी कर सके १ जो कोई असम्भव बात अर्थात् जैसा कारणके विना कार्यको फर सकता है तो विना कारण दूसरे ईश्वरकी उत्पत्ति और स्वयं मृत्युको प्राप्त जडु, दुःबी, अन्यायकारी, अपवित्र, और कुकर्मी आदि हो सकता है वा नहीं १ जो स्वाभाविक नियम अर्थात जैसा अग्नि कष्ण, जल शीतल और पृथिन्यादि सब जहोंको विपरीत गुणवाले ईश्वर भी नहीं कर सकता। और ईश्वरके नियम सत्य और पूरे हैं इसलिये परिवर्त्तन नहीं कर सकता । इसलिये सर्वशक्तिमान्का अर्थ इतना ही है कि परमातमा विना किसीके सहायके अपने सब काय पूर्ण कर सकता है।

प्रश्न-ईश्वर साकार है वा निराकार ? जो निराकार है तो विना हाथ आदि साधनोंके जगतुको न बना सकेगा और जो साकार है तो कोई दोप नहीं आता।

े उत्तर—ईश्वर निराकार है, जो साकार अर्थान शरीरयुक्त है वह

ईश्वर नहीं क्योंकि वह परिमित शक्तियुक्त, देश, काल वस्तुओं परिच्छिन, क्षुया, तृषा, छेदन, मेदन, शीतोष्ण, ज्वर, पीड़ादि सहित होते। उसमें जीवके विशा ईश्वरके गुण कभी नहीं घट सकते। जैसे तुम और हम साकार अर्थात् शरीरधारी हैं इससे बसरेणु, अणु, परमाणु और प्रकृतिको अपने वशमें नहीं ला सकते हैं वैसे ही स्थूल देहच्यारी परमेश्वर भी उन स्कूम पदार्थीसे स्थूल जगत् नहीं बना सकता। जो परमेश्वर भीतिक इन्द्रियगोलक हस्तपादादि अवयवोंसे रहित है, परन्तु उसकी अनन्त शक्ति बल पराक्रम हैं, उनसे सब काम करता है जो जीव और प्रकृतिसे कभी न हो सकते। जब वह प्रकृतिसे भी स्कूम और उनमें व्यापक है तभी उनको पकड़ कर जगदाकार कर देता है।

प्रश्त— जैसे मनुष्यादिके मा बाप साकार हैं उनका सन्तान भी साकार होता है, जो ये निराकार होते तो इनके छड़के भी निराकार होते, वैस परमेश्वर निराकार हो तो उसका बनाया जगत् भी निराकार कार होना चाहिये।

उत्तर—यह तुम्हारा प्रश्न छड़केके समान है क्योंकि हम अभी कह बुके हैं कि परमेश्वर जगत्का उपादान कारण नहीं किन्तु निमित्त कारण है। ओर जो स्थूछ होता है वह प्रकृति और परमाणु जगत्का उपादान कारण है और वे सर्वथा निराकार नहीं, किन्तु परमेश्वरसे स्थूछ और अन्य कार्य्यसे सृकृम आकार रखते हैं।

प्रश्त— क्या कारणके बिना परमेशर कार्यको नहीं कर सकता ? उत्तर — नहीं, क्योंकि जिसका अभाव अर्थात् जो वर्तमान नहीं है उसका भाव वर्तमान होना सर्वथा असम्भव है जैसा कोई गपोड़ा हांक दे कि मेंने बन्ध्याके पुत्र और पुत्रीका विवाह देखा, वह नरश-क्षका धनुष और दोनों खपुष्पकी नोला पहिरे हुए थे, मृगतृष्णिकाके जलमें स्नान करते और गन्धर्वनगरमें रहते थे, वहां बहलके विना वर्षा, पृथिवीके विना सन अन्तोंकी उत्पत्ति आदि होती थी, वैसा ही कार- णके विना कार्य्यका होना असम्भव है जैसे कोई कहे कि "मम मता-पितरों न स्तोऽहमेवमेव जानः। मम मुखे जिहा नास्ति वहामि च" अर्थात् मेरे माता पिता न थे ऐसे ही में उत्पन्त हुआ हूं, मेरे मुखमें जीम नहीं है परन्तु बोलता हूं, विउमें सर्प न था निकल आया, में कहीं न था, ये भी कहीं न थे और हम सब जने आये हैं, ऐसी अस-स्भव बात प्रमत्तगीत अर्थात् पागल लोगोंकी है।

प्रश्न--जो कारणके विना कार्य्य नहीं होता तो कारणका कारण कौन है ?

उत्तर—जो केवल कारणरूप ही हैं वे कार्य्य किसीके नहीं होते और जो किसीका कारण और किसीका कार्य्य होता है वह दूसरा कहाता है। जैसे पृथिवी घर आदिया कारण और जल आदिका कार्य्य होता है परन्तु जो आदि कारण प्रकृति है वह अनादि है।

मूछे मूलाभाषादमूलं मूलम् ॥ सांख्य० १। ६७॥

मूलका मूल अर्थात् कारणका कारण नहीं होता । इससे अकारण सब कार्योका कारण होता है क्योंकि किसी कार्यके आरम्भ समयके पूर्व तीनों कारण अवश्य होते हैं जैसे कपड़े बनानेके पूर्व तन्तुवाय, बईका सूत और नलिका आदि पूर्व वर्तमान होनेसे वस्त बनता है वैसे जगत्की उत्पत्तिके पूर्व परमेश्वर, प्रकृति, काल और आकाश तथा जीवोंके अनादि होनेसे इस जगत्की उत्पत्ति होती है। यदि इनमेंसे एक भी न हो तो जगत् भी न हो।

अत्र नास्तिका आहुः—शुन्यं तत्त्वं भावो विन-रयति वस्तुधर्मत्वाद्विनाशस्य ॥१॥ सां०१। ४४॥ अभावात्भावोत्पत्तिर्नानुपसृय पादुर्भावात्॥ २॥ ईरवरः कारणं पुरुषकर्माफल्यदर्शनात्॥३॥ अनि-मित्ततो भावोत्पत्तिः कण्टकतैक्ष्ण्यादिदर्शनात्॥४॥ सर्वमनित्यमुत्पत्तिविनाशधर्मकत्वात् ॥ ४॥ सर्वं नित्यं पञ्चभूतिनत्यत्वात् ॥६॥ सर्वं पृथग् भावल-क्षणपृथक्त्वात् ॥७॥ सर्वमभावो भावेष्वितरेतरा-भावसिद्धेः ॥८॥ न्याय० अ०४। आ०१॥

यहां नास्तिक छोग ऐसा कहते हैं कि शून्य ही एक पदार्थ है। मृष्टिके पूर्व शून्य था अन्तमें शून्य होगा क्यांकि जो भाव है अर्थात् वर्त्तमान पदार्थ है उसका अभाव होकर शून्य हो जायगा।

उत्तर —शून्य आकाश, अदृश्य, अवकाश और विनंदुको भी कहते हैं। शून्य जड़ पदार्थ। इस शून्यमें सब पदार्थ अदृश्य रहते हैं। जैसे एक विनदुसे रेखा, रेखा, अोंसे वर्तुश्रकार होनेसे भूमि पर्वतादि ईश्वरकी रचनासे बनते हैं और शून्यका जाननेवाला शून्य नहीं होता।। १।।

ं दूसरा नास्तिक—अभावसे भावकी उत्पत्ति हैं, जैसे बीजका मर्दन किये विना अङ्कर उत्पन्न नहीं होता और बीजको तोड़ कर देखें तो अङ्करका अभाव है। जब प्रथम अङ्कर नहीं दीखता था तो अभावसे उत्पत्ति हुई।

उत्तर—जो बीजका उपमर्दन करता है वह प्रथम ही बीजमें था जो न होता तो उत्पन्न कभी नहीं होता।। २।।

तीसरा नास्निक — कहता है कि कर्मोंका फल पुरुषके कर्म करने में नहीं प्राप्त होता। किनने ही कर्म निष्फल देखनेमें आते हैं। इस-लिये अनुमान किया जाता है कि कर्मोंका फल प्राप्त होना ईश्वरके आधीन है। जिस कर्मका फल ईश्वर देना चाहे देता है, जिस कर्मका फल देना नहीं चाहता नहीं देता। इस बातसे कर्मफल ईश्वराधीन है।

उत्तर—जो कर्मका फल ईश्वराधीन हो तो विना कर्म किये ईश्वर फल क्यों नहीं देता १ इसलिये जैसा कर्म मनुष्य करता है वैसाही फल ईश्वर देता है। इससे ईश्वर स्वतन्त्र पुरुषको कर्मका फल नहीं दे सक गा िन्तु, जैसा कर्म जीव करता है वैसे ही फर्छ ईश्वर देता है ॥३ चौथा नास्तिक—कहता है कि विना निमित्तके पदार्थोंकी उत्पत्ति। होती है। जैसा, बबूछ आदि बृक्षोंके कांटे तीक्ष्ण अणिबाछ देखनेमें आते हैं। इससे विदित होता है कि जब २ सृष्टिका आरम्भ होता है तब २ शरीरादि पदार्थ विना निमित्तके होते हैं।

उत्तर - जिससे पदार्थ उत्पन्न होता है वही उसका निमित्त है विना कंटकी वृक्षके कांटे उत्पन्न क्यों नहीं होते ? ।। ४ ।।

पांचवां नास्तिक—कहता है कि सब पदार्थ उत्पत्ति और विनाश वाले हैं इसलिये सब अनित्य हैं॥

#### रलोकार्धेन प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ग्रन्थकोटिभिः। ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः॥

यह किसी प्रन्थका रलोक है—नवीन वेदान्ति लोग पांचवें नास्तिककी कोटीमें हैं क्योंकि वे ऐसा कहते हैं कि क्रोड़ों प्रन्थोंका यह सिद्धान्त है, 'ब्रह्म सत्य जगत मिथ्या और जीव ब्रह्मसे मिन्न नहीं।' उत्तर—जो सबकी निद्यता नित्य है तो सब अनित्य नहीं होसकता। प्रश्न—सबकी नित्यता भी अनित्य है जैसे अग्नि काष्ठोंको नष्ट

कर आप भी नष्ट होजाता है।

उत्तर — जो यथावत् उपलब्ध होता है उसका वर्त्तमानमें व्यक्तित्यत्व और परमसुक्ष्म कारणको अनित्य कहना कभी नहीं हो सकता जो वेदानित लोग ब्रह्मसे जगन्की उत्पत्ति मानते हैं तो ब्रह्मके सत्य होनेसे उसका कार्य्य असत्य कभी नहीं हो सकता। जो खब्न रज्जु सर्प्यादिवन् कल्पित कहें तो भी नहीं वन सकता, क्योंकि कल्पना गुण है। गुणसे द्रव्य नहीं और गुण द्रव्यसं पृथक् नहीं रह सकता। जब कल्पनाका कर्त्ता नित्य है तो उसकी कल्पना भी नित्य होनी चाहिये, नहीं तो उसको भी अनित्य मानो। जैसे स्वप्न विना देखे सुने कभी नहीं आता, जो जागृत अर्थाम् वर्तमात समयमें सत्य पदार्थ है उनके

साक्षात सम्बन्धसे प्रत्यक्षादि झान होने पर संस्कार अर्थात् उनका वासनारूप झान आत्मामें स्थित होता है, स्वप्नमें उन्हींको प्रत्यक्ष देखता है। जैसे सुपुष्ति होनेसे बाह्य पदार्थों के झामके अभावमें भी बाह्य पदार्थ विद्यमान रहते हैं वैसे प्रलयमें भी कारण द्रव्य वर्तमान रहता है जो संस्कारके विना स्वप्न होवे तो जन्मान्धको भी रूपका स्वप्न होवे। इसल्यिये वहां उनका झानमात्र है और बाहर सब पदार्थ वर्तमान हैं।

प्रश्न-जैसे जागृतके पदार्थ स्वप्न और दोनोंके सुषुप्तिमें अनित्य होजाते हैं वैसे जागृतके पदार्थाको भी स्वप्नके तुल्य मानना चाहिये।

उत्तर—ऐसा कभी नहीं मान सकते क्योंकि स्वप्न और सुषु-ितमें बाह्य पदार्थोंका अझानमात्र होता है अभाव नहीं जैसे किसीके पीछेकी ओर बहुतसे पदार्थ अदृष्ट रहते हैं उनका अभाव नहीं होता वैसे ही स्वप्न और सुषुप्तिकी बात है। इसिल्ये जो पूर्व कह आये कि ब्रह्म जीव और जगत्का कारण अनादि नित्य है वही सत्य है।।५।।

छठा नास्तिक-कहता है कि पांच भूतोंके नित्य होनेसे सब जगत् नित्य है।

क्तर—यह बात सत्य नहीं क्योंकि जिन पदार्थोंकी उत्पत्ति और विनाशका कारण देखनेमें आता है वे सब नित्य हों तो सब स्थूछ जगत तथा शरीर घटपटादि पदार्थोंको उत्पन्न और विनष्ट होते देखते ही हैं इससे कार्यको नित्य नहीं मान सकते॥ ६॥

स्रातवां नास्तिक—कहता है कि सब प्रथक २ हैं कोई एक पदार्थ बहीं है जिस २ पदार्थको हम देखते हैं कि उनमें दूसरा एक पदार्थ कोई भी नहीं दीखता।

डत्तर — अवयवों में अवयवी, वर्तमानकाल, आकाश, परमात्मा और जाति पृथक् २ पदार्थ समूरोंमें एक २ हैं। उनसे पृथक् कोई पदार्थ नहीं हो सकता। इसलिये सब पृथक् पदार्थ नहीं किन्तु स्वरूपसे ४थक् २ हैं और पृथक् २ पदार्थोंमें एक पदार्थ भी है।। ७॥

बाठवां नास्तिक-कहता है कि सब पदार्थीमें इतरेतर अभावकी सिद्धि होनेसे सब अभाव हप हैं जैसे "अनश्बो गौः। अगौरश्वः" गाय षोडा नहीं और घोडा गाय नहीं, इसलिये सबको अभावरूप मानना चाहिये।

**उत्तर--सव प**टार्थीमें इनरेतराभावका योग हो परन्तु "गवि गौर-श्वेऽश्वोभावरूपो वर्तत एव" गायमें गाय घोडेमें घोडेका भाव ही है अभाव कभी नहीं हो सकता। जो पदार्थीका भाव न हो तो इतरेतरा-भाव भी किसमें कहा जावे।। 🖂।।

नववां नास्तिक-कहता है कि स्वभावसे जगतूकी उत्पत्ति होती है। जैसे पानी, अन्न एकत्र हो सडनेसे कृमि उत्पन्न होते हैं। और बीज पृथिवी जलके मिलनेसे घास वृक्षादि और वावाणादि उत्पनन होते हैं जैसे समुद्र वायुके योगसे तरक और तरक्कोंसे समुद्रफेन, हल्दी चना और नींबुके रस मिलानेसे रोरी बन जाती है वैसे सब जगर सन्त्रोंके स्वभाव गुणोंसे उत्पन्न हुआ है। इसका बनाने वाला कोई भी नहीं।

उत्तर—जो स्वभावसे जगतुकी उत्पत्ति होवे तो विनाश कर्मा न होवे और जो विनाश भी स्वभावसे मानो तो उत्पत्ति न होगी और जो दोनों स्वभाव युगपत द्रव्योंमें मानोगे तो उत्पत्ति और विनाशको व्यवस्था कभी न हो सकेगी। और जो निमित्तके होनेसे उत्पत्ति अ र नाश मानोगे तो निमित्त उत्पन्न और विनष्ट होने वाले द्रव्यांसे प्रथक मानना पड़ेगा। जो स्वभाव ही से उत्पत्ति और विनाश होता तो समय ही में उत्पत्ति और विनाशका होना सम्भव नहीं। जो स्वभावसे उत्पन्न होता हो तो इस भूगोलंक निकटमें दूसरा भूगोउ चन्द्र सूर्घ्य आदि उत्पन्न क्यों नहीं होते ? और जिस २ के योगसे जो २ उत्पन्न होता है वर २ ईश्वरके उत्पन्न किये हुए बीज, अन्न, जलादिके संयो-गसे बास, बुध और कृमि आदि उत्पन्न होते हैं, विना उनके नहीं। जैसे इन्दी चूना और नींबुका रस दूर २ देशसे खन्कर आप नहीं

अष्टम

मिछते। किसीके मिछानेसे मिछते हैं। उसमें भी यथायोग्य मिछानेसे रोरी होती है, अधिक न्यून वा अन्यथा करनेसे रोरी नहीं होती वैसे ही प्रकृति, परमाणुओंका ज्ञान और युक्तिसे परमेश्वरकं मिछाये विना जड़ पदार्थ स्वयं कुछ भी कार्य्यसिद्धिके छिये विशेष पदार्थ नहीं बन सकते। इसिछये स्वभावादिसे सृष्टि नहीं होती किन्तु परमेश्वरकी रचनासे होती है।। हा।

प्रश्त—इस अगत्का कर्त्ता नथा, न है और न होगा किन्तु अनादि कालसे यह जैसाका वैसा बना है। न कभी इसकी उत्पत्ति हुई न कभी विनाश होगा।

े उत्तर—विना कर्ताके कोई भी किया वा कियाजन्य पदार्थ नहीं वन सकता। जिन पृथिवी आदि पदार्थों में संयोग विशेषसे रचना दीखती है वे अनादि कभी नहीं हो सकते और जो संयोगसे वनता है वह संयोगके पूर्व नहीं होता और वियोगके अन्तमें नहीं रहता। जो तुम इसको न मानो तो कठिनसे कठिन पाषाण हीरा और पोलाद आदि तोड़, दुकड़े कर, गला वा भस्म कर देखो कि इनमें परमाणु पृथकें २ मिले हैं वा नहीं ? जो मिले हैं तो वे समय पाकर अलग २ भी अवश्य होते हैं ॥ १०॥

प्रश्न-अनादि ईश्वर कोई नहीं किन्तु जो योगाभ्याससे अणि-मादि ऐश्वय्यको प्राप्त होकर सर्वज्ञादि गुणयुक्त केवल ज्ञानी होता है वही जीव परमेश्वर कहाता है।

उत्तर - जो अनादि ईश्वर जगन्का स्नष्टा न हो तो साधनोंसे सिद्ध होने वाले जीवोंका आधार जीवनरूप जगत् शरीर और इन्द्रि-योंक गोलक कैसे बनते ? इनके विना जीव साधन नहीं कर सकता। जग साधन न होते तो सिद्ध कहांसे होता ? जीव चाहे जैसा साधन कर सिद्ध होते तो भी ईश्वरकी जो स्वयं सनातन अनादि सिद्धि है, जिसमें अनन्त सिद्धि हैं, उसके तुल्य कोई भी जीव नहीं हो सकता। क्योंकि जावका परम अवधि तक झान बढ़े तो भी परिमित झान और सामर्थ्यवाला होता है। अनन्त ज्ञान और सामर्थ्यवाला कभी नहीं हो सकता। देखों कोई भी योगी आजतक ईश्वरकृत सृष्टिकमको बदल-नेहारा नहीं हुआ है और न होगा। जैसे अनादि सिद्ध परमेश्वरने नेत्रसे देखने और कार्नोसे सुननेका निबन्ध किया है इसको कोई भी योगी बदल नहीं सकता, जीव ईश्वर कभी नहीं हो सकता।

प्रश्न—कल्प कल्पान्तरमें ईश्वर सृष्टि विख्यसण २ बनाता है। अथवा एक सी १

उत्तर--जैसी कि अब **है वैसी प**हिले थी और आगे होगी मेद नहीं करता --

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यंथा पूर्वमकल्पयत् । दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः ॥ ऋ० १०।१६ ०।३॥

'(धाता) परमेश्वर जैसे पूर्व करूपमें सूर्य, चन्द्र, विद्युत्, पृथिवी, कन्तरिक्ष, आदिको बनाता हुआ वैसे ही [ उसने ] अब बनाये हैं और आगे भी वैसे ही बनावेगा। इसिलए परमेश्वरके काम विना भूल भूकके होनेसे सदा एकसे ही हुआ करते हैं। जो अल्पन्न और जिसका ज्ञान वृद्धि क्षयको प्राप्त होता है उसीके काममें भूल चूक होती है, ईश्वरके काममें नहीं।

प्रश्न—सृष्टि विषयमें वेदादि शास्त्रोंका अविरोध है वा विरोध ? उत्तर—अविरोध है।

प्रश्नं-जो अविरोध है हो-

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः। आ-काशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अदृभ्यः पृथिवी। पृथिन्या ओषधयः। ओषधिभ्योऽसम्। अवाद्वेतः। रेतसः पुरुषः। स वा एष पुरुषोऽस-रसमयः॥[तैत्ति• ब्रह्मानन्दव• अनु• १] यह तैत्तिरीय उपनिवद् का वचन है। उस परमेश्वर और प्रकृतिसे आकाश अवकाश अर्थात् जो कारणरूप द्रव्य सर्वत्र फैल रहा था, उसको इकट्ठा करनेसे अवकाश उत्पत्नसा होता है, वास्तवमें आकाशकी उत्पत्ति नहीं होती क्योंकि विना आकाशके प्रकृति और परमाणु कहां ठडर सकें, आकाशके प्रश्चात् वायु, वायुके प्रश्चात् अपिन अपिनके पश्चात् जल, जलके पश्चात् पृथिवी, पृथिवीसे ओषि, ओषियोंसे अन्त, अन्तसे वीर्य्य, वीर्य्यसे पुरुष अर्थात् शरीर उत्पत्न होता है। यहां आकाशादि कमसे, और छान्दोग्यमें अग्न्यादि ऐतरेयमें जलादि कमसे सृष्टि हुई, वेदोंमें कहीं पुरुष, कहीं हिरण्यगंभ आदिसे, मीमां-सामें कम, वैशेषिकमें काल, न्यायमें परमाणु, योगमें पुरुषार्थ, सांख्यमें प्रकृति और वदान्तमें ब्रह्मसे सृष्टिकी उत्पत्ति मानी है। अब किसको सज्ञा और किसको भूठा मानें ?

उत्तर—इसमें सब सच्चे कोई मूठा नहीं । मूठा बह है जो विपरीत सममता है, क्योंकि परमेशवर निमित्त और प्रकृति जगत्का उपादान कारण है। जब महाप्रलय होता है उसके परचात् आकाशादि कम अर्थात् जब आकाश और वायुका प्रलय नहीं होता और अग्न्यादिका होता है अग्न्यादि कमसे, और जब विद्युत् अग्निका भी नाश नहीं होता तब जल कमसे सृष्टि होती है अर्थात् जिस २ प्रलयमें जहां २ तक प्रलय होता है वहां २ से सृष्टिकी उत्पत्ति होती है। पुरुष और हिरण्यगर्भादि प्रथमसमुझसमें लिख भी आये हैं वे सब नाम परमेशवरके हैं। परन्तु विरोध उसको कहते हैं कि एक कार्यमें एक ही विषय पर विरुद्ध वाद होवे। छः शाक्षोंमें अविरोध देखों इस प्रकार है। मीमांसामें "ऐसा कोई भी कार्य जगत्में नहीं होता कि जिसके बनानेमें कर्मचेष्टा न की जाय" वैशेषिकमें "समय न लगे विना बने ही नहीं" न्यायमें "उपादान कारण न होनेसे कुछ भी नहीं बन सकता" योगमें "विद्या, झान, विचार न किया जाय तो नहीं बन सकता" बोर "तत्वोंका मेल न होनेसे नहीं बन सकता" बौर

#### समुक्लास] शास्त्रोंमें सृष्टिके छः कारण। २६१

वेदान्तमें "बनानेवाला न बनावे तो कोई भी पदार्थ उत्पन्न न हो सके" इसलिये सुष्टि छः कारणोंसे बनती है। उन छः कारणोंकी व्याख्या एक २ की एक २ शास्त्रमें है। इसलिये उनमें विरोध कुछ भी नहीं। जैसे छः पुरुष मिलके एक छप्पर उठाकर भित्तियों पर घरें वैसा ही स्रिटिक्स कार्यकी व्याख्या हः शास्त्रकारोंने मिल कर पूरी की है। जैसे पांच अन्धे और एक मन्ददृष्टिको किसीने हाथीका एक २ देश बतलाया। उनसे पूछा कि हाथी कैसा है ? उनमेंसे एकने कहा खम्मे, दूसरेने कहा सूप, तीसरेने कहा मूसल, चौथेने कहा मारू, 'पांचवेंने कहा चौतरा और छठेने कहा काला२ चार खभोंके ऊपर कुछ भैसासा **धाकार बाला है। इसीप्रकार आजकलके मनार्थ, नवीन प्रन्थोंके पहने** भीर प्राकृत भाषा वालोंने भृषिप्रणीत प्रन्थ न पट्कर नवीन क्षुद्रबुद्धि-कल्पित संस्कृत और भाषाओंके प्रन्थ पढ़कर एक दूसरेकी निन्दामें तत्पर होके कठा कगड़ा मचाया है। इनका कथन बुद्धिमानोंके वा अन्यके मानने योग्य नहीं। क्योंकि जो अन्धेके पीछे अन्धे चर्छे तो दुःख क्यों न पार्वे १ वैसे ही आज कलके अलप विद्यायुक्त, स्वाधी, इन्द्रियाराम प्रहवोंकी छीछा संसारका नाश करनेवाछी है।

प्रश्न-जब कारणके विना कार्य्य नहीं होता तो कारणका कारण क्यों नहीं ?

लत्तर अरे भोले भाइयो ! कुछ अपनी बुद्धिको काममें क्यों नहीं छाते ? देखो संसारमें दो ही पदार्थ होते हैं, एक कारण दृसरा कार्य्य । जो कारण है वह कार्य्य नहीं और जिस समय कार्य्य है वह कारण नहीं । जबतक मनुष्य सृष्टिको यथावन् नहीं समम्भता तबतक उसको यथावन् झान प्राप्त नहीं होता—

नित्यायाः सत्वरजस्तमसां साम्यावस्थायाः प्रकृते-रूपन्नानां परमसूक्ष्माणां पृथक् पृथग्वर्त्तं मानानां तत्त्वपरमाणूनां प्रथमः संयोगारम्भः संयोगविद्योषा-

#### दंबस्थान्तरस्य स्थूलाकारप्राप्तिः सृष्टिक्च्यते ।

अनादि नित्यस्वरूप सत्व, रजस् और तमोगुणोंकी एकावस्थारूप प्रकृतिसे उत्पन्न जो परमसृक्ष्म पृथक् र तत्त्वावयव विद्यमान हैं उन्हींका प्रथम ही जो संयोंगका आरम्भ है संयोग विशेषोंसे अवस्थान्तर दूसरी अवस्थाको सृक्ष्म स्थूल २ बनते बनाते विचित्रकृष बनी है इसीसे यह संसंग होनेसे सृष्टि कहाती है। भला जो प्रथम संयोगमें मिलने और मिलानेवाला पदार्थ है, जो संयोगका आदि और वियोगका अन्त अर्थात जिसका विभाग नहीं हो सकता, उसको कारण और जो संयोगके परेचात् वेसा नहीं रहता वह कार्य्य कहाता है। जो उस कारणका कारण, कार्यका कार्य, कर्ताका कर्ता साधनका साधन और साध्यका साध्य कहाता है, वह देखता अन्या, सुनता बहिरा और जानता हुआ मृद्ध है। क्या आंखकी आंख, दीप-कका दीपक और सूर्यका सूर्य कभी हो सकता है १ जो जिससे उत्पन्न होता है वह कार्य, और जो उत्पन्न होता है वह कार्य, और जो कारणको कार्यस्प बनानेहारा है वह कर्ता कहाता है।

#### ' नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः। उभयोरपि इष्टोन्तस्त्वनयोस्तत्वदर्शिभिः॥

भगवद्गीता [ अ•२। १६]

कभी असतका भाव वर्तमान और सत्का अभाव अवर्तमान नहीं होता इन दोनोंका निर्णय तत्त्वदर्शी छोगोंने जाता है, अन्य पक्षपाती आमही मछीनात्मा अविद्वान छोग इस बातको सहजमें कैसे जान सकते हैं १ क्योंकि जो मनुष्य विद्वान, सत्संगी होकर पूरा विचार नहीं करता वह सदा भ्रमजालमें पड़ा रहता है। धन्य! वे पुरुष हैं कि सब विद्याओं के सिद्धान्तोंको जानते हैं और जाननेके छिये परिश्रम करते हैं, जानकर औरोंको निष्कपटतासे जनाते हैं। इससे जो कोई कार-णके बिना सृष्टि मानता है वह कुछ भी नहीं जानता। जब सृष्टिका

समय आता है तब परमातमा उन परमसूक्ष्म पदार्थीको इकट्ठा करता है। उसकी प्रथम, अवस्थामें जो परमसूक्ष्म प्रकृतिरूप कारणसे कुछ स्थूल होता है उसका नाम महत्तत्त्व और जो उससे कुछ स्थूल होता है उसका नाम अहङ्कार और अहङ्कारसे भिन्न २ पांच सूक्ष्मभूत श्रोत्र त्वचा, नेत्र, जिह्ना, प्राण, पांच ज्ञान इन्द्रियां, वाकु, हस्त, पाद, उपस्थ भौर गुदा, ये पांच कर्म इन्द्रिय हैं और ग्यारहवां मन कुछ स्थूल उत्पन्न होता है। और उन पञ्चतन्मात्राओंसे अनेक स्थूटावस्थाओंको प्राप्त होते हुये क्रमसे पांच स्थूलभूत जिनको हम लोग प्रत्यक्ष देखते हैं उत्पन्न होते हैं उनसे नाना प्रकारकी ओषधियां, वृक्ष आदि, उनसे अन्न, अन्नसे वीर्य और वीर्यसे शरीर होता है। परन्तु आदि-सृष्टि मैथुनी नहीं होती। क्योंकि जब स्त्री पुरुषोंके शरीर परमात्मा बनाकर उनमें जीवोंका संयोग कर देता है तदनन्तर मैथुनी सृष्टि चलती है। देखी! शरीरमें किस प्रकारकी ज्ञानपूर्वक सृष्टि रची है कि जिसको विद्वान छोग देखकर आश्चर्य मानते हैं। भीतर हाड़ोंका जोड़, नाड़ियोंका बन्धन, मांसका लेपन, चमड़ीका ढकन, प्लीहा, यकृत, फेफड़ा, पंखा कलाका स्थापन, जीवका संयोजन, शिरोरूप मूलरचन, लोम नखादि का स्थापन, आंखकी अतीव सृक्ष्म शिराका तारवत् प्रन्थन, इन्द्रियोंके भागोंका प्रकाशन, जीवके जागृत, खप्न, सुषुप्ति अवस्थाके भोगनेके लिये स्थान विशेषोंका निर्माण, सब धातुका विभागकरण, कला, कौशल स्थापनादि अद्भुत सृष्टिको विना परमेश्वरके कौन कर सकता इसके विना नाना प्रकारके रत्न धातुसे जड़ित भूमि, विविध प्रकार वट वृक्ष आदिके बीजोंमें अति सूक्ष्म रचना, असंख्य हरित, श्वेत, पीत, कृष्ण, चित्र, मध्यरूपोंसे युक्त, पत्र, पुष्प, फल, मूलनिर्माण, मिष्ट, क्षार, कटुक, कषाय, तिक्त, अम्लादि विविध रस सुगन्धादियुक पत्र, पुष्प, फल, अन्न, कन्द, मूलादि रचन, अनेकानेक क्रोड़ों भूगोछ सूर्य, चन्द्रादि लोकनिर्माण, धारण, भ्रमण, नियमोंमें रखना आदि परमेश्वरके विना कोई भी नहीं कर सकता जब कोई किसी पढाईको

देखता है तो दो प्रकारका ज्ञान उत्पन्न होता है। एक जैसा वह पदार्थ है और दूसरा उसमें रचना देखकर बनानेवालेका ज्ञान है। जैसा किसी पुरुषने सुन्दर आधूषण जंगलमें पाया, देखा तो बिदित हुआ कि वह सुवणका है और किसी बुद्धिमान कारीगरने बनाया है। इसी प्रकार यह नाना प्रकार सुन्दिमें विविध रचना बनानेवाले परमेश्वरको सिद्ध करनी है।

प्रश्न-मनुष्यकी सृष्टि प्रथम हुई या पृथिवी आदिकी ? उत्तर-पृथिवी आदिकी, क्योंकि पृथिव्यादिके विना मनुष्यकी स्थिति और पालन नहीं हो सकता।

प्रश्न—सृष्टिकी आदिमें एक वा अनेक मनुष्य उत्पन्न किये थे वा क्या?

उत्तर—अनेक क्योंकि जिन जीनोंके कर्म ईश्वरीय सृष्टिमें उत्पन्न होनेके थे उनका जनम सृष्टिकी आदिमें ईश्वर देता क्योंकि "मनुष्या भृषयश्च थे। ततो मनुष्या अजायन्त" यह यजुर्वेद (और उसके ब्राह्मण) में लिखा है। इस प्रमाणसे यही निश्चय है कि आदिमें अनेक अर्थात् सैकड़ों सहस्रों मनुष्य उत्पन्न हुए और सृष्टिमें देखनेसे भी निश्चित होता है कि मनुष्य अनेक मा बापके सन्तान हैं।

प्रश्न—आदि सृष्टिमें मनुष्य आदिकी बाल्या, युवा, वा **रुद्धाव-**स्थामें सृष्टि हुई थी अथवा तीनोंमें ?

उत्तर —युवावस्थामें क्योंकि जो बालक उत्पन्न करता तो उनके पालनके लिये दूसरे मनुष्य आवश्यक होते और जो बृद्धावस्थामें बनाता तो मेथुनी सृष्टि न होती, इसलिये युवावस्थामें सृष्टि की है।

प्रश्न-कभी सृष्टिका प्रारम्भ है वा नहीं ?

, उत्तर—नहीं, जैसे दिनके पूर्व रात और रातके पूर्व दिन तथा दिनके पीछे रात और रातके पीछे दिन बराबर चला भाता है इसी प्रकार सुष्टिके पूर्व प्रलय और प्रलयके पूर्व सुष्टि तथा सुष्टिके (पीछे प्रक्रय और प्रलयके भागे सुष्टि भनादि कालसे चक्र चला भाता है। इसकी आदि वा अन्त नहीं। किन्तु जैसे दिन वा रातका आरम्भ और अन्त देखनेमें आता है उसी प्रकार सृष्टि और प्रख्यका आदि अन्त होता रहता है क्यों कि जैसे परमहमा, जीव, जगत्का कारण तीन स्वरूपसे अनादि है जैसे जगत्की उत्पत्ति, स्थित और वृत्तमान प्रवाहसे अनादि हैं, जैसे नदीका प्रवाह वैसा ही दीखता है कभी सुख जाता कभी नहीं दीखता फिर वरसातमें दीखना और उष्णकालमें नहीं दीखता, ऐसे व्यवहारों को प्रवाहरूप जानना चाहिये। जैसे परमेश्वरके गुण, कम, स्वभाव अनादि हैं वैसे ही उसके जगत्की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय करना भी अनादि हैं जैसे कभी ईश्वरके गुण, कम स्वभावका आरम्भ और अन्त नहीं इसी प्रकार उसके कर्तव्य कमोंका भी आरम्भ और अन्त नहीं।

प्रश्न-ईश्वरने किन्हीं जीवोंको मनुष्य जन्म, किन्हींको सिंहादि क्रूर जन्म, किन्हींको हरिण, गाय आदि पद्यु, किन्हींको बुक्षादि कृमि कीट पतङ्गादि जन्म दिये हैं, इससे परमात्मामें पक्षपात आता है।

उत्तर—पक्षपात नहीं आता क्योंकि उन जीवोंके पूर्व सृष्टिमें किये हुए कर्मानुसार व्यवस्था करनेसे जो कर्मके विना जन्म देता तो पक्षपात आता।

प्रश्न—मनुष्यकी आदि सृष्टि किस स्थलमें हुई ? उत्तर—त्रिविष्टप अर्थात् जिसको "तिब्बत" कहते हैं। प्रश्न—आदि सृष्टिमें एक जाति थी वा अनेक।

उत्तर—एक मनुष्य जाति थी पश्चात् "विजानीह्यार्यन्ये च दस्यवः" [१।५१। ८ यह श्रुग्वेदका वचन है। श्रेष्ठोंका नाम आर्य्य, विद्वान, देव और दुष्टोंके दस्यु अर्थात् डाकू, मूर्ख नाम होनेसे आर्य्य और दस्यु दो नाम हुए। "उत शूद्रे उतार्ये" अर्थवेवेद वचन। आर्थ्योमें पूर्वोक्त प्रकारसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चार मेद हुए। द्विज विद्वानोंका नाम आर्य और मूर्खोका नाम शूद्र और धनार्य अर्थात् अनाड़ी नाम हुआ। प्रश्न - फिर वे यहां कैसे आये ?

उत्तर—जब आर्य और दस्युओंमें अर्थात् विद्वान् जो देव, अदि-द्वान् जो असुर, उनमें सदा लड़ाई बखेड़ा हुआ किया, जब बहुत उप-द्रव होने लगा तब आर्य लोग सब भूगोलमें उत्तम इस भूमिके खण्डको जानकर यहीं आकर बसे इसीसे देशका नाम "आर्यावर्त्त" हुआ।

प्रभ-आर्घ्यावर्त्तकी अवधि कहांतक है ?

उत्तर---

आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात् । तयोरेवान्तरं गिर्योरार्घ्यावर्त्तं विदुर्बुधाः ॥१॥ सरस्वतीदषद्वत्योदेवनयोर्घदन्तरम् । तं देवनिर्मितं देशमार्यावर्त्तं प्रचक्षते ॥२॥

मनु० (२।२२।१७)

उत्तरमें हिमालय, दक्षिणमें विन्ध्याचल, पूर्व और पश्चिममें समुद्र ॥ १ ॥

तथा सरस्वती पश्चिममें अटक नदी, पूर्वमें दृषद्वती जो नैपालके पूर्व भाग प्राइमि निकलके बंगालके आसामके पूर्व और ब्रह्माके पश्चिम थोर होकर दृष्ट्रिणके समुद्रमें मिली है जिसको ब्रह्मपुत्रा कहते हैं और जो उत्तरक पहाड़ोंसे निकलके दृष्ट्रिणके समुद्रकी खाड़ीमें अटक मिली है हिमालयकी मध्य रेखासे दृष्ट्रिण और पहाड़ोंके भीतर खोर रामेश्वर पर्यन्त विनध्याचलके भीतर जितने देश हैं उन सबको आयार्वर्त इसलिये कहते हैं कि यह आर्यार्वर्त देव अर्थात् विद्वानोंने कसाया और आर्यजनोंके निवास करनेसे आर्यार्वर्त कहाया है।

प्रश्त—प्रथम इस देशका नाम क्या था और इसमें कौन वसते थे ? उत्तर—इसके पूर्व इस देशका नाम कोई भी नहीं था और न कोई आर्योंके पूर्व इस देशमें बसते थे। क्योंकि आर्य्य छोग सृष्टिकी

# संभुक्तास] दस्यु, म्छेच्छ, असुर नागादि । २६७

भादिमें कुछ क:लके पश्चात तिब्बतसे सीधे इसी देशमें आकर वसे थे।

प्रश्न-कोई कहते हैं कि यह लोग ईरानसे आये इसीसे इन लोगों का नाम आर्य हुआ है। इनके पूर्व यहां जगली लोग वसते थे कि जिनको असुर और राक्षस कहते थे। आर्य छोग अपनेको देवता बतलाते थे और उनका जब संप्राम हुआ उसका नाम देवासुर संप्राम कथाओं में ठहराया।

उत्तर—यह बात सर्वथा भूठ है, क्योंकि— विजानीस्वार्यान्ये च दस्यवो बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान् ॥ ऋ० मं० १ । सू० ५१ । मं० ८॥ उत शुद्रे उतार्ये ॥ [अथ० कां० १६ । व० ६२]

यह लिख चुके है कि आर्य नाम धार्मिक, विद्वान, आप्त पुरुषोंका भौर इससे विपरोत जनोंका नाम दस्यु अर्थात डाकू, दुष्ट, अधार्मिक भौर अविद्वान है। तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य द्विजोंका नाम आर्थ भीर शुद्रका नाम अनार्य अर्थात् अनाड़ो है। जब वेद ऐसे कहता है तो दूसरे विदेशियोंके कपोलकल्पितको बुद्धिमान् लोग कभी नहीं मान सकते । और देवासुर संप्राममं आर्यावर्तीय अर्जुन तथा महाराजा दशरथ आदि हिमालय पहाड़में आर्य और दस्यु म्लेच्छ असुरोंका जो युद्ध हुआ था, उसमें देव अर्थात् आर्यो ही रक्षा ओर असुरोंके पराजय करनेको सहायक हुए थे। इससे यही सिद्ध होता है कि आर्यावर्तके बाहर चारों ओर जो हिमालयके पूर्व, आग्नेय, दक्षिण, नैऋृत्य, पश्चिम, वायब्य, उत्तर, ईशान देशमें मनुष्य रहते हैं उन्हींका नाम असुर सिद्ध होता है। क्योंकि जब २ हिमालय प्रदेशस्थ आयों पर **छड़नेको चढ़ाई करते थे तब २ यहांके राजा महाराजा लोग उन्हीं एत्तर आदि देशोंमें भार्क्योंके सहायक होते थे। और जो श्रीराम-**चन्द्रजीसे दक्षिणमें युद्ध हुआ है उसका नाम देवासुर संप्राम नहीं है, किन्तु उपको रामरावण अथवा आर्य और राक्षसोंका संप्राम कहते है। किसी संस्कृत प्रन्थमें वा इतिहासमें नहीं लिखा कि आर्थ लोग ईरानसे आये और यहांके जंगलियोंको लड़कर, जय पाके निकाल इस देशके राजा हुए, पुनः विदेशियोंके लेख माननीय कैसे हो सकता है ? और:—

म्छेच्छवाचश्चार्यवाचः सर्वे ते दस्यवः स्मृताः ॥

म्छेच्छदेशस्त्वतः परः ॥ [ मनु० २ । २३ ]

जो आर्घ्यावर्त्त देशसे भिन्न देश हैं वे दस्युदेश और म्लेच्छदेश कहाते हैं। इससं भी यह सिद्ध होता है कि आर्घ्यावर्त्तसे भिन्न पूर्व देशसे लेकर ईशान, उत्तर, बायव्य और पश्चिम देशोंमें रहनेवालोंका नाम दस्य और म्लेच्छ तथा असुर है। और नैर्ऋत्य, दक्षिण तथा धानेय दिशाओं में आर्थावर्त्त देशसे भिन्नमें रहनेवाले मनुष्योंका नाम राक्षस था। अब भी देख छो हवशी छोगोंका खरूप भयंकर जैसा राक्षसोंका वर्णन किया है वैसा ही दीख पड़ता है। और आर्यावर्त्त-की सूच पर नीचे रहनेवालोंका नाम नाग और उस देशका नाम पाताल इसिल्ये कहते हैं कि वह देश आर्घ्यावर्तीय मनुष्योंके पाद अर्थात् पगके तले है। और उनके नाग शंशी अर्थात नाग नामवाले पुरुषके वंशके राजा होते थे उसीकी उलोपी राजकन्यासे अर्जुनका विवाह हुआ था। अर्थात् इक्ष्वाकुसे लेकर कौरव पांडव तक सर्व भूगोलमें मार्योका राज्य और वेदोंका थोड़ा २ प्रचार आर्ट्यार्वत्तसे भिन्न देशोंमें भी रहता था। इसमें यह प्रमाण है कि ब्रह्माका पुत्र विराट, विराट्का मनु, मनुके मरीच्यादि दश इनके खयंभवादि सात राजा भौर उनके सन्तान इक्ष्त्राकु आदि राजा जो आर्ट्यावर्त्तके प्रथम राजा हुए जिन्होंने यह आर्घ्यार्वर्त्त वसाया है। अब अभाग्योदयसे और **अ**ार्योंके आर्लस्य, प्रमाद, परस्परके विरोधसे अन्य देशोंके राज्य करनेकी तो कथा ही क्या कहनी किन्तु आर्व्यावर्त्तमें भी आर्योका

स्वलण्ड, स्वतन्त्र, स्वाधीन, निभय राज्य इस समय नहीं है। जो कुछ है सो भी विदेशियोंके पादाक्रान्त हो रहा है। कुछ थोड़े राजा स्वतन्त्र हैं। दुर्दिन जब आता है तब देशवासियोंको अनेक प्रकारके दुःस्व भोगना पड़ता है। कोई कितना ही करें परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है वह सर्वोपिर उत्तम होता है। अथवा मतमतान्तरके आष्ठह रहित अपने और परायेका पक्षपातशून्य प्रजा पर पिता माताके समान कृपा, न्याय और द्याके साथ विदेशियोंका राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है। परन्तु भिन्न २ भाषा, पृथक् २ शिक्षा, अखग व्यवहारका विरोध छूटना अति दुष्कर है। विना इसके छूटे परस्परका पूरा उपकार और अभिपाय सिद्ध होना कठिन है। इसिखये जो कुछ वेदादि शाक्षोंमें व्यवस्था वा इतिहास खिले हैं उसीका मान्य करना भद्रपुरुषोंका काम है।

प्रश्न-जगत्की उत्पत्तिमें कितना समय व्यतीत हुआ ?

वत्तर—एक अर्ब, अनवें कोड़, कई लाख और कई सहस्र वर्ष जगत्की उत्पत्ति और वेदोंके प्रकाश होनेमें हुए हैं। इसका स्पष्ट ज्याख्यान मेरी बनाई भूमिका\* में लिखा है, देख लीजिये। इत्यादि प्रकार सृष्टिके बनाने और बननेमें हैं। और यह भी है कि सबसे सूक्ष्म दुकड़ा अर्थात् जो काटा नहीं जाता उसका नाम परमाणुओं, साठ परमाणुओंके मिले हुएका नाम अणु, दो अणुका एक द्र्यणुक जो स्थूल वायु है, तीन द्र्यणुकका अग्नि, चार द्र्यणुकका जल, पांच द्र्यणुककी पृथिषी अर्थात् तीन द्र्यणुकका त्रसरेणु और उसका दूना होनेसे पृथिवी आदि दृश्य पदार्थ होते हैं। इसी प्रकार क्रमसे मिलकर भूगोलादि परमात्माने बनाये हैं।

प्रश्न-इसका धारण कौन करता है ? कोई कहता है शेष अर्थात् सहस्र फणवाले सर्पके शिर पर पृथिवी है। दूसरा कहता है कि बैल-

<sup>\*</sup> मृग्वेदादिभाष्यभूमिकाके वेदोत्पत्ति विषयको देखो ।

के सींग पर, तीसरा कहता है किसी पर नहीं, चौथा कहता है कि वायुके आधार, पांचवां कहता है सूर्यके आकर्षणसे खेंची हुई अपने ठिकाने पर स्थित, छठा कहता है कि पृथिवी भारी होनेसे नीचे २ आकाशमें चली जाती है। इत्यादिमें किस बातको सत्य मानें ?

उत्तर-जो शेष सर्प् और बैलके सींग पर धरी हुई पृथिवी स्थित बतलाता है उसको पूछना चाहिये कि सर्प्य और बैठके मा बाप-के जन्म समय किस पर थी। सर्प और बैळ आदि किस पर हैं? वैखवाले मुसलमान तो चुप ही कर जायेंगे परन्तु सर्प्पवाले कहेंगे कि सर्प्प कूम पर, कूम जलपर, जल अग्निपर, अग्नि वाय पर और वाय आकाशमें ठहरा है। उनसे पूछना चाहिये कि ये सब किस पर हैं ? तो अवश्य कहेंगे परमेश्वर पर जब उनसे कोई पूछेगा कि शेष और बैल किसका बचा है १ कहेंगे कश्यप कडू और बैल गायका। कश्यप मरोची, मरीची मन, मन विराट और विराट ब्रह्माका पुत्र, ब्रह्मा आदि सृष्टिका था। जब शेषका जन्म न हुआ था उसके पहिले पांच पीढी हो चुकी हैं तब किसने धारण की थी ? अर्थात् कश्यपके जन्म समयमें पृथिवी किस पर थी तो "तेरी चुप मेरी भी चुप" और छड़ने लग जायेंगे। इसका सञ्चा अभिप्राय यह है कि जो "बाकी" रहता है उसको शेष कहते हैं। सो किसी कविने "शेषाधारा पृथिवीत्युक्तम्" ऐसा कहा कि शेषके आधार पृथिवी है। दूसरेने उसके अभिप्रायको ' न समम्भ कर सर्प्यकी मिथ्या कल्पना करली। परन्तु जिसलिये परमेश्वर उत्पत्ति और प्रलयसे वाक्नी अर्थात् पृथक् रहता है इसीसे उसको "शेष" कहते हैं और उसीके आधार पृथिवी है-

#### सत्येनोत्तभिता भूमिः ॥ ऋ०१०। ८५। १॥

यह भ्राग्वेदका वचन है। (सत्य) अर्थात् जो त्रैकाल्याबाध्य, जिसका कभी नाश नहीं होता उस परमेश्वरने भूमि, आदित्य और सब लोकोंका धारण किया है।

#### उक्षा दाधार पृथिबीमुत चाम् ॥

यह भी मृग्वेदका वचन है—इसी (ज्क्षाः) शब्दको देखकर किसीने बैठका प्रहण किया होगा क्योंकि उक्षा बैठका भी नाम है। परन्तु उस मृहको यह विदित न हुआ कि इतने बड़े भूगोडके धारण करनेका सामर्थ्य बैठमें कहांसे आवेगा ? इसिंठये उक्षा वर्षाद्वारा भूगोठके सेचन करनेसे सुर्यका नाम है। उसने अपने आकर्षणसे पृथिनीको धारण किया है। परन्तु सुर्यादिका धारण करने वाला विना परमेश्वरके दूसरा कोई भी नहीं है।

प्रश्न—इतने २ बड़े भूगोलोंको परमेश्वर कैसे धारण कर सकता होगा ?

उत्तर—जैसे अनन्त आकाशके सामने बड़े २ भूगोछ कुछ भी अर्थात् समुद्रके आगे जलके छोटे कणके तुल्य भी नहीं हैं बैसे अनन्त परमेश्वरके सामने असंख्यात लोक एक परमाणुके तुल्य भी नहीं कह सकते। वह बाहर भीतर सर्वत्र व्यापक अर्थात् "विभुः प्रजासु" [३२।८] यह यजुर्वेदका वचन है, वह परमात्मा सब प्रजामों विधायक होकर सबको धारण कर रहा है। जो वह ईसाई मुसल्यान पुराणियोंके कथनानुसार विभु न होता तो इस सब सुष्टिका धारण कभी न कर सकता। क्योंकि विना प्राप्तिके किसीको कोई धारण नहीं कर सकता। कोई कहे कि ये सब लोक परस्पर आकर्षणसे धारित होंगे पुनः परमेश्वरके धारण करनेकी क्या अपेक्षा है। उनको यह उत्तर देना च हिये कि यह सुष्टि अनन्त है वा सान्त ? जो अनन्त कहें तो आकारवाली वस्तु अनन्त कभी नहीं हो सकती स्वीर जो सान्त कहें तो उनके पर भाग सीमा अर्थात् जिसके परे कोई भी दूसरा

 <sup>\*</sup> मृग्वेदमें "उश्लास द्याव । पृथिवी विभित्ति" ।। १०। ३१। ८।।
 यह वचन है। व्यथ्वेवेदमें — "अनङ्गन दाधार पृथिवीगुत द्याम्" ।।
 ४। ११। १। है।।

लोक नहीं है वहां किसके आकर्षणसे धारण होगा जैसे समस्टि और व्यक्टि अर्थात् जब सब समुदायका नाम बन रखते हैं तो समस्टि कहाता है और एक २ बृक्षादिको भिन्न २ गणना करें तो व्यस्टि कहाता है, वैसे सब भूगोलोंको समस्टि गिनकर जगत् कहें तो सब जगत्का धारण और आकर्षणका कर्ता विना परमेश्वरके दूसरा कोई भी नहीं इसलिये जो सब जगत्को रचता है वही—

# स दाधार पृथिवीं चामुतेमाम् ॥ [यजु० १३।४]

यह यजुर्वेदकः वचन है। जो प्रथिव्यादि प्रकाशरहित छोकछोका-न्तर पदार्थ तथा सूर्यादि प्रकाशसहित छोक और पदार्थोका रचन भारण परमात्मा करता है, जो सबमें व्यापक हो रहा है वही सब जगत्का कर्ता और धारण करनेबाला हैं।

्रप्रस—पृथिज्यादि लोक घूमते हैं वा स्थिर ? उत्तर—घूमते हैं।

प्रश्न—कितने ही लोक कहते हैं कि सूर्य घूमता है और पृथिवी नहीं घूमती। दूसरे कहते हैं कि पृथिवी घूमती है सूर्य नहीं घूमता इसमें सत्य क्या माना जाय?

उत्तर—ये दोनों आधे मूठे हैं क्योंकि बेदमें लिखा है कि— आयं गौ: पृश्चिरकमीदसदन्मातरं पुर:। पितरं च प्रयन्त्स्व:॥ यज्ज० अ० ३। मं० ६॥

अर्थात् यह भूगोल जलके सहित सूर्यके जारों ओर घूमता जाता है इसिलिये भूमि घुमा करती है।

आकृष्णेन रजसा वर्त्तमानो निवेद्ययसमृतं मर्त्यं ष । हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि परयन् ॥ यज्ञ० अ० ३३ । मं० ४३ ॥

जो सविता अर्थात् सूर्य वर्षादिका कर्रा, प्रकाशस्त्रस्य, तेजीमय,

रमणीयस्वरूपके साथ वर्रामान, सब प्राणि अप्राणियोंमें अमृतरूप वृष्टि वा किरणद्वारा अमृतका प्रवेश करा और सब मृतिमान द्रव्योंको दिख-छाता हुआ सब लोकोंके साथ आकर्षण गुणसे सह वर्त्तमान, अपनी परिधिमें घूमता रहता है किन्तु किसी छोकके चारों ओर नहीं घूमता वैसे ही एक २ ब्रह्माण्डमें एक सूर्य प्रकाशक और दूसरे सब लोक लोकान्तर प्रकाश्यहैं, जैसे--

# दिवि सोमो अघि श्रितः॥ अथ०१४।१।१॥

जैसे यह चन्द्रलोक सूर्यसे प्रकाशित होता है वैसे ही पृथिग्यादि छोक भी सूर्यके प्रकाश हीसे प्रकाशित होते हैं परन्तु रात और दिन सर्वदा वर्रामान रहते हैं क्योंकि पृथिज्यादि लोक घूम कर जितना भाग सूर्यके सामने आता है उतनेमें दिन और जितना पृष्ठमें धर्यात् **बा**डमें होता जाता है उतनेमें रात । अर्थात् उदय, अस्त संध्या मध्याह्न, मध्यरात्रि आदि जितने कालावयव हैं वे देशदेशान्तरों में सदा वर्रामान रहते है। अर्थात् जब आर्य्यावर्रामें सूर्योद्य होता है उस समय पाताल अर्थात् "अमेरिका" में अस्त होता है और जब अर्था-वर्तामें अस्त होता है पाताल देशमें उदय होता है। जब आर्ज्यावर्तामें मध्य दिन वा मध्य रात्रि है उसी समय पाताल देशमें मध्य रात और मध्य दिन रहता है। जो लोग कहते हैं कि सुर्य घूमता और पृथिवी नहीं घूमती वे सब अज्ञ हैं क्यों कि जो ऐसा होता तो कई सहस्र वर्षके दिन और रात होते अर्थात् सूर्यका नाम ( ब्रध्नः ) पृथिवीसे ळाख-गुणा बड़ा और क्रोड़ों कोश दूर है। जैसे राईके सामने पहाड़ घूमे तो बहुत देर लगती और राईके घूमनेमें बहुत समय नहीं लगता वैसे ही पृथिवीके घूमनेसे यथायोग्य दिन रात होता है, सूर्यके घूमनेसे नहीं बौर जो सूर्यको स्थिर कहते हैं वे भी ज्योतिर्विद्यावित् नहीं। क्योंकि यदि सूर्य न घूमता होता तो एक राशि स्थानसे दूसरी राशि अर्थात् स्थानको प्राप्त न होता । और गुढ पदार्थ विना घूमें आकाशमें नियत

अष्टम

स्थान पर कभी नहीं रह सकता । और जो जैनी कहते हैं कि पृथिवी चूमती नहीं किन्तु नीचे २ चली जाती है और दो सूर्य और दो चन्द्र केवल जंबूदीपमें बतलाते हैं वे तो गहरी भांगके नशेमें निमान हैं क्यों ? जो नीचे २ चली जाती तो चारों ओर वायुके चक्र न बननेसे पृथिवी छिन्न भिन्न होती और निम्नस्थलोंमें रहनेवालोंको वायुका स्पर्श न होता, नीचेवालोंको अधिक होता और एकसी वायुकी गति होती, दो सूर्य चन्द्र होते तो रात और कृष्णपक्षका होना ही नष्ट भ्रष्ट होता। इसलिये एक भूमिके पास एक चन्द्र और अनेक भूमियोंके मध्यमें एक सूर्य रहता है।

प्रश्न-सूर्य चन्द्र और तारे क्या वस्तु हैं और उनमें मनुष्यादि सृष्टि है वा नहीं ?

उत्तर—ये सब भूगोल लोक और इनमें मनुष्यादि प्रजा भी रहती हैं क्योंकि—

एतेषु हीदणं सर्वं वसु हितमेते हीदणं सर्वं वास-यन्ते तद्यदिदणं सर्वं वासयन्ते तस्माद्रसव इति॥ दात० १४ [६। ७। ४]

पृथिवी, जल, अिन, बायु, आकाश, चन्द्र, नक्षत्र और सूर्य इनका बसु नाम इसिलये है कि इन्हीं से सब पदार्थ और प्रजा बसती है और ये ही सबको बसाते हैं। जिसिलये वासके निवास करनेके घर हैं इसिलये इनका नाम बसु है। जब पृथिवीके समान सूर्य चन्द्र और नक्षत्र बसु हैं पश्चात् उनमें इसी प्रकार प्रजाके होनेमें क्या सन्देह १ और जैसे परमेश्वरका यह छोटासा लोक मनुष्यादि सुष्टिसे भरा हुआ है तो क्या यह सब लोक शून्य होंगे १ परमेश्वरका कोई भी काम निष्ययोजन नहीं होता तो क्या इतने असंख्य लोकोंने मनुष्यादि सृष्टि न हो तो सफल कभी हो सकता है १ इसिलये सर्वत्र मनुष्यादि सृष्टि है।

#### समुक्षास] अन्य लोकोंमें बेदका प्रकाश। ३०५

प्रश्न-जैसे इस देशमें मनुष्यादि सृष्टिकी आकृति अवयव है वैसे ही अन्य छोकोंमें भी होगी वा विपरीत ?

उत्तर—दुळ २ आकृतमें भेद होनेका सम्भव है। जैसे इस देशमें चीन, हवस और आर्थावर्त्त, युरोपमें अवयव और रङ्ग रूप और आकृतिका भी थोड़ा २ भेद होता है इसी प्रकार लोक लोकान्त-रोमें भी मेद होते हैं। परन्तु जिस जातिकी जसी सृष्टि इस देशमें है वैसी जाति ही की सृष्टि अन्य लोकोंमें भी है। जिस २ शरीरके प्रदेशमें नेत्रादि अंग हैं उसी २ प्रदेशमें लोकान्तरमें भी उसी जातिके अवयव भी वैसे ही होते हैं क्योंकि—

# सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत् । दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमधोस्वः ॥ ऋ०१०।१६०।३॥

्धाता) परमात्माने जिस प्रकारके सूर्य्य चन्द्र, द्यौ, भूमि, सन्तरिक्ष और तत्रस्थ सुख विशेष पदार्थ पूर्व कल्पमें रचे थे वैसे ही इस कल्प अर्थात् इस सृष्टिमें रचे हैं तथा सब छोक छोकान्तरोंमें भी बनाये गये हैं। भेद किंचिन्मात्र नहीं होता।

प्रश्न-जिन वेदोंका इस लोकमें प्रकाश है उन्हींका उन लोकोंमें भी प्रकाश है वा नहीं ?

उत्तर—उन्हींका है। जैसे एक राजाकी राज्यव्यवस्था नीति सब देशोंमें समान होती है उसी प्रकार परमात्मा राजराजेश्वरकी वेदोक्त नीति अपने २ सुब्टिरूप सब राज्यमें एकसी है।

प्रश्न---जब ये जीव और प्रकृतिस्थ तत्त्व अनादि और ईश्वरके बनाये नहीं हैं तो ईश्वरका अधिकार भी इन पर न होना चाहिये क्योंकि सब स्वतन्त्र हुए ?

उत्तर—जैसे राजा और प्रजा सम कालमें होते हैं और राजाके आधीन प्रजा होती है वैसे ही परमेश्वरके आधीन जीव और जड़ पदार्थ हैं। जब परमेश्वर सब सृष्टिका बनाने, जीवोंके कर्मफर्लोंक

[अष्टम

हेने, सबका यथावन् रक्षक और अनन्त सामर्थ्य वाला है तो अस्प सामर्थ्य भी ओर जड़ पदार्थ उसके आधीन क्यों न हो ? इसिल्ये जीव कर्म करनेमें स्वतन्त्र परन्तु कर्मोके फल भोगनेमें ईश्वरकी व्यवस्थासे परतन्त्र है, वैसे ही सर्वशक्तिमान् सृष्टि संहार और पालन सब विश्वका करता है।

इसके आगे विद्या, अविद्या, बन्ध और मोक्ष विषयमें लिखा जायगा, यह आठवां समुद्धास पूरा हुआ ॥ ८ ॥

> इति श्रीमह्यानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे सुभाषाविभूषिते सुष्ट्युं त्पत्तिस्थितिप्रलयि-षयेऽष्टमः समुक्षासः सम्पूर्णः॥ ८॥



# 🍹 त्र्रथ नवमसमुह्यासारम्भः

## अथ विचाऽविचाबन्धमोक्षविषयान् ब्याख्यास्यामः

विद्यां चाऽविद्यां च यस्तद्वं दो भय ऐसह । अविद्ययां मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्तुते ॥ यज्ञः ४०।१४॥

' जो मनुष्य विद्या और अविद्याके स्वरूपको साथ ही साथ जानना है वह अविद्या अर्थान् कर्मोपासनासे मृत्युको तरके विद्या अर्थान् यथार्थ झानसे मोक्षको प्राप्त होता है। अविद्याका लक्षण—

अनिलाशुचिदुःलानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्या-तिरविद्या ॥ [ पातं०द० साधनपादे सू० ५ ]

यह योगसूत्रका वचन है—जो अनित्य संसार और देहादिमें नित्य, अर्थात् को कार्ध्य जगत् देखा सुना जाता है, सदा रहेगा, सदासे है और योग बलसे यही देवोंका शरीर सदा रहता है वैसी विपरीत बुद्धि होना अविद्याका प्रथम भाग है। अशुचि अर्थात् मल्लम्य स्त्र्यादिके और मिथ्याभाषण, चोरी आदि अपवित्रमें पवित्र बुद्धि दूसरा, अत्यन्त विषयसेवनरूप दुःखमें सुखबुद्धि आदि तीसरा, अनात्मामें आत्मबुद्धि करना अविद्याका चौथा भाग है। यह चार प्रकारका विपरीत झान अविद्या कहाती है। इससे विपरीत अर्थात् अनित्यमें अनित्य और नित्यमें नित्य, अपवित्रमें अपवित्र, और पवित्रमें पवित्र, दुःखमें दुःख, सुखमें सुख, अनात्मामें अनात्मा, और आत्माका झान होना विद्या है। अर्थात् "वेति य्थावतत्त्वय-

निवम

दांधस्वरूपं यया सा विद्या यया तत्त्वस्वरूपं न जानाति भ्रमादन्यस्मिन्नन्यन्निश्चिनोति यया साऽविद्या" जिससे पदार्थोका यथांध स्वरूप बोध होवे वह विद्या और जिससे तत्त्वस्वरूप न जान पड़े अन्यमें अन्य बुद्धि होवे वह अविद्या कहाती है। अर्थात् कम और उपासना अविद्या इसल्यि है कि यह बाह्य और अन्तर कियाविशेष है ज्ञानिविशेष नहीं। इसीसे मंत्रमें कहा है कि विना शुद्ध कम और परमेश्वरकी उपासनाके मृत्यु दुःखसे पार कोई नहीं होता। अर्थात् पवित्र कम, पवित्रोपासना और पवित्र ज्ञान ही से मुक्ति और अपवित्र मिध्याभाष-णादि कम पाषाणमृत्योदिकी उपासना और मिध्याज्ञानसे वन्ध होना है। कोई भी मनुष्य क्षणमात्र भी कम उपासना और ज्ञानसे रहिन नहीं होता। इसिल्ये धर्मयुक्त सत्यभाषणादि कम करना और मिध्यान्मभाषणादि अर्थाक्ष इसे कान और मिध्यान्मभाषणादि अर्थाक्ष होने होता। इसिल्ये धर्मयुक्त सत्यभाषणादि कम करना और मिध्यान्मभाषणादि अर्थाक्ष होने होता। इसिल्ये धर्मयुक्त सत्यभाषणादि कम करना और मिध्यान्मभाषणादि अर्थाक्ष होने होता। इसिल्ये धर्मयुक्त सत्यभाषणादि कम करना और मिध्यान्मभाषणादि अर्थाक्ष होने होता। इसिल्ये धर्मयुक्त सत्यभाषणादि कम करना और मिध्यान्मभाषणादि अर्थाक्ष होने होता।

प्रश्न—मुक्ति किसको प्राप्त नहीं होती ?

उत्तर—जो बद्ध है।

प्रश्न—बद्ध कौन है ?

उत्तर—जो अर्थम अज्ञानमें फँसा हुआ जीव है।

प्रश्न—बन्ध और मोक्ष स्वभावसे होता है वा निमित्तसे ?

उत्तर—निमित्तसे, क्योंकि जो स्वभावसे होता तो बन्ध और

सुक्तिकी निवृति कभी नहीं होती।

प्रश्न---

्न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः। ेन मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता ॥

[गौडपादीयक रिका। प्र• २। कां० ३२]

यह रलोक माण्डूक्योपनिषद् पर है—जीव इन्हा होनेसे वस्तुतः जीवका निरोध अर्थात् न कभी आवरणमें आया न जनम लेता न बन्ध है और न साथक अर्थात् न कुछ साधना करनेहारा है, न छूटनेकी

## समुह्णास] चिदाभास-अध्यारोप-आस्त्रीचना । ३०९

इच्छा करता और न इसकी कभी मुक्ति है क्योंकि जब परमाध्से बन्ध ही नहीं हुआ तो मुक्ति क्या ?

उत्तर — यह नवीन वेदान्तियोंका कहना सत्य नहीं। क्योंकि जीव का स्वरूप अल्प होनेसे आवरणमें आता, शरीरके साथ प्रकट होते. क्या जन्म लेता, पापरूप कर्मोंके फल भोगरूप बन्धनमें फँसना, उसके हुड़ानेका साधन करता, दुःखते छूटनेकी इच्छा करता और दुःखेंकि छूटकर परमानन्द परमेश्वरको प्राप्त होकर मुक्तिको भी भोगता है ?

प्रश्न—ये सब धर्म देह और अन्तः करणके हैं जीवके नहीं। क्योंकि जीव तो पाप पुण्यसे रहित साक्षीमात्र है। शीतोष्णादि शरी-राहिके धर्मा हैं, आत्मा निर्छेष है।

उत्तर—देह और अन्तःकरण जड़ हैं उनको शीतोब्ण प्राप्त और भोग नहीं है। जो चेनन मनुष्यादि प्राणि उसको स्पर्श करता है उसी-को शीत उद्णका भान ओर भोग होता है। वैसे प्राण भी जड़ हैं न उनको भूख न पिपासा, किन्तु प्राण वाले जीवको क्षुपा, नृषा लगती है। वैसे ही मन भी जड़ है न उसको हर्ष न शोक हो सकता है किन्तु मनसे हर्ष शोक दुःख सुखका भोग जीव करता है। जैसे बहिष्करण श्रोत्रादि इन्द्रियोंसे अच्छे चुरे शब्दादि विषयोंका प्रहण करके जीव सुखी दुःखी होता है वैसे ही अन्तःकरण अर्थात् मन. चुद्धि, चित्त, अहङ्कारसे सङ्कल्य विकल्प, निश्चय, स्मरण और अभिमानका करने-वाला दण्ड और मान्यका भागी होता है। जैसे तल्यारसे मारनेवाला दण्ड और प्रान्यका भागी होता है। जैसे तल्यारसे मारनेवाला दण्ड और प्राप्त स्मर्थ चुरे कर्मोका कर्ता जीव सुख दुःखका भोका है जीव कर्मोका साक्षी नहीं, किन्तु कर्ता भोगता है। कर्मोका साक्षी तो एक अद्विनीय परमात्मा है। जो कर्म करनेवाला जीव है वही कर्मोमें लिप्न होता है, वह ईश्वरसाक्षी नहीं।

प्रश्न--जीव ब्रह्मका प्रतिबिम्ब है जैसे द्र्प्णके टूटने फूटनेसे विम्बकी कुछ हानि नहीं होती इसी प्रकार अन्तःकरणमें ब्रह्मका प्रति- बिम्ब जीव तबतक है कि जबतक वह अन्तःकरणोपाधि है। जब अन्तःकरण नष्ट होगया तब जीव मुक्त है।

उतर—यह बालकपनकी बात है क्योंकि प्रतिबिम्ब साकारका साकारमें होता है जैसे मुख और दर्पण आकारवाले हें और पृथक् भी हैं। जो पृथक् न हो तो भी प्रतिबिम्ब नहीं हो सकता। ब्रह्म निरा-कार, सर्वव्यापक होनेसे उसका प्रतिबिम्ब ही नहीं हो सकता।

प्रश्त—देखो गम्भीर खच्छ जलमें निराकार और व्यापक आका-शका आभास पड़ता है। इसी प्रकार खच्छ अन्तःकरणमें परमात्माका आभास है इसलिये इसको चिदाभास कहते हैं।

उत्तर—यह बालबुद्धिका मिथ्या प्रलाप है। क्योंकि आकाश रूरय नहीं तो उसको आंखसे कोई भी क्योंकर देख सकता है।

प्रश्न—यह जो ऊपरको नीला और धूंबलापन दीखता है वह आ-काश नीला दीखता है वा नहीं ?

उत्तर-नहीं।

प्रश्न - तो वह क्या है ?

उत्तर—अलग २ पृथिवी जल और अग्निके त्रसरेणु दीखते हैं। उसमें जो नीलता दीखती है, वह अधिक जल जो कि वर्षता है सो बही नील, जो पूंचलापन दीखता है वह पृथिवीसे धूली उड़कर वायुमें घूमती है वह दीखती, और उसीका प्रतिविम्ब जल वा दर्पणमें दीखता है, आकाशका कभी नहीं।

प्रभ—जैसे घटाकाश, मेघाकाश और महदाकाशके भेद व्यवहार में होते हैं वैसे ही ब्रह्मके ब्रह्माण्ड और अन्तःकरण उपाधिके भेदसे ईश्वर और जीव नाम होता है। जब घटादि नष्ट हो जाते हैं तब महाकाश ही कहाता है।

उत्तर—यह भी बात अविद्वानों की है। क्योंकि आकाश कभी छिन्न भिन्न नहीं होता। व्यवहारमें भी "घड़ा लाओ" इत्यादि व्यव-हार होते हैं कोई नहीं कहता कि घड़ेका आकाश लाओ। इसल्पि

#### समुक्लास] चिदाभास-अध्यारोप-आलोचना ३११ यह बात ठीक नहीं।

प्रश्न—जैसे समुद्रके बीचमें मच्छी कीड़ और आकाशके बीचमें पक्षी आदि घूमते हैं वैसे ही चिदाकाश ब्रह्ममें सब अन्तःकरण घूमते हैं वे स्वयं तो जड़ हैं परन्तु सर्वव्यापक परमात्माकी सतासे जैसा कि अग्निसे छोहा वैसे चेतन हो रहे हैं जैसे वे चछते फिरते और आकाश सथा ब्रह्म निश्चल है, वैसे जीवको ब्रह्म माननेमें कोई दोष नहीं आता।

उत्तर—यह भी तुम्हारा दृष्टान्त सत्य नहीं क्योंकि जो संवव्यापी कहा अन्तःकरणोंमें प्रकाशमान होकर जीव होता है तो संवज्ञादि गुण इसमें होते हैं वा नहीं ? जो कहो कि आवरण होनेसे संवज्ञता नहीं होती तो कहो कि क्रह्म आहत और खण्डत है वा अखण्डत ? जो कहो कि अखण्डत है तो बीचमें कोई भी पड़रा नहीं डाल सकता। जब पड़रा नहीं तो संवज्ञता क्यों नहीं ? जो कहो कि अपने खरू-पको भूलकर अन्तःकरणके साथ चलता सा है, खरूपसे नहीं, जब खयं नहीं चलता तो अन्तःकरण जितना २ पूर्व प्राप्त देश छोड़ता और आगे २ जहां २ सरकता जायगा वहां २ का ब्रह्म भ्रान्त, अज्ञानी हो जायगा और जितना२ छूटता जायगा वहां २ का ब्रह्म भ्रान्त, अज्ञानी हो जायगा और जितना२ छूटता जायगा वहां २ का ब्रह्म भ्रान्त, अज्ञानी हो जायगा और जितना२ छूटता जायगा वहां २ का ब्रह्म भ्रान्त, अज्ञानी हो जायगा शैर जितना२ छूटता जायगा वहां २ का ब्रह्म भ्रान्त, अज्ञानी हो जायगा वे वे के प्रकार संवत्र सुध्यक ब्रह्म के अन्तःकरण विगाड़ा करेंगे और बन्ध मुक्ति भी क्षण क्षणमें हुआ करेगी। तुम्हारे कहे प्रमाणे जो वैसा होता तो किसी जीवको पूर्व देले सुनेका स्मरण न होता क्योंकि जिस ब्रह्मने देखा वह नहीं रहा इसल्ये ब्रह्म जीव, जीव ब्रह्म एक कभी नहीं होता, सदा प्रथक २ हैं।

प्रश्न—यह सब अध्यारो गात्र है। अर्थात् अन्य वस्तुमें अन्य बस्तुका स्थापन करना अध्यारोप कहाता है वैसे ही ब्रह्म वस्तुको स्थ जगत् और इसके व्यवहारका अध्यारोप करनेसे जिह्नासुको बोब कराना होता है, बास्तवमें सब ब्रह्म ही हैं।

प्रश्न-अध्यारोपका करनेवाला कौन है १\*

<sup>\* [</sup> यहांसे प्रभक्तां सिद्धान्ती आर उत्तरदाता वेदान्ती है ]

उत्तर-जीव।

प्रश्न-जीव किसको कहते हो ?

**उत्तर—अन्तःकरणावच्छित्र चेतनको** ।

प्रश्न-अन्त करणावच्छित्र चेतन दूसरा है वा वही ब्रह्म ?

. उत्तर--वही ब्रह्म है ।

प्रश्न-तो क्या ब्रह्म हीने अपनेमें जगत्की भूठी कल्पना करली ? उत्तर-हो, ब्रह्मकी इससे क्या हानि।

प्रश्न-जो मिथ्या कल्पना करता है क्या वह भूठा नहीं होता ? उत्तर-नहीं, क्योंकि जो मन, वाणीसे कल्पित वा कथित हैं वह सब मठा है।

प्रश्त—फिर मन वाणीसे मूठी कल्पना करने और मिथ्या बाँछ-नेवाला ब्रह्म कल्पिन और मिथ्यावादी हुआ वा नहीं ?

**eत्तर—हो, हमको इष्टापत्ति है** !

बाह रे मूठे वेदान्तियो ! तुमने सत्यस्वरूप, सत्यकाम, सत्यसङ्करण परमान्माको मिथ्याचारी कर दिया । क्या यह तुम्हारी दुर्गतिका कारण नहीं है ? किस उपनिषद, सूत्र वा वेदमें लिखा है कि परमेश्वर मिथ्यासङ्करण और मिथ्यावादी है ? क्यों कि जैसे किसी चोरने कोत-वालको दण्ड दिया अर्थान् "उलट चोर कोतवालको दण्ड है स कहानी के सहश तुम्हारी बात हुई । यह तो बात उचित है कि कोतवाल चोर को दण्डे परन्तु यह बात विपरीत है कि चोर कोतवालको दण्ड देवे । वैसे ही तुम मिथ्यासङ्करण और मिथ्यावादी होकर वही अपना दोष ब्रह्मों व्यर्थ लगाते हो ! जो ब्रह्म मिथ्याबादी होकर वही अपना दोष ब्रह्मों व्यर्थ लगाते हो ! जो ब्रह्म मिथ्याबादी, मिथ्याकारी, होवे तो सब अनन्त ब्रह्म वैसा ही होजाय क्योंकि वह एकरस है, सत्यस्वरूप सत्यमानी सत्यवादी और सत्यकारी है । ये सब दोष तुम्हारे हैं, ब्रह्मके नहीं जिसको तुम विद्या कहते हो वह अविद्या है और तुम्हारा अध्यारोप भी मिथ्या है क्योंकि आप ब्रह्मन नहीं तो क्या

३१३

है १ जो सर्वत्यापक है वह परिच्छित्र, अज्ञान और बन्धमें कभी नहीं गिरता, क्योंकि अज्ञान परिच्छित्र एक देशी अल्प अल्पज्ञ जीव होता है, सर्वज्ञ सर्वव्यापी ब्रह्म नहीं।

## अब मुक्ति बन्धका वर्णन करते हैं।

प्रश्न—मुक्ति किसको कहते हैं ?

उत्तर—"मुञ्बन्ति पृथाभवन्ति जना यस्यां सा मुक्तिः" जिसमें

छूट जाना हो उसका नाम मुक्ति है।

प्रश्न--किससे छूट जाना ?

**उत्तर**—जिससे छूटनेकी इन्छा सब जीव करते हैं।

प्रश्न-किससे छूटनेकी इच्छा करते हैं ?

**डरार**—जिससे छूटना चाहते हैं।

प्रश्न-किससे छुटेना चाहते हैं ?

**ड**त्तर—दुःखसे ।

प्रश्न-छूट कर किसको प्राप्त होते और कहां रहते हैं १

उत्तर-सुखको प्राप्त होते और ब्रह्ममें रहते हैं।

प्रश्न-मुक्ति और बन्ध किन २ बातोंसे होता है 🖣

उत्तर—परमेश्वरकी आज्ञा पालने, अधम्मं, अविद्या, कुसङ्क, कुसंस्कार, बुरे व्यसनोंसे अलग रहने और सत्यभाषण, परोपकार, विद्या पक्षपातरहित न्याय धर्मकी वृद्धि करने, पूर्वोक्त प्रकारसे परमेश्वरकी स्तुति प्रार्थना और उपासना अर्थात् योगाभ्यास करने, विद्या पढ़ने पढ़ाने और धमसे पुरुषार्थ कर ज्ञानकी उन्नति करने, सबसे उत्तम साधनोंको करने और जो कुछ करे वह सब पक्षपातरहित न्याय-धर्मानुसार ही करे इत्यादि साधनोंसे मुक्ति और इनसे विपरीति ईश्व-राज्ञाभङ्क करने आदि कामसे बन्ध होता है।

प्रश्न—मुक्तिमें जीवका लय होता है वा विद्यमान रहता है ?

प्रश्न—कहां रहता है ? उत्तर—ब्रह्ममें।

प्रश्न-- ब्रह्म कहां है और वह मुक्त जीव एक ठिकाने रहता है वा स्वेच्छाचारी होकर संत्र विचरता है ?

क्तार — जो ब्रह्म सर्वत्र पूर्ण है उसीमें मुक्त जीव अव्याहतगति अर्थात् उसको कही रुकावट नहीं विज्ञान आनन्दपूर्वक स्वतन्त्र विच-रता है।

प्रश्न—मुक्त जीवका स्थूल शरीर होता है वा नहीं ? उत्तर—नहीं रहता।

प्रश्न-फिर वह सुख और आनन्दभोग कैसे करता है ? दशर-उसके सत्य सङ्कल्पादि स्वभाविक गुण सामर्थ्य सद रहते हैं भौतिकसङ्ग नहीं रहता, जैसे:-

श्रुण्यन् श्रोगं भवति, स्पर्शयन् स्वरभवति, परयन् चक्षुर्भवति, रसयन् रसना भवति, जिन्नन् न्नाणं भ-वति, मन्वानो मनो भवति, बोधयन् बुद्धिर्भवति, चेत्रयंश्चित्तम्भवत्यहङ्कुर्वाणोऽहङ्कारो भवति ॥

।। शतपथ कां० १४ ।।

मोक्षमें भौतिक शरीर ता इन्द्रियोंक गोलक जीवात्माके साथ नहीं रहते किन्तु अपने स्वाभाविक गुद्ध गुण रहते हैं जब सुनना बाहता है तब भोत्र, स्पर्श करना चाहता है तब त्वचा, देखनेके संकल्पसे चक्कु, स्वादके अर्थ रसना, गन्थके लिये घाण, संकल्प विकल्प करने समय मन, निश्चय करनेके लिये बुद्धि, स्मरण करनेके लिये चित्र और आहंकारके अर्थ सहङ्कारक्ष्य अानी स्वशक्ति जीवात्मा मुक्तिमें हो जाता है और सङ्कल्पमात्र शरीर होता है जैसे शरीरके आधार रहकर इन्द्रियोंके गोलक्षके द्वारा जीव स्वकार्य करता है वैसे अपनी शक्ति

मुक्तिमें सब ब्यानन्द भोग लेता है।

प्रश्न-उसकी शक्ति के प्रकारकी और कितनी है ?

खतर—मुख्य एक प्रकारकी शक्ति है परन्तु बल, पराक्रम, आक-र्षण, प्रेरणा, गित, भीषण, विवेचन, क्रिया, उत्साह, स्मरण, निश्चय, इच्छा, प्रेम, हेष, संयोग, विभाग, संयोजक, विभाजक, श्रवण, स्पर्शन, दर्शन, स्वादन और गन्धप्रहण तथा ज्ञान इन २४ (चौबीस) प्रकारके सामर्थ्ययुक्त जीव है। इससे मुक्तिमें भी आनन्दकी प्राप्ति भोग करता है। जो मुक्तिमें जीवका लय होता तो मुक्तिका मुख कौन भोगता ? और जो जीवके नाश ही को मुक्ति समस्रते हैं वे महामृद्ध हैं क्योंकि मुक्ति जीवकी यह है कि दुःखोंसे लूट कर आनःदस्वरूप सर्वट्यापक अनन्त परमेश्वरमें जीवका आनन्दमें रहना। देखो वेदान्त शारीरिक-सूत्रोंमें—

#### अभावं बादरिराह ह्ये वम् ॥ [बेदान्त० ४।४।१०]

जो वादिर व्यासजीका पिता है वह मुक्तिमें जीवका और उसके साथ मनका भाव मानता है अर्थात जीव और मनका छय पराशरजी नहीं मानते वैसे ही---

#### भावं जैमिनिर्विकल्पामननात् ॥ [वेदा० ४।४।११]

और जैमिनि आचार्य्य मुक्त पुरुषका मनके समान सूक्ष्म शरीर, इत्रियों और प्राण आदिकों भी विद्यमान मानते हैं अभाव नहीं।

## द्वादशाहबदुअयविधं वादरायणोऽतः॥

[वेदान्तद० ४। ४। १२]

ब्यास मुनि मुक्तिमें भाव और अभाव इन दोनोंको मानते हैं अर्थात शुद्ध सामर्थ्ययुक्त जीव मुक्तिमे बना रहता है, अपवित्रता, पापा-चरण, दु:ख अज्ञानादिक। अभाव मानते हैं।

यदा पश्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह । बुद्धिश्च

#### न विचेष्टते तामाहुः परमां गतिम्॥

[क्ठो॰ अ०२।व०६।मं॰ १०]

यह उपनिषद्का वचन है। जब शुद्ध मनयुक्त पांच ज्ञानेन्द्रिय जीवके साथ रहती है और बुद्धिका निश्चय स्थिर होता है उसको परमगति अर्थान् मोक्ष कहते हैं।

य आत्मा अपहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशो-कोऽविजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसङ्कल्पः सोऽन्वेष्टच्यः स विजिज्ञासितच्यः सर्वाश्च लोका-नाप्नोति सर्वाश्च कामान् यस्तमात्मानमनुविद्यवि-जानातीति ॥ [ छान्दो० ८ । ७ । १ ]

स बाएष एतेन दैवेन चक्षुपा मनसैतान् कामान् परयन् रमते ॥ य एते ब्रह्मलोके तं वा एतं देवा आत्मानमुपासते तस्मात्तेषाँ सर्वे च लोका आत्ताः सर्वे चकामाः स सर्वाँ अ लोकानाप्नोति सर्वाँ अ कामान्यस्तमात्मानमनुविच विजानातीति ॥

[ छान्दोट प्र• ८ । सं ११२ । मं० १ । ह ]

मघवन्मत्र्ये वा इद् शरीरमात्तं मृत्युना तद् स्याऽमृतस्य।शरोरस्यात्मनोधिष्ठानमात्तो वै सशरीरः वियावियाभ्यां न वे सशरोरस्य सतः वियाविययो-रपहतिरस्त्यशरीरं वाव सन्तं न वियाविये सृशतः॥

[छान्दो• ८० ८ । खं• १२ । मं• १ ]

जो ८रमात्मा अपहतपाय्मा सर्व पाप, जरा, मृत्यु, शोक, शुधा,

पिपासासे रहित, सत्यकाम सत्यसंकरूप है उसकी खोज और उसीकी माननेकी इच्छा करनी चाहिये। जिस परमातमाके सम्बन्धसे मुक्त जीव सब लोकों और सब कामोंको प्राप्त होता है, जो परमात्माको जानके मोक्षके साधन और अपनेको ग्रुद्ध करना जानता है सो यह मुक्तिको प्राप्त जीव शुद्ध दिज्य नेत्र और शुद्ध मनसे कामोंको देखता, प्राप्त होता हुआ रमण करता हैं। जो ये ब्रह्मलोक अर्थात दर्शनीय परमात्मामें स्थिर होके मोक्ष सुखको भागते हैं और इसी परमात्माका जो कि सबका अन्तर्यामी आत्मा है उसकी उपासना मुक्तिको प्राप्त करनेवाले विद्वान् लोग करते हैं। उससे उनको सर्व लोक और सब काम प्राप्त होते हैं अर्थात जो २ संकल्प करते हैं वह २ लोक और वहर काम प्राप्त होता है और वे मुक्त जीव स्थल शरीर छोडकर सङ्ख्यमय शरीरसे आकाशमें परमेश्वरमें विचरते हैं। क्योंकि जो शरीर वाले होते हैं वे सांसारिक दुःवसे रहित नहीं हो सकते ! जैसे इन्द्रसे प्रजा-पतिने कहा है कि हे परमपूजित धनयुक्त पुरुष ! यह स्थूल शरीर मर-णधर्मा है और जैसे सिंहके मुखमें बकरी होवे वैसे यह शरीर मृत्युके मुखके बीच है सो शरीर इस मरण और शरीररहित जीवात्माका निवासस्थान है। इसलिये यह जीव सुख और दुःखसे सदा प्रस्त रहता है क्योंकि शरीर सहित जीवकी सांसारिक प्रसन्नताकी निवृत्ति होतीही है और जो शरीररहित मुक्त जीवात्मा ब्रह्ममें रहता है। उसको सांसा-रिक सुखदुःखका स्पर्श भी नहीं होता किन्तु सदा आनन्दमें रहता है।

प्रश्न-जीव मुक्तिको प्राप्त होकर पुनः जनम मरणरूप दुःखमें

कभी आते हैं वा नहीं ? क्योंकि-

न च पुनरावर्त्त न च पुनरावर्त्त हित ॥ उपनिषद्वचनम् [ छां• प्र० ८। खं• १५ ]

अनाषृत्तिः शन्दादनाषृत्तिः शन्दात्॥ शारीरिक सूत्र ['४ । ४ । ३३]

#### यदत्वा न निवर्शन्ते तद्धाम परमं मम ॥ भगवद्गीता ॥

इत्यादि वचनोंसे विदित होता है कि मुक्ति वही है कि जिससे निवृत्त होकर पुनः संसारमें कभी नहीं आता।

उत्तर-पह बात ठीक नहीं क्योंकि वेदमें इस बातका निषेध किया है।

कस्य नूनं कतमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम। को नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च ह्रें मातरं च ॥ १ ॥

अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम। स नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च हुरोयं मातरं च ॥ २॥ ऋ० मं० १ सू० २४ मं० १. २॥ इटानीमिव सर्वत्र नात्यन्तोच्छेदः॥ ३॥

सांख्यसत्र १ । १५६ ॥

प्रश्न—हम लोग किसका नाम पवित्र जाने ? कौन नाशरहित पदार्थीके मध्यमें वर्रामान देव सदा प्रकाशस्वरूप है हमको मुक्तिका सुख भुगाकर पुनः इस संसारमें जन्म देता और माता तथा पिताका दर्शन कराता है।। १।।

उत्तर—हम इस स्वप्रकाशस्वरूप अनादि सदा मुक्त परमात्माका नाम पवित्र जाने जो हमको मुक्तिमें आनन्द भुगा कर पृथिवीमें पुनः माता पिताके सम्बन्धमें जनम देकर माता पिताका दशन कराता है। वही परमात्मा मुक्तिकी व्यवस्था करता सबका स्वामी है।। २।।

जैसे इस समय बन्धमुक्त जीव हैं वैसे ही सर्वदा रहते हैं अत्यन्त त्रिच्छेद बन्ध मुक्तिका कभी नहीं होता किन्तु बन्ध स्रोर मुक्ति सहा नहीं रहती।। ३।।

प्रश्न—

तद्वन्तविमोक्षोऽपवर्गः।

तुःखजन्मप्रवृत्तिदोषिमध्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तदनन्तरापायादपवर्गः ॥ न्याय० [१।१।२]

जो दुःखका अत्यन्त विच्छेद होता है वही मुक्ति कहाती है क्योंकि जब मिथ्या झान अविद्या, लोभादि दोष, विषय दुष्ट व्यसनोंमें प्रवृत्ति, जन्म और दुःखका उत्तर २ के छूटनेसे पूर्व २ के निवृत्त होने ही से मोक्ष होता है जो कि सदा बना रहता है।

खत्तर—यह आवश्यक नहीं है कि अत्यन्त शब्द अत्यन्तामाव ही का नाम होवे। जैसे "अत्यन्तं दुःखमत्यन्तं सुखं चास्य वर्रते" बहुत दुःख और बहुत सुख इस मनुष्यको है। इससे यही विदित होता है कि इसको बहुत सुख वा दुःख है। इसी प्रकार यहां भी अत्यन्त शब्दका कर्य जानना चाहिये।

े प्रश्न—जो मुक्तिसे भी जीव फिर आता है तो वह कितने समय एक मुक्तिमें रहता है ?

हत्तर—

#### ते ब्रह्मलोके ह परान्तकाले परामृतात् परिमुच्य-न्ति सर्वे ॥ [ मुण्डक ३ खं० २ मं० ६ ]

यह मुण्डक उपनिषद्का वचन है। वे मुक्त जीव मुक्तिमें प्राप्त होके ब्रह्ममें आनन्दको तबतक भोगके पुनः महाकल्पके परचान् मुक्ति मुखको छोड़के संसारमें आते हैं। इसकी संख्या यह है कि तेंताखीस खाख बीस सहस्र वर्षोंकी एक चतुर्युगी, दो सहस्र चतुर्युगियोंका एक बहोरात्र, ऐसे तीस अहोरात्रोंका एक महीना, ऐसे बारह महीनोंका एक बर्प, ऐसे शन वर्षोंका परान्तकाल होता है। इसको गणितकी रीतिसे बथावत् समस्र लीजिए। इतना समय मुक्तिमें सुख भोगनेका है। प्रश्न—सब संसार और प्रत्थकारोंका यही मत है कि जिससे पुनः जन्म मरणमें कभी न आवें।

उत्तर—यह बात कभी नहीं हो सकती क्योंकि प्रथम तो जीवका सामर्थ्य शरीरादि पदांथ और साधन परिमित हैं पुनः उसका फल अनन्त कैसे हो सकता है ? अनन्त आनन्दको भोगनेका असीम सामर्थ्य कम और साधन जीवोंमें नहीं इसल्लिये अनन्त सुख नहीं भोग सकते। जिनके साधन अनित्य हैं उनका फल नित्य कभी नहीं हो सकता। और जो मुक्तिमेंसे कोई भी लैंटकर जीव इस संसारमें न आवे तो संसारका उच्छेद अर्थात् जीव निश्शेष होजाने चाहियें।

प्रश्न-जितने जीव मुक्त होते हैं उतने ईश्वर नये उत्पन्न करके संसारमें रख देता है इसलिये निश्शेष नहीं होते।

उत्तर-जो ऐसा होवे तो जीव अनित्य होजायें क्योंकि जिसकी **उत्पत्ति होती है** उसका नाश अवश्य होता है फिर तम्हारे मतानुसार मुक्ति पाकर भी विनष्ट होजायें मुक्ति अनित्य होगई और मुक्तिके स्थानमें बहतसा भीड भड़का हो जायेगा क्योंकि वहां आगम अधिक खौर व्यय कुछ भी नहीं होनेसे बदतीका पारावार न रहेगा और दः-स्वके अनुभवके विना सुख कुछ भी नहीं हो सकता। जैसे कटून हो तो मधुर क्या जो मधुर न हो तो कद क्या कहावे ? क्योंकि एक स्वादके एक रसके विरुद्ध दोनोंकी परीक्षा होती है। जैसे कोई मनुष्य मीठा मधुर ही खाता पीता जाय उसको वैसा सुख नहीं होता जैसा सब प्रकारके रसोंके भोगनेवालेको होता है। और जो ईश्वर अन्त-बाले कर्मोंका अनन्त फळ देवे तो उसका न्याय नष्ट्रहो जाय. जो जितना भार उठासके उतना उस पर धरना बुद्धिमानोंका काम है। जैसे एक मन भर उठानेवालेके शिर पर दश भन धरनेसे भार धरने-बालेकी निन्दा होती है वैसे अल्पन्न अल्प सामर्थ्यवाले जीव पर अनन्त सुलका भार धरना ईश्वरके लिये ठीक नहीं। और जो परमेश्वर नवे जीव उत्पन्न करता है तो जिस्र कारणसे उत्पन्न होते हैं वह चुक

जायगा, क्योंकि चाहे कितन। बड़ा धनकोश हो परन्टु जिसने क्यय है और आय नहीं उसका कभी न कभी दिवाला निकल ही जाता है। इसिलये यही व्यवस्था ठीक है कि मुक्तिमें जाना वहांसे पुनः आना ही अच्छा है। क्या थोड़ेन कारागारसे जनम कारागार दण्डवाले प्राणी अथवा फांसीको कोई अच्छा मानता है ? जब वहांसे आना ही न हो तो जनम कारागारसे इनना ही अन्तर है कि वहां मजूरी नहीं करनी पड़ती और ब्रह्मों लय होना समुद्रमें हुव मरना है।

प्रभ—जैसं परमेश्वर नित्यमुक्त पूर्ण सुखी है वैसे ही जीव भी नित्यमुक्त और सुखी रहेगा तो कोई भी दोष न आवेगा।

उत्तर—परमेश्वर अनन्त स्वरूप, सामर्थ्य, गुण, कर्म, स्वभाववाला है इसल्यि वह कभी अधिद्या और दुःख बन्धनमं नहीं गिर सकता। जीव मुक्त होकर भी शुद्धस्वरूप, अल्पज्ञ और परिभित गुण, कर्म, स्वभाववाला रहता है परमेश्वरके सदश कभी नहीं होता।

प्रभ—जब ऐसी, तो मुक्ति भी जन्म मरणके सदृश है इसलिये श्रम करना व्यर्थ है।

बत्तर—मुक्ति जन्म मरणके सहरा नहीं क्यों कि जबतक ३६००० ( छत्तीस सहस्र ) बार उत्पत्ति और प्रलयका जितना समय होता है उतने समय पर्यन्त जीवों को मुक्तिके आनन्दमें रहना दुःखका न होना क्या छोटी बात है ? जब आज खाते पीते हो कल भूख लगनेवाली है पुनः इसका उपाय क्यों करते हो ? जब क्षुधा, तृषा, क्षुद्र धन, राज्य, प्रतिष्ठा, बी, सन्तान आदिके लिये उपाय करना आवश्यक है तो मुक्तिके लिये क्यों न करना ? जैसे मरना अवश्य है तो भी जीवनका उपाय किया जाता है, बैस हा मुक्तिसे लीटकर जन्ममें आना है तथा-पि उसका उपाय करना अत्यावश्यक है ?

प्रश्न-मुक्तिकं क्या साधन हैं १

उत्तर — कुछ साधन तो प्रथम लिख आये हैं परन्तु विशेष उपाय ये हैं। जो मुक्ति चाहे वह जीवनमुक्त अर्थात् जिन मिथ्याभाषणादि

पाप कर्मोंका फल दुःख है उनको छोड सुखरूप फलको देनेवाले सत्यभाषणादि धर्माचरण अवश्य करे जो कोई दुःखको छुडाना और सुखको प्राप्त होना चाहे वह अधर्मको छोड़ धर्म अवश्य करें। क्योंकि दुःखका पापाचरण और सुखका धर्माचरण मूलकारण है। सत्पुरुषोंके संगसे विवेक अर्थात् सत्याऽसत्य, धर्माधर्म, कर्त्तव्याऽकर्त्तव्यका निश्चय अवश्य करें पृथक् २ जानें और शरीर अर्थात् जीव पंच कोशोंका विवेचन करें। एक "अन्नमय" जो त्वचासे लेकर अस्थिप-र्यन्तका समुदाय पृथिवीमय है, दूसरा "प्राणमय" जिसमें "प्राण" ध्यर्थातु जो बाहरसे भीतर आता "अपान" जो भीतरसे बाहर जाता "समान" जो नाभिस्थ होकर सर्वत्र शरीरमें रस पहुंचाता "उदान" जिससे कंठस्थ अन्न पान विंचा जाता और बल पराक्रम होता है "व्यान" जिससे सब शरीरमें चेव्टा आदि कर्म जीव करता है। तीसरा "मनोमय" जिलमें गनके साथ अहङ्कार, वाकु, पाद, पाणि, पायु और उपस्थ पांच कर्म इन्द्रियां हैं। चौथा "विज्ञानमय" जिसमें बुद्धि, चित्त, श्रीत्र, त्वचा, नेत्र, जिद्धा और नासिका ये पांच ज्ञान इन्द्रियां जिनसे जीव ज्ञानादि व्यवहार करता है। पांचवां "आनन्द-मयकोश" जिस्हों प्रीति प्रसन्नता, न्यून आनन्द अधिकानन्द, और ध्याधार कारण्या प्रकृति है। ये पांचे कोश कहाते हैं इन्हींसे जीव सब प्रकारके कर्म, उपासना और ज्ञानादि व्यवहारोंको करता है तीन **अवस्था**, एक "जागृत" दूसरी "स्वप्न" और तीसरी "सुषूप्ति" अव-स्था कहाती है। तीन शरीर हैं, एक "स्थूल" जो यह दीखता है। दूस-रा पांच प्राण, पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच सूक्ष्मभूत और मन तथा बुद्धि इन सत्तरह तत्वोंका समुदाय "सृक्ष्मशरीर" कहाता है यह सूक्ष्म शरीर जन्ममरणादिमें भी जीवके साथ रहता है। इसके दो मेद हैं एक भौतिक अर्थात् जो सूक्ष्मभूतोंके अंशोंसे बना है। दूसरा स्वाभाविक जो जीवके खाभाविक गुणरूप हैं यह दूसरा और भौतिक शरीर मुक्तिमें भी रहता है। इसीसे जीव मुक्तिमें सुखको भोगता है। तीसरा

कारण जिसमें सुपुष्ति अर्थान् गाढ़निद्रा होती है वह प्रकृतिरूप होनेसे सर्वत्र विभु और सब जीवोंके लिये एक है। चौथा तुरीय शरीर वह कहाता है जिसमें समाधिसे परमात्माके आनन्दस्वरूपमें मन्न जीव होते हैं। इसी समाधि संस्कारजन्य शुद्ध शरीरका पराक्रम मुक्तिनें भी यथावन सहायक रहता है इन सब कोश अवस्थाओं से जीव पृथक है क्योंकि यह सबको विदिन है कि अवस्थाओंसे जीव पृथक है क्योंकि जब मृत्यु होता है तब सब कोई कड्ते हैं कि जीव निकल गया, यही जीव सबका प्रेरक, सबका धर्ता, साक्षी, कर्ता भोका फहाता है। जो कोई ऐसा कड़े कि जीव कर्ता भोक्ता नहीं तो उसको जानो कि वह अज्ञानी, अविवेकी है क्योंकि विना जीवक जो ये सब जड पदार्थ हैं इनको सुख दुः खका भीग व पाप पुण्य कतृत्व कभी नहीं हो सकता। हां, इनके सम्बन्धसे जीव पाप पुण्योंका कर्ता और सुख दुःखोंका भोक्ता है। जब इन्द्रियां अर्थोनं मन इन्द्रियों और **धा**तमा मनके साथ संयुक्त होकर प्राणोंको प्रेरणा करके अच्छेवा बुरे कर्मोंमें लगाता है तभी वह बहिर्मुख होजाता है उसी समय भीतरसे भानन्द, उत्साह, निर्भयता और बुरे कर्मीमें भय, शंकः, लजा उत्पन्न होती है वह अन्तर्यामी परमात्माकी शिक्षा है। जो कोई इस शिक्षांक अनुकूछ वर्तता है वही मुक्ति जनय सुखोंको प्राप्त होता है। और जो विपरीत वर्त्तता है वह बन्धजन्य दुःख भोगता है। दूसरा साधन "वैराग्य" अर्थात जो विवेकसे सत्यासत्यको जाना हो उसमेंस सत्या-चरणका प्रहण और असत्याचरणका त्याग करना विवेक है। जो पृथिवीसे लेकर परमेश्वर पर्यन्त पदार्थींके गुण, कर्म स्वभावसे जानकर उसकी आज्ञा पालन और उपासनामें तत्पर होना, उससे विरुद्ध न चलना सृष्टिसे उपकार लेना विवेक कहाता है। तत्पश्चात तीसरा साधन "पट्क सम्पत्ति" अर्थात् छः प्रकारके कर्म करना एक "शम" जिससे अपने आत्मा और अन्तःकरणको अधर्माचरणसे इटाकर वर्माचरणमें सदा प्रवृत्ता रखना, दूसरा "दम" जिससे श्रोत्रादि

इन्द्रियों और शरीरको व्यतिचारादि बुरे कपाँसे हटाकर जितेन्द्रिय-त्वादि शुभ कमोंमें प्रवृत्त रखना, तीसरा "उपरित" जिससे दुष्ट कर्म करनेवाले पुरुषोंसे सदा दूर रहना, चौथा "तितिश्रा" चाहे निन्दा, स्तुति, हानि, लाभ कितना ही क्यों न हो परन्तु हर्ष शोकको छोड़ मुक्तिसाधनोंमें सदा छगे रहना, पाँचवां "श्रद्धा" जो वेदादि सत्य शास्त्र और इनके बोधसे पूर्ण आप्न विद्वान सत्योपदेष्टा महाशयोंके वचनों पर विश्वास करना, छठा "समाधान" चित्त की एकाप्रना ये छः मिल-कर एक "साधन" तीसरा कहाता है। चौथा "मुमुभुत्व" अर्थात् जैसे क्षुधा तृषातुरको सिवाय अन्न जलके दूसरा कुछ मी अच्छा नहीं लगता वैसे विना मुक्तिक साधन और मुक्तिके दूसरेमें प्रीति न होना। ये चार साधन और चार अनुबन्ध अर्थात् साधनोंके पश्चात ये कर्म करने होते हैं। इनमेंसे जो इन चार साधनोंसे युक्त पुरुष होता है वही मोक्षका अधिकारी होता है। दूसरा "सम्बन्ध" ब्रह्मकी प्राप्तिरूप मुक्ति प्रतिपाद्य अतर वेदादि शास्त्र प्रतिपादकको यथावत् समम कर अन्वित करना, तीसरा "विषयी" सब शास्त्रोंका प्रतिपादन विषय ब्रह्म उसकी प्राप्तिरूप विषय वाले पुरुषका नाम विषयी है, चौथा, "प्रयो-जन" सब दुःखोंकी निवृत्ति और परमानन्दको प्राप्त होकर मुक्तिपुख-का होना ये चार अनुबन्ध कहाते हैं। "तदनन्तर श्रवणचेतुप्टय" एक "श्रवण" जब कोई विद्वान उपदेश करे तब शान्त ध्यान देकर सुनना विशेष ब्रह्मविद्याके सुननेमें अत्यन्त ध्यान देना चाहिये कि यह सब विद्याओं में सूक्ष्म विद्या है, सुनकर दूसरा "मनन" एकान्त देशमें बैठके सुने हुएका विचार करना जिस बातमें शङ्का हो पुनः पूछना और सुनने समय भी वक्ता और श्रोता उचित समर्में तो पूछना और समाधान करना, तीसरा "निदिध्यासन" जब सुनने और मनन करनेसे निस्सन्देह होजाय तब समाधिस्थ होकर उस बातको देखना समफना कि वह जैसा सुना था विचारा था वैसा ही है वा नहीं ध्यान योगसे देखना, चौथा "साञ्चात्कार" अर्थात् जैसा पदार्थका (द हा

गुण और खभाव हो वैसा याथातथ्य जान लेना श्रवणचतुष्ट्य कहाता है। सदा तमोगुण अर्थात कोध, मलीनता, आलस्य, प्रमाद आदि रजोगुण अर्थात् ईव्यां, द्वेष, काम, अभिमान, विक्षेप आदि दोषोंसे अलग होके सत्य अर्थात् शान्त प्रकृति, पवित्रता, विद्या, विचार आदि गुणोंको धारण करे (मंत्री) सुखी जनोंमें मित्रता, (करुणा) दुखी जनों पर द्या, (मुदिना) पुण्यात्माओंसे हिषेत होना, (उपेक्षा) दुष्टात्माओंमें न प्रीति और न वैर करना। नित्यप्रति न्यूनसे न्यून दो घन्टा पर्यन्त मुमुश्च ध्यान अवश्य करे जिससे भीतरके मन आदि पदार्थ साक्षात् हों। देखो। अपने चेतनखरूप हैं इसीसे ज्ञानखरूप और मनके साक्षी हैं क्योंकि जब मन शान्त, चंचल, आनिन्दत वा विषाद्युक्त होता है उसको यथावत् देखते हैं वैसे ही इन्द्रियां प्राण आदिका ज्ञाता पूर्वदृश्का स्मरणकर्ता और एक कालमें अनेक पद्योंके वक्ता धारणाकर्षणकर्ता और सबसे पृथक् हैं जो पृथक् न होते तो स्वतन्त्र कर्त्ता इतके प्रेरक अधिष्टाता कभी नहीं हो सकते।

#### अविद्याऽस्मितारागद्वे षाभिनिवेद्याः पश्च क्छेद्याः ।

योगशास्त्र पादे २। सू॰ ३।।

इनमेंसे अविद्याका स्वरूप कह आये पृथक् वर्त्तमान बुद्धिको आत्मासे भिन्न न समम्प्तना अस्मिता, सुखमें प्रीति राग दुःखमें अप्रीति हेष और सब प्राणिमात्रको यह इच्छा सदा रहती है कि मैं सदा शरी-रस्थ रहूं मरूं नहीं मृत्युदुःखसे त्रास अभिनिवेश कहाता है इन पांच करेशोंको योग.भ्यास विज्ञानसे छुड़ाके ब्रह्मको प्राप्त होके मुक्तिके परमानन्दको भोगना चाहिये।

प्रश्त—जैसी मुक्ति आप मानते हैं वैसी अन्य कोई नहीं मानता, देखो जैनी छोग मोक्षशिछा, शिवपुरमें जाके चुप चाप बैठे रहना, ईसाई चौटा असमान जिसमें विवाह छड़ाई वाजे गाजे वस्नादि धारणसे आनन्द भोगना, वैसे ही मुसलमान सातवें आसमान, वाममार्गी श्रीपुर, शैव कैलाश, वैष्णव वैकुण्ठ और गोकुलिय गोसाई गोलोक आदिमें जाके उत्तम स्त्री, अन्न, पान, वस्त्र, स्थान आदिको प्राप्त होकर आनन्द में रहनेको मुक्ति मानते हैं। पौराणिक लोग (सालोक्य) ईश्वरके लोकमें निवास, (सानुज्य) छोटे भाईके सहश ईश्वरके साथ रहना, (सारूप्य) जैसी उपासनीय देवकी आकृति है वैसा बन जाना, (सामीप्य) सेवकके समान ईश्वरके समीप रहना, (सायुज्य) ईश्वरसे संयुक्त होजाना ये चार प्रकारकी मुक्ति मानते हैं। वदान्ति लोग ब्रह्ममें लय होनेको मोक्ष समम्तते हैं।

उत्तर—जैनी ( १२ ) बारहवें, ईसाई ( १३ ) तेरहवें और (१४) चौदहवें समुहासमें मुसलमानोंकी मुक्ति आदि विषय विशेष कर लिखेंगे जो वाममार्गी श्रीपुरमें जाकर लक्ष्मीके सदृश्य खियां मद्य मांसादि खाना पीना रङ्ग राग भोग करना मानते हैं वह यहांसे कुछ विशेष नहीं । वैसे ही महादेव और विष्णुके सदश आकृतिवाले पार्वती और लक्ष्मीके सदश स्त्रीयुक्त होकर आनन्द भोगना यहांके धनाड्य राजाओंसे अधिक इतना ही छीखते हैं कि वहां रोग न होंगे और यवावस्था सदा रहेगी यह उनकी बात मिथ्या है क्योंकि जहां भीग वहां रोग और जहां रोग वहां बद्धावस्था अवश्य होती है। और पौराणिकोंसे पूछना चाहिये कि जैसी तुम्हारी चार प्रकारकी सुक्ति है वैसी तो कृमि कीट पतंग परवादिकोंकी भी स्वतःसिद्ध प्राप्त है, क्योंकि ये जितने छोक हैं वे सब ईश्वरके हैं इन्हींमें सब जीव रहते हैं इसछिये "सालोक्य" मुक्ति अनायास प्राप्त है "सामीप्य" ईश्वर सर्वत्र व्याप्त होनेसे सब उसके समीप हैं इसलिये "सामीप्य" मुक्ति स्वतःसिद्ध है "सानुज्य" जीव ईश्वरसे सब प्रकार छोटा और चेतन होनेसे स्वतः बन्धुवत् है इससे "सानुज्य" मुक्ति भी विना प्रयत्नके सिद्ध है और सब जीव सर्वव्यापक परमात्मामें व्याप्य होनेसे संयुक्त हैं इससे "धायुज्य" मुक्ति भी स्वतःसिद्ध है। और जो अन्य साधारण नास्तिक छोग मरनेसे तत्वोंमें तत्व मिछकर परम मुक्ति मानते हैं वह

तो कुत्ते गदहे आदिको भी प्राप्त है। ये मुक्तियां नहीं हैं किन्तु एक पकारका बन्धन है क्योंकि ये लोग शिवपुर, मोश्रशिला, चौथे आस-मान, सातवें आसमान श्रीपुर, कैलाश, वैकुण्ठ, गोलोकको एक देशमें स्थान विशेष मानते हैं जो वे उन स्थानोंसे पृथक् हों तो मुक्ति छूट जाय इसीलिये जैसे १२ (वारह) पत्थरके भी र दृष्टवन्थ होते हैं उसके समान बन्धनमें होगे, मुक्ति तो यही है कि जहां इच्ला हो वहां विचरे कहीं अटके नहीं। न भय, न शङ्का, न दुःख होता है जो जनम है वह उत्पक्ति और मरना प्रलय कहा है सनय पर जनम लेते हैं।

प्रश्न-जन्म एक है वा अनेक ?

उत्तर—अनेक **।** 

प्रश्न-- जो अनेक हों तो पूर्व जन्म और मृत्युकी बातोंका स्मरण क्यों नहीं ?

उत्तर—जीव अल्पन्न है त्रिकालदृशीं नहीं इसिलये स्मरण नहीं रहता। और जिस मनसे ज्ञान करता है वह भी एक समक्षमें दो ज्ञान नहीं कर सकता। भला पूर्व जन्मकी वात तो दूर रहने दीजिये इसी देहमें जब गर्भ में जीव था शरीर बना पश्चात जन्मा पांचवें वर्षसे पूर्व तक जो २ बातें हुई हैं उनका स्मरण क्यों नहीं कर ख़कता ? और जागृत वा स्वप्नमें बहुतसा व्यवहार प्रत्यक्षमें करके अब सुषुत्व सर्थात् गाढ़निद्रा होती है तब जागृत आदि व्यवहारका स्मरण क्यों नहीं कर सकता ? और तुमसे कोई पूछे कि बारह वर्षके पूर्व तेरहवें वर्षके पांचवें महीनेके नववें दिन दश बजे पर पहिली मिनटमें तुमने क्या किया था ? तुम्हारा मुख, हाथ, कान, नेत्र, शरीर किस और ऐसा है तो पूर्व जन्मकी बातों के स्मरणमें शङ्का करना केवल लड़कपन-की बात है और जो स्मरण नहीं होता है इसीसे जीव सुखी है नहीं से सब जन्मोंके दुःखोंको देख २ दुःखित होकर मरजाता। जो कोई पूर्व और पीछे जन्मके वर्तमानको जानना वाहे तो भी नहीं जान

सकता क्योंकि जीवका ज्ञान और स्वरूप अल्प है यह बात ईश्वरके जानने योग्य है जीवके नहीं।

प्रश्न—जब जीवको पूर्वका ज्ञान नहीं और ईश्वर इसको दण्ड देना है तो जीवका सुधार नहीं हो सकता क्योंकि जब उसको ज्ञान हो कि हमने अमुक काम किया था उसीका यह फल है तभी वह पापक-मोंसे बच सके ?

उत्तर—तुम ज्ञान के प्रकारका मानते हो । प्रश्न—प्रत्यक्षादि प्रमाणोंस आठ प्रकारका ।

उत्तर—तो जब तुम जनमसे लेकर समय २ में राज, धन, बुद्धि, विद्या, दारिद्रय, निर्नृद्धि, मुर्खता आदि सुख दुःख संसारमें देख कर पूर्व जनमका झान क्यों नहीं करते। जैते एक अवैद्य और एक वैद्यकों कोई रोग हो उसका निदान अर्थात् कारण वैद्य जान लेता है और अविद्यान् नहीं जान सकता उसने वैद्यक विद्या पढ़ी है और दूसरेने नहीं परन्तु ज्वरादि रोगके होनेसे अवैद्य भी इतना जान सकता है कि मुम्तसे कोई छुपथ्य होगया है जिससे मुम्ते यह रोग हुआ है वैसे ही जगतमें विचित्र सुख दुःख आदिकां घटनी बढ़नी देखक पूर्वजनमका अनुमान क्यों नहीं जानते ? और जो पूर्वजनमको न मानोगे तो परमेश्वर पक्षपाती हो जाता है क्योंकि विना पापक दारिद्रयादि दुःख और विना पूर्वसिव्चत पुण्यके राज्य धनत्व्या और निर्वृद्धिता उसको क्यों दी ? और पूर्व जनमके पाप पुण्यक अनुसार दुःख सुखके देनेसे परमेश्वर न्यायकारी यथावत् रहता है।

प्रश्त—एक तनम होनेसे भी परमेश्वर न्यायकारी हो सकता है। जैसं सर्वोपिर राजा जो करें सो न्याय जैसे माली अपने उपवनमं छोटे और बड़े बृक्ष लगाता किसीको काटता उखाड़ता और किसीकी रक्षा करता बढ़ाता है। जिसकी जो वस्तु है उसको वह चाहे जैसे रक्षे उसके अपर कोई भी दूसरा न्याय करनेवाला नहीं जो उसको दण्द दे सके वा ईश्वर किसीसे डरे।

#### समुह्यास] न्यायकारी परमात्माकी व्यवस्था । ३२६

उत्तर—परमातमा जिसलिये न्याय चाइना करता अन्याय कभी नहीं करता इसंलिय वह पूजिनय और बड़ा है जो न्यायविरुद्ध करें वह ईश्वर ही नहीं जैसे माली युक्तिके विना मार्ग वा अस्थानमें वृक्ष लगाने, न काटने योग्यको काटने, अयोग्यको बढ़ाने, योग्यको न बढ़ाने से दूषित होता है इसी प्रकार विना कारणके करनेसे ईश्वरको दोष लगे परमेश्वरके ऊपर न्याययुक्त काम करना अवश्य है क्योंकि वह स्वभावसे पवित्र और न्यायकारी है जो उनमत्त समान क.म करे तो जगत्तके श्रेष्ठ न्यायाधीशसे भी न्यून और अप्रतिष्ठित होवे । क्या इस जगत्में विना योग्यताके उत्तम काम किये प्रतिष्ठा और दुष्ठ काम किये विना दण्ड देनेवाले निन्दनीय अप्रतिष्ठित नहीं होता ? इसलिये ईश्वर अन्याय नहीं करता इसीसे किसीस नहीं डरता।

प्रश्न-परमात्माने प्रथम ही से जिसके लिये जितना देना विचारा है उतना देता और जितना क्र.म करना है उतना करता है। उत्तर-उसका विचार जीशोंके कर्नानुसार होता है अन्यथा

नहीं जो अन्यथा हो तो वही अपराधी अन्यायकारी होवे।

प्रश्न—बड़े छोटोंको एकसा ही सुख हुःव है बड़ोंको बड़ी चिन्ता खोर छोटोंको छोटी—जैसे किसा साहूकारका विवाद राजघरमें छाख हपयेका हो तो वह अपने घरसे पालकीमें बैठकर कचहरीमें उष्णकालमें जाता हो बाज़ारमें होके उसको जाता देखकर अज्ञानी छोग कहते हैं कि देखो पुण्य पापका फल, एक पालकीमें आनन्दपूर्वक बैठा है और दूसरे विना जूते पहिरे ऊरर नीचेते तप्यमान होते हुए पालकी उठाकर छे जाते हैं परन्तु बुद्धिमान छोग इसमें यह जानते हैं कि जैसे २ कचहरी निकट आती जाती है वैसे २ साहूकारको बड़ा शोक और सन्देह बढ़ता जाता और कहारोंको आनन्द होता जाता है जब कचहरीमें पहुंचते हैं तब सेठजी इधर उधर जानेका विचार करते हैं कि प्राइ-विवाक (वकील) के पास जाऊ वा सरिश्तेदारके पास, आज हाहंगा वा जीतुंगा न जाने क्या होगा और कहार छोग तमालू पीते परस्पर

षातें करते हुए प्रसन्न होकर आनन्दमें सो जाते हैं। जो वह जीत जाय तो कुछ मुख और हार जाय तो सेठजी दःखसागरमें हूव जायं ध्रोर वे कहार जसके वैसे रहते हैं इसी प्रकार जब राजा मुन्दर कोमल विछोनेमें सोता है तो भी शीघ निद्रा नहीं आती और मजूर कंकर पत्थर और मिट्टी ऊ चे नीचे स्थल पर सोता है उसको मह. ही निद्रा आती है ऐसे ही सर्वत्र समझो।

उत्तर-यह समम अज्ञानियोंकी है। क्या किसी साहूकारसे कहें कि तू कहार बनजा और कहारसे कहें कि तू साहूकार वनजा ती साहकार कभी कहार बनना नहीं और कहार साहकार बनना चाहते हैं। जो सुख दुःख बरावर होता तो अपनी २ अवस्था छोड़ नीच और ऊंच बनना दोनों न चाहते। देखो एक जीव विद्वान, पुण्यात्मा, श्रीमान राजाकी राणीके गर्भमें आता और दूसरा महाद्रिद्र घिसया-रीके गर्भमें आता है। एकको गर्भसं छेकर सर्वथा सुख और दूसरेको सब प्रकार दुःख मिलता है। एक जब जनगता है तब सुन्दर सुगन्धि-युक्त जलादिसे स्नान युक्तिसे नाडीछेदन दुग्धपानादि यथायोग्य प्राप्त होत हैं। जब वह दूध पीना चाहता है तो उसके साथ मिश्री आदि मिठाकर यथेष्ट मिछता है। उसको प्रसन्न रखनेके छिये नौकर चाकर खिळौना सवारी उत्तम स्थानोंमें छाड़से आनन्द होता है दूसरेका जन्म जङ्गलमें होता स्नानके लिये जल भी नहीं मिलता जब दूध पीना चाहता तब दूधके वदलेमें घूंसा थपेड़ा आदिसे पीटा जाता है। अत्यन्त आर्तस्वरसे रोता है। कोई नहीं पूछता, इत्यादि जीवोंको विना पुण्य पापके सुख दुः व होनेसे परमेश्वर पर दोष आता है। दूसरा जैसे विना किये कर्मीके सुख दुःख मिलते हैं तो आगे नरक स्वर्ग भी न होना चाहिये क्योंकि जैसे परमेश्वरने इस समय विना कर्मोंके सुख दुःव दिया है वैसे मरे पीछे भी जिसको चाहेगा उसको स्वर्गमें और जिस हो चाहे नरकमें भेज देगा पुनः सब जीव अधर्मयुक्त हो जावेंगे वर्म क्यों करें ? क्योंकि धर्मका फळ मिलनेमें सन्देह है। परमेश्वरके

## समुब्छास] कर्मानुसार जीवोंकी नाना गति ३३१

हाथ है जैसी उसकी प्रसन्नता होगी दैसा करेगा तो पापकर्मों भय न होकर संसारमें पापकी वृद्धि और धर्मका क्षय हो जायगा। इस-लिये पूर्व जन्मके पुण्य पापके अनुसार वर्त्तमान जन्म और वर्त्तमान तथा पूर्वजन्मके कर्मानुसार भिविष्यत् जन्म होते हैं।

प्रश्न—मनुष्य और अन्य पश्वादिके शरीरमें जीव एकसा है वा भिन्न भिन्न जातिके ?

उत्तर---जीव एकसे **हैं परन्तु पाप पुण्यके योग्यसे मलिन और** पवित्र होते हैं।

प्रश्न मनुष्यका जीव पश्वादिमें और पश्वादिका मनुष्यके शरी-रमें और स्त्रीका पुरुपके और पुरुषका स्त्रीके शरीरमें जाता आता **है** वा नहीं ?

उत्तर—हां जाता आता है क्योंकि जब पाप बढ़जाता पुण्य न्यून हो ।। है तब मनुष्यका जीव पश्व दि नीच शरीर और जब धर्म अधिक तथा अधर्म न्यून होता है तब देव अर्थात् विद्वानोंका शरीर मिळता और जब पुण्ये पाप बराबर होता है तब साधारण मनुष्यजनम होता है। इसमें भी पुण्य पापके उत्तम मध्यम निकृष्ट होनेसे मनुष्यादिमें भी उत्तम मध्यम निकृष्ट शरीरादि सामग्रीवाले होते हैं और जब अधिक पापका फल पश्वादि शरीरमें भोग लिया है पुनः पाप पुण्यके तुल्य रहनेसे मनुष्य शरीरमें आता और पुण्यके फल भोगकर फिर् भी मध्यस्थ मनुष्यके शरीरमें आता है जब शरीरसे निकलता है सुरीका नाम "मृत्यु" और शरीरके साथ संयोग होनेका नाम "नन्म" है जब शरीर छोड़ता तब यमालव अर्थात् आकाशस्थ वायुमें रहता क्योंकि "यमेन वायुन।" वेदमें लिखा है कि यम नाम वायुका है गरुड़पुर।णका किन्त यम नहीं । इसका विशेष खण्डन मण्डन ग्यारहवें समुक्षासमें लिखेंगे, पश्चात् धर्मराज अर्थात् परमेश्वर उस जीवके पाप पुण्या-नुसार जनम देता है वह वायु, अन्न, जल, अथवा शरीरके छिद्रद्वारा दूसरेके रारीरमें ईश्वरकी प्रेरणासे प्रविष्ट होता है। जो प्रविष्ट होकर

कमशःविर्धमें जा, गर्भमें स्थित हो, शरीर धारण कर, बाहर आता है जो स्त्रीके शरीर धारण करने योग्य कर्म हों तो स्त्री और पुरुषके शरीर धारण करने योग्य कर्म हों तो पुरुषके शरीरमें प्रवेश करता है और नपुंसक गर्भकी स्थित समय स्त्री पुरुषके शरीरमें सम्बन्ध करके रजवीर्यके बराबर होनेसे होता है। इसी प्रकार नाना प्रकारके जन्म मरणमें तबतक जीव पड़ा रहता है कि जबतक उत्तम कर्मोपा-सना ज्ञानको करके मुक्तिको नहीं पाता, क्योंकि उत्तम कर्माद करनेसे मनुष्योंमें उत्तम जनम और मुक्तिमें महाकरपर्यन्त जन्म मरण दुःबों-से रिक्ष्त होकर आनन्दमें रहता है।

प्रश्न—मुक्ति एक जन्मों होती है वा अनेक जन्मोंमें ?

### भिग्रतेहृद्यग्रन्थिच्छिग्यन्ते सर्वसंशयाः । क्षीय-न्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे पराऽवरे ॥

मुण्डक [२। खं०२। मं०८]

जब इस जीवक हु: यभी अविद्या अज्ञानरूपी गांठ कट जाती, सब संशय छित्र होते और दुष्टकर्म क्षयको प्राप्त होते हैं तभी उस परमात्मा जो कि अपने आत्माक भागर और बाहर ज्याप रहा है उसमें निवास करता है।

प्रश्न—मुक्तिमें परनेश्वरमें जीव मिल जाता है वा पृथक् रहता है ? उत्तर—पृथक् रहता है, क्योंकि जो मिल जाय तो मुक्तिका सुख कौन भोगे और मुक्तिके जिनने साधन हैं वे सब निष्फल होजावें, वह मुक्ति तो नहीं किन्तु जीवका प्रलय जानना चाहिये। जब जीव पर-मेश्वरकी आज्ञापालन उत्तम कर्म सत्सङ्ग योगाभ्यास पूर्वोक्त सब साधन करता है वही मुक्तिको पाता है।

सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म यो वेद निहितं गुहायां परमे न्योमन्। सोऽश्तुते सर्वान् कामान् सह ब्र-

#### म्राणा विपश्चितेति॥ तैत्ति० [आनन्दवल्ली अनु०१]

जो जीवातमा अपनी बुद्धि और आत्सामें स्थित सत्य ज्ञान और अनन्त आनन्दस्वरूप परमात्माको जानता है वह उस व्यापकरूप ब्रह्मनें स्थित होके उस "विपश्चिन्" अनन्नविद्यायुक्त ब्रह्मके साथ सब कार्मा को प्राप्त होता है अर्थात् जिस २ आनन्दकी कामना करता है उस २ कामोंको प्राप्त होता है यही मुक्ति कहाती है।

प्रश्न—जैसे शरीरके विना सांसारिक सुख नहीं भोग सकता वैसे सुक्तिमें विना शरीर आनन्द कैसे भोग सकेगा ?

उत्तर-इसका समाधान पूर्व कह आये हैं और इतना अधिक सुनो-जैसे सांसारिक सुख शरीरके आधारसे भोगता है वैसे पर-मेश्वरके आधार मुक्तिके आनन्दको जीवात्मा भोगता है। वह मुक्त जीव अनन्त न्यापक ब्रह्ममें खच्छन्द घूमता, शुद्ध ज्ञानसे सब सृष्टिको देखता, अन्य मुक्तोंके साथ मिलता, सृष्टिविद्याको क्रमसं देखता हुआ सब छोक-लोकान्तरोंमें अर्थात जितने ये लोक दीखते हैं और नहीं दीखते उन सबमें घूमता है बह सब पदार्थोंको, जो कि उसके ज्ञानक . आगे हैं, देखता है। जिनना ज्ञान अधिक होता है उसको उतना हो ब्यानन्द अधिक होता है। मुक्तिमें जीवारमा निर्मल होनेसे पूर्ण झ नी होकर उसको सब सन्निहित पदार्थीका भान यथावत होता है। यही सुखिवशेष र्खा और विषयतृष्णामें फँसकर दुःखिवशेष भोग करना नरक कहाता है। "त्वः" सुखका नाम है "त्वः सुखं गच्छति यस्मिन् स र्खाः" "अतो विपरीतो दुःखभोगो नरक इति" जो सांसारिक सुख है वह सामान्य र्स्वा और जो परमेश्वरकी प्राप्तिसे आनन्द है वही विशेष स्वर्ग कहाता है। सब जीव स्वभावसे सुखप्राप्तिकी इच्छा और दुःखका वियोग होना चाहते हैं। परन्तु जब तक धर्म नहीं करते और पाप नहीं छोड़ते तब तक उनको सुखका मिलना और दुःखका छूटना न होगा, क्योंकि जिसका कारण अर्थात मूल होता है वह नष्ट कभी नहीं होता। जैस-

वेदाभ्यासस्तपो ज्ञानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः। धर्मकियात्मचिन्ता च सात्त्विकं गुणलक्षणम् ॥६॥ आरम्भरुचिताऽधैर्यमसुत्कार्यपरिग्रहः। विषयोपसेवा चाजस्रं राजस ग्रण लक्षणम् ॥१०॥ लोभः स्वप्नो पृतिः कौर्यं नास्तक्यं भिन्नवृत्तिता। याचिष्णुता प्रमादश्च तामसं गुणलक्षणम् ॥११॥ यत्कर्भ कृत्वा कुर्वश्च करिष्यंरचैय लज्जति । तज्ज्ञे यं विदुषा सर्वं तामसं गुणलक्षणम् ॥१२॥ धेनास्मिन्कर्मणा लोके ख्यातिमिच्छति पुष्कलाम्। न च शोचत्यसम्पत्तौ तद्विज्ञेयं तु राजसम् ॥१३॥ यत्सर्वेणेच्छति ज्ञातुं यन्न लज्जति चाचरन् । चेन तष्यति चात्मास्य तत्सत्त्वगुणलक्षणम् ॥१४॥ तमसो लक्षणं कामो रजसस्त्वर्थ उच्यते। सत्वस्य लक्षणं धर्मः श्रीष्ट्यमेषां यथोत्तरम् ॥१५॥ मनु० अ• १२। श्लो० ८ । १ । २५-३३ । ३५-३८ ॥

अर्थात् मनुष्य इस प्रकार अपने श्रेष्ठ, मध्य और निक्कष्ट स्वभाव को जानकर उत्ताम स्वभावका प्रहण मध्य और निक्कष्टका त्याग करे और यह भी निश्चय जाने कि यह जीव मनसे जिस श्रुभ वा अशुभ कर्मको करता है उसको मन, वाणीसे कियेको वाणी और शरीरसे कियेको शरीर अर्थात् सुख दुःखको भोगता है ॥ १॥

जो नर शरीरसे चोरी, परस्त्रीगमन, श्रेष्ठोंको मारने अर्तेंदु दुष्ट कम करता है उसकी दुशादि स्थावरका जन्म, वाणीसे किये पाप कर्मों-

#### छिन्ने मूछे वृक्षो नश्यति तथा पापे क्षीणे दुःखं नश्यति ॥

जैसे मूळ कटजानेसे वृक्ष नष्ट होता है वैसे पापको छोड़नेसे दुःख मष्ट होता है। देखो गनुस्मृतिमें पाप और पुण्यकी बहुत प्रकारकी गति—

मानसं मनसैवायमुपभुङ्कते शुभाऽशुभम्। वाचा वाचा कृतं कर्न कायेनैव च कायिकम् ॥१॥ श्वारीरजेः कर्मदोषेर्याति स्थावरतां नरः। वाचिकैः पक्षिमृगनां मानसैरन्यजातिताम् ॥२॥ यो यदेषां गुणो देहे साकल्येनातिरिच्यते। स तदा तद्गुणपायं तं करोति दारीरिणम् ॥३॥ सत्त्वं ज्ञानं तमोऽज्ञानं रागद्वेषौ रजः स्मृतः। एतद् व्याप्तिमदेतेषां सर्वभूताश्रितं वपुः ॥४॥ तत्र यत्त्रीतिसंयुक्तं किश्चिदात्मनि लक्षयेत्। प्रशान्तमिव शुद्धाभं सत्वं तदुपधारयेत् ॥५॥ यत्तु दुःखसमायुक्तमप्रीतिकरमात्मनः। तद्रजोऽप्रतिपं विद्यात्सततं हारि देहिनाम् ॥६॥ यत्तु स्यान्मोहसंयुक्तमञ्चकतं विषयात्मकम्। अप्रतक्यमिविज्ञेयं तमस्तदुपधारयेत् ॥७॥ श्रयाणामपि चैतेषां गुणानां यः फलोदयः। अम् यो मध्यो जघन्यश्च तं प्रवक्ष्याम्यदोषतः ॥८॥ से पक्षी और मृगादि तथा मनसे किये दुष्ट कमोंसे चांडाल आदिका शरीर मिलता है॥ २॥

जो गुण इन जीवोंके देशमें अधिकतासे वर्त्तता है वह गुण उस जीवको अपने सदश कर देता है ॥ ३॥

जब आत्मामें ज्ञान हो तब सत्त्व, जब अज्ञान रहे तब तम और जब राग द्वेषमें आत्मा छगे तब रजोगुण जानना चाहिये, ये तीत प्रक्र-तिके गुण सब संसारस्थमें ज्याप्त होकर रहते हैं ॥ ४॥

उसका विवेक इस प्रकार करना चाहिये कि जब आत्मामें प्रस-श्रता मन प्रशान्तके सदश शुद्धभानयुक्त वर्ते तब समक्सना कि सत्वगुण प्रधान और रजोगुण तथा तमोगुण अप्रधान है ॥ ५ ॥

नव आत्मा और मन दुःखसंयुक्त प्रसन्ततारहित विषयमें इधर ष्यर गमन आगमनमें छगे तत्र समभता कि रजोगुण प्रधान सत्त्व-गुण और तमोगुण अप्रधान है ॥ ६॥

जब मोह अर्थात् सांसारिक पदार्थोंमें फँसा हुआ आत्मा और मन हो, जब आत्मा और मनमें कुछ विवेक न रहे विषयोंमें आसक्त रुक विवर्क रहित जाननेके योग्य न हो तब निश्चय सममता चाहिये कि इस समय मुक्तमें तमोगुण प्रधान और सत्त्वगुण तथा रजोगुण स्वप्रधान है।। ७।।

अब जो इन तीनों गुणोंका उत्तम मध्यम और निकृष्ट फलोदय होता है उसको पूर्णभावस कहते हैं॥ ८॥

जो वेदोंका अभ्यास, धर्मानुष्ठान, ज्ञानकी वृद्धि, पवित्रताकी इच्छा, इन्द्रियोंका निग्रह, धर्म क्रिया और आत्माका चिन्तन होता है वही सत्त्वगुणका लक्षण है।। १।।

जब रजोगुणका उदय सत्त्व और तमोगुणका अन्तर्भाव होता है तब आरम्भनें रुचिता धैर्य्यत्याग असत् कर्माका प्रहण निरन्तर विष-योंकी सेवामें प्रीति होती है तभी समझना कि रजोगुण प्रधानतासे सुम्झमें वर्त रहा है।। १८।। जब तमोगुणका उदय और दोनोंका अन्तर्भाव होता है तब अत्यन्त छोभ अर्थात् सब पापों का मूछ बढ़ना, अत्यन्त आलस्य और निहा, धैर्य्यका नाश, क्रूरताका होना, नास्तिक्य अर्थात् वेद और ईश्वरमें श्रद्धाका न रहना, भिन्न २ अन्तःकरणकी वृत्ति और एकाप्र-ताका अभाव और किन्हीं ज्यसनोंमें फँसना होवे तब समोगुणका लक्षण विद्वानको जानने योग्य है ॥ ११॥

तथाजब अपना आत्मा जिस कर्मको करके करता हुआ और करनेकी इच्छासे छज्ञा, राङ्का और भयको प्राप्त होवे तब जानो कि सुम्ममें प्रवृद्ध तमोगुण है।। १२।।

जिस कमसे इस लोकमें जीवातमा पुःकल प्रसिद्धि चाहता, दिर-द्रता होनेमें भी चारण भाट आदिको दान देना नहीं छोड़ता तब सम-मता कि मुम्मनें रजोगुण प्रवल है।। १३।।

और जब मनुष्यका आतमा सबसे जाननेको चाहे गुण प्रहण करता जाय अच्छे कार्मोमें छङता न करे और जिस कर्मसे आतमा प्रसन्न होने अर्थात् धर्माचरण ही में रुचि रहे तब समझना कि मुक्तमें सच्चगुण प्रबछ है।। १४।।

तमोगुणका लक्षण काम, रजोगुणका अर्थसंब्रहकी इच्छा और सत्त्वगुणका लक्षण धर्म सेवा करना है परन्तु तमोगुणसे रजोगुण और रजोगुणसे सत्त्वगुण श्रेष्ठ है।। १४।।

ं अब जिस २ गुणसे जिस २ गितिको जीव प्राप्त होता है उस २ को आगे लिखते हैं—

देवत्वं सात्विका यान्ति मनुष्यत्वश्च राजसाः । तिर्यक्त्वं तामसा नित्यमित्येषा त्रिविधा गतिः ॥१॥ स्थावराः फुमिकीटाश्च मत्स्याः सर्पाश्च कच्छपाः । पद्मवश्च मृगास्चैब जघन्या तामसी गतिः ॥२॥

इस्तिनरच तुरङ्गाश्च शुद्रा म्लेच्छाश्च गर्हिताः। सिंहा व्याघा वराहारच मध्यमा तामसी गतिः ॥३॥ चारणाश्च सुपर्णाश्च पुरुषाश्चैव दाम्भिकाः। रक्षांसि च पिशाचारच तामसीषूत्तमा गतिः ॥४॥ भल्ला मल्ला नटारचैव पुरुषाः शस्त्रवृत्तयः। य तपानप्रसक्तारच जघन्या राजसी गतिः ॥५॥ राजानः क्षत्रियाश्चैव राज्ञां चैव पुरोहिताः। बादयुद्धप्रधानारच मध्यमा राजसी गतिः ॥६॥ गन्धर्वा गुह्यका यक्षा विबुधानुचराश्च ये। तथैवाप्सरसः सर्वा राजसीपृत्तमा गतिः ॥॥ तापसा यतयो विद्रा ये च वैमानिका गणाः। नक्षत्राणि च दैत्यारच प्रथमा सात्विकी मतिः॥६॥ यज्वान ऋषयो देवा वेदा ज्योतींषि वत्सराः। पितररचैव साध्याश्च द्वितीया सात्विकी गतिः॥६॥ ब्रह्मा विश्वसृजो धम्मी महानव्यक्तमेव च। उत्तमां सात्विकीमेतां गतिमाहुर्मनीषिणः ॥१०॥ इन्द्रियाणां प्रसंगेन धर्मस्यासेवनेन च। पापान्संयान्ति संसारानविद्वांसो नराधमाः ॥११॥

[ मनु० ८० १२ । रहो। ४० । ४२ — ५० । ५२ ]

जो मनुष्य सान्त्विक हैं वे देव अर्थात् विद्वान्, जो रजोगुणी होते हैं वे मध्यम मनुष्य और जो तमोगुणयुक्त होते हैं वे नीच गतिको प्राप्त होते हैं ॥ १॥

जो अत्यन्त तंमोगुणी हैं वे स्थावर कृशादि, कृमि, कीट मत्स्य, सप्पं, कच्छप, पशु और मृगके जनमको प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

जो मध्यम तमोगुणी हैं वे हाथी, घोड़ा, शूद्र, म्लेच्छ निन्दित कर्म करनेहारे, सिंह, ब्याब, वराह अर्थान् सूकरके जन्मको प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

जो उत्तम तमोगुणी हैं वे चारण (जो कि कवित्त दोहा आदि बनाकर मनुष्योंकी प्रशंसा करते हैं ), सुन्दर पक्षी, दांभिक पुरुष अर्थात् अपने सुखके छिये अपनी प्रशंसा करनेहारे, राक्षस जो हिंसक, पिशाच अनाचारी अर्थात् मद्यादिके आहारकर्ता और मिछन रहते हैं वह उत्तम तमोगुणके कर्मका फल है ॥ ४॥

जो उत्तम रजोगुणी हैं वे भहा अर्थात् तलवार आदिसे मारने वा इदार आदिसे खोदनेहारे, महाम्अर्थात् नोका आदिके चळाने वाले, नट जो बांस आदि पर कला कूदना चढ़ना उत्तरना आदि करते हैं, शस-धारी भृत्य और मद्य पीनेमें आसक्त हों ऐसे जनम नीच रजोगुणका फळ है।। १।।

जो मध्यम रजोगुणी होते हैं वे राजा, श्वत्रियवर्णस्थ राजाओंके पुरोहित, वाहविवाद करनेवाले, दूत, प्राइविवाक (वकील वारिष्टर), युद्धविभागके अध्यक्षके जन्म पाते हैं॥ ६॥

जो उत्तम रजोगुणी हैं वे गन्धर्व (गानेवाले), गुद्धक (वादित्र बजानेहारे), यक्ष (धनाळ्य) विद्वानोंके सेवक और अप्सरा अर्थात् जो उत्तम रूपवाली स्त्री उनका जन्म पाते हैं।। ७।।

जो तपस्वी, यति, संन्यासी, वेदपाठी, विमानके चलानेवाले ज्योतिषी और दैत्य अर्थात् देहपोषक मनुष्य होते हैं उनको प्रथम सत्त्वगुणके कर्मका फल जानो।। ८॥

जो मध्यम सस्वगुण युक्त होकर कम करते हैं वे जीव यक्षकर्ता, वेहांबंबित, विद्वान वेद विद्युत् आदि और काल विद्याके ज्ञाता, रक्षक

हानी और ( साध्य ) कार्यसिद्धिके लिये सेवन करने योग्व अध्यापकः का जन्म पाते हैं।। १।। .

जो उत्तम सत्त्वगुणयुक्त होके उत्तम करने करते हैं वे अक्षा सब. वेदोंका वेता विश्वसृज सब सृष्टिक्रम विद्याको जानकर विविध विमा-नादि यानोंको बनानेहारे धार्मिक सर्वोत्तम बुद्धियुक्त और अञ्चलके . जनम और प्रकृतिवशित्व सिद्धिको प्राप्त होते है।। १०॥

जो इन्द्रियके वश होकर विषयी धर्मको छोडकर अधर्म करनेहारे अविद्वान हैं वे मनुष्योंमे नीच जनम बुरे २ दुःखरूप जनमको पाते, हैं।। १८॥

इस प्रकार सत्त्व रज और तमोगुण युक्त वेगसे जिस २ प्रकारका-कर्म जीव करता है उस २ को उसी २ प्रकार फछ प्राप्त होता है जो मुक्त होते हैं वे गुणातीन अर्थात् सब गुणोंके स्वभावोंमें न फैंस कर महायोगी होक मुक्तिका साधन करें क्योंकि—

## ं योगस्<del>चित्तवृत्तिनिरोघः</del> ॥१॥ [पा० १ । २ ]

#### तदा द्रष्ट्रः खरूपेऽवस्थानम् ॥२॥ [पा० १ । ३]

ये योगशास्त्र पातञ्जलके सृत्र ह—मनुष्य रजोगुण तमोगुण युक्त कमीसे मनको रोक शुद्ध सत्त्वगुणयुक्त कमीसे भी मनको रोक शुद्ध सत्त्वगुणयुक्त हो पश्चात् उसका निरोध कर एकाम अर्थात् एक पर-मात्मा और धर्मयुक्त कर्म इनके अप्रभागमे चित्तको ठहरा रखना निरुद्ध अर्थान् सब ओरसे मनकी वृत्तिको रोकना ॥ १ ।।

जब चित्त एकाप्र और निरुद्ध होता है नव सबके द्रष्टा ईश्वरके स्वरूपमे जायातमाकी स्थिति होती है।। २।।

इत्यादि साधन मुक्तिके लिये करे और-

#### अथ त्रिविधदु:स्नात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः॥

यह साख्य [१।१] का सूत्र है। जो आध्यात्मिक अर्थात् शरीरसम्बन्धा पीझा आधिमीतिक जो दूसंग प्राणियोंसे दुःखित होना बाधिदैविक जो अतिबृध्द्रि, सतिताप अतिशीत मन इन्द्रियोंकी चञ्च-रैक्टनासे होता है इस त्रिविध दुःखको क्रुड़ोकर मुक्ति पाना अयन्त पुरु-वर्ध है। इसके आगे आचार अगावार और अक्ष्याऽभक्ष्यका विवय , ब्लिखेंगे।। है।।

> इति श्रीमहयानन्दसरम्वेतीस्वामिकृते संत्यार्थप्रकाशे सुभाषाविभूषिते विद्याऽविद्याबन्धमोक्षविषये नवमः ममुझ सः सम्पूर्णः ॥ १ ॥



## **अथ दशमसमुहासारम्भः**

### अथाचारानाचारभक्ष्याभक्ष्यविषयान् ब्याख्यास्यामः

अब जो धर्मयुक्त कार्मोका आचरण, सुशीखता,, सत्पुरुषोंका संग और सिंद्रद्याके प्रहणमें रुचि अहि आचार और इनसे विपरीत अना-चार कहाता है उसको खिखते हैं —

विद्वद्भिः सेवितः सद्भिर्नित्यमद्भेषरागिभिः। हृद्येनाभ्यनुज्ञातो यो धर्मस्तन्निबोधत ॥१॥ कामात्मता न प्रवास्ता न चैवेहास्त्यकामता। काम्यो हि वेदाधिगमः कर्मयोगश्च वैदिकः ॥२॥ सङ्गल्पमूलः कामो वै यज्ञाः सङ्गल्पसंभवाः। व्रतानि यमधर्माश्च सर्वे सङ्कल्पजाः स्मृताः ॥३॥ अकामस्य किया काचिद् दश्यते नेह कर्हिचित्। यचिद्धं कुरुते किश्चित् तत्तत्कामस्य चेष्टितम् ॥४॥ वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीष्ठे च तद्विदाम् । आचारश्चैव साधृनामात्मनस्तुष्टिरेव च ॥५॥ सर्वन्तु समवेक्ष्येदं निखिलं ज्ञानचक्षुषा। भुतिप्रामाण्यतो विद्वान् स्वधमं निविद्येत वै ॥६॥ अतिस्मृत्युदितं धर्ममनुतिष्ठन् हि मानवः।

इह कीर्तिमवामोति प्रेत्य चानुत्तमं सुन्तम् ॥७॥ योऽवमन्येत ते मूळे हेतुशास्त्राश्रयाद् द्विजः । स साधुभिविहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिन्दकः ॥८॥ वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः । एतचतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धमस्य लक्षणत् ॥६॥ अर्थकामेष्वसकतानां धमज्ञानं विधीयते । धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः ॥१०॥ वैदिकैः कर्मभिः पुण्यैर्निषेकादिर्द्विजन्मनाम् । कार्य्यः शारीरसंस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च ॥११॥ केशान्तः षोडशे वर्षे ब्राह्मणस्य विधीयते । राजन्यबन्धोद्वाविंशे वैश्यस्य द्व्यधिके ततः ॥१२॥ मतु० अ० २। [श्लो० १-४। ६। ८। ६। ११-१३ । २६। ६५]

मनुष्योंको सदा इस बात पर ध्यान रखना चाहिये कि जिसका सेवन रागद्वेषरहित विद्वान् छोग नित्य करें जिसको हृदय अर्थात् आत्मा सत्य कर्तव्य जानें वही धर्म माननीय और करणीय है ॥ १॥

क्योंकि इस संसारमें अत्यन्त कामात्मता और निष्कामता श्रेष्ठ नहीं है वेदार्थज्ञान और वेदोक्त कर्म ये सब कामना ही से सिद्ध होते हैं।। २॥

जो कोई कहे कि मैं निरिच्छ और निष्काम हूं वा ही जाऊं तो वह कभी नहीं हो सकता क्योंकि सब काम अर्थात् यहा, सत्यभा-वणादि त्रत, यम, नियम ह्रपी धर्म आदि संकल्प ही से बनते हैं॥ ३॥

क्यों कि जो २ इस्त, पाद, नेत्र, मन आदि चळाये जाते हैं वे सब कामना ही से चळते हैं जो इच्छा न हो तो आखका खोळना और मीचना भी नहीं हो सकता ॥ ४॥

इसलिये सम्पूर्ण वेद मनुम्मृति तथा श्रृषिप्रणीत शास्त्र, सत्पुरुषिंका आचार और जिस २ कर्ममें अपना आत्मा प्रसन्त रहे सर्थात् भय, शंका, लज्जा जिनमें न हो उन कर्मोका सेवन करना उचित है देखो । जब कोई मिध्याम पण चोरी आदिकी इच्छा करता है तभी उसके आत्मान भय, शंका, लज्जा अवश्य उत्पन्न होती है इसलिये वह कर्म करने योग्य नहीं ॥ ४॥

मनुष्य सम्पूर्ण शास्त्र, वेद, सत्पुरुषोंका माचार, अपने आत्माके अविरुद्ध अच्छे प्रकार विचार कर ज्ञाननेत्र करके श्रुति प्रमाणसे खात्मानुकूछ धर्ममें प्रवंश करे ॥ ६ ॥

क्योंकि जो मनुष्य वेदोक्त धर्म और जो वेदसे अविरुद्ध स्मृत्युक्त धर्मका अनुष्ठान करता है वह इस छोकमें कीर्त्ति और मरके सर्वोत्तम सुखको प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

श्रुति वेद और स्मृति धर्मशासको कहते हैं इनसे सब कर्ताव्याऽ-कर्ताव्यका निश्चय करना चाहिये जो कोई मनुष्य वेद और वेदानुकूछ आप्तप्रन्थोंका अपमान कर उसको श्रेष्ठ लोग जातिबाह्य करदें क्योंकि जो वेदकी निन्दा करता है वही नास्तिक कहाता है।। ८।।

इसलिये वेद, स्मृति, सत्पुरुषोंका आचार और अपने आत्माके ज्ञानसे अविरुद्ध प्रियाचरण ये चार धर्मके लक्षण अर्थात् इन्हींसे धर्म छिमत होता है।। १।।

परन्तु जो द्रव्योंके लोभ और काम अर्थात् विषयसेवामें फँखा हुआ नहीं होता उसी हो धर्मका झान होता है जो धर्मको जाननेकी इच्छा करें उनके लिये वंद ही परम प्रमाण है।। १८॥

इसीसे सब मनुष्योंको उचित है कि वेदोक्त पुण्यक्तप कर्मोंसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अपने सन्तानोंका निषेकादि संस्कार करें जो इस जन्म वा परजन्ममें पवित्र करनेवाला है।। ११।।

े ब्रह्मणके सोलहवें, क्षत्रियके बाईसवें और वैश्यके चौनीसवें वर्षमें

₹8*¥* 

केशान्त कम और श्रीरमुण्डन हो जाना चाहिये अर्थान् इस विधिके पश्चान् केवल शिलाको रखके अन्य डाढ़ी मूंछ और शिरके बाल सदा मुंडवाते रहना चाहिये अर्थान् पुनः कभी न रखना और जो शीतप्रधान देश हो तो कामचार है च हे जितने केश रक्ले और जो अति खण्ण देश हो तो सब शिखासिहत छेदन करा देना चाहिये क्योंकि शिरमें बाल रहनेसे उज्याना अधिक होती है और उससे बुद्धि कम हो जाती है डःढ़ी मूंछ रखनेसं भोजन पान अच्छे प्रकार नहीं होना और उस्किर स्थित केर

इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारिषु । संयमे यत्नमातिष्ठेद्विद्वान् यन्तेव वाजिनाम् ॥१॥ इन्द्रियाणां प्रसङ्गेन दोषमृच्छत्यसंशयम्। सन्नियम्य तु तान्येव ततः सिद्धिं नियच्छति ॥२॥ न जात् कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति । हविषा कृष्णवत्मव भूय एवाभिवद्धते ॥३॥ वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च नियमाश्च तपांसि च। न विप्रदुष्टभावस्य सिद्धिं गच्छति कर्हिचित् ॥४॥ वशे कृत्वेन्द्रियग्रामं संयम्य च मनस्तथा। सर्वान् संसाधयेदर्थानाक्षिण्वन् योगतस्तनुम् ॥४॥ श्रुत्वा सृष्ट्वा च दृष्ट्वा च भुक्तवा घात्वा च यो नरः। न इष्यति ग्लायति वास विज्ञेयो जितेन्द्रियः ॥६॥ नाष्ट्रष्टः कस्यचिद् ब्र् चान्यायेन एच्छतः। जानसपि हि मेघावी जडवरः ... आचरेत् ॥७॥

वित्तं बन्धुर्वयः कर्म विद्या भवति पश्चमी। एतानि मान्यस्थानानि गरीयो यचदुत्तरम् ॥८॥ अजो भवति वै वालः पिता भवति मन्त्रदः। अज्ञं हि बालमित्या हुः पितेत्येव तु मन्त्रदम् ॥६॥ न हायनैर्न पलितैर्न वित्तेन न बन्धुभिः। भूषयरचिकरे धर्म योऽनूचानः स नो महान ॥१०॥ विप्राणां ज्ञानतो ज्यैष्ट्यं क्षत्रियाणां तु वीर्यतः। वैश्यानां धान्यधनतः श्द्राणामेव जन्मतः ॥११॥ न तेन बृद्धो भवति येनास्य पलितं ।दारः । यो वै युवाप्यधीयानस्तं देवा स्थविरं विदुः ॥१२॥ यथा काष्ट्रमयो इस्ती यथा चर्ममयो सृगः। यस्च विप्रोऽनधीयानस्त्रयस्ते नाम विभ्रति ॥१३॥ अहिंसयैव भूतानां कार्यं श्रेयोऽनुशासनम्। बाक् चैव मधुराः श्लक्ष्णा प्रयोज्या धर्ममिच्छता ॥१४॥

मनु• अ • २ । [ रुळो० ८८ । ६३ । ६४ । ६७ । १०० । ६८ । ११० । १३३ । १६३-१६७ । **१**६६ ]

मनुष्यका यही मुख्य आचार है कि जो इन्द्रियां चित्तको हरण करनेवाले विषयोंमें प्रवृत्त कराती हैं उनको रोकनेमें प्रयन्त करे जैसे बोइको सारथी रोक कर शुद्ध मागमें चलाता है इस प्रकार इनको अपने वशमें करके अधर्ममागसे हटाके धर्ममागमें सदा चलाया करें ॥ १ ॥

क्योंकि इन्द्रियोंको विषयासक्ति और अधर्ममें चलानेसे मनुष्य

निश्चित दोषको प्राप्त होता है और जब इनको जीतकर धर्मूमें चलाता है तभी अभीष्ट सिद्धिको प्राप्त होता है ।। २ ।।

यह निश्चय है कि जैसे अग्निमें इन्धन और घी डालनेसे बढ़ता जाता है वैसे ही कामोंके उपभोगसे काम शान्त कभी नहीं होता किन्तु बढ़ता ही जाता है इसलिये मनुष्यको विषयासक्त कभी न होना चाहिये।। ३।।

जो अजितेन्द्रिय पुरुष है उसको विष्रदुष्ट कहते हैं उसके करनेसे न वेद्द्वान, न त्याग, न यज्ञ न नियम और न धर्माचरण सिद्धिको प्राप्त होते हैं किन्तु ये सब जितेन्द्रिय धार्मिक जनको सिद्ध होते हैं ॥ ४ ॥

इसिलिये पांच कर्म [इन्द्रिय], पांच ज्ञानेन्द्रिय और ग्यारहवें मनको अपने वशमें करके युक्ताहार विहार योगस शरीरकी रक्षा करता हुआ सब अर्थोंको सिद्ध करे।। १।।

जितेन्द्रिय उसको कहते हैं कि जो स्तुति सुनके हर्ष और निन्दा सुनके शोक, अच्छा स्पर्श करके सुख और दुष्ट स्पर्शसे दुःख सुन्दर रूप देखके प्रसन्न और दुष्टरूप देख अप्रसन्न उत्तम भोजन करके आनन्दित और निकृष्ट भोजन करके दुःखित, सुगन्धमें रुचि और दुर्गन्धमें अरुचि नहीं करता ॥ ६॥

कभी विना पूछे वा अन्यायसे पूछने वालेको कि जो कपटसे पूछता हो उसको उत्तर न देवे उनके सामने बुद्धिमान जड़के समान रहे, हां, जो निष्कपट और जिज्ञासु हो उनको विना पूछे भी उपदेश करे।। ७।।

एक धन, दूसरे बन्धु कुटुम्ब कुछ, तीसरी अवस्था, चौथा उत्तम कम खौर पांचवी श्रेष्ठ विद्या ये पांच मान्यके स्थान हैं परन्तु धनसे उत्तम बन्धु, बन्धुसे अधिक अवस्था, अवस्थासे श्रेष्ठ कर्म और कर्मसे पवित्र विद्यावाले उत्तरोत्तर अधिक माननीय हैं। 
| | | | | | | |

क्योंकि चाहे सौ वर्षका हो परन्तु जो विद्या विकासरहित है वह बादक और जो विद्या विकासका हाता है उस बादकको भी धूट

मानना चाहिये क्योंकि सब शास्त्र आप्त विद्वान अज्ञानीको बालकं स्वीर ज्ञानीको पिता कहते हैं।। ह ।।

अधिक वर्षीके बीतने, श्वेत बालके होने, अधिक धमसे और बहे कुदुम्बके होनेसे वृद्ध नहीं होना किन्तु मृषि महात्माओं का यही निश्चयं है कि जो हमारे बीचमें विद्या विज्ञानमें अधिक है वही बद्ध पुरुष कहाता है।। १०॥

ब्राह्मण ज्ञान ने, क्षत्रिय बलते, वैश्य धनधान्यसे और शुद्र जनम अर्थात् अधिक अधुसे बृद्ध होता है ॥ ११ ॥

शिरके बाल श्वेत होनेसे बूढ़ा नहीं होता किन्तु जो युवा विद्यां पढ़ा हुआ है उसीको विद्वान् छोग बड़ा जानने हैं।। १२।।

अमेर जो विद्या नहीं पढ़ा है वह जैसा काष्ट्रका हाँथी चमडेका मृग होता है वैसा अविद्वान् मनुष्य जगत्में नाममात्र मनुष्य कहाता है।। १३॥

इसलिये विद्या पढ विद्वान् धर्मातमा होकर निर्वेरतासे सब प्राणि-र्योके कल्याणका उपदेश करे और उपदेशमें वाणी मधुर और कोमछ बोले जो सत्त्रोपदेशसे धर्मकी वृद्धि और अधर्मका नाश करते हैं वे पुरुष धन्य हैं ॥ १४ ॥

नित्य स्तान, वस्त्र, अन्न, पान, स्थान, सब शुद्धं रक्खे क्योंकि इनके शुद्ध होनेमें चित्तकी शुद्धि और आरोग्यता प्राप्त होकर पुरुषार्थ बढ़ता है सौच उतना करना योग्य है कि जितनेसे मल दुर्गन्य दूर हो माये ॥

आचारः प्रथमो धर्मः श्रत्युक्तः स्मार्त्त एव च ॥ मनु• [१ । १०८]

जो सत्यभाषणादि कर्मोका आचरण करना है वही वेद और स्मृतिमें कहा हुआ आचार है।।

षा नो क्षीः मितरं मोत मातरम् ॥ [यजुः १६।१४]

मसुक्लास] देशाटनसे आचार श्रष्ट नहीं । ३४६ आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणमिन्छते ॥

[ अथर्व० कां० ११ | व० १५ ]

मातृदेवो भव । पितृदेवो भव । आचार्यदेवो भव । अतिथिदेवो भव ॥ [तैसिरीया० प्र० ७ अनु० ११]

माता, पिता, अ चार्य्य ओर अतिथिकी सेवा करना देवपूजा कहाती है और जिस २ कर्मसे जगत्का उपकार हो वह २ करना खोर हानिकारक छोड़ देना ही मनुष्यका मुख्य कर्त्तन्य कर्म है कभी नास्तिक, लम्पट, विश्वासवाती, मिथ्यावादी, स्वार्थी, कपटी, छली आदि दुष्ट मनुष्योंका सक्क न करे आप्त जो सत्यवादी धर्मात्मा परोपकार-प्रिय जन हैं उनका सद्दा सक्क करने ही का नाम श्रेष्ठाचार है।

 प्रश्न-आर्यावर्त देशवासियोंका आर्यावर्त देशसे भिन्न २ देशोंमें जानेसे आचार नष्ट हो जाता है वा नहीं ?

उत्तर—यह बात मिथ्या है क्योंकि जो बाहर भीतरकी पवित्रता करनी सत्यभाषणादि आचरण करना है वह जहां कहीं करेगा आचार और धर्मश्रष्ट कभी न होगा और जो आर्थ्यवर्त्तमें रहकर भी दुष्टाचार करेगा वही धर्म और आचारश्रष्ट कड़ावेगा जो ऐसा ही होता तो—

मेरोहरेश्च द्वे वर्षे वर्षे हैमवतं ततः। क्रमेणैव व्यतिक्रम्य भारतं वर्षमासदत्॥ स देशान् विविधान् परयंश्रीनद्वुगनिषेवितान्॥

[ महाभारत॰ व्य० ३२७ ]

• ये रखोक भारत शान्तिपर्व मोश्रवंममें व्यास शुक्र संवादमें हैं— अर्थात् एक समय व्यासजी अपने पुत्र शुक्र और शिष्य सहित पाताल अर्थात् जिसको इस समय "अमेरिका" कहते हैं उसमें निवास करते थें। शुकाचार्यने पितासे एक प्रश्न पूछा कि आत्मविधा इतनी ही हैं

वा अधिक १ व्यासजीने जानकर उस बातका प्रत्युत्तर न दिया क्योंकि उस बातका उपदेश कर चुके थे। दूसरैकी साक्षीके लिये अपने पुत्र शुकसे कहा कि है पुत्र ! तू मिथिछापुरीमें जाकर यही प्रश्न जनक राजासें कर वह इसका यथायोग्य उत्तर देगा। पिताका बचन सुनकर शुकाचार्य पातालसे मिथिलापुरीकी बोर चले। प्रथम मेर अर्थात हिमालयसे ईशान उत्तर और वायव्य कोण ] में जो देश वसते हैं उनका नाम हरिवर्ष था अर्थात् हरि कहते हैं बन्दरको उस देशके मनुष्य अब भी रक्तमुख अर्थात् वानरके समान भूरे नेत्रवाले होते हैं जिन देशोंका नाम इस समय "यूरोप" है उन्हींको संस्कृतमें "हरिवर्ष" कहते थे उन देशोंको देखते हुए और जिनको हुण "यहदी" भी कहते हैं उन देशोंको देखकर चीनमें आये चीनसे हिमालय और हिमालयसे मिथिलापुरीको आये। और श्रीकृष्ण तथा अर्जुन पातालमें अधतरी अर्थात जिसको अग्नियान नौका कहते हैं उस पर बैठके पाताछमें जाकं महाराजा युधिष्ठिरके यज्ञमें उदालक मृषिको ले आये थे। धृतराष्ट्रका विवाह गांधार जिसको "कंधार" कहते हैं वहां की राजपु-त्रीसे हुआ। माद्री पाण्डुकी स्त्री "ईरान" के राजाकी कन्या थी। और अर्जुनका विवाह पातालमें जिसको 'अमेरिका' कहते हैं वहांके राजाकी ळड्की उलोपीके साथ हुआ था। जो देशदेशान्तर, द्वीपद्वीपान्तरमें न जाते होते तो ये सब बातें क्योंकर हो सकती ? मनुस्मृतिमें जो समु-द्रमें जानेवाली नौका पर कर लेना लिखा है वह भी आर्थावर्रासे द्वीपान्तरमें जानेके कारण है और जब महाराजा युधिष्ठरने राज-सूय यज्ञ किया था उसमें सब भूगोलके राजाओंको बुलानेको निमन्त्रण देनकं लिये भीम, अर्जुन, नकुल, और सहदेव चारों दिशाओंमें गये थे जो दोष मानते होते तो कभी न जाते । सो प्रथम आर्यावर्त्तदेशीय लोग न्यापार राजकार्य्य और भ्रमणकं लिये सब भूगोलमें घूमते थे। और जो आजकल छूतछात और धर्म नष्ट होनेकी शेंका है वह केवल क्लॉक बहकाने और अज्ञान बढ़नेसे है। जो मनुष्य देशदेशान्तर और

### समुल्लास] देशाटनसे आचार भ्रष्ट नहीं। ३५१

द्वीपद्वीपान्नरमें जाने आनेमें शंका नहीं करते वे देशदेशान्तरके अनेकविध मनुष्योंके समागम रीति भांति देखने अपना राज्य और व्यवहार बढ़ानेसे निभय शूरवीर होने छगते और अच्छे व्यवहारका महण बुरी बातोंके छोड़नेमें तत्पर होके बड़े ऐश्वर्यको प्राप्त होते हैं। भला जो महाभ्रष्ट म्लेच्छकुलोत्पन्न वश्या आदिके समागमसे आचार-श्रष्ट धर्महीन नहीं होते किन्तु देशदेशान्तरके उत्तम पुरुषोंके साथ समा-गममें छूत और दोष मानते हैं !!! यह केवल मूखताकी बात नहीं तो क्या हैं ?, हां इतना कारण तो है कि जो लोग मांसमक्षण और मद्य-पान करते हैं उनके शरीर और वीर्घ्यादि धातु भी दुर्गन्धादिसे दूषित होते हैं इसिटिये उनके सङ्ग करनेसे आर्थ्योको भी यह कुरुक्षण न स्मा जायें यह तो ठीक है। परन्तु जब इनसे व्यवहार और गुणप्रहण करनेमें कोई भी दोष वा पाप नहीं है किन्तु इनके मद्यपानादि दोषोंको छोड़ गुणोंको प्रहण करें तो कुछ भी हानि नहीं जब इनके स्पर्श और देखतेसे भी मूर्ख जन पाप गिनते हैं इसीसे उनसे युद्ध कभी नहीं, कर सकते क्योंकि युद्धमें उनको देखना और स्पर्श होना अवश्य है। सज्जन लोगोंको राग, द्वेष, अन्याय, मिध्याभाषणादि दोषोंको छोड़ निर्वेर प्रीति परोपकार सज्जननादिका धारण करना उत्तम आचार है। और यह भी समम्पूळें कि धर्म हमारे आत्मा और कर्ताव्यके साथ है जब इम अच्छे काम करते हैं तो हमको देशदेशान्तर और द्वीपद्वीपान्तर नानेमें कुछ भी दोष नहीं लग सकता, दोष तो पापके काम करनेमें छगते हैं। हां, इतना अवश्य चाहिये कि वंदोक्त धर्मका निश्चय और पास्त<sup>7</sup>डमनका स्वण्डन करना अवश्य सीस्तर्छे जिससे कोई **हमको** क्रुटा व्हिश्चय न करा सके। क्या विना देशदेशान्तर और बीपद्वीपा-न्तरमें राज्य वा व्यापार किये स्वदेशकी उन्नति कभी हो सकती है 🖣 जब स्वदेश ही में स्वदेशी छोग व्यवहार करते और परदेशी स्वदेश**में** व्यवहार वा राज्य करें तो विना दारिद्य और दुःखके दूसरा कुछ भी नहीं हो सकता। पाखण्डी लोग यह सममते हैं कि जो हम इनकी

विद्या पढ़ावेंगे और देशदेशान्तरमें जानेकी आज्ञा देवेंगे तो ये बुद्धि-मान होकर हम:रे पाखण्ड जालमें न फँसनेसे हमारी प्रतिष्ठा और जीविका नष्ट हो जावेगी इसीलिये भोजन छादनमें बलेड़ा डालने हैं कि वे दूसरे देशमें न जासकें। हां इतना अवश्य चाहिये कि मद्यमांसका पहण कदापि भूलकर भी न करें क्या सब बुद्धिमानोंने यह निश्चय नहीं किया है कि जो राजपुरुषोंमें युद्धसमयमें भी चौका लगाकर रसोई बनाके खाना अवश्य पराजयका हेतु है ? किन्तु क्षत्रिय छोगोंका युद्धमें एक हाथसे रोटी खाते जल पीते जाना और दूसरे हाभसे राहुओं को घोडे हाथी रथ पर चढ या पैदल होके मारते जाना अपना विजय करना ही आचार और पराजित होना अनाचार है। इसी मृदतासे इन छोगोंने चौका छगाते २ विरोध करते कराते सब स्वातन्त्रय, आनन्द, धन, राज्य विद्या और पुरुषांध पर चौका लगाकर हाथ पर हाथ धरे बैठे हैं और इच्छा करते हैं कि कुछ पदार्थ मिले तो पकाकर खार्वे। परन्तु वैसा न होने पर जानो सब आर्थ्यावर्त देश भरमें चौका लगाके सर्वथा नष्ट कर दिया है। हां ! जहां भोजन करें उस स्थानको धोने, छेपन करने, महारू छगाने, कूरा कर्कट दूर करनेमें प्रयत्न अवश्य करना चाहिये न कि मुसलमान वा ईसाइयोंके समान श्राष्ट्र पाकशाला करता।

प्रश्न-सखरी निखरी क्या है ?

वत्तर—सखरी जो जल आदिमें अन्न पकाये जाते और जो बी दूधमें पकाते हैं वह निखरी अर्थात् चोखी। यह भी इन धूर्तोका चलाया हुआ पाखण्ड है क्योंकि जिसमें घी दूध अधिक लगे उसको खानेमें स्वाद और उदरमें चिकना पदार्थ अधिक जावे इसीलिये यह प्रपन्त रचा है नहीं तो जो अगिन वा कालसे पका हुआ पदार्थ पका और न पका हुआ कहा है जो पका खाना और कहा न खाना है यह भी सर्वत्र ठीक नहीं क्योंकि चने आदि कच्चे भी खाये जाते हैं। प्रशन—दिज अपने हाथसे रसोई बनकि खावें वा शुद्र के हाथकी

बनाई खावें १

उत्तर-शूरके हाथकी बनाई खावें, क्योंकि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्णस्थ स्त्री पुरुष विद्या पढ़ाने, राज्यपालन और पशुपालन खेती व्यापारके काममें तत्पर रहें और शूद्रके पात्र तथा उसके घरका पका हुआ अन्न आपत्कालके विना न खावें, सुनो प्रमाण-

### आर्याधिष्ठिता वा शुद्राः संस्कर्त्तारः स्युः॥

[आपस्तम्ब धर्मसूत्र। प्रपाठक २। पटल २। खण्ड २। सूत्र ४]

यह आपस्तम्बको सूत्र है। आयोंके घरमें शूद्र अर्थात मूर्व की पुरुष पाकादि सेवा करें परन्तु वे शरीर बक्ष आदिसे पवित्र रहें आयोंके घरमें जब रसोई बनावें तब मुख बांधके बनावें क्योंकि उनके मुखत उच्छिष्ट और निकला हुआ श्वास भी अन्नमें न पड़े। आठवें दिन और नखच्छेदन करावें स्नान करके पाक बनाया करें आयोंको खिलाके आप खावें।

प्रश्न—शूद्रके हुए हुए पके अन्नके खानेमें जब दोष लगाते हैं तो उसके हाथका बनाया कैसे खा सकते हैं ?

उत्तर—यह बात कपोलकिल्पत मूठी है क्योंकि जिन्होंने गुड़, र्वानी, घृन, दूध, पिशान, शाक, फल, मूल खाया उन्होंने जानो सब जगन भरके हाथका बनाया और उच्छिष्ट खालिया क्योंकि जब शूद्र, चमार, भङ्गी, गुसलमान, ईसाई आदि लोग खेतोंमेंसे ईखको काटते छीले पीलकर रस निकालते हैं तब मलमूत्रोत्स्गा करके उन्हीं विना धोये हाथोंसे छूते, उठाते, धरते आधा सांठा चूस रस पीके आधा उसीमें डाल देते हैं और रस पकाते समय उस रसमें रोटी भी पकाकर खाते हैं जब चीनी बनाते हैं तब पुराने जूने कि जिसके तलेमें विष्ठा, मूत्र, गोवर, पूली लगी रहनी है उन्हीं जूतोंसे उसको रगड़ते हैं। दूध में अपने घरके उच्छिष्ट पात्रोंका जल डालते उसीमें घृतादि रखते और माटा पीसते समय भी वैसे ही उच्छिष्ट हाथोंसे उठाते और पसीना

भी आटामें टपकता जाता है इत्यादि और फल मूल कंदमें भी ऐसी ही छीला होती है जब इन पदार्थोंको खाया तो जानों सबके हाथका खालिया।

प्रश्न—फल, मूल, कंद, और रस इत्यादि अदृष्टमें दोत्र नहीं मानते ?

उत्तर-वाहजी वाह । सत्य है कि जो ऐसा उत्तर न देते तो क्या धूल राख खाते गुड शकर मीठी लगती दूध घी पुष्टि करता है इसी-लिये यह मनलबिसन्ध क्या नहीं रचा है अच्छा जो अदृष्टमें दोष नहीं तो भङ्गी वा मुसलमान अपने हाथोंसे दूसरे स्थानमें बनाकर तुमको आके देवे तो खालोगे वा नहीं ? जो कही कि नहीं तो अदर में भी दोष है। हां, मुसलमान, ईसाई आदि मद्य मांसाहारियोंके हाथके खानेमें आर्योको भी मद्यमांसादि खाना पीना अपराध पीछे लग पहना है परन्तु आपसमें आर्योंका एक भोजन होनेमें कोई भी दोष नहीं दीखता। जबतक एक मत एक हानि लाभ, एक सुख दुःब परस्पर न मानें तब-तक उन्नति होना बहुत कठिन है। परन्तु केवल खाना पीना ही एक होनेसे सुधार नहीं हो सकता किन्तु जब तक बुरी बातें नहीं छोड़ते और अच्छी बातें नहीं करते नवनक बढ़नीके बदले हानि होती हैं। विदेशियोंके आर्यावर्तीमें राज्य होतेके कारण आपसकी फूट, मतभेद, ब्रह्मचर्यका सेवन न करना, विद्या न पट्ना पट्टाना वा बाल्यावस्थामें अस्वयंवर विवाह, विषयासक्ति, मिथ्याभाषणादि कुळभूण, वेदविद्याका अप्रचार आदि कुकर्म हैं जब आपसमें भाई भाई छड़ते हैं नभी तीसरा विदेशी आकर पंच बन बैठता है। क्या तुम लोग महाभारतकी बातें जो पांच सहस्र वर्षके पहले हुई थीं उनको भी भूल गये देखो । महा-भारत युद्धमें सब लोग लड़ाईमें सवारियोंपर खाते पीते थे आपसकी फुटसे कौरव पांडव और यादवोंका सत्यानाश होगया सो तो होगया परन्तु अबतक भी वही रोग पीछे लगा है न जाने यह भयंकर राक्षस कभी छूटेगा वा आर्योंको सब सुस्रोंसे हुड़ाकर दुःखसागरमें डुबा

मारेगा ? उसी दुष्ट दुर्योधन गोत्रहत्यारे, स्वदेशविनाशक, नीचके दुष्ट-मार्गामें आर्थ छोग अवतक भी चलकर दुःव बढ़ा रहे हैं। परमेश्वर कृपा करे कि यह राजरोग हम आर्थोमेंसे नष्ट हो जाय। भक्ष्याभक्ष्य हो प्रकारका होता है एक घर्मशास्त्रोक्त दूसरा वैद्यकशास्त्रोक्त, जंसे धर्मशास्त्रमें—

### अभक्ष्याणि द्विजातीनाममेध्यप्रभवाणि च।

मनु० [ ५ | ६ ]

द्विज अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्रोंको भी मळीन विष्ठः मूत्रादिके संसर्गसे उत्पन्न हुए शाक फळ मूळांदे न खाना ।

वर्जयेन्मधुमांसं च॥ मनु० [२। १७७]

जैसे अनेक प्रकारके मद्य, गांजा, भांग, अफीम आदि— बुद्धिं स्क्रम्पति यद द्रव्यं मदकारी तद्व्यते ॥

[ शार्क्सघर अ० ४। श्लो० २१ ]

जो बुद्धिका नाश करनेवाले पदार्थ हैं उनका सेवन कभी न करें और जितने अन्न सड़े, बिगड़े, दुर्गन्धादिसे दूषित, अच्छे प्रकार न बने हुए और मद्यमांसाहारी म्लेच्छ कि जिनका शरीर मद्यमांसके परमा-णुओं हीसे पूरित है उनके हाथका न खावें जिसमें उपकारी प्राणियोंकी हिंसा अर्थात् जैसे एक गायके शरीरसे दूध, घी, बैल, गाय उत्पन्न होनेसे एक पीढ़ीमें चार लाख पचहत्तर सहस्र छः सौ मनुष्योंको सुख पहुंचता है वैसे पशुओंको न मारें, न मारने दें। जैसे किसी गायसे बीस सेर और किसीसे हो सेर दूध प्रतिदिन होवे उसका मध्यभाग ग्यारह सेर प्रत्येक गायसे दूध होता है, कोई गाय अठारह और कोई छः महीने तक दूध देती है उसका मध्य भाग बारह महीने हुए अब प्रत्येक गायके जन्म भरके दूधसे २४६६० (चौवीस सहस्र नौसों साठ) मनुष्य एकवारमें नुप्त हो सकते हैं उसके छः बिछयां छः बछड़े होते हैं उनमेंसे हो मरजायं तो भी दश रहे उनमेंसे पांच बछड़ियोंके जन्मभरके दूधको मिलाकर १२४८०० (एक लाख चौबीस सहस्र आठ सो ) मनुष्य तृप्त हो सकते हैं अब रहे पांच बैल वे जन्मभरमें ५००० (पांच सहस्र) मन अन्न न्यूनसे न्यून उत्पन्न कर सकते हैं उस अन्नमेंसे प्रत्येक मनुष्य तीनपाव खावे तो अढाई लाख मनुष्योंकी तृष्ति होती है दुध और अन्न मिला ३७४८०० (तीन लाख चौहत्त.र सहस्र आठसो ) मनुष्य तृप्त होते हैं दोनों संख्या मिल के एक गायकी एक पीढ़ीमें ४७५६० ( चार छाख पचहत्तर सहस्र छ:सौ ) मनुष्य एक बार पालित होते हैं और पीढ़ी दरपीढ़ी बढ़ाकर लेखा करें तो अस-ख्यात मनुष्योंका पालन होता है इससे भिन्न [ बैछ ] गाड़ी सवारी भार उठाने आदि कर्मोंसे मनुष्योंके बड़े उपकारक होते हैं तथा गाय दूधमें अधिक उपकारक होती है और जैसे बैठ उपकारक होने हैं वैसे भैंसे भी हैं परन्तु गायके दूध घीसे जिनते. बुद्धिबृद्धिसे छ भ होते हैं उतने भैसके दूधसे नहीं इससे मुख्योपकारक आयोंने गायको गिना है। और जो कोई अन्य विद्वान् होगा वह भी इसी प्रकार समभेगा। बकरीके दूधसे २५९२० (पच्चीस सहस्र नौसौ बीस ) आदिमियोंका पालन होता है वैसे हाथी, घोड़े, ऊंट, भेड़, गदहे आदिसे भी बड़े उप-कार होते हैं \*। इन पशुओं को मारनेवालों को सब मनुष्यों की हत्या करने वाले जानियेगा। देखो ! जब आर्ग्योंका राज्य था तब ये महोपकारक गाय आदि पशु नहीं मारे जाते थे तभी आर्य्यावर्त्त वा अन्य भूगोलदेशोंमें बहे आनन्दमें मनुष्यादि प्राणि वर्त्तते थे क्योंकि द्ध, घी, बैल आदि पशुओंकी बहुताई होनेसे अन रस पुष्कल होते थे जबसे विदेशी मांसाहारी इस देशमें आके गौ आदि पशुओं के मारनेवाले मद्यपानी राष्ट्रयाधिकारी हुए हैं तबसे क्रमशः आर्थ्योंके दु:खकी बढ़ती होती जाती है क्योंकि-

नष्टे मूले नैव फलं न पुष्पम् ॥ [बृद्धचा० १०।१३]

<sup>\*</sup> इसकी विशेष व्याख्या "गोकहणानिषि" में की है।

जब वृक्षका मृत्र ही काट दिया जाय तो फल फूल कहांसे हों ? प्रश्न—जो सभी अहिंसक होजायें तो व्यावादि पशु इतने बढ़ जायें कि सब गाय आदि पशुओंको मार खायं तुम्हारा पुरुषार्थ ही व्यर्थ हो जाय ?

डत्तर—यह राजपुरुषोंका काम है कि जो हानिकारक पशुवा मनुष्य हों डनको दण्ड देवें और प्राणसे भी वियुक्त कर दें।

प्रश्न-फिर क्या डनका मांस फेंकर्दे १

उत्तर—चाहें फेंकरें चाहें कुते आदि मांसाहारियोंको खिळा देंवें वा जला देंवें अथवा कोई मांसाहारी खावे तो भी संसारकी कुळ हाति नहीं होती किन्तु उस मनुष्यका स्वभाव मांसाहारी होकर हिंसक हो सकता है जितना हिंसा और चोरी विश्वासघात छळ कपट आदिसे पदार्थोंको प्राप्त होकर भोग करना है वह अभक्ष्य और अदिसा धर्मादि कर्मोंसे प्राप्त होकर भोजनादि करना भक्ष्य है जिन पदार्थोंसे खास्थ्य रोगनाश बुद्धिवलपराक्रमबृद्धि और आयुबृद्धि होवे उन तण्डु-लादि गोधूम फल मूठ कन्द दूध घी मिश्रादि पदार्थोंका सेवन यथायोग्य पाक मेल करके यथोचित समय पर मिताहार भोजन करना सब भक्ष्य कहाता है जितने पदार्थ अपनी प्रकृतिसे विरुद्ध विकार करनेवाले हैं उन २ का संवंधा त्याग करना और जो २ जिसके लिये विहित हैं उन २ पदार्थोंका प्रहण करना यह भी भक्ष्य है।

प्रश्न – एक साथ खानेमें कुछ दोष है वा नहीं ?

उत्तर—दोष है, क्योंकि एकके साथ दूसरेका स्वभाव और प्रकृति नहीं मिलती जैसे कुब्ठी आदिके साथ खानेसे अच्छे मनुष्यका भी रुधिर बिगड़ जाता है वैसे दूसरेके साथ खानेमें भी कुछ विगाड़ ही होता है सुधार नहीं इसीलिये—

नोच्छिष्टं कस्यचिद्दयात्राद्याच्चैव तथान्तरा।

### न चैवात्यदानं कुर्यान्नचोच्छिष्टः कचिद्वजेत्॥

मनु० [२। ५६]

न किसीको अपना जूंठा पदार्थ दे और न किसीके भोजनके बीच आप खावे न अधिक भोजन करे और न भोजन किये पश्चात् हाथ मुख धोये विना कहीं इधर उधर जाय।

प्रश्न — "गुरोहच्छिष्टभोजनम्" इस वाक्यका क्या अर्थ होगा ? उत्तर—इसका यह अर्थ है कि गुरुके भोजन किये पश्चात् जो पृथक् अन्न शुद्ध स्थित है उसका भोजन करना अर्थात् गुरुको प्रथम भोजन कराके परचात् शिष्यको भोजन करना चाहिये।

प्रश्न—जो उच्छिष्टमात्रका निषेध है तो मिक्लयोंका उच्छिष्ट सहत, बछड़ेका उच्छिष्ट दूध और एक प्रास खानेके पश्चात् अपना भी उच्छिष्ट होता है पुनः उनको भी न खाना चाहिये।

उत्तर—सहत कथनमात्र ही उच्छिष्ट होता है परन्तु वह बहुतसी कोषधियोंका सार प्राह्म, बछड़ा अपनी माके बाहिरका दूध पीता है भीतरके दूधको नहीं पी सकता इसिछिये उच्छिष्ट नहीं परन्तु बछड़ेके पिये परचात् जलसे उसकी माके स्तन धोकर ग्रुद्ध पात्रमें दोहना चाहिये। और अपना उच्छिष्ट अपनेको विकारकारक नहीं होता देखो। स्वभावसे यह बात सिद्ध है कि किसीका उच्छिष्ट कोई भी न खावे जैसे अपने मुख, नाक, कान, आंख, उपस्थ और गुह्म न्द्रियोंके मलमूत्रादिके स्पर्शमें घृणा नहीं होती वैसे किसी दूसरेके मल मूत्रके स्पर्शमें होती है। इससे यह सिद्ध होता है कि यह व्यवहार सृष्टिकनमसे विपरीत नहीं है इसलिये मनुष्यमात्रको उचित है कि किसीका उच्छिष्ट अर्थात जूंठा न खाय।

प्रश्त—भला की पुरुष भी परस्पर उच्छिष्ट न खार्वे ? उत्तर—नहीं क्योंकि उनके भी शरीरोंका स्त्रभाव भिन्न २ हैं। प्रश्न—कहोजी मनुष्यमात्रके हाथकी कीहुई रसोईके खानेमें क्या

### समुक्लास] अन्यके हाथकी रसोई-चौका। ३५६

दोष है ? क्यों कि ब्राह्मणसे लेके चांडाल पर्यन्तके शरीर हाड़ मांस्र चमड़ेके हैं स्पोर जसा रुधिर ब्राह्मणके शरीरमें है वैसाही चांडाल स्मादिके, पुनः मनुष्यमात्रके हाथकी पकी हुई रसोईके खानेमें क्या दोष है ?

उत्तर—दोष है क्योंकि जिल उत्तम पदार्थोंके खाने पीनेसे ब्राह्मण और ब्राह्मणीके शरीरमें दुर्गन्धादि दोष रहित रज वीय उत्पन्न होता है वैसा चांडाल और चांडालीके शरीरमें नहीं, क्योंकि चांडालका शरीर दुर्गन्धके परमाणुओंसे भरा हुआ होता है वैसा ब्राह्मणादि वर्णों का नहीं इसिलये ब्राह्मणादि उत्तम वर्णोंके हाथका खाना और चांडालादि नीच भंगी चमार आदिका न खाना। भला जब कोई तुमसे पूछेगा कि जैसा चमड़ेका शरीर माता, सास, बहिन, कन्या, पुत्रवध्का है वैसा ही अपनी खीका भी है तो क्या माता आदि खियोंके साथ भी स्वस्त्रीके समान वर्तोंगे ? तब तुमको संकुचित होकर चुप ही रहना पड़ेगा जैसे उत्तम अन्न हाथ और मुखसे खाया जाता है वैसे दुर्गन्य भी खाया जासकता है तो क्या मलादि भी खाओंगे ? क्या ऐसा भी कोई हो सकता है ?

प्रश्न—जो गायके गोबरसे चौका लगाते हो तो अपने गोबरसे क्यों नहीं लगाते ? और गोबरके चौकेमें जानेसे चौका अग्रुद्ध क्यों नहीं होता ?

उत्तर—गायके गोवरसे वैसा दुर्गन्य नहीं होता जैसा कि मनुष्यके मलसे, [गोमय ] चिकना होनेसे शीघ नहीं उखड़ता न कपड़ा बिग-इता न मलीन होता है जैसा मिट्टोसे मैल चढ़ता है वैसा सूखे गोवरसे नहीं होता। मिट्टो और गोवरसे जिस स्थानका लेपन करते हैं वह देखनेमें अतिसुन्दर होता है और जहां रसोई बनती है वहां भोजनादि करनेसे घी, मिष्ट और उच्छिष्ट भी गिरता है उससे मक्खी क्रिकेंस आदि बहुतसे जीव मिलन स्थानके रहनेसे आते हैं। जो उसमें मालक लेपनादिसे शुद्धि प्रतिदिन न कीजावे तो जानो पाखानेके समान वह

स्थान हो जाता है। इसिलये प्रतिदिन गोवर मिट्टी मारूसे सर्वथा शुद्ध रखना। और जो पक्का मकान हो तो जलते घोकर शुद्ध रखना चाहिये। इससे पूर्वोक्त दोषोंकी निवृत्ति हो जाती है। जैसे मियांजीके रसोईके स्थानमें कहीं कोयला, कहीं राख, कहीं लकड़ी, कहीं फूटी हांडी, कहीं जूठी रकेबी, कहीं हाड़ गोड़ पड़े रहते हैं और मिक्खयोंका तो क्या कहना। वह स्थान ऐसा बुरा लगता है कि जो कोई अच्छ मनुष्य जाकर बैठे तो उसे बांत होनेका भी सम्भव है और उस दुर्गन्ध स्थानके समान ही वही स्थान दीखता है। भला जो कोई इनसे पूछे कि यदि गोबरसे चौका लगानेमें तो तुम दोष गिनते हो परन्तु चून्हमें कण्डे जलाने, उसकी आगसे तमाखू पीने, घरकी भीति पर लेपन करने आदिसे मियांजीका भी चौका भ्रष्ट होजाता होगा इसमें क्या सन्देह।

ु प्रश्त—चौकेमें बैठके भोजन करना अच्छा वा बाहर बैठके १ उत्तर—जहां पर अच्छा रमणीय सुन्दर स्थान दीखे वहां भोजन करना चाहिये परन्तु आवश्यक युद्घादिकोंनं तो घोड़े आदि यानों पर बैठके वा खडे २ भी खाना पीना अत्यन्त उचित है।

प्रश्न—क्या अपने ही हाथका खाना और दूसरेके हाथका नहीं ? उत्तर—जो आर्योमें शुद्ध रीतिसे बनावे तो बराबर सब आर्योके साथ खानेमें कुछ भी हानि नहीं क्योंकि जो ब्राह्मणादि वर्णस्थ स्त्री पुरुष रसोई बनाने और चौका देने वर्तन भांड़ मांजने आदि बखेड़ेमें पड़े रहें तो विद्यादि शुभगुणोंकी वृद्धि कभी नहीं होसके, देखों ! महाराज युघिष्ठिरके राजस्य यह्ममें भूगोलके राजा श्रृषि महर्षि आये थे एक ही पाकशालासे भोजन किया करते थे जबसे ईसाई मुसलमान आदिके मतमतान्तर चले आपसमें वैर विरोध हुआ उन्हींने मद्यपान गोमांसादिका खाना पीना स्वीकार किया उसी समयसे भोजनादिमें बखेड़ा होगया । देखों ! क्राचुल, कंधार, ईरान, अमेरिका, यूरोप आदि देशोंके राजाओंकी कन्या गान्धारी, मद्री, उलोपी आदिके साथ

आर्य्यार्कत्देशीय राजा छोग विवाह आदि व्यवहार करते थे शकुनि आदि कोरव पांडवोंके साथ खाते पीते थे कुछ विरोध नहीं करते थे क्योंकि उस समय सब भूगोलमें वेदोक्त एक मन था उसीमें सबकी निष्ठा थी और एक दूसरेका सुख दुःख हानि लाभ आपसमें अपने समान समस्ते थे तभी भूगोलमें सुख था। अब तो बहुनसे मत बाले होनेसे बहुनसा दुःख और विरोध बढ़ गया है इसका निवारण करना खुद्धिमानोंका काम है। परमातमा सबके मनमें सत्यमतका ऐसा अकुर हाले कि जिससे मिथ्या मत शीव ही पल्यको पान हों इसमें सब विद्वान लोग विचार कर विरोधभाव छोड़के आनन्दको बढ़ावें।

यह थोडासा आचार अनाचार भक्ष्याभक्ष्य विषयमें लिखा। इस प्रनथका पूर्वाद्ध इसी दशवें समुहासके साथ पूरा होगया। इन समुहा-सोंमें विशेष खण्डन मण्डन इसलिये नहीं लिखा कि जबतक मनुष्य सत्यासत्यके विचारमें कुछ भी सामर्थ्य न बढ़ाते तबतक स्थूल और सुक्ष्म खण्डनोंके अभिप्रायको नहीं समम सकते। सबको सत्य शिक्षाका उपदेश करके अब उत्तराद्ध अर्थात जिसमें चार समुखास हैं उसमें विशेष खण्डन मण्डन लिखेंगे। इन चारोंमेंसे प्रथम समुद्धासमें आर्थ्यावतीय मनमतान्तर, दूसरेमें जैनियोंके, तीसरेमें ईसाइयों और चौथेमें मुसलमानोंके मतमतान्तरोंके खण्डन मण्डनके विषयमें लिखेंगे और पश्चात् चौदहवें समुहासके अन्तमें स्वमत भी दिखलाया जायगा । जो कोई विशेष खण्डन मण्डन देखना चाहें वे इन चारों समुक्षासोंमें देखें परन्तु सामान्य करके कहीं २ दश समुक्ला-सोंमें भी कुछ थोड़ासा खण्डन मण्डन किया है। इन चौदह समुह्ला-सोंको पक्षपात छोड़ न्यायहिन्दिसे जो देखेगा उसके आत्मामें सत्य अर्थका प्रकाश होकर आनन्द होगा और जो हठ दुराग्रह और ईर्घ्यास देखे सुनेगा उसको इस प्रन्थका अभिप्राय यथार्थ विदित होना बहत कठित है। इसिछिये जो कोई इसको यथावन् न विचारेग। वह इसका अभिप्राय न पाकर गोता खाया करेगा। विद्वानोंका यही काम हैं कि

सत्यासत्यका निर्णय करके सत्यंका प्रहण असत्यका त्याग करके परम आनिन्दत होते हैं वे ही गुणपाहक पुरुष विद्वान होकर धर्म, अर्थ काम और मोक्षरू प्रस्तोंको प्राप्त होकर प्रसन्त रहते हैं।। १०।।

> इति श्रीमद्द्यानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे सुभाषाविभूषित आचाराऽनाचारभक्ष्याऽभक्ष्य विषये दशमः ममुल्लासः सम्पूर्णः ॥ १०॥

> > ॥ समाप्तोयम्पूर्वाद्धः॥



### उत्तरार्द्धः

### **ऋनुभृ**मिका



यह सिद्ध बात है कि पांच सहस्र वर्षोंके पूर्व वेदमतसे भिन्न दूसरा कोई भी मत न था क्योंकि वेदोक्त सब बातें विद्यासे अविरुद्ध हैं। वेदोंकी अप्रवृति होनेका कारण महाभारत युद्ध हुआ इनकी अप्रवृत्तिसे अविद्याऽन्धकारके भूगोलमें विस्तृत होनेसे मनुर्ध्योकी बुद्धि भ्रमयुक्त होकर जिसके मनमें जैसा आया वैसा मत चळाया। उन सब मतोंमें चार मत अर्थात् जो वेदविरुद्ध पुराणी, जैनी, किरानी और कुरानी सब मतोंके मूछ हैं वे क्रमसे एकके पीछे दूसरा तीसरा चौथा चला है। अब इन चारांकी शाखा एक सहस्रसे कम नहीं है। इन सब मतवा-दियों. इनके चेलों और अन्य सबको परस्पर सत्यासत्यके विचार करनेमें अधिक परिश्रम न हो इसलिये यह प्रनथ बनाया है। जो २ इसमें सत्य मतका मण्डन और असत्यका खण्डन लिखा है वह सबको जानना ही प्रयोजन समम्हा गया है। इसमें जैसी मेरी बुद्धि, जितनी विद्या और जितना इन चारों मतोंके मूल प्रन्थ देखतेसे बोध हुआ है उसको सबके आगे निवेदित कर देना े मैंने उत्तम समम्हा है क्योंकि विज्ञान गुप्त हुयेका पुनर्मिलना सहज नहीं है। पक्षपात छोड-कर इसको देखनेसे सत्यासत्य मत सबको विदित हो जायगा। पश्चात् सबको अपनी २ सममुक्ते अनुसार सत्य मतका प्रहण करना और असत्य मतको छोडना सहज होगा। इनमेंसे जो पुराणादि प्रन्थोंसे शासा शासान्तर रूप मत आर्यावर्त्त देशमें चले हैं उनका संक्षेपसे गुण दोष इस ११ वें समुहासमें दिखाया जाता है। इस मेरे कमसे यदि उपकार न माने तो विरोध भी न करें। क्योंकि मेरा तात्पर्ध्य किसीकी हानि वा विरोध करनेमें नहीं किन्तु सत्यासत्यका निर्णयः करने करानेका है। इसी प्रकार सब मनुष्योंको न्यायदृष्टिसे वर्तना अति उचित है। मनुष्यजनमका होना सत्यासत्यके निर्णय करने कराने के लिये है, न कि वादविवाद विरोध करने करानेके लिये। इसी मतः मतान्तरके विवादसे जगतमें जो २ अनिष्ट फल हए, होते हैं और होंगे उनको पक्षपात रहित विद्वज्ञन जान सकते हैं। जबतक इस मनुष्य जातिमें परस्पर मिथ्या मतमतान्तरका विरुद्ध वाद न छूटेगा तबतक अन्योऽन्यको आनन्द न होगा। यदि हम सब मनुष्य और विशेष विद्वज्जन ईर्ब्या द्वेष छोड सत्यासत्यका निर्णय करके सत्यका प्रहण और असत्यका त्याग करना कराना चाहैं तो हमारे लिये यह बात असाध्य नहीं है। यह निश्चय है कि इन विद्वानोंके विरोध ही ने सबको विरोध जालमें फँसा रक्खा है यदि ये लोग अपने प्रयोजनमें न फँसकर सबके प्रयोजनको सिद्ध करना चाहैं तो अभी ऐक्यमत होजायें। इसके होनेकी युक्ति इस प्रनथकी पुर्तिमें लिखेंगे। सर्वशक्ति-मान परमात्मा एक मतमें प्रवत्त होनेका उत्साह सब मनुष्योंके आत्मा-ओं में प्रकाशित करे।

अल्पतिविस्तरेण विपश्चिद्धरशिरोमणिष्।।



### उत्तराईः

# क्ष्यादशसमुह्णासारम्भः ।

### अथाऽऽर्यावर्त्तीयमतखण्डनमण्डने विधास्यामः

#### **₩₩**

अव आर्य लोगों के कि जो आर्यावर्त देशमें बसतेवाले हैं उनके मतका खण्डन तथा मण्डनका विधान करेंगे। यह आर्यावर्त देश ऐसा है जिसके सदश भूगोलमें दूसरा कोई देश नहीं है इसीलिये इस भूमिका नाम सुवणभूमि है क्यों कि यही सुवणी दि रत्नों को उत्पन्न करती है इसीलिये सुव्यिकी आदिमें आर्थ लोग इसी देशमें आकर बसे। इसीलिये सम्विविवयमें कह आये हैं कि आर्थ नाम उत्तम पुरुषों का है और आर्यों से मिन्न मनुष्यों का नाम दस्यु है। जितने भूगोलमें देश हैं वे सब इसी देशकी प्रशंसा करते और आशा रखते हैं कि पाम्समणि पत्थर सुना जाता है वह बात तो मूठी है परन्तु आर्यावर्त देश ही सबा पारसमणि है कि जिसको लोहरूप दरिष्ट विदेशी छूतेके साथ ही सुवण अर्थान् धनाह्य हो जाते हैं।

एतद्देशमसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः। स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥

मनु० [२।**२०**]

सृष्टिसे टेके पांच सहस्र वर्षोंसे पूर्व समय प्यन्त आयोंको सार्व-भौम चक्रवर्ती अर्थात् भूगोळमें सर्वोपरि एकमात्र राज्य था अन्य देशमें माण्डलिक अर्थात् छोटे २ राजा रहते थे क्योंकि कौरव पांड- पर्यन्त यहांके राज्य और राजशासनमें सब भूगोर्छके सब राजा और प्रजा चले थे क्योंकि यह मनुस्मृति जो सृष्टिकी आदिमें हुई है उसका प्रमाण हैं। इसी आर्ट्यावर्त्त देशमें उत्पन्न हुए ब्राह्मण अर्जात् विद्वानोंस भूगोलके मनुष्य बाह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, श्रूद्र, दस्यु, मलेन्छ आदि सब अपने २ योग्य विद्या चरित्रोंकी शिक्षा और विद्याभ्यास करें और महाराजा युधिष्ठिरजीके राजसूय यज्ञ और महाभारत युद्धपर्यन्त यहांके राज्याधीन सब राज्य थे। सुनो ! चीनका भगदत्त अमेरिकाका बन्नुवाहन, यूरोप देशका विडालाक्ष अर्थात् मार्जारके सदश आंखवाले, यवन जिसको यूनान कह आये और ईरानका राज्य मादि सब राजा राजसूय य**ह औ**र महाभारत युद्धमें आज्ञानुसार आये थे। जब रघुगण राजा थे तब रावण भी यहांके आधीन था जब रामचन्द्रके समयमें विरुद्ध होगया तो उसको रामचन्द्रने दण्ड देकर गुज्यसे नष्ट कर उसके भाई विभीषणको राज्य दिया था। स्वायंभव राजासे लेकर पांडवपर्यन्त आर्योका चक्रवर्ती राज्य रहा। तत्पश्चात् आपसके विरोधसे छडकर नष्ट होगये क्योंकि इस परमा-त्माकी सृष्टिमें अभिमानी, अन्यायकारी, अविद्वान लोगोंका राज्य बहुत दिन नहीं चलता। और यह संसारकी खाभाविक प्रवृत्ति है कि जब बहुतसा धन असंख्य प्रयोजनसे अधिक होता है तब आउस्य पुरुषार्थरहितता, ईर्व्या, द्वेष, विषयासक्ति और प्रमाद बढता है। इससे देशमें विद्या सुशिक्षा नष्ट होकर दुर्गुण और दुष्ट व्यसन बढ़ जाते हैं, जैसे कि मद्या मांस सेवना बाल्यावस्थामें विवाद और स्वेच्छाचारादि दोष बढ़ जाते हैं मौर जब युद्धविभागमें युद्धविद्याकौशल और सेना इतनी बढ़े कि जिसका सामना करनेवाला भूगोलमें दूसरा न हो तब **एन लोगोंमें पश्चपात अभिमान ब**ढ़कर अन्याय बढ़ जाता है। जब ये दोष होजाते हैं तब आपसमें विरोध होकर अथवा उनसे अधिक दूसरे छोटे कुर्लोमेंसे कोई ऐसा समर्थ पुरुष खड़ा होता है कि उनका पराजय करनेमें समर्थ होवे, जैसे मुसलमानोंकी बादशाहीके सामने समुल्लास] आर्य सार्वभौम राजा। , ३६७ शिवाजी, गोविन्दर्सिइजीने खेड़े होकर मुसलमानोंके राज्यको छिन्न भिन्न कर दिया।

अथ किमेतैर्वा परेऽन्ये महाधनुर्धराश्चकवर्तिनः केचित् सुगु झभूरियु म्नेन्द्रगु झकुवलयारवयौवना-श्ववद्ध्प्रश्वाश्वपतिदादाविन्दुहरिश्चन्द्राऽम्बरीषनन-क्तुसर्यतिययात्यनरण्याक्षसेनाद्यः । अथ मरुत्तम-रतप्रभृतयो राजानः ॥ मैत्युपनि० प्र० १ खं० ४॥

इत्यादि प्रमाणोंसे सिद्ध है कि सृष्टिसे लेकर महाभारतपर्यन्त चक्रवर्ती सार्वभीम राजा आर्य्यकुलमें ही हुए थे। अब इनके सन्ता-नोंका अभाग्योदय होनेसे राजभ्रष्ट होकर विदेशियोंके पादाक्रान्त हो रहे हैं। जैसे यहां सुशुन्न, भूरिशुन्न, इन्द्रशुन्न, कुबलयाश्व, यौवनाश्व, बद्ध्य्रश्व, अश्वपति, शशविन्दु, हरिश्चन्द्र, अम्बरीष, ननक्तु, सर्याति, ययाति अनरण्य, अश्वसेन, मरुत्त और भरत सार्वभीम सब भूमिमें प्रसिद्ध चक्रवर्ती राजाओंके नाम लिवे हैं वैसे खायम्भवादि चक्रवर्ती राजाओंके नाम स्पष्ट मनुस्मृति, महाभारतादि प्रन्थोंमें लिखे हैं। इसको मिथ्या करना अञ्चानी और पक्षपातियोंका काम है।

प्रश्न—जो आग्नेयास्त्र सादि विद्या छिखी हैं वे सत्य **हैं वा नहीं ?** स्रोर तोप तथा बन्दक तो उस समयमें थीं वा नहीं ?

उत्तर--यह बात सच्ची है ये शस्त्र भी थे क्योंकि पर्श्यविद्यासे इन सब बातोंका सम्भव है।

प्रश्न-क्या ये देवताओं के मन्त्रोंसे सिद्ध होते थे १

जत्तर—नहीं, ये सब बातें जिनसे अख शक्कोंको सिद्ध करते थे वे "मन्त्र" अर्थात् विचारसे सिद्ध करते और चलाते थे। और जो मन्त्र अर्थात् शब्दमय होना है उससे कोई द्रव्य उत्पन्न नहीं होता। और जो कोई कहें कि मन्त्रसे अग्नि उत्पन्न होना है सो वह मन्त्रके

जप करनेवालेके हृदय और जिह्नाको भस्म कर देवे। मारने जाय शहको और मर रहे आए। इसलिये मन्त्र नाम है विचारका, जैसे "राजमन्त्री" अर्थात् राजकमोका विचार करनेवाला कहाता है वैसा मन्त्र अर्थात् विचारसे सब सृष्टिके पदार्थीका प्रथम ज्ञान सौर पश्चात् किया करनेस अनेक प्रकारके पदार्थ और कियाकौशल उत्पन्न होते हैं। जैसे कोई एक लोहेका वाण वा गोला बनाकर उसमें ऐसे पदार्थ रक्खे कि जो अग्निके लगानेसे वायुमें धुआं फैलने और सूर्यकी किरण वा वायुके स्पर्श होनेसे अग्नि जल उठे इसीका नाम आग्नेयास्त्र है। जब इसरा इसका निवारण करना चाहे तो उसी पर वारुणास्त्र छोड़ दे अर्थात् जैसे शत्रुने शत्रुकी सेना पर आग्नेयास्त्र छोड कर नष्ट करना चाहा वैसे ही अपनी सेनाकी रक्षार्थ सेनापित वरुणास्तरे आग्नेयास्त्रका निवारण करे। वह ऐसे द्रव्योंके योगसे होता है जिसका धुआं वायुके स्पर्श होते ही वहल होके मत्ट वर्षने लग जावे अग्निको बुक्ता देवे। ऐसे ही नागफांस अर्थात् जो शत्रु पर छोड़नेसे उसके अक्नोंको जकडके बांध लेता है। वैसे ही एक मोहनाख अर्थात जिसमें नशेकी चीज़ डालनेसे जिसके धुए के लगनेसे सब शत्रुकी सेना निद्रास्थ अर्थात् मूर्छित् होजाय । इसी प्रकार सब शस्त्रास्त्र होते थे । और एक तारसे वा शीशे अथवा किसी और पदार्थसे विद्युत उत्पन्न करके शत्रुओंका नाश करते थे उसको भी आग्नेयास्त्र तथा पाशुप-तास्त्र कहते हैं। "तोप" और "बन्दूक" ये नाम अन्य देशभाषाके हैं। संस्कृत और आर्यावर्तीय भाषाके नहीं किन्तु जिसको विदेशी जन तोप कहते हैं संस्कृत और भाषामें उनका नाम "शतध्नी" और जिसको बन्द्क कहते हैं उसको संस्कृत और आर्थ्यभाषामें "भुग्रुएडी" कहते हैं। जो संस्कृत विद्याको नहीं पढ़े वे भ्रममें पड़कर कुछका कुछ लिखते और कुछका कुछ बकते हैं। उसका बुद्धिमान् लोग प्रमाण नहीं कर सकते। और जितनी विद्या भूगोलमें फैली है वह सब आर्घ्यावर्री देशसे मिश्रवालों, उनसे यूनानी, उनसे क्रम और उनसे यूरोवदेशमें,

उनसे अमेरिका आदि देशों में फैली है। अब तक जितना प्रचार संस्कृत विद्याका आर्थ्यार्वर्त्त देशमें हे उतना किसी अन्य देशमें नहीं। जो लोग कहते हैं कि जर्मनी देशमें संस्कृत विद्याका बहुत प्रचार है ओर जितना संस्कृत मोश्रमूलर साद्य पढ़े हैं उतना कोई नहीं पढ़ा यर बात कहतेमात्र है क्यों कि "यस्तिन्देशे द्वारों नास्ति तत्रैरण्डोऽपि द्वमायतं" अर्थात् जिस देशमें कोई वृक्ष नहीं होता उस देशमें एरंड ही को बड़ा वृक्ष मान छेने हैं, वैसे ही यूरोप देराने संकृत विद्याका प्रचार न होनेसे जर्मन लोग और मोक्षमूलर साहबने थोड़ासा पढ़ा वही उस दंशके लिने अधिक है। परन्तु आव्यक्ति देशकी और देखें तो उनकी बहुत न्यूत गणना है क्योंकि मैंने जर्मनी देशनिवासीके एक "प्रिंसपल" के पत्रसे जाना कि जर्मनी देशमें संस्कृत चिट्टीका अर्थ करनेवाले भी बहुत कम हैं ! और मोक्षमूलर साहवकं संस्कृत साहित्य और थोड़ासी वेदकी न्याख्या देखकर मुक्तको विदित होता है कि मोक्समूलर साहबने इधर उधर आर्थ्यावर्तीय लोगोंकी की हुई टीका देख कर कुछ कुछ यथा नथा लिखा है जैसा कि "युश्जन्ति त्रध्नमरूपं चरन्तं परि-तस्थुपः । रोचन्ते रोचना दिवि<sup>श</sup> ॥ [ ऋ॰ १। ६। १ ] इस मन्त्रका अर्थ घोड़ा किया है। इससे तो जो सायणाचार्यने सूर्य्य अर्थ किया है सो अन्छा है। परन्तु इसका ठीक अर्थ परमात्मा है। सो मेरी बनाई "ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका" में देख लीजिये। उसमें इस मन्त्रका यथार्थ अर्थ किया है। इतनेसे जान लीजिये कि जर्मनी देश और मोसमूलर साहबमें संस्कृत विद्याका किनना पाण्डित्य है। यह निश्चय है कि जितनी विद्या और मत भूगोलमें फैले हैं वे सब आर्थावर्त्त देश ही से प्रचलित हुए हैं। देखों । कि एक "जैकालयट" \* साहब पेरस अर्थात फूांस देश निवासी अपनी "वायविल इन इण्डिया" में छिखते हैं कि सब विद्या और भलाइयोंका भण्डार आर्य्यावर्ता देश है ऑर सब विद्या तथा मत इसी देशसे फैले हैं। और परमात्माकी

<sup>\*</sup> मृत्रमें मोलुस्टकर था।

एकादश

प्रार्थना करते हैं कि हे परमेश्वर ! जैसी उन्नति आर्घ्यावर्त्त देशकी पूर्व कालमें थी वैसी ही हमारे देशकी की जिये, जिखते हैं उस प्रत्थमें देखलो । तथा 'दाराशिकोह' बादशाहने भी यही निश्चय किया था कि जैसी पूरी विद्या संस्कृतमें है वैसी किसी भाषामें नहीं। वे ऐसा उप-निषदोंके भाषान्तरमें लिखते हैं कि मैंने अर्वी आदि बहुतसी भाषा पढ़ी परन्तु मेरे मनका सन्देह छूटकर आनन्द न हुआ। जब संस्कृत देखा और सुना तब निस्सन्देह होकर मुक्तको बडा आनन्द हुआ है। देखो काशीके "मानमन्दिर" में शिद्यमारचकको कि जिसकी पूरी रक्षा भी नहीं रही हैं तो भी कितना उत्तम है कि जिसमें अबतक भी खगोलका बहुतसा वृत्तान्त विदित होता है जो "सवाई जयपुराधीश" उसकी संभाल और फूटे टूटेको बनवाया करेंगे तो बहुत अच्छा होगा। परन्त ऐसे शिरोमणि देश हो महाभारतके युद्धने ऐसा धका दिया कि अवतक भी यह अपनी पूर्व दशामें नहीं आया। क्योंकि जब भाईको भाई मारने छगे तो नाश होनेमें क्या सन्देह १

### विनादाकाले विपरीतबृद्धिः [ ब्रद्धचाणक्य १६।१७]

यह किसी कविका वचन है। जब नाश होनेका समय निकट आता है तब उल्टी बुद्धि होकर उल्टे काम करते हैं। कोई उनको सूधा सममावे तो उल्टा मान और उल्टा सममावें उसको सूधी माने । जब बड़े २ विद्वान्, राजा, महाराजा, भृषि, महर्षि छोग महाभारत युद्धमें बहुतसे मारे गये और बहुतसे मरगये तब विद्या और वेदोक्त धर्मका प्रचार नष्ट हो चला। ईर्ब्या, द्वेष, अभिमान आउसमें करने छो। जो बलवान हुआ वह देशको द्वाकर राजा बन बैठा। वैसे ही सर्वत्र भार्यावर्त्त देशमें खण्ड बण्ड राज्य होगया। पुनः द्वीपद्वीपान्तरके राज्यकी व्यवस्था कौन करें ! जब ब्राह्मण छोग विद्याहीन हुए तब क्षत्रिय, वैश्य और शूट्रोंक अविद्वान् होनेमें तो कथा ही क्या कहनी ? जो परम्परासे वेदादि शास्त्रोंका अर्थसहित पढ़नेका प्रचार था वह भी सूट गया। केवल जीविकार्थ पाठमात्र ब्राह्मण लोग पढ़ते रहे सो पाठमात्र भी क्षत्रिय आदिको न पढ़ाया। क्योंकि जब अविद्वान् हुए गुरु बन गये तब छल, कपट, अधर्म भी उनमें बढ़ता चला। ब्राह्मणोंने विचारा कि अपनी जीविकाका प्रवन्ध बांधना चाहिये। सम्मति करके यही निश्चय कर क्षत्रिय आदिको उपदेश करने लगे कि हम ही सुम्हारे पूज्यदेव हैं। विना हमारी सेवा किये तुमको स्वर्ग वा मुक्ति न मिलेगी। किन्तु जो तुम हमारी सेवा न करोगे तो घोर नरकमें पड़ोगे। जो २ पूर्ण विद्या वाले धामिकोंका नाम ब्राह्मण और पूजर्न ब वेद और मृषि मुनियोंक शास्त्रमें लिखा था उनको अपने मृष्त, विषयी कपटी, लम्पट, अधर्मियों पर घटा वैठे। भला वे आप्त विद्वानोंके लक्षण इन मृखोंमें कब घट सकते हैं १ परन्तु जब क्षत्रियादि यजमान संस्कृत विद्यासे अत्यन्त रहित हुए तब उनके सामने जो २ गप्प मारी सो २ विचारोंने सब मान ली तब इन नाममात्र ब्राह्मणोंकी बनपड़ी। सबको अपने वचनजालमें बांधकर वशीभृत करिलया और कहने लगे कि—

#### ब्रह्मवाक्यं जनार्दनः॥

सर्थात् जो कुछ ब्राह्मणोंके मुख्येसे वचन निकलता है वह जानो साक्षात् भगवानके मुख्ये निकला। जब क्षत्रियादि वर्ण सांखके अन्धे और गांठके पूरे अर्थात् भीतर विद्याकी आंख फूटी हुई और जिनके पास धन पुष्कल है ऐसे २ चेले मिले, फिर इन व्यर्थ ब्राह्मण नामवालों को विषयानन्दका उपवन मिल गया। यह भी उन लोगोंने प्रसिद्ध किया कि जो कुछ पृथ्वीमें उत्तम पदार्थ हैं वे सब ब्राह्मणोंके लिये हैं। सर्थात् जो गुण, कर्म, स्वभावसे ब्राह्मणादि वर्णाव्यवस्था थी उसको नष्ट कर जन्म पर रक्सी और मृतकपर्यन्तका भी दान यजमानोंसे लेने लगे। जैसी अपनी इच्छा हुई वैसा करते चले। यहांतक किया कि "हम भूदेव हैं" हमारी सेवाके विना देवलोक किसीको नहीं मिल सकता। इनसे पूलना चाहिये कि तुम किस लोकमें पधारोगे?

तम्हारे काम तो घोर नरक भोगतंके हैं कृमि, कीट, पतङ्कादि बन गे तब तो बड़े क्रोधित होकर कड़ते हैं—हम "शाप" देंगे तो तुम्हारा नाश होजायगा पर्योकि लिखा ह "ब्रह्मदोरी विनश्यति" कि जो ब्राह्मणोंसे द्रोह करता है उसका नाश हो जाता है। हां यह बात ता सच्ची है कि जो पूर्ण वेद और परमात्माको जाननेवाले, धर्मात्मा, सब जगत्के उपकारक पुरुषोंसे कोई द्वेप करेगा वह अवश्य नष्ट होगा। परन्तु जो ब्राह्मण नहीं हों, उनका न ब्राह्मण नाम और न उनकी सेवा करनी योग्य है।

प्रश्न-तो हम कौन हैं ? उत्तर-तुम पोप हो।

प्रश्न-पोप किसको कहते हैं ?

उत्तर—इसकी सुचना रूमन भाषामें तो बड़ा और पिताका नाम पोप है परन्त अब छल कपटसे दसरेको ठगकर अपना प्रयोजन साधनेवालेको पोप कहते हैं।

प्रश्न-हम तो ब्राह्मण और साधु हैं क्योंकि हमारा पिता ब्राह्मण और माता ब्राह्मणी तथा हम अमुक साधुके चेले हैं।

उत्तर-यह सत्य है परन्तु सुनो भाई ! मा बाप ब्राह्मण ब्राह्मणी होनेसे और किसी साधुके शिष्य होने पर ब्राह्मण वा साधु नहीं हो सकते किन्तु ब्राह्मण और साधु अपने उत्तम गुण कर्म स्वभावसे होते हैं जो कि परोपकारी हो। सुना है कि जैसे रूमके "पोप" अपने चेलोंको कहते थे कि तुम अपने पाप हमारे सामने कढ़ोगे तो हम क्षमा कर देंगे, विना हमारी संवा और आज्ञाके कोई भी स्वर्गमें नहीं जा सकता, जो तम र्ख्यामें जाना चाहो तो हमारे पास जितने रुपये जमा करोगे उतने ही की सामग्री स्वर्गमें तुमको मिलेगी, ऐसा सुनकर जब कोई भांखके अन्धे और गांठके पूरे स्वर्गमें जानेकी इच्छा करके "पोपजी" को यथेष्ट रुपया देता था तब वह "पोपजी" ईसा और मरियमकी मुर्तिके सामने खड़ा होकर इस प्रकास्की हंडी लिखकर

देता था, "हे खुदावन्द ईसामसीह । अमुक मनुष्यने तेरे नाम पर लाख हपये स्वर्गमें आनेके लिये हमारे पास जमा कर दिये हैं। जब वह स्वर्गमें आवे तब तू अपने पिताके स्वर्गके राज्यमें पच्चीस सहस्र रूप-योंमें बाग्रवगीचा और मकानात, पच्चीस सहस्रमें संवारी शिकारी धौर नौकर, चाकर, परचीस सहस्र रुपयोंमें खाना पीना कपडा लता धौर पच्चीस सहस्र रुपये इसके इष्ट मित्र भाई बन्धु आदिके जियाफ्र-तके वास्ते दिला देना।" फिर उस हुंडीके नीचे पोपजी अपनी सही करके हुंडी उसके हाथमें देकर कह देते थे कि "जब तू मरे तब हुंडी को कुबरमें अपने सिराने धर लेनेके लिये अपने कुटुम्बको कह रखना फिर तुभे लेजानेके लिये फ़रिश्ते आवेंगे तब तुभे और तेरी हुंडीको स्वर्गमें छेजाकर छिखे प्रमाणे सब चीजें तुम्मको दिछा देंगे।" अव देखिये, जानों स्वर्गका ठेका पोपजीने लेलिया हो ! जबतक यूरोप देशमें मृखता थी तभीतक वहां पोपजीकी लीडा चलती थी परन्तु अब विद्याके होनेसे पोपजीकी भूठी छीछा बहुत नहीं चछ ी, किन्तु निर्मूछ भी नहीं हुई। वैसे ही आर्यार्वत देशमें जानो पोपजीने छ खों अवता-र लेकर लील फैलाई हो। अर्थात् राजा और प्रजाको विद्यान पढ़ते देना, अ छे पुरुषोंका सङ्ग न हो । देना, रात दिन बङ्कानेके सिवाय दसरा कुछ भी काम नहीं करना है। परन्त यह बात ध्यानमें रखना कि जो २ छछकपट।दि छुत्सित व्यवहार करते हैं वे ही पोप कहाते हैं। जो कोई उनमें भी धार्मिक विद्रान् परोपकारो हैं वे सच्चे ब्राह्मण भौर साधु हैं। अब उन्हीं छळी कपटी खार्थी लोगों, मनुष्योंको ठगकर अपना प्रयोजन सिद्ध करनेवालों ही का प्रहण "पोप" शब्दसे करना और ब्राह्मण तथा साधु नामसं उत्तम पुरुषोंका स्वीकार करना योग्य है। देखो । जो कोई भी उत्तम ब्राह्मण वा साधुन होता तो वेदादि सयशास्त्रोंक पुस्तक स्वरसिंतका पठनपाठन जैन, मुसलमान, ईसाई आदिके जालसं बचकर आर्योंको वेदादि सत्यशाखों नं प्रीतियंक बर्णाश्रमोंने रखना ऐसा कौन कर सकता? सिवाय ब्राह्मण साधु-

भोंके। "विषाद्प्यमृतं प्राह्मम्"। ( मनु• ) विषसे भी अमृतके प्रःण करनेके समान पोपळीलासे बहकानेमेंसे भी आर्योका जैन आदि मतोंसे बच रहना जानो विषमें अमृतके समान गुण समम्हता चाहिये। जब यजमान विद्याहीन हुए और आप कुछ पाठ पूजा पढ़कर अभिमानमें आके सब लोगोंने परस्पर सम्मति करके राजा आदिसे कहा कि ब्राह्मण और साधु अदण्ड्य हैं, देखो । "ब्राह्मणो न हन्तव्यः" "साधुन हन्तव्यः" ऐसे २ वचन जो कि सच्चे ब्राह्मण और साधुओं के विषयमें थे सो पोपोंने अपने पर घटा लिये और भी क्रुठे २ वचन युक्त प्रन्थ रचकर उनमें ऋषि मुनियोंके नाम धरके उन्होंके नामसे सुनाते रहे। बन प्रतिष्ठित भूषि मर्डार्षियोंके नामसे अपने परसे दण्डकी व्यवस्था उठवा दी। पुनः यथेष्टाचार करने लगे अर्थात् ऐसे कडे नियम चलाये कि उम पोपोंकी आज्ञाके विना, सोना, उठना, बैठना, जाना, खाना, पीनां आदि भी नहीं कर सकते थे। राजाओंको ऐसा निश्चय कराया कि पोप संज्ञक कहने मात्रके ब्राह्मण साधु चाहें सो करें उनको 🚓 भी दण्ड न देना अर्थात् उन पर मनमें दण्ड देनेकी इच्छा न करनी चाहिये जब ऐसी मूर्फाता हुई तब जैसी पोपोंकी इच्छा हुई वैसा करने कराने लगे। अर्थात् इस बिगाड़के मूल महाभारत युद्धेसे पूर्व एक सहस्र वर्णसे प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि उस समयमें ऋषि मुनि भी थे तथापि कुछ २ आलस्य, प्रमाद, ईर्ब्या, द्वेषके अङ्कर उंगे थे, वे बढते २ ब्रद्ध होगरे। जब सम्रा उपदेश न रहा तब अरुर्योवर्त्तमें अविद्या फैळ-कर परस्परमें लड़ने ऋगड़ने लगे क्योंकि--

### उपदेश्योपदेष्टृत्वात् तत्सिद्धिः। इतरथान्धपरम्परा॥

सांख्यसू॰ [ अ॰ ३। ७६। ८१ ]

अर्थात् जब उत्तम २ उपदेशक होते हैं तब अच्छे प्रकार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सिद्ध होते हैं। और जब उत्तम उपदेशक और श्रोता नहीं रहते तब अन्धपरम्परा चलती है। फिर भी जब सत्पुदेष उत्पन्न होकर सत्योपदेश करते हैं तभी अन्धपरम्परा नष्ट होकर प्रकाशकी परम्परा चलती है। पुनः वे पोप लोग अपनी और अपने चरणोंकी पूजा कराने लगे और कहने लगे कि इसीमें तुम्हारा कल्याण है। जब ये लोग इनके बशमें होगये तब प्रमाद और विषयासक्तिमें निमग्न होकर गड़रियेके समान क्रूठे गुरु और चेले कैंसे। विद्या, बल, बुद्धि, पराक्रम, शूरवीरतादि शुभगुण सब नष्ट होते चले। पश्चात् जब विषयासक्त हुए तो मांस मद्यका सेवन गुप्त २ करने लगे। पश्चात् उन्हींमेंसे एक वाममांग खड़ा किया। "शिव उवाच" "पार्वत्यु-वाच" "मैरव उवाच" इयादि नाम लिखकर तन्त्र नाम धरा। उनमें ऐसी २ विचित्र लीलाकी बातें लिखीं कि—

मर्गं मांसं च मीनं च मुद्रा मैथुनमेव च।
एते पश्च मकाराः स्युर्मोक्षदा हि युगे युगे ॥१॥
[काळीतन्त्रादि में ]

प्रवृत्ते भैरवीचके सर्वे वर्णा द्विजातयः। निवृत्ते भैरवीचके सर्वे वर्णाः पृथक् पृथक्॥२॥ [कुछाणेव तन्त्र]

पीत्वा पीत्वा पुनः पीत्वा यावत्पतित भूतले । पुनरुत्थाय वै पोत्वा पुनर्जन्म न विद्यते ॥३॥ [ महानिर्माण तन्त्र ]

मातृयोनिं परित्यज्य विहरेत् सर्वयोनिषु ॥४॥ वेदशास्त्रपुराणानि सामान्यगणिका इव । एकैव शाम्भवी सुद्रा गुप्ता कुलवधूरिव ॥४॥ ४

्र अर्थात् देखो इन गर्भाण्ड पोपोंकी लीला कि जो वदविरुद्ध महा

ध्यधर्मके काम हैं उन्होंको श्रेष्ठ वाममार्गियोंने माना। मद्य, मांस, मीन धर्यात् मच्छी, मुद्रा, पूरी कचौरी और बड़े रोटी आदि चर्वण, योनि, पात्राधार, मुद्रा और पांचवां मैथुन अर्थात् पुरुष सब शिव और स्त्री सब पार्वतीक समान मानकर—

### अहं भैरवस्त्वं भैरवी ह्यावयोरस्तु सङ्गमः।

चाहे कोई पुरुष वा स्त्री तो इस उटपटाङ्क वचनको पढ़के समागम करनेमें वाममार्गी दोष नहीं मानते । अर्थात् जिन नीच स्त्रियोंको छूना नहीं उनको अतिप्रवित्र उन्होंने माना है । जैसे शास्त्रोंमें रज-स्वला आदि स्त्रियोंके स्पर्शका निषेध है उनको वाममार्गियोंने अति-प्रवित्र माना है । सुनो इनका श्लोक अण्डबण्ड —

### रजस्वला पुष्करं तीर्थं चांडाली तु स्वयं काशी चर्मकारी प्रयागः स्याद्रजकी मधुरा मता । अयोध्या पुक्कसो प्रोक्ता ॥ [ रुद्रयामल तन्त्र ]

इत्यादि, रजस्वलांके साथ समागम करनेसे जानो पुष्करका स्नान चाण्डालीसे समागममें काशीकी यात्रा, चमारीसे समागम करनेसे मानो प्रयागस्नान, धोबीकी स्नीके साथ समागम करनेमें मथुरा यात्रा सौर कंजरीके साथ लीलांकरनेसे मानो अयोध्या तीर्थ कर आये। मद्यका नाम धरा "तीर्थ" मांसका नाम "ग्रुद्धि" और "पुष्प", मच्छीका नाम "नृतीया" "जलतुम्त्रिका" मुद्राका नाम "चतुर्थी" और मेथुनका नाम "दंचभी" इसलिये ऐसे २ नाम धरे हैं कि जिससे दूसरा न समस सके। अपने कौल, आर्द्रवीर शाम्भव और गण आदि नाम रक्ले हैं। और जो वाममाग मतमें नहीं हैं उनका "कंटक", "विमुख", "ग्रुष्कपश्रु" आदि नाम घरे हैं। और कहते हैं कि जब मैरवीचक हो तब उसमें ब्राह्मणसे लेकर चांडालपर्यन्तका नाम द्विज होजाता है और जह भैरवीचक्रसे अलग हों तब सब अपने २ वर्णस्थ होजायें। भैर-

वीचक्रमें वाममार्गी लोग भूमि वा पट्टे पर एक विन्दु त्रिकोण चतु-ब्कोण वर्तुलाकार बनाकर उसपर मद्यका घडा रखके उसकी पूजा करते हैं। फिर ऐसा मन्त्र पढ़ते हैं। "ब्रह्मशाप विमोचय" हे मदा! तु ब्रह्मा आदिके शापसे रहित हो। एक गुप्त स्थानमें कि जहां सिवाय वाममार्गीके दूसरेको नहीं आने दंते वहां स्त्री और पुरुष इकट्ठे होते हैं। वहां एक स्त्री को नङ्गी कर पूजते और स्त्री छोग किसी पुरुषको नङ्गा कर पूजती हैं पुनः कोई किसीकी स्त्री कोई अपनी वा दूसरेकी कन्या कोई किसीकी वा अपनी माता, भगिनी, पुत्रवधू आदि आती हैं। पश्चात् एक पात्रमें मद्य भरके मांस और बड़े आदि एक स्थालीमें धर रखते हैं। उस मद्यके प्यालेको जो कि उनका आचार्य्य होता है बह हाथमें लेकर बोलता है कि "भैरवोऽहम्" "शिवोऽहम्" "में भैरव वा शिव हूं" कहकर पीजाता है। फिर उसी जूठे पात्रसे सब पीते हैं। और जब किसीकी स्त्री वा वेश्या नङ्गी कर अथवा किसी पुरुषको नङ्गा कर हाथमें तलत्रार देके उसका नाम देवी और पुरुषका नाम महादेव धरते हैं, उनके उपस्थ इन्द्रियकी पूजा करते हैं तब उस देवी वा शिवको मद्यका प्याला पिलाकर उसी जुठे पात्रसे सब लोग एक २ प्याला पीते। फिर उसी प्रकार क्रमसे पी पीके उन्मत्त होकर चाहें कोई किसीकी बहिन, कन्या वा माता क्यों न हो जिसकी जिसके साथ इच्छा हो उसके साथ, कुकर्म करते हैं। कभी २ बहुत नशा चढ़-नेसे जुते, लात, मुकामुका, कशाकशी, आपसमें लड़ते हैं। किसी २ की वहीं वमन होता है। उनमें जो पहुंचा हुआ अधो ी अर्थात् सबमें सिद्ध गिना जाता है, वह वमन हुई चोज़ हो भी खा लेता है अर्थात् इनके सबसं बड़े सिद्धकी ये बातें हैं कि-

हालां पिषति दीक्षितस्य मन्दिरे सुप्तो निशायां गणिकागृहेषु । विराजते कौलवचकवर्ती ॥

जो दीक्षित अर्थात् कछारके घरमें जाके बोतछ पर बोतछ चड़ावे,

रंडियोंके घरमें जाके उनसे कुकर्म करके सोतें, जो इत्यादि कर्म निलंज, निःराङ्क होकर करे, वही वाममागियोंमें सर्वोपरिमुख्य चक्रवर्ती राजाके समान माना जाता है। अर्थात् जो बड़ा कुकर्मी वही उनमें बड़ा और जो अच्छे काम करे और बुरे कामोंसे डरे वही छोटा क्योंकि

# पादाबद्धो भवेजीवः पादामुक्तः सदा दि।वः॥

[ ज्ञानसंकलनी तन्त्र । रलोक ४३ ]

ऐसा तन्त्रमें कहते हैं कि जो लोकलजा, शास्त्रलज्जा, कुललज्जा देशलज्जा आदि पाशोंमें बंधा है वह जीव, और जो निर्लज्ज होकर बुरें काम करें वहीं सदा शिव है।।

उड़ीस तन्त्र आदिमें एक प्रयोग लिखा है कि एक घरमें चारों ओर आलय हों। उनमें मद्यके बोतल भरके धर देवे। इस आलयसे एक बोतल पीके दूसरे आलय पर जावे। उसमेंसे पी तीसरे और तीसरेमेंसे पीके चौथे आलयमें जावे। खड़ा २ तवतक मद्य पीवे कि जबतक लकडीके समान पृथिवीमें न गिर पड़ें। फिर जब नशा उतरे तब उसी प्रकार पीकर गिर पड़े पुनः तीसरी वार इसी प्रकार पीके गिरके उठे तो उसका पुर्वजनम न हो, अर्थात् सच तो यह है कि ऐसे २ मनुष्योंका पुः मनुष्यजनम होना ही कठिन है किन्तु नीच योनिमें पड़कर बहुकालपर्यन्त पड़ा रहेगा। वामियोंके तन्त्र प्रन्थोंमें यह नियम है कि एक मताको छोड़के किसी स्त्री को भी न छोड़ना चाहिये अर्थात् चाहं कत्या हो वा भगिनी आदि क्यां न हो सबके साथ संगम करना चाढिये। इन वाममार्गियोंमें दश महाविद्या प्रसिद्ध हैं उनमेंसे एक मातङ्की विद्यावाला कहता है कि "मातरमपि न त्यजेत" अर्थात् माताको भी समागम किये विना न छोडना चाहिये। और स्त्री पुरुषके समागम समयमें मन्त्र जपते हैं कि हमको सिद्धि प्राप्त होजायें। ऐसे पागल महामूर्व मनुष्य भी संसारमें बहुत न्यून होंगे !!! जो मनुष्य भूठ चलाना चाहता है वह सत्यकी निन्दा अवश्य ही करता

समुल्लास] वाममागियोंका खण्डन । 305 है। देखो । वाममार्गी क्या कहते हैं १ वेद शास्त्र, और पुराण ये सब

सामान्य वेश्याओंके समान हैं और जो यह शांभवी वाममार्गकी मुद्रा है वह गुप्तकुलकी स्त्रीके तुल्य है ॥ ४ ॥

इसीलिये इन लोगोंने केवल वेदविरुद्ध मत खड़ा किया है। पश्चात् इन छोगोंका मत बहुत चछा। तब धूर्तता करके वेदोंके नामसं भी वाममार्गकी थोड़ी २ छीला चलाई अर्दोन्—

सौत्रामण्यां सुरां पिबेत् । प्रोक्षितं भक्षयेन्मां-सम्। वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति॥ न मांसभक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने। 🕆 प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला ॥

मनु• [अय् ४। ५६]

सौत्रामणि यज्ञमें मद्य पीवे इसका अर्थ यह है कि सौत्रामणि यज्ञमें सोमरस अर्थात् सोमवल्लीका रस पिये। प्रोक्षित अर्थात् यज्ञमें मांस खानेमें दोष नहीं ऐसी पामरपनकी बातें वाममार्गियोंने चलाई हैं। उनसे पूछना चाहिये कि जो वैदिकी हिंसा हिंसान हो तो तुम्ह और तेरे कुटुम्बको मारके होम कर डालें तो क्या चिन्ता है ? मांस-भक्षण करने, मद्य पीने, परस्त्रीगमन करने आदिमें दोष नहीं है, यह कड्ना छोकडापन है। क्योंकि विना प्राणियोंके पीडा दिये मांस प्राप्त नहीं होता, आर विना अपराधके पीड़ा देना धर्मका काम नहीं। मद्य-पानका तो सर्वथा निषेध ही है क्योंकि अबतक वाममागियोंक विना किसी प्रन्थमें नहीं लिखा किन्तु सर्वत्र निषेध है। और विना विवाहक मैथुनमें भी दोष है, इसको निर्दोष कहनेवाला सदोष है। ऐसं २ वचन भी अषियोंक प्रनथमें डालके कितने ही अपूषि मुनियोंके नामत प्रनथ बनाकर गोमेध, अधमेव नामके यह भी करान लगे थे। अर्थात इन पशुओंको मारके होम करनेसं यजमान और पशुको र्ख्याकी प्राप्ति होती है, ऐसी प्रसिद्धिका निश्चय तो यह है कि जो ब्राह्मणप्रन्थों में

ध्यश्चमेय, गोमेय, नरमेय आदि शब्द हैं उनका ठीक २ अर्थ नहीं जाना हे क्योंकि जो जानते तो ऐसा अनर्थ क्यों करते ?

प्रश्न-अश्वमेध, गोमेध, नरमेध आदि शब्दोंका अर्थ क्या है? उत्तर-इनका अर्थ तो यह है कि--

राष्ट्रं वा अश्वमेधः [ श्वात० १३।१।६।३ ] अब्नँ हि गीः ॥ [ श्वात० ४।३।१।२५ ] अग्रिर्वा अश्वः । आज्यं मेधः ॥ श्वातपथन्नाद्याणे ॥

घोड़, गाय आदि पशु तथा मनुष्य मारके होम करना कहीं नहीं लिखा। केवल वाममाणियांक प्रन्थोंन ऐसा अन्धं लिखा है किन्तु यह भी बात वाममाणियांने चलाई। और जहां २ लेख हैं वहां २ भी बाममाणियोंने प्रक्षेत्र किया है। देखो। राजा न्याय धमसे प्रजाका पालन करे, विद्यादिका देनेहारा यजमान और अग्निमें घी आदिका होम करना अश्वमेत्र, अत्र, इन्द्रियां, किरण, पृथिवी आदि को पवित्र रखना गोमेध; जब मनुष्य मरजाय तब उसके शरीरका विधिपूर्वक दाह करना नरमेध कहाता है।

प्रश्त—यज्ञकर्ताक इते हैं कि यज्ञ करनेसे यजमान और पशु र्स्वर्गगामी तथा होम करके फिर पशुको जिन्दा करते थे, यह बात सच्ची है वा नहीं ?

उत्तर—नहीं, जो स्वर्गको जाते हो नो ऐसी बात कहनेवालेको मार के होम कर स्वर्गमें पहुंचाना चाहिये वा उसके प्रिय माता, पिता, स्त्री और पुत्रादिको मार होमकर स्वर्गमें क्यों नहीं पहुंचाते ? वा वेदीमेंसे पुनः क्यों नहीं जिला लेते हैं ?

प्रश्त— जब यज्ञ करते हैं तब वेदोंके मन्त्र पढ़ते हैं। जो वेदोंमें न होता तो कहांसे पढ़ते ?

उत्तर---मन्त्र किसीको कहीं पढ़तेसे नहीं रोकता, क्योंकि वह एक शब्द है। परन्तु उनका अर्थ ऐसा नहीं है कि पशुको मारके होम फरना । जैसे "अगनये स्वाहा" इत्य दि मन्त्रोंका अर्थ अगिनमें हिंदि, पुष्ट्यादिकारक घृतादि उत्तम पद योंके होम करनेसे वायु, बृष्टि, जल शुद्ध होकर जगनको सुखकारक होते हैं । परन्तु इन सत्य अर्थोंको वे मूढ़ नहीं समम्तने थे क्योंकि जो स्वार्थबुद्धि होते हैं वे केवल अपने स्वार्थ करनेके दूसरा कुछ भी नहीं जानते, मानते । जब इन पोपोंका ऐसा अनाचार देखा और दूसरा मरेका तर्पण श्राद्धादि करनेको देख कर एक महाभयङ्कर वेदादि शास्त्रोंका निन्दक बौद्ध वा जैनमत प्रचित हुआ है । सुनते हैं कि एक इसी देशमें गोरखपुरका राजा था । उससे पोगोंने यज्ञ कराया । उसकी प्रिय रानीका समागम घोड़ेके साथ करानेसे उसके मरजाने पर पश्चात् वैराग्यवान् होकर अपने पुत्रको राज्य दे, साधु हो पोपोंकी पोल निकालने लगा । इसीकी शाखारूप चारवाक और आभाणक मत भी हुआ था । उन्होंने इस प्रकारके शलोक बनाये हैं—

पशुरचेन्निहितः स्वर्गं ज्योतिष्टोमे गमिष्यति । स्विपता यजमानेन तत्र कस्मान्न हिंस्यते ॥ मृतानामिह जन्तृनां श्राद्धं चेत्त्रिकारणम् । गच्छतामिह जन्तृनां व्यर्थं पाथेयकल्पनम् ॥

जो पशु मारकर अग्निमें होम करनेसे पशु स्वर्गको जाता है, तो यजमान अपने पिता आदिको मारके स्वर्गमें क्यों नहीं भेजते ॥१॥

जो मरे हुए मनुष्योंकी तृष्तिके लिये श्राद्ध और तर्पण होता है तो विदेशमें जानेवाले मनुष्यको मार्गका खंच खाने पी के लिये बांधना व्यथं है। क्योंकि जब मृतकको श्राद्धः तर्पणसे अन्न जल पहुंचता है तो जीते हुए परदेशमें रहने वाले वा मार्गमें चलनेहारोंको घरमें रसोई बनी हुईका पत्तल परोस, लोटा भरके उसके नाम पर रखनेसे क्यों नहीं पहुंचता १ जो जीते हुए दूर देश अथवा दश हाथ पर दूर बैठे हुएको दिया हुआ नहीं पहुंचता तो मरे हुएके पास किसी प्रकार नहीं पहुंच सकता। उनके ऐसे युक्तिसिद्ध उपदेशोंको मानने लगे और उनका मत बढ़ने लगा। जब बहुतसे राजा भूमिपति उनके मतमें हुए तब पोपजी भी उनकी ओर झुके क्योंकि इनकी जिधर गफ्का अच्छा मिले वहीं चले जायें। मह जैन बनने चले। जैनमें भी और प्रकार की पोपळीळा बहुत है सो १२ वें समुद्धःसमें ळिखेंगे। बहुतोंने इनका मत स्वीकार किया परन्तु कितने कहीं जो पर्वत, काशी, कन्नोज, पश्चिम, दक्षिण देशवाले थे उन्होंने जैनोंका मत स्वीकार नहीं किया था वे जैनी वेदका अर्थ न जानकर बाहरकी पोपलीला आन्तिसे वेद पर मानकर वेदोंकी भी निन्दा करने लगे। उसके पठनपाठन यहाैप-वीतादि और ब्रह्मचर्यादि नियमोंको भी नाश किया। जहां जितने पुस्तक वेदादिके पाये नष्ट किये आर्यो पर बहतसी राजसत्ता भी चलाई, दुःल दिया जब उनको भय शङ्कान रही तब अपने मत बाले गृहस्थ और साधुओंकी प्रतिष्ठा और वेदमागियोंका अपमान और पक्षपातसे दण्ड भी देने लगे। और आप सुख आराम और धमण्डमें भा फूलकर फिरने लगे। भ्रापभदेवसे लेके महावीर पर्यन्त अपने तीर्थकरोंकी बड़ी २ मृत्तियां बनाकर पूजा करने छगे अर्थात् पाषा-णादि मूर्तिपूजाकी जड़ जैनियोंसे प्रचलित हुई। परमेश्वरको मानना न्यून हुआ, पाषाणादि मूर्तिपूजामें छगे। ऐसा तीनसौ वर्ष पर्यन्त भार्यावर्तमें जैनोंका राज्य रहा। प्रायः वेदार्थ ज्ञानसे शुन्य होगये थे। इस बातको अनुमानसे अढ़ाई सहस्र वर्ष व्यतीत हुए होंगे।

बाईससों वर्ष हुए कि एक शंकराचार्य द्रविड्देशोत्पन्न न्नाह्मण न्नह्मचर्यसे व्याकरणादि सब शाक्षोंको पढ़कर सोचने छगे कि अहह ! सत्य आस्तिक वेद मतका छूटना और जैन नास्तिक मतका चलना बड़ी हानिकी बात हुई है इनको किसी प्रकार हटाना चाहिये शङ्करा-चार्थ्य शास्त्र तो पढ़े ही थे, परन्तु जैन मतके भी पुस्तक पढ़े थे और इनकी युक्ति भी बहुत प्रबल्ध थी। इन्होंने विचारा कि इनको किस

प्रकार हटावें ? निश्चय हुआ कि उपदेश और शास्त्रार्थ करनेसे ये छोग हटेंगे। ऐसा विचार कर उज्जैन नगरीमें आये। वहां उस समय सघत्वा राजा था, जो जैतियोंके प्रत्य और ट्राइड संस्कृत भी पढा था। बहां जाकर बेदका उपदेश करने लगे और राजासे मिलकर कहा कि आप संस्कृत और जैनियोंक भी प्रन्थोंको पढ़े हो और जैन मतको मानते हो, इसल्थिये आपको मैं कहता हूं कि जैनियोंके पण्डितोंके साथ मेरा शास्त्रार्थ कराइये, इस प्रतिज्ञा पर, जो हारे सो जीतने वालेका मत स्वीकार करहे, और आप भी जीतने वालेका मत स्वीकार कीजियेगा यद्यपि सधनवा जैनमतमें थे तथापि संस्कृत प्रनथ पढनेसे उनकी बुद्धिमें कुछ विद्याका प्रकाश था। इससे उनके मनमें अत्यन्त पशुता नहीं छाई थी। क्योंकि जो विद्वान होता है वह सत्याऽसत्यकी परीक्षा करके सत्यका प्रहण और असत्यको छोड़ देता है। जबतक सुधन्या राजाको बडा विद्वान अपदेशक नहीं मिला था तबतक सन्देहमें थे कि, इनमें कौनसा सत्य और कौनसा असत्य है। जब शङ्कराचार्य्यकी यह बात सुनी और वडी प्रसन्नताके साथ बोले कि हम शास्त्रार्थ कराके सत्याऽ-सत्यका निर्णय अवश्य करावेंगे। जैनियोंके पण्डितोंको दूर २ से बुलाकर सभा कराई। उसमें शङ्कराचार्यका वेदमत और जैनियोंका वेदविरुद्ध मत था अर्थात् शङ्कराचार्य्यका पक्ष वेदमतका स्थापन और जैनियोंका खंडन और जैनियोंका पक्ष अपने मतका स्थापन और वेदका खण्डन था शास्त्रार्थ कई दिनों तक हुआ। जैनियोंका मत यह था कि सृष्टिका कर्ता अनादि ईश्वर कोई नहीं; यह जगत् और जीव धनादि हैं; इन दोनोंकी उत्पत्ति और नाश कभी नहीं होता। इससे विरुद्ध शङ्कराचार्यका मत था कि अनादि सिद्ध परमात्मा ही जगत्का कर्ता है। ,यह जगत् और जीव मूठा है क्योंकि उस परमेश्वरने भपनी मायासे जगत् बनाया, वही धारण और प्रख्य, करता है, और यह जीव और प्रपश्च खप्नवत् है। परमेश्वर आप ही सब रूप होकर बीका कर रहा है। बहत दिन तक शास्त्रार्थ होता रहा। परन्त अन्तमें

एकाद्दा

यक्ति और प्रमाणसे जैनियोंका मतं खण्डित और शङ्कराचार्य्यका मत अखण्डित रहा। तब उन जैनियोंके पण्डित और सुधन्वा राजाने उस मतको स्वीकार कर लिया, जैन मतको छोड दिया। पुनः बडा हुला गुला हुआ और सुधन्वा राजाने अन्य अपने इष्ट मित्र राजाओंको छिएकर शङ्कराचार्य्यसे शास्त्रार्थ कराया । परन्तु जैनका पराजय समय होनेसे पराजित होते गये पश्चात् शङ्कराचार्य्यके सर्वत्र आर्या-वर्त्त देशमें घूमनेका प्रवन्ध सुधन्वादि राजाओंने कर दिया, और **उनकी रक्षाके** छिये साथमें नौकर चाकर भी रख दिये। उसी समयसे सबके यज्ञोपवीत होने लगे और वेदोंका पठनपाठन भी चला। दश वर्षक भीतर सर्वत्र आर्यावर्त्त देशमें घूमकर जैनियोंका खण्डन और वेदोंका मण्डन किया परन्तु शङ्कराचार्य्यके समयमें जैन विध्वंस अर्थात् जितनी मूर्तियां जैनियोंकी निकलती हैं वे शङ्कराचार्यके सम-यमें दूटी थीं और जो विना दूटी निकलती हैं वे जैनियोंने भूमिमें गाड दी थीं कि तोड़ी न जायें। वे अवतक कहीं भूमिमेंसे निकलती हैं। शङ्कराचार्यके पूर्व शेवमत भी थोडासा प्रचलित था उसका भी खण्डन किया। बाममार्गका खण्डन किया। उस समय इस देशमें धन बहुत था और खदेशभक्ति भी थी। जैनियोंके मंदिर शङ्कराचार्य्य और सुधन्वा राजाने नहीं तुडवाये थे क्यों कि उनमें वेदादिकी पाठशाला करनेकी इन्छा थी। जब वेदमतका स्थापन हो चुका और विद्याप्रचार करनेका विचार करते ही थे। उतनेमें दो जैन ऊपरसे कथनमात्र वेदमत और भीतरसं कट्टर जैन अर्थात् कपटमुनि थे, शङ्कराचार्य्य **इन पर अति प्रसन्न थे। उन दोनोंने अवसर पाकर शङ्कराचार्व्यको** ऐसी विषयुक्त वस्तु खिलाई कि उनकी क्षुधा मन्द होगई। पश्चात् शरीरमें फोड़े फुन्सी होकर छः महीनेके भीतर शरीर छूट गया। तब सब निरुत्साही होगये और जो विद्याका प्रचार होने वाला था वह भी न होने पाया । जो २ उन्होंने शारीरिक भाष्यादि बनाये थे उनका प्रचार शङ्कराचार्य्यके शिष्य करने छगे। अर्थात् जो जैनियोंक खण्ड-

#### समुल्लास] नवीन वेदान्तमत समीक्षा। ३८५

नके लिये ब्रह्म सत्य जगत् मिथ्यां और जीव ब्रह्मकी एकता कथन की थी उसका उपदेश करने लगे। दक्षिणमें शुक्करी, पूर्वमें भूगोवधन, इत्तरमें जोशी ओर द्वारिकामें सारदामठ बांधकर शङ्कराचार्य्यके शिष्य महन्त बन और श्रीमान होकर आनन्द करने लगे, क्योंकि शङ्करा-चार्यके पश्चात् उनके शिष्योंकी बडी प्रतिष्ठा होने लगी।

अब इसमें विचारना चाहिये कि जो जीव ब्रह्मकी एकता जगत् मिथ्या शङ्कराचार्य्यका निज मत था तो वह अन्छा मत नहीं और जो जैनियोंके खण्डनके लिये उस मतका स्वीकार किया हो तो कुछ अन्छा है। नवीन वेदान्तियोंका मत ऐसा है।

प्रश्न—जगत् खप्नवत्, रज्जूमें सर्प, सीपमें चांदी, मृगतृष्णिका में जल, गन्धर्वनगर इन्द्रजालवत् यह संसार भूठा है। एक ब्रह्म ही सवा है।

सिद्धान्ती—भूठा तुम किसको कहते हो १ नवीन—जो वस्तु न हो और प्रतीत होवे। सिद्धान्ती—जो वस्तु ही नहीं उसकी प्रतीति कैसे हो सकती है। नवीन—अध्यारोपसं।

सिद्धान्ती - अध्यारोप किसको कहते हो ?

नवीन—"वस्तुन्यवस्त्वारोपणमध्यासः" "अध्यारोपापवादाभ्यां निष्प्रपंच प्रपंच्यते" पदार्थ कुछ और हो उसमें अन्य वस्तुका आरोपण करना अध्यास अध्यारोप; और उसका निराकरण करना अपवाद कहाता है। इन दोनोंसे प्रपंच रहित ब्रह्ममें प्रपंचरूप जगत् विस्तार करते हैं।

सिद्धान्ती—तुम रज्ज्ञको वस्तु और सर्पको अवस्तु मानकर इस भ्रमजालमें पड़े हो। क्या सर्प वस्तु नहीं है ? जो कहो कि रज्ज्ञमें नहीं तो देशान्तरमें, और उसका संस्कारमात्र हृदयमें है। किर वह सर्प भी अवस्तु नहीं रहा। वैसे ही स्थाणुमें पुरुष, सीपमें, चांदी आदिकी न्यवस्था समस्त लेना। और स्वप्नमें भी जिनका भान होता

है वे देशान्तरमें हैं और उनके संस्कार आत्मामें भी हैं। इस्रिये वह स्वप्न भी वस्तुमें अवस्तुके आरोपणके समान नहीं।

नवीन—जो कभी न देखा, न सुना, जैसा कि अपना शिर कटा है और आप रोता है, जलकी धारा ऊपर चली जाती है, जो कभी न हुआ था देखाजाता है, वह सत्य क्योंकर हो सके ?

सिद्धान्ती—यह भी दृष्टान्त तुम्हारे पक्षको सिद्ध नहीं करता क्योंकि विना देखे सुने संस्कार नहीं होता। संस्कारके विना स्मृति, और स्मृतिके विना साक्षात् अनुभव नहीं होता । जब किसीसे सुना वा देखा कि अमुकका शिर कटा और उसके भाई वा बाप आदिको लड़ाईमें प्रत्यक्ष रोते देखा और फोहारेका जल ऊपर चढ़ते देखा वा सुना उसका संस्कार उसीके आत्मामें होता है। जब यह जामन्के पदार्थसे अलग होके देखता है तब अपने आत्मामें उन्हीं पदार्थीको, जिनको देखा वा सुना होता, देखता है। जब अपने ही में देखता है तब जानों अपना शिर कटा, आप रोता और ऊपर जाती जलकी धाराको देखता है। यह भी वस्तुमें अवस्तुके आरोपणके सदृश नहीं, किन्तु जैसे नक्शा निकालनेवाले पूर्व रुप्ट श्रुत वा किये हुओंको बात्मामेंसे निकाल कर काराज पर लिख देते हैं अथवा प्रतिविम्बका खतारनेवाला विम्बको देख आत्मामें आकृतिको धर बराबर लिख देता है। हां। इतना है कि कभी २ स्वप्नमें स्मरणयुक्त प्रतीति जैसा कि अपने अध्यापकको देखता है और कभी बहुत काल देखने और सुननेमें अतीत ज्ञानको साक्षात्कार करता है। तब स्मरण नहीं रहता कि जो मैंने उस समय देखा, सुना वा किया था उसीको देखता. सुनता वा करता हूं जैसा जार्प्रत्में स्मरण करता है वैसा स्वप्नमें नियमपूर्वक नहीं होता। देखो । जन्मान्धको रूपका स्वप्न नहीं भाता। इसलिए तुम्हारा अध्यास और अध्यारोपका लक्षण क्रुठा है। और जो वेदान्ती छोग विवर्त्तवाद अर्थात् रज्जूनं सर्पादिके भान होनेका च्छान्त, ब्रह्ममें जगत्के भान होनेमें देते हैं, वह भी ठीक नहीं।

नवीन—अधिष्ठानके विना अध्यस्त प्रतीत नहीं होता। जैसे रज्जू न हो तो सर्पका भी भान नहीं हो सकता। जैसे रज्जू में सर्प तीन कालमें नहीं है परन्तु अन्धकार ओर कुछ प्रकाशके मेलमें अक-स्मात् रज्जूको देखतेसे सर्पका भ्रम होकर भयसे कम्पता है। जब उसको दीप आदिसे देख लेता है उसी समय भ्रम और भय निवृत्त होजाता है। वैसे ब्रह्ममें जो जगत्की मिथ्या प्रतीति हुई है वह ब्रह्मके साक्षात्कार होनेमें उस [जगत] की निवृत्ति और ब्रह्मकी प्रतीति [होजाती है] जैसा कि सर्पकी निवृत्ति और रज्जूकी प्रतीति होती है।

सिद्धान्ती-ब्रह्ममें जगत्का भान किसको हुआ ?

नवीन--जीवको।

सिद्धान्ती--जीव कहांसे हुआ ?

नवीन--अज्ञानसे ।

, सिद्धान्ती—अज्ञान कहांसे हुआ और कहां रहता है ? नवीन—अज्ञान अनादि और ब्रह्ममें रहता है।

सिद्धान्ती—ब्रह्ममें ब्रह्मका अज्ञान हुआ वा किसी अन्यका यह अज्ञान किसको हुआ ?

नवीन-चिदाभासको।

सिद्धान्ती-चिद्राभासका स्वरूप क्या है ?

नवीन—ब्रह्म, ब्रह्मको ब्रह्मका अज्ञान अर्थात् अपने स्वरूपको आप ही भूळ जाता है।

सिद्धान्ती-उसके भूळनेमें निमित्त क्या है ?

नवीन-अविद्या ।

सिद्धान्ती—अविद्या सर्वव्यापी सर्वज्ञका गुण है वा अल्पज्ञका १ नवीन—अल्पज्ञका ।

सिद्धान्ती—तो तुम्हारे मतमें विना एक अनन्त सर्वज्ञ चेतनके दूसरा कोई चेतन है वा नहीं ? और अल्पज्ञ कहांसे आया ? हां, जो अल्पज्ञ चेतन कहासे भिन्न मानो तो ठीक है। जब एक ठिकाने

एकादश

ब्रह्मको अपने स्वरूपका अज्ञान हो तो सर्वत्र अज्ञान फैल जाय। जैसे शरीरमें फोड़ेकी पीड़ा सब शरीरके अवयर्वोको निकम्मा कर देती है, इसी प्रकार ब्रह्म भी एक देशमें अज्ञानी और क्लेशयुक्त हो तो सब ब्रह्म भी अज्ञानी और पीड़ाके अनुभवयुक्त होजाय।

नवीन-यह सब उपाधिका धर्म है, ब्रह्मका नहीं।

सिद्धान्ती—उपाधि जड़ है वा चेतन और सत्य है वा असत्य ? नवीन—अर्निवचनीय है अर्थात् जिसको जड़ वा चेतन सत्य वा असत्य नहीं कह सकते।

सिद्धान्ती—यह तुम्हारा कहना "बदतो व्याघातः" के तुल्य है क्योंकि कहते हो अविद्या है जिसको जड़, चेतन, सत्, असत् नहीं कह सकते। यह ऐसी बात है कि जैसे सोनेमें पीतल मिला हो उसको सराफके पास परीक्षा करावे कि यह सोना है वा पीतल? तब यही कहोगे कि इसको हम न सोना न पीतल कह सकते हैं किन्तु इसमें दोनों घातु मिली हैं।

नवीत—देखो जैसे घटाकाश, मठाकाश, मेघाकाश और महदाका-शोगिष अर्थात् घड़ा, घर और मेघके होनेसे भिन्न २ प्रतीत होते हैं, वास्तवमें महदाकाश ही है, ऐसे ही माया, अविद्या, समष्टि, व्यष्टि, कीर अन्तःकरणोंकी उपाधियोंसे ब्रह्म अज्ञानियोंको पृथक् २ प्रतीत हो रहा है; वास्तमें एक ही है। देखो अग्रिम प्रमाणमें क्या कहा है—

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो ब-भूव। एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रति-रूपो बहिश्च॥ [कठ उ० वल्ली ५। मं० ६]

जैसे अग्नि लम्बे, चोड़े, गोल, छोटे, बड़े सब आकृतिवाले पदार्थी में न्यापक होकर तदाकार दीखता और उनसे प्रथक् है, वैसे सर्वन्यापक परमात्मा अतः करणोंमें न्यापक होके अन्तः करणाऽऽकार हो रहा है परन्तु उनसे अल्पा है।

सिद्धान्ती—यह भी तुम्हारा कहना व्यथं है क्योंकि जैसे घट, मठ मेघों और आकाशको भिन्न मानते हो वैसे कारण कार्य्यरूप जगत् और जीवको ब्रह्मसे और ब्रह्मको इनसे भिन्न मान छो ?

नवीन—जैसा अग्नि सबमें प्रविष्ट होकर देखतेमें तदाकार दीखता है, इसी प्रकार परमात्मा जड़ और जीवमें व्यापक होकर आकारवाला अज्ञानियोंको आकारयुक्त दीखता है। वास्तवमें ब्रह्म न जड़ और न जीव है। जैसे जलके सहस्र कूंडे धरे हों उनमें सूर्य्यके सहस्रों प्रति-विम्व दीखते हैं वस्तुतः सूर्य्य एक है। कूंडोंके नष्ट होनेसे जलके खलने व फैलनेसे सूर्य्य न नष्ट होता न चलना और न फैलता, इसी प्रकार अन्तःकरणोंमें ब्रह्मका आभास जिसको चिदाभास कहते हैं पड़ा है। जबतक अन्तःकरण है तभीनक जीव है। जब अन्तःकरण ज्ञानसे नष्ट होता है तब जीव ब्रह्मस्वरूप है। इस चिदाभासको अपने ब्रह्मस्वरूपका अज्ञानकर्त्ता, भोक्ता, सुखी, दुःखी पापी, पुण्यात्मा, जन्म मरण अपनेमें आरोपित करता है तबनक संसारके बन्धनोंसे नहीं छूटता। है

सिद्धान्ती—यह दृष्टान्त तुम्हारा व्यथं है क्योंकि सूर्य्य आकार-वाला; जल कूंडे भी साकार है। सूर्य्य जल कूंडेसे भिन्न और सूर्य्यसे जल कूंडे भिन्न हैं। तभी प्रतिविम्य पड़ता है। यदि निराकार होते तो उनका प्रतिविम्य कभी न होता और जैसे परमेश्वर निराकार, सर्वत्र आकाशवत् व्यापक होनेसे ब्रह्मसे कोई पदार्थ वा पदार्थोसे ब्रह्म पृथक् नहीं हो सकता और व्याप्यव्यापक सम्बन्धसे एक भी नहीं हो सकता। अर्थात् अन्वयव्यतिरेकभावसे देखनेसे व्याप्यव्यापक मिले हुए और सदा पृथक् रहते हैं। जो एक हो तो अपनेमें व्याप्यव्यापक भाव सम्बन्ध कभी नहीं घट सकता। सो बृहदारण्यकके अन्तर्यामी ब्राह्मणमें स्पष्ट लिखा है। और ब्रह्मका आभास भी नहीं पड़ सकता, क्योंकि विना आकारके आभासका होना असम्भव है। जो अन्द्र: क-रणोपाधिसे ब्रह्म हो जीव मानते हो सो तुम्हारी बात बालकके सकता है। अन्तःकरण चलःयमान, लण्ड २ और ब्रह्म अचल और सक्का है। यदि तुम ब्रह्म और जीवको पृथकं २ न मानोंगे तो इसका उत्तर हीजिये कि जहां २ अन्तः करण चला जायगा वहां २ के ब्रह्मको . अक्रानी और जिस २ देशको छोड़ेगा वहां २ के ब्रह्मको ज्ञानी कर देवेगा वा नहीं ? जैसे छाता प्रकाशके बीचमें जहां २ जाता है वहां २ के प्रकाशको आवरणयुक्त और जहां २ से हटता है वहां २ के प्रका-शको आवरण रहित कर देता है, वैसे ही अन्तःकरण ब्रह्मको क्षण २ में ज्ञानी, अज्ञानी बद्ध और मुक्त करता जायगा। अखंड ब्रह्मके एक देशमें आवरणका प्रभाव सर्वदेशमें हो नेसे सब ब्रह्म अज्ञानी हो जायगा क्योंकि वह चेतन है। और मथुरामें जिस अन्तःकरणस्थ ब्रह्मने जो वस्त देखी उसका स्मरण उसी अन्तः करणस्थसे काशीमें नहीं हो सकता। क्योंकि "अन्यदृष्टमन्यो न स्मरतीति न्यायात्" और के देखेका स्मरण और को नहीं होता। जिस चिदःभासने मथुरामें देखा वह चिदाभास काशीमें नहीं रहता किन्तु जो मथुरास्थ अन्तःकरण प्रकाशक है [ वह ] काशीस्थ ब्रह्म नहीं होता । जो ब्रह्म ही , जीव है, प्रथक नहीं, तो जीवको सर्वज्ञ होना चाहिये। यदि ब्रह्मका प्रतिर्विव पृथक् है तो प्रत्यभिज्ञा अर्थात् पूर्व, दृष्ट, श्लनका ज्ञान किसीको नहीं हो सकेगा। जो कड़ो कि ब्रह्म एक है इसिंछिये स्मरण होता है तो एक ठिकाने अज्ञान वा दुःख होनेसे सब ब्रह्मको अज्ञान वा दुःख हो जाना चाहिये। और ऐसे २ दृष्टान्तोंसे नित्य, ग्रुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वभाव ब्रह्मको तुमने अग्रद्ध अज्ञानी और बद्ध आदि दोषयुक्त कर दिया है। अखण्ड को खण्ड २ कर दिया।

नवीन—निराकारका भी आभास होता है जैसा कि द्रंण वा जलादिमें आकाशका आभास पड़ना है वह नीला वा किसी अन्य प्रकार गम्भीर गहरा दीखता है, वैसे ब्रह्मका भी सब अन्तःकरणोंमें आभास पड़ता है।

सिद्धन्ती—जब आकाशमें रूप ही नहीं है तो उसको आखसे कोई भी नहीं देख सकता। जो पदार्थ दीखता ही नहीं वह दर्गण और जलादिनें कैसे दीखेगा ? गहरा वा छिदरा साकार वस्तु दीखता है, निराकार नहीं।

नवीन—तो फिर जो यह ऊपर नीलासा दीखता है, वही ब्यादर्श-चालेमें भान होता है, वह क्या पदांध है १

सिद्धान्ती—वह पृथिवीसे उड़ कर जल, पृथिवी और अिनके व्रसरेणु हैं। जहांसे वर्षा होती है वहां जल न हो नो वर्षा कहांसे होवे ? इसल्यि जो दूर २ तम्बूके समान दीखता है, वह जलका चक है। जैसे कुहिर दूरसे धनाकार दोखता है और निकटसे छिदरा और हेरेके समान भी दीखता है वैसा आकाशमें जल दिखाता है।

नवीन—क्या हमारे रज्जू, सर्प्य और स्वप्नादिके दृष्टान्त मिथ्या हैं १ सिद्धान्ती—नहीं; तुम्हारी समक्ष मिथ्या है, सो हमने पूर्व लिख दिया। भला यह तो कही कि प्रथम अज्ञान किसको होता है १

नवीन-श्रह्मको ।

सिद्धान्ती-अहा अल्पन्न है वा सर्वज्ञ ?

नवीत—न सर्वज्ञ और न अल्पक्ष। क्योंकि सर्वज्ञता स्रीर सल्पन्नता नपाधिसहितमें होती है।

सिद्धान्ती—उपाधिसे सहित कौन है ?

नवीन-महा।

सिद्धान्ती—तो ब्रह्म ही सर्वज्ञ और अल्पज्ञ हुआ। तो तुमने सर्वज्ञ और अल्पज्ञका निषेध क्यों किया था। तो कही कि उपाधि कल्पित अर्थात् मिथ्या है तो कल्पक अर्थात् कल्पना करने बाढा कीन है ?

नवीन--जीव ब्रह्म है वा अन्य ?

सिद्धान्ती—अन्य है, क्योंकि जो बहास्तरूप है तो जिसने विश्या करपना की वह बहा ही नहीं हो सकता। जिसकी करपना विश्वाह है बह सबा कब हो सकता?

नवीन-इम सत्य और असत्यको मूठ मानते हैं और अधीते

बोलना भी मिथ्या है।

सिद्धान्ती—जब तुम मूठ कहने और मानने वाले हो तो मूठे क्यों नहीं ?

नवीन - रही, मूठ और सच हमारे ही में कल्पित है और हम दोनोंके साक्षी अधिष्ठान हैं।

सिद्धान्ती—जब तुम सत्य और फ़्रुठेके आधार हुए तो साहूकार और चोरके सहश तुम्हीं हुए। इससे तुम प्रामाणिक भी नहीं रहे क्योंकि प्रामाणिक वह होता है जो सर्वदा सत्य माने. सत्य बोले, सत्य करे, फ़्रुठ न माने, फ़्रुठ न बोले और फ़्रुठ कदाचित् न करे। जब तुम अपनी बातको आप ही फ़्रुठ करते हो तो तुम अपने आप मिथ्याबादी हो।

नवीन—अनादि माया जो कि ब्रह्मके आश्रय और ब्रह्महीका आवरण करती है उसको मानते हो वा नहीं ?

सिद्धान्ती—नहीं मानते, क्योंकि तुम मायाका अर्थ ऐसा करते ही कि जो वस्तु न हो और भासे है तो इस बातको वह मानेगा जिसके हृद्यकी आंख फूट गई हो। क्योंकि जो वस्तु नहीं उसका भासमान होना सर्वथा असम्भव है जैसा बन्ध्याके पुत्रका प्रतिविम्ब कभी नहीं हो सकता। और यह "सन्मूछाः सोम्येमाः प्रजाः" इत्यादि छान्दोग्य उपनिषदोंके वचनोंसे विरुद्ध कहते हो ?

नवीन – क्या तुम विशष्ठ, शंकराचार्य आदि और निश्चलदास पर्य्यन्त जो तुमसे अधिक पण्डित हुए हैं उन्होंने लिखा है उसकी खण्डन करत हो १ हमको तो विसिन्ठ, शंकराचार्य और निश्चलदास आदि अधिक दीखते हैं!

सिद्धन्ती—तुम विद्वान् हो वा अविद्वान् ? नवीन—हम भी कुछ विद्वान हैं।

सिद्धान्ती-अच्छा तो वसिष्ठ, शंकराचार्य और निश्चलदासके पक्षका हमारे सामने स्थापन करो, हम खण्डन करते हैं। जिसका

पक्ष सिद्ध हो वही बडा है। जो उनकी और तम्हारी बात अखण्डनीय होती तो तुम उनकी युक्तियां लेकर हमारी बातको खण्डन क्यों न कर सकते ? तब तम्हारी और उनकी बात माननीय होवे। अनुमान है कि शंकराचार्य आहि ने तो जैनियोंके मतके खण्डन करने ही के लिये यह मत स्वीकार किया हो क्योंकि देश कालके अनुकूल अपने पश्को सिद्ध करनेके लिये बहतसे स्वार्थी विद्वान अपने आत्माके ज्ञानसे. विरुद्ध भी कर लेते हैं। और जो इन बातोंको अर्थात जीव ईश्वरकी. एकता जगत मिथ्या अ।दि व्यवहार सन्ना नहीं मानते थे; तो उनकी बात सच्ची नहीं हो सकती। और निश्चलदासका पाण्डित्य देखी ऐसा है "जीवो ब्रह्माऽभिन्नश्चेतनत्वात्" उन्होंने "वृत्तप्रभाकर" में जीव ब्रह्मकी एकताके लिये अनुमान लिखा है कि चेनन होनेसे जीव ब्रह्मसे अभित्र है यह बहुत कम समम्ह पुरुष [की बात ] के सदश बात है। क्योंकि साधर्म्यमात्रसे एक दूसरेके साथ एकता नहीं होती वैयम्यं भेदक होता है। जैसे कोई कहें कि "पृथिवी जलाऽभिन्ना जडत्वात्" जडके होनेसे प्रथिवी जलसे अभिन्न है। जैसा यह सङ्गन कभी नहीं हो सकता वैसे निश्चलदासजीका भी लक्षण व्यर्थ है। क्योंकि जो अल्प, अल्पन्नता और भ्रान्तिमत्वादि धर्म्म जीवमें ब्रह्म ने और सर्वगत सर्वज्ञता और निर्भान्तित्वादि वैधर्म्य ब्रह्ममें जीवसे विरुद्ध है इससे ब्रह्म और जीव भिन्न २ हैं। जैसे गन्धवत्व कठितत्व भादि भूमिके धर्म रसवत्व द्ववत्वादि जलके धर्मसे विरुद्ध होनेसे पृथिवी और जल एक नहीं। वैसे जीव और ब्रह्मके वैधर्म्य होनेसे जीव और ब्रह्म एक न कभी थे, नहें और न कभी होंगे। इतने ही से निश्चलदासादिको समम्ब लीजिये कि उनमें कितना पाण्डित्य था और जिसने योगवासिक्ट बनाया है वह कोई आधुनिक वेदान्ती था. न बाल्मीकि, वसिष्ठ और रामचन्द्रका बनाया वा कहा सुना है। क्यों कि वे सब वेदानुयायी थे वेदसे विरुद्ध न बना सकते और न कह सुन सकते थे।

एकादश

· प्रश्न—व्यासजीने जो शारीरिक सूत्र बन:ये हैं उनमें भी जीव ब्रह्मकी एकता दीखती है देखी-

सम्पाद्याऽऽविर्भावः स्वेन शब्दात्॥१॥ बाह्येण जैमिनिरुपन्यासादिभ्यः॥ २॥ चितितन्मात्रं ण तदात्मकत्वादित्यौडुलोमिः ॥३॥ एवमप्युपन्यासात् पूर्वभावादविरोधं वादरायणः ।४। अत एव चानन्याधिपत्तिः॥ ५॥

[वेदान्तद् अ• ४। पा• ४। सू० १। ५-७। ६]

अर्थात जीव अपने स्वरूपको प्राप्त होकर प्रकट होना है जो कि पूर्व ब्रह्मस्वरूप था क्योंकि स्व शब्दसे अपने ब्रह्मस्वरूपका प्रहण होता है ॥ १ ॥

"अयमात्मा अपहतपाप्मा" इत्यादि उपन्यास ऐरवर्य प्राप्ति पर्य्यन्त हेतुओंसे ब्रह्मस्वरूपसे जीव स्थित होता है ऐसा जैमिनि आचार्यका मत है॥ २॥

और औडुलोमि आचार्य तदात्मकस्वरूप निरूपणादि बृहदा-रण्यकके हेतुरूपके वचनोंसे चैतन्यमात्र स्वरूपसे जीव मुक्तिमें स्थित रहता है।। ३।।

व्यासजी इन्हीं पूर्वोक्त उपन्यासादि ऐश्वर्यप्राप्तिरूप हेतुओंसे जीवका ब्रह्मस्वरूप होनेमें अविरोध मानते हैं।। ४।।

योगी ऐरर्वयसहित अपने ब्रह्मस्वरूपको प्राप्त होकर अन्य अधि-पतिसे रहित अर्थात् स्वयं आप अपना और सबका अधिपतिरूप ब्रह्मस्वरूपसे मुक्तिमें स्थित रहता है।। ४।।

<sup>'</sup> उत्तर—इन सूत्रोंका अर्थ इस प्रकारका नहीं किन्तु इनका यथा**र्थ** भर्थ यह है सुनिये ! जबतक जीव अपने स्वकीय शुद्धस्वरूपको प्राप्त सब मलोंसे रहित होकर पवित्र नहीं होता तबतक योगसे ऐश्वर्यको

प्राप्त होकर अपने अन्तर्यामि ब्रह्मको प्राप्त होके आनन्दमें स्थित नहीं हो सकता ।। १ ।।

इसी प्रकार जब पापादि रहित ऐश्वयंयुक्त योगी होता है तभी ब्रह्मके साथ मुक्तिके आनन्द्रको भोग सकता है। ऐसा जैमिनि आचा-र्यका मत है।। २।।

जब अविद्यादि दोषोंसे छूट शुद्ध चैतन्यमात्र स्वरूपसे जीव स्थित होता है तभी "तदात्मकत्व" अर्थात् ब्रह्मस्वरूपके साथ सम्बन्धको प्राप्त होता है।। ३।।

जब ब्रह्मके साथ ऐश्वर्य और शुद्ध विज्ञानको जीते ही जीवनमुक्त होता है तब अपने निमल पूर्व स्वरूपको प्राप्त होकर आनिन्द्रत हाता है ऐसा व्यासमुनिजीका मत है।। ४।।

जब योगीका सत्य सङ्कल्प होता है तब स्वयं परमेश्वरको प्राप्त होकर मुक्तिमुखको पाता है वहां स्वाधीन स्वतन्त्र रहता है जैसा संसारमें एक प्रधान दूसरा अप्रधान होता है वैसा मुक्तिमें नहीं। किन्तु सब मुक्त जीव एकसे रहते हैं।। ५।।

जो ऐसा न हो तो-

नेतरोनुपपत्ते: ॥१॥ [१।१।१६]
भेदव्यपदेशाब ॥२॥ [१।१।१७]
बिशेषणभेदव्यपदेशाभ्यांच नेतरौ ।३। [१।१।२२]
अस्मिन्नस्य च तद्योगं शास्ति ॥४॥ [१।१।१६]
अन्तस्तद्धर्मीपदेशात् ॥५॥ [१।१।२०]
भेदव्यपदेशाचान्यः ॥६॥ [१।१।२१]
ग्रहां प्रविष्टावात्मानौ हितद्दर्शनात्॥आ [१।२।११]
अनुपपत्ते स्तु न शारीरः ॥८॥ [१।२।३]

एकादश

# अन्तर्याम्यधिदैवादिषु तद्धर्भव्यपदेशात् ॥६॥

शारीरश्चोऽभयेऽपि हि भेदेनैनमधीयते ॥१०॥ (१।२।२०) व्याससुनिकृतवेदान्तसूत्राणि॥

अर्थ—ब्रह्मसे इतर जीव सृष्टिकर्ता नहीं है क्योंकि इस अल्प, अल्पक्त, सामर्थ्यवाले जीवमें सृष्टिकर्तृत्व नहीं घट सकता। इससे जीव ब्रह्म नहीं ॥ १॥

"रसं हो वायं छज्ध्वानन्दी भवति" यह उपनिषद्का वचन है। जीव ओर ब्रह्म भिन्न हैं क्योंकि इन दोनोंका भेद प्रतिपादन किया है। जो ऐसा न होता तो रस अर्थात् आनन्दस्वरूप ब्रह्मको प्राप्त होकर जीव आनन्दन्वरूप होता है यह प्राप्तिविषय ब्रह्म और प्राप्त होनेवाले जीवका निरूपण नहीं घट सकता। इसिंख्ये जीव और ब्रह्म एक नहीं।। २।।

विच्यो समूर्त्तः पुरुषः स बाह्याभ्यन्तरो ह्यजः। अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रो ह्यक्षरात्परतः परः॥

मुण्डकोपनिषदि [ मुं० २ । खं• १ । मं० २ ]

दिव्य, शुद्ध, मूर्तिमत्त्वरहित, सबमें पूण बाहर भीतर निरन्तर व्यापक, अज, जनम, मरण शरीरधारणादिरहित, श्वास, प्रश्वास, शरीर और मनके सम्बन्धसं रहित, प्रकाशस्वरूप इत्यादि परमात्माके विशेषण और अक्षर नाशरहित प्रकृतिसे परे अर्थात् सृक्ष्म जीव उससे भी परमेश्वर परे अर्थात् ब्रह्म सूक्ष्म है। प्रकृति और जीवोंसे ब्रह्मका मेद प्रतिपादनरूप हेतुओंसे प्रकृति और जीवोंसे ब्रह्म भिन्न है। ३॥

इसी सर्वव्यापक ब्रह्ममें जीवका योग वा जीवमें ब्रह्मका योग प्रति-पादन करनेसे जीव और ब्रह्म भिन्न हैं क्योंकि योग भिन्न पदार्थोंका हुआ करता है।। ४।।

इस ब्रह्मके, अन्तर्यामि आदि धर्म कथन किये हैं और जीवके भीतर व्यापक होनेसं व्याप्य जीव व्यापक ब्रह्मसं भिन्न है क्योंकि च्याप्यव्यापक सम्बन्ध भी भेदमें संघटित होता है !! १ ॥

जैसे परमात्मा जीवसे भिन्नस्वरूप है वैसे इन्द्रिय, अन्तःकरण, पृथिवी आदि भूत, दिशा, वाय, सूर्यादि दिव्यगुणोंके भोगसे देवता-बाच्य विद्वानोंसे भी परमातमा भिन्न है ॥ ६ ॥

"गुहां प्रविष्टो सुकृतस्य लोके" इत्यादि उपनिषदोंके वचनोंसे जीव और परमात्मा भिन्न हैं। वैसा ही उपनिषदोंन बहुत ठिकाने दिखलाया है।। ७।।

"शरीरे भवः शारीरः" शरीरधारी जीव ब्रह्म नहीं है क्योंकि ब्रह्मके गुण, कर्म, स्वभाव जीवमें नहीं घटते ॥ 🖂 ॥

( अधिदेव ) सब दिव्य मन आदि इन्द्रियादि पदार्थी ( अधिभूत) पृथिव्यादि भूत ( अध्यातम ) सब जीवोंमें परमातमा अन्तर्यामिरूपसे स्थित है क्योंकि उसी परमात्माके ज्यापकत्वादि धर्म सर्वत्र उपनिष-होंमें व्याख्यात हैं।। ६।।

शरीरधारी जीव ब्रह्म नहीं है क्योंकि ब्रह्मसे जीवका मेद स्वरू-पसे सिद्ध है ॥ १०॥

इत्यादि शारीरिक सूत्रोंसे भी स्वरूपसे ही ब्रह्म और जीवका मेद सिद्ध है। वैसे ही वेदान्तियोंका उपक्रम और उपसंहार भी नहीं घट सकता क्योंकि "उपक्रम" अर्थात् आरम्भ ब्रह्मसे और उपसंहार अर्थात प्रलय भी ब्रह्म ही में करते हैं। जब दूसरा कोई वस्तु नहीं मानते तो उत्पत्ति और प्रख्य भी ब्रह्मके धर्म हो जाते हैं और उत्पत्ति विनाशरहित ब्रह्मका प्रतिपादन वेदादि सत्यशास्त्रोंमें किया है, वह नवीन वेदान्तियों पर कोप करेगा। क्योंकि निर्विकार, अपरिणामि, शुद्ध, संनातन, निर्भान्तत्वादि विशेषणयुक्त ब्रह्ममें विकार, उत्पत्ति और अज्ञान आदिका संभव किसी प्रकार नहीं हो सकता। तथा उपसंहार ( प्रख्य ) के होने पर भी ब्रह्म कारणात्मक जड और जीव बराबर

बने रहते हैं। इसिलिये उपक्रम और उपसंहार भी इन वेदान्तियोंकी करूपना भूठी है। ऐसी अन्य बहुत सी अशुद्ध बार्ते हैं कि जो शास्त्र और प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे विरुद्ध हैं॥

इसके पश्चात कुछ जैनियों और कुछ शङ्कराचार्य्यके अनुयायी होगोंके उपदेशके संस्कार आर्यावर्त्तमें फैले थे और आपसमें खण्डन मण्डन भी चलता था। शङ्कराचार्य्यके तीनसौ वर्षके पश्चात् उज्जैन नगरीमें विक्रमादित्य राजा कुछ प्रतापी हुआ, जिसने सब राजाओं के मध्य प्रवृत्त हुई लड़ाईको मिटाकर शान्ति स्था न भी । तत्पश्चात् भर्तु-हरि राजा काव्यादि शास्त्र और अन्यमें भी कुछ २ विद्वान हुआ। इसने वैराग्यवान होकर राज्यको छोड दिया। विक्रमादित्यके पांचसौ वर्षके पश्चात राजा भोज हुआ। उसने थोडासा व्याकरण और काव्यालकारादिका इतना प्रचार किया कि जिसके राज्यमें कालिदास ककरी चरानेवाला भी रघुवंश काव्यका कर्ता हुआ। राजा भोजके पास जो कोई अच्छा रखोक बनाकर छेजाता या उसकी बहुतसा धन देते थे और प्रतिष्ठा होती थी। उसके पश्चात् राजाओं और श्रीमा-नोंने पढ़ना ही छोड़ दिया। यद्यपि शङ्कराचार्य्यके पूर्व वाममार्गियोंके पश्चात राव आदि सम्प्रदायस्थ मतवादी भी हुए थे परन्तु उनका बहुत बल नहीं हुआ था महाराजा विक्रमादित्यसे लेके शैवों का बल बढ़ता आया । शैवोंमें पाशुपतादि बहुत सी शाखा हुई थीं, जैसी वाम-मागियोंमें दश महाविद्यादिकी शाखा है लोगोंने शङ्कराचार्य्यको शिवका अवतार ठहराया । उनके अनुयायी संत्यासी भी शैवमतमें प्रवृत्त होगये भीर वाममार्गियोंको भी मिलाते रहे। वाममार्गी, देवी जो शिवजीकी पत्नी है उसके उपासक और शैव महादेवके उपासक हुए ये दोनों हद्राक्ष और भस्म अद्यावधि धारण करते हैं परन्त जितने वाममार्गी वेदिवरोधी हैं वैसे शैव नहीं हैं।

धिक् धिक् कपाछं अस्मस्ट्राक्षविहीनम् ॥१॥

ब्द्राक्षान कण्ठदेशे दशनपरिमितान्मस्तके विश्वती द्वे षट् षट्कर्णप्रदेशे करयुगलगतान् द्वादशान्द्वादशौव। बाह्रोरिन्दोः कलाभिःपृथगिति गदितमेकमेवं शिखायां बक्षस्यष्टाधिकं यः कलयति शतकं स स्वयं नीलकंठः।२

इत्यादि बहुत प्रकारके श्लोक [इन लोगोंने ] बनाये और कहने लगे कि जिसके कपालमें भस्म और कण्ठमें रुद्राक्ष नहीं है उसको धिकार है ।। "तं त्यजेदन्त्यजं यथ।" उसको चांडालके तुल्य त्याग करना चाहिये।। १।।

जो कण्डमं ३२, शिरमें ४०, छः छः कार्नोमें, बारह २ करोंमें, सोछह २ भुजाओंमें, १ शिखामें भोर हृदयमें १०८ रुद्राक्ष धारण करता है वह साक्षात महादेवके सदश है ॥ २॥

ऐसा ही शाक भी मानते हैं परचात इन वाममागों और शेवोंने सम्मति करके भग लिंगका स्थापन किया, जिसको जलाधारी और लिंग कहते हैं और उसकी पूजा करने लगे। उन निलंज्जोंको तनिक भी लजा न आई कि यह पामरपनका काम हम क्यों करते हैं ? किसी किने कहा है कि "स्वार्थी दोषं न परयति" स्वार्थी लोग अपने स्वार्थ-सिद्धि करनेमें दुष्ट कामोंको भी श्रेष्ठ मान दोषको नहीं देखते हैं। उसी पाषाणादि मूर्ति और भग लिंगकी पूजामें सारे धर्म, अर्थ, काम, मीक्ष आदि सिद्धियां मानने लगे। जब राजा भोजके परचात् जैनी लोग अपने मन्दिरोंमें मूर्तिस्थापन करने और दर्शन, स्पर्शनको आने जाने लगे तब तो इन पोपोंके चेले भी जैनमन्दिरमें जाने आने लगे और धर परिचममें कुछ दूसरोंके मत और यवन लोग भी आर्थावर्त्तमें आने लगे। तब पोपोंने यह रलोक बनाया—

न वदेखावनीं भाषां प्राणैः कण्ठगतैरपि। हस्तिना ताड्यमानोऽपि न गच्छेज्जैनमन्दिर्म् ॥

चाहे कितना ही दुःख प्राप्त हो और प्राण कण्ठगत अर्थात मृत्युका समय भी क्यों न आया हो तो भी यावनी अर्थात् म्लेच्छभाषा मुखसे न बोछनी और उन्मत्त हस्ती मारनेको क्यों न दौडा आता हो और जैनके मन्दिरमें जानेसे प्राण बचता हो तो भी जैनमन्दिरमें प्रवेश न करे किन्तु जैनमन्दिरमें प्रवेश कर बचनेसे हाथीके सामने जाकर मर-जाना अन्छ। है। ऐसे २ अपने चेलोंको उपदेश करने लगे। जब उनसे कोई प्रमाण पूछता था कि तुम्हारे मतमें किसी माननीय प्रन्थका भी प्रमाण है ? तो कहते थे कि हां है। जब वे पूछते थे कि दिखलाओ तब मार्कण्डेय पुराणादिके वचन पढ़ते और सुनाते थे जैसा कि दुर्गा-पाठमें देवीका वर्णन लिखा है। राजा भोजके राज्यमें व्यासजीके नामसे मार्कण्डेय और शिवपुराण किसीने बनाकर खड़ा किया था ष्टसका समाचार राजा भोजको विदित होनेसे उन पण्डितोंको हस्त-च्छेदनादि दण्ड दिया और उनसे कहा कि जो कोई काव्यादि प्रन्थ बनावे तो अपने नामसे बनावे, ऋषि मुनियोंके नामसे नहीं। यह बात राजा भोजके बनाये संजीवनी नामक इतिहासमें लिखी है कि जो ग्वालियरके राज्य "भिंड" नामक नगरके तिवाडी ब्राह्मणोंके घरमें है। जिसको लखुनाके रावसाहब और उनके गुमारते रामदयाल चौवे-जीने अपनी आंखसे देखा है। उसमें स्पष्ट लिखा है कि ज्यासजीने चार सहस्र चारसो और उनके शिष्योंने पांच सहस्र छः सौ श्लोकयक्त अर्थात् सब दश सहस्र श्लोकोंके प्रमाण भारत बनाया था। वह महा-राजा विक्रमादित्यके समयमें बीस सहस्र, महाराजा भोज कहते हैं कि मेरे पिताजीके समयमें पञ्चीस और अब मेरी आधी उमरमें तीस सहस्र रहोकयुक्त महाभारतका पुस्तक मिलता है। जो ऐसे ही बढता चला तो महाभारतका पुस्तक एक उटका बोम्हा होजायगा। और भूषि मुनियोंके नामसे पुराणादि प्रनथ बनावेंगे तो आर्यावर्त्तीय छोग भ्रमजालमें पड़के वैदिकधमिविहिन होके भ्रष्ट हो जायंगे। इससे विदित होता है कि राजा भोजको कुछ २ वेदोंका संस्कार था इनके भोज-

प्रबन्धमें खिखा है कि-

घट्यं कया कोरादरोकप्रश्वः सुकृत्रिमो गच्छति चारगत्या । वायुं ददाति व्यजनं सुपुष्कलं विना मनुष्येण चलत्यजस्म ॥

राजा भोजके राज्यमें और समीप ऐसे २ शिल्पी होग थे कि जिन्होंने घोड़ेके आकार एक यान यन्त्रकलायुक्त बनाया था कि जो एक कच्ची घड़ीमें ग्यारह कोश और एक घंटेमें साढ़े सत्ताईस कोश जाता था। वह भूमि और अन्तरिक्षमें भी चळता था। और दसरा पंखा ऐसा बनाया था कि विना मनुष्यके चलाये कलायन्त्रके बलसे नित्य चला करता और पुष्कल बाय देता था। जो ये दोनों पदार्थ आज तक बने रहते तो यूरोपियन इतने अभिमानमें न चढ जाते । जब पोपजी अपने चेळोंको जैनियोंसे रोकने लगे तो भी मन्दिरोंमें जानेसे न रुक सके और जैनियोंकी कथामें भी छोग जाने छगे। कैनियोंके पोप इन पुराणियोंके पोपोंके चेलोंको बहकाने लगे। तब पुराणियोंने विचारा कि इसका कोई उपाय करना चाहिये, नहीं तो अपने चेले जैनी होजायंगे। पश्चान् पोपोंने यही सम्मति की कि जिनि-थोंके सदृश अपने भी अवतार, मंदिर, मूर्ति और कथाके पुस्तक बनाव । इन छोगोंने जैनियोंके चौबीस तीर्थकरोंके सदृश चौबीस अव-तार, मंदिर और मूर्तियां बनाई। और जैसे जैनियोंके आदि और इत्तर पुराणादि हैं वैसे अठारह पुराण बनाने छगे। राजा भोजके हेढ़सी वर्षके पश्चात् वैष्णवमतका आरम्भ हुआ। एक शठकोप नामक कंजरवर्णमें उत्पन्न हुआ था उससे थोड़।सा चला उसके पश्चात् मुनि-बाहन भंगी कुळोत्पन्न और तीसरा यावनाचार्य्य यवनकुळोत्पनन भाचार्य्य हुआ। तत्परचात् ब्राह्मण कुळज चौथा रामानुज हुआ उसने अपना मत फैलाया । शैवोंने शिवपुराणादि, शाक्तोंने देवीभागवतादि, बैष्णवीते विष्णुपराणादि बनाये। उनमें अपना नाम इसलिये नहीं घरा कि हमारे नामसे बनेंगे तो कोई प्रमाण न करेगा। 'इसिल्ये व्यास धादि अपृषि मुनियोंके नाम धरके पुराण बनाये। नाम भी इनका बास्तवमें नवीन रखना चाहिये था परन्तु जैसे कोई दरिद्र अपने बेटेका नाम महाराजाधिराज और आधुनिक पदार्थका नाम सनातन रख दे तो क्या आरच्यं है ? अब इनके आपसके जैसे मन्यें हैं वैसे ही पुराणोंमें भी धरे हैं।

देखो । देवीभागवतमें "श्री" नामा एक देवी स्त्री जो श्रीपुरकी स्वामिनी लिखी है उसीने सब जगत्को बनाया और ब्रह्मा विष्णु महा-देवको भी उसीने रचा। जब उस देवीकी इच्छा हुई तब उसने अपना हाथ घिसा । उससे हाथमें एक छाला हुआ । उसमेंसे ब्रह्माकी उत्पत्ति हुई उससे देवीने कहा कि तू मुम्मसे विवाह कर। ब्रह्माने कहा कि तू मेरी माता लगती है। मैं तुम्मसे विवाह नहीं कर सकता। ऐसा सुन-कर माताको कोध चढा और लडकेको भस्म कर दिया। और फिर हाथ घिसके उसी प्रकार दूसरा छड़का उत्पन्न किया। उसका नाम विष्णु रक्खा। उससे भी उसी प्रकार कहा। उसने न माना तो उसको भी भस्म कर दिया। पुनः उसी प्रकार तीसरे लडकेको उत्पन्न किया। उसका नाम महादेव रक्खा और उससे कहा कि तू मुम्तसे विवाह कर महादेव बोला कि मैं तुम्तसे विवाह नहीं कर सकता। तू दूसरा स्त्रीका शरीर घारण कर। वैसा ही देवीने किया। तब महादेव बोला कि यह दो ठिकाने राखसी क्या पड़ी है ? देवीने कहा कि ये दोनों तेरे भाई हैं। इन्होंने मेरी आज्ञा न मानी इसलिये भस्म कर दिये। महा-देवने कहा कि मैं अकेला क्या करूंगा। इनको जिलादे और दो स्त्री ब्बीर उत्पन्न कर। तीनोंका विवाह तीनोंसे होगा। ऐसा ही देवीन किया। फिर तीनोंका तीनोंके साथ विवाह हुआ। वाहरे। मातासे विवाह न किया और बहिनसे कर लिया ! क्या इसको उचित सम-मता चाहिये १ पश्चात् इन्द्रादिको उत्पन्न किया । ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र भौर इन्द्र इनको पालकीके उठानेवाले कहार बनाया, इत्यादि गपोइँ शिव आदि नाम एक अद्वितीय, सर्व नियन्ता, सर्वान्तर्यामी, जगदी-श्वरके अनेक गुण कर्म स्वभावयुक्त होनेसे उसीके वाचक हैं। भक्षा क्या ऐसे मूखों पर ईश्वरका कोप न होता होगा १ अब देखिये चक्कां-कित वैष्णवांकी अद्भुन माया—

तापः पुण्डं तथा नाम माला मन्त्रस्तथैव च। अमी हि पश्च संस्काराः परमैकान्तहेतवः॥ अतसतन्तर्ने तदामो अरनुते। इति श्रुतेः॥

[रामानुजपटलपद्धनौ]

अधान (तारः) शंख चक्र, गदा और पद्मके चिन्हों हो अिता में सपाके भुजाके मूखमें दाग देकर पश्चात् दुर्ध्युक्त पात्रमें बुक्ताते हैं भीर कोई उस दूधको पी भी छेते हैं। अब देखिये प्रत्यक्ष ही मनुष्यके मासका भी स्वाद उसमें आता होगा। ऐसे २ कमोंसे परमेश्वरको प्राप्त होनेकी आशा करते हैं और करते हैं कि विना शंख च्यादिसे शरीर तपाये जीव परमेश्वरको प्राप्त नहीं होता क्योंकि वह (आमः) स्थात् कहा है और जैसे राज्यके चपरास आदि चिन्हों के होनेसे राजपुरूष जान उससे सब छोग उरते हैं वैसे ही वि गुके शंख चक्र दि आयुधोंके चिन्ह देखकर यमराज और उनके गण उरते हैं और कहते हैं कि—

दोहा—बाना बड़ा द्यालका, तिलक छाप और माल। यम डरपे काळु कहे, भय माने भूपाल॥

वर्धात् भगवान्का बाना तिलकः छाप और माला धारण करना बड़ा है। जिससे यमराज और राजा भी ढरता है (पुण्डूम्) त्रिशूल के सहश्र ल्लाटमें चित्र निकालना (नाम) नारायणहास विष्णुतास वर्धात् दासशब्दान्स नाम रखना (माला) कमलगट्टे की रखना की र पाचवां (मन्त्र) जैसे—

# समुल्लास] देवी-भागवतकी आलोचना। ४०५

ये सब नद्र, शिव, विष्णु, गणपति, सूर्यादि परमेश्वरके और भगवती सत्यभाषणयुक्त वाणीका नाम है। इसमें विना समभे ऐसा म्हगड़ा मचाया है जैसे—

एक किसी वैरागीके दो चेले थे। वे प्रतिदिन गुरुके पग दाबा करते थे। एकने दाहिने पैर और दूसरेने बायें पगकी सेवा करनी बांट ली थी। एक दिन ऐसा हुआ कि एक चेला कहीं बजार हाटको चला गया और दूसरा अपने सेव्य पगकी सेवा कर रहा था। इतनेमें गुरुजीने करवट फेरा तो उसके पग पर दूसरे गुरुभाईका सैव्य पग पडा। उसने है दंडा पग पर धर मारा! गुरुने कहा कि अरे दुष्ट! त ने यह क्या किया ? चेला बोला कि मेरे सेव्य पगके ऊपर यह पग क्यों आ चढा ? इतनेमें दूसरा चेला, जो कि बजार हाटको गया था, ध्या पहुंचा। वह भी अपने सेव्य पगकी सेवा करने छगा। देखा तो पग सूजा पड़ा है। बोला कि गुरुजी यह मेरे सेव्य पगमें क्या हुआ ? गुरुने सब वृत्तान्त सुना दिया। वह भी मूर्ख न बोला न चाला। चुप-चाप दण्डा उठाके बड़े बछसे गुरुके दूसरे पगमें मारा । तो गुरुते उद्यक्तरसे पुकार मचाई। तब दोनों चेले दण्डा लेके पढ़े और गुरुके पगोंको पीटने लगे। तब तो बड़ा कोलाहल मचा और लोग सनकर आये। कहने लगे कि साधुजी क्या हुआ ? उनमेंसे किसी बुद्धिमान पुरुषने साधुको ह्युड़ाके पश्चान् उन मूर्ख चेलोंको उपदेश किया, कि देखो ये दोनों पग तुम्हारे गुरुके हैं। उन दोनोंकी सेवा करनेसे उसीको सुख पहुंचता और दुःख देनेसे भी उसी एकको दुःव होता है।

जैसे एक गुरुकी सेवारं चेळाओंने ळीळा की, इसी प्रकार जो एक अखण्ड, सिच्चदानन्दानन्तस्वरूप परमात्माके विष्णु, रुद्र दि अनेक नाम हैं, इन नामोंका अर्थ जैसा कि प्रथम समुझसमें प्रकाश कर आये हैं उस सत्यार्थको न जानकर शैव, शाक्त, वैष्णवादि संप्रदायी छोग परस्पर एक दूसरेके नामकी निन्दा करते हैं। मन्दमति तनिक भी अपनी बुद्धिको फैळा कर नहीं विचारते हैं कि ये सब विष्णु, रुद्र,

उत्पन्न हो सकता है १ क्या परमेश्वरके सृष्टिक्रमको कोई अन्यथा कर सकता है १ जैसा जिस वृश्चका बीज परमात्माने रचा है उसीसे वह वृश्च उत्पन्न हो सकता है, अन्यथा नहीं। इससे जितना रहाश्च, भस्म, तुलसी, कमलाक्ष, घास, चन्द्रन आदि को कण्ठमें धारण करना है वह सब जङ्गली पशुवन मनुष्यका काम है। ऐसे वाममार्गी और शैव बहुत मिथ्याचारी, विरोधी और कर्त्तन्य कर्मके त्यागी होते हैं। इनमें जो कोई श्रेष्ठ पुरुष है वह इन बातोंका विश्वास न करक अच्छे कर्म करता हैं। जो रहाक्ष भस्म धारणते यमराजके दृत उत्ते हैं तो पुलिसके सिपाही भी उत्ते होंगे। जब रहाश्च भस्म ध रण करनेवालोंसे कुता, सिंह, सर्प, विच्छू, मक्सी और मच्छर आदि भी नहीं दरते तो न्यायाधीशके गण क्यां डरेंगे १

प्रश्त—वाममार्गी और शैव तो अच्छे तहीं परन्तु वैष्णव तो अच्छे हैं १

**उत्तर—यह भी वेदविरोधी होनेसे उनसे भी अधिक बुरे हैं।** 

प्रश्न—"नमस्ते रुद्र मन्यवं"। "वैष्णवमित"। "वामनाय च"। "गणानां त्वा गणपतिछं हवामहै"। "भगवती भूयाः"। "सूर्य अतमा जगतस्तस्थुषश्च"। इत्यादि वेद प्रमाणोंस शैवादि मत सिद्ध होत हैं, पुनः क्यों खण्डन करते हो !

खत्तर—इन वचनोंस शैवादि संप्रदाय सिद्ध नहीं होते व गेंकि "हद्र" परमेश्वर, प्राणादि वायु, जीव, अग्नि आदिका नाम हैं। जो क्रोधकर्ता हद्र अर्थात् दुष्टोंको इलानेवाले परमात्माको नमस्कार करना, प्राण और जठराग्निको अन्न देना, (नम इति अन्ननाम, निचं २ । ७), जो मङ्गलकारी सब संसारका अत्यन्त कल्याण करनेवाला है उस परमात्माको नमस्कार करना चाहिये। "शिवस्य परमेश्वरस्यायं भक्तः शिवः"। "विष्णोः परमात्मनोऽयं भक्तो वेष्णवः" "गणपतः सक्लजगत्सामिनोऽयं सेवको गाणपतः"। "भगवत्या वाण्या अयं सेवकः भागवलः" ∖सूर्यस्य चराचरात्मनोऽयं सेवकः सोरः"।

#### समुञ्जास] देवी-भागवतको आलोचना । ४०३

छम्ने चौड़े मनमाने लिले हैं। कोई उनसे पूछे कि उस देवीका शरीर कोर उस श्रीपुरका बनानेवाला और देवीके पिता माता कौन थे ? जो कहो कि देवी अनादि है तो जो संयोगजन्य वस्तु है वह अनादि कभी नहीं हो सकता। जो माता पुत्रके विवाह करनेमें डरे तो भाई बहिनके विवाहमें कौनसी अच्छी बात निकलती है ! जसी इस देवीभागवतमें महादेव, विष्णु और ब्रह्मादिकी क्षुद्रता और देवीकी बड़ाई लिखी है इसी प्रकार शिवपुराणमें देवी आदिकी बहुत क्षुद्रता लिखी है। अर्थात ये सब महादेवके दास और महादेव सबका ईश्वर है। जो रहाक अर्थात एक ब्रह्मके फलकी गोठली और राख धारण करनेसे मुक्ति मानते हैं तो राखमें लीटनेहारे गदहा आदि पशु और ब्रंचुची आदिके धारण करनेवाले भील कंजर आदि मुक्तिको जावें और सुअर, कुत्ते, गथा आदि राखमें लीटनेवालोंकी मुक्ति क्यों नहीं होती ?

प्रश्त—कालाग्निह्रोपनिषद्में अस्म लगानेका विधान लिखा है। वह क्या भूठा है। और "त्र्यायुषं जमदानेद" यजुर्वेद्वचन। इत्यादि वेदमन्त्रोंसे भी अस्म धारणका विधान और पुराणोंमें हरूकी आंखके अञ्चयत्ति जो वृक्ष हुआ उसीका नाम हर्द्राक्ष है। इसीलिये उसके धारणमें पुण्य लिखा है। एक भी हर्द्राक्ष धारण करे तो सब पापोंसे छूट खाको जाय। यमराज और नरकका हर न रहे?

वत्तर —कालागिनहर्रोपनिषद् किसी रखोड़िया मनुष्य अर्थात् राख धारण करनेवालेने बनाई है क्योंकि "यस्य प्रथमा रेखा सा भूलेंक" इत्यादि वचन [ उसमें ] अनर्थक हैं। जो प्रतिदिन हाथसे धनाई रेखा हैं वह भूलोक वा इसका वाचक कैसे हो सकते हैं? और जो "ज्यायुषं जमदग्नेः" इत्यादि मन्त्र हैं, वे भस्म वा त्रिपुण्डू धारणके बाची नहीं किन्तु "चक्षुर्वे जमदग्निः" शतपथ। हे परमेश्वर! मेरे मंत्रकी ज्योति ( त्रायुषम् ) तिगुणा अर्थान् तीनसौ वष्पयन्त रहे और में भी ऐसे धर्मक काम करंत कि जिससे दृष्टि नाश न हो । अखा यह किन्ती बड़ी मूर्खताकी बात है कि आंखके अश्रुपानसे भी वृक्ष

### समुक्लास] चक्रांकितः वैष्णवेंकी माया। ४०७ ओं नमो नारायणाय ॥१॥

यह इन्होंने साधारण मतुष्योंके लिये मन्त्र बना रक्खा है तथाः— श्रीमन्नारायणचरणं द्वारणं प्रपद्ये ॥ १ ॥ श्रीमते नारायणाय नमः॥२॥ श्रीमते रामानुजाय नमः ॥३॥

इत्यादि मन्त्र धनाढ्य और माननीयोंके लिये बना रक्ते हैं। देखिये यह भी एक दुकान ठहरी ! जैसा मुख वैसा निलक ! इन पांच संस्कारोंको चक्रांकित मुक्तिके हेतु मानते हैं। इन मन्त्रोंका अर्थ में नारायणको नमस्कार करता हूं।। १।।

और मैं छक्ष्मीयुक्त नारायणके चरणारविन्दके शरणको प्राप्त होता हूं ॥ और श्रीयुक्त नारायणको नमस्कार करता हूं ॥ २॥ अर्थात

े जो सोभायुक्त नारायण है उसको मेरा नमस्कार होये। जैसे ब.ममार्गी पांच मकार मानते हैं वैसे चक्रांकित पांच संस्कार म.नते हैं और अपने शांखचकसे दाग देनेके लिये जो वेदमन्त्रका प्रमाण रक्खा है, उसका इस प्रकारका पाठ और अर्थ है—

पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुगीत्राणि पर्येषि विश्वतः । अतसतन्ते तदामो अश्नुते श्वतास इ-द्वहन्तस्तत्समाञ्चत ॥१॥ तपोष्पवित्रं विततं दिव-स्पदे ॥२॥ ऋ० मं० ६ सू० ८३ मंत्र १ । २ ॥

हे ब्रह्माण्ड और वेदोंक पाउन करने वाले प्रभु सर्वसामध्येयुक्त सर्वशक्तिमान आपने अपनी व्याप्तिसे संसारके सब अवयवोंको व्याप्त कर रक्ष्या है। उस आपका जो व्यापक पवित्रस्वरूप है उस हो ब्रह्मचर्य, सत्यभाषण, शाम, दम, योगाभ्यास जितेन्द्रिय, सत्संगादि सम्वच्यांसे रहित जो अपरिपक आत्मा अन्तः करणयुक्त है वह उस हैं स्वरूपस्को प्राप्त नहीं होता और जो पूर्वोक्त वपसे शुद्ध हैं वे ही इस

तपका आचरण करते हुए उसंतेरे शुद्धखरूपको अच्छे प्रकार प्राप्त होते हैं ॥ १॥

जो प्रकाशस्वरूप परमेश्वरकी सृष्टिमें विस्तृत पवित्राचरणरूप तप करते हैं वे ही परमात्माको प्राप्त होनेमें योग्य होते हैं ।। २॥

अब विचार कीजिये कि रामानुजीयादि छोग इस मन्त्रसे "चक्रांकित" होना सिद्ध क्योंकर करते हैं १ भला कहिये वे विद्वान् थे वा अविद्वान् १ जो कहो कि विद्वान् थे तो ऐसा असम्भावित अर्थ इस मन्त्रका क्यों करते १ क्योंकि इस मन्त्रमें "अतप्ततन्ः" शब्द है किन्तु "अतप्ततम् जैकदेशः" [नहीं] पुनः "अतप्ततन्ः" यह नख सिखामप्यन्त समुदाय अर्थ है। इस प्रमाण करके अग्नि ही से तपाना चक्रांकित लोग स्वीकार करें तो अपने २ शरीरको भाड़में मोंकके सब शरीरको जलांवें तो भी इस मन्त्रके अर्थसे विकद्ध है क्योंकि इस मन्त्रमें सत्यभाषणादि पवित्र कर्म करना तप लिया है।।

ऋतं तपः सत्यं ( तपः श्रुतं तपः शान्तं ) तपो दमस्तपः स्वाध्यायस्तपः ॥ तैत्ति० प्र०१० अ०८॥

इत्यादि तप कहाता है अर्थात् (मृतं तपः) यथार्थ शुद्धभाव, सत्य मानना सत्य बोलना, सत्य करना, मनको अर्थममें न जाने देना, बाह्य इन्द्रियोंको अन्यायाचरणोंमें जानेसे रोकना अर्थात् शरीर इन्द्रिय और मनसे शुभ कर्मोंका आचरण करना, वेदादि सत्य विद्याओंका पढ़ना पढ़ाना, वेदानुसार आचरण करना आदि उत्तम धर्मयुक्त कर्मोंका नाम तप है। धानुको नपाके चमड़ीको जलाना तप नहीं कहाता। देखो, चक्रांकित लोग अपनेको बड़े वैद्याव मानते हैं परन्तु अपनी परम्परा और कुक्रमंकी ओर ध्यान नहीं देते कि प्रथम इनका मूलपुरुष "शठकोप" हुआ कि जो चक्रांकितों ही के प्रन्थों और भक्तमाल प्रन्थ जे! नाभा द्वमने बनाया है उन्में लिखा है—

विक्रीय शूर्पं विचचार योगी॥

## सहस्लास] जैनियोंसे मृतियूजा प्रारम्भ । ४७६

इत्यादि वचन चक्रांकितोंके प्रन्थोंमें लिखे हैं। शठकोप योगी सूर्पको बना, क्वेकर, विचरता था अर्थान् कंजर जातिमें उत्पन्न हुआ था। जब उसने ब्राह्मणोंसे पढ़ता वा सुतना चाहा होगा तब ब्राह्मणींने तिरस्कार किया होगा। उसने ब्राह्मणोंके विरुद्ध सम्प्रदाय ति क्रक चक्रांकित आदि शास्त्रविरुद्ध मनमानी बातें चलाई होंगी। उसका चेळा "मुनिवाहन" जो कि चाण्डाल वर्णामें उत्पन्न हुआ था। उसका चेला "यावनाचार्या" जो कि यवनकुछोत्पन्न था जिसका नाम बदलके कोई २ "यामुनाचार्य" भी कहते हैं। उनके पश्चान "रामानुज" ब्राह्मणकुरुमें **उत्पन्न होकर चक्रांकित हुआ। उसके पूर्व कुछ भाषाके प्रन्थ बनाये** थे। रामानुजने कुछ संस्कृत पढके संस्कृतमें श्लोकबद्ध प्रनथ और शारीरिक सूत्र और उपनिषदोंकी टीका शङ्कराचार्यकी टीकासे विरुद्ध बनाई। और शङ्कराचार्यकी बहुतसी निन्दा की। जैसा शङ्करा-चार्यका मत है कि अद्वेर अर्थान् जीव ब्रह्म एक ही हैं दूसरी कोई वस्तु बास्तविक नहीं, जगत् प्रपंच, सब मिथ्या मायारूप अनित्य है। इससे विरुद्ध रामानुजका जीव ब्रह्म और माया तीनों नित्य हैं यहां शक्करा-चार्यका मत ब्रह्मसे अतिरिक्त जीव और कारण वस्तुका न मानना **अच्छा नहीं । और** रामानु जका इस अंशमें, जो कि विशिष्टाद्वेत जीव **और मायासहित परमेश्वर एक है यह तीनका मानना और अद्वेतका** कहना संवंधा व्यर्थ है और सर्वथा ईश्वरके आधीन परतन्त्र जीवको मानना, कण्ठी, तिलक, माला, मृर्तिपूजनादि पाखण्ड मत चलाने आदि बुरी बार्ते चक्रांकित आदिमें है। जैसे चक्रांकित आदि वेदविरोधी हैं वैसे शंकराचार्यके मतके नहीं।

प्रश्न—मृतिंपूजा कहांसे चळी ? उत्तर—जैनियोंसे। प्रश्न—जैनियोंने कहांसे चळाई ?

्र **इत्तर—अ**पनी मूर्खतासे । प्रश्न—जैनी छोग कड्ते हैं कि शान्त ध्यानावस्थित **बेठी हुई**  मूर्ति देखके अपने जीवका भी शुभ परिणाम वैसा ही होता है।

जतर—जीव चेतन और मूर्ति जड़। क्या मूर्तिके सदश जीव भी जड़ होजायगा १ यह मूर्तिपूजा केवल पाखण्ड मत है, जैनियोंने चलाई है। इसलिए इनका खण्डन १२ वें समुक्षासमें करेंगे।

प्रश्त-शाक्त आदिने मूर्तियोंमें जैनियोंका अनुकरण नहीं किया है क्योंकि जैनियोंकी मूर्तियोंके सदश वैष्णवादिकी मूर्तियां नहीं हैं।

**उत्तर—हां यह** ठीक है। जो जैनियोंके तुल्य बनाते तो जैनमतमें मिल जाते । इसलिये जैनोंकी मूर्त्तियोंसे विरुद्ध बनाई क्योंकि जैनोंसे विरोध करना इनका काम और इनसे विरोध करना मुख्य उनका काम था। जैसे जैनोंने मृतियां नङ्गी, ध्यानावस्थित और विरक्त मनुष्यके समान बनाई हैं, उनसे विरुद्ध वैष्णवादिने यथेष्ट शृङ्कारित स्त्रीके सहित रङ्ग राग भोग विषयासक्ति सहिताकार खड़ी और वैठी हुई बनाई हैं। जैनी लोग बहुतसे शंख घन्टा घरियाल आदि बाजे नहीं बजाते। ये छोग बड़ा कोलाहल करते हैं तव तो ऐसी लीलाके रचनेसे वैष्णवादि सम्प्रदायी पोपोंके चेले जैनियोंके जालसे बचके इनकी ळीळामें आ फँसे और बहुतसे ज्यासादि महर्षियों के नामसे मनमानी असम्भव गाथायुक्त प्रन्थ बनाये । उनका नाम "पुराण" रख कर कथा भी सुनने लगे। और फिर ऐसी २ विचित्र माया रचने लगे कि पाषाणकी मूर्तियां बनाकर गुप्त कहीं पहाड़ वा जङ्गलादिमें धर आये वा भूमिमें गाड़ दी। पश्चात् अपने चेलोंमें प्रसिद्ध किया कि मुमको रात्रिको स्वप्नमें महादेव, पार्वती, राधा, कृष्ण, सीता, राम वा स्थ्रमी-नारायण और भैरव, हनुमान आदिने कहा है कि हम अमुक २ ठिकाने हैं। हमको वहांसे ला, मन्दिरमें स्थापना कर और तुही हमारा पुजारी होवे तो हम मनवांछित फल देवें। जब आंखके अन्धे भौर गांठके पूरे लोगोंने पोपजीकी लीखा सुनी तब तो सच ही मानली। ध्योर उनसे पूछा कि ऐसी वह मूर्ति कहा पर है ? तब तो ने पोपजी बोले कि अमुक पहाड़ वा जङ्गाओं है चली मेरे साथ दिसला दूं।

तव मो वे अन्धे उस घूर्तके साथ चलके वहां पहुंच कर देखा। आध्यं होकर उस पोरके परामे गिरकर कहा कि आपके ऊपर इस देवताकी बड़ी ही कृपा है अंब आप ले चिलये और हम मन्दिर बनवा देवेंगे। उसमें इस देवताकी स्थापना कर आप ही पूजा करना। और हम लोग भी इस प्रतापी देवताके दर्शन पर्सन करके मनोवां लित फल पावेंगे। इसी प्रकार जब एकने लीला रची तब तो उसको देख सब पोप लोगोंने अपनी जीविकार्थ लल कपटसे मूर्तियां स्थापन की।

प्रभ—परमेश्वर निराकार है, वह ध्यानमें नहीं आ सकता, इस-लिये अवश्य मूर्ति होनी चाहिये। भला जो कुछ भी नहीं करे तो मूर्ति के सम्मुख जा, हाथ जोड़ परमेश्वरका स्मरण करते और नाम लेते हैं। इसमे क्या हानि है ?

उत्तर--जब परमेश्वर निराकार, सर्वव्यापक है तब उसकी मूर्ति ही नहीं बन सकती और जो मूर्तिके दर्शनमात्रसे परमेश्वरका स्मरण होवे तो परमेश्वरके बनाये पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति आदि अनेक परार्थ, जिसमें ईश्वरने अद्भुत रचना की है क्या ऐसी रचनायुक्त पृथिबी पहाड़ आदि परमेश्वर रचित महामूर्तियां कि जिन पड़ाड़ आदिसे मनुष्यकृत मृतिया बनती हैं उनको देखकर परमेश्वरका स्मरण नहीं हो सकता ? जो तुम कहते हो कि मूर्तिके देखनेसे परमे-श्वरका स्मरण होता है यह तुम्हारा कथन सर्वथा मिथ्या है। जा वह मूर्ति सामने न होगी तो परमेश्वरके स्मरण न होनेसे मनुष्य एकान्त पाकर चोरी जारी आदि कुकर्म करनेमें प्रवृत्त भी हो सकता है। क्योंकि वह जानता है कि इस समय यहां मुक्ते कोई नहीं देखता। इसिंछिये वह अनर्थ करे विना नहीं चूकता। इत्यादि अनेक दोष पाषा-णादि मूर्ति हा करनेसे सिद्ध होते हैं। अब देखिये ! जो पाषाणादि मूर्तियोंका न मानकर सर्वदा सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, न्यायकारी पर-मात्माको सर्वत्र जानता और मानता है वह पुरुष सर्वज्ञ, सर्वदा पर-मेश्वरको सबके बुरे भले कर्मौका द्रष्टा जानकर एक क्षणमात्र भी

एकाद्य

परमात्मासे अपनेको पृथक् न जानके कुकर्म करना तो कहां रहा किन्त मनमें कुचेश भी नहीं कर सकता। क्योंकि वह जानता है, जो मैं मन, वचन और कर्मसे भी कुछ बुरा काम करूंगा तो इस अन्तर्यामीके न्यायसे विना दण्ड पाये कडापि न बच्चंगा। और नामस्मरणमात्रसे कुछ भी फल नहीं होता। जैसा कि मिशरी २ कहनेसे मुंह मीठा और नीव २ कहनेसे करूवा नहीं होता किन्तु जीभसे चाखने ही से मीठा वा कडवापन जाना जाता है।

प्रश्न-क्या नाम लेना सर्वथा मिथ्या है जो सर्वत्र पुराणोंमें नामस्मरणका वडा माहात्म्य लिखा है १

उत्तर-न.म लेनेकी तुम्हारी रीति उत्तम नहीं । जिस प्रकार तुम नामस्मरण करते हो वह रीति क्रूठी है।

प्रश्न-हमारी कैसी रीति है ?

<del>चत्तर-वेदविरुद्ध</del> ।

प्रश्न-भला अब आप हमको वेदोक्त नामस्मरणकी रीति बतलाइये १

उत्तर-नामस्मरण इस प्रकार करना चाहिये। जैसे "न्यायकारी" ईश्वरका एक नाम है इस नामसे इसका अर्थ है कि जैसे पक्षपातरहित होकर परमात्मा सबका यथावन न्याय करता है वैसे उसको प्रहण कर न्याययुक्त व्यवहार सर्वेदा करना, अन्याय कभी न करना। इस प्रकार एक नामसे भी मनुष्यका कल्याण हो सकता है।

प्रश्न- हम भी जानते हैं कि परमेश्वर निराकार है परन्तु उसने शिव, विष्णु, गणेश, सूर्य और देवी आदिके शरीर धारण करके राम, कृष्णादि अवतार लियं। इससे उसकी मृति बनती है। क्या यह भी बात भूठी है ?

उत्तर - हां २ भूठी। क्योंकि "अज एकपात्" "अकायम्" इत्यादि विशेषणोंसे परमेश्वरको जन्म मरण और शरीर धारणरहित वैदोंमें कहा है तथा युक्तिसे भी परमेश्वरका अवतार कभी नहीं हो सकता। क्योंकि जो आकाशवन् सर्वत्र व्यापक अनन्त और सुख, दुःख, दृश्यादि गुणरहित है वह एक छोटेसे वीर्य्य, गर्भाशय धीर शरीरमें क्योंकर आसकता है ? आता जाता वह है कि जो एकदेशीय हो। और जो अचल, अदृश्य, जिसके विना एक परमाणु भी खाळी नहीं है, उसका अवतार कहना जानो बन्ध्याके पुत्रका विवाह कर उसके पौत्रके दर्शन करनेकी बात कहना है।

प्रश्न—जब परमेश्वर व्यापक है तो मूर्तिमें भी है। पुनः **चाहे** किसी पर्दार्थमें भावना करके पूजा करना अच्छा क्यों नहीं ? देखों—

## न काष्ठे विद्यते देवो न पाषाणे न मृण्मये। भावे हि विद्यते देवस्तस्माङ्गावो हि कारणम्॥

परमेश्वर देव न काष्ठ, न पाषाण, न मृत्तिकासे बनाये पदार्थोंमें है किन्तु परमेश्वर तो भावमें विद्यमान है। जहां भाव करें वहां ही परमेश्वर सिद्ध होता है।

उत्तर—जब परमेश्वर संवत्र व्यापक है तो किसी एक वस्तुमें परमेश्वरकी भावना करना अन्यत्र न करना यह ऐसी बात है कि जिसी चक्रवर्ती राजाको सब राज्यकी सत्तासे छुड़ाके एक छोटीसी क्षोंपड़ीका स्वामी मानना [ देखो ! यह ] कितना बड़ा अपमान है ? वैसा तुम परमेश्वरका भी अपमान करते हो । जब व्यापक मानते हो बाटिकामेंसे पुष्प पत्र तोड़के क्यों चढ़ाते ? चन्दन धिसके क्यों खगाते ? धूपको जलाके क्यों देते ? घन्टा, घरियाल, मांज, पस्ता-लोंको लक्ष्यों क्टना पीटना क्यों करते हो ? तुम्हारे हाथोंमें है, क्यों जोड़ते ? शिरमें है, क्यों शिर नमाते ? अन्न, जलादिमें है, क्यों नैवेद्य धरते ? जलमें है, स्नान क्यों कराते ? क्योंक उन सब पदा-धीमें परमातमा व्यापक है और तुम व्यापककी पूजा करते हो वा व्याप्यकी ? जो व्यापककी करते हो तो पाषाण लक्ष्यों अरते हो वा व्याप्यकी ? जो व्यापककी करते हो तो पाषाण लक्ष्यों करते हो तो इम

परमेश्वरकी पूजा करते हैं, ऐसा भूठ क्यों बोळते हो १ इम पाषा-णादिके पुजारी हैं, ऐसा सत्य क्यों नहीं बोळते १

अब किहये "भाव" सचा है वा मुठा १ जो कहो सचा है तो पुम्हारे भावके आधीन होकर परमेश्वर बद्ध हो जायगा और तुम मृत्तिकामें सुवर्ण रजतादि, पाषाणमें हीरा पन्ना आदि, समुद्रफेनमें मोती, जलमें घृत, दुग्ध, दिध आदि और घूलिमें मैदा, शकर आदिकी भावना करके उनको वैसे क्यों नहीं बनाते हो १ तुम लोग दुःखकी भावना कभी नहीं करते, वह क्यों होता १ और सुखकी भावना सदैव करते हो, वह क्यों नहीं प्राप्त होता १ अन्या पुरुष नेजकी भावना करके क्यों नहीं देखता १ मरनेकी भावना नहीं करते, क्यों मरजाते हो १ इसलिये तुम्हारी भावना सच्ची नहीं। क्योंकि जैसेमें वैसी करनेका नाम भावना कहते हैं। जैसे अगिनमें अगिन, जलमें जल जानना और जलमें अगिन, अगिनमें जल समम्हना अभावना है। क्योंकि जैसेको वैसा जानना ज्ञान और अन्यथा जानना अज्ञान है। इसलिये तुम अभावनाको भावना और अग्नावना कहते हो।

प्रश्न--अजी जबतक वेदमन्त्रोंसे आवाहन नहीं करते तबतक देवता नहीं आता और आवाहन करनेसे मृट आता और विसंजन करनेसे चला जाता है।

उत्तर — जो मन्त्रको पढ़कर आवाहन करनेसे देवता आ जाता है तो मूर्ति चेवन क्यों नहीं हो जाती ? और विसंजन करनेसे चला क्यों नहीं जाता ? और वह कहांसे आता और कहां जाता है ? सुनो अन्धो ! पूर्ण परमात्मा न आता और न जाता है । जो तुम मन्त्रबलसे परमेश्वरको बुलाते हो तो उन्हीं मन्त्रोंसे अपने मरे हुए पुत्रके शरीरमें जीवको क्यों नहीं बुला लेते ? और शत्रुके शरीरमें जीवात्माका विसर्जन करके क्यों नहीं मार सकते । सुनो भाई, भोले भाले लोगो ! ये पोपजी तुमको ठगकर अपना प्रयोजन सिद्ध करते हैं । वेदोंमें पाषाणादि मूर्तिपूजा और परमेश्वरके आवाहन विसर्जन करने का एक अक्षर भी तहीं है।

पश्चमाणा इहागच्छन्तु सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा । आत्मेहागच्छतु सुखं चिरं तिष्ठतु स्वाहा । इन्द्रि-याणीहागच्छन्तु सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा ॥

इत्यादि वेदमन्त्र ह क्यों कहते हो नहीं हैं?

उत्तर—अरे भाई! बुद्धिको थोड़ीसी तो अपने काममें छाओ। ये सब कपोछ कल्पित वाममागियोंकी वेदविरुद्ध तन्त्रप्रन्थोंकी पोप-रचित पंक्तियां हैं। वेदवचन नहीं।

प्रभ-पया तन्त्र मूठा है ?

उत्तर—हां, सर्वथा मूठा हैं। जैसे आवाहन, प्राणप्रतिष्ठादि पा-षाणादि मूर्ति विषयक वेदोंमें एक मन्त्र भी नहीं। वैसे "स्नानं सर्म्य-यामि" इत्यादि वचन भी नहीं। अर्थात् इतना भी नहीं है कि "पाषा-णादि मूर्ति रचयित्वा मन्दिरेषु संस्थाप्य गन्धि दिभिर्ष्वये।" अर्थात् पाषाणकी मूर्ति बना, मन्दिरोंमें स्थापन कर, चन्दन अञ्चतादिसे पूजे। ऐसा लेशमात्र भी नहीं।

प्रश्न—जो वेदोंमें विधि नहीं तो खण्डन भी नहीं है। सौर जो खण्डन है तो "प्राप्तों सत्यां निषेधः" मूर्तिके होने हीसे खण्डन हो सकता है।

उत्तर—विधि तो नहीं परन्तु परमेश्वरके स्थानमें किसी अन्य पदांधको पूजनीय न मानना और सर्वथा निषेध किया है। क्या अपूर्वः विधि नहीं होता ? सुनो यह है—

अन्धन्तमः प्रविद्यन्ति येऽसम्भूतिसुपासते । ततो भूय इव ते तमो य उ संभूत्याणं रताः ॥१॥ यज्ञः अ० ४०। मं० ६॥ न तस्य प्रतिमा अस्ति ॥ [२]

यजु॰ ॥ अ॰ ३२ । मं० ३ ॥

यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥१॥
यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम् ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥२॥
यचक्षुषा न पश्यति येन चक्षूषि पश्यन्ति ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥३॥
यच्छोत्रेण न शृणोति येन श्रोत्रमिद्णं श्रुतम् ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥४॥
यत्प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्रणीयते ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥४॥

केनोपनि० ॥

जो असंभूति अर्थात् अनुत्पन्न अनादि प्रकृति कारणकी ब्रह्मके स्थानमें उपासना करते हैं व अन्धकार अर्थात् अज्ञान और दुःखसागरमें हुवते हैं। और संभूति जो कारणसे उत्पन्न हुए कार्यरूप पृथिवी आदि भूत पाषाण और वृक्षादि अवयव और मनुष्यादिके शरीरकी उपासना ब्रह्मके स्थानमें करते हैं, वे उस अन्धकारसे भी अधिक अन्धकार अर्थात् महामूर्ख चिरकाल घोर दुःखरूप नरकमें गिरके महाक्लेश भोगते हैं।। १।।

जो सब जगत्में व्यापक है उस निराकार परमात्माकी प्रतिमा परिमाण सादृश्य वा मूर्ति नहीं है ॥ २ ॥

जो वाणीकी इयत्ता अर्थात् यह जल है लीजिये, वैसा विषय नहीं। जोर जिसके धारण और सत्तासे वाणीकी प्रवृत्ति होती हैं उसीकी इस जान और उपासना कर और जो उससे भिन्न है वह उपासनीय नहीं।। १।। जो मनसे "इयता" करके मननमें नहीं आता, जो मनको जानता है, उसीको ब्रह्म तू जान और उसीकी उपासना कर जो उससे भिन्न जीव और अन्तःकरण है उसकी उपासना ब्रह्मके स्थानमें मत कर ॥ २॥

जो आंखसे नहीं दीख पड़ता और जिससे सब आंखें देखती हैं हसीको तू ब्रह्म जान और उसीकी उपासना कर। और जो उससे भिन्न सूर्य, विद्युत् और अग्नि आदि जड़ पदार्थ हैं उनकी हपासना मत कर।। ३।।

जो श्रोत्रसं नहीं सुना जाता और जिससे श्रोत्र सुनता है इसीको तृ ब्रह्म जान और उसकी उपासना कर। और उससे भिन्न शब्दा-दिकी उपासना उसके स्थानमें मत कर।। ४।।

जो प्राणोंसे चल्लायमान नहीं होता, जिससे प्राण गमनको प्राप्त होता है उसी ब्रह्मको तु जान और उसकी उपासना कर। जो यह उससे भिन्न वायु है उसकी उपासना मत कर।। १।।

इत्यादि बहुतसे निषेध हैं निषेध प्राप्त और अप्राप्तका भी होता है। "प्राप्त" का जैसे कोई कहीं बैठा हो उसको वहांसे उठा देना। "अप्राप्त" का जैसे हे पुत्र! सू चोरी कभी मत करना, कुवेमें मत गिरना। दुष्टों का संग मत करना। विद्याहीन मत रहना। इत्यादि अप्राप्तका भी निषेध होता है। सो मनुष्योंके झानमें अप्राप्त, परमेश्वरके झानमें प्राप्त का निषेध किया है। इसल्यिं पाषाणादि मूर्तिपूजा अत्यन्त निषिद्ध है।

प्रश्न-मूर्तिपूजामें पुण्य नहीं तो पाप तो नहीं है १

उत्तर—कर्म हो ही प्रकारके होते हैं—विहित—जो कर्तव्यतासे देदमें सत्यभाषणादि प्रतिपादित हैं। दूसरे निषिद्ध—जो अकर्तव्यतासे सिध्याभाषणादि वेदमें निषिद्ध हैं। जैसे विहितका अनुष्ठन करना वह धर्म, इसका स करना अधर्म है वैसे ही निषिद्ध कर्मका करना अधर्म और न करना धर्म है। जब वेदोंसे निषिद्ध मूर्तिपूजादि कर्मोको तुम करते हो तो पापी क्यों नहीं ?

1

प्रश्न—देखो ! वेद अनादि हैं । उस समय मूर्तिका क्या काम था ? क्योंकि पहिले तो देवता प्रत्यक्ष थे । यह रीति तो पीछेसे तंत्र और पुराणोंसे चली है । जब मनुष्योंका ज्ञान और सामर्थ्य न्यून हो गया तो परमेश्वरको ध्यानमें नहीं लासके, और मूर्तिका ध्यान तो कर सकते हैं, इस कारण अज्ञानियोंके लिये मूर्तिपूजा है । क्योंकि सीढ़ी २ से चढ़े तो भवन पर पहुंच जाय । पहिली सीढ़ी छोड़कर ऊपर जाना बाहे तो नहीं जा सकता इसल्यि मूर्ति प्रथम सीढ़ी है । इसको पूजते २ जब ज्ञान होगा और अन्तःकरण पिवत्र होगा तब परमात्माका ध्यान कर सकेगा जैसे लक्ष्यका मारनेवाला प्रथम स्थूल लक्ष्यमें तीर, गोओ वा गोला आदि मारता २ पश्चात् सूक्ष्ममें भी निशाना मार सकता है । जैसे लक्ष्यका पुना करता २ पुनः सुक्ष्म ब्रह्मको भी प्राप्त होता है । जैसे लक्ष्यका गुड़ियोंका खेल तबतक करती हैं कि जबतक सच्चे पितको प्राप्त नहीं होतीं इत्यादि प्रकारसे मूर्तिपूजा करना दुष्ट काम नहीं ।

' उत्तर—जब वेद्विहित धर्म और वेद्विरुद्वाचरणमें अधर्म हैतो पुनः तुम्हारे कहनेसे भी मूर्त्तिपूजा करना अधर्म ठहरा। जो २ प्रन्थ वेदसे विरुद्ध हैं उन २ का प्रमाण करना जानो नास्तिक होना है। सुनो—

नास्तिको वेदनिन्दकः ॥ १ ॥ [ मनु० २ । ११ ] या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः । सर्वास्ता निष्फलाः प्रत्य तमोनिष्ठा हिताः स्मृताः २ उत्पयन्ते च्यवन्ते च यान्यतोन्यानि कानिचित्। तान्यवीकालिकतया निष्फलान्यमृतानि च ॥३॥ मनु० ब० १२ ॥ [ ६४ । ६६ ]

मनुजी कहते हैं कि जो वेदोंकी निन्दा अर्थात् अपमान, त्याग,

# सम्रुक्लास] मूर्त्तिपूजासे उपासना नहीं। ४१६

विरुद्धाचरण करता है वह नास्तिक कहाता है।। १।।

जो प्रनथ वेदवाह्य कुत्सित पुरुषोंके बनाये संसारको दुःखसागरमें हुवानेवाले हैं वे सब निष्फल, असत्य, अन्धकाररूप, इस लोक और परलोकमें दुःखदायक हैं ॥ २ ॥

जो इन वेदोंसे विरुद्ध प्रन्थ उत्पन्न होते हैं वे आधुनिक होनेसे सीव्र नष्ट होजाते हैं। उनका मानना निष्फल और मूठा है।। ३।।

इसी प्रकार ब्रह्मासे लेकर जैमिनि महर्षिपर्यन्तका मत है कि वेद-विरुद्धको न मानना किन्तु वेदानुकूछ ही का आचरण करना धर्म है। क्यों ? वेद सत्य अर्थका प्रतिपादक है। इससे विरुद्ध जितने तन्त्र भीर पुराण हैं वेदविरुद्ध होनेसे मूठे हैं। जो कि वेदसे विरुद्ध पुस्तकें हैं, इनमें कही हुई मूर्त्तियूजा भी अधर्मरूप है। मनुष्योंक ज्ञान जड़की पूजासे नहीं बढ़ सकता किन्तु जो कुछ ज्ञान है वह भी नष्ट होजाता है। इसिंख्ये ज्ञानियोंकी सेवा सङ्गते ज्ञान बढ़ता है, पाषाणादिसे नहीं। क्या पाषाणादि मूर्त्तिपूजासे परमेश्वरको ध्यानमें कभी छ। सकता है १ नहीं २ मूर्तिपूजा सीढ़ी नहीं, किन्तु एक वड़ी खाई है जिसमें गिरकर चकनाचूर होजाता है। पुनः उस खाईसे निकछ नहीं सकता किन्तु इसीमें मर जाता है। हां, छोटे धार्मिक विद्वानोंसे ले कर परम विद्वान योगियोंके संगसे सद्विद्या और सत्यभाषणादि परमेश्वरकी प्राप्तिकी सीढ़ियां हैं। जैसे ऊपर घरमें जानेकी निःश्रेणी होती है किन्तु मूर्ति-पूजा करते २ ज्ञानी तो कोई न हुआ प्रत्युत सब सूर्तिपूजक अज्ञानी रहकर मनुष्यजन्म व्यर्थ खोके बहुत २ से मरगये और जो अब हैं वा होंगे वे भी मनुष्यजनमके धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी प्राप्तिरूप फलोंसे विमुख होकर निर्श्य नष्ट होजायंगे । मूर्त्तिपूजा ब्रह्मकी प्राप्तिमें स्थूल लक्ष्यबत नहीं किन्तु धार्मिक विद्वान और सृष्टिविद्या है। इसको बढ़ाता २ , ब्रह्मको भी पाता है। और मूर्त्ति गुड़ियोंके खेळवत् , नहीं किन्तु प्रथम अक्षराभ्यास सुशिक्षाका होना गुड़ियोंके खेळवत् ब्रह्मकी बाष्त्रिका साधन है। सुनिये। जब अच्छी शिक्षा और विद्याको प्राप्त

होगा तब सच्चे खामी परमात्माको भी प्राप्त हो जायगा।

प्रश्न-साकारमें मन स्थिर होता और निराकारमें स्थिर होना कठिन है, इसलिये मूर्त्तिपूजा रहना चाहिये।

उत्तर-साकारमें मन स्थिर कभी नहीं हो सकता। क्योंकि इसको मन मृद्र प्रहुण करके उसीके एक २ अवयवमें घूमता और दसरेमें दौड जाता है। और निराकार परमात्माके महणमें यावत्सा-मर्थ्य मन अत्यन्त दौडता है तो भी अन्त नहीं पाता। निरवयव होनेसे चश्वल भी नहीं रहता किन्तु उसीके गुण कर्म स्वभावका विचार करता २ अ। नन्दमें मान होकर स्थिर होजाता है। और जो साकारमें स्थित होता तो सब जगतुका मन स्थिर होजाता क्योंकि जगत्में मनुष्य, स्त्री, पुत्र, धन, मित्र आदि साकारमें फँसा रहता है, परन्तु किसीका मन स्थिर नहीं होता जबतक निराकारमें न लगावें, क्यों कि निरवयव होनेसे उसमें मन स्थिर हो जाता है। इसलिये मुर्ति।जन करना अधर्म है।

दुसरा—उसमें क्रोडो रूपये मन्दिरोंभें व्यय करके दरिद्र होते हैं

भौर उसमें प्रमाद होता है।

तीसरा-स्त्री पुरुषोंका मन्दिरोंमें मेला होनेसे व्यभिचार, लडाई बखेडा और रोगादि उत्पन्न होते हैं।

चौथा—उसीको धर्म अर्थ, काम और मुक्तिका साधन मानके

पुरुषार्थरहित होऋर मनुष्यजनम व्यर्थ गमाता है।

पांचवां—नाना प्रकारकी विरुद्धखरूप नाम चरित्रयुक्त मूर्तियोंके पुजारियोंका ऐक्यमत नष्ट होके विरुद्धमतमें चलकर आपसेमें फूट बढ़ाके देशका नाश करते हैं।

छठा-उसीके भरोसेमें शत्रका पराजय और अपना विजय मान बैठे रहते हैं। उनका पराजय होकर राज्य, स्वातन्त्र्य और धनका सुख उनके रातुओं के स्वाधीन होता है और आप पराधीन भठियारेके टट्टू और कुम्हारके गदहेके समान शत्रुओं के बशमें होकर अनेक विध

# समुक्लास] मूर्त्तिपूजासे मन स्थिर नहीं। ४२१

सातवां — जब कोई किसीको कहे कि हम तेरे बैठनेके आसन वा नाम पर पत्थर धरें तो जैसे वह इस पर क्रोधित होकर मारता वा गाळी प्रदान देता है वैसे ही जो परमेश्वरके डपासनाके स्थान हृद्य और नाम पर पाषाणादि मूर्तियां धरते हैं उन तुष्टबुद्धिवाछोंका सत्या-नाश परमेश्वर क्यों न करे।

आठवा — भ्रान्त होकर मन्दिर २ देशदेशान्तरमें धूमते २ दुःख पाते, धर्म, संसार और परमार्थका काम नष्ट करते, चोर आदिसे पीड़ित होते, ठगोंसे ठगाते रहते हैं।

नववां—दुष्ट पूजारीयोंको धन देते हैं वे उस घनको वेश्या, परस्नी-गमन, मद्यः मांसाहार, लड़ाई बखेड़ोंमें व्यय करते है जिससे दाताका सुखका मूळ नष्ट होकर दुःख होता है।

दशवां—माता पिता अ।दि माननीयोंका अपमान कर पापाणादि मूर्तियोंका मान करके कृतन्न होजाते हैं।

े ग्यारहवां—उन मूर्नियोंको कोई तोड़ डालता वा चोर लेजाना है तब हा हा करके रोते रहते हैं।

बारहवां—पूजारी परस्त्रियों के सङ्ग और पूजारित परपुरुषों के सङ्गसे प्रायः दृषित होकर स्त्री पुरुषके प्रेमके आनन्दको हाथसे स्त्री बैठते हैं।

तेरहवां—स्वामी सेवककी आज्ञाका पालन यथावत् न होनेसे परस्पर विरुद्धाभाव होकर नष्ट भ्रष्ट होजाते हैं।

चौदहवां — जड़का ध्यान करनेवालेका आत्मा भी जड़ बुद्धि होजाता है क्योंकि ध्येयका जड़त्व धर्म अन्तःकरण द्वारा आत्मामें अवश्य आता है।

पन्द्रहवां—परमेश्वरने सुगन्धियुक्त पुष्पिदि पदार्थ वायु जलके दुर्गन्थ नित्रारण और आरोग्यनाके लिये बनाये हैं, उनकी पुजारीजी होड्लाङ् कर न जाने उन पुष्पोंकी किनने दिन तक सुगन्धि आकाशमें 🔊

[एकाद्दा

चढ़कर वायु जलकी शुद्धि करता और पूर्ण सुगन्धिके समय तक उसका सुगन्ध होता, उसका नाश मध्यमें ही कर देते हैं। पुष्पादि कीचके साथ मिल सड़कर उल्ला दुर्गन्ध उत्पन्न करते हैं। क्या पर-मात्माने पत्थर पर चड़ानेके लिये पुष्पादि सुगन्धयुक्त पदार्थ रचे हैं?

सोलहवां—पत्थर पर चढ़े हुए पुष्प चन्दन और अक्षत आदि सबका जल और मृत्तिकाके संयोग होनेसे मोरी वा कुण्डमें आकर सड़के इतना उससे दुर्गन्थ आकाशमें चढ़ता है कि जितना मनुष्यके मलका और सहसों जीव उसमें पड़ते उसीमें मरते और सड़ते हैं। ऐसे २ अनेक मृतिंपूजाके करनेमें दोष आते हैं। इसलिये सर्वथा पाषा-णादि मृतिंपूजा सज्जन लोगोंको त्यक्तव्य है। और जिन्होंने पाषाण-मय मृतिंकी पूजाकी है, करते हैं और करेंगे, वे पूर्वोक्त दोषोंसे न बचे, न बचते हैं, और न बचेंगे॥

प्रश्न—िकसी प्रकारकी मूर्तिपूजा करनी करानी नहीं और जो अपने आर्यावर्त्तमें पञ्चदेव पूजा शब्द प्राचीन परम्परासे चला आता है उसका यही पञ्चायतनपूजा जो कि शिव, विष्णु, अम्बिका, गणेश और सूर्य्यकी मूर्ति बनाकर पूजते हैं यह पंचायतनपूजा है वा नहीं ?

उत्तर—िकसी प्रकारकी मूर्तिपूजा न करना किन्तु "मूर्तिमान" जो नीचे कहेंगे उनकी पूजा अर्थात् सत्कार करना चाहिये। वह पंचदेवपूजा, पंचायननपूजा शब्द बहुत अच्छा अर्थवाला है परन्तु विद्याहीन मूर्होंने उसके उत्तम अर्थको छोड़कर निक्ष्ट अर्थ पकड़ छिया। जो आजकल शिवादि पांचोंकी मूर्तियां बनाकर पूजते हैं उसका खण्डन तो अभी कर चुके हैं। यह जो सच्ची पंचायतन वेदोक्त और वेदानुकूलोक्त देवपूजा और मूर्तियूजा है, सुनो—

मा नो वधीः पितरं मोत मातरम्॥१॥ यज्ञः [१६।१५] आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते ॥२॥ अर्थवं०॥ [कां० ११। व० ४। मं० १७] अतिथिर्ग्र हानागच्छेत् ॥३॥ अथर्व० [१५।१३।६] अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत ॥४॥ ऋग्वेदे ॥ त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म ब-दिष्यामि ॥५॥ तैत्तिरीयो० [वल्ली० १ । अनु० १] कतम एको देव इति स ब्रह्म त्यदित्याक्षते ॥६॥

शतपथः॥ कः १४। प्रपाः है। ब्राह्मः छ। कं १०॥ मातृदेवो भव पितृदेवो भव आचाय्यदेवो भव अतिथिदेवो भव॥ तैत्तिरीयो० [१।११] पितृभिर्भातृभिश्चैताः पितृभिर्देवरैस्तथा।

पूज्या भूषियतव्यास्च बहुकल्याणमीप्सुभिः ॥८॥ मनुष् अ०३।४४॥

#### पूज्यो देववत्पति: ॥६॥ मनुस्मृतौ ॥

प्रथम माता मूर्तिमती पूजनीय देवता, अर्थात् सन्तानोंको तन मन धनसे सेवा करके माताको प्रसन्त रखना हिंसा अर्थात् ताइना कभी न करना। दूसरा पिता सत्कत्तव्य देव। उसकी भी माताके समान सेवा करनी॥ १॥

तीसरा आचार्य जो विद्याका देनेवाळा है उसकी तन मन धनसे सेवा करनी ॥ २ ॥

चौथा अतिथि जो विद्वान, धार्मिक, निष्कपटी, सबकी उन्नति चाहने बाला, जगत्में भ्रमण करता हुआ, सत्य उपदेशसे सबको सुखी करता है उसकी सेवा करें !! ३ !!

पांचवां स्त्री के लिये पति और पुरुषके लिये परनी पूजनीय है। ा े वे पांच सूर्तिमान देव जिनके सङ्ग्रसे मनुष्यदेहकी उत्पत्तिः, पालन, सत्यशिक्षा, विद्या और सत्योपदेशकी प्राप्ति होती है। ये ही परमे- श्वरको प्राप्ति होनेकी सीढ़ियाँ हैं। इनकी सेवा न करके जो पापा-णादि मूर्ति पूजते हैं वे अतीव पामर नरकगामी हैं!

प्रश्त-माता पिता आदिकी सेवा करें और मूर्तिपूजा भी करें

तब तो कोई दोष नहीं ?

उत्तर-पाषाणादि मूर्तिपूजा तो सर्वथा छोड़ने और मातादि मूर्तिमानोंकी सेवा करने ही में कल्याण है। बड़े अनर्थकी बात है कि साक्षात् माता आदि प्रत्यक्ष सुखदायक देवोंको छोड़के अदेव पाषाणादि में शिर मारना मूढ़ोंने इसल्यिं स्वीकार किया है कि जो माता पितादिके सामने नैवेद्य वा भेट पूजा धरेंगे तो वे स्वयं खा हेंगे और मेट पूजा लेंगे तो हमारे मुख वा हाथमें कुछ न पड़ेगा। इससे पाषाणा-दिकी मूर्ति बना, उसके आगे नैवेश धर, घन्टानाद टंटं पूंपू, शंख बजा, कोलाहरे कर अंगूठा दिखला अर्थात् "त्वमंगुष्ठं गृहाण भोजन पर्ध्य बाडहं महीष्यामि" जैसं कोई किसीको छठे वा चिडावे कि तूं घंटाले और अंगुठा दिखलावे उसके आगेसे सब पदार्थ है आप भोगे, वैसे ही लीला इन पूजारियों अर्थात् पूजा नाम सत्कर्मके शतुओं की है। मूढ़ोंको चटक, मटक, चलक मलक मूर्तियोंको बना ठना, आप वेश्या वा भडुआके तुल्य वन ठनके विचारे निर्वृद्धि अनाथोंका माल मारके मीज करते हैं। जो कोई धार्मिक राजा होता तो इन पाषाणप्रियोंको पत्थर तोड़ने, बनाने और घर रचने आदि कामोंमें लगाके खाने पीने को देता, निर्वाह कराता।

प्रभ—जैसे स्त्री आदिकी पाषाणादि मूर्ति देखनेसे कामोत्पत्ति होती है वैसे वीतराग शान्तकी मूर्ति देखनेसे वैराग्य और शान्तिकी प्राप्ति क्यों न होगी ?

डतर—नहीं हो सकती, क्योंकि वह मूर्तिके जड़त्व धर्म आत्मामें आनेसे विचारशक्ति छूट जाती है। विवेकके विना न वैराग्य और ्नु वैराग्यके विना विझान, विझानके विना शान्ति नहीं होती। और कों छुछ होता है सो उनके संग, उपदेश और उनके इतिहासादिके हैखनेसं होना है क्यों कि जिसका गुण वा दोष न जानके उसकी मूर्ति-मान देखनेसं प्रीति नहीं होती। प्रीति होनेका कारण गुणकान है। ऐसे मूर्तिपूजा आदि चुरे कारणों ही से आर्यार्वत्तमें निकम्मे पुजारी भिक्षुक आलसी पुरुषार्थ रहित कोड़ों मनुष्य हुए हैं। वे मूढ़ होनेसे सब संसार में मूट्ना उन्होंने फैल ई है। मूठ छल भी बहुतसा फैला है।

प्रश्न—दंशो काशीमें "ओरंगजेब" बादशाहको "लाटभैरव" आदि ने बड़े २ चमत्कार दिखल ये थे। जब मुसलमान उनको तोड़ने गये और उन्होंने जब उनपर तोप गोला आदि मारे, तब बड़े २ भमरे निकल कर सब कै जको व्याकुल कर भगा दिया।

डत्तर—यह पापाणका चमत्कार नहीं, किन्तु वहां भमरेके छत्ते लग रहे होंगे उनका स्वभाव ही क्रूर है, जब कोई उनको छेड़े तो वे फाटनेको दोड़ते हैं। ओर जो दूधकी धाराका चमत्कार होता था वह पुजारीजीकी लीला थी।

प्रभ—देखो महादेव म्लेच्छको दर्शन न देनेके लिये कूपमें और वेणीमाधव एक ब्राह्मणके घरमें जा छिपे। क्या यह भी चमत्कार नहीं है ?

उत्तर—भला जिसका कोटपाल कालभैरव, लाटभैरव आदि भृत प्रेत और गरुड़ आदि गण, उन्होंने मुसलमानोंको लड़ के क्यों न हटाये ? जब महादेव और विष्णुकी पुराणोंमें कथा है कि अनेक ति-पुरागुर आदि बड़े भयक्कर दुष्टोंको भरम कर दिया तो मुसलमानोंको भरम क्यों न किया ? इससे यह सिद्ध होता है कि वे विचार प्रष्णण क्या लड़ते लड़ते ? जब मुसलमान मन्दिर और मूर्तियोंको तोड़ते कोड़ते हुए काशीके पास आये तब पूजारियोंने उस पाषाणके लिक्क को कूपमें डाल और वेणीमाधवको बाह्मणके घरमें छिपा दिया । जब काशीमें कालभैरवके ढरक मारे यमदूत नहीं जाते और प्रलय समय में भा काशीका नाश होने नहीं देते, तो म्लेच्छोंके दूत क्यों न दुराये ?

पोपमाया है।

प्रभ—गयामें श्राद्ध करनेसे पितरोंका पाप छूटकर वहांके श्राद्धके पुण्यप्रभावसे पितर स्वर्गमें जाते और पितर अपना हाथ निकाल कर पिण्ड लेते हैं क्या यह भी बात मूठी है ?

उत्तर — सर्वथा मूठ, जो वहाँ पिण्ड देनेका वही प्रभाव है तो जिन पण्डोंको पिनरोंके सुखके लिये लाखों रुपये देते हैं उनका व्यय गया- वाले वेश्यागमनादि पापमें करते हैं वह पाप क्यों नहीं छूटता १ ओर हाथ निकलता आज कल कहीं नहीं दीखता, विना पण्डांके हाथोंके। यह कभी किसी थूर्तने पृथिवीमें गुफा खोद उसमें एक मनुष्य बैठा दिया होगा। पश्चात उसके मुख पर कुश बिछा पिण्ड दिया होगा ओर उस कपटीने उठा लिया होगा। किसी आंखके अन्धे गांठके पूरे को इस प्रकार ठगा हो तो आश्चर्य नहीं। वैसे ही वैजनाथको रावण लाया था, यह भी मिथ्या बात है।

प्रश्न—देखो ! कलकत्तेकी काली और कामाक्षा आदि देवीको लाखों मनुष्य मानते हैं, क्या यह चमत्कार नहीं है ?

उत्तर—कुछ भी नहीं। ये अन्धे छोग मेड़के तुल्य एकके पीछे दूसरे चलते हैं, क्रूप खाड़ेमें गिरते हैं, हट नहीं सकते। वैसे ही एक मूर्खके पीछे दूसरे चलकर मूर्तिपूजा रूप गढ़ेमें कंसकर दुःख पते हैं।

प्रभ—भला यह तो जाने दो परन्तु जगन्नाथजीमें प्रत्यक्ष चमत्कार है। एक कलेवर बदलनेक समय चन्द्रनका लकड़। समुद्रमेंसे स्वयमेव भाता है। चूल्हे पर ऊपर २ सात हंडे धरनेसे ऊपर २ के पहिले पहिले पकते हैं। और जो कोई वहां जगन्नाथकी परसादी न खावे तो कुट्ठी हो जाता है और रथ आपसे आप चलता पापीको दर्शन नहीं होता है। इन्द्रद्मनके राज्यमें देवताओंने मन्द्रिर बनाया है। कलेवर बदलनेके सपय एक राजा, एक पण्डा, एक बद्दुई मर जाने अदि चमन्स्कारोंको तुम मूठ न कर सकोगे।

**उत्तर**—जिसने बारह वर्ष पर्यन्त जगन्नाथकी पूजा की थी वह

## समुल्लास] जगन्नाथ पुरी समीक्षा। ४२७

विरक्त होकर मथुरामें आया था, मुक्तते मिखा था। मैंने इन बातोंका **एत्तर पृ**छा था उसने ये सब बाते मूठ' बतलाई । किन्तु विचारसे निश्चय यह है कि जब कलेवर बदलनेका समय आता है तब नौकामें चन्दनकी लकडी ले समुद्रमें डालते हैं। वह समुद्रकी लहरियोंसे किनारे छग जाती है उसको ले सुतार लोग मूर्तियां बनाते हैं। जब रसोई बनती है तब कपाट बन्द करके रसोइयेके विना अन्य किसीको न जाने न देखने देते हैं। भूमिपर चारों और छः और बीचमें एक चक्राकार चूल्हे बनते हैं। उन हंडोंके नीचे घी, मिट्टी और राख छगा छ: चल्हों पर चावल पका, उनके तहे मांजकर, उस बीजके हंडेमें उसी समय चावल डाल छः चून्होंके मुख लोहेके तवोंसे बन्दकर. दर्शन करनेवालोंको, जो कि धनाड्य हों, बुलाके दिखलाते हैं। उपर२ के हंडोंस चावल निकाल, पके हुए चावलों को दिखला, नीचेके कच्चे चावल निकाल दिखाके, उनसे कहते हैं कि कुछ हंडोंके लिये रखदो। आंखके अन्धे गांठके पूरे रूपये अशर्फी धरते और कोई २ मासिक भी बांध देते हैं। शुद्र नीच लोग मन्द्रिमें नैवेद्य लाते हैं। जब नैवेद्य हो चुकता है तब वे शूद्र नीच लोग जूठा कर देते हैं। पश्चात् जो कोई हुपया देकर हुण्डा लेवे उसके घर पहुंचाते और दीन गृहस्थ और साधु सन्तोंको लेके शूद्र और अन्त्यज पर्यन्त एक पंक्तिमें बैठ जूठा एक दूसरेका भोजन करते हैं। जब वह पंक्ति उठती है तब उन्हीं पत्तओंपर दूसरोंको बैठाते जाते हैं। महा अनाचार है। और बहुतेरे मनुष्य वहां जाकर, उनका जुठा न खाके, अपने हाथ बना खाकर चले आते हैं, कुछ भी कुछादि रोग नहीं होते । और उस जगन्नाथपुरीमें भी बहुतसे परसादी नहीं खाते। उनको भी कुष्टादि रोग नहीं होते। और उस जगन्नाथपुरीमें भी बहुतसे कुष्ठी हैं, निसप्रति जूठा खानेसे भी रोग नहीं छूटता। और यह जगन्नाथमें वाममार्गियोंने भैरवी सक्र बनाया है क्योंकि सुभद्रा, श्रीकृष्ण और बल्देवकी बहिन लगती है। उसीको होनों भाइयोंके बीचमें स्त्री और माताके स्थान बैठाई है। जो भैरवी

[एकादश

चक्र न होता तो यह बात कभी न होती। और रथके पहियों के साथ कला बनाई है। जब उनको सूघी घुमाते हैं घूमती है; तब रथ चलता है। जब मेलेके बीचमें पहुंचता है तभी उसकी कीलको उलटी घुमा देनेसे रथ खड़ा रह जाता है। पुजारी लोग पुकारते हैं दान देखी, पुण्य करो, जिससे जगन्नाथ प्रसन्न होकर अपना रथ चलावें, अपना धर्म रहे। जब तक भेट आती जाती है तबतक ऐसे ही पुकारते जाते हैं। जब आचुकती है तब एक ब्रजवासी अच्छे कपड़े दुसाला ओढ़कर सागे खड़ा रहके हाथ जोड़ स्तुति करता है कि "हे जगन्नाथ खामिन! आप कृपा करके रथको चलाइये हमारा धर्म रक्लां" इत्यादि बोल साष्टाङ्क दण्डवत् प्रणाम कर रथ पर चढ़ता है। उसी समय कीलको सूचा घुमा देते हैं और जय २ शब्द बोल, सहस्रों मनुष्य रस्सी खी वते हैं, रथ चलता है। जब बहुतसे लोग दर्शनको जाते हैं तब इतना बड़ा मन्दिर है कि जिसमें दिनमें भी अन्धेरा रहता है और दीपक जलाना पड़ता है। उन मूर्तियोंके आगे पड़दे सैंच कर लगानेक पर्दे दोनों ओर रहते हैं। पण्डे पुजारी भीतर खड़े रहते हैं। जब एक ओर बालेने पर्देको खींचा, मट मूर्ति आडमें आजाती है। तब सब पण्डे और पु-जारी पुकारते हैं, तुम भेट घरो, तुम्हारे पाप छूट जायेंगे, तब दर्शन होगा। शीव करो। वे विचारे भोले मतुष्य धूनोंके हाथ छुटे जाते हैं। भीर मृद पदा दूसरा खेंच हेते हैं तभी दर्शन होता है। तब जय शब्द बोलके प्रसन्न होकर धक्के खाके तिरस्कृत हो चले आते हैं। इन्द्रदमन वही है कि जिसके कुछके छोग अवतक कछकत्तेमें हैं। वह धनाड्य राजा और देवी का उपासक था। उसने लाखों रुपये लगाकर मन्दिर बनवाया था। इसिछिये कि आर्यावर्त देशके भोजनका बलेड़ा इस रीतिसे हुड़ावें। परन्तु वे मूर्ख कब छोड़ते हैं ? देव मानो तो उन्हीं कारीगरोंको मानो कि जिन शिहिपयोंने मन्दिर बनाया। राजा पण्डा भौर बढ़ई उस समय नहीं मरते परन्तु वे तीनों वहीं प्रधान रहते हैं। छोटोंको दुःख देते होंगे । उन्होंने समस्ति करके उसी समय अर्थात्

कलेवर बदलनेके समय वे तीनों उपस्थित रहते हैं। मूर्तिका हृद्य पोला [रक्ता] है उसमें एक सोनेके सम्पुटमें एक सालगराम रखते हैं कि जिसको प्रंति दिन धोके चरणामृत बनाते हैं। उसपर रात्रिकी शयन आर्तिमें उन लोगोंने विषका तेज व लपेट दिया होगा। उसको धोंके उन्हीं तीनोंको पिलाया होगा कि जिससे वे कभी मर गये होंगे। मरे तो इस प्रकार और भोजनभट्टोंने प्रसिद्ध किया होगा कि जगन्नाथजी अपने शरीर बदलनेके समय तीनों भक्तोंको भी साथ लेगये ऐसी भूठी बातें पराये धन ठगनेके लिये बहुतसी हुआ करती हैं।

प्रश्न—जो रामेश्वरमें गङ्गोत्तरीके जल चढ़ाने समय लि**ङ्ग बढ़** जाता है, क्या यह भी बात भूठी है ?

डत्तर—भूठी, क्योंकि उस मन्दिरमें भी दिनमें अन्धेरा रहता है। दीपक रात दिन जला करते हैं। जब जलकी धारा छोड़ते हैं तब उस जलमें बिजुलीके समान दीपकका प्रतिविम्ब चमकता है और कुछ भी नहीं। न पाषाण घटे, न बढ़े। जितनाका उतना रहता है ऐसी छीछां कर विचारे निर्वृद्धियोंको ठगते हैं।

प्रश्न — रामेश्वरको रामचन्द्रने स्थापित किया है। जो मूर्तिपूजा वेदिवरुद्ध होती तो रामचन्द्र मूर्तिस्थापन क्यों करते और वाल्मीकिजी रामायणमें क्यों लिखते १

उत्तर—रामचन्द्रके समयमें उस लिङ्क वा मन्दिरका नाम चिह्न भी न था, किन्तु यह ठीक है कि दक्षिण देशस्थ रामनामक राजाने मन्दिर बनवा, लिङ्कका नाम रामेश्वर धर दिया है। जब रामचन्द्र सीताजीको ले हनुमान आदिके साथ लङ्कासे [चले] आकाशमार्गमें विमान पर बैठ अयोध्याको आते थे तब सीताजीसे कहा है कि—

अन्न पूर्व महादेवः प्रसादमकरोद्विभः । सेतुबन्ध इतिविख्यातम् ॥ वा०रा० छं० [सर्ग१२५ श्लो०२०]

हे सीते ! तेरे वियोगसे हम व्याङ्ख होकर यूमते थे और इसी

स्थानमें चातुर्मास्य किया था और परमेश्वरकी उपासना ध्यान भी करते थे। वहीं जो सर्वत्र विभु (व्यापक) देवोंका देव महादेव परमात्मा है उसकी कृपासे हमको सब सामगी यहां गाप्त हुई। और देख यह सेतु हमने बांधकर ल्ह्कामें आके, उस रावणको मार, तुम्नको ले आये। इसके सिवाय वहां वाल्मीकिमें अन्य कुछ भी नहीं लिखा।

प्रश्न--

#### "रंग है कालियाकन्त को ।

#### जिसने हुका पिलाया संतको।"

दक्षिणमें एक कालियाकन्तकी मूर्ति है वह अबतक हुका पिया करती है जो मूर्तिपूजा मूठी होती तो यह चमत्कार भी मूठा होजाय।

डत्तर— मूठी २ । यह सब पोपलीला है । धयांकि वह मूर्तिका मुख पोला होगा । उसका छिद्र पृष्ठमें निकालके भित्तीके पार दूसरे मकानमें नल लगा होगा । जब पुजारी हुका भरवा पेचवान लगा, मुखमें नली जमाके, पड़दे डाल निकल लाता होगा तभी पीछेबाला आदमी मुखसे खींचता होगा तो इधर हुका गड़ २ बोलता होगा । दूसरा छिद्र नाक और मुखकेसाथ लगा होगा । जब पीछे फूंके मारदेता होगा तब नाक और मुखके छिद्रोंसे धुलां निकलता होगा उस समय बहुतसे मूहोंको धनादि पदार्थोसे लट कर धन रहित करते होंगे।

प्रश्न—देखो ! डाकोरजीकी मूर्ति द्वारिकासे भगतके साथ चली आई। एक सवारत्ती सोनेमें कई मनकी मूर्ति तुल गई। क्या यह भी चमत्कार नहीं ?

उत्तर—नहीं वह भक्त मूर्तिको चोरा, छे आया होगा और सवा-रत्तीके बराबर मूर्तिको तुलना किसी भक्कड़ आदमीने गण्य मारा होगा।

प्रश्न—देखो ! सोमनाथजी पृथिवीसे ऊपर रहता था और बड़ा चमत्मार था । क्या यह भी मिथ्या बात है ?

क्तर-हां मिथ्या है सुनो ! नीचे उत्पर चुम्बक पाषाण खगा

रक्ते थे। उसके आकर्षणसे वह मूर्ति अधर खड़ी थी। जब "महमूद्ग्र-जनवी" आकर लड़ा तब यह चमत्कार हुआ कि उसका मन्दिर तेहा गया और पूजारी भक्तोंकी दुईशा होगई और लाखों फौज दश सहस्र फीजसे भाग गई। जो पोप पूजारी पूजा, पुरश्चरण, स्तुति, प्रार्थना करते थे कि "हे महादेव। इस म्लेच्छको तूं मार डाल, हमारी रक्षा कर' और वे अपने चेले राजाओंको समकाते थे "कि आप निश्चिन्त रहिये। महादेवजी, भैरव अथवा वीरभद्र हो भेज देंगे। वे सब म्लेच्छोंको मार डालेंगे वा अन्धा कर देंगे। अभी हमारा देवता प्रसिद्ध होता है। हनुमान, दुर्गा और भैरवने खप्न दिया है कि हम सब काम कर देंगे। वे विचारे भोले राजा और क्षत्रिय पोपोंके बहका-नेसे चिश्वासमें रहे। कितने ही ज्योतिषी पोपोंने कहा कि अभी तुम्हारी चढ़ाईका महूर्त्त नहीं है। एकने आठवां चन्द्रमा बतलाया। दूसरेने योगिनी सामने दिखलाई, इत्यादि बहकावटमें रहे। जब म्लेच्छोंकी फौजने आकर धेर लिया तब दुर्दशासे भागे, कितने ही पोप पुजारी और उनके चेले पकड़े गये। पूजारियोंने यह भी हाथ जोड़ कहा कि तीन कोड़ रुपया लेलो मन्दिर और मूर्ति मत तोड़ो। मुसलमानोंने कहा कि हम "बुत्परस्त" नहीं किन्तु "बुतशिकन" अर्थात् बुतोंके तोड़ने वाले [मूर्तिभंजक] हैं। जाके मट मन्दिर तोड़ दिया। जब ऊपरकी छत टूटी नव चुम्बक पाषाण पृथक् होनेसे मूर्ति गिर पड़ी। जब मूर्ति तोड़ी तब सुनते हैं कि अठारह कोड़के रत्न निकले। जब पुजारी और पोपों पर कोड़ा पड़े तब रोने लगे। कहा, कि कोष बतलाओ। मारके मारे मत् बतला दिया। तब सब कोष छट मार कूट कर पोप और उनके चेलोंको "गुलाम" विगारी बना, पिसना पिसनाया, घास खुदनाया, मठ मूत्रादि उठनाया और चना स्तानेको दिये। हाय क्यों पत्थरकी पूजा कर सत्यानाशको प्राप्त इए १ क्यों परमेश्वरकी भक्ति न की जी म्लेच्छोंके दांत तोड डालते ! भीर अपना विजय करते। देखो ! जितनी मृतियां हैं उनकी शुरवीरों

की पूजा करते तो भी कितनी रक्षा होती। पुजारियोंने इन पापणोंकी इतनी भक्ति की परन्तु मूर्ति एक भी उन [ शत्रुओं ] के शिरार उड़के न छगी। जो किसी एक शूरवीर पुरुषकी मूर्तिके सदृश सेवा करने तो वह अपने सेवकोंको यथाशक्ति बचाता और उन शत्रुओंको मारता।

प्रश्न—द्वारिकाजीके रणछोड़जी जिसने "नर्सीमहता" के पास हुंडी मेज दी और उसका झृण चुका दिया इत्यादि बात भी क्या भूठ है ?

बत्तर—िकसी साह्कारने रुपये दे, दिये होंगे। किसीने भूठा नाम उड़ा दिया होगा कि श्रीकृष्णने मेजे। जब सम्बत् १६ १४ के वर्षमें तोपोंके मारे मन्दिर मूर्तियां अङ्गरेजोंने उड़ा दी थीं तब मूर्ति कहां गई थी १ प्रत्युत बाघर छोगोंने जितनी वीरता की और छड़े शञ्चलोंको मारा परन्तु मूर्ति एक मक्खीकी टांग भी न तोड़ सकी। जो श्रीकृष्णके सदृश कोई होता तो इनके धुरें उड़ा देता ब्योर ये भागते फिरते। भछा यह तो कहो कि जिसको रक्षक मार खाय उसके शर-णागत क्यों न पीटे जायें १

प्रश्न—ज्वालामुखी तो प्रत्यक्ष देवी है सबको सा जाती है। और प्रसाद देवे तो आधा खाजाती और आधा छोड़ देती है। मुसलमान बादशाहोंने उस पर जलकी नहर ह्युड्वाई और लोहेके तवे जड़वाये थे तो भी ज्वाला न बुम्मी और न रुकी। वैसे हिंगलाज भी आधी रातको सवारी कर पहाड़ पर दिखाई देती, पहाड़को गंजना कराती हैं, चन्द्रकूप बोलता और योनियंत्रसे निकलनेसे पुर्नजन्म नहीं होता, दूमरा बांधनेसे पूरा महापुरुष कहाता। जबतक हिंगलाज न हो आबे तबतक आधा महापुरुष बजता है इत्यादि सब बातें क्या मानने योग्य नहीं ?

जत्तर — नहीं, क्योंकि वह ज्वालामुखी पहाड़से आगी निकती है। इसमें पूजारो लोगोंकी विचित्र कीला है जैसे बचारके बीके चमचेमें हवाला आजाती, सलग करनेसे वा फूंक मारनेसे बुक्त जाती और थोंड्रासा घीको खाजाती, शेष छोड़ जाती है, उसीके समान वहां भी है जसी चून्हेकी ज्वालामें जो डाला जाय सब अस्म हो जाता। जंगळ वा घरमें लग जानेसे सबको खाजाती है इससे वहां क्या बिशेष है ? विना एक मन्दिर, कुग्ड और इधर उधर नल रचनाके हिंगलाजमें न कोई सवारी होती और जो कुछ होता है वह सब पोप पूजारियोंकी लीलासे दूसरा कुछ भी नहीं। एक जल और दल्दलका कुग्ड बना रक्ता है। जिसके नीचेसे बुदबुदे उठते हैं। उसको सफल यात्रा होना मूढ़ मानते हैं। योनिका यन्त्र पोपजीने धन हरनेके लिखे बनवा रक्ता है और दुमरे भी उसी प्रकार पोपलीलाके हैं। उसने महापुरुष हो तो एक पशु पर दुमरेका बोम लाद दें, तो क्या महापुरुष हो जायगा ? महापुरुष तो बड़े उत्तम धर्मयुक्त पुरुषांश्वसे होता है।

प्रश्न-अमृतसरका तालाब अमृतरूप, एक मुरेठीका फल आधा मीठा और एक भित्ती नमती और गिरती नहीं, रेवालसरमें बेड़े तरते अमरनाथमें आपसे आप लिंग बन जाते हिमालयसे क्वृत्रके जोड़े आके सबको दर्शन देकर चले जाते हैं क्या यह भी मानने योग्य नहीं ?

उत्तर—नहीं, उस तालावका नाममात्र अमृतसर है। जब कभी जंगल होगा तब उसका जल अच्छा होगा। इससे उसका नाम अमृत ससर धरा होगा। जो अमृत होता तो पुराणियों के मानने तुल्य कोई क्यों मरता? भित्तीकी कुछ बनावट ऐसी होगी जिससे नमती होगी और गिरती न होगी। रीठे कलमके पैवन्दी होंगे अथवा गयोड़ा होगा। रेवालसरमें बेड़ा तरनेमें कुछ कारीगरी होगी। अमरनाथमें बंफके पहाड़ बनते हैं तो जल जमके छोटे लिंगका बनना कौन आश्चर्य है? और कबृतरके जोड़े पालित होंगे पहाड़की आड़मेंसे पोपजी छोड़ते होंगे दिखलाकर टका हरते होंगे।

प्रश्न-हरद्वार स्वर्गका द्वार हरकी पैढ़ीमें स्नान करे तो पाप

छूट जाते हैं। और तपोवनमें रहनेसे तपस्वी होता, देवप्रयाग, गंगो-त्तरी में गोमुख, उत्तर काशीमें गुप्तकाशी, त्रियुगी नोरायणके दर्शन होते हैं। केदार और बदरीनारायणकी पूजा छः महीने तक मनुष्य और छः महीने तक देवता करते हैं। महादेवका मुख नैपालमें पशुपित, चूतड़ केदार और तुङ्गनाथमें जानु और पग अमरनाथमें। इनके दर्शन स्पर्शन स्नान करनेसे मुक्ति होजाती है। वहां केदार और बद-रीसे स्वरंग जाना चाहै तो जासकता है, इत्यादि बातें कैसी हैं?

उत्तर—हरद्वार उत्तर पहाड़ोंमें जानेका एक मार्गका आरम्भ है। इरकी पैटी एक स्नानके लिये कुण्डकी सीहियोंको बनाया है। सच कुछो तो "हाडपैटी" है क्योंकि देशदेशान्तकें मृतकोंके हाड उसमें पड़ा करते हैं। पाप कभी नहीं कहीं छूट सकता विना भोगे अथवा नहीं कटते । "तपोवन" जब होगा तब होगा । अबतो "भिक्षकवन" है । तपो-कनमें जाने रहनेसे तप नहीं होता, किन्तु तप तो करनेसे होता है क्यों कि वहां बहुतसे दुकानदार भूठ बोलनेवाले भी रहते हैं। "हिम क्तः प्रभवति गंगा" पहाडके ऊपरसे जल गिरता है। गोमुखका आकार पोपळीलासे बनाया होगा और वही पहाड पोपका र्ख्या है। वहां उत्तर काशी आदि स्थान ध्यानियोंके लिये अच्छा है परन्तु दुकानदारोंके लिये वहां भी दुकानदारी है। देवप्रयाग पुराणके गपो-ड़ोंकी स्रीला है अर्थात् जहां अलखनन्दा और गंगा मिली है इसलिये वहां देवता वसते हैं ऐसे गपोड़े न मारें तो वहां कौन जाय ? और टका कौन देवे ? गुप्तकाशी तो नहीं है वह तो प्रसिद्ध काशी है। तीन युगकी धूनी तो नहीं दीखती परन्तु पोपोंकी दश बीस पीढ़ीकी होगी जैसी खाखियोंकी धूनी और पार्सियोंकी आयारी सदैव जलती रहती है तप्रकुण्ड भी पहाडोंके भीतर ऊष्मा गर्मी होती है उसमें तप कर जल आता है। उसके पास दूसरे कुण्डमें ऊपरका जल वा जहां गर्मी नहीं वहांका आता है। इससे ठण्डा है, केदारका स्थान वह भूमि बहुत अच्छी है। परन्तु वहां भी एक लमे हुए पत्थर पर पोप वा

#### समुद्धास] विन्धेश्वरी बृन्दावन समीक्षा। ४६५

पोपोंक चेलोंने मन्दिर बना रक्खा है। वहां महन्त पुजारी पंढे आंखके अंधे गांठके पूरोंसे माल लेकर विषयानन्द करते हैं। वैसे ही बदरी-नारायणमें ठग विद्यावाले बहुतसे बैठे हैं। "रावलजी" वहां के मुख्य हैं। एक खी छोड़ अनेक खी रख बैठे हैं। पशुपति एक मन्दिर और पंचमुखी मूर्तिका नाम धर रक्खा है जब कोई न पूछे तभी पोपलीला बलवती होती है। परन्तु जैसे तीर्थके लोग धूर्त धनहरे होते हैं वैसे पहाड़ी लोग नहीं होते वहांकी भूमि बड़ी रमणीय और पवित्र हैं।

प्रश्न — विन्ध्याचलमें विन्ध्येश्वरी काली अष्ट्रभुजा प्रत्यक्ष सत्य है। विन्ध्येश्वरी तीन समयमें तीन रूप बदलती है और उसके बाह्रेमें मक्बी एक भी नहीं होती। प्रयाग तीर्श्वराज वहां शिर मुण्डाये सिद्धि, गंगा यमुनाके संगममें स्नान करनेसे इच्छासिद्धि होती है, वैसे ही अयोध्या कई बार उड़ कर सब वस्ती सिहत स्वंगमें चली गई। मश्चरा सब तीर्थोसे अधिक, बृन्दावन लीलास्थान और गोबर्द्धन बजयात्रा बड़े भाग्यसे होती है। सूर्यप्रहणमें कुरुक्षेत्रमें लाखों मनुस्योंका मेला होता है क्या ये सब बातें मिथ्या हैं?

उत्तर—प्रलक्ष तो आंखोंसे तीनों मूर्तियां दीखती हैं कि पाषाणकी मूर्तियां हैं और तीन कालमें तीन प्रकारके रूप होनेका कारण पूजारी लोगोंक वस्त आदि आभूषण पहिरानेकी चतुराई है और मिक्खरी सहस्रों लाखों होती हैं, मैंने अपनी आंखोंसे देखा है। प्रयागमें कोई नापित रलोक बनानेहारा अथवा पोपजीको कुछ धन देके मुण्डन करानेका माहात्म्य बनाया वा बनवाया होगा। प्रयागमें स्नान करके स्वर्ग को जाता तो लौटकर घरमें आता कोई भी नहीं दीखता, किन्तु घरको सब आते हुए दीखते हैं अथवा जो कोई बहां हुव मरता और उसका जीव भी आकाशमें वायुके साथ धूमकर जनम लेता होगा। तीथराज भी नाम पोपोंने धरा है। जड़में राजा प्रजाभाव कभी नहीं हो सकता। यह बड़ी असम्भव बात है कि अयोध्या नगरी वस्ती, कुत्ते, गधे, भञ्ची समार, जाजक सहित तीन बार स्वर्गमें गई। स्वर्गमें तो नहीं गई

वहींकी वहीं है। परन्तु पोपजीकी मुख गपोड़ोंमें अयोध्या स्वर्गको उड़ गई। यह गपोडा शब्दरूप उडना फिरता है। ऐसे ही नैमिषारण्य मादिकी भी पोपळीला जाननी "मधुरा तीन लोकसे निराली" तो नहीं परन्तु उसमें तीन जन्तु बड़े लीलाधारी हैं कि जिनके मारे जल, स्थल, बौर अन्तरिक्षमें किसीको सुख मिलना कठिन है। एक चौने जो कोई स्नान करने जाय अपना कर हेनेको खड़े रहकर वकते रहते हैं। लाओ वजमान । भाग, मर्ची और लड्डू खावें, पीवें । यजमानकी जय जय मनावें। दूसरे जलमें कह्नुवे काट ही खाते हैं जिनके मारे स्नान करना भी घाट पर कठिन पड़ता है। तीसरे आकाशके ऊपर छाछ मुखके बन्दर काडी, टोफी, गहने और जुते तक भी न छोड़ें, काट खावें, धक्के दे गिरा मार डालें और ये तीनों पोप और पोपजीके चेलोंके पूजनीय हैं। मनों चना आदि अन कह्नवे और बन्दरोंको चना गुड़ आदि और चौबोंकी दक्षिणा और छड्डुओंसे उनके सेवक सेवा किया करते हैं और बृन्दावन जब था तब था, अब तो वेश्यावनवत् ब्हा बन्ली और गुरु चेली आदिकी लीला फैल रही हैं। वैसे ही दीप-मालिकाका मेला गोवद्वन और अजयात्रामें भी पोपोंकी बन पडती है। क्रकक्षेत्रमें भी वही जीविक की जीला समझ लो। इनमें जो कोई धार्मिक परोपकारी पुरुष है इस पोपलीलासे पृथक् हो जाता है।

प्रभ—यह मूर्तिपूजा और तीर्थ सनातनसे चले आते हैं मूठे क्यों कर हो सकते हैं ?

उत्तर—तुम सनातन किमको कहते हो। जो सदासे चला आता है। जो यह सदासे होता तो वेद और ब्राह्मणादि अष्टिमुनिकृत पुस्तकों में इनका नाम क्यों नहीं? यह मूर्तिंपूजा अदाई तीन सहस्र वर्षके इघर २ बाममागीं और जैनियोंसे चली है। प्रथम आर्यार्वक्तों नहीं थी। और ये तीर्थ भी नहीं थे। जब जैनियोंने गिरनार, पालिटाना, शिखर, शत्रुख्य और आबू आदि तीर्थ बनाये उनके अनुकृत इन ओगोंने भी बना लिये। जो कोई इनके आरम्भकी परीक्षा करना चाहें

## समुक्लास] तीर्थं नाममाहात्म्य समीक्षा । ४३७

वे पंडोंकी पुरानीसे पुरानी बही और तांबेके पत्र आहि छेख देखें, ती निश्चय होजायगा कि ये सब तीर्थ पांचसी अथवा एक सहस्र वर्षसे इधर ही बने हैं। सहस्र वर्षसे उधरका छेख किसीके पास नहीं निक-छता, इससे आधुनिक हैं।

प्रश्न—जो २ तीर्थ वा नामका माहात्म्य अर्थात् जैसे "अन्यक्षेत्रे इतं पापं काशीक्षेत्रे विनश्यित" इत्यादि बातें हैं वे सच्ची हैं वा नहीं १ व उत्तर—नहीं, क्योंकि जो पाप छूट जाते हों तो दरिद्रोंको धन,

राजपाट, अनधों को आंख मिल जाती, कोड़ियों का कोड़ आदि रोग प्रहुट जाता, ऐसा नहीं होता। इसलिये पाप वा पुण्य किसीका नहीं छूटता।

प्रश्न-

गङ्गागङ्गेति यो ब्रूयाचोजनानां शतैरिप । मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥१॥ हरिईरित पापानि हरिरित्यक्षरद्वयम् ॥२॥ मातःकाछे शिवं दृष्ट्वा निशिपापं निवश्यति । आजन्मकृतं मध्याह्वे सायाह्वे सप्तजन्मनाम् ॥३॥

इत्यादि श्लोक पोपपुराणके हें जो सैकड़ों सहस्रों कोश दूरसे भी गङ्का २ कहे तो उसके पाप नष्ट होकर वह विध्णुलोक अर्थात् बैकु-णठको जाता है।। १।।

"हरि" इन दो अक्षरोंका नामोबारण सब पापको हर छेता है वैसे ही राम, कृष्ण, शिव, भगवती आदि नामोंका माहात्म्य है।। २।। और जो मनुष्य प्रातःकासमें शिव अर्थात् स्थिग वा उसकी मूर्तिका दर्शन करे तो रात्रिमें किया हुआ, मध्याह्ममें दर्शनसे जन्म भरका, "सायंकास्त्रमें दर्शन करनेसे सात जन्मोंका पाप सूट जाता है। यह इर्शनका माहात्म्य है।। ३।।

एकादश

क्या मठा होजायगा १

उत्तर-मिथ्या होनेमें क्या शंका ? क्योंकि गङ्गा २ वा हरे, राम, कृष्ण. नारायण. शिव और भगवती नामस्मरणसे पाप कभी नहीं छटता। जो छूटे तो दुखी कोई न रहे। और पाप करनेसे कोई भी न हरे। जैसे आजकल पोपलीलामें पाप बढकर हो रहे हैं मुद्रोंको विश्वास है कि हम पाप कर नामस्मरण बा तीर्थयात्रा करेंगे तो पापोंकी निवृत्ति हो जायगी। इसी विश्वास पर पाप करके इस लोक और परलोकका नाश करते हैं। पर किया हुआ पाप भोगना ही पड़ता है।

प्रश्न-सो कोई तीर्थ नामस्मरण सत्य है वा नहीं ?

उत्तर-है, वेदादि सत्य शास्त्रोंका पढना पढाना, धार्मिक विद्वा-नोंका सक्क. परोपकार, धर्मानुष्ठान, योगाभ्यास, निर्वेर, निष्कपट, सत्यभाषण, सत्यका मानना, सत्य करना, ब्रह्मचर्य्य, आचार्य्य, अतिथि, माता, पिताकी सेवा, परमेश्वरकी स्तृति प्रार्थना उपासना, शान्ति, जितेन्द्रियता, सुशीलता, धर्मयुक्तपुरुषार्थ, ज्ञान, विज्ञान आदि शुभगुण कर्म दुःखोंसे तारनेवाले होनेसे तीर्थ है। और जो जल स्थल-मय हैं। वे तीर्थ कभी नहीं हो सकते क्योंकि "जना यैस्तरन्ति तानि तीर्थानि" मनुष्य जिन करके दुःखोंसे तरें उनका नाम तीर्थ है। जल स्थल तरानेवाले नहीं किन्तु डुबाकर मारनेवाले हैं। प्रत्युत नौका आदिका नाम तीर्थ हो सकता है क्योंकि उनसे समुद्र आदिको सरते हैं।

#### समानतीर्थे बासी॥ अ०४ पा०४। १०८॥ नमस्तीर्ध्याय च ॥ यज्ञः १६ [ मं० ४२ ]

जो ब्रह्मचारी एक आचार्य और एक शास्त्रको साथ २ पढते हों वे सब सतीर्थ्य अर्थात् समानतीर्थसेवी होते हैं। जो वेदादि शास्त्र और सत्यभाषणादि धर्म स्थाणोंमें साधु हो उसको अन्नादि पदार्थ देना और वनसे विद्या छेनी इत्यादि वीर्थ कहाते हैं। नामस्मरण इसकी फहते है कि-

#### ्यस्य नाम महचद्याः ॥ यजुः ॥ [अ० ३२ मं० ३]

परमेश्वरका नाम बड़े यश अर्था । धर्मयुक्त कामोंका करना है जैसे ब्रह्म, परमेश्वर, ईश्वर, न्यायकारी, दयाल, सर्वशक्तिमान आ**दि** नाम परमेश्वरके गुण कर्म स्वभावसे हैं। जैसे ब्रह्म सबसे बडा, पर-मेश्वर ईश्वरोंका ईश्वर, ईश्वर सामर्थ्ययुक्त, न्यायकारी कभी अन्याय नहीं करता, दयाल सब पर क्रपाद्दि रखता, सर्वशक्तिमान अपने सामर्थ्य ही से सब जगतकी उत्पत्ति स्थिति प्रलय करता सहाय किसीका नहीं हेता, ब्रह्मा विविध जगत्के पदार्थीका बनानेहारा, विष्णु सन्नमें व्यापक होकर रक्षा करता, महादेव सन्न देवोंका देव, रुद्र प्रख्य करनेहारा आदि नामोंके अर्थोंको अपनेमें धारण करे अर्थात् बड़े कामोंसे बड़ा हो, समर्थीमें समर्थ हो, सामर्थ्योको बढ़ाता जाय, अधर्म कभी न करें, सब पर दया रक्ले, सब प्रकारके साधनोंको समर्थ करे, शिल्पविद्यासे नाना प्रकारके पदार्थीको बनावे सब संसारमें अपने आत्माके तुल्य सुख दुःख समभे, सबकी रक्षा करे, विद्वानोंमें विद्वान् होवे, दुष्ट कर्म करनेवालोंको प्रयत्नसे दण्ड और सज्जनोंकी रक्षा करे, इस प्रकार परमेश्वरके नामोंका अर्थ जानकर परमेश्वरके गुण कर्म खभावके अनुकूछ अपने गुण कर्म खभावको करते जाना ही परमेश्वरका नामस्मरण है।

## गुरुब्र ह्या गुरुर्विष्णुर्गरुदें वो महेरवरः । गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरुवे नमः॥

इत्यादि गुरुमाहात्म्य तो सच्चा है १ गुरुके पग घोके पीता, जैसी आज्ञा करे वैसा करना, गुरु छोभी हो तो वावनके समान, कोधी हो तो नरसिंहके सदश, मोही हो तो रामके तुल्य और कामी हो तो कृष्णके समान गुरुको जानना। चाहे गुरुजी कैसा ही बाप करें तो भी अश्रद्धा न करनी, सन्त वा गुरुके द्शनको जानेमें क्रा २ में अश्वमेधका फल होता है यह बात ठीक है वा नहीं ?

उत्तर—ठीक नहीं, ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर और परंबद्धा परमेशव-रके नाम हैं। उसके तुल्य गुरु कभी नहीं हो सकता। यह गुरुमा-हात्म्य गुरुगीता भी एक बड़े पोपलीला है। गुरु तो माता, पिता, स्माचार्य और अतिथि होते हैं। बनकी सेवा करनी, उनसे विद्या शिक्षा लेनी देनी, शिष्य और गुरुका कम है। परन्तु जो गुरु लोभी, कोधी, मोही और कामी हो तो उसको सर्वथा छोड़ देना, शिक्षा करनी, सहज शिक्षासे न माने तो अर्घ्य पाद्य अर्थात् ताड़ना दण्ड प्राणहरण तक भी करनेमें कुछ दोष नहीं। जो विद्यादि सद्गुणोंमें गुरुत्व नहीं है भूठ मृठ कण्ठी तिलक वेद्विरुद्ध मन्त्रोपदेश करने बाले हैं वे गुरु ही नहीं किन्तु गड़रिये हैं। जैसे गड़रिये अपनी मेड़ बक्रियोंसे दृथ आदिसे प्रयोजन सिद्ध करते हैं वैसे ही शिष्योंके चेले चेलियोंके धन हरके अपना प्रयोजन करते हैं वै—

## दो॰—गुरु लोभी चेला लालची, दोनों **खेलें दाव।** भवसागरमें डूबते, 'बैठ पथर को नाव॥

गुरु सममें कि चेठे चेठी कुछ न कुछ देवेंहीं गे और चेठा सममें कि चठो गुरु भूठे सोगन्द खाने, पाप हुड़ाने आदि छाउचसे दोनों कपटमुनि भवसागरके दुःखमें हुवते हैं, जैसे पत्थरकी नौकामें बैठने बाठे समुद्रमें हुव मरते हैं। ऐसे गुरु और चेठोंक मुख पर धूड़ राख पड़े। उसके पास कोई भी खड़ा न रहे जो रहे वह दुःखसागरमें पड़ेगा। जैसी पोपठीठा पुजारी पुराणियोंने चठाई है वेसी इन गड़िरये गुरुओंने भी ठीठा मचाई है। यह सब काम स्वार्थी छोगोंका है। जो परमार्थी छोग है वे आप दुःख पार्वे तो भी जगतका उपकार करना नहीं छोड़ते। और गुरुमाहात्म्य तथा गुरुगीता आदि भी इन्हीं छोभी कुकर्मी गुरुओंने बनाई है।

<sup>प्रभ</sup>-अष्टादश पुराणानां कर्ता सत्यवतीसुतः ॥१॥

इतिहासपुराणाभ्यां वेदार्थमुपवृंहयेत् ॥२॥

महाभारत ॥

पुराणान्यखिलानि च ॥३॥ मनु० ॥

इतिहासपुराणः पश्रमो वेदानां वेदः ॥४॥

छान्दोग्य०। प्र०७। खं०१॥

दशमेऽहनि किंचित्पुराणमाचक्षीत ॥५॥ पुराणविद्या वेदः ॥६॥ सूत्र ॥

भठारह पुराणोंके कर्ता व्यासजी हैं। व्यासवचनका प्रमाण भवश्य करना चाहिये॥ १॥

इतिहास, महाभारत, अठारह पुराणोंसे वेदोंका अर्थ पढ़ें पढ़ावें क्योंकि इतिहास और पुराण वेदों ही के अर्थ अनुकुछ हैं।। २।।

पितृकर्ममें पुराण और खिल अर्थात् इरिवंशकी कथा सुने ।।३।।
अक्षमेधकी समाप्तिमें दशवें दिन थोड़ीसी पुराणकी कथा

सुनै ॥ ४ ॥

पुराण विद्या वेदार्थके जानने ही से वेद हैं।। ५ ॥ इतिहास और पुराण पंचम वेद कहाते हैं।। ६ ।।

इत्यादि प्रमाणोंसे पुराणोंका प्रमाण और इनके प्रमाणोंसे मूर्तिपूजा और तीर्थोंका भी प्रमाण है क्योंकि पुराणोंमें मूर्तिपूजा और तीर्थोंका विधान है।

उत्तर—जो अठारइ पुराणोंके कर्ता ज्यासजी होते तो उनमें इतने गपोड़े न होते क्योंकि शारीरिकसृत्र, योगशास्त्रके भाष्य आदि व्यासोक्त प्रन्थोंके देखनेसे विदित होता है कि ज्यासजी बड़े विद्वान, सत्यवादी, धार्मिक, योगी थे। वे ऐसी मिथ्या कथा कभी न लिखते और इससे यह सिद्ध होता है कि जिन सम्प्रदायी प्रस्पर विरोधी 'कोगोंने भ्रानक्तादि नवीन क्षेत्रेककिनत प्रन्थ क्तावे हैं उनमें ज्यास- जीके गुणोंका लेश भी नहीं था। और वेदशास्त्र विरुद्ध असल्यवाद लिखना न्यास सदश विद्वानोंका काम नहीं किन्तु यह काम विरोधी स्त्रार्थी, अविद्वान पामरोंका है। इतिहास और पुराण शिवपुराणादिका नाम नहीं किन्तु —

#### ब्राह्मणानीतिहासात् पुराणानि करपात् गाथानाराशंसीरिति ॥

यह ब्राह्मण और सूत्रोंका वचन है। ऐतरेय, शतपथ, साम और गोपथ ब्राह्मण प्रन्थों ही के इतिहास, पुराण, कल्प, गाथा और नारा-शंसी ये पांच नाम हैं। (इतिहास) जैसे जनक और याज्ञवल्क्यका संवाद । (पुराण) जगदृत्पति आदिका वर्णन । (कल्प) वेद शब्दोंके सामर्थ्यका वर्णन अर्थ निरूपण करना। ( गाथा ) किसीका दृष्टान्त दार्शन्तरूप कथा प्रसंग कहना । (नाराशंसी) मनुष्योंके प्रशंसनीय वा अप्रशंसनीय कर्मोंका कथन करना। इनहीसे वेदार्थका बोध होता है। पितृकर्म अर्थात् इतियोंकी प्रशंसामें कुछ सुनना, अधमेधके धन्तमें भी इन्हींका सुनना लिखा है क्योंकि जो व्यासकृत प्रनथ हैं **उनका सुनना, सुनाना** ज्यासजीके जन्मके पश्चात् हो सकता है पूर्व नहीं। जब न्यासजीका जन्म भी नहीं था तब वेदार्थको पढ़ते पढ़ाते सुनते सुनाते थे। इसल्पिये सबसे प्राचीन ब्राह्मण मन्थों ही में यह सब घटना हो सकती है। इन नवीन कपोलकल्पित श्रीमद्भागवत शिवपुरा-णादि मिथ्या वा दूषित प्रन्थोंमं नहीं घट सकती। जब व्यासजीने वेद परे और पहाकर वेदांध फैलाया इसलिये उसका नाम "वेदव्यास" हुआ। क्योंकि व्यास कहते हैं वार पारकी मध्य रेखाको अर्थात माग्वेदके आरम्भसे लेकर अथर्ववेदके पार पर्यन्त चारों वेद पढे थे और गुकदेव तथा जैमिनि आदि शिष्योंको पढ़ाये भी थे। नहीं तो ंडनका जन्मका नाम "कृष्णद्वैपायन" था। जो कोई यह कहते हैं कि बेदोंको व्यासजीने इकट्टे किये यह बात भूठी है क्योंकि व्यासजीके पिता, पितामह, प्रपितामह, पराशर, शक्ति, बशिष्ठ और ब्रह्मा आदिने भी चारों वेद पढ़े थे। यह बात क्योंकर घट सके ?

प्रश्न-पुराणों में सब बानें भूठी हैं वा कोई सच्ची भी हैं ?

उत्तर-बहुतसी बातें भूठी हैं और कोई घुणाक्षरन्यायसे स<del>च्ची</del> भी है। जो सच्ची है वह वेद्युदि सत्यशास्त्रोंकी और जो क्रुठी हैं वे इन पोपोंके पुराणरूप घरकी हैं। जैसे शिवपुराणमें शेवों। शिवको परमेश्वर मानके विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र, गणेश और सूर्व्यादिको उनके दास ठहराये । बैष्णवोंने विष्णुपराण आदिमें विष्णुको परमातमा माना और शिव आदिको विष्णुके दास । देवीभागवनमें देवीको परमेश्वरी और शिव, विष्णु आदिको उसके किंकर बनाये। गणेशखण्डमें गणे-शको ईश्वर शेष सबको दास बनाये । भला यह बात इन सम्प्रदायी पोपोंकी नहीं तो किनकी है ? एक मनुष्यके बनानेमें ऐसी परस्पर विरुद्ध बात नहीं होती तो विद्वानके बनायेमें कभी नहीं आ सकती। इसमें एक बातको सच्ची माने तो दूसरी क्रूठी और जो दूसरीको सच्ची मानें तो तीसरी क्रूठी और जो तीसरीको सच्ची मानें तो अन्य सब क्रूठी होती हैं। शिवपुराणवाले शिवसे, विष्णुपुराणवालोंने विष्णुसे, देवीपुराणवाले देवीसे, गणेशाखण्डवालेने गणेशसे, सूर्यपुरा-णवालेने सूर्य्यसे और वायुपुराणवालेने वायुसे सृष्टिकी उत्पत्ति प्रखंग छिखके पुनः एक एकसे एक एक जो जगत्के कारण छिखे उनकी **उत्पत्ति एक एकसे लिखी। कोई पूछे कि जो जगत्**की उत्पत्ति स्थिति प्रस्य करनेवाला है वह उत्पन्न और जो उत्पन्न होता है वह सिब्दिका कारण कभी हो सकता है वा नहीं ? तो केवल चुप रहनेके सिवाय कुछ भी नहीं कह सकते और इन सबके शरीरकी उत्पत्ति भी इसीसे हुई होगी फिर वे आप सृष्टि पदार्थ और परिच्छित्र होकर संसारकी उत्पत्तिके कर्ता व्योंकर होसकते हैं ? और उत्पत्ति भी बिख्क्षण २ प्रकारसे मानी है जो कि सर्वथा असम्भव है जैसे -- इ शिवपुराणमें शिवने इच्छा की कि में सृष्टि करूं तो एक नारायण

कारामयको उत्पन्न कर उसकी नाभीते कमल, कमल्पेंसे ब्रह्मा उत्पन्न हमा। उसने देखा कि सब जलमय है। जलकी अञ्जलि उठा देख जलमें पटक दी। उससे एक बुद्बुदा उठा और बुद्बुदेमेंसे एक पुरुष **बत्यत्न हुआ।** उसने ब्रह्मासे कहा कि हे पुत्र । सुष्टि उत्पन्न कर । **ब्रह्मा**ने उससे कहा कि मैं तेरा पुत्र नहीं किन्तु तू मेरा पुत्र है। उनमें विवाद हुआ और दिव्यसहस्र वर्षी वर्यन्त दोनों जल पर लड़ते रहे। तब महादेवने विचार किया कि जिनको मैंने सुब्दि करनेके लिये मेजा था वे दोनों आपसमें लड मागड रहे हैं। तब उन दोनोंके बीचमें से एक तेजोमय लिंग उत्पन्न हुआ और वह शीघ आकाशमें चला गया उसको देखके दोनों आश्चर्य हो गये। विचारा कि इसका आदि अन्त होना चाहिये। जो आदि अन्त होके शीव आवे वह पिता और जो पीछे वा थाह लेके न आवे वह पुत्र कहावे। विष्णु कुर्मका स्वरूप धरके नीचेको चला और ब्रह्मा हंसका शरीर धारण करके ऊपरको **उडा । दोनों मनोबेगसे चले । दिव्यसहस्र वर्धपर्यन्त दोनों चलते रहे** तो भी उसका अन्त न पाया। तब नीचेसे ऊपर विष्ण और ऊपरसे नीचे ब्रह्माने विचारा कि जो वह छेडा छे आया होगा तो मुस्तको पुत्र बनना पड़ेगा। ऐसा सोच रहा था कि उसी समय एक गाय और एक केतकीका वक्ष उत्परसे उतर आया उनसे ब्रह्माने पूछा कि तम कहांसे अत्ये ? उन्होंने कहा हम सहस्र वर्षोंसे इस छिंगके आधारसे चले आते हैं। ब्रह्माने पूछा कि इस लिंगका थाह है वा नहीं ? उन्होंने कहा कि नहीं। ब्रह्माने उनसे कहा कि तुम हमारे साथ चली और ऐसी साक्षी देओ कि मैं इस लिंगके शिर पर दूधकी धारा वर्षाती थी मीर वृक्ष कहे कि मैं फूछ वर्षाता था, ऐसी साक्षी देओ तो मैं तुमको ठिकान पर ले चर्छ। उन्होंने कहा कि हम फ़ुठी साक्षी नहीं देगें। तब बद्धाः कुपित हो कर बोछा जो साक्षी नहीं देओगे तो मैं तुमको अभी भस्म कर देता हूं ! तब दोनोंने डरके कहा कि हम जैसी तुम . **डरते हो** वैसी साक्षी देवेंगे। तब तीनों नीचेकी आरे चळे। बिज्य

प्रथम ही आगये थे ब्रह्मा भी पहुंचा। विष्णुसे पूछा कि तू थाह हे आया बा नहीं १ तब विष्णु बोला सुमत्को इसका थाह नहीं मिला, ब्रह्माने कहा मैं ले भाया। विष्णुने कहा कोई साक्षी देओ। तब गांय और कुक्षने साक्षी दी। हम दोनों लिंगके शिर पर थे। तब लिंगमेंसे शब्द निकला और वृक्षको शाप दिया कि जिससे तू मूळ बोला इसिल्पे तेरा फुछ मुम्म वा अन्य देवता पर जगतुमें कहीं नहीं चढेगा और जो कोई चढ़ावेगा उसका सत्यानाश होगा। गायको शाप दिया कि जिस मलसे त मठ बोली उसीसे विष्ठा खाया करेगी। तेरे मुखकी पूजा कोई नहीं करेगा किन्तु पूंछकी करेंगे। और ब्रह्माको शाप दिया कि जिससे तू मिथ्या बोळा इसलिये तेरी पूजा संसारमें कही नहीं होगी। भौर विष्णुको वर दिया कि जिससे तु सत्य बोला इससे तेरी पूजा सर्वत्र होगी। पुनः दोनोंने लिंगकी स्तुति की। उससे प्रसन्न होकर उस लिंगमेंसे एक जटाजूट मृतिं निकउ आई और कहा कि तुमको मैंने सुंब्टि करनेके छिये भेजा था महारेमें क्यों छगे रहे १ ब्रह्मा और विष्णुने कहा कि हम विना सामग्री सृष्टि कहांसे करें। तब महादेवने अपनी जटामेंसे एक भस्मका गोला निकाल कर दिया कि जाओ इस-मेंसे सब सृष्टि बनाओ इत्यादि। भला कोई इन पुराणोंके बनाने बाले पोपोंसे पूछे, कि जब सुष्टि तस्त्र और पंचमहाभूत भी नहीं थे तो ब्रह्मा विष्णु महादेवके शरीर, जल, कमल, लिंग, गाय और केतकी का वृक्ष और भस्मका गोला क्या तुम्हारे बाबाके घरमेंसे आगिरे ?

वैसे ही भागवतमें विष्णुकी नाभिसे कमल, कमलसे नहा। और नहाके दहिन पगके अंगूठेन स्वायमुव और बार्ये अंगूठेसे सत्यरुष रानी, ललाटसे रुद्र और मरीचि आदि दश पुत्र, उनसे दश प्रजापति, उनकी तेरह लड़िक्योंका विवाह कश्यपसे, उनमेंसे दितिसे दैत्य, दनुसे हानव अदितिसे आदित्य, विनतासे पश्ची, कहूसे सर्प सरमासे इत्ते, स्याल आदि और अन्य क्रियोंसे हाथी, बोहे, ऊंट, गधा, भैसा, भास, फूस और बबूर आदि वृक्ष कांटे सहित उत्पन्न हो गये। बाहरेबाह!

एकादश

भागवतक बनाने वाले ल लबुमकड़ ! क्या कहना तुमको, ऐसी मिथ्या बातें लिखनेमें तनिक भी लजा और शरम न आई निपट अध्या ही बन गया। भला श्री पुरुषके रजवीयके संयोगसे मनुष्य तो बनते ही हैं परन्तु परमेश्वरकी सृष्टिकमके विरुद्ध पशु, पश्नी, सर्प आदि कभी उत्पन्न नहीं हो सकते। और हाथी, ऊट, सिंह, कुत्ता, गथा और पृश्लादिका श्ली के गर्भाशयमें स्थित होनेका अवकाश भी कहां हो सकता है ? और सिंह आदि उत्पन्न होकर अपने मा बापको क्यों न खागये ? और मनुष्य-शरीरसे पशु पश्ली वृक्षादिका होना क्योंकर संभव हो सकता है ? धिकार है पोप और पोपरचित इस महा असम्मव लीलाको जिसने संसारको अभी तक श्रमा रक्खा है । भला इन महा मूठ बातोंको वे अधे पोप और बाहर भीतरकी फूटी आंखों बाले उनक चेले सुनते और मानते हैं । बड़े ही आश्चर्यकी बात है कि ये मनुष्य है वा अन्य कोई !!! इन भागवतादि पुराणोंके बनाने बाले क्यों नहीं गर्भ ही में नष्ट होगये ? वा जन्मते समय मर क्यों न गये ? क्योंकि इन पापोंसे बचते तो आर्यार्क्त देश दुःखोंसे बच जाता।

प्रश्त—इन बातों में विरोध नहीं आसकता क्योंकि "जिसका विवाह उसीका गीत" जब विष्णुकी स्तुति करने छगे तब विष्णुको परमेश्वर अन्यको दास, जब शिवके गुण गाने छगे तब शिवको परमात्मा अन्यको किंकर बनाया। और परमेश्वरकी मायामें सब बन सकता है। मनुष्यसे पशु आदि और पशु आदिसे मनुष्यादिकी उत्पत्ति परमेश्वर कर सकता है देखो। विना कारण अपनी मायासे सब सृष्टि खड़ी कर दी है। उसमें कोनसी बात अघटित है १ जो करना चाहे सो सब कर सकता है।

उत्तर—अरे भोले लोगो ! विवाहमें जिसके गीत गाते हैं उसकी सबसे बड़ा और दूसरोंको छोटा वा निन्दा अथवा उसको सबका बाप तो नहीं बनाते ? कही पोपजी तुम भाट और खुशामदी चारणोंसे भी बढ़कर गण्पी हो अथवा नहीं ? कि जिसके पीछे छगो उसीको सबसे

षडा बनाओ और जिससे विरोध करो उसको सबसे नीच ठहराओ। तुमको सत्य और धर्मसे क्या प्रयोजन ? किन्तु तुमको तो अपने स्वार्थ ही से काम है। माया मनुष्यमें हो सकती है। जो कि छली कपटी है उन्हींको मायावी कहते हैं। परमेश्वरमें छल कपटादि द व न होनेसे उसको मायावी नहीं कह सकते। जो आदि सृब्टिमें कश्यप सौर कश्यपकी स्त्रियोंसे पशु, पक्षी, सर्प्, वृक्षादि हुए होते तो आज-कल भी वैसे सन्तान क्यों नहीं होते ? सृष्टिकम जो पहि ह लिख भाये वही ठीक है। और अनुमान है कि पोपजी यहींसे घोखा खाकर बके होंगे-

तस्मात् कारयप्य इमाः प्रजाः ॥ [शत० ७।४।१।४] शतपथमें यह लिखा है कि यह सब सुब्टि कश्यपकी बनाई

हुई है ॥

## कष्यपः कस्मात् पष्यको भवतीति ॥ निरु० [२।२]

स्रिटिकर्ता परमेश्वरका नाम कश्यप इसलिये है कि पश्यक अर्थात् "पश्यतीति पश्यः पश्य एव पश्यकः" जो तिर्धम होकर चरा-चर जगत सब जीव और इनके कर्म, सकल विद्याओंको यथावत् देखता है और "आद्यन्तविप्ययश्च" इस महाभाष्यके वचनसे आदिका अक्षर अन्त और अन्तका वर्ण आदिमें आनेसे "पश्यक"से "कश्यप" बन गया है। इसका अर्थ न जानके भांगके छोटे चढा अपना जन्म सुष्टिविरुद्ध कथन करनेमें नष्ट किया।।

जैसे मार्कण्डेयपुराणके दुर्गापाठमें देवोंके शरीरोंसे तेज निकलके एक देवी बनी उसने महिषासुरको मारा। रक्तवीजके शरीरसे एक बिन्दु भूमिमें पड़तेसे उसके सदश रक्तवीजके उत्पन्न होतेसे सब जग-तुमें रक्तबीज भरजाना, कथिरकी नदी वह चलनी आदि गपोड़े बहुतसे छिख रक्ते हैं। जब रक्तबीजसे सब जगन भरगया था तो देवी और देवीका सिंह और उसकी सेना कहां रही थी ? जो कही कि देवीसे हूर २ रक्तवीज थे तो सब जगन् रक्तवीजसे नहीं भरा था १ जो भर जाता तो पशु, पक्षी, मनुष्यादि प्राणी ब्योर जलस्थ मगर, मच्छ, कच्छप, मत्स्यादि वनस्पति आदि वृक्ष कहां रहते १। यहां यही निश्चित जानना कि दुर्गापाठ बनानेवाले पोपके घरमें भागकर चले गये होंगे।।! देखिये क्या ही असम्भव कथाका गपोड़ा भक्ककी सहरों में उहाया जिनका ठौर न ठिकाना॥

अब जिसको "श्रीमद्भागवत" कहते हैं उसकी लीला सुनो । **त्रद्धा-**नीको नारायणन चतुःश्लोकी भागवतका उपदेश किया—

## ज्ञानं परमगुर्खां मे यद्विज्ञानसमन्वितम् । सरहस्यं तदङ्गश्च गृहाण गदितं मया ॥

| भा० स्कं∙ २ । अ० ६ । श्लोक ३० ]

जब भागवतका मूल ही सूक्ता है तो उसका वृक्ष क्यों न सूठा होगा?

अर्थ—हे ब्रह्माजी । तू मेरा परमगुद्ध झान जो विझान और रहस्ययुक्त और धर्म अर्थ काम मोश्रका अक्क हे उसीको मुम्मसे महण कर। जब विझानयुक्त झान कहा तो परम अर्थात् झानका विशेषण रखना वर्थ है और गुद्ध विशेषणसे रहस्य भी पुनक्क है। जब मूढ इसीक अनर्थक है तो मन्थ अनर्थक क्यों नहीं १ ब्रह्माजीको वर हिया कि—

## भवानकरपविकरपेषु न विमुद्यति कर्हिचित्॥

भाग । स्कं २। स० १। यखोक ३६]

आप करूप सृष्टि और विकरण प्रख्यमें भी मोहको कभी न प्राप्तः होंगे ऐसा खिलके पुनः दशमस्कन्धमें मोहित होके बरसहरण किया। इन नेनोंमेंसे एक बात सच्ची दूसरी भूठी। ऐसा होकर दोनों बातः भूका। जब वैकुण्ठमें रागः, द्वेष, क्रोध, ईच्यां, दुःख नहीं है तो सनकार दिकोंको वैकुण्ठके द्वारमें कोब क्यां, दुक्त १ जो कोष हुवा तो बहर

## सम्रुक्तास] श्रीमद्भागवतकी लीला। ४४६

र्स्था ही नहीं। तब जय विजय द्वारपाल थे। स्वामीकी आज्ञा पालनी **भवश्य थी। उन्होंने सनकादिकोंको रोका तो क्या अपराध हुआ** १ इस पर विना अपराध शाप ही नहीं लग सकता। जब शाप लगा कि तम प्रथिवीमें गिर पड़ो इसके कहनेसे यह सिद्ध होता है कि वहां पृथिवी न होगी। आकाश, वाय, अग्नि और जल होगा तो ऐसा द्वार मन्दिर और जल किसके आधार थे ? पुनः जय विजयने सर्नका-दिकोंकी स्तुति की कि महाराज। पुनः हम वैक्राग्ठमें कब आवेंगे। इन्होंने इनसे कहा कि जो प्रेमसे नारायणकी भक्ति करोगे तो सानवें जनम और जो विरोधसे भक्ति करोगे तो तीसरे जनम वैक्रावको प्राप्त होओगे । इसमें विचारना चाहिये कि जय विजय नारायणके नौकर थे। उनकी रक्षा और सहाय करना नारायणका कत्तन्य काम था। जो अपने नौकरोंको विना अपराध दुःख देवें उनको उनका स्वामी दंड न देवे तो उसके नौकरोंकी दुर्दशा सब कोई कर डाले। नाराय-णको उचित था कि जय विजयका सत्कार सनकादिकोंको खब दण्ड देते क्योंकि उन्होंने भीतर आनेके लिये हठ क्यों किया ? और नौक रोंसे छड़े क्यों १ शाप दिया उनके बदले सनकादिकोंको पृथिवीमें डाळ देना नारायणका न्याय था। जब इतना अन्धेर नारायणके घरमें है तो उसके सेवक जो कि वैष्णव कहाते हैं उनकी जितनी दुर्दशा हो **इतनी थोडी है। पनः वे हिरण्याक्ष और हिरण्यकश्यप उत्पन्न हए। उनमेंसे हिरण्याक्षको वराहने मारा**। उसकी कथा इस प्रकारसे लिखी है कि वह पृथिवीको चटाईके समान छपेट शिराने घर सो गया। विष्णुने बराहका स्वरूप धारण करके उसके शिरके नीचेते पृथिवीको मुखमें धर लिया वह उठा। दोनोंकी लड़ ई हुई। वराहने हिरण्याक्षको मारताला। इन पोपोंसे कोई पूछे कि पृथिवी गोल है वा चटाईके समान १ तो कुछ न कह सकेंगे, क्योंकि पौराणिक छोग भगोछविद्यांके शब हैं। भला जब लपेट कर शिराने धरली आप किस पर सोया ? और बराह किस पर पग धरके दौड अ.ये १ प्रित्वीको तो बराहजीने

मुखमें रखली फिर दोनों किस पर खड़े होके लड़े ? वहां तो और कोई ठहरनेकी जगह नहीं थी किन्तु भागवतादि पुराण बनानेवाले पोपजी की छाती पर खड़े होके छड़े होंगे ? परन्तु पोपजी किस पर सोया होगा १ यह बात इस प्रकारकी है जैसे "गप्पीके घर गप्पी आये बोले गप्पीजी" जब मिथ्यावादियोंके धरमें दूसरे गप्पी छोग आते हैं फिर गप्प मारनेमें क्या कमती। अब रहा हिरण्यकश्यप उसका लडका जो प्रह्लाद् था वह भक्त हुआ था। उसका पिता पढ़ानेको पाठशालामें भेजता था। तब वह अध्यापकोंसे कहता था कि मेरी पट्टीमें राम राम छिख देओ। जब उसके बापने सुना उससे कहा तू हमारे शत्रुका भजन क्यों करता है ? छोकड़ेने न माना। तब उसके बागने उसको बांधके पहाडसे गिराया, कृपमें डाला, परन्तु उसको कुछ न हुना । तब उसने एक छोहेका खंमभा आगीमें तपाके उससे बोठा जो तेरा इष्टदेव राम सच्चा हो तो तू इसको पकड़नेसे न जलेगा प्रह्वाद पकड़नेको चला। मनमें शंका हुई जलनेसे बच्चंगा वा नहीं ? नारायणने उस संभे पर छोटी २ चीटियोंकी पंक्ति चलाई। उसको निश्चय हुआ। माट खंमेको जा पकडा । वह फट गया, उसमेंसे नृसिंह निकला और उसके बापको पकड पेट फाडडाला। पश्चात् प्रह्लादको लाडसे चाटने लगा। प्रह्लाद से कहा वर माँग। उसने अपने पिताकी सद्गति होनी मांगी। नृसिं-इते वर दिया कि तेरे इकीस पुरुषे सदूगतिको गये। अब देखो। यह भी दूसरे गपोड़ेका भाई गपोड़ा है। किसी भागवत सुनने वा बांचने-वालेको पकडके अपरसे गिरावे तो कोई न बचावे चक्रनाचर होकर मर ही जावे। प्रह्लादको उसका पिता पहनेके लिये भेजना था क्या बुरा काम किया था ? और वह प्रह्वाद ऐसा मूर्ख पढ़ना छोड़ वैरागी होना चाहता था। जो जलते हुए खंभेसे कीडी चढ़ने लगी और प्र-ह्वाद स्पर्श करनेसे न जला इस बातको जो सच्ची माने उसको भी खंभेके साथ लगा देना चाहिये। जो यह न जरे तो ज.नो वह भी न मला होगा और नसिंह भी क्यों न जला १ प्रथम तीसरे जन्मम

बैड्रण्डमें आनेका वर सनकादिकका था। क्या उसको तुम्हारा नारा-यण भूल गया। भागवतकी रीतिस ब्रह्मा, प्रजापित, कश्यप, हिरण्याश्च और हिरण्यकश्यपु चौथी पीड़ीमें होना है। इकीस पीड़ी प्रह्मादकी हुई भी नहीं पुन: इकीस पुरुषे सद्गतिको गये कह देना कितना प्रमाद है। और फिर व ही हिरण्याक्ष, हिरण्यकश्यपु, रावण, कुम्भकरण, पुनः शिगुपाल दन्तवक उत्पन्न हुए तो नृसिहका वर कहां उड़ गया ? ऐसी प्रमादकी वातें प्रमादी करते, सुनते और मानते हैं विद्वान् नहीं। आर अकुरजी: —

## रथेन वायुवेगेन ॥ [भा० १०। ३६। रलोक ३८] जगाम गोकुलं प्रति।[भा० १०। ३८। रलोक २४]

अक्रूरजी कंसके भे नतेसे वायुके वेगके समान दौड़ने वाले घोड़ोंके रथ पर वैठके सुर्व्योदयसे चले ओर चार माल गोकुलमें सूर्यास्त समय पहुंचे अथवा घोड़े भागवत बनाने वालेकी परिक्रमा करते रहे होंगे १ वा मार्ग भूलकर भागवत बनाने वालेके घरमें घोड़े हांकने वाले और अक्रूरजी आकर सोगये होंगे १॥

पूतनाका शरीर छः कोश चौड़ा और बहुतसा लम्बा लिखा है।
मथुरा और गोकुलके बीचमें उसको मारकर श्रीकृष्णजीने डाल दिया।
ऐसा होता तो मथुरा और गोकुछ दोनों दवकर इस पोपजीका घर भी
दब गवा होता।।

और अजामेलकी कथा ऊउपटांग लिखी हे—उसने नारद्के कह-नेसे अपने लड़केका नाम "नारायण" रक्खा था । मरते समय अपने पुत्रको पुकारा । बीचमें नारायण कृद् पड़े । क्या नारायण उसके अन्तः-करणके भावको नहीं जानते थे कि वह अपने पुत्रको पुकारता है सुम्मको नहीं । जो ऐसा ही नाम माहात्म्य है तो आजकल भी नारायणके स्मरण करनेवालोंके दुःख लुड़ानेको क्यों नहीं आते । अहि यह बात सच्ची हो तो केही लोग नारायण २ करके क्यों नहीं हुट जाते ? ऐसा ही ज्योतिष् शास्त्रसे विरुद्ध सुमेरु पर्वतका परिमाण लिखा है और प्रियन्नत राजाके रथके चन्नकी लीकसे समुद्र हुए उच्चास कोटि योजन पृथिवी है। इत्यादि मिथ्या बानोंका गपोड़ा भागवतमें लिखा है जिसका कुछ पारावार नहीं॥

और यह भागवत बोबदेवका बनाया है जिसके भाई जयदेवते गीतगोविन्द बनाया है। देखो ! उसने यह रहोक अपने बनाये "हिमाद्रि" नामक प्रन्थमें छिखे हैं कि श्रीमद्भागवतपुराण मैंने बनाया है उस लेखके तीन पत्र हमारे पास थे। उनमेंसे एक पत्र खोगया है। उस पत्रमें रहोकोंका जो आशाय था उस आशायके हमने दो रहोक बनाके नीचे छिखे हैं जिसको देखना हो वह हिमाद्रि प्रन्थमें देख लेवे।।

हिमाद्रेः सचिवस्यार्थे सूचना क्रियतेऽधुना । स्कन्धाऽध्यायकथानां च यत्प्रमाणं समासतः॥१॥ श्रीमद्भागवतं नाम पुराणं च मयेरितम् । विदुषा बोबदेवेन श्रीकृष्णस्य यशोन्वितम् ॥२॥

इसी प्रकारके नष्टपत्रमें श्लोक थे अर्थात् राजाके सिचव हिमाद्रिने बोबदेव पण्डितसे कहा कि मुम्हको तुम्हारे बनाये श्रीमद्भागततके सम्पूर्ण सुननेका अवकाश नहीं है इसिटिये तुम संक्षेपसे श्लोकबद्ध सूचीपत्र बनाओ जिसको देखके में श्रीमद्भागवतकी कथाको संक्षेपसे जान छूं। सो नीचे लिखा हुआ सूचीपत्र उस बोबदेवने बनाया। उसमेंसे उस नष्टपत्रमें १० श्लोक सोगये हैं ग्यारहवें श्लोकसे लिखते हैं, ये नीचे लिखे श्लोक सव बोबदेवके बनाये हैं वे—

बोधन्तीति हि पाहुः श्रीमद्भागवतं पुनः। पश्च प्रश्नाः शौनकस्य स्तृतस्यात्रोत्तरं त्रिषु॥११॥ प्रश्नावतारयोश्चैव व्यासस्य निवृतिः कृतात्। समुद्धास] श्रीकृष्णके चरित्रपर लाञ्छन । ४५३ नारदस्यात्र हेतृक्तिः प्रतील्थं खजन्म च ॥१२॥ स्रुप्तव्नं द्रौण्यभिभवस्तदस्त्रात्पाण्डवा वनम् । भीष्मस्य स्वपदप्राप्तिः कृष्णस्य द्वारिकागमः ॥१३॥ श्रोतुः परोक्षितो जन्म धृतराष्ट्रस्य निर्गमः । कृष्णमर्त्यत्यागसूचा ततः पार्थमहापथः ॥ १४॥ हत्यष्टादशभिः पादैरध्यायार्थः क्रमात् स्मृतः । स्वपरप्रतिवन्धोनं स्कीतं राज्यं जही जृपः ॥१५॥ इति वैराज्ञो दार्ख्योक्तौ प्रोक्ता द्रौणिजयादयः ।

इति प्रथमः स्कन्धः ॥ १ ॥

इत्यादि बारह स्कन्धोंका सृचीगत्र इसी प्रकार बोबदेव पण्डितने बनाकर हिमाद्रि सचिवको दिया। जो विस्तार देखना चाहे वह बोब-देवके बनाये हिमाद्रि प्रन्थमें देख छेवे। इसी प्रकार अन्य पुराणोंकी भी छीछा सममनी परन्तु उन्नीस बीस इक्कीस एक दूसरेसे बढ़कर है।

देखो ! श्रीकृष्णजीका इतिहास महाभारतमें अत्युत्तम है । उसका गुण, कर्म, स्वभाव और चिरत्र झाप्त पुरुषों के सदश है । जिसमें कोई व्यध्मका आचरण श्रीकृष्णजीने जन्मसे मरणपर्यन्त बुरा काम कुछ भी किया हो ऐसा नहीं लिखा और इस भागवतवालेने अनुचित मनमाने दोष लगाये हैं। दूध, दही, मक्खन आदिकी चोरी और कुळ्जा दासीसे समागम, परस्त्रियोंसे रासमण्डल, क्रीड़ा आदि मिथ्या दोष श्रीकृष्णजीमें लगाये हैं। इसको पढ़ पढ़ा, सुन सुनाके अन्य मत वाले श्रीकृष्णजीको बहुत सी निन्दा करते हैं। जो यह भागवत न होता तो श्रीकृष्णजीके सहश महात्माओंकी भूठी निन्दा क्योंकर होती ? शिवपुराणमें बारह ज्योतिलिंग और जिनमें प्रकाशका लेश भी नहीं रात्रिको विना दीप किये लिक्स भी अन्धेरेमें नहीं दीखते ये सब लीका

पोपजी की हैं।

प्रश्न—जन वेद पढ़नेका सामर्थ्य नहीं रहा तब स्मृति, जन स्मृतिके पढ़नेकी बुद्धि नहीं रही तब शांख, जब शाख्य पढ़नेका सामर्थ्य न रहा तब पुराण बनाये, केवल स्त्री और शूट्रोंके लिये. क्योंकि इनको वेद पढ़ने सुननेका अधिकार नहीं है।

उत्तर —यह बात मिथ्या है, क्योंकि सामर्थ्य पढ़ने पढ़ाने ही से होता है और वेद पढ़ने सुननेका अधिकार सबको है देखो गार्गी आदि खियां और छान्द्रोग्यमें जानश्रुति शूद्रने भी केद "रैक्यमुनि" के पास पढ़ा था और यजुर्वेदक २६ वें अध्यायके २ रे मन्त्रमें स्पष्ट लिखा है कि वेदोंके पढ़ने और सुननेका अधिकार मनुष्यमात्रको है। पुनः जो ऐसे २ मिथ्या प्रन्थ वना लोगोंको सत्यप्रन्थोंसे विमुख जालने फँसा अपने प्रयोजनको साधते हैं वे महापापी क्यों नहीं ?

े देखो प्रहोंका चक्र कैसा चलाया है कि जिसने विद्याहीन मनुष्यों को प्रस लिया है। "आकृष्णेन रजसा०। १। सूर्यका मन्त्र। "इमं देवा असपक्रथ्यं सुवध्वम्•"। २। चन्द्र•। "अनिर्मूर्द्धा दिवः ककु-रपिति•"। ३। मङ्गल। "उद्बुध्यस्वाग्ने•"। ४। बुध। "बृहस्पते अतियद्यों•"। १। बृहस्पति। "शुक्रमन्धसः"। ६। शुक्र। "शन्तो देवी रिभष्टय•। ७। शनि। "कया निश्चत्र आसुव•"। ८। राहु। और "केतुं कृण्वत्र केतवे"। ६। इसको केतु की कण्डिका कहते हैं।

(आश्रणो०) यह सूर्य और भूमिका आकर्षण ११। दूसरा राज-गुण विधायक १२। तीसरा अग्नि ।३। और चौथा यजमान १४। पांचवां विद्वान १४। छठा वीय अत्र ।६। सातवां जल, प्राण और परमेश्वर १७। आठवां मित्र १८। नववां झानमहणका विधायक मन्त्र है।१। महोंके वाचक महीं। अर्थ न जाननेसे भ्रमजालमें पड़े हैं।

प्रभ-प्रशंका फल होता है वा नहीं १

उत्तर—जैसा पोपळीखाका है वैसा नहीं, किन्तु जैसा सूर्य चन्द्र-माकी किरण द्वारा उज्जता सीतता अथवा सृतुवत्काळचकका सम्बन्ध- मात्रसे अपनी प्रकृतिके अनुकूछ प्रतिकूछ सुख दुःखके निमित्त होते हैं। परन्तु जो पोपळीळावाळे कहते हैं सुनी "महाराज सेठजी! यजमानो तुम्हारे आज आठवां चन्द्र सूर्यादि क्रूर घरमें आये हैं। अढ़ाई वर्षका शनेश्चर परामें आया है। तुमको बड़ा विन्न होगा। घर द्वार खुड़ाकर परदेशमें घुमावेगा। परन्तु जो तुम महोंका दान, जप, पाठ, पूजा, कराओगे तो दुःखसे बचोगे"। इनसे कहना चौहिये कि सुनो पोपजी! तुम्हारा और महोंका क्या सम्बन्ध है १ मह क्या वस्तु है ?

पोपजी--

### दैवाधीनं जगत्सर्वं मन्त्राधीनाश्च देवताः । ते मन्त्रा ब्राह्मणाधीनास्तस्माद् ब्राह्मणदैवतम् ॥

देखो कैसा प्रमाण है। देवताओं के आधीन सब जगत, मन्त्रों के आधीन सब देवता और ये मन्त्र ब्राह्मणों के आधीन हैं। इस्रलिये ब्राह्मण देवता कहाते हैं। क्यों कि चाहें उस देवताको मन्त्रके बलसे बुला प्रसन्न कर काम सिद्ध करानेका हमारा ही अधिकार है जो हममें मन्त्रशक्ति न होती तो तुम्हारेसे नास्तिक हमको संसारमें रहने ही न देते।

सत्यवादी—जो चोर, डाकू, कुकमीं लोग हैं वे भी तुम्हारे देवता-श्रोंके आधीन होंगे ? देवता ही उनसे दुष्ट काम कराते होंगे ? जो वैसा है तो तुम्हारे देवता और राक्षसोंमें , कुछ भेद न रहेगा। जो तुम्हारे श्राधीन मन्त्र हैं उनसे तुम चाहो सो करा सकते हो तो उन मन्त्रोंसे देवताओं को वश कर राजाओं के कोष उठवाकर अपने घरमें भरकर बैठके आनन्द क्यों नहीं भोगते ? घर २ में शनैश्चरादिके तेल आदि छायादान लेने को मारे २ क्यों फिरते हो ? और जिसको तुम कुवेर मानते हो उसको वशमें करके चाहो जितना धन लिया करो। विचारे गरीवों को क्यों लुटते हो ? तुमको दान देनेसे यह प्रसन्न और न देनेसे अप्रसन्न होते हों तो हमको सूर्यादि प्रहों की प्रसन्नता अप्रसन्नता प्रत्यक्ष दिस्तका होते हों तो हमको साठवां सूर्य चन्द्र और दूसरेको तीसरा हो उन

दोनोंको ज्येष्ठ महीनेमें विना जूते पहिने तपी हुई भूमि पर चलाओ। जिसपर प्रसन्न हैं उनके पग, शरीर न जलने और जिसपर क्रोधित हैं उनके जल जाने चाहिये तथा पौष मासमें दोनोंको नंगेकर पौर्णमासी की रात्रि भर मैदानमें रक्खें। एकको शीत लगे दूसरेको नहीं तो जानी कि वह कर और सौम्यदृष्टि वाले होते हैं। और क्या तुम्हारे वह सम्बन्धी है। और तुम्हारी डाक वा तार उनके पास आता जाता है ? अथवा तुम उनके वा वे तुम्हारे पास आते जाते हैं ? जो तुममें मन्त्र-शक्ति हो तो तुम स्वयं राजा वा धनाट्य क्यों नहीं बन जाओ ? वा शत्रओंको अपने वशमें क्यों नहीं कर हेते हो ? नास्तिक वह होता है जो वेद ईश्वरकी आज्ञा वेदविरुद्ध पोपलीला चलावे। जब तुमको प्रहदान न देवे जिसपर प्रह है वही प्रहदानको भोगे तो क्या चिन्ता है। जो तुम कहो कि नहीं हम हीको देनेसे वे प्रसन्त होते हैं अन्यको देनेसे नहीं, तो क्या तुमने प्रहोंका ठेका ले लिया है ? जो ठेका लिया हो तो सूर्यादिको अपने घरमें बुलाके जल मरो। सच तो यह है कि सूर्यादे होक जड है। वे न किसीको दुःख और न सुख देनेकी चेष्टा कर सकते हैं, किन्तु जितने तुम प्रहदानो रजीवी हो वे सब तम महोंकी मूर्त्तियां हो क्योंकि मह शब्दका अर्थ भी तुममें ही घटित होता है। "ये गृह्णन्ति ते प्रतः" जो प्रहण करते हैं उनका नाम प्रह है। जब तक तुम्हारे चरण राजा, रईस, सेठ, साहूकार और दरिद्रोंके पास नहीं पहुचते तब तक किसीको नवप्रहका स्मरण भी नहीं होता जब तुम साक्षात् सूर्य शनैश्चरादि मूर्तिमान क्रूर रूप घर उनपर जा चढ़ते हों तब विना प्रहण किये उनको कभी नहीं छोडते और जो कोई तुम्हारे ष्रासमें न आवे उसकी निन्दा नास्तिकादि शब्दोंसे करते फिरते हो ।

पोपजी—देखो ! ज्योतिष्का प्रत्यक्ष फल । आकाशमें रहनेवाले पूर्य चन्द्र और राहु केतुका संयोग रूप प्रहणको पहिले ही कह देते हैं। जैसा यह प्रत्यक्ष होता है वैसा प्रहोंका भी फल प्रत्यक्ष हो जाता है। देखो धनाड्य, दरिद्र, राजा, रह्न, सुखी, दुखी महोंही से होते हैं। सत्यवादी—जो यह प्रहणरूप प्रत्यक्ष फल है सो गणितविद्याका है फलिनका नहीं। जो गणितविद्या है वह सच्ची और फिलितविद्या स्वाभाविक सम्बन्धजन्यको छोड़क मूठी है। जैसे अनुलोम, प्रतिलोम, घूमनेवाले पृथिवी और चन्द्रके गणितसे स्पष्ट विदित होता है कि अमुक समय अमुक देश, अमुक अवयवमें सूर्य वा चन्द्र-महण होगा, जैसे—

# छादयत्यर्कमिन्दुर्विधुं भूमिभाः॥

यह सिद्धान्तशिरोमणिका वचन है और इसी प्रकार सूर्यसिद्धा-न्तादिमें भी है अर्थात् जब सूर्य भूमिके मध्यमें चन्द्रमा आता है तब सूर्य प्रहण और जब सूर्य और चन्द्रके बीचमें भूमि आती है तब चन्द्र प्रहण होता है। अर्थात् चन्द्रमाकी छाया भूमि पर और भूमिकी छाया चन्द्रमा पर पड़ती है। सूर्य प्रकाशरूप होनेसे उसके सन्मुख छाया किसीकी नहीं पड़ती किन्तु जैसे प्रकाशमान सूर्य वा दीपसे देहादिकी छाया उल्टी जाती है वैसे ही प्रहणमें समम्तो । जो धनाड्य, दुरिद्र, प्रजा, राजा, रङ्क होते हैं वे अपने कर्मोंसे होते हैं प्रहोंसे नहीं। बहुतसे ज्योतिषी लोग अपने लडका लडकीका विवाह महींकी गणित [विद्या] के अनुसार करते हैं पुनः उनमें विरोध वा विधवा अथवा मृतस्त्रीक पुरुष होजाता है। जो फल सचा होता तो ऐसा क्यों होता ? इसलिए कर्मकी गति सच्ची और प्रहोंकी गति सुख दुःख भोगमें कारण नहीं। भळा पह आकाशमें और पृथिवी भी आकाशमें बहुत दूर पर हैं इनका सम्बन्ध कर्ता और कर्मोंके साथ साक्षात् नहीं। कर्म्म और कर्म्मके फलका कर्ता भोक्ता जीव और कर्मोंके फल भोगनेहारा परमात्मा है। जो तुम प्रहोंका फल मानो नो इसका उत्तर देओ कि जिस क्षणमें एक मनुष्यका जन्म होता है जिसको तुम ध्रुवा त्रुटि मानकर जन्मपत्र बनाते हो उसी समयमें भूगोल पर दूसरेका जनम होता है वा नहीं ? को कहो नहीं तो मूठ और जो कहो होता है तो एक चक्रवर्तीके सदश भूगोळमें दूसरा चक्रवर्ती राजा क्यों नहीं होता ? हां इतना तुम कह सकते हो कि यह लीला हमारे उदर भरनेकी है तो कोई मान भी लेवे।

प्रश्न—क्या गरुड़पुराण भी मूठा है ? उत्तर—हां अमत्य है ! प्रश्न—फिर मरे हुए जीवकी क्या गति होती है ? उत्तर—जैसे उसके कम हैं।

प्रश्न—जो यमराज राजा, चित्रगुप्त मन्त्री, उसके बड़े भयङ्कर गण कज्जलके पर्वतके तुल्य शरीरवाले जीवको पकड़कर ले जाते हैं पाप पुण्यके अनुसार नरक स्वर्गमें डालने हैं। उसके लिए दान, पुण्य, श्राद्ध, स्पंण गोदानादि वैतरणी नदी तरनेके लिये करते हैं। ये सब बातें मूठ क्योंकर हो सकती हैं।

खतर—ये सब बानें पोपछीछाकं गपोड़े हैं। जो अन्यत्रके जीव वहां जाते हैं उनका धर्मराज चित्रगुप्त आदि न्याय करते हैं तो वे यमछोक कीव पाप करें तो इसरा यमछोक मानना चाहिये कि वहां के न्यायाधीश उनका न्याय करें और पर्वतक समान यमगणों के शरीर हों तो दीखते क्यों नहीं ? और मरने वाले जीवको लेनेमें छोटे द्वारमें उनकी एक अंगुली भी नहीं जा सकती और सड़क गलीमं क्यों नहीं हक जाते। जो कहों कि वे सूक्ष्म देह भी धारण कर लेते हैं तो प्रथम पर्वतवत् शरीरकं बड़े २ हाड़ पोपजी विना अपने घरके कहां धरेंगे ? जब जङ्गलमं अगी लगती है तब एक दम पिपीलिकादि खीवोंके शरीर छूटते हैं। उनकों पकड़नेके खिये असंख्य यमके गण क्यांवें तो वहां अन्यकार होजाना चाहिये और जब आपसमे जीवोंको पकड़नेको दौड़ेंगे तब कभी उनके शरीर ठोकर खाजायंगे तो जैसे पहाड़के बड़े २ शिखर टूटकर पृथिवी पर गिरते हैं वैसे उनके बड़े २ अवयव गरुड़पुराणके बांचने सुननेवालोंके आगनमें गिर पहेंगे तो वे देश में तो वा वरका द्वार अथवा सड़क हक जायगी तो वे कैसे निकल

और चल सकेंगे ? श्राद्ध, तर्पण, पिण्डप्रदान उन मरे हुए जीवोंको ् तो नहीं पहुंचता किन्तु मृतकोंके प्रतिनिधि पोपजीके घर, उदर और हाथमें पहुंचता है। जो वैतरणीके छिए गोदान छेते हैं वह तो पोपजीके घरमें अथवा कसाई आदिके घरमें पहुंचता है। वैतरणी पर गाय नहीं जाती पुनः किसका पूंछ पकड कर तरेगा ? और हाथ तो यहीं जलाया वा गांड दिया गया फिर पूंछको कैसे पकड़ेगा १ यहां एक दृष्टान्त इस यातमें उपयक्त है कि-

एक जाट था। उसके घरमें एक गाय बहुत अच्छी और बीस सेर दूध देने वाली थी। दूध उसका बड़ा स्वादिष्ट होता था। कभी २ पोपजीके मुखमें भी पड़ता था। उसका पुरोहित यही ध्यान कर रहा था कि जब जाटका बुढ़ढा बाप मरने लगेगा तब इसी गायका संकल्प करा छूगा। कुछ दिनोंमें दैवयोगसे उसके बापका मरण समय आया। जीभ बन्द होगई और खाटसे भूमि पर हे लिया अर्थात् प्राण छोड़-नेका सयम आ पहुंचा। उस समय जाटके इष्ट मित्र और सम्बन्धी भी उपस्थित हुए थे। तब पोपजीने पुकारा कि यजमान। अब तू इसके हाथसे गौदान करा । जाट १०) रुपया निकाल पिनाके हाथमें रखकर बोला पढो संकल्प । पोपजी बोला वाह २ क्या बाप बारंबार मरता है ? इस समय तो साक्षान गायको छाओं जो दूध देती हो, बुड्ढी न हो, सब प्रकार उत्तम हो । ऐसी गौका दान कराना चाहिये ।

जाटजी हमारे पास तो एक ही गाय है उसके विना हमारे छड़केवालोंका निर्वाह न हो सकेगा इसलिये उसको न दूंगा। लो २०) रुपयेका सङ्कलप पढ देओ और इन रुपयोंसे दूसरी दुधार गाय छे हेना ।

पोपजी-वाहजी वाह । तुम अपने बापसे भी गायको अधिक समम्प्रते हो १ क्या अपने बारको वैतरणी नदीमें डुबाकर दुःख देना चाहते हो। तुम अच्छे सुपुत्र हुए ? तब तो पोपजीकी ओर सब कुटुम्बी होगये क्योंकि उन सबको पहिले ही पोपजीने बहका रक्छा शा और उस समय भी इशारा कर दिया। सबने मिछकर हठसे उसी गायका दान उसी पोपजीको दिला दिया। उस समय जाट कुछ भी न बोला। उसका पिना मरगया और पोपजी बच्छासहित गाय और दोहनेकी बटलोईको ले अपने घरमें गो बांच बटलोई घर पुनः जाटके घर आया और मृतकके साथ श्मशानभूमिमें जाकर दाहकर्मम कराया। वहां भी कुछ कुछ पोपलीला चलाई पक्षात् दशगात्र सपिंडी कराने आदिमें भी उसको मूंडा। महाब्राह्मणोंने भी लूटा और मुक्कड़ोंने भी बहुतसा माल पेटमें भरा अर्थात् जब सब किया हो चुकी तब जाटने जिस किसीके घरसे दूव मांग मूंग निर्वाह किया। चौदहवें दिन प्रातःकाल पोपजीके घर पहुंचा। देखे तो गाय दुह बटलोई भर, पोपजीकी उठनेकी तैयारी थी। इतने ही में जाटजी पहुंचे। उसको देख पोपजी बोला आइये। यजमान बैठिये!

जाटजी – तुम भी पुरोहितजी इधर आओ।

पोपजी—अच्छा दूध धर लाऊं।

जाटजी—नर्धी २ दूधकी बटलोई इधर लाओ। पोपजी बिचारे जा बैठे और बटलोई सामने धरदी।

जाटजी-तुम बडे भूठे हो।

पोपजी-क्या क्रुठ किया १

ज:टजी—कहो तुमने गाय किसलिये ली थी ?

पोबजी-नुम्हारे पिताके वैतरणी नदी तरनेके छिये ।

जाटजी अच्छा तो तुमने वैगरणी नदीके किनारे पर गाय क्पों नहीं पहुंचाई १ हम तो तुम्हारे भरोते पर रहे और तुम अपने घर बांध बैठे। न जाने मेरे मा बापने वैतरणी में कितने गोते खाये होंगे १

पोपजी—नहीं २ वहां इस दानके पुण्यके प्रभावसे दूसरी गाय बनकर उतार दिया होगा।

जाटजी-वैतरणी नदी यहांसे कितनी दूर और किथरकी स्रोर है ! पोपजी—अनुमानसे काई तीस कोड़ कोश दूर है क्योंकि उश्वास कोटि योजन पृथिवी है। और दक्षिण नैअन्य दिशामें वैतरणी नदी है। जाटजी—इतनी दूरसे तुम्हारी चिट्टी वा तारका समाचार गया को उसका उत्तर आया हो कि वहां प्राप्ति समाचार गया

हो उसका उत्तर आया हो कि वहां पुण्यकी गाय बन गई अमुकके पिताको पार उतार दिया दिखलाओ।

पोपजी— इमारे पास गरुड़पुराणके छेखके विना डाक वा तार-वर्की दूसरा कोई नहीं।

जाटजी—इस गरुड़पुराणको हम सचा कैसे मार्ने १ पोपजी—जैसे सब मानते हैं।

जाटजी—यह पुस्तक तुम्हारे पुरुषाओंने तुम्हारे जीविकाके लिये बनाया है क्योंकि पिताको बिना अपने पुत्रोंके कोई प्रिय नहीं। जब मेरा पिता मेरे पास चिट्टो पत्री वा तार भेजेगा तभी में वैतरणी नदीके किनारे गाय पहुँचा दूंगा और उनको पार उतार पुनः गायको घरमें ले बा दूधको में और मेरे लड़केवाले पिया करेंगे, लाओ। दूधकी भरी हुई बटलोई, गाय, बळड़ा लेकर जाटजी अपने घरको चला।

पोपजी—तुम दान देकर छेते हो तुम्हारा सत्यानाश हो जायगा। \*जाटजी—चुप रहो नहीं तो तेरह दिन छों दूधके विना जितना दुःख हमने पाया है सब कसर निकाल दूंगा। नव पोपजी चुप रहे और जाटजी गाय बछडा ले अपने घर पहुंचे।

जब ऐसे ही जाटजीकेसे पुरुष हों तो पोपळीळा संसारमें न चले। जो ये लोग कहते हैं कि दशगात्रके पिंडांसे दश अंग सपिण्डी करनेसे शरीरके साथ जीवका मेळ होके अंगुण्टमात्र शरीर बनके पश्चात् यमलोकको जाता है तो मरती समय यमदूनोंका आना व्यर्थ होता है। त्रयोदशाहके पश्चात् आना चाहिये जो शरीर बन जाता हो तो अपनी

भी सन्तान और इष्ट मित्रोंके मोहसे क्यों नहीं छोट आता है ? प्रश्न-स्वर्गमें कुछ भी नहीं मिलता जो दान किया जाता है वरी \* वहां मिलता है। इसिंखिये सब दान करने चाहियें। उत्तर—उस तुम्हारे स्वर्गसे यही लोक अच्छा जिसमें धर्मशाल। हैं, लोग दान देते हैं, इंग्ट मित्र और जातिमें खूब निमन्त्रण होते हैं, अच्छे २ दक्ष मिलते हैं, तुम्हारे कहने प्रमाणे स्वर्गमें कुछ भी नहीं मिलता ऐसे निर्देय, ऋषण, कंगले स्वर्गमें पोषजी जाकर खराब होंबें वहां भले २ मनुष्योंका क्या काम।

प्रश्न--जब तुम्हारे कहनेसे यमछोक और यम नहीं हैं तो मर-कर जीव कहां जाता ? और इनका न्याय कौन करता है ?

उत्तर—तुम्हारे गरुड़पुराणका कहा हुआ तो अप्रमाण है परन्तु को वेदोक्त है कि:—

#### यमेन, वायुना। सत्यराजन् [ य० २०। ४ ]

इत्यादि वेदवचनोंसे निश्चय है कि "यम" नाम वायुका है। शरीर छोड़ वायुके साथ अन्तरिक्षमें जीव रहते हैं और जो स्रत्यकर्ता पक्षपातरहित परमात्मा "धर्म्मराज" है वही सबका न्यायकर्ता है।

प्रश्न---- तुम्हारे कहनेसे गोदानादि दान किसीको न देना और न इन्छ दान पुण्य करना ऐसा सिद्ध होता है।

उतर—यह तुम्हारा कहना सर्वथा व्यर्थ है क्योंकि सुप्रज्ञोंको, परोपकारियोंको परोपकारार्थ सोना, चांदी, हीरा, मोती, माणिक, अन्न, जल, स्थान, बस्नादि दान अवश्य करना उचित है किन्तु कुपात्रोंको . कभी न देना चाहिये।

परन--- कुपात्र और सुपात्रका लक्षण क्या है १

उत्तर—जो छली, कपटी, स्वार्थी, विषयी, काम, क्रोध, लोभ, मोह सं युक्त, परहानि करनेवाले, लम्पटी, मिथ्यावादी, अविद्वान, कुसंगी, आलसी। जो कोई दाता हो उसके पास बारम्बार मांगना, धरना देना, ना किये परचात् भी हठतासे मांगते ही जाना, सन्तोष न होना, जो न दे उस ही निन्दा करना, शाप और गाळी प्रदानादि देना, अनेक बार जो संवा कर और एक वार न करे तो उसका शब्ब बन जाना,

#### ्सभुक्लास] सुपात्र कुपात्रांका लक्षण। ४६३

कपरसे साधुका वेश बना छोगोंको बहका कर ठगना और अपने पास पदार्थ हो तो भी मेरे पास कुछ भी नहीं है कहना, सबको फुसला फ़ुबल कर स्वार्थ सिद्ध करना, रात दिन भीख मांगने ही में प्रवृत्त रहना, निमन्त्रण दिये पर यथेष्ट भङ्गादि मादक द्रव्य खा पीकर बहु-तसा पराया पदार्थ खाना, पुनः उन्मत्त होकर प्रमादी होना, सत्य मार्ग का विरोध और कुठ मार्गमें अपने प्रयोजनार्थ चलना, वैसेही अपने चेलोंको केवल अपनी ही सेवा करनेका उपदेश करना, अन्य योग्य पुरुषोंकी संवा करनेका नहीं, सद्विद्यादि प्रवृत्तिके विरोधी, जगत्के व्यवहार अर्थात् स्त्री, पुरुष, माता, पिता, सन्तान, राजा, प्रजा, इष्ट-मित्रोंमें अप्रीति कराना कि ये सब असत्य हैं और जगत भी मिथ्या है, इत्यादि दुष्ट उपदेश करना अ।दि कुपात्रोंके लक्ष्मण हैं। और जो ब्रह्मचारी, जितेन्द्रिय, वेदादि विद्याके पढ्ने पढ़ानेहारे, सुशील, सत्यवादी, परोपकारप्रिय पुरुषार्थी, उदार, विद्या धर्मकी निरन्तर उन्नति करने-हारा, धर्मात्मा, शान्त, निन्दा स्तुतिमें हर्ष शोकरहित, निर्भय, उत्साही योगी, ज्ञानी, सृष्टिकम, वेदाज्ञा, ईश्वरके गुण कर्म स्वभावानुकूठ वर्त्त-मान करनेहारे न्यायकी रीतियुक्त पक्षपातरहित सत्योपदेश और सत्यशास्त्रोंके पढ़ने पढ़ानेहारेके परीक्षक, किसीकी व्हलो पत्तो न करें, प्रश्नोंके यथार्थ समाधानकर्ता, अपने आत्माके तुल्य अन्यका भी सुख दुःख, हानि, लाभ समम्मने व ले अविद्यादि क्लेश, हठ, दुराप्रहाऽभि-मानरहित, अमृतके समान आ मान और विषके समान मानको सम-मनेवाले सन्तोषी, जो कोई प्रीतिसे जितना देवे उतने ही से प्रसन्न, एक वार आपत्कालमें मांगे भी न देने वा वर्जने पर भी दुश्ल वा बुरी चेष्ठा न करना, वहां से मतट छोट जाना, उसकी निन्दा न करना, सुखी पुरुषोंके साथ मित्रता दुःखियों पर करुणा, पुण्यात्माओंसे आनन्द और पापियोंसे "उपेक्क्ष" अर्थात् रागद्वेषरहित रहनः, सय-मा ी, सत्यवादी, सत्यकारी, निष्कपट, ईर्ष्या द्वेषरक्ति, गंभीराशय, सत्युरुष धर्मसे युक्त और सर्वथा दुष्टाचारसे रहित, अपने नत मन धनको परोपकार करनेमें लगानेवाले, पराये सुस्वके लिये अपने प्राणींके भी समर्पितकर्त्ता इत्यादि शुभलक्षणयुक्त सुपात्र होते हैं। परन्तु दुर्भि-क्षादि आपत्कालमें अत्र, जल, वस्त्र और औषध पथ्य स्थानके अधि-कारी सब प्राणीमात्र हो सकते हैं।

प्रश्न-दाता कितने प्रकारके होते हैं ?

उत्तर—तीन प्रकारके—उत्तम, मध्यम और निकृष्ट । उत्तम दाता उसको कहते हैं जो देश काल और पात्रको जानकर सत्यविद्या धर्मकी कति रूप परोपकारार्थ देवे । मध्यम वह है जो कीर्ति वा स्वार्थके लिये दान करे । नीच वह है कि अपना वा पराया कुछ उपकार न कर सके किन्तु वेश्यागमनादि वा भांड भाट आदिको देने, देते समय तिरस्कार अपमानादि भी कुचेष्टा करे, पात्र कुपात्रका कुछ भी भेद न जाने किन्तु "सब अत्र बारह पसरी" बेचनेवालोंके समान विवाद लड़ाई, दूसरे धर्मात्माको दुःख देकर सुखी होनेके लिये दिया करे वह अधम दाता है। अर्थात् जो परीक्षापूर्वक विद्वान् धर्मात्माओंका सत्कार करे वह उत्तम और जो कुछ परीक्षा करे वा न करे परन्तु जिसमें अपनी प्रशंसा हो उसको मध्यम और जो अन्धाधुन्य परीक्षा रहित निष्फळ दान दिया करे वह नीच दाता कहाता है।

प्रश्न-दानके फल यहां होते हैं वा परलोकमें १

**ए**त्तर--सर्वत्र होते हैं।

प्रश्न—स्वयं होते हैं वा कोई फड़ देनेवाला है ?

बत्तर—फल देनेवाला ईश्वर है, जैसे कोई चोर डाक्नू स्वयं बंदी-घरमें जाना नहीं चाहता, राजा उसको अवश्य भेजता है। धर्मात्मा-ओं के सुखकी रक्षा करता, भुगाता, डाक्नू आदिसे बचाकर उनको सुखमें रखता है बैसा ही परमात्मा सबका पाप पुण्यके दुःख और सुखस्व फलेंको यथावत् भुगाता है।

प्रश्न—जो ये गरुड़पुराणादि प्रन्थ हैं वेदार्थ वा वेदकी पुष्टि करने बाले हैं वा नहीं १

**दत्तर—नहीं, किन्सु वेदके विरो**घी और उछटे च**छने हैं। तथा** क्षंत्र भी वैसे ही हैं। जैसे कोई मनुष्य एकका मित्र सब संसारका सन्न हो, वैसा ही पुराण और तंत्रका माननेवाला पुरुष होना है क्योंकि एक दूसरेसे विरोध करानेवाले ये प्रन्थ हैं। इनका मानना किसी मनुष्यका काम नहीं किन्तु इनको मानना पशुता है। देखो । शिवपुराणते त्रयो-इशी, स्रोमवार, बादित्यपुराणमें रिव, चन्द्रखण्डमें सोममह वाले, मंगल, बुद्ध, वृहस्पति, शुक्र, शनैश्चर, राहु, केतुके वैष्णव एकादशी, बामनकी द्वादशी, नृसिंह वा अनन्तकी चतुर्दशी, चन्द्रमाकी पूर्णमासी, हिम्पार्खेकी दशमी, दुर्गाकी नौमी, वसुओंकी अष्टमी मुनियोंकी सप्तमी कार्त्तिक खामीकी पष्ठी, नागकी पंचमी, गणेशकी चतुर्थी, गौरीकी तृतीया, अश्विनीकुमारकीद्वितीया, आद्यादेवीकी प्रतिपदः और पितरोंकी अमावास्या पुराणरीतिसे ये दिन उपवास करने हैं। और सर्वत्र यही लिखा है कि जो मनुष्य इन वार और निधियोंमें अन्नपान प्रहण करेगा वह नरकगामी होगा। अब पोप और पोपजीके चेळोंको चाहिये कि किसी वार अथवा किसी तिथिमें भोजन न करें क्योंकि जो भोजन बा पान किया तो नरकगामी होंगे। अब "निंणयसिन्धु" "धर्मसिन्धु" "त्रतार्क" आदि प्रनथ जो कि प्रमादी लोगोंके बनाये इ उन्हींमें एक २ व्रतकी ऐसी दुर्दशा की है कि जैसे एकादशीको शेव, दशमीविद्धा कोई द्वाइशीमें एक दशी व्रत करते हैं अर्थात क्या बड़ी विचित्र पोपलीला है कि भूखे मरनेमें भी वाद विवाद ही करते है जिसने एकादशीका व्रत चलाया है उसमें अपना स्वार्थपन ही है और दया कुछ भी नहीं वे कहते हैं:--

एकादश्यामन्त्रे पापानि वसन्ति ।

जिनने पाप हैं वे सब एकाद्शीके दिन अन्नमें वसते हैं। इस पोपजीसे पूछना चाहिये कि किसके पाप वसते हैं ? तेरे वा तेरे पिता आदिके ? जो सबके सब पाप एकादशीमें जा वसे तो एकादशीके दिन किसीको दुःख न रहना चाहिये। ऐसा तो नहीं होता किन्तु बळटा क्षुया आदिसे दुःख होता है दुःख पापका फल है। इससे भूखें मरना पाप है इसका बड़ा माहात्म्य बनाया है जिसकी कथा बांचके बहुत ठगे जाते हैं। उसमें एक गाथा है कि—

, ब्रह्मलोकमें एक वेश्या थी । उसने कुछ अपराध किया । उसको शाप हुआ। वह पृथिवीपर गिर उसने स्तुति की कि मैं पुनः स्वर्गमें क्योंकर **भास** हुंगी ? उसने कहा जब कभी एकादशीके व्रतका फल तुमे कोई देगा तभी तू र्स्वगमें आजायगी। वह विमान सहित किसी नगरमें गिर पड़ी। बहांके राजाने उससे पछा कि तू कौन है ? तब उसने सब वृत्तान्त कह सुनाया और कहा कि जो कोई मुम्सको एकादशीका फल बर्पण करे तो फिर भी स्वर्गको जा सकती हूं। राजाने नगरमें खोज कराया । कोई भी एकादशोका व्रव करनेवाला न मिला । किन्तु एक दिन 'िकसी शुद्र की पुरुषमें लड़ाई हुई थी। क्रोधसे स्त्री दिन रात भूखी रही थी। दैवयोगसे उस दिन एकादशी थी। उसने कहा कि मैंने एकादशी जानकर तो नहीं की अकस्मात् उस दिन भूखी रह गई थी। ऐसे राजाके सिपाहियोंसे कहा। तब तो वे उसकी राजाके सामने हे आये। उससे राजाने कहा कि तृ इस विमानको छू। उसने छुआ। देखो । उसी समय विमान ऊपरको उड़ गया। यह तो विना बाने एकादशीके व्रतका फल है जो जानके करे तो उसके फलका क्या पारावार है ! ! ! वाहरे आंखके अन्धे छोगो ! जो यह बात सच्ची हो तो हम एक पानकी बीड़ी, जो कि स्वर्गमें नहीं होती, मेजना चाहते हैं। सब एकादशी वाले अपना फल देदो । जो एक पानबीडा ऊपरको चला जायगा तो पुनः लाखों कोड़ों पान वहां मेजेंगे और हम भी एक। दशी किया करेंगे और जो ऐसा न होगा तो तुम छोगोंको इस भूखे मरने-रूप भापत्कालसे बचावेंगे। इन चौबीस एकादशियोंका नाम पृथक २ रक्खा है। किसीका "धनदा" किसीका "कामदा" किसीका "प्रतहा" रिक्सीका "निजला"। बहुतसे दारिद्र, बहुतसे कामी और बहुतसे निवसी छोग एकादशी करके बूढ़े हो गये और मर भी गये परन्तु धन, कामना और पुत्र प्राप्त न हुआ और ज्येष्ठ महीनेके शुक्छपक्षमें कि जिस समय एक घड़ी भर जल न पावे तो मनुष्य व्याक्ष्ठ हो जाता है वत करने वालोंको महादुःख प्राप्त होता है। विशेष कर बंगालेमें सब विधवा कियोंकी एकादशीके दिन बड़ी दुर्शा होती है। इस निद्यी कसाईको लिखते समय कुछ भी मनमें द्या न आई नहीं तो निंजलाका नाम सजला और पौष महीनेकी शुक्लपक्षकी एकादशीका नाम निंजला रख देना तो भी कुछ अच्छा होता। परन्तु इस पोपको द्यासे क्या काम ? कोई जीवो वा मरो पोपजीका पेट पूरा भरो"। भला गर्भ- चती वा सदोविवाहिता स्त्री, लड़के वा युवा पुरुषोंको तो कभी उपव स न करना चाहिये। परन्तु किसीको करना भी हो तो जिस दिन सर्जीण हो क्षुधा न लगे उस दिन शंकरावन् शर्वत वा दूध पीकर रहना चाहिये। जो भूसमें नहीं खाते और बिना भूसके भोजन करते हैं होनों रोगसागरमें गोते खा दुःख पाते हैं। इन प्रमादियोंके कहने लिखनेका प्रमाण कोई भी न करे।।

अब गुरु शिष्य मन्त्रोपदेश और मतमतान्तरके चिरित्रोंका वर्तमान कहते हैं। मूर्चिपूजक सम्प्रदायी छोग प्रश्न करते हैं कि वेद अनन्त हैं। मूर्चिद्की २१, यजुर्वेदकी १०१, सामवेदकी १००० और अधर्ववेदकी ६ शास्त्रा है। इनमेंसे थोड़ी सी शास्त्रा मिळती हैं शेष छोप होगई हैं। उन्हींमें मूर्तिपूजा और तीथीका प्रमाण होगा। जो न होता हो पुराणोंमें कहाँसे आता १ जब कार्य देखकर कारणका अनुमान होता है तब पुराणोंको देखकर मूर्तियूजामें क्या शंका है १

उत्तर—जैसे शाखा जिस बृक्षकी होती हैं उसके सदृश हुआ करती हैं विरुद्ध नहीं। चाहें शाखा छोटी बड़ी हों परन्तु उनमें विरोध नहीं हो सकता। वैसे ही जितनी शाखा मिछती हैं जब इनमें पाषा-णादि मूर्ति और जल स्थल विशेष तीथाँका प्रमाण नहीं मिलता तो उन लुप्त शाखाओं में भी नहीं था। और चार वेद पूर्ण मिलते हैं उनसे

विरुद्ध शाखा कभी नहीं हो सकती और जो विरुद्ध हैं उनको शाखा कोई भी सिद्ध नहीं कर सकता। जब यह बात है तो पुराण वेदोंकी शास्ता नहीं किन्तु सम्प्रदायीं छोगोंने परस्पर विरुद्धरूप ग्रन्थ बना रक्खें हैं। वेदोंको तुम परमेश्वरकृत मानते हो तो "आश्वलायनादि" भाष मुनियोंके नामसे प्रसिद्ध प्रंथोंको वेद क्यों मानते हो ? जैसे डाळी और पत्तोंके देखनेसे पीपळ, बड और आम्र आदि बुक्षोंकी परिचान होती है वैसे ही ऋषि मुनियों के किये वेदांग, चारों ब्राह्मण, अङ्क उपांग और उपवेद आदिसे वेदार्थ पहिचाना जाता है। इसीछिये इन प्रन्थोंको शाखा माना है। जो वेदोंसे विरुद्ध है उसका प्रमाण और अनुकूलका अप्रमाण नहीं हो सकता । जो तुम अदृष्ट शाखाओंमें मृत्ति भादिके प्रमाणकी कल्पना करोगे तो जब कोई ऐसा पक्ष करेगा कि लप्रशास्त्राओं ने वर्णाश्रम व्यवस्था उल्टी अर्थात् अन्यज और शुद्रका नाम ब्राह्मणादि और ब्राह्मणादिका नाम शूद्र अन्यजादि, अगमनीया-गमन, अकर्ताव्य कर्ताव्य, मिथ्याभाषणादि धर्म, सत्यभाषणादि अधिक आदि लिखा होगा तो तुम उसको वही उत्तर दोगे जो कि हमने दिया **अ**र्थान वेद और प्रसिद्ध शाखाओंमें जैसा ब्राह्मणादिका नाम ब्राह्मणादि भौर शुद्रादिका नाम शुद्रादि लिख बैसा ही अट्ट शाखाओं में भी मानना चाहिये नहीं तो वर्णाश्रम व्यवस्था आदि सब अन्यथा हो जायेंगे। भला जैमिनी, व्यास और पतलालिके समय पर्यन्त तो सक शास्त्र विद्यमान थीं वा नहीं ? यदि नहीं थीं तो तुम कभी निषेत्र न कर सड़ोगे और जो कही कि नहीं थे तो फिर शास्त्राओं के होनेका क्या प्रमाण है १ देखो जैमिनिके मीमांसामें सब कर्मकाण्ड, काञ्जल्जि मनिने थोगशास्त्रमें सब उपासनाकाण्ड और व्यासमुनिने शारीरिक सूत्रोंने सब ज्ञानकाण्ड वेदानुकूल लिखा है। उनमें पाषाणादि मुर्ति-पूजा वा प्रयागादि तीथोंका नाम निशान भी नहीं छिखा। छिखे कहां से ? जो कहीं वेदोंमें होता तो लिखे विना कभी नहीं छोड़ते इसलिये छप्त शाखाओंमें भी इन मूर्तिपूजादिका प्रमाण नहीं था । ये सब शाखा

# सम्रहास] मृत्तिपूजासे महापुरुषोंकी निन्दा । ४६६

चेद नहीं हैं क्योंकि इनमें ईश्वरक्कत वेदोंकी प्रतीक धरके व्याख्या और संसारी जनोंक इतिहासादि लिखे हैं, इसलिये वेदमें कभी नहीं होसकते। वेदोंमें तो केवल मनुष्यांको विद्याका उपदेश किया है। किसी मनुष्यका नाममात्र भी नहीं। इसलिये मूर्तिपूजाका सर्वथा खंडन है। देखों ! मूर्त्तिपूजासे श्रीरामचन्द्र, श्रीकृष्ण नारायण और शिव दिकी बडी रीनन्दा और उपहास होता है। सब कोई जानते हैं कि वे बड़े महारा-जाधिराज और उनकी स्त्री सीता तथा रुक्सिणी छक्ष्मी और पार्वती आदि महाराणियां थीं, परन्तु जब उनकी मूर्तियां मन्दिर आदिवें नखके पूजारी लोग उनके नामसे भीख मांगते हैं अर्थात उनकी भिखारी वन हे हैं कि आओ महाराज ! महाराजाजी सेठ साहूकारी ! दर्शन कीजिय, बैठिये, चरणामृत लीजिये, कुछ भेट चढाइये, महाराज सीताराम, कृष्ण हक्मिणी वा राधाकृष्ण, उक्ष्मीतारायण और महादेव पार्वतीजीको तीन दिनसे वालभोग वा राजभोग अर्थान् जलपान वा खानपान भी नहीं मिला है। आज इनके पास कुछ भी नहीं है सीता आदिको नथुनी आदि राणीजी वा सेठानीजी बनवा दीजिये, अत्र आदि भेजां तो रामऋष्णादिको भोग लगावें। वस्त्र सब फट गये हैं। मन्दिगके कोतं सब गिर पड़े हैं। उपरसं चूना है और दुष्ट चोर जो कुछ था उसे उठा हे गये कुछ ऊदरों [चूरों] ने काट कूट डाहे देखिये । एक दिन ऊदरांने ऐसा अनर्थ क्रिया कि इनकी आंख भी निकालक भाग गये। अब हम चांदीकी आंख न बना सके इसि अये कोड़ीकी लगादी है। रामलीला और रासमण्डल भी करवाते हैं, सीना-राम राध कृष्ण नाच रहे हैं राजा और महत्त आदि उनके संवक आनन्दमें बैठ हैं। मन्दिरमें सीतारामादि खड़े और पूजारी वा मह-न्तजी आसन अथवा, गड़दी पर तिकया लगाये बैठे हैं, महागरमीमें भी ताला लगा भीतर बंद कर देते हैं और आप सुन्दर हवामें पढ़ंग बिछाकर सोते हैं। बहुतसे पूजारी अपने नारायणको डब्बीमें बन्दकर ऊपरसे कपड़े आदि बांच गरेमें उटका लेते हैं जैसे कि बानरी अपने

बच्चेको गलेमें लटका लेती हैं वैसे पूजारियोंके गलेमें भी लटकते हैं। जब कोई मूर्तिको तोड़ता है तब हाय २ कर छाती पीट बकते हैं कि सीतारामजी राधाकुणजी और शिवपावतीको दुष्टोंने तोड डाला ! अव दूसरी मूर्ति। मंगवा कर जो कि अच्छे शिल्पीने संगमरमरकी बनाई हो स्थापन कर पूजनी चाहिये। नारायणको घीके विना भोग नहीं लगता। बहुत नहीं तो थोडासा अवश्य मेज देना। इत्यादि ब तें इन पर ठहराते हैं। और रासमण्डल वा रामलीलाके अन्तमें सीता-राम वा राधाकृष्णसे भीख मंगवाते हैं। जहां मेला ठेला होता है वहां छोकड़े पर मुकुट धर कन्हैया बना मार्गमें बैठाकर भीख मंगवाते हैं। इत्यादि बातोंको आप लोग विचार लीजिये कि कितने बडे शोककी बात है भला कही तो सीनारामादि ऐसे दरिद्र और भिक्षक थे ? यह वनका उपहास और निन्दा नहीं तो क्या है ? इससे बडी अपने मान-नीय परुषोंकी निन्दा होती है। भला जिस समय ये विद्यमान थे उस समय सीता, इकिमणी, लक्ष्मी और पार्वतीको सड़क पर वा किसी मकानमें खड़ी कर पूजारी कहते कि आओ इनका दूशन करो और कुछ भेट पूजा धरो तो सीनारामादि इन मुखोंके कहनेसे ऐसा काम कभी न करते और न करने देते. जो कोई ऐसा उपहास उनका करता है उसको विना दंड दिये कभी छोड़ते ? हां, जब उन्होंसे दंड न पाया तो इनके कर्मोने पूजारियोंको बहुतसी मूर्त्तिविरोधियोंसे प्रसादी दिलादी और अब भी मिलती है और जबतक इस कुकर्मको न छोड़ेंगे तबतक मिलेगी। इसमें क्या संदेह है कि जो आर्घ्यावर्राकी प्रतिदिन महाहानि पाषाणादि मूर्त्तिपूजकोंका पराजय इन्हीं कमोसे होता है क्योंकि पापका फल दुःख है इन्हीं पाषाणादि मूर्त्तियोंके विश्वाससे बहुतसी हानि होगई। जो न छोड़ेंगे तो प्रतिदिन अधिक २ होती जायगी । इनमेंसे वाममार्गी बडेभारी अपराधी हैं। जब वे चेछा करते हैं तब साधारणको---

दं दुर्गायै नमः। भं भैरवाय नमः। ऐं हीं क्षीं चामुण्डायै विच्चे॥

इत्यादि मंत्रोंका उपदेश कर देते हैं और बंगाउमें विशेष करके एकाक्षरी मन्त्रोपदेश करते हैं जैसा —

हीं, श्रीं, क्षीं ॥ [ज्ञावरतं० बं० प्रकी० प्र० ४४]

इत्यादि और धनाढ योंका पूर्णाभिषेक करते हैं ऐसे ही दश महा-विद्याओंके मंड:—

हां हीं हुं वगलासुख्ये फट्स्वाहा ॥[ज्ञा,पकी,प, ४१] कही २।

हुं फट् स्वाहा ॥ [कामरस्र तंत्र बीजमंत्र ४]

और मारण, मोहन, उबाटन, विद्वेषण, वशीकरण आदि प्रयोग करते हैं। सो मन्त्रसे तो कुछ भी नहीं होना किन्तु कियासे सब कुछ करते हैं। जब किस्त को मारनेका प्रयोग करते हैं तब इधर करानेबालेसे धनलेके आटे वा मिट्टोका पूतला जिसको मारना चाहते हैं
उसका बना लेते हैं। उसकी छाती, नाभि, कण्ठमें हुरे प्रवेश कर देते
हैं आंख, हाथ, पगमें कीलें ठोकते हैं। उसके उपर भैरव वा दुर्गाकी
मृत्तिं बना हाथमें त्रिश्ल दे उसके हृदय पर लगाते हैं। एक वेदी
बनाकर मांस अिन्का होम करने लगते हैं और उधर दूत आदि
भेजक उस को विष आदिसे मारनेका उपाय करते हैं। जो अपने
पुरश्चरणक बीचमें उसको मारडाला तो अपनेको भैरव देवीकी सिद्धि
बालें बत अतं हैं। "भैरवो भूतनाथश्च" इत्यादिका पाठ करते हैं।।

मारय २, उच्चाटय २, विद्वेषय २, छिन्धि २, भिन्धि २, वशीकुरू २, खादय २, भक्षय २, त्रो-टय २, नाशय २, मम शत्रून वशीकुरू २, हुंफट्

# स्वाहा ॥ [कामरत्न तंत्र उच्चाटनप्र० मं० ५-७ ]

इत्यादि मन्त्र जपने, मद्य मांसादि यथेष्ट खाते पीते, भृकुटीके बीचर्में सिन्द्र रेखा देते, कभी २ काली आदिके लिये किसी आदमीको पकड़ मार होम कर कुछ २ उसका मांस खाते भी हैं। जो कोई भैरवीच-कमें जावे मद्य मांस न पीवे न खावे तो उसको मार होम कर देते हैं। उनमेंसे जो अयोरी होता है वह मृतमनुष्यका भी मांस खाता है। **अजरी** बजरी करनेवाले विष्ठा मूत्र भी खाते पीते हैं।

एक चोलीमार्ग और दूसरे बीजमार्गी भी होते हैं। चोली मार्गवाले एक गुप्त स्थान वा भूमिमें एक स्थान बनाते हैं। वहां सबकी स्त्रियां पुरुष, लड़का, लड़की, बहिन, माता, पुत्रवधू आदि सब इकट्टे हो सब लोग मिलमिला कर मांस खाते, मद्य पीते, एक स्त्रीको नंगी कर उसके गुप्त इन्द्रियकी पूजा सब पुरुष करते हैं और उसका नाम दर्गादेवी धरते हैं। एक पुरुषको नंगा कर उसके गुत्र इन्द्रियकी पूजा सब स्नियां करती हैं। जब मद्य पी २ के उन्मत हो जाते हैं तब सब स्त्रियों के छातीके वस्त्र जिसको चोली कहते हैं एक बड़ी मड़ीकी नांदमें सब वस्त्र मिलाकर रखके एक एक पुरुष उसमें हाथ डालके जिसके हाथमें जिसका वस आवे वह माता, बहिन, कन्या और पुत्रवध क्यों न हो एस समयंक लिये वह उसकी स्त्री होजाती है। आपसमें कुकर्म करने भौर बहुत नशा चढनेसे जुते आदिसे छडते भिड़ते हैं । जब प्रातःकाल कुछ अन्धेरे अपने अपने घरको चले जाते हैं तब माता २, कन्या २. बहिन २, और पुत्रवधू २ हो जाती हैं। और बीजमार्गी स्त्री पुरुषके समागम कर जलमें वीर्य डाल मिलाकर पीते हैं। ये पामर ऐसे कमीको मुक्तिके साधन मानते हैं। विद्या विचार सज्जनतादि रहित होते हैं।

🔍 प्रश्न—शैव मत वाले तो अच्छे होते हैं १

उत्तर-अच्छे कहांसे होते हैं। "जैसा प्रेतनाथ वैसा भूतनाथ" जैसे अममःगीं मन्त्रोपदेशादिसे उनका धन हरते हैं वैसे शैव भी "ऑ नमः शिवाय" इत्यादि पश्च क्षरादि मन्त्रांका उपरेश करते, रहाक्ष भरम थारण करते, महीके और पाणण दिकं लिङ्ग बनाकर पूजते हैं और हर हर बं बं और वकरेंके शब्दके समान वड़ बड़ खड़ सुखसे शब्द बेरते हैं। उसका कारण यह कहते हैं कि ताली बजाने और बं वं शब्द बोलतेसे पांवती प्रसप्त और महादेव अप्रसप्त होता है। क्योंकि जब अध्मायुरके आगेसे महादेव भागे थे तब बं बं और ठट्ठेकी नालियां बजी थीं और गाल बजानेसे पार्वती अप्रसप्त और महादेव प्रसप्त होते हैं क्योंकि पार्वतीके पिता रक्ष प्रजापतिका शिर काट आगीमें डाल उसके धड़ पर बकरेका शिर लगा दिया था। उसी अनुकरणको बकरेके शब्दके तुल्य गाल बजाना मानते हैं। शिवरात्री प्रदोषका वन करते हैं इत्यादिसे मुक्ति मानते हैं इसलिये जैसे वाममार्गी भ्रान्त हैं वैसे शिव भी। इनमें विशेष कर कनफटे, नाथ, गिरी, पुरी, वन, आरण्य, पर्वत और सागर तथा गृहस्थ भी शैव होते हैं। कोई २ "दानों घोड़ों पर चढ़ते हैं" अर्थात् वाम और शेव दोनों मतोंको मानते हैं और कितने ही वैष्णव भी रहते हैं उनका—

#### अन्तः शाक्ता बहिरशैवाः सभामध्ये च वैष्णवाः। नानारूपधराः कौला विचरन्ति महीतल्ले॥

यह तन्त्रका श्लीक है। भीतर शाक्त अर्थात् वाममागीं, बाहर शैत्र अर्थात् रुद्राक्ष भस्म धारण करते हैं और सभामें वैष्णव कहते हैं कि हम विष्णुके उपासक हैं ऐसे नाना प्रकारके रूप धारण करके वाममागीं लोग पृथिवीमें विचरते हैं।

प्रश्न-वैष्णव तो अच्छे हैं १

उत्तर—क्या धूछ अच्छे हैं। जैसे वे वैसे ये हैं। देखळो वैष्ण-वोंकी छीछा अपनेको विष्णुका दास मानते हैं। उनमेंसे श्रीवैणाव जो कि चक्रांकित होते हैं वे अपनेको सर्वोपरि मानते हैं सो कुछ भी नहीं हैं!

[एकाद्दश

प्रश्न-स्यों। सब कुछ नहीं ? सब कुछ हैं देखों! लखाटमें नारायणके चरणारिवन्दक सहश तिलक और बीचमें पीली रेखा श्री होती है, इसलिये हम श्रीवंज्यव कहाते हैं। एक नारायणको छोड़ दूसरे किसीको नहीं मानते। महादेवके लिङ्गका दर्शन भी नहीं करते क्योंकि हमारे लखाटमें श्री विराजमान है वह लिङ्जत होती है। मालमन्दाराद्वि स्तोत्रोंके पाठ करते हैं। नारायणकी मन्त्रपूर्वक पूजा करते हैं। मांस नहीं खाते न मद्य पीते हैं। फिर अच्छे क्यों नहीं ?

उत्तर—इस ति उकको हरि ।दाकृति, इस पीछी रेखाको श्री मानना व्यथ है क्योंकि यह तो तुम्हारे हाथकी कारीगरी और छछाटका चित्र है। जैसा हाथीका छ गट चित्र विचित्र करते हैं। तुम्हारे छछाटमें विष्णुके पदका चिह्न कहांसे अ।या १ क्या कोई बैकुण्ठमें जाकर विष्णु के पगका चिह्न छछाटमें कर आया १

विवेकी-अंगेर श्री जड़ है वा चेतन ?

वैष्णव--चेतन है।

विवेकी—तो यह रेखा जड़ होनेसे श्री नहीं है। इस पूछते हैं कि श्री बनाई हुई है वा विना बनाई ? जो विना बनाई है तो यह श्री नहीं क्योंकि इसको तो तुम नित्य अपने हाथसे बनाते हो फिर श्री नहीं हो सकती। जो तुम्हारे छउ।टमें श्री हो तो किन्ने ही वैष्णवका बुरा मुख अर्थात् शोभा रहित क्यों दीखता है ? छउ।टमें श्री और घर २ भीख मांगते और सदावत्त छेकर पेट भरते क्यों फिरते हो ? यह बात ख़ीड़ी और निर्छ नोंकी है कि कपाछमें श्री और महाद-रिट्रोंके काम हों॥

इनमें एक "।रिकाल" नामक वैज्याव भक्त था। वह श्रोरी डाका मार, छल कपट कर, पराया धन हर वैज्यावोंके पास धर प्रसन्त होता था। एक समय उसको चोरीमें पर्दाध कोई नहीं मिला कि जिसको छटे। व्याकुल होकर फिरता था। नारायणने समम्हा हमारा भक्त, दुःख पाता है। सेठजीका स्वरूप धर अंगूठी आदि आभूषण पहिन रखमें

बैठक सामने आये। तब ते। परिकाल रथके पास अध्यः। सेठपे केश सब वस्तु शीव उतार दो नहीं तो मार इ छूंगा। उतारते २ अंगूठी उतारनेमें देर लगी। परिकाली नारायणकी अंगुली काट अंगुली ले छी। नारायण बहे प्रसन्न हो चतुर्भत शरीर बना दर्शन दिया। क । कि तू मेरा बड़ा प्रिय भक्त है क्यों कि सब धन मार लुट चीरी कर वैष्णवोंकी सेवा करता है, इसिछिये तू धन्य है। फिर उसने जाकर बैध्यवोंके पास सब गहने धर दिये। एक समय परिकालको कोई साहकार नौकर कर जहाज में विठाके देशान्तरमें लेगया। वहांसे जडाजमें सुपारी भरी। परिकालने एक सुपारी तोड आधा दुकड़ा कर वनियेसे कहा यह मेरी आबी जुवारी जहाजमें धरदो और छिलदो कि ज ग़जमें आधी समगी परिकालकी है। बनियेने कहा कि चाहे तुम हज़ार सुपारी लेलेना परिकालों कहा नहीं हम अधर्मी नहीं हैं जो हम भाठ मुठ हैं। हमको नो आधी चाहिये। बनियांने, जो विचारा भीजा भोला था. लिख दिया। जब अपने देशमें बन्दर पर जहाज आया स्रोर सुपारी उतारनेकी तैयारी हुई तब परिकालने कहा हमारी आधी सुपारी दे दो। बनियां वही आधी सुपारी देने लगा। तब परिकाल म्हगडने लगा मेरी तो जहाजमें आधी सुपारी है, आया बांट लूंगा। राजपुरुषों तक मुगडा गया। परीकालने बनियेका लेख दिखलाया कि इसने आधी सुपारी देनी छिखी है ! बनियां बहुतसा कहता रहा परन्तु उसने न माना आधी सुपारी लेकर वैष्णवोंके अर्पण करदी। तब तो वैष्णव बड़े प्रसन्न हुए। अवतक उस डाकू चोर परिकालकी मूर्ति मन्दिरोंमें रखते हैं। यह कथा भक्तमारुमें लिखी है। बुद्धिमान देखें कि वैष्णव, उनके सेवक और नार।यण तीनों चोरमण्डली हैं वा नहीं ? यद्यपि मतमतान्तरोंमें कोई थोड़ा अच्छा भी होता है तथापि उस मतमें रह कर सर्वथा अच्छा नहीं हो सकता। अब जैसा वैष्णवींमें फूट टूट भिन्न २ तिलक कण्ठी धारण करते हैं, रामानन्दी बगलमें गोपीच-न्द्रन बीचमें छाछ, नीमावत दोनों पत्नी रेखा बीचमें काछा बिन्दु, माधव काली रेखा और गौड़ बंगाली कटारीके तुल्य और रामप्रसा-दवाटे दोनों चांदला रेखाके बीचमें एक सफेद गोल टीका इत्यादि इनका कथन विलक्षण २ है। रामानन्दी नारायणके हृदयमें लाल रेखाको लक्ष्मीका चिह्न और गोसाई श्रीकृष्णचन्द्रजीके हृदयमें राधाजी विराजमान हैं इत्यादि कथन करते हैं।

एक कथा भक्तमालमें लिखी है। कोई एक मनुष्य वृक्षके नीचे सोता था। सोता २ ही मरगया। उत्परसे काकने विष्ठा करदी। वह लखाट पर निलकाकार होगई थी। वहां यमके दूत उसको लेने आये। इननेमें विष्णुके दूत भी पहुंच गये। दोनों विवाद करते थे कि यह हमारे स्वामीकी आज्ञा है हम यमलोकमें लेजायंगे। विध्युके दुनोंने कड़ा कि हमारे स्वामीकी आज्ञा है वैक्रण्ठमें छे जानेकी। देखी इनके लखाटमें वैष्णवका तिलक है। तुम कैसे लेजाओगे। तब तो यमके दृत चुप होकर चले गये। विष्णुके दृत सुखसे उसको वैकुण्ठमें रंगये । नारायणने उसको वैद्युण्ठमें रक्त्वा । देखो जब अकस्मात् तिलक बन जानेका ऐसा माहात्म्य है तो जो अपनी प्रीति और हाथसे तिलक करते हैं वे नरकसे छूट वैकुण्ठमें जावें तो इसमें क्या आश्चर्य है ! ! हम पूछते हैं कि जब छोटेसे तिलकके करनेसे वैकुण्ठमें जार्वे तो सब मुखके ऊपर लेपन करने वा काला मुख करने वा शरीर पर लेपन करनंसं वैकुण्ठसं भी आगे सिधार जाते हैं वा नहीं ? इससे ये बातें सब व्यर्थ हैं। अब इनमें बहुतसे खाखी लक्षडेकी लंगोटी लगा, धूनी नापते, जटा बढ़ ते, सिद्धका वेष करलेते हैं ? बगुलेके समान ध्यानाव-स्थित होते हैं, गांजः, भाग, चन्सके दम छगाते, छ छ नेत्र रखते; सब से चुटकी २ अन्त, पिसान, कौड़ी, पैसे मांगते, गृहस्थोंके लड़कोंको बहक कर चे हे बना छेते हैं। बहुत करके मजूर छोग उनमें होते हैं। कोई विद्याको पढ़ना हो तो उसको पढ़ने नहीं देने किन्तु कहते हैं कि-

पितन्यं तद्दपि मर्तन्यं दन्तकराकरेति किं कर्तन्यम्।

800

सन्तोंको विद्या पढनेसे प्या काम क्योंकि विद्या पढनेवाले भी मरजाते हैं फिर दन्त कटाकट क्यों करना ? साधुओंको चार धाम फिर आना, सन्तोंकी संया करनी, रामजीका भजन करना।

जो किसीने मुर्ख अविद्याकी मुर्ति न देखी हो तो खाखीजीका दर्शन कर आवें। उनके पास जो कोई जाता है उनको बन्ना बच्ची फहते हैं चाहें वे खाखी जीक बाप माके समान क्यों न हों ? जैते खाखीजी हैं वैसे ही रूंखड, सूखड, गोदडिये और जमातवाले सुतरस ई भीर अकाली, कनफटे, जोगी, औघड आदि सब एकसे हैं। एक खास्त्रीका चेला "श्रीगणेशाय नमः" घोखता घोखता कवे पर जल भर-नेको गया । वहां पंडित बैठा था उसको "स्त्रीगनेसाजनमें" घोखो देख-कर बोळा अरे साधू! अशुद्ध घोखता है "श्रीगणेशाय नमः" ऐसा घोख। उसने मत्र लोटा भर गुरुजीके पास जा कहा कि एक बस्मन मेरे घोखनेको असुद्ध कहता है ऐसा सुन कर मत्ट खाखीजी उठा कृप पर गया और पण्डितसे कहा तू मेरे चेलेको बहकाता है १ दूर्ग गुरुकी लण्डी क्या पढ़ा है ? देख तूं एक प्रकारका पळ जानता है, हम तीन प्रकारका जानते हैं। "स्त्रीगनेसाजन्नमे" "स्त्रीगनेसायन्नमे" "श्रीगनेसा-यतमें १

पण्डित—सुनो साधूजी। विद्याकी बात बहुत कठिन है, बिना पढे नहीं आती।

खाखी—चल वे, सब विद्वानको हमने रगड मारे जो भागमें घोड एक दम सब उड़ा दिये। सन् ोंका घर बड़ा है। तूं बाबूड़ा क्या जाते।

पण्डित-देखो जो तुमन विद्या पढ़ी होती तो ऐसे अपशब्द क्यों बोलते १ सब प्रकारका तुमको ज्ञान होता।

स्वाखी - अबे तू हमारा गुरू बनता है ? तेरा उपदेश हम नहीं सुनते ।

पण्डित-सुनो कहां से ? बुद्धि ही नहीं है। उपदेश धुनने सम-महनेके छिये विद्या चाहिये ।

खास्त्रो — जो सब शा**स्त्र पढ़े सन्तोंको न माने तो जानो कि वह** कुळ भी नहीं पढ़ा।

पण्डित—हां हम सन्तोंकी सेवा करते हैं परन्तु तुम्हारेसे हुर्द-क्नोंकी नहीं करते क्योंकि सन्त सज्जन, विद्वान, धार्मिक, परोपकारी

प्रक्षोंको कहते हैं।

हाार्ख।—देहा हम रात दिन नंगे रहते. धूनी तापते, गांजा चर-सके सैकड़ों दम लगाते, तीन २ लोटा भांग धीत, गांजा भांग धत्राकी चत्तीकी भाजी बना ह्याते, संखिया और अफीम भी चट निगल जाते, नशामें गर्क रात दिन बेगम रहते, दुनियांको कुल नहीं समम्मते भीहा मांगकर टिकड़ बना खाते रात भर ऐनी खांसी उठती जो पासमें सोवे उसको नींद कभी न आवे इत्यादि सिद्धियां और साधूपन हममें हैं। फिर तूं हमारी निन्दा क्यों करता है ? चेत् बाबूड़े जो हमको दिक करेगा हम तुमको भसम कर हालेंगे।

पण्डित—ये सब लक्षण असाधु मूर्ख और गर्बाण्डोंके हैं साधु-ओंके नहीं। सुनो "साध्नोति पराणि धर्मकार्याणि स साधुः" जो धर्मयुक्त उत्तम काम करे सदा परोपकारमें प्रवृत्त हो, कोई दुर्गुण जिसमें न हो, विद्वान सत्योपदेशसे सबका उपकार करे उसको साधु कहते हैं।

हास्त्री—चल वे तूं साधूके कर्म क्या जाने ? सन्तोंका घर बड़ा है। किसी सन्तसे अटकना नहीं, नहीं तो देखा एक चीमटा उठाकर मारेगा, कपाल फुड़वा लेगा।

पण्डित—अच्छा खाखी जाओ अपने आसन पर इमसे बहुत गुस्से मत हो। जानते हो राज्य केसा है १ किसीको मारोगे तो पकड़े जाओगे, केद भोगोगे, वेत खाओगे वा कोई तुमको भी मार बैठेगा फिर क्या करोगे १ यह साधुका उभ्रण नहीं।

कास्त्री—चलवे चेले किस राक्षसका सुका दिकालाया। पण्डित—तुमने कभी किसी महात्माका संग नहीं किया है नहीं तो ऐसे जड़ मूर्खन रहते।

े खाखी—हम आप ही महात्मा हैं। हमको किसी दूसरेकी गंज नहीं।

पण्डित—जिनके भाग्य नष्ट होते हैं उनकी तुम्हारी सी बुद्धि और भिमान होता है। खाखी चला गया आसन पर और पण्डित घरको गये। जब संघ्या आर्ती होगई तब उस खाखीको बुड्ढा समम बहुतसे खाखी "डण्डोत २" कहते साष्टांग करके बैठे। उस खाखीने पूला अबे रामदासिया। तू क्या पढ़ा है ?

रामदास—महाराज मैंने "वेस्नुसहसरनाम" पढ़ा है। अबे गोविन्दासिये। तुक्या पढ़ा है ?

गोविन्दासिया—में "रामसतवराज" पढ़ा हूं अमुक खास्त्रीजीके पःससे। तब रामदास बोला कि महाराज आप क्या पढ़े हैं ?

े स्वाखीजी—हम गीता पढ़े हैं।

रामदास-किसके पास ?

हाायोजी—चळवे छोकड़े हम किसीको गुरू नहीं करते। देख हम "परागराज" में रहते थे। हमको अक्खार नहीं आता था। जब किसी लम्बी घोतीबाले पण्डितको देखता था तब गीताके गोटकेमें पूछता था कि इस कल्झ्वाबाले अक्खारका क्या नाम है १ ऐसे पूछता २ अठारा अध्याय गीता रगड़ मारी गुरू एक भी नहीं किया। भला ऐसे विद्याके शबुओंको अविद्या घर करके ठहरे नहीं तो कहां जाय १॥

ये लोग विना नशा, प्रमाद, लड़ना, खाना, सोना, सांम पीटना घंटा घड़ियाल शंका बजाना, धूनी चिना रखानी नहाना, घोना, सब दिशाओं में व्यर्थ घूमने फिरनेके अन्य कुछ भी अच्छा काम नहीं करते च हे ओई पत्थरको भी पिघला लेवे, परन्तु इन खालियों के आतमा- आंको बोध कराना कठिन है क्यों कि बहुधा वे श्टूदर्ण मजूर, किसान, कहार आदि अपनी मजूरी छोड़ केवल खाला रमाके वैरागी खाली आदि होजाते हैं। उनको विद्या वा सत्सङ्क आदिका माहात्म्य नहीं

जान पड़ सकता। इसमेंसे नाथोंका मन्त्र "नमः शिवाय"। खास्ति-बोंका "नृसिंहाय नमः"। रामावतोंका "श्रीरामचन्द्राय नमः" अथवा "सीतारामाभ्यां नमः"। ऋष्णोपासकोंका "श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः" "नमो भगवते वासुदेवाय" और बङ्गालियोंका "गोविन्दाय नमः"। इन मन्त्रोंको कानमें पढ़नेमात्रसे शिष्य कर लेते हैं और ऐसी २ शिक्षा करते हैं कि बच्चे तंबेका मन्त्र पढले॥

# जल पवितर सथल पवितर और पवितर कुआ। शिव कहे सुन पार्वती तृंबा पवितर हुआ॥

भला ऐसेकी योग्यना साधु वा विद्वान होने अथवा जगत्के उप-कार करनेकी कभी हो सकती है ? खाखी रात दिन लक्कड़, छाने [जगली कंडे ] जलाया करते हैं। एक महीनेमें कई रुपयेकी लकड़ी फूंक देते हैं। जो एक महीनेकी लकड़ीके मूल्यसे कम्बलादि वस्न लेखें तो शतांश धनसे आनन्दमें रहें। उनको इतनी बुद्धि कहांसे आवे ? और अपना नाम उसी धूनीमें तपने ही से तपस्वी धर रक्खा है। जो इस प्रकार तपस्वी होसकें तो जगली मनुष्य इनसे भी अधिक तपस्वी हो नावें। जो जटा बढ़ाने, राख लगाने, तिलक करनेसे तपस्वी होजाय तो सब कोई कर सके। ये ऊपरके त्यागस्वरूप और भीतरके महासंमही होते हैं॥

प्रश्न—कवीरपन्थी तो अच्छे हैं १ उत्तर—नहीं।

प्रश्न-- क्यों अच्छे नहीं ? पाषाणादि मूर्तिपूजाका छांडन करते हैं: कबीर साहब फूळोंसे उत्पन्न हुए और अन्तमं भी फूछ होगये। ब्रह्मा विष्णु महादेवका जन्म जब नहीं था तब भी कबीर साहब थे। बड़े सिद्ध, ऐसे कि जिस बातको वेद पुराण भी नहीं जान सकता बसको कबीर जानते हैं। सबा रस्ता है सो कबीर ही ने दिखालाया है। इनका मन्त्र "सत्यनाम कबीर" आदि है।

**एतर — पाषाणादिको छोड पलङ्क, गद्दी, तकिये, खडाऊं ज्योति** अर्थात् दीप आदिका पूजना पाषाणमृतिसे न्यून नहीं। क्या कबीर साहब भुनुगा था वा कलियां थीं जो फुलोंसे उत्पन्न हुआ ? और धन्तमें फूछ होगया ? यहां जो यह बात सुनी जाती है वही सच्ची होगी कि कोई जुलाहा काशीमें रहता था। उसके लड़के बालक नहीं थे: एक समय थोडीसी रात्री थी। एक गलीमें चला जाता था तो देखा सडकके किनारेमें एक टोकरोमें फुलोंके बीचमें उसी रातका जनमा बालक था। वह उसको उठा लेगया; अपनी स्त्री को दिया: उसने पालन किया। जब वह बडा हुआ तब जुलाहेका काम करता था किसी पण्डितके पास संस्कृत पढ़नेके लिये गया उसने उसका अपमान किया। कहा, कि हम जुलाहेको नहीं पढ़ाते। इसी प्रकार कई पण्डि-नोंके पास फिरा परन्तु किसीने न पढाया। तब ऊट पटांग भाषा बनाकर जुलाहे आदि नीच लोगोंको सममाने लगा। तंबरे लेकर गाता था भजन बनाता था। विशेष पण्डित, शास्त्र, वेदोंकी निन्दा किया करता था। कुछ मूर्का छोग उसके जालमें फंस गये। जब मरगया तब छोगोंने उसे सिद्ध बना छिया। जो २ उसने जीते जी बनाया था उमको उसके चेले पढते रहे। कानको मूंदके जो शब्द सुना जाता है उसको 'अनहद' शब्द सिद्धान्त ठहराया। मनकी वृत्तिको "सरति" कहते हैं। उसको उस शब्द सुननेमें छगाना उसीको सन्त स्रोर परमेश्वरका ध्यान दतलाते हैं वहां काल नहीं पहुंचता। बर्लीके समान तिलक और चन्द्रनादि लकडेकी कठी बांधते हैं। भला पिचार [के] देखों कि इसमें आत्माकी उन्नति और ज्ञान क्या बढ़ सकता है ? यह केवल लड़कों के खेलके समान लीला है।

प्रश्न—पंजाब देशमें नानकजीने एक मार्ग चलाया है क्योंकि वह मूर्त्तिका खंडन करते थे मुसलमान होनेसे बचाये वे साधु भी नहीं हुए किन्तु गृहस्थ बने रहे। देखों उन्होंने यह मंत्र उपदेश किया है इसीसे विदित होता है कि उनका आशय अच्छा था— ओं सत्यनाम कर्ता पुरुष निर्भी निर्वेर अकाल-मूर्त अजोनि सहभंगुरु प्रसाद जप आदि सच जुगादि सच है भी सच नानक होसी भी सच॥

[ जपजी पौड़ी १ ]

( ओ३म् ) जिसका सत्य नाम है वह कर्ता पुरुष भय और वैर-रहित अकाल मूर्ति जो कालमें और जोनिमें नहीं आता प्रकाशमान है उसीका जप गुरुकी कृपासे किर वह परमात्मा आदिमें सच था जुगोंकी आदिमें सच वर्त्तमानमें सच और होगा भी सच ?

उत्तर-नानकजीका आशय तो अच्छा था परन्तु विद्या कुछ भी नहीं थी। हां भाषा उस देशकी जोकि प्रामोंकी है उसे जानते थे। वेदादि शास्त्र और संस्कृत कुछ भी नहीं जानते थे। जो जानते होते तो "निभय" शब्दको "निर्भो" क्यों लिखते ? और इसका दृष्टान्त उनका बनाया संस्कृती स्तोत्र है चाहते थे कि मैं संस्कृतमें भी पग अडाऊ परन्तु विना पढ़े संस्कृत कैसे आ सकता है ? हां उन प्रामी-णोंके सामने कि जिन्होंने संस्कृत कभी सुना भी नहीं था संस्कृती बनाकर संस्कृतके भी पण्डित बन गये होंगे। भला यह बात अपने मानप्रतिष्ठा और अपनी प्रख्यातिकी इच्छाके विना कभी न करते। उनको अपनी प्रतिष्ठाकी इच्छा अवश्य थी नहीं तो जसी भाषा जानते थे कहते रहते और यह भी कह देते कि मैं संस्कृत नहीं पढा । जब कुछ अभिमान था तो मानप्रतिष्ठाके लिये कुछ दंभ भी किया होगा १ इसीलिये उनके प्रनथमें जहां तहां वेदोंकी निन्दा और स्तुति भी है क्योंकि जो ऐसा न करते तो उनसे भी कोई वेदका अर्थ पूछता जब न आना तब प्रतिष्ठा नष्ट होती इसिछिये पहिले ही अपने शिष्योंके सामत कही २ वेदोंके विरुद्ध बोखते थे और कही २ वेदके लिये अच्छा भी करा है क्योंकि जो कहीं अच्छा न कहते तो छोग उनकी नास्तिक बनातं जैसे--

## वेद पहत ब्रह्मा मरे चारों वेद कहानि। सन्त [साध] कि महिमा वेद न जाने॥

[ सुखमनी पौड़ी ७। चो० ८ [

#### नानक ब्रह्मज्ञानी आप परमेश्वर<sup>®</sup>॥ सु० पौ० द्र चो० ६

क्या वेद पहनेवाले मर गये और नानकजी आदि अपनेको अमर सममते थे १ क्या वे नहीं मर गये १ वेद तो सब विद्याओंका भंडार है परन्तु जो चारों वेदोंको कहानी कहे उसकी सब बातें कहानी हैं। जो मूर्खोंका नाम सन्त होता है वे विचारे वेदोंकी महिमा कभी नहीं जान सकते ? जो नानकजी वेदों ही का मान करते तो उनका सम्प्र-दाय न चलता न वे गुरु बन सकते थे क्योंकि संस्कृत विद्या तो पढे ही नहीं थे तो दूसरेको पढ़ाकर शिष्य कैसे बना सकते थे ? यह सच है कि जिस समय नानकजी पंजाबमें हुए थे उस समय पंजाब संस्कृत विद्यासे सर्वथा रहित मुसलमानोंसे पीडिन था। उस समय **उन्होंने कुछ लोगोंको बचाया। नानकजीके सामने कुछ उनका सम्प्र-**दाय वा बहुतसे शिष्य नहीं हुए थे क्योंकि अिद्धानोंमें यह चाल है कि मरे पीछे उनको सिद्ध बना हेते हैं। पश्चात् बहुतसा माहात्म्य करके ईश्वरके समान मान हेते हैं। हां। नानकजी बड़े धनाट्य और गईस भी नहीं थे. परन्तु उनके चेळोंने "नानकचन्द्रोदयं" और "जनमशाखी" आदिमें बड़े सिद्ध और बड़े २ ऐश्वर्य्यवाले थे, लिखा है। नानकजी ंब्रह्मा आदिसे मिले, बडी बातचीत की सबने इनका मान्य किया, नान-कजीके विवाहमें बहुतसे घोड़े, रथ, हाथी, सोने, चांदी, मोती, पत्रा आदि रत्नोंसे जड़े हुए और अमूल्य रत्नोंका पारावार न था, लिखा है। भला ये गपोड़े नहीं तो क्या हैं ? इसमें इनके चेलोंका दोष है, नानक-जीका नहीं। दूसरा जो उनके पीछे उनके लड़केसे उदासी चले और रामदास् आदिसे निर्मले। कितने ही गद्दीवाळोंने भाषा बनाकर प्रनथमें रक्ली है अर्थात् इनका गुरु गोविन्दसिंहजी दशमा हुआ।

एकादश

**उनके पीछे उस प्रन्थमें किसीकी भाषा नहीं मिछाई गई** किन्तु वहां तकके जितने छोटे २ पुस्तक थे उन सबको इकट्टे करके जिल्द बन्धवा दी। इन लोगोंने भी नानकजीके पीछे बहुतसी भाषा बनाई। कितनों ही ने नाना प्रकारकी पुराणोंकी मिथ्या कथाके तृत्य बना दिये परन्तु ब्रह्मज्ञानी आप परमेश्वर बनके उस पर कर्मीपासना छोडकर इनके शिष्य झकते आये इसने बहुत बिगाड कर दिया, नहीं जो नानकजीने कुछ भक्ति विशेष ईश्वरकी लिखी थी उसे करते असे नो **अ**च्छा था। अब उदासी कहते हैं हम बड़े, निर्मले कहते हैं हम बड़े, अकालिये तथा सुनरहसाई कडने हैं कि सर्वोपरि हम हैं। इनमें गोवि-न्दसिंहजी शूरवीर हुए जो मुसलमानोंने उनके पुरुषाओंको बहुतसा दःख दिया था उनसे वैर लेना चाहते थे परन्तु इनके पास कुछ सामग्री न थी और उधर मुसलमानोंकी बादशाही प्रज्वलित होरही थी। इन्होंने एक पुरश्चरण करवाया। प्रसिद्धि की कि मुम्तको देवीने वर और खङ्क दिया है कि तुम मुसलमानोंसे लड़ो तुम्गरा विजय होगा। बहुतसे लोग उनके साथी होगये और उन्होंने, जैसे वाममार्गियोंने "पुञ्चमकार" चक्रांकितोंने "पुञ्चसंस्कार" चलाये थे वैसे "पुञ्चककार" अर्थात् इनके पञ्चककार युद्धके उपयोगी थे। एक 'केश' अर्थात् जिसके रखनेसे लडाईमें लकडी और नलवारसे कुछ बचावट हो दूसरा "कंगण" जो शिरके ऊपर पगडीमें अकाली लोग रखते हैं और हाथमें "कडा" जिससे हाथ और शिर बच सकें। तीसरा "काछ" अर्थात् जानूके ऊपर एक जांघिया कि जो दौड़ने और कूदनेमें अच्छा होता है बहुत करके अखाडमह और नट भी इसको इसीलिये धारण करते हैं कि जिससे शरीरका मर्मस्थान बचा रहे और अटकाव न हो। चौथा "कंगा" कि जिससे केश सुधरते हैं। पांचवां काच् [ कृपाण ] जिससे शहसे भेट भटका होनेसे लड़ाईमें काम आवे। इसीलिये यह रीति गोविन्दसिंहजीने अपनी बुद्धिमतासे उस समयके लिये [ की ] थी अव इस समयमें उनका रखना कुछ रपयोगी नहीं है परन्तु अब जो युद्धक प्रयोजनके लिये बातें कर्तव्य थीं उनको धर्मके साथ मान ली हैं। मूर्तिपूजा तो नहीं करते किन्तु उससे विशेष प्रन्थकी पूजा करते हैं क्या
यह मूर्तिपूजा नहीं है ? किसी जड़ पदार्थके सामने शिर झुकाना वा
उसकी पूजा करना सब मूर्तिपूजा है। जैसे मूर्तिवालोंने अपनी दुकान,
जमाकर जीविका ठाड़ी की है वैसे इन लोगोंने भी करली है। जैसे
पृजारी लोग मूर्तिका दर्शन कराते, भेट चढ़वाते हैं वैसे नानकपन्थी
लोग प्रन्थकी पूजा करते, कराते भेट भी चढ़वाते हैं विसे नानकपन्थी
लोग प्रन्थकी पूजा करते, कराते भेट भी चढ़वाते हैं अर्थात् मूर्तिपूजा
बाले जितना चेदका मान्य करते हैं उतना ये लोग प्रन्थसाहब वाले
नहीं करते। हां यह कहा जा सकता है कि इन्होंने वेदोंको न सुना न
देखा क्या करें ? जो सुनने और देखतेमें आवें तो बुद्धिमान् लोग जो
कि हठी दुरामही नहीं हैं वे सब सम्प्रदायवाले वेदमतमें आजाते हैं।
परन्तु इन सबने भोजनका बलेढ़ा बहुतसा हटा दिया है जैसे इसको
हटाया वैसे विषयासक्ति दुरभिमानको भी हटाकर वेदमतकी उन्नति
करें तो बहुत अच्छी बात है।

प्रश्न-दादूपंथीका मार्ग तो अच्छा है ?

उत्तर—अच्छा तो वेदमांग है जो पकड़ा जाय तो पकड़ो नहीं तो सदा गोता खाते रहोगे। इनके मतमें दाद्जीका जन्म गुजरातमें हुआ था। पुनः जयपुरके पास "आमेर" में रहते थे, तेलीका काम करते थे। ईश्वरकी सृष्टिकी विचित्र लीला है कि दाद्जी भी पुजाने लग गये। अब वेदादि शाखोंकी सब बातें छोड़कर "दाद्राम र" में ही मुक्ति मानली है। जब सत्योपदेशक नहीं होता तब ऐसे २ ही खलेड़े चला करते हैं। थोड़े दिन हुए कि एक "रामस्नेही" मत शाहपुरासे चला है। उन्होंने सब वेदोक्त धर्मको छोड़के "राम र" पुकारना अच्छा माना है। उसीमें झान ध्यान मुक्ति मानते हैं। परन्तु जब भूख लगती है तब "रामनाम" में से रोटी शाक नहीं निकलता क्योंकि खानपान आदि तो गृदस्थोंके घर ही में मिलते हैं। वे भी मूर्तिपूजाको धिककारते हैं परग्तु आप स्वयं मूर्ति बन रहे हैं। स्वियोंके संगमें

बहुत रहते हैं क्योंकि रामजीको "रामकी" के विना आनन्द ही नहीं मिळ सकता। अब थोड़ासा विशेष रामस्नेहीके मत विषयमें लिखते हैं।

एक रामचरण नामक साधु हुआ है जिसका मत मुख्य कर "शाहपुरा" स्थान मेवाड़से चला है। वे "राम २" कहने ही को परम-मन्त्र और इसीको सिद्धान्त मानते हैं उनका एक प्रन्थ कि जिसमें सन्तदासजी आदिकी वाणी हैं ऐसा लिखते हैं—

#### ष्टनका वचन--

भरम रोग तबही मिट्या, रट्या निरञ्जन राह [ तबजमका कागज फट्या, कट्या कमेतब जाह ॥

साखी ।। ६ ॥

अब बुद्धिमान लोग विचार छेवे कि "राम २" कहनेसे श्रम जो कि अज्ञान है वा यमराजका पापानुकूछ शासन अथवा किये हुए कर्म कभी छूट सकते हैं वा नहीं ? यह केवल मनुष्योंको पापोंमें फंसाना और मनुष्यजन्मको नष्ट कर देना है।। अब इनका जो मुख्य गुरू हुआ है "रामचरण" उसके बचनः—

महमा नांव प्रतापकी, सुणौ सरवण चित लाह । रामचरण रसना रटौ, कम सकल भड़ जाह ॥ जिन जिन सुमर्या नांव कूं, सो सब उतसा पार । रामचरण जो वीसर्या, सो ही जमके द्वार ॥

राम विना सब भूठ वतायो॥
राम भजत छूट्या सब कम्मा।
चंद अरु सूर देइ परकम्मा॥
राम कहे तिन कं भै नाहीं।

सम्रुक्लास] रामसनेही पंथ सप्तीक्षा।
तीन लोक में कोरति गाहीं॥
राम रटत जग जोर न लागे॥
राम नाम लिख पथर तराई।
भगति हेति औतार ही धरही॥
ऊंच नीच कुल भेद विचारे।
सो तो जनम आपणो हारे॥
संतां के कुल दीसे नाहीं।
राम राम कह राम सम्हांहीं॥
ऐसो कुण जो कीरति गावै।
हिर हिर जनको पार न पावै॥
रांम संतांका अन्त न आवै।

#### इनका खण्डन।

आप आपकी बृद्धि सम गावै॥

प्रथम तो रामचरण आदिके प्रन्थ देखनेसे विदित होता है कि यह प्रामीण एक सादा सीधा मनुष्य था। न वह कुछ पढ़ा था नहीं हो ऐसी गएड़चौथ क्यों लिखता १ यह केवल इनको भ्रम है कि राम २ कहनेसे कर्म छूट जायं केवल ये अपना और दूसरोंका जन्म खोते हैं। जमका भय तो वड़ा भारी है परन्तु राजसिपाही, चोर, डाकू, ज्याघ, सपे, बीछू और मच्छर आदिका भय कभी नहीं छूटता। चाहे रात दिन राम २ किया करें कुछ भी नहीं होगा। जैसे "सकर २" कहनेसे मुख मीठा नहीं होता वैसे सत्यभाषणादि कर्म किये विना राम २ करनेसे कुछ भी नहीं होगा और यदि राम २ करना उनका राम नहीं सुनता तो जनमभर कहनेसे भी नहीं सुनेगा

और जो सुनता है तो दूसरी वार भी राम २ इहना व्यर्थ है। इन लोगोंन अपना पेट भरने और दूसरोंका भी जनम नष्ट करनेके लिये एक पाखण्ड खडा किया है सो यह बडा आर्थ्य हम सुनते और दंखते हैं कि नाम तो घरा रामस्तेही और काम करते हैं रांडसनेही का। जहां देखो वहां रांड ही रांड सन्तोंको घेर रही हैं यदि ऐसे २ पाखण्ड न चलतं नो आर्थ्यावर्त्त देशकी दुर्दशा क्यों होती। ये लोग अपने चेळोंको जुंठ खिळाते हैं और स्त्रियां भी लम्बी पडके दण्डवत् प्रणाम करती हैं। एकान्तमें भी स्त्रियों और साधुओंकी छीछा होती रहती है। अब दूसरी इनकी शाखा "बेडापा" प्राम मारवाड देशसे चली है। उसका इतिहास—एक रामदास नामक जातिका ढेढ़ बडा चालाक था। उसके दो स्त्रियां थीं। वह प्रथम बहुत दिन तक औषड़ होकर कुत्तोंके साथ खाना रहा। पीछे वामी कूण्डापन्थी। पीछे "रामदेव" का "क मडिया" \* बना । अपनी दोनों स्त्रियोंके साथ गाता था। ऐसे घूमता २ "सीथल" के में ढेढ़ोंका "गुरु रामदास" था उससे मिला। उसने उसको "रामदेव" का पन्थ बताके अपना चेला बनाया । उस रामदासने खेडापा प्राममें जगह बनाई और इसका इधर मन चला। उद्धर शाहपुरेमें रामचरणका। उसका भी इतिहास ऐसा सुना है कि वह जयपुरका बनियां था। उसने "दांतडा" प्राममें एक साधुसे वेश लिया और उसकी गुरू किया और शाहपरेमें जाके टिकी जमाई। भोले मनुष्योंमें पाखण्डकी जड़ शीव जम जाती है, जमगई। इन सबमें ऊपरके रामचरणके बचनोंके प्रमाणसे चेळा करके ऊंच नीचका कुछ भेद नहीं। ब्राह्मणसे अन्त्यज पर्यन्त इनमें

<sup>\*</sup> राजपूतानेमें "चमार" छोग भगवें वस्त्र रंग कर "रामदेव" आदिकं गीत, जिनको वे "शब्द" कहते हैं, चमारों और अन्य जातियोंको सुनाते हैं वे "कामड़िये" कहछाते हैं ॥ स० दा० ॥

<sup>ा &</sup>quot;सीथल जोधपुरके राज्यमें एक बड़ा प्राप्त है" ॥ स॰ दा ॥

चंछे बनते हैं। अब भी कूंडापन्थीसे ही हैं क्यों कि मिट्टीके कूंडोंमें ही खाते हैं। और साधुओंकी जूंठन खाते हैं। वेदधर्मसे माता पिता संसारके व्यवहारसे बहुका कर हुड़ा देते और चेळा बना छेते हैं और राम नामको महामन्त्र मानते हैं और इसीको "ह्यूच्छम" भ वेद भी कहते हैं। राम २ कहनेसे अनन्त जन्मों के पाप छूट जाते हैं इसके विना मुक्ति किसीकी नहीं होती। जो श्वास और प्रश्वासके साथ राम २ कहना बतावे उसको सत्यगुरू कहते हैं और सत्यगुरूको परमेश्वरसे भी बडा मानते हैं और उसकी मृत्तिका ध्यान करते हैं। साधुओंके चरण धोके पीते हैं। जब गुरूसे चेळा दूर जावे तो गुरूके नख और डाढीके बाल अपने पास रख लेवे। उसका चरणामृत नित्य छेवे, रामदास और हररामदासके वाणके पुस्तकको वेदसे अधिक मानते हैं। उनकी परिक्रमा और आठ दण्डवत् प्रणाम करते हैं। और जो गुरू समीप हो तो गुरूको दण्डवत् प्रणाम कर छेते हैं। स्त्री वा पुरुषको राम २ एकसा ही मन्त्रोपदेश करते हैं और नामस्म-रण ही से कल्याण मानते पुनः पढनेमें पाप सममते हैं। उनकी साखी—

पंडताई पाने पड़ी, ओ पूरब लो पाप। राम २ सुम्रक्षां विना, रइग्यो रीतो आप॥ वेद पुराण पढ़े पढ़ गीता। रामभजन बिन रह गये रीता ॥

ऐसे २ पुस्तक बनाये हैं, स्त्रीको पतिकी सेवा करनेमें पाप और गुरू और साधुकी सेवामें धर्म बतलाते हैं वर्णाश्रमको नहीं मानते। जो ब्राह्मण रामस्तेही न हो तो उसको नीच और चांडाल, रामस्तेही हो तो उसको उत्तम जानते हैं अब ईश्वरका अवतार नहीं मानते और रामचरणका वचन जो ऊपर छिख आये कि — भगति हेति औतार ही धरही॥

भक्ति और सन्तोंके हित अवतारको भी मानते हैं इत्यादि पाखण्ड प्रपञ्च इनका जितना है सो सब आर्ट्यावर्त देशका अहित-कारक है इतने ही से बुद्धिमान् बहुतसा समम्ह ेंगे।

प्रश्न—गोकुलिये गुसाइयोंका मत तो बहुत अच्छा है देखो कैसा ऐरवर्य भोगते हैं क्या यह ऐरवर्यलीलाके विना ऐसा हो सकता है ? उत्तर—यह ऐरवर्थ्य गृहस्थ लोगोंका है गुसाइयोंका कुछ नहीं।

प्रश्न—बाह २ गुसाइयोंके प्रतापसे है क्योंकि ऐसा ऐश्वर्य दूसरों को क्यों नहीं मिछना ?

उत्तर—हसरे भी इसी प्रकारका छठ प्रपश्च रचें तो ऐश्वर्य्य मिछनेमें क्या सन्देह है ? और जो इनसे अधिक धूर्तता करते तो अधिक भी ऐश्वर्य हो सकता है।

प्रश्न—बाहजी बाह ! इसमें क्या धूर्तता है ? यह तो सब गोळोक की ळीळा है ।

उत्तर—गोळोककी ळीळा नहीं किन्तु गुसाइयोंकी ळीळा है, जो गोळोककी ळीळा है तो गोळोक भी ऐसा ही होगा। यद मत "तैळक्क" देशसे चळा है क्योंकि एक तैळक्की ळक्ष्मणभट्ट नामक ब्राह्मण विवाह कर किसी कारणसे माता पिता और की को छोड़ काशीमें जाके उसने संन्यास छे ळिया था और भूठ बोळा था कि मेरा विवाह नहीं हुआ। दैवयोगसे उसके माता पिता और स्त्री ने सुना कि काशीमें संन्यासी हो गया है। उसके माता पिता और स्त्री काशीमें पहुंच कर जिसने उसको संन्यास दिया था उससे कहा कि हमारे पुत्रको संन्यासी क्यों किया, देखों। इसकी यह युवनी स्त्री है और स्त्री ने कहा कि यदि वाप मेरे पतिको मेरे साथ न करें तो मुमको भी संन्यास दे दीजिये। तब तो उसको बुळाके कहा कि तू बड़ा मिथ्यावादी है, संन्यास

# समुल्लास] गोकुलिये गुसाइयोंकी समीक्षा। ४६१

गृहाश्रम कर, क्योंकि तृने भूठ बोलकर संन्यास जिया। उसने पुनः वैसा ही किया। संन्यास छोड़ उसके साथ हो लिया। देखो ! इस मतका मूल ही भूठ कपटसे चला। जब तैलङ्क देशमें गये उसकी जातिमें किसीने ने लिया। तब वहां से निकल कर घूमने लगे "चर-णार्गढ" जो काशीके पास है उसके समीप "चंपारण्य" नामक जड़ा-लमें चले जाते थे। वहां कोई एक लडकेको जङ्गलमें छोड चारों ओर दूर २ आगी जला कर चला गया था। क्यों कि छोडनेवालेने यह सममा था जो आगी न जलाऊंगा तो अभी कोई जीव मार डालेगा। लक्ष्मणभद्र और उसकी स्त्री ने लडकेको लेकर अपना पुत्र बना लिया। फिर काशीमें जा रहे। जब वह छड़का बड़ा हुआ तब उसके मा बापका शरीर छूट गया। काशीमें बाल्यावस्थासे युवावस्था तक कुछ पढ़ना भी रहा, फिर और कही जाके एक विष्णुखामीके मन्दिरमें चेला होगया। वहांसे कभी कुछ खटपट होनेसे काशीको फिर चला गया और संन्यास हे लिया। फिर कोई वैसा ही जातिवहिष्कृत ब्राह्मण काशीमें रहता था। उसकी छड़की युवती थी। उसने इससे कहा कि तू संन्यास छोड़ मेरी लड़कीते विवाह करले १ वैसा ही हुआ। जिसके बापने जैसी छीछा की थी वैसी पुत्र क्यों न करे १ उस स्त्रीको छेके वहीं चला गया कि जहां प्रथम विष्णु सामीके मन्दिरमें चेला हुआ था। विवाह करनेसे उनको वहां से निकाल दिया। फिर ब्रजदेशमें कि जहां अविद्याने घर कर रक्ष्या है जाकर अपना प्रपंच अनेक प्रकारकी छल युक्तियोंसे फेलाने लगा और मिथ्या बार्तोकी प्रसिद्धि करने लगा कि श्रीकृष्ण मुम्तको मिले और कहा कि जो गोलोकसे "दैवीजीव" मर्त्व-लोकमें आये हैं उनको ब्रह्मसम्बन्ध आदिसे पवित्र करके गोलोकमें भेजो। इत्यादि मूर्खीको प्रलोभनकी बातें सुनाके थोड़ेसे लोगोंको आर्मन ८४ (चोरासी ) वैष्णव बनाये और निम्निछिखित मन्त्र बना छि ौर उनमें भी मेद रक्ला जैसे-

श्रीकृष्णः शरणं लम । क्षीं कृष्णाय गोपीजन-वर्लभाय स्वाहा ॥ [गोपालसहस्रनाम ]

ये होनों साधारण मन्त्र हैं परन्तु अगला मन्त्र ब्रह्मसम्बन्ध और समर्पण करानेका है-

श्रीकृष्णः चारणं मम सहस्रपरिवत्सरमितकाल-जातकृष्णवियोगजनिततापक्छेशानन्ततिरोभावोऽ-हं भगवते कृष्णाय देहेन्द्रियप्राणान्तः करणत् दुर्माः अ दारागारपुत्राप्तवित्ते हपराण्यात्मना सह सम-र्पयामि दासोऽहं कृष्ण तवास्मि ॥

इस मन्त्रका उपदेश करके शिष्य शिष्याओंको समर्पण कराते हैं। "क्ली" कृष्णायेति"—यह "क्ली" तन्त्र प्रनथका है। इससे विदित होता है कि यह वहुभमत भी वाममार्गियोंका भेद है। इसीसे स्त्रीसंग गुसाई छोग बहुधा करते हैं। "गोपीवड़भेति" क्या कृष्ण गोपियों ही को प्रिय थे अन्यको नहीं ? स्त्रियोंको प्रिय वह होता है जो स्त्रैण अर्थात् स्त्रीभोगमें फंसा हो। क्या श्रीऋष्णजी ऐसे थे १ अब "सहस्र गरिवत्सरेति"—सहस्र वर्षोकी गणना व्यर्थ है क्योंकि वर्छम और उसके शिष्य कुछ सर्वज्ञ नहीं हैं। क्या कृष्णका वियोग सहस्र वर्षों से हुआ और अ.ज हों अर्थात् जब हों वह भका मत न थान बहुभ जन्मा था उसके पूर्व अपने दैवी जीवोंके उद्घार करनेको क्यों न आया ? "ताप" और "क्ठेश" ये दोनों पर्यायवाची हैं। इनमेंसे एकका प्रहण करना उचित था, दो का नहीं। "अनन्त" शब्दका पाठ करना वर्ष्य है क्यों कि जो अनन्त शब्द रक्खो तो "सहस्र" शब्दका पाठ न रखना चाहिये और जो सहस्र शब्दका पाठ रक्खो तो अनन्त शब्दका पाठ रखना सर्वथा व्यर्थ है और जो अनन्तकाल लों "तिरो-

# समुक्लास] गोकुलिये गुसाइयोंकी लीला। ४६३

हित" अर्थात् आच्छादिन रहे उसकी मुक्तिके छिये वल्लभका होना भी क्यंथं है क्योंकि अनन्तका अन्त नहीं होता। भला देहेन्द्रिय, प्राणान्ता-करण और उसके धर्म स्त्री, स्थान, पुत्र, प्राप्तधनका अर्थण कृत्मको क्यों करना १ क्योंकि कृत्ण पूर्णकाम होनेसे कि तीके देहादिकी इच्छा नहीं कर सकते और देहादिका अर्थण करना भी नहीं हो सकता क्योंकि देहके अर्थणसे नखिराखाग्रपर्थन्त देह कहाता है। उनमें जो कुछ अच्छी बुरी वस्तु है मल मूत्रादिका भी अर्थण कैसे कर सकोगे ? और जो पाप पुण्यस्य कर्म होते हैं उसको कृत्णार्थण करनेसे उनके फलभागी भी कृत्ण ही होते अर्थात् नाम तो कृत्णका लेते हैं और समर्थण अपने लिये कराते हैं। जो कुछ देहमें मलमूत्रादि हैं वह भी गोस ईं जीके अर्थण करना अन्य कहुना थू" और यह भी लिखा कि गोसाई जीके अर्थण करना अन्य मत वालेके नहीं। यह सत्र स्वार्थित ग्रुन और पराये धनादि उद्धि हरने और वेदोक्त धर्मके नाश करनेकी लीला रची है। देखो यह वहमका प्रपन्ध—

श्रावणस्यामछे पक्ष एकादरमां महानिशि । साक्षाद्भगवता प्रोक्तं तदक्षरम् उच्यते ॥१॥ ब्रह्मसम्बन्धकरणात्सर्वेषां देहजीवयोः । सर्वदोषनिवृत्तिर्हि दोषाः पश्रविधाः स्पृताः ॥२॥ सहजा देशकालोत्था लोकनेदनि रूपिताः । संयोगजाः स्पर्शजाश्च न मन्तव्याः कदाचन ॥३॥ अन्यथा सर्वदोषाणां न निवृत्तिः कथञ्चन । असमपितवस्तृनां तस्माद्वज्जनमायरेत् ॥४॥ निवेदिभिः समप्येंव सर्वं क्र्यादिति स्थितिः । न मतं देवदेवस्य स्वामिभुक्तिसमर्पणम् ॥४॥
तस्मादादो सर्वकार्यं सर्ववस्तुसमर्पणम् ।
दत्तापहारवचनं तथा च सकलं हरेः ॥६॥
न ग्राह्यमिति वाक्यं हि भिन्नमागपरं मतम् ।
सेवकानां यथा लोके व्यवहारः प्रसिध्यति ॥७॥
तथा कार्यं समप्येव सर्वेषां ब्रह्मता ततः ।
गंगात्वे गुणदोषाणां गुणदोषादिवर्णनम् ॥८॥

इत्यादि रछोक गोसाइयोंके सिद्धान्तरहस्यादि प्रन्थोंने छिते हैं यही गोसाइयोंके मतका मूल तत्त्व है। भला इनसे कोई पूछे कि श्रीकृष्णके देहान्त हुए कुछ कम पांच सहस्र वर्ष बीते वह ब्रह्मभे श्रावण मासकी आधी रातको कैसे मिल सके १॥ १॥

जो गोसाई का चेला होता है और उसको सब पदार्थाका समर्पण फरता है उसके शरीर और जीवके सब दोषोंकी नृष्ठति होजाती है यही बहुसका प्रपंच मूखोंको बहुका कर अपने मतमें लानेका है जो गोसाई के चेले चेलियोंके सब दोष नृष्ठत्त होजावें तो रोग दारिष्ट्र चादि दुः लोंसे पीड़ित क्यों रहें ? और वे दोष पांच प्रकारके होते हैं ॥२॥

एक—सहज दोष जो कि स्वाभाविक अर्थात् काम क्रोधादिसे उत्पन्न दोने हैं। दूसरे—िकसी देशकालमें नाना प्रकारके पाप किये जायें। तीसरे—लोकने जिनको भक्ष्याभक्ष्य कहते और वेदोक्त जो कि मिथ्याभ, पणादि हैं। चौथे—संयोगज जो कि बुरे संगसे अर्थात् चोगी, जारी, माता, भगिनी, कन्या पुत्रवधू, गुरुपत्नी आदिसे संयोग करना। पांचवें—स्पर्शज अस्पर्शनीयोंको स्पर्श करना इन पांच दोगोंको गोसाई लोगोंके मत वाले कभी न माने अर्थात् यथेष्टाचार करें।। ३॥

#### समुह्णास] गोकुलिये गुसाइयोंकी लीला। ४६५

अन्य कोई प्रकार दोषोंकी नृत्रितिक लिये नृत्री हैं विना गोसाई जी के मतके। इसलिये दिना समर्पण किये पदार्थको गोसाई जी के चेले न भोगें। इसीलिये इनके चेले अपनी स्त्री, कन्या, पुत्रवधू और धनादि पदार्थोंको भी समर्पित करते हैं परन्तु समर्पणका नियम यह है कि जब लों गोसाई जीकी चरण तेवामें समर्पित न होवे तब लों उसका खामी खस्त्रीको स्पर्श न कर।। ४।।

इससे गोस:इयोंके चेले समर्पण करके पश्चात् अपने अपने पदा-र्थका भोग करें क्योंकि स्वातीक भोग करे पश्चात् समर्पण नहीं हो सकता ॥ ४ ॥

इससे प्रथम सब कामोंमें सब वस्तुओंका रामर्पण करें प्रथम गोराई जीको भार्यादि समर्पण करके पश्चात् प्ररुण करें वैसे ही हरिको सम्पूर्ण पदार्थ समर्पण करके प्रहण करें ॥ ६ ॥

गोसाई जीके मतसे भिन्न सार्गके वाक्यमात्रको भी गोसाइयोंके चेठा चेठी कभी न सुनें न प्रज्ञण करें यही उनके शिष्योंका व्यवहार प्रसिद्ध है। ७।।

वैते ही सब वस्तुओंका समर्थण करके सबके बीचमें प्रहाबुद्धि करे। उसके पश्चात् जैसे गंगामें अन्य जल मिलकर गङ्गारूप होजातं हैं वैसे ही अपने मतमें गुण और दूसरेके मतमें दोप हैं इसलिये अपने मतमें गुणोंका वर्णन किया करें।। < ।।

अब देखिये गोसाइयोंका मत सब मतोंसे अधिक अपना प्रयोजन सिद्ध करने ज्ञारा है। भछा, इन गोसाइयोंको कोई पृष्ठे कि ब्रह्मका एक छक्षण भी ृम नहीं जानते तो शिष्य शिष्याओंको ब्रह्मसम्बन्ध कैसे करा सकोगे ? जो कहो कि हम ही ब्रह्म हैं हमारे साथ सम्बन्ध होनेसे ब्रह्मसम्बन्ध हो जाता है। सो तुममें ब्रह्मके गुण कम स्वभाव एक भी नहीं हैं पुनः क्या तुम केवल भोग विलासके लिये ब्रह्म बन बैठे हो ? भला शिष्य और शिष्याओंको हो तुम अगने साथ समर्पित करके शुद्ध करते हो परन्तु तुम और तुम्हारी स्त्री, कन्या तथा पुत्रवयू आदि

असमर्पित रहजानेसे अग्रुद्ध रहगये वा नहीं १ और तुम असमर्पित वस्तको अग्रद्ध मानते हो पुनः उनसे उत्पन्न हुए दुम लोग अग्रुद्ध क्यों नहीं ? इसिलिये तुमको भी उचित है कि अपनी स्त्री, कन्या तथा पुत्रवय आदिको अन्य मत वालोंके साथ समर्पित कराया करो। जो कही कि नहीं नहीं तो तुम भी अन्य स्त्री पुरुष तथा धनादि पदार्थीकी समर्पित करना कराना छोड देओ। भला अब लों जो हुआ सो हुआ परन्त अब तो अपनी मिथ्या प्रपञ्चादि बुराइयोंको छोड़ों और सुन्दर क्ष्यरोक्त वेदविहित सुपथमें आकर अपने मृतुष्य ह्रपी जन्मको सफलकर र्धम, अर्थ, काम, मोक्ष इन चतुष्टय फलोंको प्राप्त होकर अ नन्द भोगो । स्रीर देखिये । ये गोसाई लोग अपने सम्प्रदायको "पुष्टि" मार्ग कहते हैं अर्थात खाने, पीते, पृष्ट होने और सब स्त्रियों के संग यथेष्ट भोग विलास करनेको पुष्टिमार्ग कहते हैं परन्तु इनसं पूछना चाहिये कि जब बड़े दुः खदायी भगंदरादि रोगप्रस्त होकर ऐसे महीक २ मरते हैं कि जिसको यही जानते होंगे। सच पूछो तो पुष्टिमार्ग नहीं किन्तु क्रिक्टिमार्ग है। जैसे कुष्ठीके शरारकी सब धातु पिघल पिघलके निकल जाती हैं और विलाप करता हुआ। शरीर छोडता है। ऐसी ही छीला इनकी भी देखनेमें आती है। इसिंखये नरकमार्ग भी इसीको कहना . संघटित हो सकता है क्यों कि दुःखका नाम नरक और सुखका नाम र्ह्मा है। इसी प्रकार मिथ्या जाउँ रचके विचारे भोले भारे मनुष्यों हो जालमें फंसाया और अपने आपको श्रीऋष्ण मान दर सबके स्वामी बनते हैं। यह कहते हैं कि जितने दैवी जीव गोछोद्धसे यहां आये हैं **छनके उद्घार कर**नेके लिये हम लीला पुरुषोत्तम जन्मे हैं जब लों हमारा उपदेश न हे तब हों गोहोककी प्राप्ति नहीं होती। दबं एक श्रीकृष्ण पुरुष और सब स्त्रियां हैं। बाह जी बाह । भळा तुम्हारा मत है ॥ गोसाइयोंके जितने चेले हैं वे सब गोषियां वन जावंगी। अब विचारिये मला जिस पुरुषके दो स्त्री होती हैं उसकी बड़ी दुर्दशा हो जाती है वो, जार्न एक पुरुष और क्रोड़ों स्त्री एकके पीछे लगी ह उसके

# समुह्रास] गोकुलिये गुसाइयोंका गोलोक। ४६७

दुःखका क्या पारावार है ? जो कही कि श्रीकृष्णों बड़ा भारी सामर्थ्य है सबको श्रमत्र करते हैं तो जो उसकी स्त्री जिसको स्वामीनीजी करते हैं उसमें भी श्रीकृष्णके समान सामर्थ्य होगा क्योंकि वह उनकी अर्द्धाङ्गी है। जैसे यहां स्त्री पुरुषकी कामचेष्टा तुल्य अथवा पुरुषसे स्त्रीकी अधिक होती है तो गोलोकम क्यों नहीं ? जो ऐसा है तो सन्य स्त्रियोंक साथ स्वामीनीजीकी अत्यन्त लड़ाई बखेड़ा मचता होगा क्योंकि सपत्नीभाव बहुत बुरा होता है। पुनः गोलोक स्वगंके बद्दे नरकवत् होगया होगा, अथवा जैसे बहुत स्त्रीगामी पुरुष मगन्दरादि रोगोंसे पीड़ित रहता है वैसा ही गोलोकमें भी होगा। छि! छि ॥ छि ॥ ऐसे गोलोकसे मर्त्यलोक ही विचारा भला है। देखों जैसे यहां गोसाई जी अपनेको श्रीकृष्ण मानते हैं और बहुत स्त्रियोंके साथ लीला करनेसे भगन्दर तथा प्रमेहादि रोगोंसे पीड़ित होता है तो गोलोकका स्वामी श्रीकृष्ण इन रोगोंसे पीड़ित क्यों न होगा ? खीर जो नहीं है तो उनका स्वरूप गोसाई जी पीड़ित क्यों होते हैं ?

प्रश्न--मर्त्यलोकमें लीलावतार धारण करनेसे रोग दोष होता है

गोलोकमें नहीं क्योंकि वहां रोग दोष ही नहीं हैं।

उत्तर—"भोगे रोगभयम्" जहां भोग है वहां रोग अवश्य होता है और श्रीकृष्णके कोड़ान्कोड़ स्त्रियोंसे सन्तान होते हैं वा नहीं और जो होते हैं तो छड़के २ होते हैं वा छड़की छड़की ? अथवा दोनों ? जो कहो कि छड़कियां ही छड़कीयां होती हैं तो उनका विवाह किनके साथ होता होगा ? क्योंकि वहां विना श्रीकृष्णके दूसरा कोई पुरुष नहीं, जो दूसरा है तो तुम्हारी प्रतिज्ञाहानि हुई। जो कहो छड़के ही छड़के होते हैं तो भी यही दोष आन पड़ेगा। कि उनका विवाह कहां और किनके साथ होता है ? अथवा घरके घरहीमें गटपट कर छेते हैं अथवा अन्य किसीकी छड़कियां वा छड़के हैं तो भी तुम्हारी प्रतिज्ञा "गोछोकमें एक ही श्रीकृष्ण पुरुष्ण नष्ट हो जायगी और जो कहों कि सन्तान होते ही

नहीं तो श्रीकृष्णमें नपुंसकत्व और स्त्रियोंमें बन्ध्यापन दोष आवेगा। भला यह गोकुछ क्या हुआ ? जानो दिल्लीके बादशाहकी बीबियोंकी सेना हुई। अब जो गोसाई लोग शिष्य और शिष्याओंका तन मन तथा घन अपने अर्थण करा लेते हैं सो भी ठीक नहीं क्योंकि तन तो विवाह समयमें स्त्री और पतिके समर्पण हो जाता है पुनः मन भी दूसरेके समर्पण नहीं हो सकता, क्योंकि मन ही के साथ तनका भी समर्थण करना बन सकता और जो करें तो व्यभिचारी कहावेंगे। अब रहा धन उसकी भी यही छीछ। समस्रो अर्थात मनके विना कुछ भी अर्पण नहीं हो सकता। इन गोसाइयोंका अभिप्राय यह है कि कमावें तो चेळा और आनन्द करें हम । जितने वहाभ सम्प्रदायी गोसाई लोग हैं वे अब लों तैलङ्की जातिमें नहीं हैं और जो कोई इनको भूले भटके लड़की देता है वह भी जातिबाह्य होकर श्रष्ट हो जाता है क्योंकि वे जातिसे पतित किये गये और विद्याहीन रात दिन प्रमादमें रहते हैं। और देखिये ! जब कोई गोसाई जीकी पथरावनी करता है तब उसके घर पर जा चु ग्चाप काठकी पुतलीके समान बैठा रहता है, न कुछ बोलता न चालता। विचारा बोले तो तब जो मूर्ख न हो। "मूर्खाणां बलं मौनम्" क्योंकि मूर्खीका बल मौन है जो बोले तो उसकी पोल निकल जाय परन्तु स्त्रियोंकी और खूत्र ध्यान लगा-कर ताकता रहता है और जिसकी ओर गोसाई जी देखें तो जानी बड़े ही भाग्यकी बात है और उसका पति, भाई, बन्धु, माता, पिता बड़े प्रसन्न होते हैं। वहां सब स्त्रियां गोसाई जीके पग छूती हैं जिसपर गोसाई जीका मन लगे वा कुग हो उसकी अंगुली पैरसे दबा देते हैं वह स्त्री और उसके पति आदि अपना धन्यभाग्य सममते हैं और उस स्त्रीसे उसके पति बादि सत्र कहते हैं कि तू गोसाई जीकी चरण-सेवामें जा और जहां कहीं उसके पति आदि प्रसन्न नहीं होते वहां दूती और कुरनियोंसे काम सिद्ध करा हेते हैं। सच पूछी तो ऐसे काम करनेवाले उनके मन्दिरोंमें और उनके समीप बहुतसे रहा करते

# समुद्धास] गोकुलिये गुसाइयोंकी लीला। ४६६

 । अब इनकी दक्षिणाकी लीला अर्थात् इस प्रकार मांगते हें—लाओ भेट गोसाई जीकी, वहजीकी, लालजीकी, वेटीजीकी, मुख्याजीकी, बाहरियाजीकी, गवैयाजीकी, और ठाकुरजीकी। इन सात दुकानोंसे यथेष्ट माल मारते हैं। जब कोई गोसाई जीका सेवक मरने लगता है तब उसकी छातीमें पग गोसाई जी धरते हैं और जो कछ मिलता है उसको गोसाई जी गडक कर जाते हैं क्या यह काम महाब्राह्मण और कर्टिया वा मुर्दावलीके समान नहीं है ? कोई २ चेला विवाहमें गोसाई जीको बुलाकर उन्हींसे लड़के लड़कीका पाणिप्रहण कराते हैं खौर कोई २ सेवक जब केशरिया स्नान अर्थात् गोसाई जीके शरीर पर स्त्री लोग केशरका उबटना करके फिर एक बडे पात्रमें पट्टा रखके गोसाई जीको स्त्री पुरुष मिलके स्नान कराते हैं परन्तु विशेष स्त्रीजन स्नान कराती हैं। पुनः जब गोसाईं जी पीताम्बर पहिर और खडाऊं पर चढं बाहर निकल आते हैं और धोती उसीमें पटक देते हैं। फिर **. इस** जलका आचमन उसके सेवक करते हैं और अच्छे मसाला धरके । पान बीडी गोसाई जीको देते हैं । वह चाब कर कुछ निगल जाते हैं शेष एक चान्दीके कटोरेमें जिसको उनका सेवक मुखके आगे कर देता े है उसमें पीक उगल देते हैं। उसकी भी प्रसादी बटती है जिसको "खास" प्रसादी कहते हैं। अब विचारिये कि ये छोग किस प्रकारके मनुष्य हैं जो मृद्रता और अनाचार होगा तो इतना ही होगा। बहुतसे समर्पण छेते हैं। उनमेंसे कितने ही वैष्णवों के हाथका खाते हैं अन्यका नहीं ! कितने ही वैष्णवोंके हाथका भी नहीं खाते लकडे लों घो लेते हैं परन्तु आटा, गुड, चीनी, घी आदि घोयेसे उनका स्पर्श विगड जाता है क्या करें विचारे जो इनको धोवें तो पदार्थ ही हाथसे खो बैठें। वे कहते हैं कि हम ठाकुरजीके रक्क, राग, भोगमें बहुतसा धन छगा देते हैं परन्तु वे रङ्क, राग, भोग आप ही करते हैं और सच पूछो तो बड़े २ अनर्थ होते हैं अर्थात् होलीके समय पिचकारियां भर कर स्त्रियोंके अस्पर्शनीय अवयव अर्थात् गुप्त स्थान हैं उन पर मारते हैं और रसविक्रय ब्राह्मणके लिये निषिद्ध कर्म है उसको भी करते हैं। प्रश्न—गुसाई जी रोटी, दाल, कढ़ी, भात, शाक और मठरी तथा लड़हू आदिको प्रत्यक्ष हाटमें बैठके तो नहीं बेचते किन्त अपने नौकरों चाकरोंको पत्तलें बांट देते हैं वे लोग बेचते हैं गुसाई जी नहीं।

उत्तर-जो गोसाई जी उनको मासिक रुपये देवें तो वे पत्तलें क्यों लेवें। गुसाई जी अपने नौकरोंके हाथ दाल भात आदि नौकरीके बदलेमें बेच दंते हैं। वे ले जाकर हाट बाजारमें बेचते हैं। जो गुसा-ई जी स्वयं बाहर बेचते तो नौकर जो ब्राह्मणादि हैं वे तो रसविकय होषसे बच जाते और अकेले गोसाई जी ही रसविक्रयरूपी पापके भागी होते । प्रथम तो इस पापमें आप डूबे फिर औरोंको भी समेटा भीर कहीं २ नाथद्वारा आदिमें गुसाई जी भी बेचते हैं। रसविकय करना नीचोंका काम है उत्तमोंका नहीं । ऐसे २ छोगोंने इस आर्घ्याव-र्त्तकी अधोगति कर दी।

प्रश्न-स्वामीनारायणका मत कैसा है ?

उत्तर-"य दृशी शीतळादेवी तादृशो वाहुनः खरः" जैसी गुसाई -जीकी धनहरणादिमें विचित्र छीछा है वैसी ही खामीनारायणकी भी है। देखिये। एक 'सहजानन्द' नामक अयोध्याके समीप एक मामका जन्मा हुआ था। वह ब्रह्मचारी होकर गुजरात, काठियावाड़, कच्छ-भुज आदि देशोंमें फिरता था। उसने देखा कि यह देश मूर्व और भोला भाला है चाहे जैसे इनको अपने मतमें झकालें वैसे ही ये लोग झक सकते हैं। वहां उसने दो चार शिष्य बनाये। उनने आपसमें सम्मति कर प्रसिद्ध किया कि सहजानन्द नारायणका अवतार और बड़ा सिद्ध है और भक्तोंको चतुर्भुज मूर्ति धारण कर साक्षात् दर्शन भी देता है। एक वार काठियावाडुमें किसी काठी अर्थात् जिसका नाम "दादाखाचर" गढ़ड़ेका भूमिया (जिमीदार) था। उसकी शिष्योंने कहा कि तुम चतुर्भुज नारायणका दर्शन करना चही तो हम सहजानन्दजीसे प्रार्थना करें ? उसने कहा बहुत अच्छी बात है। वह

## समुक्लास] स्वामीनारायणमत समीक्षा। ५०१

भोला आदमी था। एक कोठरीमें सहजानन्दने शिर पर मुकुट धारण कर और शंख चक्र अपने हाथमें ऊपरको धारण किया और एक दूसरा आदमी उसके पीछे खड़ा रहकर गदा पदा अपने हाथने लेकर सहजानन्दकी बगलमेंसे आगेको हाथ निकाल चतुर्भुजके तुल्य बन ठन गये। दादाखाचरसं उनके चेळोंने कहा कि एक वार आंख उठा देखके फिर आंख मींच लेना और मह इधरको चले आना। जो बहुत देखोगे तो नारायण को । करेंगे अर्थात् चेळों क मनमें तो यह था कि हमारे कपटकी परीक्षा न कर छेवे। उसको छेगये वह सहजानन्ड कलाबत्तू और चिलकते हुए रेशमके कपडे धारण कर रहा था। अन्धेरी कोठरीमें खड़ा था। उसके चेळोंने एक दम ळाळटेनसे कोठ-रीके और उजाला किया। दादाखाचरने देखा तो चतुर्भुज मूर्ति दीखी फिर मत्ट दीपकको आड़में कर दिया। वे सब नीचे गिर, नमस्कार कर दूसरी ओर चड़े गये और उसी समय बीचमें बातेंकी कि तुम्हारा धन्य भाग्य है। अब तुम महाराजके चेले होजाओ। उसने कहा बहुत अच्छी बात । जब छों फिरके दूसरे स्थानमें गये तब लों दूसरे बस्न धारण करके सहजानन्द गद्दी पर बैठा मिला। तब चेलोंने कहा कि देखो अब दूसरा स्वरूप धारण करके यहां विराजमान हैं। वह दादाखाचर इनके जालमें फँस गया। वहींसे उनके मतकी जड जमी क्यों कि वह एक बड़ा भूमिया था। वहीं अपनी जड़ जमाली पुनः इधर उधर घूमता रहा, सबको उपदेश करता था, बहुतोंको साधु भी बनाता थो। कभी २ किसी साधुकी कण्ठकी नाड़ीको मलकर मूर्छित भी कर देना था और सबसे कहता था कि हमने इनकी समाधि चढ़ादी है। ऐसी २ धूर्त्ततामें काठियावारके भोले भाले डोग उसके पेचमें फँस गये। जद वह मर गया तब उसके चेलेंने बहुतसा पाखण्ड फैळाया। इसमें यह दृष्टान्त उचित होगा कि जैसे कोई एक चोरी करता पकड़ा गया था। न्यायाधीशने उसका नाक कान काट डालनेका दण्ड दिया। जब उसकी नाक काटी गई तब वह

धूर्त नाचने गाने और हँसने लगा । छोगोंने पूछा कि तू क्यों हँसता है ? उसने कहा कुछ कहनेकी बात नहीं है ! छोगोंने पूछा ऐसी कौनसी बात है ? उसने कहा बड़ी भारी आश्चर्यकी बात है, हमने ऐसी कभी नहीं देखी। लोगोंने कहा कही क्या बात है ? उसने कहा कि मेरे सामने साक्षात् चतुर्भुज नारायण खड़े में देखकर बड़ा प्रसन्न होकर नाचता गाता अपने भाग्यको धन्यवाद देता हूं कि मैं नारायणका साक्षात दर्शन कर रहा हूं। छोगोंने कहा इमकी दर्शन क्यों नहीं होता ? वह बोला नाककी आड़ हो रही है जो नाफ कटवा डालो तो नारायण दीले नहीं तो नहीं। उनमेंसे किसी मूर्खने चाहा कि नाक जाय तो जाय परन्तु नारायणका द्रशंन अवश्य करना चाहिये। उसने कहा कि मेरी भी नाक काटो नारायणको दिखलाओ। उसने उसकी नाक काट कर कानमें कहा कि तूभी ऐसा ही कर, नहीं तो मेरा और तेरा उपहास होगा। उसने भी सममा कि अब नाक तो आती नहीं इसलिये ऐसा ही कहना ठीक है तब तो वह भी वहां **बसीके समान नाचने, कूदने, गाने. बजाने, हँसने और कहने** छगा कि मुम्मको भी नारायण दीखता है। वैसे होते २ एक सहस्र मनुष्योंका मुंड होगया और बड़ा कोलाहल मचा और अपने सम्प्रदायका नाम "नारायणदर्शी" रक्खा। किसी मूख राजाने सुना उनको बुखाया। जब राजा उनके पास गया तब तो वे बहुत कुछ नाचने, कूदने इसने लगे। तब राजाने पृछा कि यह क्या बात है ? उन्होंने कहा कि साक्षात् नारायण हमको दीखता है।

राजा-हमको क्यों नहीं दीखता ?

नारायणदर्शी—जनतक नाक है तनतक नहीं दीखेगा और जन नाक कटना लोगे तन नारायण प्रत्यक्ष दीखें। उस राजाने विचारा कि यह बात ठीक है।

राजाने कहा—ज्योतिषीजी मूहूर्त देखिये। इयोतिषीजीने उत्तर दिया—जो हुन्म, अन्तदाता, दशमीके दिन प्रातःकाल आठ बज़े नाक कटवाने और नारायणके दर्शन करनेका बड़ा अच्छा मूहूर्त है। वाहरे पोपजी! अपनी पोथीमें नाक काटने कटवानेका भी मुहूर्त लिख दिया। जब राजाकी इच्छा हुई और उन सहस्र नकटोंके सीथ बांथ दिये तब तो वे बड़े ही प्रसन्त होकर नाचने कुद्दने और गाने लगे। यह बात राजाके दीवान आदि कुछ २ बुद्धि- बालोंको अच्छी न लगी। राजाके एक चार पीढ़ीका बूढ़ा ६० वर्षका दीवान था। उसको जाकर उसके परपोतेने जो कि उस समय दीवान था, वह बात सुनाई। तब उस बुद्धने कहा कि वे धूर्त हैं। तू सुमको राजाके पास ले चल, वह लेगया। बैठते समय राजाने बड़े हिलत होके उन नाककटोंकी बातें सुनाई। दीवानने कहा सुनिये महाराज! ऐसे शीवता न करनी चाहिये। विना परीक्षा किये परचा- चाप होता है।

राजा—क्या ये सहस्र पुरुष भूठ बोळते होंगे ? ॅ दीवान—भूठ बोळो वा सच विना परीक्षाके सच भूठ केसे कह सकते हैं ?

राजा—परीक्षा किस प्रकार करनी चाहिये ? दीवान—विद्या सृष्टिकम प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे। राजा—जो पढ़ा न हो वह परीक्षा कैसे करे ? दीवान—विद्वानोंके संगसे झानकी वृद्धि करके। राजा—जो विद्वान् न मिले तो ? दीवान—पुरुषार्थीको कोई बात दुर्लभ नहीं है। राजा—तो आप ही कहिये कैसा किया जाय ?

दीवान—में बुड्ढा और घरमें बैठा रहता हूं और अब थोड़े दिन जीऊंगा भी। इसिल्ये प्रथम परीक्षा में कर लेऊं तत्पश्चात् जैसा डचित समम्में वैसा कीजियेगा।

राजा—बहुत अच्छी बात है। ज्योतिषीजी दीवानजीके लिये मुहूर्त देखो। ज्योतिषी—जो महाराजकी आहा। यही शुक्त पंचमी १० बजेका मुह्ति अच्छा है। जब पंचमी आई तब राजाजीके पास आठ बजे बुड्टे दीवानजीने राजाजीसे कहा कि सहस्र दो सहस्र सेना लेके चलना चाहिये।

राजा-वहां सेनाका क्या काम है ?

दीवान-अापको राष्ट्रयव्यवस्थाकी खबर नहीं है। जैसा मैं कहता हूं बैसा कीजिये ?

राजा-अच्छा जाओ भाई सेनाको तैयार करो । साढे नौ बजे सवारी करके राजा सबको लेकर गया। उनको देखकर वे नाचने और गानं लगे। जाकर बैठे। उनके महन्त जिसने यह सम्प्रदाय चलाया था जिसकी प्रथम नाक कटी थी उसको बुलाकर कहा कि आज हमारं दीवानजीको नारायणका दर्शन कराओ। उसने कहा अच्छा, दश बजेका समय जब आया तब एक थाली मनुष्यने नाकके नीचे पकड रक्खी। उसने पैना चक्कू हे नाक काट थालीमें डाल दी और दीवानजी की नाकसे रुधिरकी धार छूटने छगी। दीवानजीका मुख मलिन पड गया । फिर उस धूर्तने द्वावानजीक कानमें मन्त्रीपदेश किया कि आप भी हंसकर सबसे कहिये कि मुक्तको नारायण दीखता है। अब नाक कटी हुई नहीं आवेगी। जो ऐसा न कहोगे तो तुम्हारा बड़ा ठट्टा होगा, सब लोग हँसी करेंगे। वह इतना कह अलग हआ और दीवानजीत अंगोछा हाथमें हे नाककी आडमें छगा दिया। जब दीवानजीसे राजाने पूछा कहिये नारायण दीखता वा नहीं १ दीवानजी ने राजाके कानमें कहा कि कुछ भी नहीं दीखता वथा इस धूर्तने सहस्रों मनुष्यों को खराब किया। राजाने दीवानसे कहा अब क्या करना चाहिये ? दीवानने कहा इनको पकड़के कठिन दण्ड देना चाहिये जब लों जीवें तब लों बन्दीघरमें रखना चाहिये और इस दुष्टको कि जिसने इन सबको विगाड़ा है गधे पर चढ़ा बड़ी दुईशाके साथ मारना चाहिये। जब राजा और दीवान कानमें बातें करने छने

तब उन्होंने डरके भागनेकी तैयारी की परन्तु चारों और फौजने घेरा दे रक्खा था न भाग सके। राजाने आज्ञा दी कि सबको पकड़ बेडियां डाल दो और इस दुष्टका काला मुख कर गधे पर चढा इसके कण्डमें फटे जुतोंका हार पहिना सर्वत्र घुमा छोकडोंसे धूल राख इस पर दखवा चौक २ में जुतोंसे पिटवा कुत्तोंसे छुचवा मरवा हाला जावे। जो ऐसा न होवे तो पुनः दूसरे भी ऐसा काम करते न डरेंगे। जब ऐसा हुआ तब नाककटेका सम्प्रदाय बंद हुआ। इसी प्रकार सब वेदविरोधी दूसरोंके धन हरनेमें बड़े चतुर हैं। यह सम्प्रदायोंकी लीला है। ये स्वामीनारायण मत वाळे धन**ेर छ**छ कपटयुक्त काम करते हैं। कितने ही मूर्खोंके बहकानेके लिये मरते समय कहते कि सफेद घोडे पर बैठ सहजानन्दजी मुक्तिको लेजानेके लिये आये हैं और नित्य इस मन्दि-रमें एक वार आया करते हैं जब मेला होता है तब मन्दिरके भीतर पूजारी रहते हैं। और नीचे दुकान लगा रक्खी है। मंदिरमेंसे दुका-नमें जानेका छिद्र रखते हैं। जो किसीने नारियल चढाया वही दुका-नमें फेक दिया अर्थात इसी प्रकार एक नारियल दिनमें सहस्र बार विकता है ऐसे ही सब पदार्थीको बचते हैं। जिस जातिका साधु हो उनसे वैसा ही काम कराते हैं। जैसे नापित हो उससे नापितका. कुम्हारसे कुम्हारका, शिल्पीसं शिल्पीका, बनियेसं बनियेका और शुद्रसे शुद्रादिका काम लेते हैं। अपने चेलों पर एक कर (टिकस) बांध रक्या है। ल खों कोड़ों रुपये ठगके एकत्र कर लिये हैं और करते जाते हैं। जो गददी पर बैठता है वह गृहस्थ विवाह करता है आभूषणादि पहिनता है। जहां कहीं पधरावनी होती है वहां गोकुल्यिके समान गुसाई जी बहुजी आदिके नामसे भेट पूजा छेते हैं। अपनेकी "सत्सङ्की" और दूसरे मत वालोंको "कुसङ्की" कहते हैं। अपने सिवाय दूसरा कैसा ही उत्तम धार्मिक विद्वान पुरुष क्यों न हो परन्तु इसका मान्य और सेवा कभी नहीं करते क्योंकि अन्य मतस्थकी सेवा करनेमें पाप गिनते हैं। प्रसिद्धिमें उनके साधु खीजनोंका मुख नहीं दे-

खते परन्तु गुप्त न जाने क्या छीला होती होंगी ? इसकी प्रसिद्धि सर्वत्र न्यून हुई है। कहीं २ साधुओंकी परस्तीगमनादि छीछा प्रसिद्ध होगई है और उनमें जो २ बडे २ हैं वे जब मरते हैं तब उनको गुप्त कुवेमें फेंक देकर प्रसिद्ध करते हैं कि अमुक महाराज सदेह वैकुण्ठमें गये। सहजानन्दजी आके छेगये। हमने बहुत प्रार्थना करी कि महाराज इनको न लेजाइये क्योंकि इस महात्माके यहां रहनेसे अच्छा है सह-जानन्दजीने कहा कि नहीं अब इनकी वैकुण्ठमें बहुत आवश्यकता है इसलिये हे जाते हैं। हमने अपनी आंखसे सहजानन्दजीको और विमानको देखा तथा जो मरनेवाले थे उनको विमानमें बैठा दिया अपरको लेगये और पुष्पोंकी वर्षा करते गये। और जब कोई साध वीमार पडता है और उसके बचनेकी आशा नहीं होती तब कहता है कि मैं केंड रातको वैकुण्ठमें जाऊ गा। सना है कि उस रातमें जो उसके प्राण न छूटें और मूर्छित होगया हो तो भी कुवेमें फेंक देते हैं क्योंकि जो उस रातको न फेंकरें तो मूंठे पडें इसलिये ऐसा काम करते होंगे। ऐसे ही जब गोकुलिया गुसाई मरता है तब उनके चेले कहते हैं कि "गुसाईं जी लीला विस्तार करगये।" जो इन गुसाईं स्वामीनारा-यणवालोंका उपदेश करनेका मन्त्र है वह एक ही है। "श्रीकृष्ण: शरणं मम" इसका अर्थ ऐसा करते हैं कि श्रीकृष्ण मेरा शरण है अर्थात् में श्रीकृष्णके शरणागत हूं परन्तु इसका अर्थ श्रीकृष्ण मेरे शरणको प्राप्त अर्थात मेरे शरणागत हों ऐसा भी हो सकता है। ये सब जितने मत हैं वे विद्याहीन होनेसे उटपटांग शास्त्रविरुद्ध वाक्यरचना करते हैं क्योंकि उनको विद्याके नियमोंकी खबर नहीं है।।

प्रश्न—माध्व मत तो अच्छा है ?

उत्तर—जैसे अन्य मतावर्जनी हैं वैसा ही माध्व भी है क्योंकि ये भी चक्रांकित होते हैं इनमें चक्रांकितोंसे इतना विशेष है कि रामानु-जीय एक वार चक्रांकित होते हैं और माध्व वर्ष २ में फिर २ चक्रां-कित होते जाते हैं। चक्रांकित कपाउमें पीठी रेखा और माध्व काड़ी समुक्लास] लिङ्गाङ्कित मत समीक्षा। ५०७ रेखा लगाते हैं। एक माध्य पंडितसे किसी एक महात्माका शास्त्रार्थ हुआ था।

महात्मा--- तुमने यह काली रेखा और चांदछा (तिलक) स्यों

लगाया ?

शास्त्री—इसके लगानेसे हम वैकुण्ठको जायेंगे और श्रीकृष्णका भी शरीर श्याम रङ्ग था इसलिये हम काला तिलक करते हैं।

महातमा—जो काळी रेखा और चांदळा लगानेसे वैकुण्डमें जाते हों तो सब मुख काला कर लेओ तो कहां जाओगे १ क्या वैकुण्डके में भी पार उतर जाओगे १ और जैसा श्रीकृष्णका सब शरीर काला था वैसा तुम भी सब शरीर काला कर लिया करो। तब श्रीकृष्णका सादृश्य हो सकता है। इसल्यि यह भी पूर्वों के सदृश है।।

प्रभ—लिङ्गांकितका मत कैसा है ?

उत्तर — जैसा चक्रांकितका, जैसे चक्रांकित चक्रसे दागे जाते और नारायणके विना किसीको नहीं मानते वैसे लिङ्गांकित लिङ्गा-कृतिसे दागेजाते और विना महादेवके अन्य किसीको नहीं मानते। इनमें विशेष यह है कि लिङ्गांकित पाषाणका एक लिङ्ग सोने अथवा चांदीमें महवाके गलेमें डाल रखते हैं। जब पानी भी पीते हैं तक

### ब्राह्मसमाज और प्रार्थनासमाजके गुणदोष

उसको दिखाके पीते हैं उनका भी मन्त्र शैवके तुल्य रहता है।।

प्रभ—ब्राह्मसमाज और प्रार्थना समाज तो अच्छा है वा नहीं ? उत्तर—कुछ २ बातें अच्छी और बहुतसी बुरी हैं।

प्रभ-नाह्मसमाज और प्रार्थनासमाज सबसे अच्छा है क्योंकि इसके नियम बहुत अच्छे हैं।

उत्तर—नियम सर्वाशमें अच्छे नहीं क्योंकि वेदविद्याहीन लोगोंकी करूपना सर्वथा सत्य क्योंकर हो सकती है १ जो कुछ ब्राह्मसमाज कौर प्रार्थनासमाजियोंने ईसाई मतमें मिलनेसे थोड़े मनुष्योंको बचाये भोर कुछ २ पाषाणादि मूर्तिपूजाको हटाया अन्य जाल मन्थ्रोंके फत्न्देसे भी कुछ बचाये इत्यादि अच्छी बातें हैं। परन्तु इन लोगोंमें स्वदेश-भक्ति बहुत न्यून है। ईसाइयोंके आचरण बहुतसे लिये हैं। खानपान विवाहादिके नियम भी बदल दिये हैं।

२—अपने देशकी प्रशंसा वा पूर्व जोंकी बड़ाई करनी तो दूर रही उसके बदले पेट भर निन्दा करते हैं। व्याख्यानोंमें ईसाई आदि अग-रेजोंकी प्रशंसा भरपेट करते हैं। ब्रह्मादि महर्षियोंका नाम भी नहीं लेते प्रत्युत ऐसा कहते हैं कि विना अगरेजोंके सृष्टिमें आज प्रयन्त कोई भी विद्वान नहीं हुआ। आर्यावर्ती लोग सदासे मूर्ख चले आये हैं। इनकी उन्नति कभी नहीं हुई।

३—वेदादिकोंकी प्रतिष्ठा तो दूर रही परन्तु निन्दा करनेसे भी पृथक् नहीं रहते । ब्राह्मसमाजके उद्देशके पुस्तकमें साधुओंकी संख्यामें "ईसा" "मुहम्मद" "नानक" और "चेतन्य" लिखे हैं। किसी ऋषि महर्षिका नाम भी नहीं लिखा। इससे जाना जाता है कि इन लोगोंने जिनका नाम लिखा है उन्होंके मतानुसारी मत वाले हैं। भला जब आर्थ्यार्वत्तमें उत्पन्न हुए हैं और इसी देशका अन्न जल खाया पिया अब भी खाते पीते हैं अपने माता, पिता, पितामहादिके मार्गको छोड़ दूसरे विदेशी मतों पर अधिक झुक जाना, ब्राह्मसमाजी और प्रार्थन समाजियोंको एतद्देशस्थ संस्कृत विद्यासे रहित अपनेको विद्वान प्रकाशित करते हैं। इंगलिश भाषा पढ़के पण्डिता-भिमानी होकर महिति एक मत चलानेमें प्रवृत्त होना मनुष्योंका स्थिर और बृद्धिकारक काम क्योंकर हो सकता है ?

४—अंगरेज, यवन, अन्त्यजादिसे भी खाने पीनेका मेद नहीं रक्खा। इन्होंने यही समस्ता होगा कि खाने पीने और जातिभेद तोड़-नेसे हम और हमारा देश सुथर जायगा। परन्तु ऐसी बातोंसे सुधार तो कहां, उलटा बिगाड़ होता है।

५ प्रश्न-जातिमेद ईश्वरकृत है वा मनुष्यकृत १

# सम्रक्षास] जित मेद मनुष्यकृत ईरवरकृत । ५०६

बत्तर—ईश्वर और मनुष्यकृत भी जातिभेद है। प्रश्न—कौनसे ईश्वरकृत और कौनसे मनुष्यकृत ?

उत्तर—मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष, जल, जन्तु आदि जातियां, परमेश्वरकृत हैं। जैसे पशुओं में गौ, अश्व, हस्ति आदि जातियां, वृक्षों में पीपल, वट, आम्र आदि, पिक्षों में हंस, काक, वकादि, जलजन्तुओं में मतस्य, मकरादि जातिमेद हैं वैते मनुष्यों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वृक्ष्य, शूद्र, अन्त्यज जातिमेद ईश्वरकृत हैं। परन्तु मनुष्यों में ब्राह्मणा-दिको सामान्य जातिमें नहीं किन्तु सामान्य विशेषात्मक जातिमें गिनते हैं। जैसे पूर्व वर्णाश्रमव्यवस्थामें लिख आये वैसे हो गुण, कर्म, स्वभावसे वर्णाव्यवस्था माननी अवश्य है। इसमें मनुष्यकृतत्व उनके गुण, कर्म, स्वभावसे पूर्वोक्तानुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वेश्य, शूद्रादि वर्णोकी परीक्षापूर्वक व्यवस्था करनी राजा और विद्वानोंका काम है। भोजन भेद भी ईश्वरकृत और मनुष्कृत है। जैसे सिंह मांसाहारी और वर्णा भैसा घासादिका आहार करते हैं। यह ईश्वरकृत और देश काल वस्तु भेदस भोजनभेद मनुष्यकृत है।

प्रश्न—देखी यूरोपियन लोग मुण्डे जूते, कोट, पतल्लून पहरते, होटलमें सबके हाथका खाते हैं इसल्यिय अपनी बढ़ती करते जाते हैं।

उत्तर—यह तुम्हारी भूछ है क्योंकि मुसलमान अन्त्यजलोग सबके हाथका खाते हैं पुनः उनकी उन्नति क्यों नहीं होती ? जो यूरोपियनोंमें बाल्यावस्थामें विवाह न करना, लड़का लड़कीको विद्या सुशिक्षा करना कराना, स्वयंवर विवाह होना, बुरे २ अ दिमियोंका उपदेश नहीं होता वे विद्वान होकर जिस किसीक पाखण्डमें नहीं फँसते जो कुछ करते हैं वह सब परस्पर विचार और सभासे निश्चित करके करते हैं, अपनी स्वजातिकी उन्ततिक लिये तन मन धन व्यय करते हैं, आलस्यको लोड़ उद्योग किया करते हैं। देखो ! अपने देशके बने हुए जुते को आफिस और कचहरीमें जाने देते हैं इस देशी जूतको नहीं। इतने ही में समक्ष लेओ कि अपने देशके बने जूरोंका भी कितना मान

प्रतिष्ठा करते हैं उतना भी अन्य देशस्थ मनुष्योंका नहीं करते। देखो । कुछ सौ वर्षसे ऊपर इस देशमें आये यूरोपियनोंको हुए और आजतक यह लोग मोटे कपडे आदि पहिरते हैं जैसा कि स्व**देशमें** पहिरते थे परन्तु उन्होंने अपने देशका चाल चलन नहीं छोड़ा और तुममेंसे बहुतसे लोगोंने उनकी नक्छ करली इसीसे तुम निंबुद्धि और वे बुद्धिमान ठहरते हैं। अनुकरण करना किसी बुद्धिमानका काम नहीं और जो जिस काम पर रहता है उसको यथोचित करता है। धाज्ञानवर्ती बराबर रहते हैं। अपने देशवार्लीको व्यापार आदिमें सहाय देते हैं, इत्यादि गुणों और अच्छे २ कर्मोंसे उनकी उन्नति है। मुण्डे जूते, कोट, पतलुन, होटलमें खाने पीने आदि साधारण और बुरे कामोंसे नहीं बढ़े हैं और इनमें जातिमेद भी है देखो। जब कोई युरोपियन चाहे कितने बड़े अधिकार पर और प्रतिष्ठित हो किसी भन्य देश अन्य मत वालोंकी लड़की वा यूरोपियनकी लड़की अन्य देशवालेसे विवाह कर लेती है तो उसी समय उसका निमन्त्रण साथ बैठकर खाने और विवाह आदि अन्य लोग बन्द कर देते हैं। यह जातिभेद नहीं तो क्या ? और तुम भोलेभालोंको बहकाते हैं कि हममें जातिमेद नहीं । तुम अपनी मूर्खतासे मान भी छेते हो । इसिछिये जो कुछ करना वह सोच विचारके करना चाहिये जिसमें पुनः पश्चात्ताप करना न पडे। देखो। वैद्य और औषधकी आवश्यकता रोगीके लिये है नीरोगके लिये नहीं । विद्यावान नीरोग और विद्यारहित अविद्या-रोगसे प्रस्त रहता है। उस रोगके ह्युड़ानेके छिपे सत्यविद्या और सत्योपदेश है। उनको अविद्यासे यह रोग है कि खाने पीने हीमें धर्म रहता और जाता है। जब किसीको खाने पीनेमें अनाचार करता देखते हैं तब कहते और जानते हैं कि वह धर्मभ्रष्ट होगया। उसकी बात न सुननी और न उसके पास बैठते, न उसको अपने पास, बैठने देते। अब किहिये कि तुम्हारी विद्या स्वार्थके लिये है अथवा परमार्थके लिये। परमार्थ तो तभी होता कि जब तुम्हारी विद्यासे उन अज्ञानि-

### सम्रह्णास] सर्वमतोंसे सत्यग्रहण और वेद। ५११

योंको लाभ पहुंता। जो कही कि वे नहीं लेते हम क्या करें ? यह सुम्हारा दोष है उनका नहीं, क्योंकि तुम जो अपना आचरण अच्छा रखते तो तुमसे प्रेम कर वे उपकृत होते सो तुमने सहसोंका उपकार नाश करके अपना ही मुख किया सो यह तुमको बड़ा अपराध लगा क्योंकि परोपकार करना धर्म और परहानि करना अधर्म कहाता है। इसलिये विद्वानको यथायोग्य व्यवहार करके अज्ञानियोंको दुःखसागरसे तारनेके लिये नौकारूप होना चाहिये। सर्वथा मूर्खोंके सहश कर्म न करने चाहियें। किन्तु जिसमें उनकी और अपनी दिन प्रतिदिन उन्नति हो वैसे कर्म करने उचित हैं। '

प्रभ—हम कोई पुस्तक ईश्वरप्रणीत वा सर्वाश सत्य नहीं मानते क्योंकि मनुष्योंकी बुद्धि निर्भान्त नहीं होती इससे उनके बनाये प्रन्थ सब भ्रान्त होते हैं। इसलिये हम सबसे सत्य प्रहण करते और असत्य को छोड़ देते हैं। चाहे सत्य वेदमें, बाइबिल्रमें वा कुरानमें और अन्य किसी प्रन्थमें हो हमको प्राह्म है असत्य किसीका नहीं।

) उत्तर—जिस बातसे तुम सत्यप्राही होना चाहते हो उसी बातसे असत्यप्राही भी ठहरते हो क्योंकि जब सब मनुष्य श्रान्तिरहित नहीं हो सकते तो तुम भी मनुष्य होनेसे श्रान्तिसहित हो। जब श्रान्तिस-हितके वचन सर्वांशमें प्रामाणिक नहीं होते तो तुम्हारे वचनका भी विश्वास नहीं होगा। फिर तुम्हारे वचन पर भी सर्वथा विश्वास न करना चाहिये। जब ऐसा है तो विषयुक्त अन्नके समान त्यागके योग्य है। फिर तुम्हारे व्याख्यान पुस्तक बनायेका प्रमाण किसीको भी न करना चाहिये। जब ऐसा है तो विषयुक्त अन्नके समान त्यागके योग्य है। फिर तुम्हारे व्याख्यान पुस्तक बनायेका प्रमाण किसीको भी न करना चाहिये। चित्र तो चौबेजी छब्बेजी बननेको गांठके दो खोकर दुबेजी बन गये। अछु तुम सर्वज्ञ नहीं जैसे कि अन्य मनुष्य सर्वज्ञ नहीं हैं। कदाचित् श्रमसे असत्यको प्रहण कर सत्यको छोड़ भी देते होंगे इसिछिये सर्वज्ञ परमात्माके वचनका सहाय हम अख्य-होंको अवश्य होना चाहिये। जैसा कि वेदके व्याख्यानमें छिख आये हैं वैसा तुमको अवश्य ही मानना चाहिये। नहीं तो "यतो श्रवस्ततो

भ्रष्टः" हो जाना है। जब सर्व सत्य वेदोंसे प्राप्त होता है जिनमें असत्य कुछ भी नहीं तो उनका प्रहण करनेमें शंका करनी अपनी और पराई हानिमात्र कर लेनी है इसी बातसे तुमको आर्च्यावर्तीय लोग अपना नहीं समम्प्रते और तुम आर्थ्यावर्त्तको उन्नतिके कारण भी नहीं हो सक क्योंकि तुम सब घरके मिक्षुक ठहरे हो। तुमने सममा है कि इस बातसे इम लोग अपना और पराया उपकार कर सकेंगे सो न कर सकोगे। जैसे किसीके दो ही माता पिता सब संसारके छड़कोंका पालन करने लगे सबका पालन करना तो असंभव है किन्त उस बातसे अपने लड़कोंकी भी नष्ट कर बैठें वैसे ही आप लोगोंकी गति है। भठा वेदादि सत्य शास्त्रोंको माने विना तुम अपने वचनोंकी सत्यता और असत्यताकी परीक्षा और आर्यावर्त्तकी उन्नति भी कभी कर सकते हो ? जिस देशको रोग हुआ है उसकी ओषधि तुम्हारे पास नहीं और यूरोपियन छोग तुम्हारी अपेक्षा नहीं, करते बीर आर्यावर्तीय लोग तुमको अन्य मतियोंके सदृश समस्रते हैं। धव भी समम कर वेदादिके मान्यसे देशोन्नति करने छगो तो भी अच्छ। है। जो तुम यह कहने हो कि सब सय परमेश्वरसे प्रकाशित होता है पुनः अवियोंके आत्माओं में ईश्वर से प्रकाशित हुए सत्यार्थ वेदोंको क्यों नहीं मानते ? हां, यही कारण है कि तुम छोग वेद नहीं पढे और न पढ़नेकी इच्छा करते हो। क्योंकर तुमको वेदोक्त ज्ञान हो सकेगा १।

६—दूसरा जगत्के उपादान कारणके विना जगत्की उत्पत्ति। जोर जीवको भी उत्पन्न मानते हो, जैसा ईसाई और मुसलमान आदि मानते हैं। इसका उत्तर ऋष्ट्रगृत्पत्ति और जीवेश्वरकी व्याख्यामें देख लीजिये। कारणके विना कार्यका होना सर्वथा असम्भव और उत्पन्न सस्तुका नाश न होना भी वैसा ही असम्भव है।

७—एक यह भी तुम्हारा दोष है जो पश्चात्ताप और प्रार्थनासे पापोंकी निवृत्ति मानते हो। इसी बातसे जगत्में बहुतसे पाप बढ़ स्वाभाविक ज्ञान। (५१३

गये हैं क्योंकि पुराणी छोग तीर्यादि यात्रासे, जैनी छोग भी नवकार मन्त्र जप और तीर्यादिसे, ईसाई छोग ईसाके विश्वाससे, मुसछमान छोग "तोवा" करनेसे पापका छुटजाना विना भोगके मानते हैं। इससे पापोंसे भय न होकर पापों प्रवृति बहुत होगई है इस बातमें बाह्य छोर प्रार्थना समाजी भी पुराणी आदिके समान हैं। जो वेदोंको मानते तो विना भोगके पाप पुण्यकी निवृत्ति न होनेसे पापोंसे डरते छोर धर्ममें सदा प्रवृत्त रहते जो भोगके विना निवृत्ति माने सो ईश्वर अन्यायकारी होता है।

प्र—जो तुम जीवकी अनन्त उन्नति मानते हो सो कभी नहीं हो सकती क्योंकि ससीम जीवके गुण कम स्वभावका फल भी ससीम होना अवश्य है।

प्रश्न—परमेश्वर दयालु है ससीम कमौंका फल अनन्त दे देगा।

उत्तर—ऐसा करे तो परमेश्वरका न्याय नष्ट हो नाय और सतक मौकी उन्नति भी कोई न करेगा क्योंकि थोड़ेसे भी सत्कर्मका अनन्त फल परमेश्वर दे देगा और पश्चात्ताप वा प्रार्थनासे पाप चाहें जितने हों छूट जायंगे ऐसी वातोंसे धर्मकी हानि और पापकर्मोंकी बृद्धि होती है।

प्रभ—हम स्वाभाविक झानको वेदसे भी बड़ा मानते हैं नैमिक्तिकको नहीं क्योंकि जो स्वाभाविक झान परमेश्वरदत्त हममें न होता तो वेदोंको भी कैसे पढ़ पढ़ा समम्म सममा सकते। इसिंख्ये हम छोगोंका मत बहुत अच्छा है।

हता — यह तुम्हारी बात निर्धक है क्योंकि जो किसीका दिसा हुआ झान होता है वह स्वाभाविक नहीं होता। जो स्वाभाविक है वह सहज झान होता है और न वह बढ़ घट सकता उससे उन्नति कोई भी नहीं कर सकता क्योंकि जङ्गली मनुष्योंमें भी स्वाभाविक झान है। क्यों वे अपनी उन्नति नहीं कर सकते १ और जो नैमित्तिक झान है बही उन्नतिका काक्ष्म है। देखों! तुम हम बाल्यावस्थामें कर्तन्या-

समुख्यासी

कत्तव्य और धर्माधर्म कुछ भी ठीक २ नहीं जानते थे। जब हम विद्वा-नोंसे पढ़े तभी कर्त्तव्याकर्ताव्य और धर्माधमको सममते लगे। इस-लिये स्वाभाविक ज्ञानको सर्वोपरि मानना ठीक नहीं।

६ - जो आप छोगोंने पर्व और पूर्वजनम नहीं माना है वह ईसाई मुसलमानोंसे लिया होगा। इसका भी उत्तर पुनर्जनमकी व्याख्यासे समम्म लेना परन्तु इतना समम्मो कि जीव शाश्वत् अर्थात् नित्य है और उसके कर्म भी प्रवाहरूपसे नित्य है। कर्म और कर्मवानका नित्य सम्बन्ध होता है। क्या वह जीव कहीं निकम्मा बैठा रहा था ? वा रहेगा ? और परमेश्वर भी निकम्मा तुम्हारे कहनेसे होता है। पूर्वापर जन्म न माननेसे कृतहानि और अकृताभ्यागम नैर्घण्य और वैषम्य दोष भी ईश्वरमें आते हैं क्योंकि जन्म न हो तो पाप पुण्यके फल भोगकी हानि होजाय। क्योंकि जिस प्रकार दूसरेको सुख, दुख, हानि, छाभ पहुंचाया होता है वैसा उसका फछ विना शरीर धारण किये नहीं होता। दूसरा पूर्वजन्मके पाप पुण्योंके विना सुख दुखबी प्राप्ति इस जन्ममें क्योंकर होवे ? जो पूर्वजन्मके पाप पुण्यानुसार न होवे तो परमेश्वर अन्यायकारी और विना भोग किये नाशके समान कर्मका फल होजावे इसलिये यह भी बात आप लोगोंकी स्राच्छी नहीं।

१०-और एक यह कि ईश्वरके विना दिव्य गुणवाले पदार्थी और विद्वानोंको भी देव न मानना ठीक नहीं क्योंकि परमेश्वर महा-देव और जो देव न होता तो सब देवोंका स्वामी होनेसे महादेव क्यों कहाता १।

११-एक अग्निहोत्रादि परोपकारक कमौको कर्त्तव्य न समस्रता आस्कातहीं∤

१२-श्रुषि महर्षियोंके किये उपकारोंकों न मानकर ईसा आदिके पीछे झक पड़ना अच्छा नहीं।

१३ - और विना कारण विद्या वेदोंके अन्य कार्य्य विद्याओंकी

# समुह्णास] असत्य खंडनकी आवरयकता। ५१६

प्रवृत्ति मानना सर्वर्था असम्भव है।

१४—और जो विद्याका चिह्न यहोपवीत और शिखाको छोड़ सुसलमान ईसाइयोंके सहरा बन बैठना व्यर्थ है। जब पतत्त्व आदि वस्न पहिरते हो और "तमगों" की इच्छा करतें हो तो क्या यहोपवीत आदिका कुछ बड़ा भार होगया था।

१५—और ब्रह्मासे लेकर पीछे २ आर्ट्यावर्रामें बहुतसे विद्वान होगये हैं उनकी प्रशंसा न करके यूरोपियन ही की स्तुतिमें उतर पड़ना पक्षपात और खुशामदके विना क्या कहाजाय।

१६—और बीजांकुरके समान जड़ चेतनके योगसे जीवोत्पत्ति मानना उत्पत्तिके पूर्व जीवतत्त्वका न मानना और उत्पन्नका नाश न मान पूर्वापर विरुद्ध है। जो उत्पत्तिके पूर्व चेतन और जड़ वस्तु न था तो जीव कहांसे आया और संयोग किनका हुआ? जो इन होनोंको सनातन मानते हो तो ठीक है परन्तु सृष्टिके पूर्व ईश्वरके विना दूसरे किसी तत्त्वको न मानना यह आपका पक्ष व्यथ होजायगा। इसिल्ये जो उन्नित करना चाहो तो "आर्य्यसमाज" के साथ मिलकर उसके उद्देशानुसार आर्रण करना स्वीकार कीजिये, नहीं तो कुछ हाथ न लगेगा क्योंकि हम और आपको मति उचित है कि जिस देशके पदार्थोंसे अपना शरीर बना अब भी पालन होता है, आगे होगा उसकी उन्नित तन, मन, धनसे सब जने मिलकर प्रीतिसे करें। इसिल्ये जैसा आर्यसमाज आर्यावर्त्त देशकी उन्नितका कारण है वैसा दूसरा नहीं हो सकता। यित इस समाजको यथावत् सहायता देवें तो बहुत अच्छी बात है क्योंकि समाजका सौभाग्य बढ़ाना समु-हायका काम है एकका नहीं।

प्रश्न—आप सबका खण्डन करते ही आते हो परन्तु अपनेर धर्म में सब अच्छे हैं। खंडन किसीका न करना चाहिये। जो करते हो तो आप इनसे विशेष क्या बतलाते हो ? जो बतलाते हो तो क्या आपसे अधिक वा तुस्य कोई पुरुष न था और न है ? ऐसा अभिमान करना क्षापको उचित नहीं, क्योंकि परमात्माकी सृष्टिमें एक २ से अधिक, तुल्य और न्यून बहुत हैं । किसीको घमंड करना उचित नहीं ।

उत्तर—धर्म संत्रका एक होता है वा अनेक ? जो कही अनेक होते हैं तो एक दूसरेसे विरुद्ध होते हैं वा अविरुद्ध ? जो कहो कि विरुद्ध होते हैं तो एकके विना दूसरा धर्म नहीं हो सकता और जो कहो अविरुद्ध हैं तो पृथक् २ होना व्यर्थ है। इसिल्ये धर्म और अधर्म एक ही है अनेक नहीं। यही हम विशेष कहते हैं कि जैसे सब सम्प्रदायों के उपदेशों को कोई राजा इकट्ठा करे तो एक सहस्रसे कम नहीं होंगे परन्तु इनका मुख्य भाग देखो तो पुरानी, किरानी, जैनी और कुरानी चार ही हैं क्यों कि इन चारों में सब सम्प्रदाय आजाते हैं। कोई राजा उनकी सभा करके कोई जिज्ञास होकर प्रथम बाम-मार्गीसे प्रछे—

हे महाराज ! मैंने आजतक न कोई गुरु और न किसी धर्मका बहुण किया है कहिये सब धर्मों मेंसे उत्तम धर्म किसका है ? जिसकी मैं बहुण करूं।

वाममार्गी—हम्हा है।

जिज्ञासु—ये नौसौ निन्न्यानवे कैसे हैं ?

वाममार्गी—सब भूठे और नरकगामी हैं क्योंकि "कौलात्परतर्र नहिं" इस वचनके प्रमाणसे हमारे धमसे पर कोई धम नहीं है।

जिज्ञासु-अापका क्या धर्म है ?

वाममार्गी—भगवतीका मानना, मग मांसादि पंच मकारोंका सेवन और रहयामल अदि चौसठ तन्त्रोंका मानना इत्यादि, जो तु मुक्ति की इच्छा करता है तो हमारा चेला हो जा।

जिज्ञासु—अच्छा परन्तु और महात्माओंका भी दर्शन कर पूछ पाछ आऊँगा। पश्चात् जिसमें मेरी श्रद्धा और प्रीति होगी उसका चेळा होजाऊँगा।

ै वाममार्गी—अरे क्यों आन्तिमें पड़ा है। वे छोग तुम्हको बहका

### समुह्रास] धर्मकी जिज्ञासा और परीक्षा। ५१७

कर अपने जास्त्रमें फँसा देंगे। किसीके पास मत जावे हमारे ही शरणायत हो जा नहीं तो पछताओंगे। देख ! हमारे मतमें भोग और मोक्ष दोनों हैं।

जिज्ञासु—अच्छा देख तो आऊं। आगे चलकर शैवके पास जाके पूछा तो ऐसा ही उत्तर उसने दिया। इतना विशेष कहा कि विना शिव, स्ट्राह्म, भस्मधारण और लिङ्गार्चनके मुक्ति कभी नहीं होती। वह उसको छोड़ नवीन वेदान्ती जीके पास गया।

जिज्ञासु-कहो महाराज ! आपका धर्म क्या है ?

वेदान्ती—हम धर्माधम कुछ भी नहीं मानते। हम साक्षात् वस हैं। हममें धर्माधम कहां हैं ? यह जगत् सब मिध्या है और जो ज्ञानी शुद्ध चेतन हुआ चाहे तो अपनेको ब्रह्म मान जीवभावको छोड़ निख-सुक्त होजायगा।

जिज्ञासु—जो तुम ब्रह्म नित्यमुक्त हो तो ब्रह्मके गुण, कर्म, स्वभाव तुममें क्यों नहीं ? और शरीरमें क्यों बन्धे हो ?

वेदान्ती — तुम्मको शरीर दीखते हैं इसीसे तू आन्त है। हमको इन्छ नहीं दीखता विना ब्रह्मके।

जिज्ञासु—तुम देखतेवाले कौन और किसको देखते हो ? वेदान्ती—देखनेवाला ब्रह्म ओर ब्रह्मको ब्रह्म देखता है। जिज्ञासु—क्या दो ब्रह्म हैं ?

वेद्रान्ती-नहीं अपने आपको देखता है।

जिज्ञासु—क्या कोई अपने कन्धे पर आप चढ़ सकता है ? तुम्हारी बात कुछ नहीं केवल पागलपनेकी है ? वह आगे चलकर जैनियोंके पास जाके पृष्ठा। उन्होंने भी वैसा ही कहा परन्तु इतना विशेष कहा कि "जिन्धर्म" के विना सब धर्म खोटा, जगत्का कर्ता अनादि ईश्वर कोई नहीं, अनात् अनादि कालसे जैसाका वैसा, बना है और बना रहेगा, आ जू हमारा चेला होजा, क्योंकि हम सम्यक्त्वी अर्थात् सब प्रकारसे अर्थें हैं, उत्तम बातोंको मानते हैं। जैनमा

भिन्न सब मिय्यात्वी हैं। आगे चलकें ईसाई से पूछा। उसने वाममा-र्गीसे तुल्य सब जवाब सवाल किये। इतना विशेष बतलाया "सब मनुष्य पापी हैं, अपने सामर्थ्यसे पाप नहीं छूटता । विना ईसा पर विश्वासके पवित्र होकर मुक्तिको नहीं पा सकता। ईसाने सबके प्रायश्चित्तके लिये अपने प्राण देकर दया प्रकाशित की है। तू हमारा ही चेळा हो जा"। जिज्ञासु सुनकर मौळवी साहबके पास गया। उनसे भी ऐसे ही जवाब सवाल हुए। इतना विशेष कहा "लाशरीक खुदा उसके पैग्रम्बर और कुराणशरीफके बिना माने कोई निजात नहीं पा सकता। जो इस मज़्बको नहीं मानता वह दोजखी और काफिर है वाजिबुल्कुःल है" जिज्ञासु सुनकर बैष्णवके पास गया। वैसा ही संवाद हुआ। इतना विशेष कहा कि "हमारे तिलक छापे देखकर यमराज डरता है"। जिज्ञासुने मनमें समभा कि जब मच्छर, मक्खी, पुळिसके सिपाही, चोर, डाकू और शत्रु नहीं डरते तो यमराजके गण क्यों डरेंगे १ फिर आगे चला तो सब मत वालोंने अपने २ को सबा कहा। कोई हमारा कत्रीर सच्चा, कोई नानक, कोई दाद, कोई बहुम, कोई सहजानन्द, कोई माधव आदिको बड़ा और अवतार बतलाते सुना। सहस्रोंसे पूछ उनके परस्वर एक दूसरेका विरोध देख, विशेष निश्चय किया कि इनमें कोई गुरु करने योग्य नहीं क्योंकि एक २ की भूठमें नौसो निन्न्यानवें गवाह होगये। जैसे मूठे दुकानदार वा वेश्या और भरुवा आदि अपनी २ वस्तुकी बड़ाई दूसरेकी बुराई करते हैं वैसे ही ये हैं ऐसा जानः-

तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्। समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्टम् ॥१॥ तस्मै स विद्वानुपसन्नाय सम्यक्प्रशान्तिचित्ताय श्रामन्विताय। येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं प्रोवाच

# तान्तत्त्वतो ब्रह्मविद्याम्॥२॥ मुण्ड० [१।२।१२-१३]

एस सत्यके विज्ञानार्थ वह सिमत्पाणि अर्थात् हाथ जोड़ अरिक्त-हस्त होकर वेदवित् ब्रह्मनिष्ठ परमात्माको जाननेहारे गुरुके पास जावे। इन पाखण्डियोंके जालमें न गिरे॥ १॥

जब ऐसा जिज्ञासु विद्वान्के पास जाय **एस शान्तचित्त जितेन्द्रिय** समीप प्राप्त जिज्ञासुको यथांथ ब्रह्मविद्या परमात्माके गुण कर्म स्वभा-वका उपदेश करे और जिस २ साधनसे वह श्रोता धर्मांथ काम मोक्ष और परमात्माको जान सके वैसी शिक्षा किया करे ॥ २॥

जब वह ऐसे पुरुषके पास जाकर बोला कि महाराज अब इन सम्प्रदायों के बखेड़ोंसे मेरा चित भ्रान्त होगया क्यों कि जो में इनमेंसे किसी एकका चेला हो ऊंगा तो नौसौ निन्न्यानवेसे विरोधी होना पड़ेगा। जिसके नौसौ निन्न्यानवे शत्रु और एक मित्र है उसको सुख कभी नहीं हो सकता। इसलिये आप मुक्तको उपदेश की जिये जिसको में प्रहण करूं।

आप्तविद्वान—ये सब मत अविद्याजन्य विद्याविरोधी हैं। मूर्ख पामर और जङ्गली मनुष्यको बहकाकर अपने जालमें फँसाके अपना प्रयोजन सिद्ध करते हैं। वे विचारे अपने मनुष्यजन्मके फल्रसे रहित होकर अपना मनुष्यजन्म व्यर्थ गमाते हैं। देख! जिस बातमें ये सहस्र एकमत हों वह वेदमत प्राह्य है और जिसमें परस्पर विरोध हो बह कल्पित, भूठा, अधर्म, अप्राह्य है।

जिज्ञासु—इसकी परीक्षा कैसे हो ?

आप्त—त् जाकर इन २ बातोंको पूछ। सबकी एक सम्मित हो जायगी। तब वह उन सहस्रोंकी मंडलीक बीचमें खड़ा होकर बोला कि सुनो सब लोगो! सल्यभाषणमें धर्म है वा मिथ्यामें ? सब एकस्वर होकर बोले कि सत्यभाषणमें धर्म और असत्यभाषणमें अधर्म है। वैसे ही विद्या पढ़ने, ब्रह्मचर्थ करने, पूर्ण युवावस्थामें विवाह, सत्सङ्का,

पुरुषांध, सत्य व्यवहार आदिमें धंम और अविद्या मरण, ब्रह्मचंय न करने, ज्यमिचार करने, कुसंग, आलस्य, असय, ज्यवहार छल, कपट, हिंसा, परहानि करने आदि कमीतें [अधमें]। सबने एक मत होके कहा कि विद्यादिके प्रहणमें धंम और अविद्यादिके प्रहणमें अधमे। तब जिज्ञासु ने सबसे कहा कि तुम इसी प्रकार सब जने एकमत हो सत्यधमंकी उन्नति और मिथ्यामांगकी हानि क्यों नहीं करते हो ? वे सब बोले जो हम ऐसा करें तो हमको कौन पूछे ? हमारे चेले हमारी आज्ञामें न रहें जीविका नष्ट हो नाय फिर जो हम आनन्द कर रहे हैं सो सब हाथसे जाय। इसलिये हम जानते हैं तो भी अपने २ मतका उपदेश और आव्रह करते ही जाते हैं क्योंकि "रोटी खाइये शक्तरसे दुनियां ठिंगिये मकरसे"। ऐसी बात है देखे! संसारमें सूधे सच्चे मनुष्यको कोई नहीं देता और न पूछता जो कुछ ढोंगवाजी और धूर्तता करता है वही पदार्थ पाता है।

जिज्ञासु—जो तुम ऐसा पाखण्ड चळाकर अन्य मतुष्योंको ठगते हो तुमको राजा दण्ड क्यों नहीं देता ?

मत बाले—हमने राजाको भी अपना चेला बना लिया है। हमने पका प्रबन्ध किया है लूटेगा नहीं।

जिज्ञासु—जब तुम छळसे अन्य मतस्थ मतुष्योंको ठग उनकी हानि करते हो परमेश्वरके सामने क्या उत्तर दोगे ? और घोर नर-कमें पड़ोगे, थोड़े जीवनके लिये इतना बड़ा अपराध करना क्यों नहीं छोड़ते ?

मतं वाले — जब जैसा होगा तब देखा जायगा। नरक और परमे-श्वरका दण्ड जब होगा तब होगा अब तो आनन्द करते हैं। हमको प्रसन्ततासे धनादि पदार्थ देते हैं कुछ बलात्कारसे नहीं लेते फिर राजा दण्ड क्यों देवे ?

जिज्ञासु—जैसे कोई छोटे वालकको फुसलाके धनादि पदांध हर हेस्स है जैसे उसको दण्ड मिळता है जैसे तुमको क्यों नहीं मिळता १ समुक्लास] पाखण्ड जालकी विवेचना। ५२१ क्योंकः—

#### अज्ञो भवति वै बालः पिता भवति मन्त्रदः ॥ मनुर्व [ अव २ । रखेर १ रे

जो ज्ञानरहित होता है वह बालक और जो ज्ञानका देनेहारा है बह पिता और बृद्ध कहाता है। जो बुद्धिमान् विद्वान् है वह तो तुम्हारी बातों में नहीं फँसता किन्तु अज्ञानी लोग जो बालकके सदृश हैं उनको ठगनेमें तुमको राजदण्ड अवश्य होना चाहिये।

मत बाले—जब राजा प्रजा सब इमारे मतमें हैं तो हमको दण्ड कौन देनेवाला है ? जब ऐसी ब्यवस्था होगी तब इन बातोंको छोड़कर दूसरी ब्यवस्था करेंगे।

जिज्ञासु—जो तुम बैठे २ व्यर्थ माल मारते हो सो विद्याभ्यास कर गृहस्थोंके लड़के लड़कियोंको पढ़ाओ तो तुम्हारा और गृहस्थोंका कल्याण हो जाय।

मत वाले—जब हम बाल्यावस्थासे लेकर मरण तकके सुखोंको छोड़ें, बाल्यावस्थासे युवावस्था पर्यन्त विद्या पढ़नेमें रहें पश्चान् पाढ़ा-नेमें और उपदेश करनेमें जन्मभर परिश्रम करें हमको क्या प्रयोजन ? हमको ऐसे ही लाखों रुपये मिल जाते हैं चैन करते हैं, उसको क्यों छोड़ें ?

जिज्ञासु—इसका परिणाम तो बुरा है। देखो ! तुमको बड़े रोग होते हैं, शीघ मर जाते हो, बुद्धिमानोंमें निन्दित होते हो, फिर भी क्यों नहीं समम्तते १ ०

मत वाले—अरे भाई !

टका धर्मष्टका कर्म टका हि परमं पदम् । यस्य ग्रहे टका नास्ति हा! ट्का टकटकायते॥१॥ आनाअंदाकलाः प्रोक्ताः रूप्योऽसो भगवान्स्वयम्।

# अतस्तं सर्वे इच्छन्ति रूप्यं हि गुणवत्तमम् ॥२॥

तू लड़का है संसारकी बातें नहीं जानता देख टकेके विना धर्म, टकाके विना कर्म, टकाके विना परमपद नहीं होता जिसके घरमें टका नहीं है वह हाय ! टका टका करता २ उत्तम पदार्थोंको टक २ देखता रहता है कि हाय ! मेरे पास टका होता तो इस उत्तम पदार्थको में भोगता ॥ १॥

क्यों कि सब कोई सोखड़ कलायुक्त अद्दंय भगवानका कथन श्रवण करते हैं सो तो नहीं दीखता परन्तु सोलह आने और पैसे कोड़ीरूप अंश कलायुक्त जो रवैया है वही साक्षात् भगवान है। इसीलिये सब कोई रुपयों की खोजमें लगे रहते हैं क्यों कि सब काम रुपयों से सिद्ध होते हैं।। २।।

जिज्ञामु—ठीक है तुम्हारो भीतरकी छीछा बाहर आगई तुमने जितना यह पाखण्ड खड़ा किया है वह सब अपने मुखके छिये किया है परन्तु इसमें जगत्का नाश होता है क्योंकि जैसा सत्योपदेशमें संसारको छाभ पहुंचता है वैसी ही असत्योपदेशसे हानि होती है। जब तुमको धनका भी प्रयोजन था तो नौकरी और व्यापारादि कर्म करके धनको इकट्टा क्यों नहीं कर छेते हो?

मत वाले—उसमें परिश्रम अधिक और हानि भी हो जाती है परन्तु इस हमारी लीलामें हानि कभी नहीं होती किन्तु सर्वदा लाभ ही लाभ होता है देखों ! तुलकी दल डालके चरणामृत दे, कंठी बांध देते चेला मूडनेसे जन्मभरको पशुवन् होजाता हैं किर चाहें जैसे चलावें चल सकता है।

जिज्ञासु—ये लोग तुमको बहुतसा धन किसलिये देते हैं ? मत वाले—धर्म, र्खा और मुक्तिके अर्थ।

जिज्ञासु— जब तुम ही मुक्त नहीं और न मुक्तिका स्वरूप व साधन जानते हो तो तुम्हारी सेवा करने वार्ओको क्या मिलेगा ? नमें प्रवृत्त रहते हैं। वेदमांगकी उन्नति और यावत्पाखण्ड मांग हैं तावतुके खण्डनमें प्रवृत्त नहीं होते। ये संन्यासी लोग ऐसा समम्तते हैं कि हमको खण्डन मण्डनसे क्या प्रयोजन १ हम तो महातमा हैं ऐसे छोग भी संसारमें भाररूप हैं। जब ऐसे हैं तभी तो वेदमांगविरोधी वाममार्गादि संस्प्रदायी, ईसाई, मुसलमान, जैनी आदि बढ गये अब भी बढते जाते हैं और इनका नाश होता जाता है तो भी इनकी आंख नहीं खलती। खले कहांसे ? जो कुछ उनके मनमें परोपकार बुद्धि और कत्त्वयकर्म करनेमें उत्साह होवे किन्तु ये छोग अपनी प्रतिष्ठा खाने पीनेके सामने अन्य अधिक कुछ भी नहीं समम्रते और संसारकी निन्दासे बहुत इरते हैं पूनः । ( लोकेषणा ) लोकमें प्रतिष्ठा । ( वित्त-षणा ) धन बढानेमें तत्पर होकर विषयभोग । (पुत्रैषणा ) पुत्रवत् शिष्यों पर मोहित होना इन तीन एषणाओंका त्याग करना **इचित है जब एषणा ही नहीं छूटी पुनः संन्यास क्योंकर** हो सकता है ? अर्थात् पक्षपातरहित वेदमार्गोपदेशसे जगत्के कल्याण करनेमें अहर्निश प्रवत्त रहना संन्यासियोंका मुख्य काम है। जब अपने २ अधिकार कर्मीको नहीं करते पुनः संन्यासादि नाम धराना व्यर्थ है। नहीं तो जैसे गृहस्थ व्यवहार और स्त्रार्थमें परिश्रम करते हैं। उनसे अधिक परिश्रम परोपकार करनेमें संन्यासी भी तत्पर रहें तभी सब आश्रम उन्नति पर रहें। देखों ! तुम्हारे सामने पाखण्ड मत बढते जाते हैं, ईसाई मुसलमान तक होते जाते हैं। तनिक भी तुमसे अपने घरकी रक्षा और दूसरोंको मिलाना नहीं बन सकता। बने तो तब जब तुम करना चाहो । जबलों वर्त्तमान और भविष्यत्में उन्नतिशील नहीं होते तबलों आर्यावर्स और अन्य देशस्थ मनुष्योंकी वृद्धि नहीं होती। जब वृद्धिके कारण वेदादि सत्यशास्त्रोंका पठनेपाठन ब्रह्मचर्ग्यादि आश्रमींके यथावत् अनुष्ठान, सत्योपदेश होते हैं तभी देशोन्नति होती है। चेत रक्खो ! बहुतसी पाखण्डकी बातें तुमको सचमुच दीख पड़ती हैं। जैसे कोई साधु वा दुकानदार पुत्रादि देनेकी होनेसे संसारमें सुख़ बढ़ता है और जब अधम्मी अधिक होते हैं तब दुःख । जब सब विद्वान एकसा उपदेश करें तो एकमत होनेमें कुछ भी विरुम्ब न हो ।

मत वाले—आजकल कल्युग है सत्ययुगकी बात मत चाहो ।

जिज्ञासु—कल्युग नाम कल्लका है, काल निष्किय होनेसे कुछ धर्माधर्मके करनेमें साधक वाधक नहीं किन्तु तुम हो कल्युगकी मृतियां बन रहे हो जो मनुष्य हो सत्ययुग कल्यिुग न हों तो कोई भी संसारमें धर्मात्मा नहीं होता, ये सब सङ्गके गुण दोष हैं स्वाभाविक नहीं ! इतना कहकर आप्तके पास गया। उनसे कहा कि महाराज ! तुमने मेरा उद्धार किया, नहीं तो में भी किसीके जालमें फँसकर नष्ट भ्रष्ट हो जाता. अब मैं भी इन पाखण्डियोंका खण्डन और वेदोक्त सत्य मतका मण्डन किया करूंगा।

श्राप्त—यही सब मनुःयोंका, विशेष विद्वान् और संन्यासियोंका काम है कि सब मनुष्योंको सत्यका मण्डन और असत्यका सण्डन पढ़ा सुनाके सत्योपदेशसं उपकार पहुंचाना चाहिये।

प्रभ-जो ब्रह्मचारी, संन्यासी हैं वे तो ठीक हैं ?

उत्तर—ये आश्रम तो ठीक हैं परन्तु आजकछ इनमें भी बहुतसी गड़बड़ है। कितने ही नाम ब्रह्मचारी रखने हैं और भूठ मूठ जटा बढ़ाकर सिद्धाई करते और जप पुरश्चरणादिमें फँसे रहते हैं विशा पढ़नेका नाम नहीं छेते कि जिस हेतुसे ब्रह्मचारी नाम होता है उस ब्रह्म अर्थात् वेद पढ़नेमें पिरश्रम कुछ भी नहीं करते। वे ब्रह्मचारी बक्तरीके गछेके स्तनके सहश निर्धक हैं। और जो वैसे सन्यासी विद्याहीन दण्ड कमण्डलुछे निक्षामात्र करते फिरते हैं जो कुछ भी वेदमांगकी उन्नति नहीं करते छोटी अवस्थामें सन्यास छेकर घूमा करते हैं और विद्याद्भयासको छोड़ देते हैं। ऐसे ब्रह्मचारी संन्यासी इधर उधर जल, स्थल, पाषाणादि मूर्तियोंका दर्शन पूजन करते फिरते, विद्या जानकर भी मौन हो रहते, एकान्त देशमें यथेष्ट खा पीकर सोते

पड़े रहते हैं और ईर्घ्या द्वेषमें फँसकर निन्दा कुचेष्टा करके निर्वाह करते, काषाय वस्त्र और दण्ड प्रहणमात्रसे अपनेको कृतकृत्य समम्रते अपनेको सर्वोत्कृष्ट जानकर उत्तम काम नहीं करते वैसे संन्यासी भी जगत्में व्यर्थ वास करते हैं और जो सब जगत्का हित साधते हैं वे ठीक हैं।

प्रभ—गिरी, पुरी, भारती आदि गुसाई लोग तो अच्छे हैं १ क्योंकि मण्डली बांधकर इधर उधर चूमते हैं, सेक्ड्रों साधुओंको आनन्द कराते हैं और सर्वत्र अद्वैत मतका उपदेश करते हैं और इन्छ २ पढ़ते पढ़ाते भी हैं इसलिए वे अच्छे होंगे।

खत्तर—ये सब दश नाम पीछेसे कल्पित किये हैं सनातन नहीं, उनकी मण्डलियां केवल भोजनार्थ हैं। वहुतसे साधु भोजन ही के लिये मण्डलियोंमें रहते हैं दम्भी भी हैं क्योंकि एकको महन्त बना सायंकालमें एक महन्त जो कि उनमें प्रधान होता है वह गही पर बैठ जाता है। सब ब्राह्मण और साधु खड़े होकर हाथमें पुष्प ले:—

# नारायणं पद्मभवं वसिष्ठं शक्तिं चतत्पुत्रपराश्चरं च। ष्यासं शुक्तं गौडपदं महान्तम् ॥

इत्यादि श्लोक पढ़के हर हर बोल उनके ऊपर पुष्प वर्षा कर साष्ट्राङ्ग नमस्कार करते हैं। जो कोई ऐसा न करे उसको वहां रहना भी कठिन है। यह दम्म संसारको दिखलानेके लिये करते हैं जिससे जगतमें प्रतिष्ठा होकर माल मिले। कितने ही मठधारी गृहस्थ होकर भी संन्यासका अभिमानमात्र करते हैं, कर्म कुल नहीं। सन्यासका वही कर्म है जो पांचवें समुक्षासमें लिख आये हैं उनको न करके व्यूर्ध समय खोते हैं। जो कोई अच्छा उपदेश करे उसके भी विरोधी होते हैं। बहुधा ये लोग भस्म रहाई धारण करते और कोई २ शेव संप्र- हायका अभिमान रखते हैं और जब कभी शास्त्रार्ध करते हैं तो अपने मतका अर्थात् शाहराचार्योकका स्थापन और चक्रांकृत आदिके खण्ड-

मतवाले—क्या इस लोकमें मिलता है ? नहीं, किन्तु मरकर पश्चात् परलोकमें मिलता है। जितना ये लोग हमको देते हैं और सेवा करते हैं वह सब इन लोगोंको परलोकमें मिल जाता है।

्जिज्ञासु—इनको तो दिया हुआ मिल जाता है वा नहीं, तुम लेने

बालोंको क्या मिलेगा ? नरक वा अन्य कुछ ?

मतवाले—हम भजन किया करते हैं। इसका सुख हमको मिलेगा। जिज्ञास — तुम्हारा भजन तो टका ही के लिये हैं। वे सब टका यहीं पड़े रहेंगे और जिस मांसपिण्डको यहां पालते हो वह भी भस्म होकर यहीं रह जायगा। जो तुम परमेश्वरका भजन करते होते तो तुम्हारा आत्मा भी पवित्र होता।

भत वाले—क्या हम अगुद्ध हैं ? जिज्ञासु—भीतरके बड़े मेले हो।

मत बाले—तुमने कैसे जाना ?

जिज्ञासु—तुम्हारी चाल चलन व्यवहारसे।

मत वाले—महात्माओं का न्यवहार हाथीके दांतके समान होता है। जैसे हाथीके दांत खानेके भिन्न और दिखलानेके भिन्न होते हैं वैसे ही भीतरसे हम पवित्र हैं और बाहरसे लीलामात्र करते हैं।

जिज्ञासु—जो तुम भीतरसे शुद्ध होते तो तुम्हारे बाहरके काम भी शुद्ध होते इसल्प्यि भीतर भी मेले हो।

मत बाले—हम चाहें जैसे हों परन्तु हमारे चेले तो अच्छे हैं। जिक्कासु—जैसे तुम गुरु हो वैसे तुम्हारे चेले भी होंगे।

मत वाले-एक मत कभी नहीं हो सकता क्योंकि मनुष्योंके गुण, कम, खभाव भिन्न २ हैं।

जिक्कासु—जो बाल्यावस्थामें एकसी शिक्षा हो सत्यभाषणादि वर्मका प्रहण और मिथ्याभाषणादि अधर्मका त्याग करें तो एकमत अवश्य हो जाय और दो मत अर्थात् धर्मात्मा और अधर्मात्मा सदा रहते हैं, वे तो रहें। परन्तु धर्मात्मा अधिक होने और अधर्मी न्यून

# समुल्लास] धूर्तता और मकारीसे दोंग। ५२७

सिद्धियां बतलाता है तब उसके पास बहुत की जाती हैं और हाथ जोड़कर पुत्र मांगती हैं और बाबाजी सबको पुत्र होनेका आशीर्वाद हैता है। उनमेंसे जिस २ के पुत्र होता है वह २ उजमती है कि बाबाजीके वचनसे हुआ। जब उससे कोई पूल्लेकी सुअरी, कुत्ती, गंधी और कुक्कुटी आदिके कच्चे बच्चे किस बाबाजीके वचनसे होतेहैं? सब कुछ भी उत्तर न दे सकेगी! जो कोई कहे कि में लड़केको जीता रख सकता हूं तो आप ही क्यों मर जाता है? कितने ही पूर्च लोग ऐसी माया रचते हैं कि बड़े २ दुद्धिमान् भी धोखा खाजाते हैं, जैसे धनसारीके ठग। ये लोग पांच सात मिलके दूर २ देशमें जाते हैं। जो शरीरसे होलडालमें अच्छा होता है उसके सिद्ध बना लेते हैं जिस मगर वा प्राप्तमें धनाड्य होते हैं उसके समीप जङ्गलमें उस सिद्धको बिटाते हैं उसके साधक नगरमें जाके अजान बनके जिस किसीको पूछते हैं "तुमने ऐसे महात्माको यहां कहीं देखा वा नहीं ?" वे ऐसा सुनकर पूछते हैं कि वह महात्मा कोन और कैसा है?

साधक — बड़ा सिद्ध पुरुष है। मनकी बार्त बतला देता है। जो मुखसे कहता है वह होजाता है। वड़ा योगीराज है, उसके दर्शनके लिये हम अपने घर द्वार छोड़कर देखते फिरते हैं। मैंने किसीसे सुना था कि वे महातमा इधरकी और आये हैं।

गृहस्थ—जब वे महात्मा तुमको मिंछ तो हमको भी कहना, दर्शन करेंगे और मनकी बातें पूछेंगे। इसी प्रकार दिनभर नगरमें फिरते और हरएकको उस सिद्धकी बात कहकर रात्रिको इकट्ठे सिद्ध साधक होकर खाते पीते और सो गहते हैं। फिर भी प्रातःकाल नगर वा प्राप्तमें जाके उसी प्रकार हो तीन दिन कहकर फिर चारों साधक किसी एक २ धना देंचसे बोलते हैं कि वह महात्मा मिल गये। तुमको ह्रिशन करना हो तो चलो। वे जब तैयार होते हैं तब साधक उनसे पूछते हैं कि तुम क्या बात पूछना चाहते हो ? हमसे कहा कोई प्रत्रकी इच्छा करता, कोई धनकी, कोई रोग निवारणकी और कोई शहके

जीतने की। उनकी वे साधक छेजाते हैं। सिद्ध साधकोंने जैसा संकेत किया होता है अर्थात जिसको धनकी इच्छा हो उसको दाहनी ओर जिसको पुत्रकी इच्छा हो उसको सन्मुख, जिसको रोग निवारणकी इच्छा हो उसको वाई ओर और जिसको राव जीतनेकी इच्छा हो हमको पीछमे हेजाके सामनेवाहेके बीचमें बैठाते हैं। जब नमस्कार करते हैं उसी समय वह सिद्ध अपनी सिद्धाईकी मतपटसे उचस्वरसे बोलता है "क्या यहां हमारे पास पुत्र रक्खे हैं जो तू पुत्रकी इच्छा करके आया है ?" इसी प्रकार धनकी इच्छा वालेसे "क्या यहां थैलियां रक्खी हैं जो धनकी इच्छा करके आया ? फकीरोंके पास धन कहां धरा है ?" रोगवालेसे "क्या हम वैद्य हैं जो तू रोग हुड़ानेकी इच्छा से आया ? हम वैद्य नहीं जो तेरा रोग हुड़ावें। जा किसी वैद्यके पास परन्तु जब उसका पिता रोगी हो तो उसका साधक अंगूठा, जो माता रोगी हो तो तर्जनी, जो भाई रोगी हो तो मध्यमा जो स्त्री रोगी हो तो अनामिका, जो कन्या रोगी हो तो कनिष्ठिका अंगुली चला देता है। उसको देख वह सिद्ध कहता है कि तेरा पिता रोगी है, तेरी माता. तेरा भाई, तेरी स्त्री और तेरी कन्या रोगी है। तब तो वे चारोंके चारों बड़े मोहित होजाते हैं। साधक लोग उनसे कहते हैं देखो जैसा हमने कहा था वैसे ही हैं वा नहीं ? गृहस्थ हां जैसा तुमने कहा था वैसे ही हैं। तुमने हमारा बड़ा उपकार किया और हमारा भी वड़ा भाग्योदय था जो ऐसे महात्मा मिले जिनके दर्शन करके हम कृतार्थ हुए।

साधक — सुनो भाई! ये महात्मा मनोगामी हैं। यहां बहुत दिन रहने वाले नहीं। जो कुछ इनका आशीर्वाद लेना हो तो अपने अपने सामर्थ्यके अनुकूछ इनकी तन, मन, धनसे सेना करो क्योंकि "सेवासे मेवा मिलती है" जो किसी पर प्रसन्न हो।ये हो जाने क्या वर दे हैं। "सन्तोंकी गति अपार है।" गृहस्थ ऐसे लल्लो पत्तोकी बातें सुनकर बड़े हर्षसे उनकी प्रशंसा करते हुए घरकी खोर जाते हैं साधक भी

# समुक्जास] धूर्तता और मकारीसे ढोंग। ५२६

**घनके साथ ही च**ले जाते हैं क्योंकि कोई उनका पाखण्ड खील न देवे। **एन धनाइयों का जो कोई मित्र मिछा उससे प्रशंसा करते हैं। इसी** प्रकार जो २ साधकोंके साथ जाते हैं उन २ का हाल सब कह देते हैं। जब नगरमें हुइ। मचता है कि अमुक ठौर एक बड़े भारी सिद्ध भाये हैं. चलो उनके पास । जब मेलाका सेला जाकर बहतसे छोत पुछने खगते हैं कि महाराज मेरे मनका हाल कहिये तब तो व्यवस्थाके बिगड जानेसे चपचाप होकर मौन साथ जाता है और कहता है कि हमको बहुत मत सताओ तब तो मह उसके साधक भी कहने लग जाते हैं जो तम इनको बहुत सताओंगे तो चले जायंगे और जो कोई बडा आदमी होता है वह साधकको अलग बुलाके पुछता है कि हमारे मनकी बात कहलादो तो हम सच मानें। सायकने पूछा कि क्या बात है १ धनाड्यने उससे कह दी। तब उसको उसी प्रकारके संकेतसे छेजाके बैठाल देता है। उस सिद्धने सममके मार कह दिया तब तो सब मेळा भरने सुनली कि अही । बड़े ही सिद्ध पुरुष हैं। कोई मिठाई, कोई पैसा, कोई रुपया, कोई अशर्फी, कोई कपड़ा और कोई सीधा सामग्री भेट करता है। फिर जबतक मानता बहुतसी रही यथेष्ट खट करते हैं और किन्हीं २ दो एक आंखके अन्धे पूरोंको पुत्र होनेका आशीर्वाद वा राख उठाके देदेता है और उससे सहस्रों हुपये लेकर कह देता है कि जो तेरी सच्ची भक्ति होगी तो पुत्र हो जायगा इस प्रकारके बहत से ठग होते हैं जिनकी विद्वान ही परीक्षा कर सकते हैं और कोई नहीं । इसिंख्ये वेदादि विद्याका पटना सत्संग करना होता है जिससे कोई उसको ठगाईमें न फँसा सके. धौरोंको भी बचा सके। क्योंकि मनुष्यका नेत्र विद्या ही है। विना विद्या शिक्षाके ज्ञान नहीं होता । जो बाल्यावस्थासे उत्तम शिक्षा पाते हैं वे ही मनुष्य और विद्वान होते हैं। जिनको कुसंग है वे दुष्ट पापी महामूर्व होकर बड़े दुःख पाते हैं। इसिंख्ये बानको विशेष कहा है कि जो जानता है वही मानता है।

यह किसी कविका श्लोक है। जो जिसका गुण नहीं जानता वह उसकी निन्दा निरन्तर करता है, जैसे जङ्गली भील गजमुक्ताओं को छोड़ गुआका हार पहिन लेता है वैसे ही जो पुरुष विद्वान, ज्ञानी, धार्मिक, सन्पुरुषोंका संगी, योगी, पुरुषाधीं, जितेन्द्रिय, सुशी उ होता है वही धर्मार्थ काम मोक्षको प्राप्त होकर इस जन्म और परजन्ममें सदा ब्यानन्दमें रहता है।

यह आर्यावर्त्तनिवासी छोगोंके मत विषयमें संक्षेपसे छिखा। इसके बागे जो थोड़ासा आर्यराजामोंका इतिहास मिछा है इसको सब सज्ज-नोंको जनानेके छिये प्रकाशित किया जाता है।

अब थोड़ासा आर्यावर्तदेशीय राजवंश कि जिसमें श्रीमान महाराज "युधिष्ठिर" से लेके महाराजे "यशपाल" तक [ हुए हैं ] का इतिहास लिखते हैं। और श्रीमान महाराजे "स्वायंभव" मनुसे लेके महाराज "युधिष्ठिर" तकका इतिहास महाभारतादिमें लिखा ही है और इससे सजन लोगोंको इधरके कुछ इतिहासका वर्तमान विदित होगा। यद्यपि यह विषय विद्यार्थी सम्मिलित "हरिश्चन्द्रचिन्द्रका" और "मोहन-चिन्द्रका" जो कि पाक्षिकपत्र श्रीनाथद्वारेसे निकलता था। (जो राजपूताना देश मेवाड़ राज उदयपुर चित्तौड़गढ़में सबको विदित है) उससे हमने अनुवाद किया है यदि ऐसे ही हमारे आर्य सज्जन लोग इतिहास और विद्या पुस्तकोंका खोज कर प्रकाश करेंगे तो देशको बड़ा ही लाभ पहुंचेगा। उस पत्रसम्पादक महाशयने अपने मित्रसे एक प्राचीन पुस्तक जो कि संवन विक्रमके १७८२ (सत्रहसों बयासी) का लिखा हुआ था उससे प्रहण कर अपने संवन् १९३६ मार्गशीच शुक्ष्यक्ष १६—२० किरण अर्थान् दो पाक्षिकपत्रोंमें लापा है सो

# सम्रह्मास] आर्यावर्त्तीय राजवंशावली। ५३१

निम्निखेषे प्रमाणे जानिये।

१४ सुसदेव

**६**२

0

#### आर्य्याबर्त्त देशीय राजवंशावली।

इन्द्रप्रस्थमें आर्य लोगोंने श्रीमनमहाराजे "यशपाल" पर्यन्त राज्य किया जिनमें श्रीमन्महाराजे "युधिष्ठर" से महाराजे "यशपाल" तक वंश अर्थात् पीढ़ी अनुमान १२४ (एकसी चौबीस) राजा वर्ष ४१५७ मास ६ दिन १४ समयमें हुए हैं इनका व्योराः— वर्ष मास दिन अर्ध्यराजा दिन ग्रब વર્ષ मास **धार्ध्यराजा १२४ ४१५७ ६ १४ १५ नरहरिदंव ५१** ₹ श्रीमनमहाराजे युधिष्ठिरादि १६ सुचिरथ ४२ 23 .₹ **बंश अनुमान पीढ़ी<sup>1</sup>३० वर्ष १७७० १७ शूरसेनदू०**४८ १• 5 मास ११ दिन १० इनका विस्तार १८ पर्वतसेन. ५५ 5 १० आर्य्य राजा वर्ष दिन १६ मेबाबी ५२ १• १० मास २० सोनचीर ४० ८ ९ १ युधिष्ठिर ЗĘ २५ २१ 5 २१ भीमदेव ४७ २ परीक्षित င့်စ • 3 ₹• २२ नृद्धिदेव ४४ ३ जनमेजय ८४ ७ ११ २३ २३ २२ २३ पूर्णमल ४४ ८ प्रअधमेघ ⊏२ 9 5 २४ करदवी ४४ ४ द्वितीयराम ८८ २ 5 १० 5 २५ अलंभिक ५० ११ 5 ६ छत्रमल **⊏**ℓ ११ २७ १८ २६ उदयपाळ ३८ ७ चित्ररथ 3 ৩১ 3 ८ दुष्टशैल्य ७५ २७ दुवनमञ्ज ४० २६ १० २४ १० ९ उप्रसेन २८ दमात ३२ **9**5 **3**? १ शूरसेन ७८ ७ २६ भी¤पाल ४८ ¥ २१ ς ११ भुवनपति ६६ ३० क्षेमक Ł 85 88 २१ Ł १२ रणजीत राता क्षेमकके प्रधान विश्वξķ १• 8 वाने क्षेमक राजाको मारकर ŧγ १३ मध्क 9 ጸ

ર૪

राज्य किया पीढ़ी १४ वर्ष ५००

दिन **या**र्घ्यराजा मास ३ दिन १७ इनका विस्तार—ं वर्ष मास 8 वर्ष दिन ७ शत्रुशाख २६ 3 **बा**र्घ्यराजा मास १ विश्रवा ८ संघराज 3 રદ १७ २ १० 80 ६ तेजपाळ २ पुरसेनी २१ २⊏ 28 १० ४२ ζ १ माणिकचन्द ३७ ३ वीरसेनी ५२ 80 O २१ ٠ ४ अनङ्कशायी ४७ ११ कामसेनी २३ ४२ Ł 80 ζ १२ शत्रुमदेन ५ हरिजित् ११ 34 १७ १३ 3 १३ जीवनछोकर८ 🌣 ६ परमसेनी ४४ ર २३ 3 १७ १४ हरिराव રફ ७ सखपाताल ३० २ δo 35 २१ १४ वीरसेनद्र० ३४ ८ कदूत ર પ્રર 3 २४ २० १६ आदित्यकेतु २३ ६ सज ३२ २ १४ ११ १३ राजा सादित्यकेतु मगधदे-१६ १० अमरचूड 3 २७ ११ अमीपाल शके राजाको "धन्धर" २२ ११ २४ राजा प्रयागकेने मारकर राज्य २५ १२ दशरथ 8 १२ १३ वीरसाल 32 किया वंश पीढ़ी ह वर्ष ३७४ मास ζ 88 १४ वीरसालसेन ४७ ११ दिन २६ इनका विस्तार १४ **अ**र्ध्यराजा वर्ष राजा वीरसाउसेनको वीरमहा दिन मास प्रधानने मारकर राज्य किया वंश १ धन्धर ૪ર २४ O १६ वर्ष ४४४ मास ४ दिन ३ २ महर्षी ४१ ર २€ इनका विस्तारः---३ सनरच्ची ko १० 39 वर्ष ४ महायुद्ध **आ**र्घ्यगजा मास दिन Şо 3 5 १ वीरमहा 34 ५ दुरनाथ १• २⊏ ζ ķ २५ २ अजितसिंह २७ ६ जीवनराज ४५ ø १६ २ Ł ३ सर्वदत्त ७ रुद्रसेन २८ 3 80 ४७ 8 २८ ४ भुवनपति ८ मारीलक ५२ १५ 8 १० 5 ५ वीरसेन २१ २ **१ राजपाल ३**६ १३ **६ महीपा**ळ राजा राजपालको ζ ø

# समुक्लास] आर्यावर्त्तीय राजवंद्यावली। ५

महानपालने मार्रकर राज्य किया पीढ़ी १ वर्ष १४ मास ० दिन ० इनका विस्तार नहीं है।

राजा महानपालके राज्य पर राजा विक्रमादित्यने "अवन्तिका ( उज्जैन ) से लड़ाई करके राजा महानपालको मारके राज्य किया पीढ़ी १ वर्ष ६३ मास ० दिन ० इनका विस्तार नहीं है।

्र राजा विकमादित्यको शाली-वाहनका उमराव समुद्रपाल योगी पैठणकेने मारकर राज्य किया पीढ़ी १६ वर्ष ३७२ मास ४ दिन २७ इनका विस्तार—

अ.र्घराजा वर्ष दिन मास १३ सीसपाछ 🗯 ११ १० १३ १४ मदनपाळ १७ 80 39 १४ कमेवाल १६ २ ર १६ विक्रमपाल २४ ११ 83

राजा विक्रमपालने पश्चिम दिशाका राजा (मलुखनन्द बोहरा था) इन पर चढ़ाई करके मैदा-नमें लड़ाईकी इस लड़ाईमें मलुख-चन्दने विक्रमपालको मारकर इन्द्र• प्रस्थका राज्य किया पीढ़ी १० वर्ष १६१ मास १ दिन १६ इनका विस्तारः—

भार्यराजा वर्ष दिन मास १ मलुखचन्द ५४ ર १० २ विक्रमचन्द्र १२ १२ ३ अमीनचन्द्रक १० Ł ४ गमचन्द 89 ११ 5 ५ हरीचन्द १४ 3 २४ ६ कल्याणचन्द १० ¥ 8 ७ भीमचन्द्र १६ ર 3 ८ लोवचन्द २६ Ę २२

\* किसी इतिहासमें भीमपाँ भी लिखा है।

गेइसका नाम कहीं आक्रक वंद भी छिला है। व्यार्थ्यराजा वष मास दिन ह गोविन्दचन्द ३१ ७ १२ १० रानी पद्मावती¥१००

रानी पद्मावती मरगई इसके पुत्र भी कोई नहीं था इसल्प्ये सब मुत्सदृदियोंने सलाह करके हरि-प्रेम वैरागीको गद्दी पर बैठाके मुत्सदृदी राज्य करने लगे पीढ़ी ४ वर्ष ४० मास ० दिन २१ हरिप्रेमका विस्तार:—

स्नार्थ्यराना वर्ष मास दिन १ हरिप्रेम ७ ५ १६ २ गोविन्दवेम २० २ ८ ३ गोपाळप्रेम १ ७ २८ ४ महःबाहु ६ ८ २६

राजा महाबाहु राज्य छोड़के बनमें तपश्चर्या करने गये, यह बङ्गालके राजा आधीसेनने सुनके इन्द्रप्रस्थमें आके आप राज्य करने लगे पीढ़ी १२ वर्ष १४१ मास ११ दिन २ इनका विस्तारः—

आर्थ्यराजा वर्ष मास दिन १ आधीसेन १८ ४ २१ २ विळावळसेन १२ ४ २

\*वह पद्मावती गोविन्द्वंदकी रानी थी।

दिन आर्यराजा वर्ष मास ३ केशवसेन १५ १२ प्र माधसेन १२ ર X ५ मयुरसेन २० ११ २७ ६ भीमसेन ķ १० 3 ७ कल्याणसेन ४ ς २१ ८ हरीसेन १२ २५ ६ क्षेमसेन ς १५ ११ १० नारायणसेन २ २ २€ ११ लक्ष्मीसेन २६ १२ दामोदरसेन ११ ķ ۶Ę

राजा दामोदरसेनने अपने
उमरावको बहुत दुःख दिया इसछिये राजाक उमराव दीपसिंहने
सेना मिलाके राजाके साथ लड़ाईकी उस लड़ाईमें राजाको मारकर
दीपसिंह आप राज्य करने लगे
पीढ़ी ६ वर्ष १०७ मास ६ दिन २२
इनका विस्तारः—

**आर्य्यरा**जा वर्ष मास दिन १ दीपसिंह १७ २६ 8 २ राजसिंह १४ ķ ३ रणसिंह 3 5 ११ ४ नरसिंह 88 0 १४ ४ हरिसिंह १३ २ 35 ६ जीवनसिंह ८ ٤ राजा जीवनसिंहने कुछ कार-

## सम्रुह्णास] आर्यावर्तीय राजवंशावही। ५३५

णके लिये अपनी सब सेना उत्तर राजा यशपालके ऊपर सुद्र-दिशाको भेज दी यह खबर पृथ्वी-तान शहाबुद्दीन गोरी गढ़गज-राज चौहाण वैराटके राजाने सुन-नीसे चढ़ाई करके आया और राजा यशपालको प्रयागके किलेमें कर जीवनसिंहके ऊपर चढाई करके आये और लडाईमें जीवन-संवत् १२४६ सालमें पकडकर केद किया पश्चात् इन्द्रत्रस्थ अर्था र् सिंहको मारकर इन्द्रप्रस्थका राज्य दिल्लीका राज्य आप ( गुलनान किया # र्न.ढी ४ वर्ष ८६ मास ० शहाबुद्दीन ) करने लगा पीड़ी ५३ दिन २० इनका बिस्तारः-वर्ष ७५४ मास १ दिन १७ इनका **आर्ध्य**राजा वर्ष दिन मास विस्तार बहुत इतिहास पुस्तकोंमें ्१ पृथ्वीराज १२ २ 38 लिखा है इसलिये यहां नहीं लिया। २ अभयपाल १४ ५ १७ इसके आगे बौद्ध जैनमत विषयमे ३ दुर्जनपाल ११ ४ १४ v लिखा जायगा। ४ उदयपाल ११ 3

इति श्रीमहयानन्दसरस्वती स्वामिनिर्मिते सत्यार्थप्रकारो सुभाषा विभूषित आर्य्यावत्तीयमतखण्डनमण्डन-विषय एकादशः समुहासः सम्पूर्णः ॥ ११ ॥

२७

५ यश गल ३६



<sup>\* [</sup> इसके आगे और इतिहासोंमें इस प्रकार है कि महाराज पृथ्वीराजके उत्तर सुखतान शहाबुददीन गौरी चढ़कर आया और कई बार हारकर छोट गया अन्तमें संवत् १२४६ में आपसकी फूटके कारण महाराज पृथ्वीराजको जीत अन्धा कर अपने देशको छेगया पश्चात दिल्छी ( इन्द्रप्रस्थ ) का राज्य आप करने छगा, सुसखमानोंका राज्य भीटी ७५ वर्ष ६१३ रहा ]

# **ग्रनुभृमिका** (२)

#### **€%%%**

जब आर्च्यार्वत्तस्थ मनुष्योंमें सत्यासयका यथावत् निर्णय करने-बाली वेदविद्या छटकर अविद्या फैलके मतमतान्तर खंडे हुए यही जैन आदिके विद्याविरुद्धमतप्रचारका निमित्त हुआ क्योंकि बाल्मीकीय और महाभारतादिमें जैनियोंका नाममात्र भी नहीं छिखा और जैनियोंके प्रन्थोंमें वाल्मीकीय और भारतमें कथित "रामकृष्णादि" की गाथा बडे विस्तारपर्वक लिखी है इससे यह सिद्ध होता है कि यह मत इनके पीछे चला. क्योंकि जैसा अपने मतको बहुत प्राचीन जिनी लोग लिखते हैं वैसा होता तो वाल्मीकीय आदि प्रन्थोंमें उनकी कथा अवश्य होती इसलिये जैनमत इन प्रन्थोंक पीछे चला है। कोई कहे कि जैनियोंके ब्रन्थोंमेंसे कथाओंको लेकर वाल्मीकीय आदि ब्रन्थ बने होंगे तो उनसे पूछना चाहिये कि वाल्मीकीय आदिमें तुम्हारे प्रन्थोंका नाम लेख भी क्यों नहीं ? और तम्हारे अन्थोंने क्यों है ? क्या पिताके जन्मका दर्शन पत्र कर सकता है ? कभी नहीं ? इससे यही सिद्ध होता है कि जैन बौद्ध मत शैव शाकादि मतोंक पीछे चला है अब इस बारहवें ( १२ ) समुद्धासमें जो २ जैनियोंके मत विषयमें छिखा गया है सो २ उनके प्रन्थोंके पतेपूर्वक छिखा है इसमें जैनी छोगोंको बुरा न मानना चाहिये क्योंकि जो २ हमने इनके मत विषयमें लिखा है वह केवल सत्यासत्यके निर्णयार्थ है न कि विरोध वा हानि करनेके अर्थ। इस लेखको जब जैनी बौद्ध वा अन्य लोग देखेंगे तब सबको सत्यासत्यके निर्णयमें विचार और लेख करनेका समय मिलेगा और बोध भी होगा जबतक वादी प्रतिवादी होकर प्रीतिसे वाद वा लेख न किया जाय तबतक सत्यासत्यका निर्णय नहीं हो सकता। जब विद्वान छोगोंमें

सत्यासत्यका निश्चय नहीं होता तभी अविद्वानोंको महा अन्धकारमें पड़कर बहुत दुःख उठाना पडता है इसल्लिये सत्यके जय और अस-त्यके क्षयके वर्ध मित्रतासे वाद वा छेख करना हमारी मनुष्यजातिका मुख्य काम है। यदि ऐसा न हो तो मनुष्योंकी उन्नति कभी न हो। भीर यह बौद्ध जैन मतका विषय विना इनके अन्य मत बार्लोको अपूर्व लाभ और बोध करनेवाला होगा क्योंकि ये लोग अपने पस्तकों को किसी अन्य मत वालेको देखने पहने वा लिखनेको भी नहीं देते। बडे परिश्रमसे मेरे और विशेष आर्यसमाज मुंबईके मन्त्री "सेठ सेवकळाळ कृष्णदास" के पुरुषार्थसे मन्थ प्राप्त हुए हैं तथा काशीस्य "जैनप्रभाकर" यन्त्रालयां छपाने और मुंबईमें "प्रकरणरत्नाकर" प्रन्थ के छपनेसे भी सब लोगोंको जैनियोंका मत देखना सहज हुआ है। भला यह किन विद्वानोंकी बात है कि अपने मतके पुस्तक आप ही देखना और दूसरोंको न दिखलाना । इसीसे विदित होता है कि इन प्रन्थोंके बनानेवालोंको प्रथम ही शंका थी कि इन प्रन्थोंमें असम्भव बातें हैं जो दूसरे मत वाले देखेंगेतो खण्डन करेंगे और हमारे मत वाले दूसरोंके पन्थ देखेंगे तो इस मतमें श्रद्धा न रहेगी। अस्तु जो हो परन्तु बहुत मनुष्य ऐसे हैं जिनको अपने दोष तो नहीं दीखते किन्तु दूसरों के दोव देखनेमें अत्युगुक्त रहते हैं। यह न्यायकी बात नहीं क्यों कि प्रथम अपने दोष देख निकालके पश्चात् दूसरेके दोषों में दृष्टि देके निकालें। अब इन बौद्ध जैनियोंके मतका विषय सब सज्जनोंके सम्मुख धरता हुं जैसा है वैसा विचारें।।

किमधिकछेखेन बुद्धिमद्वर्येषु।



# कृष्ट्रस्ट स्टब्स्स स्टब्स स्टब्स्स स्टब्स स्टब्स

# अथ नास्तिकमतान्तर्गतचारवाकबौद्धजैनमत-खण्डनमण्डनविषयान् व्याख्यास्यामः

~@:@~

कोई एक बृहस्पति नामा पुरुष हुआ था जो वेद, ईश्वर और यज्ञादि उत्तम कर्मोको भी नहीं मानता था देखिये उनका मतः—

यावज्ञोवं सुखं जोवेन्नास्ति मृत्योरगोचरः। मस्मीभृतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः॥

कोई मनुष्यादि प्राणी चृत्युकं अगोचर नहीं है अर्थात् सबको मरना है इसिलये जब तक शरीरमें जीव रहे तब तक सुखसे रहे। जो कोई कहे कि धर्माचरणसे कट होता है जो धर्मको छोड़े तो पुनर्जनममें बड़ा दुःख पावे! उसको "चारवाक" उत्तर देता है कि अरे भोले भाई! जो मरेके पश्चात् शरीर भस्म होजाता है कि जिसने खाया पिया है वह पुनः संसारनें न आगा इसिलये जिसे होसके वैसे आत-दमें रहो लोकमें नीतिसे चड़ो, ऐश्वर्यको बहाओ और उससे इच्छित भोग करो यही लोक सममो परलोक कुछ नहीं। देखो! पृथियी, जल, अग्नि, वायु इन चार भूतों के परिणामसे यह शरीर बना है इसमें इनके योगसे चैतन्य उत्पन्न होता है जैसे मादक द्रव्य खाने पीनेसे मद (नशा) उत्पन्न होता है इसी प्रकार जीव शरीरके साथ उत्पन्न होकर शरीरके नाशके साथ आप भी नष्ट हो जाता है फिर किसको पाप पुण्यका फल होगा ?

# तच्चैतन्यविशिष्टदेह एव आत्मा देहातिरिक्त आत्मनि प्रमाणाभावात्॥

इस शरीरमें चारों भूतोंक संयोगसे जीवातमा उत्पन्न होकर उन्हींके वियोगके साथ ही नष्ट हो जाता है क्योंकि मरे पीछे कोई भी जीव प्रत्यक्ष नहीं होता हम एक प्रत्यक्ष ही को मानने हैं क्योंकि प्रत्यक्षके विना अनुमानादि होते ही नहीं इसिलये मुख्य प्रत्यक्षके सामने अनुमा-नादि गौण होनेसे उसका प्रहण नहीं करते सुन्दर स्रो के आलिङ्कनसे आनन्दका करना पुरुषार्थका फल है।

उत्तर—ये पृथिव्यादि भूत जड़ हैं इनसे चेतनकी उत्पत्ति कभी नहीं होसकती जैसे अब माता पिताके संयोगसे देहकी उत्पत्ति होती है बैसे ही आदि सृष्टिमें मनुष्यादि शरीरोंकी आकृति परमेश्वर कर्ताके बिना कभी नहीं हो सकती। मदके समान चेतनकी उत्पत्ति और विनाश नहीं होता क्योंकि मद चेतनको होता है जड़को नहीं। पदार्थ नष्ट अर्थात् अस्ट होते हैं परन्तु अभाव किसी का नहीं होता इसी प्रकार अदृश्य होनेसे जीवका भी अभाव न मानना चाहिये। जब जीवातमा सदेह होता है तभी उसकी प्रकटता होती है जब शरीरको छोड़ देता है तब यह शरीर जो मृत्युको प्राप्त हुआ है वह जैसा चेतनगुक्त पूर्व था वैसा नहीं हो सकता। यही बान बृद्दारण्यकों कही है:—

### नाहं मोहं ब्रवीमि अनुचिछत्तिधर्पायमात्मेति॥

याज्ञवरक्य कहते हैं कि हे मैत्रेयि। मैं मोहसे बात नहीं करता किन्तु आत्मा अविनाशी है जिसके योगसे शरीर चेया करता है जब जीव शरीरसे पृथक् होजाता है तब शरीरमें ज्ञान कुछ भी नहीं रहता जो देहसे पृथक् आत्मा न हो तो जिसके संयोगसे चेतनता और वियोगसे जड़ता होती है वह देहसे पृथक् है जसे आंख सबको देखती है परन्तु अपनेको न ही, इसी प्रकार प्रत्यक्षका करनेवाला अपनेको ऐन्द्रिय प्रयक्ष नहीं कर सकता जैसे अपनी आंखसे सब घट प्रादि पदार्थ देखता है वैसे आंखको अपने ज्ञानसे देखता है। जो द्रष्टा है वह द्रष्टा ही रहता है दृश्य कभी नहीं होता जैसे विना आधार आधेय, कारणके विना कार्य्य अवयवीके विना अवयव और कर्ताके विना कर्म नहीं रह सकते वैसे कर्ताके विना प्रत्यक्ष केसे हो सकता है ? को सुन्दर स्त्री के साथ समागम करने ही को पुरुषार्थका फल मानो हो क्षणिक सुख और उससे दुःख भी होता है वह भी पुरुषार्थ ही का फल होगा। जब ऐसा है तो खांकी हानि होनेसे दुःख भोगना पड़ेगा जो कही दुःखके हुदुहाने और सुखके बढ़ानेमें यत्न करना चाहिये तो सुक्ति सुखकी हानि हो जाती है इसलिये वह पुरुषार्थका फल नहीं।

चारवाक—जो दुःख संयुक्त सुखका त्याग करते हैं वे मूर्ख हैं जैसे धान्यार्थी धान्यका महण और बुसका त्याग करता है वैसे संसा-रमें बुद्धिमान सुखका महण और दुःखका त्याग करें क्योंकि इस छोकके उपस्थित सुखको छोड़के अनुपस्थित स्वर्गके सुखकी इच्छा कर धूर्तकथित वेदोक्त अग्निहोत्रादि कर्म उपासना और झानकाण्डका अनुष्ठान परछोकके छिये करते हैं वे अज्ञानी हैं। जो परछोक है ही नहीं तो उसकी आशा करना मूखताका काम है क्योंकिः—

# अग्निहोत्रं त्रयो वेदास्त्रिदण्डं भस्मग्रुण्ठनम् । बुद्धिपौरुषहीनानां जीविकेति बृहस्पतिः॥

चारवाकमतप्रचारक "बृहस्पति" कहता है कि अग्निहोत्र, तीन वेद, तीन दण्ड और भस्मका लगाना बुद्धि और पुरुषार्थ रहित पुरु कोने जीविका बनाली है। किन्तु कांटे लगने आदिसे उत्पन्न हुए दुःख का नाम नरक, लोकसिद्ध राजा परमेश्वर और देहका नाश होना मोक्ष सन्य कुछ भी नहीं।

क्तर—विषयरूपी सुखमात्रको पुरुषांधका फल मानकर विषय दुःख निवारणमात्रमें इतऋत्यता और र्खा मानना मूंखता है अग्निहो-त्रादि यहोंसे वायु, वृष्टि, जलकी ग्रुद्धि द्वारा आरोग्यताका होना उससे धर्म अर्थ, काम और मोक्षकी सिद्धि होती है उसको न जानकर वेद ईश्वर और वेदोक्त धर्मकी निन्दा करना धूनोंका काम है। जो ब्रिद्ध ड और भस्मधारणका खण्डन है सो ठीक है। यदि कण्टकादिसे उत्पन्न ही दुःखका नाम नरक हो तो उससे अधिक महारोगादि नरक क्यों नहीं १ यद्यपि राजाको ऐश्वयंत्रान् और प्रजापालनमें समर्थ होनेसे अन्छ मानें तो ठीक है परन्तु जो अन्यायकारी पापी राजा हो उसको भी परमेश्वरवत् मानते हो तो तुम्हारे जैसा कोई भी मूर्ख नहीं। शरीरका विच्छेद होनामात्र मोक्ष है तो गदहे कुते आदि और तुममें क्या भेद रहा १ किन्तु आकृति ही मात्र भिन्न रही।

चारवाकः--

अग्निह्हणो जलं शोतं शोतस्पर्शस्तथाऽनिलः । केनेदं चित्रितं तस्मात्स्वभावात्तदव्यवस्थितिः ॥१॥ न स्वर्गी नाऽपवर्गी वा नेवातमा पारलौकिकः। नैव वर्णाश्रमादीनां कियारच फलदायिकाः॥२॥ पशुरचेन्निहतः स्वर्गे ज्योतिष्टोमे गमिष्यति । स्वपिता यज्ञमानेन तत्र कस्मान्न हिंस्यते ॥३॥ मृतानामपि जन्तूनां श्राद्धं चेत् सिकारणम्। गच्छतामिह जन्तुनां व्यर्थं पाथेयकल्पनम् ॥ ४॥ स्वर्गस्थिता यदा तृप्तिं गच्छेयुस्तत्र दानतः। प्रासाद्स्योपरिस्थानामत्र कस्मात्र दीयते ॥४॥ यावज्ञीवेत्सुखं जीवेदृणं कृत्वा घृतं पिबेत्। भरमीभृतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ॥६॥ यदि गच्छेत्परं लोकं देहादेष विनिगतः।

कस्माद्भ्यो न चायाति बन्धुस्नेहसमाकुलः ॥७॥ ततश्च जीवनोपायो ब्राह्मणैविहितस्त्वह । मृतानां प्रेतकार्याणि न त्वन्यद्विचते कचित् ॥६॥ श्रयो वेदस्य कर्तारो भण्डधूर्तनिशाचराः । जर्फरीतुर्फरीत्यादि पण्डितानां वचः स्मृतम् ॥६॥ अश्वस्यात्र हि शिक्षन्तु पत्नीग्राह्यं प्रकीर्तितम् । भण्डैस्तद्वत्परं चैव ग्राह्मजातं प्रकीर्तितम् ॥१०॥ मांसानां खादनं तद्वन्निशाचरसमीरितम् ॥११॥

चारवाक, आभाणक. बौद्ध और जैन भी जगतकी उत्सत्ति स्वभा-वसे मानते हैं जो २ स्वभाविक गुण हैं उस २ से द्रव्यसंयुक्त होकर सब पदार्थ बनते हैं कोई जगाका कर्ता नहीं ॥ १॥

परन्तु इनमेंसे चारवाक ऐसा मानता है किन्तु परलेक और जीवात्मा बोद्ध जैन मानते हैं चारवाक नहीं शेष इन तीनोंका मत कोई २ बात छोड़के एकसा है। न कोई स्वर्ग, न कोई नरक और न कोई परलेकमें जानेवाला आत्मा है और न वर्णाश्रमकी क्रिया कड़दायक है।। २।।

जो यझमें पशुको मार होम करनेसे वह स्वर्गको जाता हो तो यजमान अपने पि ।(दिको मार होम करके स्वर्गको क्यों नहीं मेजता ?।। ३।।

जो मरे हुए जीवोंका श्राद्ध और तर्पण तृष्तिकारक होता है तो परदेशमें जाने वाले मांगमें निर्वाहार्थ अन्न वस्त्र और धनादिको क्यों है जाते हैं ? क्योंकि जैसे मृतकके नामसे अर्पण किया हुआ पदार्थ स्वर्गमें पहुंचता है तो परदेशमें जाने वालोंके लिये उनके सम्बन्धी भी घरमें उनके नामसे अर्पण करके देशान्तरमें पहुंचा देवें जो यह नहीं

पहंचता तो स्वर्गमें वह क्योंकर पहंच सकता है १॥ ४॥

जो मर्च्यलोकमें दान करनेसे स्वर्गवासी तृप्त होते हैं तो नीचे देनेसे

घरके ऊपर स्थित पुरुष तृप्त क्यों नहीं होता १॥ ४॥

इसलिये जब तक जीवे तब तक सुखसे जीवे जो घरमें पदार्थ न हो तो भूण लेके आनन्द करे, भूग देना नहीं पड़ेगा क्योंकि जिस शरीरमें जीवने खाया विया है उन दोनोंका पुनरागमन न होगा फिर किससे कीन मांगेगा और कौन देवेगा १॥६॥

जो छोग कहते हैं कि मृत्युसमय जीव निकलके पर ओकको जाता है यह बात मिथ्या है क्योंकि जो ऐसा होता तो कुटुम्बके मोहसे बद्ध होकर पुनः घरमें क्यों नहीं आजाता १॥ ७॥

इसलिये यह सब ब्राह्मणोंने अपनी जीविकाका उपाय किया है जो दशगात्रादि मृतककिया करते हैं यह सब उनकी जीविकाकी छीछा 111511

वेदके बनानेहारे भांड, धूर्रा और निशाचर अर्थात् राक्षस ये तीन "जर्फरी" "तुर्फरी" इत्यादि पण्डितोंके धूर्त्तायुक्त बचन हैं।। ह ।।

देखो धूर्तोकी रचना घोड़ेके लिङ्गको स्त्री प्रहण करे उसके साथ समागम यजमानकी स्त्री से कराना कन्यासे ठट्टा आदि लिखना धूर्तीके विना नहीं हो सकता ॥ १० ॥

और जो मांसका खाना लिखा है वह वेदमाग राक्षसका बनाया B 11 88 11

उत्तर-विना चेतन परमेश्वरके निर्माण किये जड पदार्थ स्वयं आपसमें स्वभावसे नियमपूर्वक मिलकर उत्पन्न नहीं हो सकते। जो स्वभावसे ही होते हों तो द्वितीय सूर्य चन्द्र पृथिवी और नक्षत्राहि छोक आपसे आप क्यों नहीं बन जाते हैं।। १।।

स्वर्ग सुख भोग और नरक दुःख भोगका नाम है। जो जीवात्मा न होता तो सुख दुःखका भोका कौन होसके १ जैसे इस समय सुख दुःखका भोका जीव है वैसे परजन्ममें भी होता है क्या सत्यभाषण

द्वादचा

ब्बीर परीपकारादि किया भी वर्णाश्रमियोंकी निष्फछ होगी ? कभी नहीं ॥ २ ॥

पशु मारके होम करना वेदादि सत्यशाखों में कहीं नहीं छिला और मृतकोंका श्राद्ध तर्पण करना कपोलकिशत है क्योंकि यह वेदादि सत्यशास्त्रोंके विरुद्ध होतेसे भागवतादि पुराणमत वाळोंका मत है इसल्यि इस बातका खण्डन अखण्डनीय है ॥ ३ ॥ ४ ॥ ४ ॥

जो वस्त है उसका अभाव कभी नहीं होता, विद्यमान जीवका अभाव नहीं हो सकता, देह भरम हो जाना है जीव नहीं, जीव तो इसरे शरीरमें जाता है इसलिये जो कोई ऋगादि कर विराने पदा-र्थोंसे इस छोकमें भोग कर नहीं देते हैं वे निश्चय पापी होकर दूसरे जन्ममें दुःहारूपी नरक भोगते हैं इसनें कुछ भी सन्देह नहीं ॥ ई॥

देहसे निकल कर जीव स्थानान्तर और शरीरान्तरको प्राप्त होता है और उसको पूर्वजन्म तथा कुटुम्बादिका झान कुछ भी नहीं रहता इसलिये पुनः कुटुम्बमें नहीं आ सकता ॥७॥

हां ब्राह्मणोंने प्रेतकर्म अपनी जीविकार्थ बना लिया है, परन्तु वेदी-क न होनेसे खण्डनीय है ॥८॥

अब कहिये जो चारवाक आदिने वेदादि सत्यशास्त्र देखे सुने वा पढ़े होते तो वेदोंकी निन्दा कभी न करते कि वेद भांड, धूर्त और निशाचरवत् पुरुषोंने बनाये हैं। ऐसा वचन कभी न निकालते। हां, भांड, धूर्त, निशाचरवन् महीधरादि टीकाकार हुए हैं, उनकी धूर्तता है, वेदोंकी नहीं। परन्तु शोक है, चारवाक, आभाणक, बौद्ध और जैनि-योंपर कि इन्होंने मूल चार वेदोंकी संहिताओंको भी न सुना न देखा भौर न किसी विद्वानसे पढ़ा इसिछिये नष्ट श्रष्ट बुद्धि होकर उटपटांग वेदोंकी निन्दा करने लगे। दुष्ट वाममार्गियोंकी प्रमाणशून्य कपोल-किरत भ्रष्ट टीकाओंको देखकर वेदोंसे विरोधी होकर अविद्यारूपी व्यगाध समुद्रमें जा गिरे ।।६॥

भला विचारना चाहिये कि स्त्रीसे अश्वके लिङ्कका प्रहण कराके

खसते समागम कराना और यजमानकी कन्यासे हाँसी ठट्टा आहि करना सिवाय वाममागीं छोगोंसे अन्य मेनुष्येंका काम नहीं है विना इन महापापी वाममागियोंके अन्य, वेदायंसे विश्वीत, अशुद्ध व्याख्यान कीन करता ? अत्यन्त शोक तो इन चारवाक आदि पर है जो कि विना विचार वेदों की निन्दा करने पर तत्पर हुए तिमक तो अपनी खुद्धिस काम छेते। क्या करें विचार उनमें इतनी विद्या ही नहीं थी जो सत्यासत्यका विचार कर सत्यका मण्डन और असत्यका खडन करते। १०।।

और जो मांस खाना है यह भी उन्हीं वाममागी टीकाकारोंकी खीला है इसिलिये उनको राह्मस कहना उचित है परन्तु वेदोंमें कहीं मांसका खाना नहीं लिखा इसिलिये इत्यादि मिथ्या बातोंका पाप उन टीकाकारोंको और जिन्होंने वेदोंके जाने सुने बिना मनमानी निन्दा की है निःसन्देह उनको लगेगा सच तो यह है कि जिन्होंने वेदोंसे विरोध किया और करते हैं और करेंगे वे अवश्य अविद्यालपी बन्धकारमें पड़के सुल क बदले दारूण दुःख जितना पार्वे उतना ही न्यून है 4 इसिलिये मनुष्यमात्रको वेदानुकूल चलना समुचित है 11 ११ 11

जो वाममार्थियोंने मिथ्या कपोलकरंगना करके वेदोंक नामसं अपना प्रयोजन सिद्ध करना अर्थान् यथेर मगपान, मांस खाने और परसीयमन करने आदि दुष्ट कमांकी प्रशृति होनेक अर्थ वेदोंको करक लगाया इन्हीं वानोंको देखकर चारवाक बौद्ध तथा जैन लोग वेदोंकी निन्दा करने लगे और पृथक एक वेदिकह अनीधरवादी अर्थात् नास्तिक मत चला लिया। जो चारवाकादि वेदोंका मूलार्थ विचारते तो भूठी टीकाओंको देखकर सत्य वेदोक्त मनसे क्यों दाश भो बैठते १ क्या करें विचार "विनाशकाले विपरीतबुद्धिः" अर्थ नष्ट अष्ट होनेका समय आता है तब मनुष्यकी जरुटी बुद्धि होजाती हैं॥

भव जो चारवाफादिकोंमें भेद है सो खिखते हैं:--ये चीरवीफादि बहुबसी बार्तोमें एक हैं परन्तु चारवाक देहकी उत्पत्तिक सीथ जीवो- स्पत्ति और उसके नाशके साथ ही जीवका भी नाश मानता है।
पुनर्जनम और परलोकको नहीं मानता एक प्रत्यक्ष प्रमाणके बिना
अनुमानादि प्रमाणोंको भी नहीं मानता। चारवाक शब्दका अर्थ "जो
बोलनेमें प्रगत्भ और विशेषार्थ वैतिण्डिक होना है"। और बौद्ध जैन
प्रसक्षादि चारों प्रमाण, अनादि जीव, पुनर्जनम, परलोक और मुक्तिको
भी मानते हैं इतना ही चारवाकसे बोद्ध और जैनियोंका भेद हैं परन्तु
नास्तिकता, वेद ईश्वरकी निन्दा, परमतद्वेष, छः यतना ( आगे कह
छः कमें) और जगन्का कर्त्ता कोई नहीं इत्यादि बातोंमें सब एक ही
। यह चारवाकका मत संक्ष्यसे दर्शा दिया।

अब वौद्धमतके विषयमें संक्षेपसे लिखते हैं— कार्यकारणभावाद्वा स्वभावाद्वा नियामकाद्। अविनाभावनियमो दर्शनान्तरदर्शनात्॥

कार्य्यकारणभाव अर्थात् कार्यकं दर्शनसे करण और कारणके हर्शनसे कार्यादिका साक्षात्कार प्रत्यक्षसे शेषमें अनुमान होता है इसके विना प्राणियों के संपूर्ण व्यवहार पूर्ण नहीं हो सकते इत्यादि इक्षणोंसे अनुमानको अधिक मानकर चारवाकसे भिन्न शाखा बौद्धों की हुई है बौद्ध चार प्रकारके हैं:—

एक "माध्यमिक" दूसरा "योगाचार" तीसरा "सौत्रान्तिक" और चौथा "वैभाषिक" "बुद्धण निवर्तते स बौद्धः" जो बुद्धिसे सिद्ध हो अर्थात् जो २ बात अपनी बुद्धिमें आवे उस २ को माने और जो २ बुद्धिमें न आवे उस २ को नहीं माने । इनमेंसे पहिला "माध्यमिक" सर्वश्रूच्य मानता है अर्थात् जितने पदार्थ हैं वे सब शूच्य अर्थात् आदिमें नहीं होते अन्तमें नहीं रहते, मध्यमें जो प्रतीन होता है वह भी प्रतीत सम्यमें है पश्चात् शूच्य होजाता है, जेसे उत्पत्तिके पूर्व घट नहीं था, प्रज्वसके पश्चात् नहीं रहता और घटकान समयमें भासता और पहार्थांन्वरमें जान जानेसे घटकान नहीं रहता इसल्यि शूच्य ही

एक तत्त्व है। दूसरा "योगाचार" जो वाह्य शून्य मानेना है अर्थात् पदार्थ भीतर झानमें भासते है बाहर नहीं जैले घटझान आत्मामें है मभी मनुष्य कहता है कि यह घट है जो भीतर ज्ञान न हो तो नहीं फंड सकता ऐसा मानता है। तीसरा "सौत्रान्तिक" जो बाहर अर्थका अनुमान मानता है क्योंकि बाहर कोई परार्थ सागोंपांग प्रस्यक्ष नहीं होता किन्तु एकदेश प्रत्यक्ष होनेसे शेपमे अनुम न किया जाता है इसका ऐसा मत है। चौथा "वैभाषिक" है उसका मत बाहर पदार्थ मत्यक्ष होता है भीतर्र नहीं जैसे "अय नीखे घटः" इस प्रतीतिमें नीख-युक्त घटाकृति बाहर प्रतीत होती है यह ऐसा मानता है। यदापि इनका अचार्य्य बुद्ध एक है तथापि शिष्योंके बुद्धिभेदसे चार प्रकारकी शाखा होगई है जैसे सूर्य्यास्त होनेमे चार पुरुष परस्त्रीगमन और विद्वान् सत्यभाषणादि श्रेष्ठ कर्म्म् 'करते हैं। समय एक परन्तु अपनी श् बुद्धिके अनुसार भिन्न २ चेष्टा करते है अब इन पूर्वोक्त चारोंमें "माध्यमिक" सबको क्षणिक मानता है अर्थात् क्षण २ में बुद्धिके परि-णाम होनेसे जो पूर्वक्षणमें झार्त वस्तु था वैसा ही दूसरे क्षणमें नहीं रहता इसलिये सबको क्षणिक मानना चाहिये ऐसे मानता है। दूसरा "योगाचार" जो प्रवृत्ति है सो सब दुःखरूप है क्योंकि प्राप्तिमे सन्तुष्ठ कोई भी नहीं रहता एककी प्राप्तिमें दूसरेकी इच्छा बनी ही रहती है ्इस प्रकार मानता है। तीसरा "सौत्रान्तिक" सब पदार्थ अपने २ ट्याणींसे लक्षित होते हैं जैसे गायके चिह्नोंसे गाय और घोडोंके चिह्नोंसे घोड़ा झात होता है वैसे लक्षण लक्ष्यमें सदा रहते है ऐसा फहता है। चौथा "वेभाषिक" शून्य ही को एक पदार्थ मानता है प्रथम माध्यमिक सबको शून्य मानता था उसीका पक्ष वैभाषिकका भी है इत्यादि बौद्धोंमें बहुतसे विवाद पक्ष हैं इस प्रकार चार प्रकारकी भावना मानते हैं।

ब्तर-जो सब शून्य हो तो शून्यका जाननेवाला शून्य नहीं हो सकता सौर जो सब शून्य होवे तो शून्यको शून्य नहीं जान सके

इसकिये शुन्यका ज्ञाता और ज्ञेय दो पदार्थ सिद्ध होते हैं और जो योगाचार बाह्य शून्यत्व मानत है तो पर्वत इसके भीतर होना चाहिये को कहे कि पर्वत भीतर है तो उसके हृदयमें पर्वतके समान अवकाश कहां है इसलिये बाहर पर्वत है और पर्वतज्ञान आत्मामें रहता है सौत्रान्तिक किसी पदार्थको प्रयस नहीं मानना तो वह आप खयं और इसका वचन भी अनुमेय होनः चाहिये प्रत्यक्ष नहीं जो प्रत्यक्ष न हो तो "अयं घटः" यह प्रयोग भी न होना चाहिये किन्तु "अयं घटैकदेशः' यह घटका एकदेश है और ए 6 देशका नाम घट नहीं किन्तु समुदा-यका नाम घट है "यह घट हैं यह प्रत्यक्ष है अनुमेय नहीं क्योंकि सब अवयवोंमें अवयवी एक है उस के प्रत्यक्ष होनेसे सब घटके अवयव भी प्रत्यक्ष होते हैं अर्थात् सावयव घट प्रत्यक्ष होता है। चं था वैभाषिक बाह्य पदार्थोंको प्रत्यक्ष मानता है वह भी ठीक नहीं क्योंकि जहां ज्ञाता भोर झ.न होता है वहीं प्रत्यक्ष हाता है यद्यपि प्रत्यक्षका, विषय बाहर होता है तदाकार ज्ञान आत्माको होता है बैसे जो क्षणि ह पर्श्य और डसका ज्ञान क्षणिक हो तो "प्रत्यिगज्ञा" अर्थात् मैंने वह बात की थी ऐसा स्मरण न होना चाहिये परन्तु पूर्व दृष्ट श्रुतका स्मरण होता है इसलिये क्षणिकवाइ भी ठीक नहीं जो सब दुःख ही हो और सुख कुछ भी न हो तो सुखकी अपेक्षके ब्रिया दुःख सिद्ध नहीं हो सकता जैसे रात्रिकी अपेक्षासे दिन और दिनकी अपेक्षासे रात्रि होती है इसलिये सब दुःख मानना ठीक नहीं जा ख़लक्षण हो माने तो नेत्र रूपका लक्षण है और रूप लक्ष्य है जैसा बटका रूप घटके रूपका लक्षण चक्षु लक्ष्यसे भिन्न है और गन्य पृथिवीसे अभिन्न है इसी प्रकार भिन्नाभिन्न छक्ष्य छक्षण मानना चाहिये। शूनयका जो उत्तर पूर्व दिया है वही अर्थात् शून्यका जाननेवाला शून्येत भिन्न होता है।

सर्वस्य संसारस्य दुःखात्मकत्वं सर्वति र्थकरसंगतम्। जनको बौद्ध तीर्थकर मानते हैं उन्होंको जन भी मानते हैं इसी-

समुक्लास] बौद्धोंके रूपादि पांच स्कन्ध। १४४६

िलये ये दोनों एक हैं और पूर्व के मावनाचनुत्र अर्थान् चार भावना-ओंसे सकल वासनाओंकी निवृत्तिस णून्यरूप निर्वाण अर्थात् मुक्ति मानते हैं अपने शिष्योंको योग आचारका उपवेश करते हैं गुरुके वच-नका प्रमाण करना अनादि बुद्धिन व.सना होनेसे बुद्धि ही अनेकाकार भासती है उननेंसे प्रथमस्कन्यः—

#### रूपविज्ञानवेदनासंज्ञासंस्कारसंज्ञकः ।

( प्रथम ) जो इन्द्रियोंसे रूपादि विषय प्रदण किया जाता है वह **"रूपस्कन्ध" ( दूसरा )**आलयविज्ञान प्रत्रृत्तिका जाननारूप व्यवहारको **"विज्ञानस्कन्ध" (** तीसरा ) ह्यास्कन्ध और विज्ञानस्कन्यसे उत्पन्न हुआ 'सुरू। दुःरू: आदि प्रतीति रूप व्यवहारको "वेदनास्कन्ध" (चौथा) गौ आदि संज्ञाका सम्बन्ध नामीक साथ मानने रूपको "संज्ञा-स्कन्ध" (पांचवां) वेदनास्कन्धसे रागद्वेषादि क्लेश और क्षुधा तृषादि उपक्लेश, मद, प्रमाद, अभिमान, धर्म और अधर्मरूप व्यवहारको "संस्कारस्कन्ध" मानते हैं। सब संसारमें दुःखात्व दुःखाका घर दुःखाका साधनरूप भावना करके संसार से छु:ना चारवाकोंमें अधिक मुक्ति और अनुमान तथा जीवको न मारुवा वोद्ध**्मान**ते हैं। देशना लोकनाथानां सत्त्वाशयवशानुगाः । भिचन्ते बहुधा लोके उपायैश्हुभिः फिल ॥१॥ गम्भोरोत्तानभेदेन क्वचिच्चो मयलक्षणः। भिन्ना हि देशना भिन्नशून्यताद्वयत्रक्षणा ॥२॥ अर्थानुपाल्ये बहुद्यो द्वादद्यायतनानि वै। परितः पूजनीयानि किमन्यैरिह पूजितः ॥३॥ ज्ञानेन्द्रियाणि पंत्रैव तथा कर्नेन्द्रियाणि च।

मनो बुद्धिरिति प्रोक्तं द्वाददा।यतनं बुधैः ॥४॥

अर्थात् जो ज्ञानी, विरक्त, जीवनमुक्त लोकोंके साथ बुद्ध आहि तीर्थकरोके पदायके स्वरूपको जाननेवाला, जो कि भिक्र २ पदार्थोका उपदेशक है जिसको बहुतसे मेद और बहुतसे उपायोंसे कहा है उसको मानना ॥ १ ॥

बड़े गम्भीर और प्रसिद्ध मेदसे कहीं २ गुप्त और प्रकटतासे भित्र २ गुरुओंके उपदेशक जो कि न्यून ब्युग्गयुक्त पूर्व कह आये

उनको मानना ॥ २ ॥

जो द्वादशायतन पूजा है वही मोश्च करनेवाली है उस पूजाके लिये बहुतसे द्रव्यादि पदार्थीको प्राप्त होके द्वादशायतन सर्थात् बारह प्रकर् रके स्थान विशेष बनाकं सब प्रकारसे पूजा करनी चाहिये अन्यकी पूजा करनेसं क्या प्रयोजन ।। ३।।

'इनकी द्वादशायतन पूजा यह है—पांच ज्ञान इन्द्रिय अर्थात् आत्रेत, त्वक्, चक्षु, जिह्ना और नासिका । पांच कर्मेन्द्रिय अर्थात् वाक् इस्त, पाद, गुह्म, और उपस्थ ये १० इन्द्रियां और मन, बुद्धि इनहीं का सत्कार अर्थात् इनको आनन्दमें प्रवृत्त रखना इत्यादि बौद्धका मत

उत्तर—जो सब संसार दुःखरूप होता तो किसी जीवकी प्रवृत्ति न होनी चाहिये संसारमें जीवोंकी प्रवृत्ति प्रत्यक्ष दीखती है इसिल्ये सब संसार दुःखरूप नहीं हो सकता किन्तु इसमें सुख दुःख दोनों हैं। और जो बौद्ध लोग ऐसा ही सिद्धान्त मानते हैं तो खानपानादि करना और पश्यू तथा ओषध्यादि सेवन करके शरीररक्षण करनेमें प्रवृत्त होकर सुख क्यों मानते हैं हो यह कथन ही सम्भव नहीं क्योंकि जीव सुख जानकर प्रवृत्त और दुःख जानके निवृत्त होता है। संसारमें धर्म किया विद्या सत्सङ्गादि अष्ठ व्यवहार सब सुखकारक हैं इनको कोई भी विद्यान दुःखका लिंग नहीं मान सकता विना बौद्धोंके। जो पांच स्कर्य है से भी पूर्ण अपूर्ण हैं क्योंकि जो ऐसे २ स्कन्ध विचा-

रने लगें तो एक २ के अनेक भेद हो सकते हैं। जिन तीर्थंकरोंको **एपदेशक औ**र छोकनाथ मानते हैं और अनादि जो नाथोंका भी नाथ परमात्मा है उसको नहीं मानते तो उन तीर्थंकरोंने उपदेश किससे पाया १ जो कहें कि स्वयं प्राप्त हुआ तो ऐसा कथन संभव नहीं क्योंकि कारणके विना कार्य नहीं हो सकता। अथवा उनके कथना-नसार ऐसा ही होता तो अब भी उनमें विना पढे पढाये सने सनाये ध्यीर ज्ञानियोंके सत्संग किये विना ज्ञानी क्यों नहीं होजाते जब नहीं होते तो ऐसा कथन सर्वथा निर्मूल और युक्तिशून्य सन्निपात रोगपस्त मनुष्यके बर्डानेक समान है जो शून्यरूप ही अदैत उपदेश बौद्धोंका है तो विद्यमान वस्तु श्रुन्यरूप कभी नहीं हो सकता, हां सूक्ष्म कार-णरूप तो होजाता है इसेलिये यह भी कथन भ्रमरूपी है। जो द्रव्योंके उपार्जनसे ही पूर्वोक्त द्वादशायतनपूजा मोक्षका साधन मानते हैं तो दश प्राण और ग्यारहवें जीवात्माकी पूजा क्यों नहीं करते ? जब इन्द्रिय और अन्तःकरणकी रूजा भी मोक्षप्रद है तो इन बोद्धों और विषयीजनोंमें क्या भेद रहा ? जो उनसे ये बौद्ध नहीं बच सके तो वहां मुक्ति भी कहां रही जहां ऐसी बातें हैं वहां मुक्तिका क्या काम ? क्या ही इन्होंने अपनी अविद्याकी उन्नति की है जिसका सादृश्य इनके विना दूसरोंसे नहीं घट सकता निश्चय तो यही होता है कि इनको वेद ईश्वरसे विरोध करनेका यही फल मिला। पूर्व तो सब संसारकी दुःखरूपी भावना की, फिर व चमें द्वादशायतनपूजा लगादी, क्या इनकी द्वादशायतनपूजा संसारके पदार्थीसे बाहरकी है जो मुक्तिकी देनेहारी होसके तो भला कभी आंख मीचके कोई रत्न ढूंढा चाहें वा ढूंढे कभी प्राप्त हो सकता है ? ऐसी ही इनकी छीछा वेद ईश्वरको न माननेसे हुई अब भी सुख चाहैं तो वेद ईश्वरका आश्रय लेकर अपना जन्म सफल करें। विवेकविलास मन्थमें बौद्धोंका इस प्रकारका मत लिखा है-

बौद्धानां सुगतो देवो विश्वं च क्षणभंगुरम्।

आर्थ्यसत्त्वाख्ययादत्वचतुष्टयमिदं कपात् ॥१॥ दुःखमायतनं चैव ततः समुद्यो मतः। मार्गरचेत्यस्य च व्याख्या क्रमेण अ्यतापतः ॥२॥ दुःखसंसारिणस्कन्धास्ते च पश्च प्रकीर्तिताः । विज्ञानं वेदनासंज्ञा सस्कारो रूपमेव च ॥३॥ पञ्चेन्द्रियाणि रान्दा वा विषयाः पः मानसम् । धर्मायतनमेतानि द्वादशायतनानि तु ॥४॥ रागादीनां गणो यः स्यात्समुदेति रुणां हृदि । आत्मात्मीयस्व मावास्यः स स्यात्समुद्यः पुनः ॥५॥ क्षणिकाः सर्वसंस्कारा इति या वासना स्थिरा। समागइति विज्ञेयः स च माक्षाऽभिधीयते ॥६॥ प्रसक्षानुमानं च प्रमाणं द्वितयं तथा। चतुःप्रस्थानिका बोद्धाः ख्याता वैभाषिकाद्यः॥७॥ अथो ज्ञानान्वितो वनाषिकेण बहु मन्यते। सौत्रान्तिकेन प्रत्यक्षग्राद्योऽर्थो न बहिर्मतः ॥८॥ आकारासहिताबुद्धियोगाचारस्य संप्रता । केवलां संविदां स्वस्थां मन्यन्ते मध्यमाः पुनः ।६। रागादिज्ञानसन्ताभवासनाच्छेदसम्भवा । चंतुर्णामपि बोद्धानां मुक्तिरेषा प्रकीर्तिता ॥१०॥ कृतिः कमण्डलुमीण्ड्यं चीरं पूर्वाह्वभोजनम्।

# समुक्तास्] वैभायिक आदि सारुमेद । १५५३८ संघो रक्तांवरत्वं च शिश्रिये बोद्धभिक्षुभिः ॥११॥

बौद्धोंका सुगतदेव बुद्ध भगवान् पूजनीय देव और जगन् क्षणभं-गुर आर्थ्यपुरुष और आर्थ्या की तथा तस्त्रोंकी आरूया संज्ञादि प्रसिद्धि ये त्वार तस्त्व बौद्धोंमें मन्तव्य पदार्थ है ॥ १॥

इस विश्वको दुःखका घर जाने तदनन्तर समुद्रय अर्थात् छन्नति . होती है और इनकी व्याख्या क्रमसे सुनो ॥ २ ॥

संसारमें दुःख ही है जो पश्चस्कन्ध पूर्व कह आये हैं उनको जानना ।। ३।।

पश्च ज्ञानेन्द्रिय उनके शब्दादि विषय पांच और मन बुद्धि अन्तःकरण धर्मका स्थान ये द्वादश हैं।। ४।।

जो मनुष्योंके हृदयमें रागद्वेषादि समृहकी उत्पत्ति होती है वह समुदय और जो आहमा आहमाके सम्बन्धी और स्वभाव है वह आख्या इन्होंसे फिर समुदय होता है।। १।।

सब संस्कार क्षणिक हैं जो यह वासना स्थिर होना वह बौद्धोंका मार्ग है और वही शून्य तत्त्व शून्यरूप हो जाना मोक्ष है।। ६।।

बौद्ध छोग प्रत्येक्ष और अनुमान दो ही प्रमाण मानते हैं चार प्रकारके इनमें भेद हैं वैभाषिक, सौत्रान्तिक, योगाचार और माध्य-मिका। ७॥

इनमें वैभाषिक झानमें जो अर्थ है उसको विद्यमान मानता है क्योंकि जो झानमें नहीं है उसका होना सिद्ध पुरुष नहीं मान सकता। क्योर सोन्नान्तिक भीतरको प्रस्त्रश्न पदार्थ मानता है बाहर नहीं ॥ ८ ॥

योगाचार आकार सहित विज्ञानयुक्त बुद्धिको मानता है और माध्यमिक केवल अपनेमें पदार्थोंका ज्ञानमात्र मानता है पदार्थोंको नहीं मानता ॥ ६ ॥

और रागादि ज्ञानके प्रवाहकी वासनाके नाशसे उत्पन्न हुई मुक्ति चारों बौद्धोंकी है ॥ १० ॥ मृगादिका चमड़ा, कमण्डलु, मृण्ड मुड़ाये, वस्कल वस्न, पूर्वाह सर्थात् ६ वजेसे पूर्व भोजन, अकेला न रहे, रक्त वस्नका धारण यह बौद्धोंके साधुओंका वेश है।। ११।।

उत्तर—जो बौद्रांका सुगत बुद्ध ही देव है तो उसका गुरु कौन था शुः मौर जो विश्व क्षणभंग हो तो चिरदृष्ट पदांधका यह वहीं है ऐसा स्मरण न होना चाहिये जो क्षणभंग होता तो वह पदांथ ही नहीं रहता पुनः स्मरण किसका होवे जो क्षणिकवाद ही बौद्धोंका मार्ग है तो इनका मोश्र भी श्रणभंग होगा जो झानसे युक्त अर्थ दृज्य हो तो सड़ दृज्यमें भी ज्ञान होना चाहिये और वह चाउनादि किया किस पर करता है ? भला जो बाहर दीखता है वह मिथ्या कैसे हो सकता है ? जो आकाशसे सहित बुद्धि होवे तो दृश्य होना चाहिये जो केवल झान ही हृदयमें आत्मस्थ होवे बाह्य पदार्थोंको बल झान ही माना जाय तो झेय पदार्थके विना झान ही नहीं हो सकता, जो वासनाच्छेद ही मुक्ति हैं तो सुपुष्तिमें भी मुक्ति माननी चाहिये ऐसा मानना विद्यासे विरुद्ध होनेके कारण तिरस्करणीय है। इत्यादि बातें संस्नेपतः बौद्ध मतस्थोंकी प्रदर्शित कर दी हैं अब बुद्धिमान विचारशील पुरुष अव-छोकन करके जान जायेंगे कि इनकी कैसी विद्या और कैसा मत है। इसको जैन छोग भी मानने हैं।

# यहांसे आगे जैनमतका वर्णन है। 🖂

प्रकरणरत्नाकर १ भाग, नयचकसारमें निम्निलिखित बातें िल्सी हैं बोद्ध लोग समय २ में नवीनपतसे (१) आकाश, (२) काऊ (३) जीव, (४) पुद्र उ ये चार द्रज्य मानते हैं ओर जैनी लोग धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुर्गलास्तिकाय, जीवास्तिकाय और काल इन हः द्रज्यों को मानते हैं। इनमें काल को आस्तिकाय नहीं मानते किन्तु ऐसा कहते हैं कि काल उपचारसे द्रज्य है वस्तुतः नहीं उनमेंसे धर्मास्तिकाय" जो गतिपरिणामीपनसे परिणामको प्राप्त हुआ जीव

स्रोर पुर्गल इसकी गतिक समीपसे स्तम्भन करनेका हेतु है वह धर्मास्तिकाय और वह असंख्य प्रदेश परिमाण और छोकमें व्यापक ें हे दूसरा "अधर्मास्तिकाय" यह है कि जो स्थिरतासे परिणामी **हुए** जीव तथा पुद्गलको स्थितिक आश्रयका हेतु है। तीसरा "आकाशा-स्तिकाय" उसको कहते हैं कि जो सब द्रव्योंका आधार जिसमें अव-गाहन प्रवेश निर्गम आदि क्रिया करनेवाले जीव तथा पुद्गलोंको अवगाहनका हेतु और सर्वन्यापी है। चौथा "पुद्गलास्तिकाय" यह है कि जो कारणरूप सूक्ष्म. नित्य, एक रस, वर्ण, गन्ध, स्पर्श, कार्यका लिङ्ग पूरने और गलनेक स्वभा वाला होता है। पांचवां "जीवास्ति-काय" जो चेटनालक्षण ज्ञान दर्शनमें उपयुक्त अनन्त पर्यायोंसे परि-णामी होनेवाला कर्ता भोक्ता है। और छठा "काल" यह है कि जो पूर्वोक्त पंचास्तिक यांका परत्व अपरत्व नवीन प्राचीनताका चिह्नरूप प्रसिद्ध बत्तमानरूप पर्यायोंसे युक्त है वह काल कहाता है।

समीक्षक—जो बौद्धोंने चार द्रव्य प्रतिसमयमें नवीन २ माने 🖁 वे मूठे हैं क्योंकि आकारा, काल, जीव और परमाणु ये नये वा पुराने कभी नहीं हो सकते क्योंकि ये अनादि और कारणरूपसे अविनाशी हैं पुनः नया और पुरानापन कैसे घट सकता है। और जैनियोंका मानना भी ठीक नहीं क्योंकि धर्माधर्म द्रव्य नहीं किन्तु गुण हैं ये दोनों जीवास्तिकायमें आजाते हैं इसिखये आकाश, परमाणु, जीव और . काल मानते तो ठीक था ओर जो नव द्रव्य वैशेषिकमें माने हैं वे ही ठीक हैं क्योंकि पृथिन्यादि पांच तत्व, काल, दिशा, आत्मा और मन ये नव पृथक् २ पदार्थ निश्चित हैं, एक जीवको चेतन मानकर ईश्व-रको न मानना यह जैन बौद्धों की मिथ्या पक्षपातकी बात है।

अब जो बौद्ध और जैनी छोग सप्तभंगी और स्याद्वाद मानते हैं सो यह है कि "सन् घट" इसको प्रथम भङ्ग कहते हैं क्योंकि भट क्षपनी वर्त्तमानतासे युक्त अर्थात् घड़ा है इसने अभावका विरोध किया है। दूसरा भक्क "असन घट" घड़ा मही है प्रथम घटके भावसे इस

स्याद्दित जीवोऽयं प्रथमो भंगः ॥१॥
स्यान्नास्ति जीवा द्वितियो भंगः ॥२॥
स्याद्वक्तव्यो जीवस्तृतोयो भंगः ॥३॥
स्याद्दित नास्ति नास्तिरूपो जीवश्चतुर्थो भंगः ॥४॥
स्याद्दित अवक्तव्यो जीवः पंचमो भंगः ॥४॥
स्यान्नास्ति अवक्तव्यो जीवः षठो भंगः ॥६॥
स्याद्दित नास्ति अवक्तव्यो जीव इति सप्तमो
भंगः ॥७॥

अर्थात् हे जीव, ऐसा कथत होवे तो जीवके विरोधी जड़ पदार्थों-का जीवमें अभावरूप भंग प्रथम कहाता है। दूसरा भंग यह है कि नहीं है जीव जड़में ऐसा कथत भी होता है इससे यह दूसरा भंग कहाता है। जीव है परन्तु कहने योग्य नहीं यह तीसरा भंग। जब जीव शरीर धारण करता है तब प्रसिद्ध और जब शरीरसे प्रथक्क होता है तब अथसिद्ध रहता है ऐसा कथत होवे उसको चतुर्थ मुंग्- कहते हैं जीव है परन्तु कहने योग्य नहीं जो ऐसा कथन है उसको पश्चम भंग कहते हैं जीव प्रत्यश्च प्रमागसे कहनेमें नहीं माता इसिंख्यि खाधु प्रस्रक्ष नहीं है ऐसा व्यवहार है उसको छठा भंग कहते हैं एक कालमें जीवका अनुमानसे होना और अदृश्यपनमें न होना मौर एकसा न रहना किन्तु क्षण २ में परिणामको प्राप्त होना अस्ति नास्ति न होवे और नास्ति अस्ति व्यवहार भी न होवे यह सातवां भंग कहाता है।

इसी प्रकार नित्यत्व सप्तभंगी और अनित्यत्व सप्तभंगी तथा सामान्य धर्म विशेष धर्म गुण और पर्व्यायोंकी प्रत्येक वस्तुमें सप्त-भंगी होती है वैसे द्रव्य, गुण, स्वभाव और पर्व्यायोंके अनन्त होनेसे सप्तभंगी भी अनन्त होती है ऐसा बौद्ध तथा जैनियोंका स्याद्वाद और सप्तभंगी न्याय कहाता है।

समिश्रक—यह कथन एक अन्योऽन्याभावमें साधर्म्य और वैध-र्म्यां चिरतार्थ हो सकता है। इस सरल प्रकरणको छोड़कर किन जाल रचना केवल अज्ञ नियों के फँसानेक लिये होता है। देखी! जीवका अजीवमें और अजीवका जीवमें अभाव रहता ही है जैसे जीव और जड़के वर्तमान होनेसे साधर्म्य और चेतन तथा जड़ होनेसे वैधर्म्य अर्थात् जीवमें चेतनत्व (अस्ति) है और जड़त्व (नास्ति) नहीं है। इसी प्रकार जड़में जड़त्व है और चेतनत्व नहीं है इससे गुण, कर्म, खभावके समान धर्म और विरुद्ध धर्मिके विचारसे सब इनका सप्तमंगी और स्याद्वाद सहजतासे समम्तमें आता है फिर इतना प्रपश्च बढ़ाना किस कामका है ? इसमें बौद्ध और जैनोंका एक मत है। थोड़ासा ही प्रथक् होनेसे भिन्नभाव भी हो जाता है।

अब इसके आगे केवल जैनमन विषयमें शिखा जाता है— चिद्चिद्द्वे परे तत्त्वे विवेकस्तद्विवेचनम् । डपादेयमुपादेयं हेयं हेयं च कुर्वतः ॥१॥ हेयं हि कर्तुरागादि तत् कार्यमविवेकिनः । उपादेयं परं ज्योतिरुपयोगैकलक्षणम् ॥२॥

जन लोग "चित्" और "अचित्" अर्थात् चेतन आग जड़ दो ही परनत्व मानते हैं उन दोनोंके विवेचनका नाम विवेक जो २ प्रहणके योग्य है उस २ का प्रहण और जो २ त्याग करने योग्य है; उस २ के त्याग करनेवालेको विवेकी कहते हैं।। १।।

जगत्का कर्ता और रागादि तथा ईश्वरने जगत् किया है इस अविवेकी मतका त्याग और योगसे रुखित परमञ्चोतिस्वरूप जो जीव है उसका महण करना उत्तम है।। २॥

) अर्थात् - जीवके विना दूसरा चेतन तस्य ईश्वरको नहीं मानते, कोई भी अनादि सिद्ध ईश्वर नहीं ऐसा बौद्ध जैन छोग मानते हैं। इसमें राजा शिक्पसादजो "इतिहासतिमिरनाशक" प्रनथमें लिखते हैं कि इनके दो नाम हैं एक जैन और दूसरा बौद्ध, ये पर्यायवाची शब्द हैं परन्तु बौद्धोंमें वाममार्गी मद्यमांसाहारी बौद्ध हैं उनके साथ जैनि-योंका विरोध परन्तु जो महाबीर और गौतम गणधर 🕻 उनका नाम बौद्धोंने बुद्ध रक्ला ह ओर जो जनियोंने गणधर और जिनवर इसमें जिनकी परम्परा जैनमत है उन राजा शिवप्रसादजीने अपने 'इतिहास-तिमिरनाशक' प्रनथके तीसरे खण्डमें लिखा है कि "स्वामी शहूराचार्य" से पहिले जिनको हुए कुल हजार वर्षके लगभग गुजरे हैं सारे भारत-वर्षमें बौद्ध अथवा जैनधर्म फैला हुआ था इस पर नोट—"बौद्ध कह-नेसे हमारा आशय उस मतसे है जो महावीरके गणधर गौतम खामीके समयसे शङ्कर स्वामीके समय तक वेद्विरुद्ध सारे भारतवर्षमें फैळा रहा और जिसको अशोक और सम्प्रति, महाराजने माना उससे जैन बाहर किसी तरह नहीं निकल सकते। ज़िन जिससे जैन निकला मौर बुद्र जिससे बौद्ध निकला दोनों पर्यायवाची शब्द हैं कीशमें ससुद्धास] जैनां और योद्धांका संबंध । ५५६
दोनोंका अर्थ एक ही लिखा है और गोतमको दोनों मानते हैं बनां
होपवंश इत्यादि पुराने बौद्ध प्रत्योम शाक्यमुनि गोतम बुद्धको अकसर
महावीर ही के नामसे लिखा है। पस उसके समयमें एक ही उनका मन
रहा होगा इमने जो जैन न लिखकर गोतमके मत वालोंको बौद्ध लिखा
इसका प्रयोजन केवल इतना ही है कि उसको दूसरे देशवालोंने बौद्ध
ही के नामसे लिखा है"॥ ऐसा ही अमरकारने भी लिखा है:—
सर्वज्ञ: सुगतो बुद्धो धमराजस्तथागतः।
समन्तभद्रो भगवान्मारजिक्लोकजिज्ञनः॥१॥
घडभिज्ञोददावलोऽद्वयवादी विनायकः।
मुनीन्द्र: श्रीघनः शास्ता मुनिः शाक्यमुनिस्तु यः।२।
स्वीतमश्चाकंबन्युश्च मायादेवीसृतश्च सः॥३॥

अमरकोश कां १ । वर्ग १ रखेक ८ से १० तक ॥
अब देखो । बुद्ध जिन और बौद्ध तथा जैन एक के नाम हैं वा
नहीं १ क्या अमरसिंह भी बुद्ध जिनके एक खिखनेमें भूखभाग है १
ओ अविद्धान जैन हैं वे तो न अपना जानते और न दूसरेका, केवल
हरुमात्रसे बर्डाया करते हैं परन्तु जो जैनोंमें विद्धान हैं वे सब जानते
हैं कि "बुद्ध" और "जिन" तथा "बौद्ध" और "जैन" पर्यायवाची हैं
इसमें कुछ सन्देह नहीं । जैन छोग कहते हैं कि जीव ही परमेश्वर
होजाता है, वे जो अपने तीर्थकरोंको ही केवली मुक्ति प्राप्त और परमेश्वर मानते हैं, अनादि परमेश्वर कोई नहीं सर्वक्ष, वीतराग, अर्ब्स,
केवली, तीर्थकृत, जिन ये छः नास्तिकोंक देवताओंक नाम हैं । आदिदेबका स्वरूप चन्द्रसूरिने "आप्तिनश्वयालङ्कार" प्रन्थमें खिला है:—

सर्वज्ञो बीतरागादिदोषस्त्रे लोक्यपृजितः।

यथास्थितार्थवादी च देवोऽईत् परमेश्वरः ॥१॥

वैसे ही "तौतातितों" ने भी लिखा है कि— सर्वज्ञो दृश्यते तावन्नेदानोमस्मदादिभिः । दृष्टो न चैकदेशोऽस्ति लिंगं वा योऽनुमापयेत् ॥२॥ न चागमविधिः कश्चित्तित्यसवज्ञबोधकः । न च तत्रार्थवादानां तात्पर्यमपि कल्पते ॥३॥ न चान्यार्थप्रधानैस्तैस्तदस्तित्वं विधीयते । न चानुवादितुं शक्यः पूर्वमन्यैरबोधितः ॥४॥

जो रागादि दोषाँसे रहित, त्रैलोक्यमें पूजनीय यथावत् पदार्थीका क्ता सर्वज्ञ अर्द्त देव है वही परमेश्वर है ॥ १॥

जिसिलिये हम इस समय परमेशवरको नहीं देखते इसिलिये कोई सर्वज्ञ अनादि परमेशवर प्रत्यक्ष नतीं, जब ईश्वरमें प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं तो अनुमान भा नहीं घट सकता क्योंकि एक देश प्रत्यक्षके विना अनुमान नहीं हो सकता ॥ २॥

जब प्रस्यक्ष अनुमान नहीं तो आगम अर्थान् नित्य अनादि सर्वक्ष परमात्माका बोधक शब्द्यमाण भी नहीं हो सकतः, जब तीनों प्रमाण नहीं तो अर्थशद अर्थात् स्तुति निन्दा परमृति अर्थात् पराये चरित्रका बणन और पुराकल्प अर्थात् इतिहासका तात्पर्य भी नहीं घट सकता ॥ ३॥

और अन्यार्थप्रधान अर्थात् बरुबीहि समासके तुल्य परोक्ष पर-मात्माकी सिद्धिका विधान भी नहीं हो सकता, पुनः ईश्वरके उपदे-ष्टाओंसे सुने विना अनुवाद भी कैसे हो सकता है ? ॥ ४ ॥

(इसका प्रत्याख्यान अयोन् खण्डन) जो अनादि ईश्वर न होता तो "अर्हन" देवके माता पिना आदिक शरीरका सीचा कीन

### समुख्लास] ईश्वरपर आक्षेपका समाधान। ५६१

बनाता ? विना संयोगकर्ताके यथायोग्य सर्वाऽवयवसम्पन्न, यथोचित कार्य करनेमें उपयुक्त शरीर बन ही नहीं सकता और जिन पदार्थोंसे शरीर बना है उनके जड़ होनेसे स्वयं इस प्रकारकी उत्तम रचनासे युक्त शरीर रूप नहीं बन सकते क्योंकि उनमें यथायोग्य बननेका हान ही नहीं और जो रागादि दोषोंसे सिहत होकर पश्चात् दोष रहित होता है वह ईश्वर कभी नहीं हो सकता क्योंकि जिस निमित्तसे वह रागादिसे मुक्त होता है वह मुक्ति उस निमित्तके छूटनेसे उसका कार्य मुक्ति भी अनित्य होगी, जो अल्प और अल्पज्ञ है वह सर्वव्यापक और सर्वज्ञ कभी नहीं हो सकना क्योंकि जीवका स्वरूप एकदेशी और परिमित गुण, कम, स्वभाववाळा होता है वह सब विद्याओंमें सब प्रकार धर्यार्थवक्ता नहीं हो सकता इसिलये तुम्हारे तीर्थंकर परमेश्वर कभी नहीं हो सकते।। १।।

क्या तुम जो प्रत्यक्ष पदार्थ हैं उन्होंको मानते हो अप्रत्यक्षको नहीं जैसे कानसे रूप और चक्षुसे शब्दका प्रहण नहीं हो सकता वैसे अनादि परमात्माको देखनेका साधन शुद्धान्तःकरण, विद्या और योगाभ्याससे पिवजातमा परमात्माको प्रत्यक्ष देखता है जैसे विना पढ़े विद्याके प्रयोजनोंकी प्राप्ति नहीं होती वैसे ही योगाभ्यास और विज्ञानके विना परमात्मा भी नहीं दोख पड़ता, जैसे भूमिके रूपादि गुण ही को देख जानके गुणोंसे अव्यवहित सम्बन्धसे पृथिवी प्रत्यक्ष होती है वैसे इस सृष्टिमें परमात्माकी रचना विशेष लिक्क देखके परमात्मा प्रत्यक्ष होता है और जो पापाचणेच्छा समयमें भय, शंका, लज्जा उत्पन्न होती है, वह अन्तर्यामी परमात्माकी ओरसे है इससे भी परमात्मा प्रत्यक्ष होती है, वह अन्तर्यामी परमात्माकी ओरसे है इससे भी परमात्मा प्रत्यक्ष होता है। अनुमानके होनेमें क्या सन्देह हो सकता है। २॥

और प्रत्यक्ष तथा अनुमानके होनेसे आगम प्रमाण भी नित्य, धनादि सर्वज्ञ ईश्वरका बोधक होता है इसलिये शब्द प्रमाण भी ईश्वरमें है जब बीनों प्रमाणोंसे ईश्वरको जीव जान सकता है तब अर्थवाद सर्थात् परमेश्वरके गुणोंकी प्रशंसा करना भी यथार्थ घटना है क्योंकि जो नित्य पदार्थ हैं उनके गुण, कर्म, स्वभाव भी नित्य होते हैं उनकी प्रशंसा करनेमें कोई भी प्रतिबन्धक नहीं ॥ ३ ॥

जैसे मनुष्यों में कत्तांके विना कोई भी कार्य नहीं होता वैसे ही इस महत्कार्यका कर्ताके विना होना सर्वथा असंभव है। जब ऐसा है तो ईश्वरके होनेमें मूट्को भी सन्देह नहीं हो सकता। जब परमात्माके छपदेश करनेवाओं से सुनेंगे पश्चात् उसका अनुवाद करना भी सरख है।। ४।।

इससे जेनोंके प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे ईश्वरका खण्डन करना आदि व्यवहार अनुचित है ॥

. 되커---

अनादेरागमस्यार्थी न च सर्वज्ञ आदिमान् । कृत्रिमेण त्वसत्येन स कथं प्रतिपाद्यते ॥१॥ अथतद्भचनेनैव सर्वज्ञोऽन्यैः प्रदीयते । प्रकरुपेत कथं सिद्धिरन्योऽन्याश्रययोस्तयोः ॥२॥ सर्वज्ञोक्ततया वाक्यं सत्यं तेन तदस्तिता । कथं तदुभयं सिध्येत् सिद्धम्लान्तरादृते ॥३॥

बीचमें सर्वज्ञ हुआ अनादि शास्त्रका अर्थ नहीं हो सकता क्योंकि किये हुए असत्य बचनसे उसका प्रतिपादन किस प्रकारसे हो सके १ ॥ १॥

और जो परमेश्वर ही के वचनते परमेश्वर सिद्ध होता है तो अनादि ईश्वरसे अनादि शास्त्रकी सिद्धि, अनादि शास्त्रकी सिद्धि, अन्योऽन्याश्रय दोष आता है ॥ २ ॥

क्योंकि सर्वज्ञके कथनसे वह वेदवाक्य सत्य और उसी वेदवच-नसे ईश्वरकी सिद्धि करते हो यह कैसे सिद्ध हो सकता है १ उस समुक्लास आस्तिक नास्तिक संवाद । १५६३ शास और परमेश्वरकी सिद्धिके लिये तीसरा कोई प्रमाण चाहिये जो ऐसा मानोगे तो अनवस्था दोप आवेगा ॥ ३॥

उत्तर—हम लोग परमेश्वर और परमेश्वरके गुण, कर्म स्वभा-वको अनादि मानते हैं. अनादि नित्य पदार्थों में अन्योऽन्याश्रय दोष नहीं आ सकता जैसे क.स्यंसे कारणका ज्ञान और कारणसे कार्य्यका बोध होता है, कार्य्यमें कारणका स्वभाव और कारणमें कार्य्यका स्वभाव नित्य है वैसे परमेश्वर और परमेश्वरके अनन्त विद्यादि गुण नित्य होनेसे ईश्वरप्रणीत वेदमें अनवस्था दोष नहीं आता ॥१। २।३॥

और तुम तीर्थंकरोंको परमेश्वर मानते हो यह कभी नहीं घट सकता क्योंकि विना माना पिताके उनका शरीर ही नहीं होता तो वे तपश्चर्याज्ञान और मुक्तिको कैसे पा सकते हैं वैसे ही संयोगका आदि अवश्य होता है क्योंकि विना वियोगके संयोग हो ही नहीं सकता इसिख्य अनादि सृष्टिकर्ता परमात्माको मानो। देखो। चाहे कितना ही कोई सिद्ध हो तो भी शरीर आदिकी रचनाको पूर्णतासे नहीं जान सकता, जब सिद्ध जीव सुष्टित दशामें जाता है तब उसको कुछ भी भान नहीं रहता, जब जीव दुः बको प्राप्त होता है तब उसको ज्ञान भी न्यून हो जाता है, ऐसे परिच्छित्र सःमर्थ्यवाले एक देशमें रहनेवाले को ईश्वर मानना विना आनि खुद्धियुक्त जैनियोंसे अन्य कोई भी नहीं मान सकता। जो तुम कहो कि वे तीर्थंकर अपने माता पिनाशोंसे हुए तो वे कितसे और उनके माता पिता कितसे १ फिर उनके भी माता पिता कितसे उदस्का हुए १ इत्यादि अनयस्था आंगी।

#### आस्तिक और नास्तिक संवाद॥

इसके आगे प्रकरणरत्ना करके दूसरे भाग आस्तिक नास्तिकके संवादके प्रश्नोत्तर यहां लिखते हैं जिसको बड़े २ जैनियोंने अपनी सम्मतिके साथ माना और मुम्बईमें छपवाया है।

नास्तिक—ईश्वरकी इच्छासे कुछ नहीं होता जो कुछ होता है वह

आस्तिक—जो सव कमंसे होता है तो कमं किससे होता है १ जो कहो कि जीव आदिसे होता है तो जिन श्रोत्रादि साधनोंसे जीव कमं करता है वे किनसे हुए १ जो कहो कि अनादि काल और स्वभावसे होते हैं तो अनादिका छूटना असम्भव होकर तुम्हारे मतमें मुक्तिका अभाव होगा। जो कहो कि प्रागमाववत् अनादि सान्त हैं तो विना यक्षके सबके कमं निवृत्त हो जायेंगे। यदि ईश्वर फलप्रदाता न हो तो पापके फल इंखको जांव अपनी इच्छासे कभी नहीं भोगेगा जैसे चोर आदि चोरीका फल दण्ड अपनी इच्छासे नहीं भोगते किन्तु राज्यव्य-वस्थासे भोगते हैं वैसे ही परमेश्वरके मुगानेसे जीव पाप और पुण्यके फलोंको भोगते हैं अन्यथा कमंसङ्कर हो जायेंगे अन्यके कमं अन्यको भोगने पहेंगे।

नास्तिक—ईश्वर अक्रिय है क्योंकि जो कर्म करता होता तो कर्मका फल भी भोगना पड़ता इसल्लिये जैसे हम केवली प्राप्त मुक्तोंको अक्रिय मानते हैं वैसे तुम भी मानो ।

आस्तिक—ंश्वर अक्रिय नहीं किन्तु सिक्रय है जब चेतन है तो कर्ता क्यों नहीं ? और जो कर्ता है तो वह क्रियासे प्रथक् कभी नहीं हो सकता जैसा तुम क्रित्रम बनावटके ईश्वर तीर्थंकरको जीवसे बने हुए मानते हो इस प्रकारके ईश्वरको कोई भी विद्वान नहीं मान सकता क्योंकि जो निमित्तसे ईश्वर बने तो अनित्य और पराधीन होजाय क्योंकि ईश्वर बननेके प्रथम जीव था पश्चात् किसी निमित्तसे ईश्वर बना तो फिर भी जीव होजायगा अपने जीवत्व स्वभावको कभी नहीं छोड़ सकता क्योंकि अनन्तकालसे जीव है और अनन्तकाल तक रहेगा इसलिय इस अनादि स्वतः सिद्ध ईश्वरको मानना योग्य है। देखों। जैसे वर्तमान समयमें जीव पाप पुण्य करता, सुख दुःख भोगता है वैसे ईश्वर कभी नहीं होता। जो ईश्वर क्रियावान न होता तो इस जगन्तको कैसे बना सकता? जो कमीको प्रागभाववत् अनादि झान्त मानते हो तो कम समवाय सम्बन्धसे नहीं रहेगा जो समबाय

#### समुह्रास] अास्तिक नास्तिक संवाद। ५६५

सम्बन्धसे नहीं वह संयोगज होके अनित्य होता है, जो मुक्तिमें क्रिया ही न मानते हो तो वे मुक्त जीव झानवालें होते हैं वा नहीं ? जो कही होते हैं तो अन्त क्रिया वाले हुए, क्या मुक्तिमें पाषाणवत् जड़ होजाते, एक ठिकाने पड़े रहते और कुछ भी चेष्टा नहीं करते तो मुक्ति क्या हुई किन्तु अन्धकार ओर बन्धनमें पड़गये।

नास्तिक—ईश्वर व्यापक नहीं है जो व्यापक होता तो सब वस्तु चेतन क्यों नहीं होतीं शिओर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदिकी उत्तम, मध्यम, निक्कष्ट अवस्था क्यों हुई। क्योंकि सबमें ईश्वर एकसा ज्याप्त है तो छोटाई बडाई न होनी चाहिये।

आस्तिक—व्याप्य और व्यापक एक नहीं होते किन्तु व्याप्य एकदेशी और व्यापक संवदेशी होता है जैसे आकाश सबमें व्यापक है और भूगोल और घटपटादि सब व्याप्य एकदेशी हैं, जैसे पृथिवी आकाश एक नहीं वैसे ईश्वर और जगत् एक नहीं, जैसे सब घटपटादिमें आकाश व्यापक है और घटपटादि आकाश नहीं वैसे परमेश्वर चेतन सबमें है और सब चेतन नहीं होता, जैसे विद्वान् अविद्वान् और धर्मात्मा अधर्मात्मा बराबर नहीं होते विद्यादि सद्गुण और सत्यभाषणादि कमें सुशीलतादि स्वभाव के न्यूनाविक होनेसे ब्राह्मण, श्वतिय, वैश्य, शूद्र और अन्त्य ज बड़े छोटे माने जाते हैं वर्णोंकी व्याख्या कैसी "चतुर्थसमुद्धास" में लिख आये हैं बहां देखले।

नास्तिक—जो ईश्वरकी रचनासे सृष्टि होती तो माता पितादिका क्या काम १

आस्तिक—ऐश्वरी सृष्टिका ईश्वर कर्ता है, जैवी सृष्टिका नहीं, जो जीवोंके कर्तव्य कर्म हैं उनको ईश्वर नहीं करता किन्तु जीव ही करता है जैसे वृक्ष, फल, ओषि, अन्नादि ईश्वरने उत्पन्न किया है उसको लेकर मनुष्य न पीसे, न कूटें, न रोटी आदि पदार्थ बनावें और न खावें तो क्या ईश्वर उस ह बदले इन कार्मोको कभी करेगा १ और जो न करें तो जीवका जीवन भी न होसके इसल्पि आदिस्र्ष्टिमें जीवके शरीरों और सांचेको बनाना इंश्वराधीन पश्चात् उनसे पुत्रादिकी उत्पत्ति करना जीवका कर्त्तव्य काम है।

नास्तिक—जब परमात्मा शाश्वन, अनादि, चिदानन्द ज्ञानस्वरूष् है तो जगन्के प्रपञ्च और दुःवमें क्यों पड़ा १ आनन्द छोड़ दुःखका वहण ऐसा काम कोई साधारण मनुष्य भी नहीं करता ईश्वरने क्यों किया।

आस्तिक – परमातमा किसी प्रपच्च और दुःखमें नहीं गिरता न अपने आनन्दको छोड़ता है क्योंकि प्रपच्च और दुःखमें गिरना जो एकदेशी हो उसका हो सकता है स्विदेशीका नहीं। जो अनादि, चिदा-नन्द, ज्ञानस्वरूप परमातमा जगन्को न बनावे तो अन्य कौन बना सके १ जगन् बनानेका जीवमें सामर्थ्य नहीं और जड़में स्वयं बननेका भी सामर्थ्य नहीं इससे यह सिद्ध हुआ कि परमातमा ही जगन्को बनाता और सहा आनन्दमें रहता है, जैसे परमातमा परमाणुओंसे सृष्टि करता है वैसं माता पितारूप निमित्तकारणसे भी उत्पत्तिका प्रबन्ध नियम उसीने किया है।

नास्तिक—ईश्वर मुक्तिरूप सुखको छोड़ जगत्**की सृष्टिकरण** घारण और प्रलय करनेके वखेड़ेमें क्यों पड़ा १

आस्तिक—ईश्वर सदा मुक्त होनेसे, तुम्हारे साधनोंसे सिद्ध हुए तीर्थंकरोंके समान एकदेशमें रहनेहारे बन्धपूर्वक मुक्तिसे युक्त, सनातन परमात्मा नहीं है जो अनन्तस्वरूप गुण कम स्वभावयुक्त परमात्मा है वह इस किंचिन्मात्र जगत्को बनाता धरता और प्रलय करता हुआ भी बन्धमें नहीं पड़ता क्योंकि बन्ध और मोक्ष सापेक्षतासे हैं, जैसे मुक्तिकी अपेक्षासे बन्ध और बन्धकी अपेक्षासे मुक्ति होती है, जो कभी बद्ध नहीं था वह मुक्त क्योंकर कहा जा सकता ह ? ओर जो एकदेशी जीव हैं वेही बद्ध और मुक्त सदा हुआ करते हैं, अनन्त, सर्वदेशी, सर्व व्यापक, ईश्वर बन्धन वा नैमितिक मुक्ति चक्रमें, जैसे कि तुम्हारे तीर्थं-कर ह, कभी नहीं पड़ता, इसल्यि वह परमात्मा सदैव मुक्त कहाता है

## समुल्लास] आस्तिक नास्तिक संवाद। ५६७

नास्तिक—जीव कर्मीके फठ ऐसे ही भोग सकते हैं जैसे भाग पीनेके मदको स्वयमेव भोगता है इसमें ईश्वरका काम नहीं।

आस्तिक—जैसे निना राज के डाकू लम्पर चोरादि दुष्ट मनुष्य स्वयं फांसी वा कारागृहमें नहीं जाते न वे जाना च हते हैं किन्तु राज्यकी न्यायव्यवस्थानुसार बलात्कारसे प इड़ा कर यथोचित राजा दण्ड देना है इसी प्रकार जीवको भी ईश्वर अपनी न्यायव्यवस्थासे स्व २ कर्मानुसार यथायोग्य दण्ड देना है क्यों कि कोई भी जीव अपने दुष्ट कमोंके पल भोगना नहीं चाहता इसिलये अवश्य परम तमा न्यायाधीश होना चाहिये।

नास्तिक—जगत्में एक ईश्वर नहीं किन्तु जितने मुक्त जीव हैं वे सब ईश्वर हैं।

आस्तिक—यह कथन सर्वथा व्यर्थ है क्योंकि जो प्रथम बद्ध होकर मुक्त हो तो पुनः बन्धमें अवश्य पड़े क्योंकि वे स्वाभाविक सदैव मुक्त नहीं जैसे तुम्हारे चौबीस तीर्थंकर पहिले बद्ध थे पुनः मुक्त हुए फिर भी बन्धमें अवश्य गिरेंगे और जब बहुतसे ईश्वर हैं तो जैसे जीव अनेक होनेसे लड़ते, भिड़ते, फिरते हैं वैसे ईश्वर भी लड़ा भिड़ा करेंगे।

नास्तिक—हे मूढ़, जगत्का कर्ता कोई नहीं किन्तु जगत् स्वयं-सिद्ध है।

आस्तिक—यह जैनियोंकी कितनी बड़ी भूछ है भछा विना कर्ता के कोई कर्म, कर्मके विना कोई कार्य्य जगतमें होता दीखता है! यह ऐसी बात है कि जैसे गेहूंके खेतमें स्वयंसिद्ध पिसान, रोटी बनके जैनियोंके पेटमें चछी जाती हो! कपास, सूत, कपड़ा, अङ्करखा, दुपट्टा, धोती, पगड़ी आदि बनके कभी नहीं आते! जब ऐसा नहीं तो ईश्वर कर्ताके विना यह विविध जगत् और नाना प्रकारकी रचना विशेष कैसे बन सकती? जो हठ उर्मसे स्व असिद्ध जगत्को मनो तो स्वयंसिद्ध उपरोक्त विकारिकों को कर्ताके विना प्रदास कर दिखलाओ

जब ऐसा सिद्ध नहीं कर सकते पुनः तुम्हारे प्रमाणशून्य कथनको कोन बुद्धिमान मान सकता है ?

नास्तिक – ईश्वर विरक्त है वा मोहित १ जो विरक्त है तो जग-त्के प्रपञ्चमें क्यों पड़ा १ जो मोहित है तो जगत्के बनानेको समर्थ नहीं हो सकेगा।

आस्तिक — परमेश्वरमें वैराग्य वा मोह कभी नहीं घट सकता, क्योंकि जो सर्वव्यापक है वह किसको छोड़े और किसको प्रहण करें ईश्वरसे उत्तम वा उसको अप्राप्त कोई परार्थ नहीं है इसिछिये किसीमें मोह भी नहीं होता वैराग्य और मोहका होना जीवमें घटता है ईश्वरमें नहीं।

नास्तिक—जो ईश्वरको जगत्का कर्ता और जीवोंके कर्मोंके फलोंका दाता मानोगे तो ईश्वर प्रपंची होकर दुःखी हो जायगा।

आस्तिक—भला अनेकविध कर्मीका कर्ता और प्राणियोंको फलोंका दाता धार्मिक न्यायायोश विद्वान् कर्मीमें नहीं फंसता न प्रपंची होता है तो परमेश्वर अनन्त सामर्थ्यवाला प्रपंची और दुःखी क्योंकर होगा ? हां तुम अपने और अपने तीर्थंकरोंके समान परमेश्वरको भी अपने अज्ञानसे समम्तते हो सो तुम्हारी अविद्याकी लीला है जो अविद्यादि दोपोंसे छूटना चाहो तो वेदादि सत्य शास्त्रोंका आश्रय लेओ क्यों भ्रमों पड़े २ ठोंकरें खाते हो ॥

अव जैन लोग जगन्को जैसा मानते हैं वैसा इनके सूत्रोंके अनुसार दिखलते और संक्षेपतः मूलार्थक लिये पश्चात् सत्य सूठकी समीक्षा करके दिखलाते हैं:—

मूल—सामिअणाइ अणन्ते च नूगइ संसार घोरकान्तरे। मोहाइ कम्मगुरु ठिइ विवाग वसनुभमइजीव रो॥ प्रकरणरहाकर॥ भाग दूसरा २। वन्ठीशतक ६०। सूत्र २॥

## समुक्लास] आस्तिक नास्तिक संवाद। ४६६

यह रत्नसार भाग नामक प्रनथके सम्यक्त्वप्रकाश प्रकरणमें गौतम और महावीरका संवाद है।।

इसका संक्षेपसे उपयोगी यह अर्थ है कि यह संसार अनादि अनन्त है न कभी इसकी उत्पत्ति हुई न कभी विनाश होता है अर्थात् किसीका बनाया जगत् नहीं सो ही आस्तिक नास्तिकके संवादमें, हे मूढ़। जगत्का कर्ता कोई नहीं न कभी बना और न कभी नाश होता।

समीक्षक—जो संयोगसे उत्पन्न होता है वह अनादि और अनन्त कभी नहीं हो सकता। और उत्पत्ति तथा विनाश हए विना कर्म नहीं रहता जगतुमें जितने पदार्थ उत्पन्न होते हैं वे सब संयोगज उत्पत्ति विनाशवाले देखे जाते हैं पुनः जगत् उत्पन्न और विनाशवाला क्यों नहीं ? इसल्पिये तम्हारे तीर्थंकरोंको सम्यक बोध नहीं था जो उनको सम्यक् ज्ञान होता तो ऐसी असम्भव बातें क्यों लिखने १ जैसे तुम्हारे गुरु हैं वैसे तुम शिष्य भी हो तुम्हारी बातें सुननेवालेको पदार्थज्ञान कभी नहीं हो सकता भला जो प्रत्यक्ष संयुक्त पदार्थ दीखता है उसकी उत्पत्ति और विनाश क्योंकर नहीं मानते अर्थात् इनके आचार्य वा ीनियोंको भूगोल खगोल विद्या भी नहीं आती थीं और न अब वह विद्या इनमें है नहीं तो निम्नलिखित ऐसी असम्भव बार्ने क्योंकर मानते और कहते १ देखो। इस सृष्टिनं पृथिवीकाय अर्थात् पृथिवी भी जीवका शरीर है और जलकायादि जीव भी मानते हैं इसको कोई भी नहीं मान सकता। और भी देखो । इनकी मिथ्या बातें जिन तीथै-करोंको जैन लोग सम्यकज्ञानी और परमेश्वर मानते हैं उनकी मिथ्या बार्तोके ये नमूने हैं। "रत्नसारभाग" (इस प्रन्थको जैन लोग मानते हैं और यह ईसवी सन् १८७६ अप्रेल ता० २८ में बनारस जैनप्रभा-कर प्रेसमें नानकचन्द जतीने छपवाकर प्रसिद्ध किया है ) के १४४ पृष्ठमें कालकी इस प्रकार व्याख्या की है अर्थात् समयका नाम सूक्ष्म-काल है। और असंख्यात समयोंको "आवित्र" कहते हैं। एक क्रोड सर्घठ छाख सत्तर सहस्र दोसो सोलह आवलियोंका एक "मुहूर्त" होता

है वैसे तीस मुर्जीका एक "दिवस" वैसे पन्द्रह दिवसोंका एक "पक्ष" वैसे दो पक्षोंका एक "मास" वैसे बारह महीनोंका एक "वर्ष" होता है वैसे सत्तर ठाख कोड छण्यन सहस्रकोड वर्षीका एक "पूर्व" होता है, ऐसे असंख्यान पूर्वोंका एक "पल्यो पम" काल कहते हैं। असंख्यात इसको कहते हैं कि एक चार कोशका चौरस और उतना ही गहरा कुआ खोद कर उसको जुगुलिये मनुष्यके शरीगके निम्न-लिखित बालोंके दुकडोंसे भरना अर्थात् वर्त्तमान मनुष्यकेबालसे जुगु-लिये मनुष्यका बाल चार हजार छ नवें भाग सुक्ष्म होता है, जब जुगु-लिये मनुष्योंके चार सङ्घ्र छ नवे बालों को इकट्ठा करें तो इस समयके मनुष्योंका एक बाल होता है ऐसे जुगुलिये मनुष्यके एक बालके एक अंगुल भागके सत बार आठ २ दुकड़े करतेसे २०६७१५२ अर्थात् बीस लाख सानवें सहस्र एकसी वावन दुग्रड़े होते हैं, ऐसे दुकड़ोंसे पूर्वीक कुआको भरना उसमेंसे सी बर्वके अन्तरे एक २ दुकड़ः निका-छना जब सब दुकड़े निकल जावें और कुआ खाली हो जाय तो भी वह संख्यात काल है और जब उनमेंसे एक २ टुकड़ेके असंख्यात दकडे करके उन दकडोंसे उसी कूपको ऐसा ठसके भरना कि उसके ऊपरसे चक्रवर्ती राजाकी सेना चली जाय तो भी न दबे उन दुकड़ोंमें से सौ वर्षके अन्तरे एक दुकडा निकाले जब वह कुमा रीता हो जाय तब उसमें असंख्यात पूर्व पड़े ता एक २ पल्योपम काल होता है। वह पल्योपम काल कुआके हप्टान्नसे जानना, जब दश क्रोडान क्रोड पल्यो-पम काल बीतें नव एक "तःगरी रम" काल होना है जब दश कोड़ान् कोड सागरीयम काल बीत जाय तब एक "उत्सर्पणी" काल होता है और जब एक उत्सर्पणी और एक अवसर्पणी काल बीत जाय तब एक "कालचक" होता है, जब अन त कालचक बीत जावें तब एक पुद्रगल ररावृत्ता" होता है अब अनन्तक ल किसको कहते हैं जो सिद्धान्त पुस्तकों ने नव दशन्तों से कालकी संख्या की है, उससे उपरान्त "अनन्तकाल" कहाता है, वैसे अनन्त पुर्गछपरावृत्त काल जीवको

## समुह्रास] आस्तिक नास्तिक संवाद। ५७१

भ्रमते हुए बीते हैं इत्यादि ।

सुनो भाई गणिनविद्यावाले लोगों। जैनियोंके प्रन्थोंकी कालसंख्या कर सकोगे वा नहीं ? और तुम इसको सच भी मान सकोगे वा नहीं ? देखो । इन तीर्थं करोंने ऐसी गणिनविद्या पढी थी ऐसे २ तो इनके मतमें गुरु और शिष्य है जिनको अविद्याका कुछ पारावार नहीं । और भी इनका अन्धेर सुनो रत्नसार भाग पृ० १३३ से छेके जो कुछ बूटाबाठे अर्थात् जैनियोंके सिद्धान्त प्रनथ जो कि उनके तीर्थंकर अर्थान् ऋषभदेवसे लेके महाबीर पर्ध्यन्त चौवीस हुए हैं उनके वचनोंका सारसंप्रह है ऐसा रत्नसारभाग पु०१४८ में लिखा है कि पृथिवीकायंक जीव मट्टी पाषाणादि पृथिवीके सेद जानना, **उनमें रहने वा**ले जीवों के शरीरका परिमाण एक अंगुलका असंख्या-तवां समम्हना अर्थान् अतीव सुक्ष्म होते हैं उनका आयुमान अर्थात् वे अधिकसे अधिक २२ सइस्र वर्ष पर्यन्त जीते हैं। (रत्न० पूर्० १४६) वनस्पतिके एक शरीरमें अनन्त जीव होते हैं वे साधारण वनस्पति कहाती हैं जो कि कन्दमूलप्रमुख और अनन्तकायप्रमुख होते हैं उनको साधारण वनस्पतिके जीव कड्ने चाहियें उनका आयुमान अनन्तमुहूर्त होता है परन्तु यहां पूर्वीक्त इनका मुहूर्त्त समम्प्रना चाडिये और एक शरीरमें जो एकेन्द्रिय अर्थात् स्पर्श इन्द्रिय इनमें है और उसतें एक जीव रहता है उसको प्रत्येक वनस्पति कहते हैं उसका देहमान एक सहस्र योजन अर्थात् पुराणियोंका योजन ४ कोशका परन्तु जैनि-योंका योजन १०००० (दश सहस्र) कोशोंका होता है ऐसे चार सहस्र कोशका शरीर होता है उसका आयुमान अधिकसे अधिक दश सहस्र वर्षका होता है अब दो इन्द्रियवाठे जीव अर्थात् एक उनका शरीर भीर एक मुख जो शंख कोडी और जूं आदि होते हैं उनका देहमान अधिकसे अधिक अड़तालीस कोशका स्थूल शरीर होता है। और उनका अधुमान अधिकसे अधिक बारई वर्ष हा होता है, यहां बहुत ही भूल गया क्यों कि इतते बड़े शरीरका आयु अधिक लिखता और

अड़नाळीस कोशकी स्थूज जूं जैनियोंके शरीरमें पडती होगी और उन्होंने देखी भी होगी और का भाग्य ऐसा कहां जो इतनी बड़ी जूको देखें !!! ( रत्नसार भाग ए० १५० ) और देखो ! इनका अन्धाधुन्ध बीछू, बगाई, ऋस री और मक्खी एक योजनके शरीरवाले होते हैं इनका आयुमान अधिकसे अधिक छः महीनेका है । देखो भाई । चार २ कोशका बीछू अन्य किसी । देखा न होगा जो आठ मीछतकका शरी-रवाला बोळू और मक्खी भी जैनियों के मतमें होती हैं ऐसे बीळ और मक्खी उन्होंके घरमें रहते होंगे और उन्होंने देखे होंगे अन्य किसीने संसारमें नहीं देखे होंगे कभी ऐसे बीक़ िसी जैनीको कार्टे तो उसका क्या होता होगा। जलचर मच्छी आदिके शरीरका मान एक सङ्ख योजन अर्थात १०००० कोशके योजनके हिसःबसे १०००००० (एक क्रोड़) कोशका शरी होता है और एक क्रोड पूर्व वर्षाका इनका आयु होता है। वैसा स्थूछ जलचर सिवाय जैनियों के अन्य किसीने न देखा होगा। और चतुष्पाद हाथी आदिका देहमान दो कोशसे नत्र कोश पर्यन्त और आयुमान चौरासी सहस्र वर्षीका इत्यादि, ऐसे बड़े २ शरीरवाले जीव भी जैनी लोगोंने देखे होंगे और मानते हैं और कोई बुद्धिमान नहीं मान सकता। (रत्नसारमा० पूर्व १५१) जलचर गर्भज जीवोंका देहमान उत्कृष्ट एक सहस्र योजन अर्थान १०००००० ( एक क्रोड़ ) कोशोंका और आयमान एक क्रोड पूर्व वर्षोंका होता है इतने बड़े शरीर और आयुवाले जीवोंको भी इन्हीं के आचार्योंने खप्न । देखे होंगे। क्या यह महा मूठ बात नहीं कि जिसका कदापि सम्भव न हो सके।

अब सुनिये भूमिके परिमाणको ! (रत्नसार भा॰ पृ० १५२) इस तिरछे छोकमें असंख्यात द्वीप और असंख्यात समुद्र हैं इन असंख्यातका प्रमाण अर्थात् जो अट्टाई सागरोपम काछों जितना समय हो उतने द्वीप तथा समुद्र जानना अब इस पृथिवीमें "जम्बूद्वीप" प्रथम सब द्वीपोंके बीचमें है इसका प्रमाण एक छाख योजन अर्थात् एक

#### सम्रह्णास] रत्नसारमें भूमिका परिमाण। ५७३

करव कोशका है और इसके चारों ओर छवण समुद्र है उसका प्रमाण हो छाख योजन कोशका है अर्थात दो अरब कोषका । इस जम्बूद्धी-पके चारों ओर जो "धातकीखण्ड" नाम द्वीप है उसका चार छाख योजन अर्थात् चार अरब कोशका प्रमाण है और उसके पीछे "काखो-इधि" समुद्र है उसका आठ छाख अर्थात् आठ अरब कोशका प्रमाण है उसके पीछे "पुष्करावर्त्त" द्वीप है उसका प्रमाण सोछह कोशका है उस द्वीपके भीतरकी कोरें हैं उस द्वीपके आधेमें मनुष्य वसते हैं और उसके उपरांत असंख्यात द्वीप समुद्र हैं उनमें तिर्थण् योनिके जीव रहते हैं। (रत्नासार भा॰ पृ॰ १५३) जम्बूद्वीपमें एक हिमवन्त, एक ऐरण्डवन्त, एक हरिवर्ष, एक रम्यक, एक देवकुरु, एक उत्तरकुरु ये छः क्षेत्र हैं।।

समीक्षक सुनो भाई ! भूगोलिन्दाके जाननेवाले लोगो ! भूगो-छके परिमाण करनेमें तुम भुछे वा जन ! जो जैन भूल गये हों तो तुम उनको समम्सओ और जो तुम भूछे हो तो उनसे समम्स लेओ। थोडासा विचार कर देखो तो यही निश्चय होता है कि जैनियोंके **धाचार्य और शिष्यों**ने भूगोल खगोउ और गणित विद्या कुछ भी नहीं पढ़ी थी पढ़े होने तो महा असम्भव गपोड़ा क्यों मारते ? भला ऐसे अविद्वान् पुरुष जगन्को अकर्तृक और ईश्वरको न माने इसमें क्या आश्चर्य है १ इसलिये जैनी लोग अपने पुस्तकोंको कीन्हीं विद्वान अन्य मतस्थोंको नहीं देते क्योंकि जिन हो ये छोग प्रामाणिक तीर्थक-रोंके बनाये हुए सिद्धान्त प्रन्थ मानते हैं उनमें इसी प्रकारकी अविद्या-युक्त बार्ते भरी पड़ी हैं इसिछिये नहीं देखने देते जो देवें तो पोछ खुछ जाय इनके विना जो कोई मनुष्य कुछ भी बुद्धि रखता होगा वह कदापि इस गपोडाध्यायको सत्य नहीं मान सकेगा, यह सब प्रपञ्च जैनियोंने जगतको अनादि माननेके लिये खड़ा किया है परन्तु यह निरा भूठ है हां ! जगत्का धारण अनादि है क्योंकि वह परमाणु भादि तत्त्वस्वरूप अकर्तृक है परन्तु उनमें नियमपूर्वक बनने वा बिगड़-

नेका सामर्थ्य कुछ भी नहीं क्योंकि जब एक परमाणु द्रव्य किसीका नाम है और स्वभावसे प्रथक २ रूप और जड हैं वे अपने आप यथा-योग्य नहीं बन सकते इसिंख्ये इनका बनानेवाला चेतन अवश्य है और बह बनानेवाला ज्ञानस्वरूप है। देखो। प्रथिवी सर्यादि सब लोकोंको नियममें रखना अनंत अनादि चेतन परमात्माका काम है, जिसमें संयोग रचना विशेष दीखता है वह स्थूल जगत् अनादि कभी नहीं हो सकता, जो कार्य जगतको नित्य मानोगे तो उसका कारण कोई न होगा किन्त वही कार्यकारणरूप हो जायगा जो ऐसा कहोगे तो अपना कार्य और कारण आपही होनेसे अन्योऽन्याश्रय और आत्माश्रय दोष धावेगा, जैसे अपने कन्धे पर आप चटना और अपना पिता पुत्र भाप नहीं हो सकता, इसलिये जगतका कर्त्ता अवश्य ही मानना है।

प्रश्न-जो ईश्वरको जगतका कर्त्ता मानते हो तो ईश्वरका कर्त्ता कीन है १

उत्तर-कर्ताका कर्ता और कःरगका कारण कोई भी नहीं हो सकता क्योंकि प्रथम कर्ता और कारणके होनेसे ही कार्य्य होता है जिसमें संयोग वियोग नहीं होता, जो प्रथम सयोग वियोगका कारण है उसका कर्ता वा कारण किसी प्रकार नहीं हो सकता इसकी विशेष ब्याख्या आठवें समझासमें सब्दिकी व्याख्यामें लिखी है देख लेना। इन जैन छोगोंको स्थ्रल बातका भी यथावत ज्ञान नहीं तो परम सुक्ष्म छिष्टिविद्याका वोध कैसे हो सकता है ? इसिछिये जो जैनी छोग म्बब्दिको अनादि अनन्त मानते और द्रव्यपर्यायोंको भी अनादि अनन्त मानते हैं और प्रतिगुण प्रतिदेशमें पर्यायों और प्रतिवस्तमें भी धनन्त पर्यायको मानते हैं यह प्रकरणरत्नाकरके प्रथम भागमें लिखा है यह भी बात कभी नहीं घट सकती क्योंकि जिनका अन्त अर्थात मर्यादा होती है उनके सब सम्बन्धी अन्तवाले ही होते हैं यदि अन-न्तको असंख्य करते तो भी नहीं घट सकता किन्तु जीवापेक्षामें यह बात घट सकती है परमेश्वरके सामने नहीं क्योंकि एक र द्वयमें

## समुक्लास] जैनोंमें जीवाजीव विचार। ५७५

अपने २ एक २ कार्य्यकारण सामर्थ्यको अविभाग पर्यायोंसे अनन्त सामर्थ्य मानना केवल अविद्याकी बात है जब एक परमाणु द्रव्यकी सीमा है तो उसमें अनन्त विभागरूप पर्याय कैसे रह सकते हैं ? ऐते ही एक २ द्रव्यमें अनन्त गुण और एक गुण प्रदेशमें अविभागरूप अनन्त पर्यायोंको भी अनन्त मानना केवल बालकपनकी बात है क्योंकि जिसके अधिकरणका अन्त हैं तो उसमें रहनेवालोंका अन्त क्यों नहीं ? ऐसा ही लम्बी चौरी मिथ्या बातें लिखी हैं. अब जीव और अजीव इन दो पदार्थोंके. विषयमें जैनियोंका निश्चय ऐसा है: —

### चेतनालक्षणो जीवः स्यादजीवस्तदन्यकः। सत्कर्मपुद्गलाः पुण्यं पापं तस्य विपर्ययः॥

यह जिनदत्तसूरिका बचन है। और यही प्रकरणरत्नाकर भाग पहि में नयचक्रसारमें भी लिखा है कि चेतनालक्षण जीव और चेतना-रहित अजीव अर्थात् जड़ है।। सन्कर्मरूप पुद्गल पुण्य और पापक-मरूप पुद्गल पाप कहाते हैं।

समीक्षक—जीव और जड़का छक्षण तो ठीक है परन्तु जो जड़ह्वप पुद्गल हैं वे पापपुण्ययुक्त कभी नहीं हो सकते क्योंकि पाप पुण्य
करनेका स्वभाव चेतनमं होता हैं देखो । ये जितने जड़ पदांध हैं वे
सव पाप पुण्यसे रहित हैं जो जीवोंको अनादि मानते हैं यह तो ठीक
है परन्तु उसी अल्प और अल्पज्ञ जीवको मुक्ति दशामें सर्वज्ञ मानना
भूठ है क्योंकि जो अल्प और अल्पज्ञ है उसका सामर्थ्य भी सर्वदा
समीप रहेगा। जैनी छोग जगन्, जीव जीवके कर्म और बन्ध
अनादि मानते हैं यहां भी जैनियोंके तीर्थकर भूल गये हैं क्योंकि
संयुक्त जगन्का कार्य्यकारण, प्रवाहसे कर्म और जीवके कर्म, बन्ध
भी अनादि नहीं हो सकते जब ऐसा मानते हो तो कर्म और बन्धका
छूटना क्यों मानते हो १ क्योंकि जो अनादि पदार्ध है वह कभी नहीं
छूट सकता। जो अनादिका भी नाश मानो तो तुम्हारे सब अनादि

पदार्थोंके नाशका प्रसंग होगा और जब अनादिको नित्य मानोगे तो कम और बन्ध भी नित्य होगा। और जब सब कमोंके नाशका प्रसंग होगा और जब अनादिको नित्य मानोगे तो कम और बन्ध भी नित्य होगा और जब सब कमोंके छूटनेसे मुक्ति मानते हो तो सब कमोंका छूटनाल्प मुक्तिका निमित्त हुआ तब नैमित्तिकी मुक्ति होगी तो सदा नहीं रह सकेगो और कम कर्ताका नित्य सम्बन्ध होनेसे कम भी कभी न छूटेंगे पुनः जब तुमने अपनी मुक्ति और तीर्थंकरोंकी मुक्ति नित्य मानो है सो नहीं बन सकेगी।

प्रश्न— जसे धान्यका छिछका उतारने वा अग्निके संयोग होनेसे बह बीज पुनः नहीं उगता इसी प्रकार मुक्तिमें गया हुआ जीव पुनः जन्ममरणरूप संसारमें नहीं आता।

उत्तर—जीव और कर्मका सम्बन्ध छिटके और बीजके समान नहीं है किन्तु इनका समवाय सम्बन्ध है, इससे अनादि कालसे जीव भीर उसमें कर्म और कर्नुत्वशक्तिका सम्बन्ध है, जो उसमें कर-नेकी शक्तिका भी अभाव मानोगे तो सब जीव पाषाणवत् हो जायेंगे धौर मुक्तिको भोगनेका भी सामर्थ्य नहीं रहेगा, जैसे अनादि कालका कर्मबन्धन छूटकर जीव मुक्त होता है तो तुम्हारी नित्य मुक्तिसे भी छट कर बन्धनमें पड़ेगा क्यों कि जैसे कर्मरूप मुक्तिके साधनोंसे भी छूटकर जीवका मुक्त होना मानते हो वैसे ही नित्य मुक्तसे भी छूटके बन्धनमें पड़ेगा, साधनोंसे सिद्ध हुआ पदार्थ नित्य कभी नहीं हो सकता और जो साधन सिद्धके विना मुक्ति मानोगे तो कमीके विना ही बन्ध प्राप्त हो सकेगा। जैसे वस्त्रोंमें मैल लगता और घोनेसे छूट जाता है पुनः मैल लग जाता है वैसे मिथ्यात्वादि हेतुओंसे रागद्वेषा-दिके आश्रयते जीवको कर्मरूप फल लगता है और जो सम्यक्जान द्श्न चारित्रसे निमल होता है ओर मैठ लगनेके कारणोंसे मलौंका लगना मानते हो तो मुक्त जीव संसारी और संसारी जीवका मुक होना अवश्य मानना पड़ेगा क्योंकि जैसे निमित्तोंसे मिलनता छटती है बैसे निमित्तोंसे मिलनता लग भी जायनी इसिंखने जीनको बन्ध जीर मुंकि प्रवाहरूपसे अनाहि मानो अमाहि अनन्सतासे नहीं।

बरन-जीत निर्मल कभी नहीं था किन्तु मलसहित है।

उत्तर—जो कभी निंगल नहीं था तो निर्मल भी कभी नहीं हो स्रोकेश जैसे शुद्ध बस्तों पीड़िने लगे हुए मैडको धोनेसे हुड़ा देते हैं उसके स्वाभाविक श्वेत वर्णको नहीं हुड़ा सकते मेळ फिर भी वस्त्रों स्थ्य जाता है इसी प्रकार मुक्तिमें भी स्प्रीगा।

प्रश्न-जीव पूर्वे गर्जित कर्म ही से शरीर धारण कर लेता है, क्षेत्ररका मानना व्यर्थ है।

उत्तर—जो केवल कम ही शरीर धारणमें निमित्त हो, ईश्वर कारण न हो तो बह जीन बुरा जन्म कि जहां बहुत दुःख हो उसको भारण कभी न करें किन्तु सहा अच्छे २ जन्म भारण किया करें। जो कहो कि कमें प्रतिबन्धक है तो भी जैसे चोर आपसे आके कन्नीगृ-हमें नहीं जाता और स्थयं फांसी भी नहीं खाता किन्तु राजा देला है, इसी प्रकार जीवको स्रतिर्धारण कराने और उसके कर्मानुसार फड़ हैने बाले परमेश्वरको तुम भी मानो।

्प्रका—मद् (नसा) के समान कर्म खर्य प्राप्त होता है फाउ दैनेमें

ह्सरेकी आवश्यकता नहीं।

बत्तर — जो ऐसा हो हो जैसे 'मद्दपाल करनेवाओं को मद्द कम बहुता अनम्यासीको बहुत चहुता है, वैसे नित्य बहुत पाप पुण्य करनेवाओं को न्यून और कभी २ थोड़ा २ पाप पुण्य करनेवाओं को अधिक फड़ होना चाहिये और छोटे कम वालों को अधिक फड़ होवे।

ंप्रम-जिसका जैसा स्वभाव होता है उसका वैसा ही फड हुआ

करता है।

डतर — जो स्वभावसे है तो उसका छूटना वा मिछना नहीं हो सकता हा जैसे शुद्ध वस्त्रों निमित्तोंसे मछ छगता है उसके खुड़ानेके निमित्तोंसे छूट भी जाता है ऐसा मानना ठीक है। प्रश्न—संयोगके विना कम परिणामको प्राप्त नहीं होता, जैसे ह्य और खटाईके संयोगके विना दही नहीं होता इसी प्रकार जीव और कर्मके योगसे कर्मका परिणाम होना है।

उत्तर—जिसे दही और खटाईका मिळानेवाळा तीसरा होता है वैसे ही जीवों को कमोंके फळके साथ मिळानेवाळा तीसरा ईश्वर होना चाहिये क्योंकि जड़ पदार्थ स्वयं नियमसे संयुक्त नहीं होते और जीव भी अल्पन्न होनेसे स्वयं अपने कर्मफऊको प्राप्त नहीं हो सकते, इससे यह सिद्ध हुआ कि विना ईश्वरस्था नित सुष्टिकमके क्रमफऊक्यवस्था नहीं हो सकती।

प्रश्न — जो कमसे मुक्त होता है वही ईश्वर कहाता है।
उत्तर — जब अनादि कालसे जीवके साथ कम लगे हैं तो उनसे
जीव मक्त कभी नहीं हो सकैंगे।

प्रश्न-कर्मका बन्ध सादि है।

उत्तर—जो सादि है तो कर्मका योग अनादि नहीं और संयोगकी आदिमें जीव निष्कर्म होगा और जो निष्कर्मको कर्म छग गया तो मुक्तांको भी छग जायगा और कर्म कर्तांका समयाय अर्थात् निस्य सम्बन्ध होता है यह कभी नहीं छूग्तां, इसिख्ये जन्म है वें समुझासमें छिख आये हैं वैसा ही मानना ठींक है। जीव चाहे जिसा अपना ज्ञान और सामध्य बढ़ावे तो भी उसमें परिमितज्ञान और संसीम सम्बन्ध रहेगा ईश्वरके समान कभी नहीं हो सकता। हो जितना सामध्य बढ़ावे तो भी उसमें परिमितज्ञान और संसीम सम्बन्ध रहेगा ईश्वरके समान कभी नहीं हो सकता। हो जितना सामध्य बढ़ाव उच्चे से साम अर्थ बढ़ावे तो भी उसमें परिमाण मानते हैं उनसे पृछना चाहिये कि जो ऐसा हो तो हाथीका जीव कीड़ीमें और कीड़ीका जीव हाथीमें कैसे समा सकेगा ? यह भी एक मूर्खताकी बात है क्योंकि जीव एक संक्ष्म पदार्थ है जो कि एक परमाणुमें भी रह सकता है परन्तु उसकी शक्तियां शरीरमें प्राण विजुळी और नाड़ी आदिके साथ संयुक्त हो रहती हैं उनसे सब शरीरका वर्जीमान जानता है क्येंक

समुक्लास] जैनियोंके मुक्ति और बंध। १५७६ संगसे अच्छा बोर दुरे संगसे दुरा हो जाता है। अब जैन स्नेग धर्म इस प्रकारका मानते हैं:—

### मूल-रे जीव भवतुहाई इक्कं चिय हरह जिण मयं धम्मं । इयराणं परमं तो सुहकप्ये मृहसुसि ओसि ॥ प्र० भाग २।६०।३॥

अरे जीव! एक ही जिनमत श्रीवीतरागभाषित धम संसार सम्बन्धी जनम जरामरणादि दुःखोंका हरणकर्ता है इसी प्रकार सुदेव और सुगुरु भी जैम मत वालेको जानना इतर जो वीतराग श्रृषभदे- बसे लेके महावीर पर्यम्त वीतराग देवोंते निन्न अन्य हरिहर ब्रह्मादि कुदेव हैं उनकी अपने कल्याणार्थ जो जीव पूजा करते हैं वे सब मनुष्य छगाये गये हैं। इसका यह भावाय है कि जैन मनके सुदेव सुगुरु तथा सुधमंको छोड़के अन्य कुदेव कुगुरु तथा कुधमंको सेवनेसे कुछ भी कल्याण नहीं होता।।

समीक्षक—अब विद्वानोंको विचारना चाहिये कि केसे निन्दायुक्त इनके धर्मके पुस्तक हैं!।।

## मूल-अरिहं देवो सुगुरु सुद्धं धम्मं च पंच नव-कारो । धन्नाणं कयच्छाणं निरन्तरं वसह हिययम्मि ॥ प्र०भा० २ घ० ६० सू० १॥

जो अरिक्न देवेन्द्रकृत पूजादिकनके योग्य दूसरा पदार्थ उत्ताम कोई नहीं ऐसा जो देवोंका देव शोभायमान अरिक्नत देव ज्ञान किया-बान शाखोंका उपदेश शुद्ध कवाय मलरिक्त सम्यक्त्व विनय दया-मूल श्रीजिनभावित जो धंग है बही दुर्गतिमें पड़नेवाले प्राणियोंका उद्धार करनेवाला है और अन्य हरिहरादिका धंग संसारसे, उद्धार करनेवाला नहीं और पंच अरिक्नतादिक परमेन्टी तत्सम्बन्धी उनको समस्कार ये चार पदार्थ धन्य हैं अर्थात् श्रेष्ठ हैं अर्थात् दय, हम, सम्पक्त ज्ञान, दर्शन और चारित्र यह जैनोंका धर्म है।।

समीक्षक—जब मनुष्यमात्र पर दया नहीं वह दया न क्षमा ज्ञानके बदले अज्ञान दर्शन अन्धेर और चारित्रके बदले भूखे 'मरना कौनसी अच्छी बात है १ जैन मतके धर्मकी प्रशंसाः—

### मूल—जइन कुणिस तब चरणं पढिस न गुणोसि देसि नो दाणम् । ता इत्तियं न सिक्किसिजं देवो इक अरिहन्तो ॥

प्रकर्ण० भा० २ । षष्ठी । सू० २ । ।

है मनुष्य ! जो तू तप चारित्र नहीं कर सकता, न सूत्र पढ़ सकता, न प्रकरणादिका विचार कर सकता और सुपात्रादिको दान नहीं दे सकता, तो भी जो तू देवता एक अरिहन्त ही हमारे आराध-नाके योग्य सुगुरु सुर्थम जैनमतमें अद्वा रखना सर्वोत्तम बात और उद्वारका कारण है।

समीश्रक यद्यपि द्या और क्षमा अच्छी वस्तु है तथापि पक्षपातमें फँसनेसे दया अदया और क्षमा अक्षमा होजाती है इसका प्रयोजन यह है कि किसी जीवको दुःख न देना यह बात सर्वथा संभव
नहीं हो सकती क्योंकि दुःटांको दंड देना भी द्यामें गणनीय है, जो
एक दुःटको दंड न दिया जाय तो सहस्रों मनुष्योंको दुःख प्राप्त हो
इसिलिये वह दया अदया और क्षमा अक्षमा होजाय यह तो ठीक है।
कि सब प्राणियोंके दुःखनारा और सुखकी प्राप्तिका उपाय करना दया
कहाती है। केवल जल छानके पीना, श्रुद्र जन्तुओंको बचाना हो दया
नहीं कहाती, किन्तु इस प्रकारकी दया जिनियोंके कथनमात्र ही है.
क्योंकि वैसा वर्तते नहीं। क्या मनुष्यादि दर चाहें किसी मतमें क्यों
न हो दया करके उसको अन्नपानादिसे सत्कार करना और दूसरे
मतके विद्वानोंका मान्य और सेवा करना दया नहीं है ? जो इनकी
सच्ची दया होती तो "विरेकसःर" के प्रुट २२१ में देखो। क्या लिखा

# समुक्लास] जैनग्रन्थोंमें आत्म प्रसंशा। ५८१

है "एक परमतीकी स्तुति" अर्थात् उनका गुणकीतन कभी न करना। दूसरा "उनको नमस्कार" अर्थात् वन्दना भी न करनी। तीसरा "आछापन" अर्थात् अन्य मतवाडोंके सःथ थोड़ा बोछता। चौथा "संखपन" अर्थात् अन्य मतवाडोंके सःथ थोड़ा बोछता। चौथा "संखपन" अर्थात् अनसे वार २ न बोछता। पांचवां "उनको अन्न वस्नादि दान" अर्थात् उनको खाने पीनेकी वस्तु भी न देनी। छठा "गन्धपुष्पादि दान" अन्य मतकी प्रतिमा पूजनके छिये गन्धपुष्पादि भी न देना। ये छः यतना अर्थान् इन छः प्रकारके कर्मोको जैन छोग कभी न करें।

समीक्षक-अब बुद्धिमानोंको विचारना चाहिये कि इन जैनी ह्येगोंकी अन्य मत वाले मनुष्यों पर किननी अदया, कुटिन्ड और द्वेष है। जब अन्य मतस्थ मनुष्यों पर इतनी अदया है तो फिर जैनियों को दर्याहीन कहना संभव है क्योंकि अपने घरवालों ही की सेवा करना विशेष धर्म नहीं कहाता। उनके मतके मतुष्य उनके घरके समान हैं। इसिंख्ये उनकी सेवा करते अन्य मतस्थोंकी नहीं, फिर उनको दया-वान कौन बुद्धिमान कर सकता है ? विवेक० पृष्ठ १०८ में लिखा है कि मधुराके राजाके नमुची नामक दीवानको जैनमतियोंने अपना विरोधी समम् कर मार द्वाला और आलोयणा ( प्रायश्चित ) करके गुद्ध होगये। क्या यह भी दया और क्षम:का नाशक कर्म नहीं है ? जब अन्य मनवालों पर प्राण लेने पर्यन्त बैरबुद्धि रखते हैं तो इनको द्यालुके स्थान पर हिंसक कहना ही सार्थक है। अब सम्यक्तव दर्शन।दिके स्क्ष्मण आर्हत प्रवचनसंप्रह परमागमनसारमें कथित है। सम्यक् श्रद्धान, सम्यक् दर्शन, इल और चारित्र ये चार मोक्षमांगके साधन हैं इनकी व्याख्या योगदेवने की है। जिस रूपसे जीवादि द्रव्य अवस्थित हैं उसी रूपसे जिनप्रतिपादित प्रन्थानुसार विपरीत अभि-निवेशादि रहित जो श्रद्धा अर्थात् जिनमतमें प्रीति है सो सम्यक् श्रदान और सम्यक् दर्शन हैं॥

#### रुचिर्जिनोक्ततत्त्वेषु सम्यक् अद्धानमुच्यते।

जिनोक्त तत्त्वोंमें सम्यक् श्रद्धा करनी चाहिये अर्थात् **अन्यत्र** कहीं नहीं ॥

#### यथावस्थिततत्त्वानां संक्षेपाद्विस्तरेण वा । यो बोधस्तमत्राहुः सम्यग्ज्ञानं मनीषिणः ॥

जिस प्रकारके जीवादि तत्त्व हैं उनका संक्षेप वा विस्तारसे जो बोध होता है उसीको सम्यग्ज्ञान बुद्धिमान कहते हैं ॥

सर्वथाऽनवद्ययोगानां त्यागश्चारित्रमुच्यते । कीर्त्तितं तदहिंसादिवतभेदेनपश्चधा ॥ अहिंसासुनृतास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहाः ।

सब प्रकारसे निन्दनीय अन्य मतसम्बन्धका त्याग चारित्र कहाता है और अहिंसादि मेदसे पांच प्रकारका व्रत है। एक (अहिंसा) किसी प्राणीमात्रको न मागना। दूसरा (सृत्ता) प्रिय वाणी बोलना। नीसरा (अस्तेय) चोरी न करना। चौथा (ब्रह्मचर्य) उपस्थ इन्द्रियका संयमन और पांचवां (अपरिप्रह) सब वस्तुओंका त्याग करना। इनमें बहुनसी बातें अच्छी हैं अर्थान् अहिंसा और चोरी आदि निन्दनीय कमोंका त्याग अच्छी बात है परन्तु ये सब अन्य मतकी निन्दा करने आदि दोपोंसे सब अच्छी बातें भी दोषयुक्त होगई हैं जैसे प्रथम सूत्रमें जिल्ली हैं अन्य हरिहरादिका धर्म संसारमें उद्घार करनेवाला नहीं। क्या यह लोठी निन्दा है कि जिनके प्रनथ देखनेसे ही पूर्ण विद्या और धार्मिकता पाई जाती है उसको बुरा कहना और अपने महा असंभव जैसा कि पूर्व लिख़ आये वैसी बातोंके कहनेवाले अपने तीर्थंकरोंकी स्तुति करना केवल हठकी बातें हैं मला जो जैनी छुल चारित्र न कर सके, न पढ़ सके, न दान देनेका सामर्थ्य हो तो भी जैनमत सबा है क्या इतना कहने ही से वह उत्तम होजाय १ और

समुक्कास] जैनग्रन्थोंमें आत्म प्रसंशा। (४८३

अन्य मत बाले श्रेष्ठ भी अश्रेष्ठ होजायें ? ऐसे कथन करनेवाले मतु-ध्योंको भ्रान्त और बालबुद्धिन कहा जाय तो क्या कहें ? इसमें यही विदित होता है कि इनके आचार्य खार्थी थे पूर्ण विद्वान् नहीं क्यों कि जो सबकी निन्दा न करते तो ऐसी मूठी वानोंमें कोई न फँसता न सन्क प्रयोजन सिद्ध होता। देखो यह तो सिद्ध होता है कि जैनियोंका मत डुबानेवाला और वेदमत सबका उद्घार करनेहारा हरिहरादि देव सुदेव और इनके भ्रषभदेवादि सब कुदेव दूसरे लोग कहें तो क्या वैस्मृ ही उनको बुरा न लगेगा और भी इनके आचार्य और माननेवालोंकी भूल देखलोः—

मूल—जिनवर आणा भंगं उमग्ग उम्मुतले सदे-सणउ। आणा भंगे पावंता जिणमय दु-करं धम्मम्॥ प्र०भाग २ष० ६ सू० ११॥

उन्मार्ग उत्सूत्रके लेश दिखानेसे जो जिनवर अर्थात् वीतराग् तीर्थुंकरोंकी आज्ञाका भङ्ग होता है वह दुःखका हेतु पाप है जिनेश्वरके कहें सम्यकत्वादि धर्म प्रहण करना बड़ा कठिन है इसलिये जिस प्रकार जिन आज्ञाका भङ्ग न हो वैसा करना चाहिये।।

समीक्षक—जो अपने ही मुखसे अपनी प्रशंसा और अपने ही धर्मको बड़ा कहना और दूसरेकी निन्दा करनी है वह मूर्खताकी बात है क्योंकि प्रशंसा उसीकी ठीक है कि जिसकी दूसरे विद्वान करें अपने मुखसे अपनी प्रशंसा तो चोर भी करते हैं तो क्या वे प्रशंसनीय हो सकते हैं ? इसी प्रकारकी इनकी बातें हैं।।

मूळ-बहुगुणविज्ञा निलयो उस्सुत्तानासी तहा विमुत्तन्त्रो । जहवरमणिज्ञतो विद्वविग्ध-करो विसहरो लोए ॥ प्रश्नाश्रीहा१८ ॥ जैसे विषधर सर्पों मणि त्यागने योग्य है वैसे जो जैनमनमें वह चाहे किनना बड़ा धार्मिक पण्डित हो उसको स्यागा देना ही जैनियोंको सचित है।।।

समीक्षक—देखियें ! कितनी मूलकी वात है जो इनके चेले और आचार्य्य विद्वान होते तो विद्वनोंसे प्रेम करते जब इनके तीर्थकर सहित अविद्वान हैं तो विद्वानोंका मत्य क्यों करें ! क्या सुवंकको मल वा धूलमें पड़ेको कोई त्यागता है इससे यह सिद्ध हुआ कि विना जेनियों के वैस दूसरे कौन फ्शपाती हुछी दुरामही विद्याहीत होंगे।।

## मूल—अइ सयपा वियपा वाधिम अपन्ये सुतो विपावरया। न चलित सुद्धधमार धन्ना किविपावपन्येसु॥प्र०मा०२ प०सू० २६॥

े अन्य दर्शनी कुल्मि। अर्थान् जैनमत विरोधी उनका दर्शन भी जैनी लोग न करें ।।

समीक्षक —बुद्धिमान लोग विकार हैंगे कि यह कि नि पापरपन्ति कि कि ति कि जिसका मत सत्य है उसकी किसीके हर नहीं होता इनके आवार्य्य जानते थे कि हमारा मत पोल्लपाल है जो दूसरेको सुनावेंगे तो खण्डन हो जायगा इसल्पि सबकी निन्दा करो और मूर्ख जनोंको कैसाओ।

मूल—नामं पितस्सअसहं जेणनिदिठाइ मिन्छ-पव्याइ। जेसिं अणुसंगा उधम्मीणविहोझ पावमई॥ प० भा०२ प० ६ सू० २७॥

ें जो जैनधर्मसे विरुद्ध धर्म है वे सब मनुष्योंको पापी करनेवाले हैं इसलिये कि कि अन्य धर्मको न मनकर जैनयर्म ही को मानना अच्छ है।।

समीक्षक—इसले यह सिद्ध होता कि सबसे बैर, विरोध, निन्दा, ईच्या आदि दुष्ट कमजूप सागरमें डुबानेबाला जैनमर्ग हैं, जैसे जैनो

## समुक्लास] जैनग्रन्थोंमें आत्म प्रसंशा। ५८५

लोग सबके निन्दक हैं वैसा कोई भी दूसरे मत वाला महानिन्दक और अधर्मी न होगा। क्या एक ओरसे सबकी निन्दा और अपनी अति-प्रशंसा करना शठ मनुष्योंकी बातें नहीं हैं ? विवेकी लोग तो चाहें किसीके मतके हों उनमें अच्छेको अच्छा और बुरेको बुरा कहते हैं।। सू०—हाहा गुरुअअ कडम्में सामीनहु अच्छिकस्स

पुकारिमो । कह जिणवयण कह सुगुरु सा-वया कहइय अकज्भं ॥ प्र०भा० २।३५॥

सर्वक्रभाषित जिन वचन, जैनके सुगुरु और जैनधर्म कहां और उनसे विरुद्ध कुगुरु अन्य मार्गोके उपदेशक कहां अर्थान् हमारे सुगुरु सुदेव सुधमें और अन्यके कुदेव कुगुरु कुधमें हैं।।

्र समीक्षक—यह बात बेर बेचनेहारी कूंजड़ीके समान है जैसे वह अपने खट्टे बेरोंको मीठा और दूसरीके मीठोंको खट्टा ओर निकम्मे बतलाती है, इसी प्रकारकी जैनियोंकी बातें हैं ये लोग अपने मतसे भिन्न मत वालोंको सेवामें बड़ा अकार्य्य अर्थात् पाप गिनते हैं।

मूल-सप्पो इक्तं मरणं कुगुरु अणंता इदेह मर-णाइ। तोवरिसप्पं गहियुं मा कुगुरुसेवणं भदम्॥ प्र० भा०२ सु० ३७॥

जैसे प्रथम छिख आये कि सर्पमें मणिका भी त्याग करना छित है वैसे अन्य मार्गियोंमें श्रेष्ठ धार्मिक पुरुषोंका भी त्याग कर देना, अब उससे भी विशेष निन्दा अन्य मन बालोंकी करते हैं जिनमते भिन्न सब कुगुर अर्थात् वे सर्पते भी बुरे हैं उनका दर्शन, सेवा, संग कभी न करना चाहिये क्योंकि सर्पके संगते एक बार मरण होता है और अन्यमार्गों कुगुरुओंके संगते अनेक बार जन्म मरणमें गिरना पड़ता हैं इसिंकि हे भूर ! अन्यमार्गियोंके कुगुरुओंके पास भी मत खड़ा रह क्योंकि जो नू अन्यमार्गियोंके कुगुरुओंके पास भी मत खड़ा रह क्योंकि जो नू अन्यमार्गियोंकी कुछ भी सेवा

करेगा तो दुःखमें पड़ेगा।।

समीक्षक—देखिये जैनियोंके समान कठोर, भ्रान्त, द्वेषी, निन्दक भूला हुआ दूसरे मत वाले कोई भी न होंगे इन्होंने मनसे यह विचारा है कि जो हम अन्यकी निन्दा और अपनी प्रशंसा न करेंगे तो हमारी सेवा और प्रतिष्ठा न होगी परन्तु यह बात उनके दीर्भाग्यकी है क्योंकि जबतक उत्तम विद्यानोंका संग सेवा न करेंगे तबतक इनको यथार्थ ज्ञान और सत्य धर्मकी प्राप्ति कभी न होगी इसलिये जैनि-योंको उचित है कि अपनी विद्याविकद्ध मिथ्या वार्ते छोड़ वेदोक सत्य बातोंका ग्रहण करें तो उनके लिये बड़े कल्याणकी बात है।।

मूल—िकं भणिमो किं करिमो ताणहयासाण घि-ठदुठाणं। जे दंसि ऊण लिंगं खिवंति नर-यम्मि मुद्धजणं॥ प्र०भा० २ ष०सू०४०॥

जिसकी करयाणकी आशा नष्ट होगई, धीठ, बुरे काम करने ने अतिचतुर दुष्ट दोषवालेसे क्या कहना ? और क्या करना क्योंकि जो उसका उपकार करो तो उलटा उसका नाश करे जैसे कोई द्या करके अन्धे सिंहकी आंख खोलनेके जाय तो वह उसीको खालेवे वैसे ही छुगुरू अर्थात् अन्यमार्गियोंका उपकार करना अदना नाश कर लेना है अर्थात् उनसे सदा अलग ही रहना।।

समीक्षक — जैसे जैन छोग विचारते हैं वैसे दूसरे मन व हे भी विचार तो जैनियोंकी कितनी दुर्दशा हो ? और उनका कोई किसी प्रकारका उपकार न करे तो उनके बहुतसे काम नट होकर कितना दुःख प्राप्त हो ? वैसा अन्यके छिये जैनी क्यों नहीं विचारते ? ॥

मूल—जहजहतुदृह धम्मो जहजह दुठानहोय अह-उद्दु । समिद्दिठिजियाण तह तह उल्लस-इस भत्तं ॥ प्र० भा० २ ष०सू० ४२॥

#### समुक्कास] जैनग्रन्थोंमें आत्म प्रसंशा। ५८७

जैसे२ दर्शनश्रष्ट निहुव, पाच्छत्ता, उसन्ना तथा कुसीलियादिक और अन्य दर्शनी, त्रिदण्डी, परित्राजक तथा विप्रादिक दुष्ट लोगोंका अतिशय बल सत्कार पूजादिक होने वैसे २ सम्यग्रहिट जीवोंका सम्य-कृत्व विशेष प्रकाशित होने यह बड़ा आश्चर्य है।।

समीक्षक—अब देखो ! क्या इन जैनोंसे अधिक ईर्ब्या, द्वेष, बैर-बुद्धियुक्त दूसरा कोई होगा ? हां दूसरे मतमें भी ईर्ब्या, द्वेष है परन्तु जितनी इन जैनियोंमें है उतनी किसीमें नहीं और द्वेष ही पापका मूळ है इसिंख्ये जैनियोंमें पापाचार क्यों न हो ?।।

## मू०—संगो विजाण अहिउते सिंधम्माइ जेपकुब्ब-न्ति । मुतृण चोरसंगं करन्ति ते चोरिय

#### पावा ॥ प्र० भाग २ ष० सू० ७५॥

इसका मुख्य प्रयोजन इतना ही है कि जैसे मूढ़जन चोरके संगसे नासिकाछेदादि दण्डसे भय नहीं करते वैसे जैनमतसे भिन्न चोर धर्मोमें स्थित जन अपने अकल्याणसे भय नहीं करते।।

समीक्षक—जो जैसा मनुष्य होता है वह प्रायः अपने ही सहरा दूसरोंको समम्प्रता है क्या यह 'बात सत्य हो सकती है कि अन्य सब चोरमत और जैनका साहूकार मत है ? जबतक मनुष्यमें अति अज्ञान और कुसंगसे भ्रष्ट बुद्धि होती है तबतक दूसरोंके साथ अति ईर्ष्या द्वेषादि दुष्टता नहीं छोड़ता जैसा जैनमत पराया द्वेषी हैं ऐसा अन्य कोई नहीं।

मूल—जच्छ पसुमहिसलरका पव्वंहोमन्ति पावन वमीए। पूअन्तितंपि सहुाहा हो लावी परा-यस्सं॥ प्र० भाग २ ष० सू० ७६॥ /

पूर्व सूत्रमें जो मिण्यात्वी अर्थात् जैनमार्ग भिन्न सत्र मिण्यात्वी और आप सम्यक्ती अर्थात् अन्य सत्र पापी, जैन छोग सब पुण्यातमा इसलिये जो कोई मिथ्यात्वीके धर्मका स्थापन करे वह पापी है।।

समीक्षक—जैसे अन्यके स्थानोंमें चामुण्डा, कालिका, ज्वाला, प्रमुखके आगे पापनौमी अर्थात् दुर्गानौमी तिथि आदि सब बुरे हैं वैसे क्या तुम्हारे पजुशण आदि वत बुरे नहीं हैं जिनसे महाकृष्ट होता है है यहां वाममागियांकी लीलाका लण्डन तो ठीक है परन्तु जो शासनदेवी और महतदेवी आदिको मानते हैं उनका भी लण्डन करते तो अच्छा था, जो कहें कि हमारी देवी हिसक नहीं तो इनका कहना मिथ्या है क्योंकि शासनदेवीने एक पुरुप और दूसरा बकरेकी आंखें निकाल ली थीं पुनः वह राक्षसी और दुर्गा कालिकाकी सगी बहिन क्यों नहीं १ और अपने यचलाण आदि मतोंको अतिश्रेष्ठ और नवमी आदिको दुष्ट कहना मूढ़ताकी बात है, क्योंकि दूसरेके उपवासोंकी तो निन्दा और अपने उपवासोंकी स्तुति करना मूख्ताकी बात है, हां जो सत्यभाषणादि वत धारण वसते हैं वे तो सबके लिये उत्तम हैं जैनियों और अन्य किसीका उपवास सत्य नहीं ।।

## मूल-चेसाणवंदियाणय माहणडुं बाणजर किस-रकाणं। भत्ता भर कठाणं वियाणं जन्ति दृरेणं॥ प्र० भाग २ ष० सू० ८२॥

इसका मुख्य प्रयोजन यह है कि जो वेश्या, चारण भाटादि छोगों, ब्राह्मण, यक्ष, गणेशादिक निध्याटिष्ट देवी आदि देवताओंका भक्त है जो इनके माननेवाछे हैं वे सब खुवाने और खुवनेवाछे हैं क्योंकि उन्हींके पास वे सब वस्तुएं मानते हैं और वीतराग पुरुषोंसे दूर रहते हैं।

समीक्षक—अन्य मार्गियोंके देवताओंको भूठ कहना और अगने देवताओंको सच कहना केवल पश्चातको बात है और अन्य वाममा-र्गियोंकी देवी आदिका निषेध करते हैं परन्तु जो श्राद्वदिनकृत्यके पृष्ठ ४६ में लिखा है कि शासनदेवीने रात्रिमें भोजन करनेके कारण

# समुख्टास] जैनग्रन्थोंमें आत्म प्रसंशा। ५८६

पकॅ पुरुषके थपेड़ा मारा उसकी आंख निकाल डाली उसके बदले बकरे की आंख निकाल कर उस मनुष्यके लगा दी इस देवीको हिंसक क्यों नहीं मानते ? रत्नसार भाग १ प्र● ६७ में देखो क्या लिखा है महतदेवी पथिकोंको पत्थरकी मूर्ति होकर सहाय करती थी इसको भी वैसी क्यों नहीं मानते ?।।

## मूल—िर्कसोपि जणिण जाओ जाणो जणणी हिक अगोविद्धि । जहमिच्छरओ जाओ गुणे सु-तमच्छरं वहह ॥ प्र०भा०२ प०सू० ८१॥

जो जैनमतिवरोधी मिथ्यात्वी अर्थात् मिथ्या धर्मवाहे हैं वे क्यों जनमे ? जो जनमे तो बढ़े क्यों ? अर्थात् शीव ही नष्ट होजाते तो अच्छा होता।।

समीक्षक—रेखो ! इनके वीतरागभाषित दया धर्म दूसरे मत बालोंका जीवन भी नहीं चाहते केवल इनका दया धर्म कथनमात्र है बौर जो है सो क्षद्र जीवों और पशुओंक लिये है जैनभिन्न मनुष्योंके लिये नहीं ॥

## मूल-शुद्धे मग्गे जाया सुहेण मच्छत्ति सुद्धिम-ग्गमि । जेपुणअमग्गजाया मग्गे गच्छन्ति ते चुप्पं ॥ प्र० भाग २ प० सू० ८३ ॥

इसका मुख्य प्रयोजन यह है कि जो जैनकुछमें जनम लेकर मुक्तिको जाय तो कुछ आश्चर्य नहीं परन्तु जैनभिन्न कुछमें जन्मे हुए मिथ्यात्वी अन्यमागीं मुक्तिको प्राप्त हों इसमें बड़ा आश्चर्य हैं इसका भिलतार्थ यह है कि जैनमत वाले ही मुक्तिको जाते हैं, अन्य कोई नहीं जो जैनमतका प्रहण नेहीं करते ये नरकगामी हैं।।

समीक्षक-क्या जैनमतमें कोई दुरुवा नरकगामी नहीं होता ? सब ही मुक्तिमें जाते हैं ? और अन्य कोई न ीं ? क्या यह उन्मत्त- ५६० सत्यार्थप्रकादा। (द्वाद्वरा पनकी बात नहीं है ? विना भोले मनुष्योंके ऐसी बात कौन मान सकता है ? !!

मूल-तिच्छराणं प्आसंमत्तगुणाणकारिणी भणि-या। सावियमिच्छत्तयरी जिण समये दे-सिया पूआ। प्र० भा० २ प० सू० ६०॥

एक जिनमूर्त्तियोंकी पूजा सार और इससे भिन्नमार्गियोंकी मूर्त्ति-पूजा असार है जो जिनमार्गकी आज्ञा पालता है वह तत्वज्ञानी,जो नहीं पालना है वह तत्त्वज्ञानी नहीं ।।

समीक्षक—वाहजी ! क्या कहना ! क्या तुम्हारी मूर्त्ति पाषा-णादि जड़ पदार्थोकी नहीं जैसी कि वैष्णवादिकों की हैं ? जैसी तुम्हारी मूर्त्तिपूजा मिथ्या है वैसी ही मूर्तिपूजा वैष्णवादिकों की भी मिथ्या है जो तुम तत्त्वज्ञानी बनते हो और अन्थोंको अतत्त्वज्ञानी बनाते हो इससे विदित होता है कि तुम्हारे मतमें तत्त्वज्ञान नहीं ॥

मूल-जिण आणा एधम्मो आणा रहि आण फुडं अहमुत्ति । इयमुणि ऊण यतत्तं जिण आ-णाए कुणहु धम्मं ॥ प्रक० २ । ६२ ॥

जो जिन्देवकी आज्ञा दया क्षमादि रूप धर्म है उससे अन्य सब आज्ञा अधर्म हैं।।

समीभ्रक—यह कितने बड़े अन्यायकी बात है क्या जैनमतसे भिन्न कोई भी पुरुष सत्यवादी धर्मात्मा नहीं है ? क्या उस धार्मिक जनको न मानना चाहिये ? हां जो जैनमतस्थ मनुष्योंके मुख जिह्ना चमड़ेकी न होती और अन्यकी चमड़ेकी होती तो यह बात घट सकती थी इससे अपने ही मतके प्रन्थ बचन साधु आदिकी ऐसी बड़ाईकी है कि जानो भाटोंके बड़े भाई ही जैन लोग बन रहे हैं॥

मूल-वन्नेमिनारया उविजेसिन्दुरकाइ सम्भरंता-

# समुल्लास] जैनग्रन्थोंमें आत्म प्रसंशा। ५६१ णम्। भव्याण जणइ हरिहररिद्धि समिद्धी विउद्धोसं॥ प्र० भा० २ ष०स्व० ६५॥

इसका मुख्य तात्पर्य यह है कि हरिहरादि देवोंकी विभूति है वह मरकका हेतु है उसकी देखके जैनियोंके रोमाञ्च खड़े होजाते हैं जैसे राजाज्ञा भङ्ग करनेसे मनुष्य मरण तक दुःख पाता है वैसे जिनेन्द्र-आज्ञा भङ्गसे क्यों न जन्म मरण दुःख पावेगा ?

समीश्रक—देखिये ! जैनियोंके आनार्य्य आदिकी मानसी वृत्ति अर्थात् ऊपरके कपट और ढोंगकी छीछा अब तो इनके भीतरकी भी खुछ गई हरिहरादि और उनके उपासकोंके ऐश्वर्य और बढ़तीको देख भी नहीं सकते उनके रोमाञ्च इसिछये खड़े होते हैं कि दूसरेकी बढ़ती क्यों हुई । बहुधा वैसे चाहते होंगे कि इनका सब ऐश्वर्य हमको मिछ जाय और ये दरिद्र होजायं तो अच्छा और राजाज्ञाका दृष्टान्त इसिछये देते हैं कि ये जैन छोग राज्यके बड़े खुरामदी भूठे और उरपुक्ति हैं क्या भूठी बात भी राजाकी मान छेनी चाहिये जो ईच्या देषी हो नो जैनियोंसे बढ़के दूसरा कोई भी न होगा।।

## मूल-जो देइशुद्धधम्मं सो परमप्या जयम्मि नहु अन्नो। किं कप्पद्दुम्म सरिसो इयरतरू होइकइयावि॥ प्र०भा० २ ष०स्र० १०१॥

वे मूंख लोग हैं जो जैनधर्मसे विरुद्ध हैं और जो जितेन्द्रभाषित धर्मोक्देष्टा साधु वा गृहस्थ अथवा प्रन्थकर्त्ता हैं वे तीर्थंकरोंके तुल्य हैं इनके तुल्य कोई भी नहीं।।

समीक्षक—क्यों न हो ! जो जैनीछोग छोकर-बुद्धि न होते तो ऐसी बात क्यों मान बैठते ? जैसे वेश्या विना अपनेके दूसरीकी स्तुति नहीं करती तृमे ही यह बात भी दीखती है।।

मूल-जे अमुणि अग्रण दोषाते कह अबुआणहु-

[द्वाद्द्रा

# न्तिम भन्छा। अहते विहुम भन्छाता विसंअमि आण तुल्लत्तं॥ प्रक० २।१०२॥

जिनेन्द्र देव तडुक्त सिद्धान्त और जिनमतके उपदेष्टाओंका त्याग करना जैनियोंको उचित नहीं है ॥

समीक्षक—यह जैनियोंका हठ पक्षपात और अविद्याका फल नहीं तो क्या है ? किन्तु जैनियोंकी थोड़ीसी बात छोड़के अन्य सब त्यक्तव्य हैं। जिसकी कुछ थोड़ीसी भी बुद्धि होगी वह जैनियोंके देव, सिद्धान्त-प्रन्थ और उपदेष्टाओं भो देखे, सुने, विचारे तो उसी समय निस्सन्देह छोड़ देगा।।

मूल—वयणे विसुगुरुजिणवल्लहस्सके सिंन उल्लस इसम्मं । अहकहदिण मणितेयं उल्लुआणं-हरह अन्धत्तं ॥ प्रक० २ । १०८ ॥

जो जिनवचनके अनुकूल चलते हैं वे पूजनीय और जो विरुद्ध चलते हैं वे अपूज्य हैं जिनगुरुओंको मानना अर्थात् अन्यमार्गियोंको न मानना।।

समीश्रक—भला जो जैन लोग अन्य अज्ञानियोंको पशुवत् चेले करके न बांघते तो उनके जालमेंसे छूटकर अपनी मुक्तिके साधन कर जन्म सफल कर लेते भला जो कोई तुमको कुमार्गी, कुगुर, मिथ्यात्वी और कुग्देष्टा कहे तो तुमको कितना दुःख लगे ? वैसे ही जो तुम दूसरेको दुःखदायक हो इसलिये तुम्हारे मतमें असार बातें बहुतसी भरी हैं।।

मूल—तिब्रुअण जाणं मरंतं दट्टण निअन्तिजेन अप्पार्णं। विरमंतिन पावा उधिद्धी धिठ-त्तणं ताणम्॥ प्रक० भाग २ सू० १०६॥

### समुक्कास] जीनग्रन्येषिं आत्म प्रसंदाा। ५६३

जो मृत्युर्वन्त दुःख हो हो मी कृषि व्यापारादि कम जैनी छोग न करें क्योंकि ये की नरकने ले जानेवाले हैं।।

समीक्षक — अब कोई जैनियोंसे पूछे कि तुम व्यापारादि कर्म क्यों करते हो ? इन कर्मोंको क्यों नहीं छोड़ देते ? और जो छोड़ देओ तो तुम्हारे शरीरका पालन पोपण भी न होसके और जो तुम्हारे कहनेसे सब लोग छोड़ दें तो तुम क्या वस्तु खाके जीओगे ? ऐसा अत्याचारका उपदेश करना सर्वथा व्यर्थ है, क्या करें विचारे विद्या सत्सङ्क विना जो मनमें आया सो बक दिया।।

#### मूल—तइया हमाण अहमा कारण रहिया अनाण गव्येण। जेजपन्ति उशुत्तं तेसिंदिद्धिछ-पम्मिनं॥ प्र०भा० २ षष्टी सु०१२१॥

जो जैनागमसे विरुद्ध शास्त्रोंके माननेवाले हैं वे अधमाऽधम हैं। चाहे कोई प्रयोजन भी सिद्ध होता हो तो भी जैनमतसे विरुद्ध न वोलें न माने चाहें कोई प्रयोजन सिद्ध होता है तो भी अन्य मतका त्याग करदे।।

समीक्षक—तुम्हारे मूलपुरुषोंसे लेके आजतक जितने होगये और होंगे उन्होंने विना दूसरे मतको गालिप्रदानके अन्य कुछ भी दूसरी बात न की और न करेंगे भला जहां २ जैनी लोग अपना प्रयोजन लिद्ध होना देखों हैं वर्रा चेलोंके भी चेले बन जाते हैं तो ऐसी मिथ्या लक्ष्यों चौड़ी बातोंके हांकनेमें तनिक भी खजा नहीं आती यह बड़े शोककी व न हां।

मूल-जम्बीर जिणस्सजिओ मिरई उरसुत्तछे स-देसणओ। सागर कोड़ा कोड़िहिं मह अह भी भवरणे॥ प्र० भा० २ ष० सू० १२२॥ जो कोई ऐसा कहे कि जैनसाधुओं में धर्म है हमार बॉर अन्यमें भी धर्म है तो वह मनुष्य क्रोड़ न्कोड़ वर्षतक नरक में रहकर फिर भी नीच जन्म पाता है।

समीक्षक—वाहरे ! वाह !! विद्यांके शहुओं ! तुमने यही विचारा होगा कि हमारे मिथ्या वचनोंका कोई खण्डन न करे इसीछिये यह भयक्कर वचन खिखा है सो असम्भव है । अब कहां क तुमको सममार्थे तुमने तो भूठ निन्दा और अन्य मतोंसे वैर विरोध करने पर ही कटिबद्ध होकर अपना प्रयोजन सिद्ध करना मोहनभोग समान सममा खिया है ।

# मूल—दूरे करणं दूरिम्म साहूणं तहयभावणादूरे। जिणधम्म सद्दहारं पितिर कदुरकाइनिठवह॥

प्रक० भा० २ । षष्ठी० सू० १२७ ॥

जिस मनुष्यसे जैनधमिका छुळ भी अनुष्ठान न होसके तो भी जो जैनधमि सचा है, अन्य कोई नहीं। इतनी श्रद्धामात्र ही से दुशक तरसे जाता है।।

समीक्षक—भजा इसते अधिक मूर्वोको अपने मतजालमें फँसाते की दूसरी कौनसी बात होगी ? क्योंकि कुछ कर्म करना न पड़े और मुक्ति हो ही जाय ऐसा मृंदू मत कौनसा होगा?

# मूल-कइया होही दिवसो जहया सुगुरूण पाय-मूलम्मि। उस्सुत्त सविसलवर हिलेओनि-सुणे सुजिणधर्मा। प्र०भा०२ ष०सु०१२८॥

जो मनुष्य हूं तो जिनागम अर्थात् जैनोंक शास्त्रोंको सुनूंगा उत् सूत्र अर्थात् अन्य मनके प्रत्योंको कभी न सुनूंगा इतनी इच्छा करे वर इतनी इच्छामात्र ही से दुस्वसागरसे तर जाता है।

सनीक्षक—यह भी बात भोड़े मतुष्योंको फँसानेके िये है क्योंकि इस पूर्वोक्त इच्छासे यहांक दुः बतःगरसे भी नहीं तरता और पूर्वजन

# समुल्लास] जैनग्रन्थोंमें आत्म प्रसंदाा। ५६५

नमके भी संचित पापोंके दुःख इपी फछ भोगे विना नहीं छूट सकता। जो ऐसी २ भूठ अर्थात् विद्याविरुद्ध बात न लिखने तो इनके अवि-द्यारूप प्रन्थोंको वेदादि शास्त्र देख सुन सत्यासत्य जानकर इनके पोकल-प्रन्थोंको छोड़ देते परन्तु ऐसा जकड़ कर इन अविद्यानोंको बांघा है कि इस जालते कोई एक बुद्धिमान् सत्संगी चाहे छूट सकें तो सम्भव है परन्तु अन्य जड़बुद्धियोंका छूटना तो अतिकठिन है।।

# मूल—ब्रह्मजेणं हिं भणियं सुयववहारं विसोहियंत-स्स । जायह विसुद्ध बोही जिणआणा राह गत्ताओ ॥ प्र० भाग २ षष्टी सु० १३८ ॥

 जो जिनाचार्योंने कहे सूत्र निम्नित वृत्ति भाष्यचूर्णी मानो हैं वे ही शुभ व्यवहार और दुःसहव्यवहारके करनेसे चारित्रयुक्त होकर सुखोंको प्राप्त होते हैं अन्य मतके प्रनथ देखनेसे नहीं।।

समीक्षक—क्या अत्यन्त भूखे मरने आदि कष्ट सहनेको चारित्र कहते हैं जो भूखा प्यासा मरना आदि ही चारित्र है तो बहुतसे मनुष्य अकाल वा जिनको अन्न दि नहीं मिलते भूखे मरते हैं वे शुद्ध होकर शुभ फलोंको प्राप्त होने चाहियें सो न ये शुद्ध होवें और न तुम, किन्तु पितादिके प्रकोपसे रोगी होकर सुखके बदले दुःखको प्राप्त होते हैं धर्म तो न्यायाचरण, ब्रह्मचर्थ्य, सत्यभाषणादि है और असत्यभाषण अन्यायाचरणादि पाप है और सबसे प्रीतिपूर्वक परोपकारार्थ वर्तना शुभ चरित्र कहाना है जिनमतस्थोंका भूखा प्यासा रहना आदि धर्म नहीं इन सूत्रादिको माननेसे थोड़ासा सत्य और अधिक भूठको प्राप्त होकर दुःखसागरमें हुवते हैं।।

मूल—जइजाणिस जिणनाहो लोयाया राविपरकए-भूओ। तातंतं मन्नं तो कहमन्नसि लोअ आ-यारं॥ प्रवेमाव २ ष० सूव १४८॥ जो उत्तम प्रारब्धवान् मनुष्य होते हैं वे ही जिनधर्मका प्रहण करते हैं अर्थात् जो जिनधर्मका प्रहण नहीं करते उनका प्रारब्ध नष्ट है।।

समीक्षक-रया यह बात भूलकी और मूठ नहीं है ? क्या अन्य मतमें श्रेष्ठवारक्यी और जैनमतमें नष्ट वारक्यी कोई भी नहीं है ? भौर जो यह कहा कि सधर्मी अर्थात् जैनधर्मवाले आपसमें क्लेश न करें किन्तु प्रीतिपूर्वक वर्ते इससे यह बात सिद्ध होती है कि दसरेके साथ कलह करनेमें बुराई जैन लोग नहीं मानते होंगे यह भी इनकी बात अयुक्त है क्योंकि सज्जन पुरुष सज्जनोंके साथ प्रेम और दुर्घ्योंकी शिक्षा देकर सुशिक्षित करते हैं और जो यह लिखा कि ब्राह्मण, त्रिदण्डी, परित्राजकाचार्य अर्थात् संन्यासी और तापसादि अर्थात् बैरागी आदि सब जैनमतके शत्रु हैं। अब देखिये कि सबको शत्रुभा-बसे देखते और निन्दा करते हैं तो जैनियोंकी दया और क्षमारूप धर्म कहा रहा क्योंकि जब दूसरे पर द्वेष रखना दया क्षमाका नाश भौर इसके समान कोई दूसरा हिंसारूप दोष नहीं जैसे द्वेषमृतियां कनी छोग हैं वैसे दूसरे थोड़े ही होंगे। ऋषभदेवसे छेके महावीरपर्यन्त २४ तीर्थंकरोंको रागी देवी मिथ्यात्वी कहें और जैनमत माननेवालेको सन्निपात उचरसे फैंसे हुए मानें और उनका धर्म नरक और विषके समान सममें तो जैनियोंको कितना बुरा छगेगा है इसिछए जैनी छोग निन्दा और परमतद्वेषरूप नरकमें डूबकर महाक्लेश भोग रहे हैं इस बातको छोड दें तो बहुत अच्छा होवे।।

मूल-एगो अगरू एगो विसाव गोचे इआणि विवहाणि। तच्छयजं जिणदव्वं परुपरन्तं न विवन्ति॥ प्र०भा० २षष्ठी० सू० १५०॥

स्रव आवकोंका देवगुरुधमं एक है चैत्यवन्द्रन अर्थान् जिनप्रति-विस्य मूर्तिदेवल और जिनद्रव्यकी रक्षा और मूर्तिकी पूजा करना वर्म है।।

#### समुद्धास] जैनियोंभें मृर्तिप्जाका जाल। ५६७

समीक्षक—अब देखो ! जिनना मूर्तिपूजाका मागड़ा चला है बह सब जैनियोंके घरसे और पालण्डोंका मूल भी जैनमत है।। आद्धदिन-इत्य फुठ १ में मूर्तिपूजाके प्रमाणः—

नवकारेण विवोहो ॥ १॥ अनुसरणं सावउ ॥२॥ वयाइं इमे ॥ ३॥ जोगो ॥ ४॥ विष वन्द-णगो ॥ ५॥ यच्चरखाणं तु विहि पुच्छम् ॥ ६॥

इत्यादि श्रावकोंको पहिले द्वारमें नवकारका ज**प कर जाना ॥१॥** दूसरा नवकार जपे पीछे में श्रावक हूं स्मरण करना ॥ २ ॥ तीसरे अण्वतादिक हमारे कितने हैं ॥ ३ ॥

चोथे द्वारं चार वर्गमें अप्रगामी मोक्ष है उस कारण झानादिक है सो योग उसका सब अतीचार निमल करनेसे छः आवश्यक कारण सो भी उपचारसे योग कहाता है सो योग कहेंगे ॥ ४ ॥

पांचवें चैत्यवन्द अर्थात् मूर्तिको नमस्कार द्रव्यभाव पूजा

कहेंगे। ४॥

छठा प्रत्याख्यान द्वार नवकारसीप्रमुख विधिपूर्वक कहूंगा इत्यादि ॥ ६ ॥

धौर इसी प्रत्थमें आगे २ बहुतसी विधि लिखी हैं अर्थात् संध्याके भोजन समयमें जिनविस्व अर्थात् तीर्थंकरों की मूर्तिपूजना और द्वार पूजना और द्वारपूजामें बड़े २ बखेड़े हैं। मन्दिर बनाने के नियम पुराने मंदिरों को बनवाने और सुधारने से मुक्ति होजाती है मंदिरमें इस प्रकार जाकर बैठे बड़े भाव प्रीतिसे पूजा करे "नमो जिनेन्द्रेभ्वः" इत्यादि मन्त्रों से स्नानादि कराना। और "जलवन्दनपुष्पपूपदीपनैः" इत्यादि मन्त्रों से स्नानादि कराना। और "जलवन्दनपुष्पपूपदीपनैः" इत्यादि गन्धादि चढ़ावें। रक्तसार भागके १२ वें पृष्ठमें मूर्तिपूजाका फुछ यह लिखा है कि पुजारीको राजा वा प्रजा कोई भी न रोक सके। समिक्षक—ये बातें सब कपोलक हिन्त हैं क्योंकि बहुतसे जैन

समीक्षक—यं बातं सब कपालकाल्यतं हं क्याकि बहुतस जन पूजारियोंको राजादि राकत है। रत्नसा० फुठ ३ में खिला हं <sup>ह</sup>मूर्ति- पूजासे रोग पीड़ा और महादोष छूट जाते हैं एक किसीने ४ कोड़ीका फूछ चढ़ाया उसने १८ देशका राज पाया उसका नाम कुमारपाल हुआ था इत्यादि सब बातें भूठी और मूर्खोंको छुभानेकी हैं क्योंकि अनेक जैनी छोग पूजा करतेर रोगी रहते हैं और १ बीवेका भी राष्ट्रय पाषाणादि मूर्तिषूजासे नहीं मिछता ! और जो पांच कौ ीका फुछ चढ़ानेसे राज्य मिछेतो पांचर कौड़ीके फूछ चढ़ाके सब भूगोछका राज्य क्यों नहीं कर छेते १ और राजदंड क्यों भोग ने हैं १ और जो मूर्ति-पूजा करके भवसागरसे तर जाते हो तो ज्ञान सम्यव्ह्यान और चारित्र क्यों करते हो १ रत्नसार भाग पृष्ठ १३ में छिखा है कि गौतमके अंग्हें में अमृत और उसके स्मरणसे मनवांछित फछ पाना है ।।

समीक्षक — जो ऐसा हो तो सब जैनी छोग अमर हो जाने चाहिये सो नहीं होते इससे यह इनकी केवल मूर्खीके बहक नेकी बात है दूसरे इसमें कुछ भी तत्त्व नहीं इनकी पूजा करनेका श्लोक रत्नसार माल पुष्ठ ४२ में:—

# जलचन्दनधूपनैरथ दीपाक्षतकैनैवेद्यवस्त्रैः। उपचारवरैर्जिनेन्द्रान् ६चिरैरच यजामहे॥

हम जल, चन्द्रन, चावल, पुष्प, धूप, दीप, नेतेय, बुख और अंति अष्ठ उपचारोंसे जिनेन्द्र अर्थात् तीर्थंकरोंकी पूजा करें। इसीसे हम करते हैं कि मूर्तिपूजा जैनियोंसे चली है। (विवेकसार पृष्ठ २१) जिनमन्दिरमें मोह नहीं आता और भवसागरके पार उतारने वाला है। (विवेकसार पृष्ट ११ से १२) मृर्तिपूजासे मुक्ति होती है और जिन मन्द्रिरमें जानेसे सद्गुण आते हैं जो जल चन्द्रनादिसे तीर्थंकरों की पूजा करें वह नरकसे छूट खंगको जाय। (विवेकसार पृष्ट ११) जिन मन्द्रिरमें भृषभदेवादिकी मूर्तियोंके पूजनेसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी सिद्धि होती है। (विवेकसार पृष्ट ६१) जिनमूर्तियोंकी पूजा करें तो सब जगत्के क्लेश छूट जायें॥

# समुख्लास] जैनग्रन्थोंकी असम्भव बातें। ५६६

समी जिंक — अब देखी ! इनकी अविद्यायुक्त असंभव वार्ते जो इस प्रकारसे पापादि बुरे कम छूट जायें, मोह न आवे. भवसागरसे पार इतर जायें, सद्गुण आजायें, नरकको छोड़ स्कांमें जायें, धर्म, अध, काम, मोक्षको प्राप्त होंवें और सब क्लेश छूट जायं तो सब जिनी छोग सुखी और सब पदार्थोंको सिद्धिको प्राप्त क्यों नहीं होते ? इसी विवेक्षसारके ३ प्रश्वमें लिखा है कि जिन्होंने जिनमूर्तिका स्थापन किया है उत्तें अपनी अर अपने छुटुम्बकी जिनमूर्तिका स्थापन किया है उत्तें अपनी अर अपने छुटुम्बकी जिनमूर्तिका स्थापन किया है उत्तें अपनी अर अपने छुटुम्बकी जिनमूर्तिका स्थापन किया है उत्तें अर्थान् नरकका साधन है।

समीक्षक — भला जब शिवादिकी मूर्तियां नरकके साधन हैं तो जित्नियों की मूर्तियां क्या वैसी नहीं ? जो कहें कि हमारी मूर्तियां स्यानी, शान्त ओर शुभमुद्रायुक्त हैं इसिल्ये अच्छी और शिवादिकी मूर्ति वैसी नहीं इसिल्ये बुरी हैं तो इनसे कहना चाहिये कि तुम्हारी मूर्तियां तो लाखों रुपयों के मिन्द्रमें रहती हैं और चन्द्रन केशरादि चढ़ना हे पुनः त्यागी कैसी ? और शिवादिकी मूर्तियां तो विना छ या के भी रहती हैं, वे त्यागी क्यों नहीं ? और जो शान्त कहो तो जड़ पदार्थ सब निश्चल होनेसे शान्त हैं सब मतों की मूर्तियां व्यर्थ है !

प्रश्न--हमारी मूर्तियां वस्त्र आभूषणादि धारण नहीं करती इस-लिये अच्छी हैं।

उत्तर—सबके सामने नंगी मूर्तियोंका रहना और रखना परावत छीळा है।

प्रश्त—जैसी स्रीका चित्र या मूर्ति देखनेसे कामोत्पत्ति होती है विसे साधु और योगियोंकी मूर्तियोंको देखनेसे ग्रुभ गुण प्राप्त होते हैं। अन्तर—जो पाषाणमूर्तियोंके देखनेसे ग्रुभ परिणाम मानते हो तो उसके जड़ वादि गुण भी तुम्हारेमें आजायेंगे। जब जड़बुद्धि होंगे तो सर्वथा नष्ट हो जाओगे। दूसरे जो उत्तम विद्वान् हैं उनके संग सेवासे छूटनेसे मूढ़ता भी अधिक होगी और जो र दोष ग्यारहवें समुक्कासंमें

छिले हैं वे सब पाषाणादि मूर्त्तिपूजा करने व लोंको लगते हैं। इसिलयें जैसा जैनियोंने मूर्त्तिपूजामें भूठा कोलाहल चलाया है वैसे इनके मन्त्रों में भी बहुतसी असम्भव वार्ते लिखी हैं यह इनका मन्त्र है। रक्लसार भाग पृष्ठ १ में:—

नमो अरिहंताणं नमो सिद्धाणं नमो आयरियाणं नमो उवज्कायाणं नमो लोए सबबसाहूणं एसो पञ्च नमुक्कारो सब्व पावप्पणासणो मङ्गलाचरणं च सब्बे सिपढमं हवइ मङ्गलम् ॥ ११ ॥

इस मन्त्रका वड़ा माइ.त्म्य खिला है और सब जैनियोंका यह गुरु मन्त्र है। इसका ऐसा म.इ.त्म्य धरा है कि तंत्र पुराण भाटोंकी भी कथाको पराजय कर दिया है, श्राइदिनक्टन्य कृष्ठ ३ः—

नमुक्कार तउपढे ॥ ६ ॥ जउकव्यं । मन्ताणमन्तो परमो इमुत्ति धेयाणधेयं परमं इमुत्ति । तत्ताणतत्तं परमं पवित्तं संसारसत्ताणदुहाहयाणं ॥ १० ॥ ताणं अन्नन्तु नो अत्थि । जोवाणं भवसायरे । बुइडूं ताणं इमं मुत्तुं । न मुक्कारं सुपोययम् ॥११॥ कव्यं । अणेगजम्मंतरमं चिआणं । दुहाणं दुहाणं सारीरिअमाणुसाणुसाणं । कत्तोय भव्वाणभविज्ञ-नासो न जावपत्तो नवकारमन्तो ॥ १२ ॥

जो यह मंत्र है पिवत्र और परममन्त्र है वह ध्यानके योग्यमें परम ध्येय है, तत्त्वोंमें परमतत्त्व है, दुःखोंस पीड़ित संसारी जोवोंको नवकार मन्त्र ऐसा है कि जैसी समुद्रके पार उतारनेकी नौका होती है।। ६। १०।।

# समुक्लास] जैनग्रन्थोंकी असम्भव बातें। ६०१

जो यह नवकार मन्त्र है वर नौकाके समान है जो इसको छोड़ हैते हैं वे भवसागरमें डूबने हैं और जो इसका महण करते हैं वे दुःखों से तर जाते हैं जीवोंको दुःखोंसे पृथक् रखने वाला सब पापोंका नाशक मुक्तिकारक इस मन्त्रके विना दूसरा कोई नहीं ।।११।।

अनेक भवान्तरमें उत्पन्न हुआ शरीर सम्बन्धी दुःख भव्य जीवों को भवसागरसे तारनेवाला यही है, जब तक नवकार मन्त्र नहीं पाया तब तक भवसागरसे जीव नहीं तर सकता। यह अर्थ सुत्रमें कहा है भौर जो अग्नि-प्रमुख अष्ट महाभयोंमें सहाय एक नवकार मन्त्रको छोडकर दूसरा कोई नहीं। जैसे महारत्न वैद्यं नामक मणि प्रहण करनेमें आवे अथवा रात्रभय में अमोघ राखके प्रहण करनेमें आवे वैसे श्चत केवलीका प्रहण करे और सब द्वादशांगाका नवकार मन्त्र रहस्य है इस मन्त्रका अर्थ यह है। (नमो अरिहन्नाणं) सब तीर्थंकरोंको नमस्कार ( नमो सिद्धाणं ) जैनमतके सव सिद्धोंको नमस्कार । (नमो आयरियाणां ) जैनमतके सब अ चार्योको नमस्कार । ( नमो उवज्मा-याणं ) जैनमतके सब उपाध्यायोंको नमस्कार। (नमो लोए सब्ब साहूणं ) जितने जैनमतके साधु इस छोकमें हैं उन सबको नमस्कार है। यद्यपि मन्त्रमें जैन पद नहीं है तथापि जैनियोंक अनेक मन्थोंमें विना जैन मतके अन्य किसीको नमस्कार भी न करना लिखा है। इसलिये यही अर्थ ठीक है ( तत्त्वविवेक पृष्ठ १६६ ) जो मनुष्य छकड़ी पत्थरको देवबुद्धि कर पूजता है वह अच्छे फलोंको प्राप्त होता है॥

समिक्षिक — जो ऐसा हो तो सब कोई दर्शन करके सुखरूप फर्ळों को प्राप्त क्यों नहीं होते ? ( रब्नसारभाग पृ• १० ) पार्श्वनाथकी मूर्ति के दर्शनसे पाप नष्ट हो जाते हैं। कराभा य पृ० ६१ में लिखा है कि सवाल क्य मिन्दिरों का जीणोंद्वार किया इत्यादि। मूर्तिपूजा विषयमें इनका बहुतसा लेख है। इसीसे सममा जाता है कि मूर्तिपूजाका मूल कारण जैनमत है। अब इन जैनियों के साधुओं की लीला, देखिये। ( विवेकसार पृ० २२८) एक जैनमनका साधु कोशा वेश्यासे भोग

करके पर मा त्यागी होकर स्वांलोक को गया। (विवेकसार पृ० १०) अर्णकमुनि चारित्रसे चूककर कई वर्ष पर्यन्त दत्त सेठके घरमें विषय भोग करक परचात् देवलेकको गया। श्रीकृण के पुत्र ढंढण मुनिको स्थालिया उठा लेगया परचात् देवता हुआ। (विभकसार पृ० १५६) जैनमत का साधु लिङ्गथारी अर्थात् वेशयारी मात्र हो तो भी उसका सत्कार शायक क्षेग करें चाहें साधु शुद्ध वरित्र हो चाहें अशुद्धचरित्र सब पूजनीय हैं। (विवेकसार पृ० १६८) जैनमतका साधु चरित्रहीन हो तो भी अन्य मतक साधुओंस श्रे ठ है। (विवेकसार पृ० १७१) श्रावक लोग जैनमतक साधुओंको चरित्ररिक्ष श्रेष्टाचारी देखें तो भी उनकी सेवा करनी चाहिये। (विवेकसार पृ० २१६) एक चोरने पांच मूठी लोच कर चारित्र प्रश्न किया। बड़ा कट और पश्चात्ताप किया, छठे महीनेमें केवल ज्ञान पांक सिद्ध होगया।

समिक्षक—अब देखिये इनके स घु और गृहस्थोंकी लीला इनके मतमें बहुत क्रकमें करनेवाला साधु भी सर्गतिको गया और विवेकसार पृष्ठ १०६ में लिखा है कि श्रीकृष्ण तीसरे नरकमें गया। विवेकसार पृष्ठ १४६ में लिखा है कि श्रीकृष्ण तीसरे नरकमें गया। विवेकसार पृष्ठ १८६ में लिखा है कि धन्त्रन्तरि नरकमें गया। विवेकसार पृष्ठ १८६ में लोगी, जगम, काजी, मुला कितने ही अज्ञानसे तप कष्ट करके भी कुगतिको पाते हैं। रत्नसार भा० पृष्ठ १७६ में लिखा है कि नव वासुदेव अर्थात् त्रिपृष्ठ वासुदेव, द्विष्यभू वासुदेव, पुरुषोक्षम वासुदेव, सिह्युरुष वासुदेव, पुरुष पुण्डरीक वासुदेव, दत्तवासुदेव, लक्ष्मण वासुदेव और श्रीकृष्ण वासुदेव ये सच ग्यारट्वें, बारहवें, पन्द्रहवें, अठारहवें, बीसवें और बाइसवें तीर्थकरों समयमें नरकको गये और नवप्रतिवासुदेव अर्थात् अध्यप्रीवप्रतिवासुदेव, तारककिवासुदेव, मोदकप्रतिवासुदेव, मधुप्रतिवासुदेव, नियुम्भप्रतिवासुदेव, विवासुदेव, मोदकप्रतिवासुदेव, रावणप्रतिवासुदेव और जरासिधुप्रतिवासुदेव ये भी सब नरकको गये। और करप्रभाष्यमें लिखा है कि भूषावेदवेस लेक महावीर पर्यन्त २४ तीर्थकर सब मोक्षको

प्राप्त हुए ॥

समीक्षक—मला कोई बुद्धिमान पुरुष विचारे कि इनके साधु गृहस्थ और तीर्थंकर जिनमें बहुनसं वेश्यागामी, परस्नीगामी, चौर आदि सब जैन मतस्थ स्वंग और मुक्तिको गये और श्रीकृष्णादि महाधार्मिक महात्मा सब नरकको गये यह कितनी बड़ी बुरी वात है ? प्रत्युत विचारके देखें तो अच्छे पुरुषको जैनियोंका संग करना वा उनको देखना भी बुरा है क्योंकि जो इनका संग करे तो ऐसी ही भूठी २ बातें उसके भी हृदयमें स्थित हो जावेंगी क्योंकि इन महाहठी, दुराग्रही मगुष्योंके संगसे सिवाय बुराइयोंके अन्य कुछ भी पल्डे न पड़ेगा । हां जो जैनियोंमें उत्तमजन \* हैं उनसे सत्संगादि करनेमें भी दोष नहीं। विवेकसार पृष्ठ ५५ में लिखा है कि गङ्गादि तीर्थ और काशी भादि क्षेत्रोंके संवनेस कुछ भी परमार्थ सिद्ध नहीं होता और अपने गिरनार, पाळीटाणा और आबू आदि तीर्थ क्षेत्र मुक्ति पर्यन्तके देनेवाले हैं॥

समीक्षक —यहां विचारना चाहिये कि जैसे शैव वैष्णवादिके तीर्थ और क्षेत्र जल स्थल जड़स्वरूप हैं वैसे जैनियोंके भी हैं इसमेंसे एक की निन्दा और दूसरेकी स्तुति करना मूखताका काम है।

# <sup>ु</sup>जैनों की मुक्तिका<sup>ँ</sup> वर्णन ॥

(रत्नसार भाग पृष्ट २३) महावीर तीर्थंकर गौतमजीसे कहते हैं कि कर्ध्वछोकमें एक सिद्धशिला स्थान है स्वर्गपुरीके ऊपर पैतालीस लाख योजन लम्बी और उतनी ही पोली है तथा ८ योजन मोटी हैं जैसे मोतीका श्वेतहार था गौदुग्ध है उससे भी उजली है। सोनेके समान प्रकाशमान और स्फटिकसे भी निर्मल है यह सिद्धशिला चौदहवें लोककी शिखापर है और उस सिद्धशिलाके ऊपर शिवपुर धाम उसमें भी मुक्त पुरुष अधर रहते हैं वहां जन्म मरणादि कोई दोष नहीं और

<sup>🍍</sup> जो उत्तमजन होगा वह इस असार जनमार्ग कन्नी न रहेगा।

आनन्द करते रहते हैं पुनः जन्ममरणमें नहीं आते सब कमोंसे छूट जाते हैं यह जैनियोंकी मुक्ति है।।

समीक्षक—विचारना चाहिये कि जैसे अन्य मतमें वैक्रण्ठ, कैलास, गोलोक, श्रीपुर अनि पुराणी, चौथे आसमानमें ईसाई, सातवें आसमानमें मुसलमानोंके मतमें मुक्तिके स्थान लिखे हैं वैसे ही जैनियों की सिद्धशिला और शिवपुर भी हैं। क्योंकि जिसको जैनी लोग क चा मानत हैं वड़ी नीचे वाले जो कि हमसे भूगोलके नीचे रहते हैं खनकी अपेक्षामें नीचा ऊंचा व्यवस्थित पढार्थ नहीं है जो आर्यार्वत्त-वासी जैनी छोग ऊंचा मानने हैं उसी हो अमेरिका वाले नीचा मानते हैं और आर्यावर्तवासी जिसको नीचा मानते हैं उसीको अमेरिकावाले ऊंचा मानते हैं चाहे वह शिला पैतालीस लाखसे दुनी नब्बेलाख कोश की होती तो भी वे मुक्त दन्धनमें हैं क्योंकि उस शिला वा शिवपुरके बाहर निकलनेसे उनकी मुक्ति छूट जाती होगी। और सदा उसमें रहनेकी प्रीति और उससे बाहर जानेमें अप्रीति भी रहती होगी जहां **अ**टकाव व्रीति और अप्रोति है उसको मुक्ति क्योंकर कह सकते हैं १ मक्ति तो जैसी नवमें समुद्धासमें वर्णन कर आये हैं वैसी मानना ठीक है और यह जैनियोंकी मुक्ति भी एक प्रकारका बन्धन है ये जैनी भी मुक्ति विषयमें भ्रमसे फँसे हैं। यह सच है कि विना वेदोंके यथार्थ अर्थ बोयकं मुक्तिकं खरूपको कभी नहीं जान सकते॥

अव और थोड़ीसी असम्भव बार्ते इनकी सुनो । (विवेकसार पृष्ठ ७८) एक करोड़ साठ लाल कलशोंसे महावीरको जनम समयमें स्नान कराया। (विवेकसार पृष्ठ १३६) दशाण राजा महावीरके द्रंशनको गया वहां कुछ अभिमान किया उसके निवारणके लिये १६, ७७, ७२, १६००० इतने इन्द्रके खहूप और १३, ३७, ०६, ७२, ८०, ००००००० इतनी इन्द्राणी वहां आई थीं। देलकर राजा आश्चर्य हो गया।

समीक्षक-अब विचारना चाहिये कि इन्द्र और इन्द्राणियोंके

# समुल्लास] जीनग्रन्थोमें असम्भव वातें। ६०५

खड़े रहनेके लिये ऐसे २ कितने ही भूगोल चाहियें। आद्धितनकृत्य आत्मिनन्दा भावना पृष्ट ३१ में लिखा है कि बावड़ी, कुआ और सालाव न बनवाना चाहिये।।

समीक्षक—भळा जो सब मनुष्य जैनमतमें हो जायें और कुआ साळाब बावड़ी आदि कोई भी न बनवावें तो सब छोग ज**ळ कहांसे** पियें १

प्रश्न—तालाव आदि बनवानेसे जीव पड़ते हैं उससे बनवाने वा को पाप लगता है। इसलिये हम जैनी लोग इस कामको नहीं करते।

बत्तर—तुम्हारी बुद्धि नष्ट क्यों होगई ? क्योंकि जैसे क्षुद्र २ जीवोंके मरनेसे पाप गिनते हो तो बड़े २ गाय आदि पशु और मतुध्यादि प्राणियोंके जल पीने आदिसे महापुण्य होगा उसको क्यों नहीं
गिनते ? (तत्विविवेक पृष्ठ १६६) इस नगरीमें एक नन्दमणिकार
सेठने बावड़ी वनवाई उससे धर्मश्रष्ट होकर सोलइ महारोग हुए, मरके
इसी बावड़ीमें मेंडुका हुआ, महावीरके द्रशनसे उसको जातिस्मरण
होगया, महावीर कहते हैं कि मेरा आना सुनकर वह पूर्व जन्मके
धर्माचार्य जान वन्दनाको आने लगा, मांगमें श्रेणिकके घोड़ेकी टापसे
मरकर शुभध्यानके योगसे दर्दुरांक नाम महद्धिक देवता हुआ, अवधिज्ञानसे मुक्तको यहां आया जान वन्दनापूर्वक कृद्धि दिखाके गया।

समीक्षक—इत्यादि विद्याविरुद्ध असम्भव मिथ्या बातके कहनेवाले महावीरको मर्वोत्तम मानना महाश्रान्तिकी बात है, श्राद्धदिनकृत्य पृष्ठ ३६ में लिखा है कि मृतकवस्त्र साधु ले लेवें।

ससीक्षक—देखिये इनके साधु भी महाब्राह्मणके समान होगये वहा तो साधु लेवें परन्तु मृतकके आभूषण कीन लेवे बहुमूल्य होनेसे घरमें रख लेते होंगे तो आप कीन हुए। (रत्नसार पृ० १०५) भंजने, कूटने, पीसने, अत्र पकाने आहित पाप होना है।

े समीक्षक - अब देखिये इनकी विद्यादीनता भला ये कर्म न किये नायें तो मंतुष्यादि प्राणी केते जी सके १ और जैनी लोग भी पीक्रित होकर मर जायें। (रत्नसार पृ० १०४) बागीचा लगानेसे एक लक्ष

समीक्षक—जो मालीको लक्ष पाप लगता है तो अनेक जीव पत्र, फल, फूल और छायासे आनिह्त होते हैं तो करोंड़ो गुणा पुण्य भी होता ही है इस पर कुछ ध्यान भी न दिया यह कितना अन्धेर है। ( तत्त्वविवेक पृ० २०२ ) एक दिन लिब्य साधु भूलते वेश्याके घरमें चला गया और धर्मसे भिक्षा मांगी वेश्या बोली कि यहां धर्मका काम नहीं किन्तु अर्थका काम है तो उस लिब्य साधुने साढ़े बारह लाख अशर्फी उसके घरमें वर्षा दीं।

समीक्षक—इस बानको सत्य विना नष्टबुद्धि पुरुषके कौन मानेगा १ रत्नसार भाग पृ० ६७ में लिखा है कि एक पाषाणकी मूर्त्ति घोड़े पर चड़ी हुई उसका जहां स्मरण करे वहां उपस्थित होकर रक्षा करनी है।

समीक्षक—कहो जैनीजी ! आजकळ तुम्हारे यहां चोरी, डांका आदि और राष्ट्री भय होता ही है तो तुम उसका स्मरण करके अपनी रक्षा क्यों नहीं करा छेते हो ? क्यों जहां तहां पुलिस आदि राजस्था-नोंमें मारे २ फिरते हो ? अब इनके साधुओंक लक्ष्णः—

सरजोहरणा भैक्षसुजो लुब्बितमूर्द्ध जाः। श्वेताम्बराः क्षमाञ्चोला निःसङ्गा जोनसाधवः॥१॥ लुबिता पिक्षिका हस्ता पाणिपात्रा दिगम्बराः। कर्ध्वासिनो गृहे दातुर्द्धितीयाः स्युर्जिनर्षयः॥२॥ सुङ्क्ते न केवलं न स्त्री मोक्षमेति दिगम्बरः। प्राहुरेषामयं भेदो महान् श्वेताम्बरैः सह॥३॥

जिनके साबुओंक छक्षणांथ जिनदतसूरीय ये रखेकोंते कहे हैं (सरजोहरण) चमरी रखना, और भिक्षा मांगके खाना, शिरके बाल छुब्चित कर देना, श्वेत वस्त्र धारण करना, क्षमायुक्त रहना

# समुल्लास] जीन साधुओंका लक्षण। ६०७

किसीका संगन करना ऐसे उथ्सणयुक्त जैनियोंके श्वेताम्बर जिनको यती कहते हैं।। १।।

दूसरे दिगम्बर अर्थात् वस्न धारण न करना, शिरके बाल उखाड़ हालना, पिन्छिका एक उनके सूर्तोंका माडू लगानेका साधन बगलमें रखना, जो कोई भिक्षा दे तो हाथमें लेकर खालेना ये दिगम्बर दूसरे प्रकारके साधु होते हैं।। २।।

और भिक्षा देनेवाला गृहस्थ जब भोजन कर चुके उसके पश्चात् भोजन करें वे जिनिष्ठ अर्थात् तीसरे प्रकारके साधु होते हैं दिगम्ब-रोंका खेताम्बरोंके साथ इतना ही भेद है कि दिगम्बर लोग स्त्रीका अपर्वा नहीं करते और खेताम्बर कहते हैं इत्यादि बातोंसे मोक्षको प्राप्त होते हैं।। ३।।

यह इनके साधुओंका भेद है। इससे जैन लोगोंका केशलुश्वन सर्वत्र प्रसिद्ध है और पांच मुब्हि लुश्वन करना इन्यादि भी लिख है। विवेकसार भा० पृष्ठ २१६ में लिखा है कि पांच मुब्हि लुश्वन कर चारित्र प्रहण किया अर्थात् पांच मूठी शिरके वाल उवाइके साधु हुआ (कल्पसूत्रभाष्य पृष्ठ १०८) केशलुश्वन करे गौके वालोंके तुल्य रक्ले।

समीक्षक—अब कहिये जैन लोगो ! तुम्हारा द्या धर्म कहां रहा ? क्या यह हिंसा अर्थान् चाहें अपने हाथते लुश्वन करे चाहें उसका गुरु करे वा अन्य कोई परन्तु कितना वड़ा कष्ट उस जीवको होता होगा ? जीवको कष्ट देना ही हिंसा कहाती है । विवेकसार पृ० संवत् १६३३ के सालमें श्वेताम्बरोंमेंसे दूंढिया और ढूंढियोंमेंसे तेरहपन्थी आदि ढोंगी निकले हैं । ढूंढिये लोग पाषाणादि मृत्तिको नहीं मानते और वे भोजन स्नानको लोड़ सर्वदा मुख पर पट्टी बांधे रहते हैं और जती आदि भी जब पुस्तक बांचते हैं तभी मुख पर पट्टी बांधते है अन्य समय नहीं ।

े प्रश्र—मुख पर पट्टी अवश्य बांधना **चाहि**ये क्योंकि "वायुकाय**"** 

धर्मात् जो वायुमें सूक्ष्म शरीरवाले जीव गहते हैं वे मुखके बाफकी बब्धातासे मरते हैं और उसका पाप मुख पर प्ट्टी न बांधनेवाले पर होता है इसल्यि हम लोग मुख पर पट्टी बांधना अच्छा समम्मते हैं।

उत्तर—यह बात बिद्या और प्रत्यक्ष आदि प्रमाणकी रीतिसे अयुक्त है क्योंकि जीव अजर अमर हैं फिर वे मुखकी बाफसे कभी नहीं मर सकते इनको तुम भी अजर अमर मानते हो।

प्रश्न--जीव तो नहीं मरता परन्तु जो मुखके उष्ण वायुसे उनको पीड़ा पहुंचती है उस पीड़ा पहुंचानेवालेको पाप होता है इसील्थिये मुख पर पट्टी बांधना अच्छा है।

उत्तर —यह भी तुम्हारी बात सर्वथा असम्भव है क्योंकि पीड़ा दिये विना किसी जीवका किंचित् भी निर्वाह नहीं हो सकता जब मुखके वायुसे तुम्हारे मतमें जीवोंको पीड़ा पहुंचती है तो चलने, फिरने; बैठने, हाथ उठाने और नेत्रादिके चलानेमें पीड़ा अवश्य पहुंचती होगी इसलिये तुम भी जीवोंको पीड़ा पहुंचानेसे प्रथक् नहीं रह सकते।

प्रश्न—हां जहांतक बन सके वहां तक जीवोंकी रक्षा करनी चाहिये और जहां हम नहीं बचा सकते वहां अशक्त हैं क्योंकि सब बायु आदि पदार्थोंमें जीव भरे हुए हैं जो हम मुख पर कपड़ा न बांधें सो बहुत जीव मरें कपड़ा बांधनेसे न्यून मरते हैं।

उत्तर—यह भी तुम्हारा कथन युक्तिशून्य है क्योंकि कपड़ा बांधनेसे जीवोंको अधिक दुःख पहुंचता है जब कोई मुख पर कपड़ा बांध तो उसका मुखका वायु रुकके नीचे वा पार्श्व और मौन समयमें नासिकाद्वारा इकट्टा होकर वेगसे निकलता है उससे उज्जाता अधिक होकर जीवों को विशेष पीड़ा तुम्हारे मतानुसार पहुंचती होगी। देखो ! जैसे घर व कोठरीके सब दरवाजे बन्द किये व पड़दे, डाले जायें तो उसमें उज्जाता विशेष होती है खुला रखनेसे उत्तनी नहीं होती वैसे मुख पर कपड़ा बांधनेसे उज्जाता अधिक होती है और खुला रहनेसे न्यून वेसे तुम अपने मतानुसार जीवोंको अधिक दुःखदायक हो और जब

# समुल्लास] जैन साधुओंका लक्षण। ६०६

हुका बन्द किया जाता है तव नासिकाके छिट्रोंसे वायु रुक इकट्टा होकर वेगसे निकलता हुआ जीवोंको अधिक धका और पीड़ा करता होगा। देखो । जैसे कोई मनुष्य अग्निको मुखसे फूँकता और कोई नलीसे तो मुखका वाय फैलनेसे कम बल और नलीका वायु इकट्टा होनेसे अधिक बलसे अग्निमें लगता है वैसे ही मुख पर पट्टी बाधकर वायके रोक-नेसे नासिकाद्वारा अतिवेगसे निकल कर जीवोंको अधिक दुःख देता है इससे मुख पर पट्टी बांधनेवाळोंसे नहीं बांधनेवाळे धर्मात्मा हैं। और मुख पर पट्टी बांधनेसे अक्षरोंका यथायोग्य स्थान प्रयत्नके साथ इचारण भी नहीं होता निर्जुनासिक अक्षरोंको सानुनासिक बोल्नेसे तुमको दोष लगता है तथा मुख पर पट्टी बांधनेसे दुर्गन्ध भी अधिक बढता है क्योंकि शरीरके भीतर दुर्गन्य भरा है। शरीरसे जितना बायु निकलता है वह दुर्गन्धयुक्त प्रत्यक्ष है जो वह रोका जाय तो दुर्गन्ध भी अधिक बढ़ जाय जैसा कि वंद "जाजरूर" अधिक दुर्गन्धयुक्त भौर खुला 'हुआ न्यून दुर्गन्धयुक्त होता है वैसे ही मुखपट्टी बांधने, इन्तधावन, मुखप्रधालन और स्नान न करने तथा वस्न न धोनेसे ुम्इारे शरीरसे अधिक दुर्गन्थ उत्पन्न होकर संसारमें बहुतसे रोग करके जीवोंको जितनी पीड़ा पहुंचाते हो उतना पाप तुमको अधिक होता है। जैसे मेले आदिमें अधिक दुर्गन्ध होनेसे "विशूचिका" अर्थात हेजा अदि बहुत प्रकारके रोग उत्पन्न होकर जीवोंको दुःखदायक हो। हैं आर न्यून दुर्गन्ध होनेसे रोग भी न्यून होकर जीवोंको बहुत दुःख नहीं पहुंचता इससे तुम अधिक दुर्गन्थे बढ़ानेमें अधिक अपराधी आर जो मुख पर पट्टी नहीं बांधते, दन्तधावन, मुखप्रक्षालन; स्नान करके स्थान, वस्नोंको शुद्ध रखते हैं वे तुमसे बहुत अच्छे है। जैसे धन्त्यजांकी दुर्गन्धक सहवाससे पृथक् रहनेवाले बहुत अच्छे हैं जैसे भन्त्य जोंकी दुर्गन्धके सहवाससे निर्मल बुद्धि नहीं होती वैसे तुम और पुम्हारे संगियोंकी भी बुद्धि नहीं बढ़ती, जैसे रोगकी अधिकता और बुद्धिके खल्प होनेसे धर्मानुष्ठानकी बाधा होती है वैसे ही दुर्गन्थयुक्त

3\$

हुम्हारा और तुम्हारे सङ्क्षियोंका भी वर्त्तमान होता होगा।

प्रश्न — जैसे बन्द मकानमें जलाये हुए अग्निकी ज्वाला बाहर निकल के बाहर के जीवों को दुःज नहीं पहुंचा सकती वैसे हम मुखपट्टी बांधक वायुको रोककर बाहर के जीवों को न्यून दुःख पहुंचाने वाले हैं। मुखपट्टी बांधनेसे बाहर के वायुके जीवों को पीड़ा नहीं पहुंचती और जैस सामने अग्नि जलना है उसको आड़ा हाथ देनेसे कम लगता है और वायुके जीव शरीरवाले होनेसे उनको पीड़ा अवश्य पहुंचती है।

उत्तर —पह तुम्हारी बात लड़कपनकी है प्रथम तो देखों जहां छिद्र धोर भीतरके वायुका योग बाहरके वायुके साथ न हो तो वहां अनि जल ही नहीं सकता जो इनको प्रत्यक्ष देखना चारो तो किसी फानूसमें हीप जलाकर सब छिद्र बन्द करके देखो तो दीप उसी समय बुम्ह जायगा जैसे पृथिवी पर रहनेवाले मनुष्यादि प्राणी बाहरके वायुके योगके विना नहीं जी सकते वैसे अगिन भी नहीं जल सकता। कि जब एक औरसे अग्निका वेग रोका जाय तो दूसरी ओर अधिक वेगसे निकलेगा और हाथकी आड़ करनेसे मुख पर आंच न्यून लगती है परन्तु वह आंच हाथ पर अधिक लग रही है इसलिये तुम्हारी बात ठीक नहीं।

प्रश्त—इसको सब कोई जानता है कि जब किसी बड़े मनुष्यसे छोटा मनुष्य कानमें वा निकट होकर बात कहता है तब मुख पर पछा बा हाथ छगाता है इसिछिये कि मुखते थूक उड़कर वा दुर्गन्थ उसको ब छगे और जब पुस्तक बांचता है तब अवश्य थूक उड़कर उस पर गिरनेसे उच्छिछ होकर वह बिगड़ जाता है इसिछिये मुख पर पट्टीका बांधना अच्छा है।

उत्तर—इससे यह सिद्ध हुआ कि जीवरक्षांध मुखपट्टी बांधना व्यर्थ है और जब कोई बड़े मनुष्यसे बात करता है तब मुख पर हाथ वा पहा इस्टिंगे रखत है कि उस गुप्त बातको दूसरा कोई व सुन छेवे क्योंकि जब कोई प्रसिद्ध बात करता है तब कोई भी मुख पर हाथ वा पक्षा नहीं धरता, इससे क्या विदिन होता है कि ग्रेप बानके लिये यह बात है। दन्तधावनादि न करनेसे तुम्हारे मुखादि अवयवसि अत्यन्त दुर्गन्ध निकलता है और जब तुम किसी के पास वा कोई हुम्हारे पास बैठता होगा तो विना दुर्गन्धके अन्य क्या आता होगा १ इत्यादि मुखके आड़ा हाथ वा पहा देनेके प्रयोजन अन्य बहुत हैं जैसे बहुत मनुष्यों के सामने गुप बात करनेमें जो अथ वा पछा न लगाया माय तो दूसरोंकी ओर वायुके फैलनेसे बात भी फैल जाय, जब वे दोनों एकान्तमें बात करते हैं तब मुख पर हाथ वा पछा इसिछये नहीं छगाते कि वहां तीसरा कोई सुननेवाला नहीं जो बड़ों ही के ऊपर थूक न गिरे इससे क्या छोटोंके ऊपर शुक गिराना चाहिये ? और उस श्कसे बच भी नहीं सकता क्योंकि हम दूरस्थ बात करें और वायु इमारी ओरसे दूसरेकी ओर जाता हो तो सूक्ष्म होकर उसके शरीर पर वायुके साथ त्रसरेणु अवश्य गिरेगे उसका दोष गिनना अविद्याकी बात है क्योंकि जो मुखकी उष्णतासे जीव मरते वा उनको पीड़ा पहुं-चती हो तो वैशाख वा ज्येष्ठ महीनेमें सूर्य्यकी महा उष्णतासे वायुका-यके जीवोंमेंसे मरे विना एक भी न बच सके. सी उस उष्णतासे भी वे जीव नहीं मर सकते इसिछिये यह तुम्हारा सिद्धान्त भूठा है क्योंकि जो तुम्हारे तीर्थं कर भी पूर्ण विद्वान होते तो ऐसी व्यर्थ बातें क्यों करते ? देखो । पीड़ा उन्हीं जीवोंको पहुंचती है जिनकी वृत्ति सब ध्वयवांके साथ विद्यमान हो, इसमें प्रमाणः—

#### पत्रावयवयोगात्मुखसंवित्तिः ॥ सांख्य० ५।२७॥

जब पांचों इन्द्रियोंका पांचों विषयोंके साथ सम्बन्ध होता है तभी सुख वा दुः अकी प्राप्ति जीवको होती है जैसे बियरको गाळीप्रदान, धन्धेको रूप वा आगेसे सर्प्य व्याधादि भयदायक जीवोंका चला जाना शून्य बहिरीवालेको स्पर्श, पिक्रस रोगवालेको गन्ध और शून्य जिह्नाबालेको रस प्राप्त नहीं हो सकता इसी प्रकार धन जीवोंकी भी

ह्यवस्था है। देलो ! जब मनुष्यका जीव सुषुप्ति दशामें रहतः है तब एसको सुख वा दुःखकी प्राप्ति कुछ भी नहीं होती, क्योंकि वह शरीरके भीतर तो है परन्तु उसका बाहरके अवयवोंके साथ उस समय सम्बन्ध न रहतेसे सुख दुःखकी प्राप्ति नहीं कर सकता और जैसे वैद्य वा आजक उके डाक्टर लोग नशेकी वस्तु खिला वा सुंघाके रोगी पुरुष के शरीरके अवयवोंको काटते वा चीरते हैं उसको उम्र समय कुछ भी दुःख विदित नहीं होता, वैसे वायुकाय अथवा अन्य स्थावर शरीर बाले जीवोंको सुख वा दुःख प्राप्त कभी नहीं हो सकता जैसे मूर्छित प्राणी सुख दुःखको प्राप्त नहीं हो सकता जैसे मूर्छित प्राणी सुख दुःखको प्राप्त नहीं हो सकता किर इनको पीड़ासे बचानेकी बात सिद्ध कैसे हो सकती है ? जब उनको सुख दुःखकी प्राप्ति हो प्रत्यक्ष नहीं होती तो अनुमानादि यहां कैसे युक्त हो सकते हैं।

प्रश्न-जब वे जीव हैं तो उनको सुख दुःख क्यों नहीं होगा।

उत्तर—सुनो भोठे भाइयो ! जब तुम सुपुष्तिमें होते हो तब तुम को सुख दुःख प्राप्त क्यों नहीं होते ? सुखा दुःखकी प्राष्ट्रिका हेतृ प्रसिद्ध सम्बन्ध है, अभी हम इसका उत्तर दे आये हैं कि नशा सुंध्यक ढाक्टर छोग अङ्गाको चीरते फ ड़ां ओर काटते हैं जैसे उनको दुःख विदित नहीं होना इसी प्रकार अिमूर्च्छित जीवोंको सुख दुःख क्यों-कर प्राप्त होवे क्योंकि बहां प्राप्ति होतका साधन कोई भी नहीं।

प्रश्न—देखो ! निलोति अर्थात् जितने हरे शाक, पात और कन्द-भूल हैं उनको हम लोग नहीं खात क्योंकि निलोतिमें बहुत और कन्द्रमूलमें अनन्त जोव ह जो हम उनको खावें तो उन जीवोंको मारने और पीड़ा पहुंचांत्रस हम लोग पानी होजावें।

उत्तर—यह तुम्डारी बड़ी अविद्याकी बात है, क्योंकि हरित शाक खानेमें जीवका मारना मनको पीड़ा पहुंचनी क्योंकर मानते हो ? भछा जब तुमको पीड़ा प्राप्त होती प्रत्यक्ष नहीं दीखती है और जो

# समुक्लास] जैन साधुओंका लक्षण । ६१३

दीखाती है तो हमको भी दिखाळाओ, तुम कभी न प्रत्यक्ष देखा वा हमको दिखा सकोगे। जत्र प्रत्यक्ष नहीं तो अनुमान, उपमान खोर शब्दप्रमाण भी कभी नहीं घट सकता फिर जो हम उपर उत्तर दे आये हैं वह इस बातका भी उत्तर है क्योंकि जो अत्यन्त अन्धकार महासु-धुम्ति और महानशामें जी। हैं इनको सुखा दुःखकी प्राप्ति मानना सुम्हारे नीर्थकरोंकी भी भूछ विदित होती है जिन्होंने तुमको ऐसी युक्ति खोर विद्याविहद्ध उपदेश किया है, भळा जब घरका अन्त है तो उसमें रहनेवाले अनन्त क्योंकर हो सकते हैं ? जब कन्दका अन्त हम देखते हैं तो उसमें रहनेवाले जोवोंका अन्त क्यों नहीं ? इससे यह तुम्हारी बात बड़ी भूछकी है।

प्रश्न—देखो ! तुम लोग विना उष्ण किये कचा पानी पीते हो पह बड़ा पाप करते हो, जैसे हम उष्म पानी पीते हैं वैसे तुम लोग भी पिया करो ।

उत्तर—यह भी तुम्हारी बात भ्रमजालकी है क्योंकि जब तुम पानी को उच्य करते हो तब पानीके जीव सब मरते होंगे और उनका शरीर भी जलमें रंघकर वह पानी सौंकके अकि तुल्य होनेसे जानो तुम उनके शरीरोंका "तजाव" पीते हो इसने तुम बड़े पापो हो । ओर जो छंडा जल पीते हैं वे नहीं क्योंकि जब ठंडा पानी पीयेंगे तब उदरमें जानेसे किचिन उच्यता पाकर श्वासके साथ वे जीव बाहर निकल जायेंगे, जलकाय जीवोंको सुद्धा दुःख प्राप्त पूर्वोक्त रीतिसे नहीं हो सकता पुनः इसमें पाप किसीको नहीं होगा!

प्रश्न—जैसे जाठराग्निसे वैसे उष्णता पाके जलसे बाहर जीव क्यों न निकल जायेंगे १

उत्तर—हां निकल तो जाते परन्तु जब तुम मुख्निक वायुकी उज्जान सासे जीवका मरना मानते हो तो जल उज्जा करनेसे तुम्हारे मतानुसार जीव मर जावेंगे खाळाचिक पीड़ा पाकर निकलेंगे और उनके शरीर इस जलतें रंघ जायेंगे इससे तुम अधिक पानी होगे वा नहीं १ ' प्रश्त—हम अपने हाथसे उष्णं जल नहीं करते और न किसी गृहस्थको उष्ण जल करनेकी अःह्या देते हैं इसलिये हमको **पाप** नहीं !

उत्तर-जो तम उष्ण जल न लेने न पीते तो गृहस्थ उष्ण क्यों करते इसिंखेंये उस पापके भागी तुम ही हो प्रत्युत अधिक पापी हो क्योंकि जो तम किसी एक गृहस्थकों उष्ण करनेकों कहते तो एक ही ठिकाने उष्ण होता जब वे गृहस्थ इस भ्रममें रहते हैं कि न जाने साधुजी किसके घरको आवेंगे इसिलये प्रत्येक गृहस्थ अपने २ घरमें चष्ण जल कर रखते हैं इसके पापके भागी मुख्य तम ही हो। दसरा ध्यधिक काष्ट्र और अग्निके जलने जलानेसे भी उत्पर लिखे प्रमाणे रसोई खेती और व्यापारादिमें अधिक पापी और नरकगामी होते हो फिर जब तुम उष्ण जल करानेके मुख्य निमित्त और तुम उष्ण जलके पीने और ठंडेके न पीनेके उपदेश करनेसे तुमरी मुख्य पापके भागी हो और जो तुम्हार। उपदेश मान कर ऐसी बातें करते हैं वे भी पापी हैं। अब देखों। कि तुम बड़ी अविद्यामें होते हो वा नहीं कि छोटे २ जीशें पर दया करनी और अन्य मत वालोंकी निन्दा, अनुपकार करना क्या थोड़ा पाप है ? जो तुम्हारे तीर्थकरोंका मत सवा होता तो सृष्टिमें इतनी वर्षा निदयोंका चलना और इतना जल क्यों उत्पन्न ईश्वरने किया ? और सुर्ध्यको भी उत्पन्न न करता क्यों कि इममें कोडा-नकांड़ जीव तुम्हारे मतानुसार मरते ही होंगे जब वे विद्यमान थे और तुम जिनको ईश्वर मानते हो उन्होंने दया कर सूर्य्यका ताप और मेघको बन्द क्यों न किया १ और पूर्वोक्त प्रकारसे विना विद्यमान प्राणियोंके दुःख सुखकी प्राप्ति कन्दमूखदि पदार्थीमें रहनेवाले जीवोंको नडी होती सर्वथा सब जीवों पर दया करना भी दुः बका कारण होता है क्योंकि जो तुम्हारे मतानुसार सब मनुष्य हो जावें, चोर डाकुओंको कोई भी दंड न देवे तो कितना बड़ा पाप खड़ा हो जाय, ? इसि छिये दुष्टोंको यथावन् दंड देने और अष्ठोंके पालन करनेमें दया और इससे विपरीत करनेमें दया क्षमारूप धर्मका नाश है। कितनेक जैनी छोस

# समुल्लास] जैनियोंकी असम्भव बातें। ६१५

दुकान करते, उन न्यवहारों में भूठ बोलते, पराया धन मारते और दीनोंको छलना आदि कुर्कम करते हैं उनके निवारणमें विशेष उपदेश क्यों नहीं करते ? और मुखपट्टी बांधने आदि दोंगमें क्यों रहते हो ? जब तुम चेला चेली करते हो तब केशलुश्वन और बहुत दिवस भूखे रहनेमें पराये वा अपने आत्मको पीड़ा दे और पीड़ाको प्राप्त होके हुसरोंको दुःख देते और आत्महत्या अर्थान् आत्माको दुःख देतेवाले होकर दिसक क्यों वनते हो ? जब हाथी, घोड़े, बैल, ऊंट पर चढ़ने और मनुष्योंको मजूरी करानेमें पाप जैनी लोग क्यों नहीं गिनते ! जब तुम्हारे चेले ऊटपटांग वातोंको सत्य नहीं कर सकते तो तुम्हारे हीथेंकर भी सत्य नहीं कर सकते जब तुम कथा बांचते हो तब मार्गमें धोताओं के और तुम्हारे मतानुसार जीव मरते ही होंगे इसल्ये तुम इस पापके मुख्य कारण क्यों होते हो ? इस थोड़े कथनसे बहुत समम हेना कि उन जल, स्थल, वायुके स्थावरशरीरवाले अत्यन्तमूर्छित जीवोंको दुःख वा सुख कभी नहीं पहुंच सकता।

अब जैनियोंकी और भी थोड़ीसी असम्भव कथा लिखते हैं सुनना बाहिये और यह भी ध्यानमें रखना कि अपने हाथसे साढ़े तीन हाथका भनुष होता है और कालकी संख्या जैसी पूर्व लिख आये हैं वैसी ही समस्ता। रत्नसार भाग १ पृष्ठ १६६-१६७ तकमें लिखा है।

- (१) मृषभदेषका शरीर ५०० (पांचसो) धनुष स्प्रेबा और ८४००००० (चौरासी स्रास ) पूर्व वर्षका आयु ।
- (२) अजितनाथका ४५० (चारसौ पचास) धनुष परिमाणका शरीर और ७२०००० (बहुत्तर छाख) पूर्व वर्षका आयु।
- (३) समवनाथका ४०० (चारसो ) धनुष परिमाण शरीर और ६०००००० (साठ छाख) पूर्व वर्षका आयु ।
- (४) अभिनन्दनका ३६० (साढ़े तीनसो ) धनुषका शरीर और १०००० ०० (पचास छ।ख) पूर्व वर्षका आयु।
  - ( ५ ) सुमतिनाथका ३०० (तीनस्ते ) धनुष परिमाणका शरीर

**जोर ४००००० ( चालीस लाख )** पूर्व वर्षका अन्यु ।

(६) पद्मप्रभक्त १४० (एकसौ च लीत) घुपका शरीर और ३००००० (तीस लाख) पूर्व वर्षका आयु।

(७) पार्श्वनाथका २०० (दोसौ) धनुषका शरीर और २००००० (बीस लाख) पूर्व वर्षका आयु।

(८) चन्द्रप्रभक्ता १५० (डेड्सी) धनुष परिमाणका शरीर और १०००००० (दश छाख) पूर्व वर्षका अन्य ।

(६) सुविधिनाथका १०० (सौ) धतुपका शरीर और २०००० (दो लाख) पूर्व वर्षका आयु।

(१०) शीतलनाथका ६० (नब्बे) घडुषका शरीर ओर १००००० (एक लाख) पूर्व वर्षका आयु।

(११) श्रेयांसनाथका ८० (अस्सी) घतुषका शरीर ओर ८४०००० (चौरासी छाख) वर्षका आयु।

(१२) वासुपूच्य खामीका ७० (सार) धनुषका शरीर और ७२००००० (बहत्तर स्राख) वर्षका आग्रु।

(१३) विमलनाथका ६० (साठ) धनुषका शरीर और ६०००००० (साठ लाख) वर्षोका आयु।

(१४) अनन्तनाथका ५० (पचास) धनुषका **शरीर और** ३००००० (तीस सास्र) वर्षोका आयु।

(१५) धर्मनाथका ४५ (पैतालीस) धनुषोंका शारीर ब्योर १००००० (दश लाख) वर्षोंका आयु।

(१६) शान्तिनाथका ४० (चालीस) धनुषोंका शरीर ध्यौर १००००० (एक लाख) वर्षका आयु।

(१७) कुंधुनाथका ३५ ( पैतीस ) धतुषका शरीर और ६५००० ( पंचानवे सहस्र ) वर्षोका आयु।

( १८ ) अमरनाथका ३० ( तीस ) धनुषोंका शरीर और ८४००० ( चौरासी सहस्र ) वर्षोंका आयु ।

# सम्रह्णास] जैनियोंकी असम्भव वार्ते। , ६१७

(१६) महीनाथका २५ (पच्चीस) धनुषोंका शारीर खोर ४४००० (पचपन सहस्र) वर्षोका खायु।

(२०) मुनिसुवृनका २० (बीस) धनुषोंका शरीर और ३०००० (तीस सहस्र) वर्षोका आयु।

(२१) निमनाथका १४ (चौहद) धनुषोंका शरीर खौर १००० (एक सहस्र) वर्षका आयु।

(२२) नेमिनाथका १० (इश) धनुषोंका शरीर खोर १००० (एक सहस्र) वर्षका आय।

ं (२३) पार्श्वनाथका ह (**नौ) हाथका शरीर और** १०**● (सौ)** वर्षका अायु।

(२४) महावीर खामीका ७ (सात ) हाथका शरीर और ७२ (बहत्तर) वर्षोका आयु। ये चौबीस तीथकर जैनियोंके मत चलाने-वाले आचार्य और गुरु हैं इन्हींको जैनी लोग परमेश्वर मानते हैं और ये सब मोक्षको गये हैं इसमें बुद्धिमान् छोग विचार छेवें की इतने बड़ें शरीर और इतना आयु मनुष्यदेहका होना कभी सम्भव है ? इस भूगोलमें बहुत ही थोड़े मनुष्य बस सकते हैं। इन्हीं जैनियोंके गपोड़े हेकर जो पुराणियोंने एकलाख दश सहस्र और एक सहस्र वर्षका आयु लिखा सो भी सम्भव नहीं हो सकता तो जैनियोंका कथन सम्भव कैसे हो सकता है। अब और भी सुनो कल्पभाष्य पृष्ट ४--नागकेतने प्रामकी बराबर एक शिला अंगुजी पर धरली (!)। कल्प-माध्य पृष्ठ ३६-महावीरने अंगूठेसे पृथ्वीको दबाई उससे शेषनाग कम्य गया (!)। कल्पभाष्य पृष्ठ ४६—महावीरको सर्पने काटा रुधिरके बदले द्ध निकला और वह सर्प ८ वें स्वर्गको गया (।)। कल्पभाष्य पृष्ठ ४७ — महावीरके पग पर खीर पकाई और पग न. जरे ( ! ) : ऋत्रभाष्य पृष्ठ १६ — छोटेसे पात्रमें ऊंट बुखाया ( ! ) । रत्नसार भाग १ प्रथम फुठ १४-शरीरके मैछको न उतारे आह न खुजल वं। विवेकसार भा० १ पृष्ठ १६—जैनियोंके एक दससार

साधुने क्रोधित होकर उद्वेगजनक सूत्र पढ़कर एक शहरमें आग लगादी कोर महावीर तीर्थंकरका अतिप्रिय था। विवेक० भा० १ पृष्ठ १२७—राजाकी आज्ञा अवश्य माननी चाहिये। विवेक० भा० १ पृष्ठ २२७—एक कोरक्ष वेश्याने थालीमें सरसोंकी ढेरी लगा उसके उत्पर फूलोंसे ठकी हुई सुई खड़ीकर उस पर अच्छे प्रकार नाच किया परन्तु सुई पगमें गड़ने न पाई और सरसोंकी ढेरी विखरी नहीं (!!!)। तस्वविवेक पृष्ठ २२५—इसी कोशा वेश्याके साथ एक स्थूलमुनिने १२ वर्ष तक भोग किया और प्रधान दीशा लेकर सद्गतिको गया और कोशा वेश्या भी जैनधमको पाली हुई सद्गतिको गई। विवेक० भा० १ पृष्ठ १८५—एक सिद्ध की कन्था जो गलेमें पहिनी जाती है वह ५०० अशर्मी एक वैश्यको नित्य देती रही। विवेक० भा० १ पृष्ठ २२८—चलवान पुरुषकी आज्ञा, देवकी आज्ञा, घोर वनमें कष्टसे निर्वाह, गुरुके रोकने, माता, पिना, कुलाचार्य क्रातीय लोग और धर्मोपरेष्टा इन छः के रोकनेत धर्ममें न्यूनना होने उधर्मकी झान नहीं होती।

समीश्रक—अब देखिये इनकी मिथ्या बाते ! एक मनुष्य प्रामके बराबर पाषाणकी शिलाको अगुली पर कभी घर सकता है ? और पृथिवीके अपरसे अमूठे दाबनेसे पृथिवी कभी दब सकती है ? और जब शेषनाग ही नहीं तो कंपेगा कौन ? ॥ भला शरीरके काटनेसे दूध निकलना किसीने नहीं देखा, सिवाय इन्द्रजालके दूसरी बात नहीं, उसको काटनेवाला सर्प तो खाँगमें गया और महातमा श्रीकृष्ण आदि तीसरे नरकको गये यह कितनी मिथ्या बात है ? ॥ जब महावीरके पग पर खीर पकाई तब उसके पग जल क्यों न गये ? ॥ भजा छोटेसे पात्रमें कभी ऊट आसकता है ? ॥ जो शरीरका मैल नहीं उनारते और खुजलाते होंगे वे दुर्गन्थरूप महानरक भोगते होंगे ॥ जिस साधुने नगर जलाया उसकी द्या और क्षमा कहां गई ? जब महावीरके सङ्गन भी उसका पवित्र आत्मा न हुआ तो अब महावीरके मर

# सर्द्वञ्चास] मिथ्या भूगोल ज्योतिष। ६१६

पीछे उसके आश्रयसे जैन लोग कभी पिवत्र न होंगे।। राजाकी आश्चा माननी चाहिए परन्तु जैन लोग वनिये हैं इसिंखए राजासे डरकर यह बात लिख दी होगी।। कोशा वेश्या चाहे उसका शरीर कितना ही हलका हो तो भी सरसोंकी ढेरी पर सुई खड़ी कर उसके ऊपर नाचना सुईका न छिदना और सरसोंका न बिखरना अतीव भूठ नहीं तो क्या है १।। धर्म किसीको किसी अवस्थामें भी न छोड़ना चाहिये चाहे कुछ भी हो जाय १ भला कन्या वस्त्रका होता है वह नित्यप्रति ५०० अशर्फी किस प्रकार दे सकता है १ अब ऐसी ऐसी असम्भव कहानी इनकी लिखे तो जैनियोंके थोथे पोथोंके सहश बहुत बढ़ जाय इसिंखए अधिक नहीं लिखते अर्थात् थोड़ीसी इन जैनियोंकी बातें छोड़के शेष सब मिथ्या जाल भरा है देखिये:—

### दोसिस दोरिव पढमे। दुगुणा लवणं मिधाय ईसं मे। वारससिस वारसरिव। तत्यिभ इंनि दिठ सिस रविणो॥ प्र०भा० ४ संग्रहणी सूत्र ७७॥

जो जम्बूद्वीप लाख योजन अर्थात् ४ (चार ) लाख कोशका लिखा है उनमें यह पहिला द्वीप कहाता है इसमें दो चन्द्र और दो स्ट्यं हैं और वैसे ही लवण समुद्रमें उससे दुगुणे अर्थात् ४ चन्द्रमा और ४ सूर्य्य हैं तथा धातकीखण्डमें बारह चन्द्रमा और बारह सूर्य्य हैं ॥ और इनको तिगुणा करनेसे छत्तीस होते हैं उनके साथ दो जम्बू- द्वीपके और चार लवण समुद्रके मिलकर ब्यालीस चन्द्रमा और ब्यालीस सूर्य्य कालोदिध समुद्रमें हैं इसी प्रकार अगले २ द्वीप और समुद्रोंमें पूर्वोक्त ब्यालीसको तिगुणा करें तो एकसौ छब्बीस होते हैं उनमें धातकीखण्डके बारह, लवण समुद्रके ४ (चार ) और जम्बूद्वीप के जो दो २ इसी रीतिसे निकाल कर १४४ (एकसौ चवालीस) चन्द्र ओर १४४ सूर्य्य पुष्करद्वीपमें हैं यह भी आधे मनुष्यक्षेत्रकी गणना है परन्तु जहांतक मनुष्य नहीं रहते हैं वहां बहुतसे सूर्य्य और

बहुतसे चन्द्र हैं और जो पिछठे अर्थ पुष्करद्वीरमें बहुत चन्द्र और सूर्य्य हैं वे स्थिर हैं, पूर्वोक्त एकसो चवालीसको तिगुणा करनेसे ४३२ और उनमें पूर्वोक्त जम्बूद्वीयके दो चन्द्रमा, दो सूर्य्य, चार २ लवण समुद्रके और बारह २ धातकीखण्डके और ब्यालीस कालोद्धिके मिलानंते ४६२ चन्द्र तथा ४६२ सूर्य्य पुष्कर समुद्रमें हैं ये सब बाते श्वीजिनसद्रतणीक्षमाश्रवणते इड़ी "संवयणी" में तथा "योतीसकरण्डक पयन्नते" मध्ये और "वन्द्रपन्नति" तथा "सूरपन्नति" प्रमुख सिद्धान्तप्रन्थोंमें इसी प्रकार कहा है।

समीक्षक — अब सुनिये भूगील खगोलके जानने वालो ! इस एक भूगोलमें एक प्रकार ४६२ (चारसो बानवे) और दूसरे प्रकार असंख्य चन्द्र और सूर्य्य जैनी ग्रेग मानते हैं। आप लोगोंका बड़ा भाग्य है कि बंदगतालुय यी सूर्यसिद्धान्तादि ज्योतिए प्रत्योंके अध्ययन्ति ठी कि २ भूगोल खगोल विदिन हुए जो कहीं जैनक महाअन्धरमें होते तो जन्मभर अन्धरमें रहते जैसे कि जैनी लोग अजकल हैं इन अविद्धानोंको यह शंका हुई कि जम्बूद्धीरमें एक सूर्य और एक चन्द्रसे काम नहीं चलना क्योंकि इतनी बड़ी पृथिवियोंको तीस घड़ीमें चन्द्र सूर्य कैसे आसकें। क्योंकि पृथिवीको जो लोग सुर्यादिसे भी बड़ी मानते हैं यही इनकी बड़ी भूल है।

# ्दो सिसदो रवि पंती एगंतरियाङ सठिसंखाया । मैरुंपयाहिणंता । माणुसखित्ते परिअडंति ॥

प्रकरण भा० ४। संप्रहसू० ७६॥

मनुष्यहोकमें चन्द्रमा और सूर्यकी पंक्तिकी संख्या कहते हैं दो चन्द्रमा और दो सूर्यकी पंक्ति (भ्रेणी) हैं वे एक २ छाख योजन अर्थात् चार छाख कोशके आंतरेसे चखते हैं, जैसे सूर्यकी पंक्तिके आंतरे एक पंक्ति चन्द्रकी है इसी प्रकार चन्द्रमाकी पंक्तिके आंतरे सूर्यकी पंक्ति है, इसी रीतिसे चार पंक्ति हैं वे एक २ चन्द्रपंकिमें ६६

## समुँह्णास] मिथ्या भूगोल ज्योतिष। ६२१

चन्द्रमा और एक २ सुरंपिकिमें ६६ सूर्य हैं व चारों पंकि जंबूद्वीपके मेरू पर्वतकी प्रदक्षिणा करती हुई मनुष्यक्षेत्रमें परिश्रमण करती हैं ध्वर्यात् जिस समय जंबूद्वीपके मेरूसे एक सूर्य दक्षिण दिशामें विहरता इस समय दूसरा सूर्य उत्तर दिशामें फिरता है, वैसे ही ख्वण समुद्रकी एक २ दिशामें दो २ चलते फिरते, धातकीखण्डके है, कालोद्धिके २१, पुष्कराद्धिके ३६, इस प्रकार सब मिलकर ६६ सूर्य दक्षिण दिशा धौर ६६ सूर्य उत्तर दिशामें अपने २ कमसे फिरते हैं। और जब इन दोनों दिशाके सब सूर्य मिलाये जायें तो १३२ सूर्य और ऐसे ही छासठ २ में चन्द्रमाकी दोनों दिशाओंकी पंक्तियां मिलाई जायें तो १३२ चन्द्रमा मनुष्यलेकमें चाल चलते हैं। इसी प्रकार चन्द्रमाके साथ नक्षत्रादिकी भी पंक्तियां बहुतसी जाननीं।

• समीक्षक—अब देखो भाई ! इस भूगोलमें १३२ सूर्य और १३२ चन्द्रमा जैनियों के घर पर तपते होंगे भला जो तपते होंगे तो वे जीते कैसे हैं ? और रात्रिमें भी शीतके मारे जैनी लोग जकड़ जाते होंगे ? ऐसी असम्भव बातमें भूगोल खगोलके न जाननेवाले फँसते हैं अन्य बहीं। जब एक सूर्य इस भूगोलके सदश अन्य अनेक भूगोलोंको प्रकाशता है तब इस लोटेसे भूगोलकी क्या कथा कहनी ? और जो शृथिवी न घूमे और सूर्य प्रथिवीक चारों ओर घूमे तो कई एक वर्षोका दिन और रात होवे। और सुमेर विना दिमालयके दूसरा कोई नहीं यह सुर्यके सामने ऐसा है कि जैसे घड़ेके सामने राईका दाना भी नहीं. इन बातोंको जैनी लोग जबतक उसी मतमें रहेंगे तबतक नहीं जान सकते किन्तु सदा अन्धेरेमें रहेंगे।।

समत्तचरण सहियासव्वंलोगं फुसे निरवसेसं । सत्तयचडदसभाए पंचयसुपदेसविरईए ॥

प्रकरण० भाग् ४। संप्रहसू० १३४॥

सम्बद्धारित्र सहित जो केवळी वे केवळ समुद्धात अवस्थासे

सर्व चौदह राज्यळोक अपने आत्मप्रदेश करके फिरंगे।।

समीक्षक—जैनी छोग १४ (चौदह) राज्य मानते हैं उनमेंसे चौदहनें की शिखा पर सर्वाधिसिद्धि विमानकी ध्वजासे उपर थोड़े दूर पर सिद्धिशिछा तथा दिन्य आकाशको शिवपुर कहते हैं उसमें केवली धर्यात् जिनको केवलबान सर्वज्ञता और पूर्व पवित्रता प्रप्त हुई है वे उस लोकमें जाते हैं और अपने आत्मप्रदेशसे सर्वज्ञ रहते हैं। जिसका प्रदेश होता है वह विमु नहीं, जो विमु नहीं, वह सर्वज्ञ केवलज्ञानी कभी नहीं हो सकता क्योंकि जिसका आत्मा एकदेशी है वहीं जाता आता है और बद्ध, मुक्त, ज्ञानी, अज्ञानी होता है सर्वन्यापी सर्वज्ञ वैसा कभी नहीं हो सकता जो जैनियोंके तीर्थंकर जीवरूप अल्प अल्प ज्ञान स्थान स्थत थे वे सर्वन्यापक सर्वज्ञ कभी नहीं हो सकते किन्तु जो परमात्मा अना-धनन्त सर्वन्यापक, सर्वज्ञ, पवित्र, ज्ञानखरूप है उसको जैनी छोग मानते नहीं कि जिसमें सर्वज्ञादि गुण याथातथ्य घटते हैं।।

गन्भनरति पिलयाक । तिगाउ उक्कोसते जहन्ने- जा । मुच्छिम दुहावि अन्तमुहु । अङ्गल असंख भागतणू ॥ २४१ ॥

यहां मनुष्य दो प्रकारके हैं एक गर्भज दूसरे जो गर्भके विना ष्ठत्वन्न हुए उनमें गर्भज मनुष्यका उत्कृष्ट तीन पल्योपमका आयु जानना स्रोर तीन कोशका शरीर ।।

समीक्षक— महा तीन पत्योपमका आयु और तीन कोशके शरीर बाले मनुष्य इस भूगोलमें बहुत थोड़े समा सकें और फिर तीन पत्योपमकी आयु जैमा कि पूर्व लिख आये हैं उतने समय तक जीवें तो बैसे ही उनके सन्तान भी तीन कोशके शरीर वाले होने चाहियें जैसे मुंबईसे शहरमें दो और कलकता ऐसे शहरमें तीन या, चार मनुष्य निवास कर सकते हैं जो ऐसा हैं तो जैनियोंने एक नगरमें मनुष्य लिखे हैं तो उनके रहनेका नगर भी लाखों कोशोंका चाहिये

मिथ्या भूगोल ज्योतिष । समुद्धास] **६२३** 

तो सब भूगो छमें बैसा एक नगर भी न बस सके।।

पणया ललरकयोयण । विरकंभा सिद्धिशिलफ-लिहविमला। तदुवरि गजोयणंते लोगन्तो तच्छ सिर्द्धाठई॥ २५८॥

जो सर्वार्थसिद्धि विमानकी ध्वजासे उत्पर १२ योजन सिद्धशिला है वह बाटला और लंबेपन और पोलपन ४५ (पैतालीस) लाख योजन प्रमाण है वह सब धबला अर्जुन सुवर्णमय स्फटिकके समान निर्मल सिद्धशिलाकी सिद्धभूमि है इसको कोई "ईषत्" "प्राग्भरा" ऐसा नाम कहते हैं यह सर्वार्थसिद्ध शिला विमानसे १२ योजन अलोक भी है यह परमार्थ केवली अन जानता है यह सिद्धशिखा सर्वार्थ मध्य भागमें 🖂 योजन स्थूल हैं वडां से ४ दिशा और ४ उपदिशामें घटती २ मक्खीके पांखके सहरा पतली उत्तानछत्र और आकार करके सिद्धशिख की स्थापना है, उस शिलासे ऊपर १ (एक) योजनके आन्तरे छोकान्त है वहां सिद्धोंकी स्थिति है।।

समीक्षक-अब विचारना चाहिये कि जैनियोंके मुक्तिका स्थान सर्वार्थसिद्धि विमानकी ध्वजाके ऊपर ४४ (पैतालीस ) लाख योज-नकी शिला अर्थात चाहें ऐसी अच्छी और निर्मल हो तथापि उसमें रहनेवाले मुक्त जीव एक प्रकारके बद्ध हैं क्योंकि उस शिलासे बाहर निकळनेमें मुक्तिके सुखसे छूट जाते होंगे और जो भीतर रहते होंगे हो उनको वायु भी न लगता होगा, यह केवल कल्पनामात्र अविद्या-नोंको फैसानेके लिये भ्रमजाल है।।

वितिचडरिं दिस सरीरं। वार सजोयणति कोसव उकोसं जोयणसहस पणिदिय। उहे बुच्छन्ति विसेसंतु ॥ प्र०भा० ४ संग्रहसू० २६७ ॥

सामान्यपनसे एकेन्द्रियका शरीर १ सक्त योजनके शरीरवाळा

उत्कृष्ट्र जानना और दो इन्द्रियवाले जो शंख दिका शरीर १२ योजन-का जानना और चतुरिन्द्रिय भ्रमरादिका शरीर ४ कोशका और पञ्चेन्द्रिय एक सङ्ख्य योजन अर्थात् ४ सङ्ख्य कोशके शरीर वाले नानना ।।

समीक्षक—चार २ सहस्र को राके प्रमाणवाले शरीरधारी हों तो भूगोलमें तो बहुत थोड़े मनुष्य अर्थात् सैकड़ों मनुष्योंसे भूगोल ठस भरजाय किसी को चलनेकी जगर भी न रहे फिर वे जैनियोंसे रहनेका टिका । और मार्ग पूछें और जो इन्होंने लिखा है तो अपने घरमें रख है परन्तु चार सहस्र कोशके शरीर बाठेको निवासार्थ कोई एकके लिये ३२ (बत्तीस) सहस्र कोशका घर तो चाहिये ऐसे एक घरके बनानेमें जैनियोंका सब धन चुक जाय तो भी घर न बन सके, इतने बड़े आठ सहस्र कोशकी छत्त बनानेके लिये लट्टे कहांसे लावेंगे ? और जो उसमें खम्मा लगावें तो वह भीतर प्रवेश भी नहीं कर सकता इसलिये ऐसी बातें मिथ्या हुआ करती हैं।।

# ते थूला पल्ले विद्वसं खिज्ञाचे चहुति सब्वेवि । तेइकिक असंखे । सुहुमे खम्मे पकप्पेह ॥

प्रकरण• भ • ४ । लघुई(त्रसमा० सु० ४ ॥

पूर्वोक्त एक अंगुल लोमके खण्डोंसे ४ कोशका चौरस और उतना ही गहिर। कुआ हो, अगुल प्रमाण लोमका खण्ड सब मिलके बीस लाख सत्तावन सहस्र एकसी बावन होते हैं और अधिकसे अधिक (३३०,७६२६०,७४,४६६६६०,६७६३६००,००००००) हैंतीस कोड़ा कोड़ी, सात लाख ब सठ हजार एकसौ चार कोड़ाकोड़ी, चोबीस ल ख उसठ हजार छासौ पच्चीस इतने कोड़ कोड़ी हथा कालीस ल ख उसठ हजार हाते कोड़ाकोड़ी तथा सत्तानगल ख ब उननीस हजार नौसो साठ इतने कोड़ाकोड़ी तथा सत्तानगल ख बेपन हजाइ और छासौ कोड़ाकोड़ी, इतनी वाटला धन योजन पर ोगमी सर्व स्थूल रोम खण्डकी संख्या होवे यह भी संख्यातकाल

समुक्लास] मिथ्या भूगोल ज्योतिष। ६२५ होता है पूर्वोक्त एक लोग लण्डके असंख्यात लण्ड मनसे कल्पे तब असंख्यात सूक्ष्म रोमाणु होवें।

समीक्षक—अब देखिये ! इनकी गिनतीकी रीति एक अंगुल प्रमाण छोमके कितने खण्ड किये यह कभी किसीकी गिनतीमें आ सकते हैं ? और उसके उपरान्त मनसे असंख्य खण्ड कल्पते हैं इससे यह भी सिद्ध होता है कि पूर्वोक्त खण्ड हाथसे किये होंगे जब हाथसे न होसके तब मनसे किये भला यह बात कभी सम्भव हो सकती है कि एक अंगुल रोमके असंख्य खण्ड होसकें।

### जंब्द्वीपपमाणं गुरुजोयाणरुरक वहविरकंभी। स्रवणाईयासेसा। बरुया भादुगुणदुगुणाय॥

प्रकरण० भः● ४। छघुक्षेत्रसमा० सू० १२॥

प्रथम जम्बूद्वीपका लाल योजनका प्रमाण और पोला है और बाकी खबणादि सात समुद्र, सात द्वीप जम्बूद्वीपके प्रमाणसे दुगुणे २ हैं इस एक पृथिवीमें जम्बूद्वीपादि और सात समुद्र हैं जैसे कि पूर्व खिख आये हैं।

समीक्षक—अब जंबूद्वीपसे दूसरा द्वीप दो लाख योजन, तीसरा चार लाख योजन, चौथा आठ लाख योजन, पांचवां सोलह लाख योजन, लठा बत्तीस लाख योजन और सातवां चौंसठ लाख योजन और उतने प्रमाण वा उनसे अधिक समुद्रके प्रमाणसे इस पन्द्रह सहस्र परिधिवाले भूगोलमें क्योंकर समा सकते हैं ? इससे यह बात केवल मिथ्या है।।

## कुरुनहचुलसी सहसा। छचेवन्तनरई उपह विज-पं। दोदो महानईउ। चतुदस सहसा उपनेयं॥

प्रकरणरत्ना० भा० ४ । लघुक्षेत्रसमा० सू० ६३ ॥ कुरुक्षेत्रमें ८४ ( चौरासी ) सहस्र नदी हैं ॥ समीक्षक—भन्ना कुरुक्षेत्र बहुत छोटा देश है उसको न देखकर एक मिथ्या बात लिखनेमें इनको लजा भी न आई ॥

यमुत्तरा उताउ। इगेग सिंहासणाउ अइपुन्यं। चउ सु वितास निआसण, दिसि भवजिण मज्ज-णं होई॥ प्र०भा० लघुक्षेत्रसमा० ४ सू० ११६॥

उस शिलाके विशेष दक्षिण और उत्तर दिशामें एक २ सिंहासन जानना चाहिये उन शिलाओं के नाम दक्षिण दिशामें अतिपाण्डु कम्बला, उत्तर दिशामें अतिरिक्त कम्बला शिला है उन सिंहासनों पर तीर्थंकर वैठते हैं।।

समीक्षक—देखिये ! इनके तीर्थंकरों के जन्मोत्सवादि करनेकी शिलाको, ऐसी ही मुक्तिकी सिद्धशिला है ऐसी इनकी बहुतसी बातें गोलमाल हैं कहांतक लिखें, किन्तु जल छानके पीना और सूक्ष्म जीवों पर नाममात्र दया करना, रात्रिको भोजन न करना ये तीन बातें अच्छी हैं बाकी जितना इनका कथन है सब असम्भवपस्त है, इतने ही छेखसे बुद्धिमान् लोग बहुतसा जान लेंगे थोड़ासा यह रष्टान्तमात्र लिखा है जो इनकी असंभव बातें सब लिखें तो इतने पुस्तक हो जायें कि एक मनुष्य आयु भरमें पढ़ भी न सके इसल्यि जैसे एक इंडमें चुड़ते बावलोंमेंसे एक बावलकी परीक्षा करनेसे कन्चे वा पक्के हैं सब बावल विदित हो जाते हैं ऐसे ही इस थोड़ेसे छेखसे सज्जन लोग बहुन स्मान्य की बुद्धिमानों के सामने बहुत लिखना आवश्यक नहीं क्यों कि दिग्दर्शनवन सम्पूर्ण आशयको बुद्धिमान् लोग जान ही लेते हैं। इसके आगे ईसाइयोंके मतके विषयमें लिखा जायगा।।

इति श्रीमद्यानन्दसरस्वतीस्वामिनिर्मिते सत्याध्यकाशे सुभाषा-विभूषिते नास्तिकमतान्तर्गतस्वारवाकवौद्धजनमतस्वण्डन-मण्डनविषये द्वःदशः समुद्वासः सम्पूर्णः ॥ १२ ॥

# अनुभूमिका (३)

#### ~@:@~

जो यह बाइबलका मत है वह केवल ईसाइयोंका है सो नहीं किन्तु इससे यहूदी आदि भी गृहीन होते हैं जो यहां १३ (तेरहवें) समुद्धा-समें, ईसाई मतके विषयमें लिखा है इसका यही अभिप्राय है कि **भाजकल बाइबलके मतके ईसाई मुख्य हो रहे हैं औ**र यहूदी आदि गीण हैं मुख्यके प्रहणसे गीणका प्रशुण होजाता है इससे यहदियोंका भी प्रहण समम लीजिये इनका जो विषय यहां लिला है सो केवल बाइब-छमेंसे कि जिसको ईसाई और यहदी आदि सब मानते हैं और इसी पुस्तकको अपने धर्मका मूलकारण सममते हैं। इस पुस्तकके भाषान्तर बहुतसे हुए हैं जो कि इनके मतमें बड़े २ पादरी हैं उन्होंने किये हैं ष्टनमेंसे देवनागरी वा संस्कृत भाषान्तर देखकर मुम्मको बाइबलमें बहुतसी शंका हुई हैं उनमेंसे कुछ थोडी सी इस १३ (तेरहवें) समुझा-समें सबके विचारार्थ छिखी हैं यह छेख केवल सत्यकी वृद्धि और असत्यके हास होनेनेके लिये हैं न कि किसीको दुःख देने वा हानि करने अथवा मिथ्या दोष छगानेके अर्थ । इसका अभिप्राय उत्तर लेखमें सब कोई समम् छेंगे कि यह पुस्तक कैसा है और इनका मत भी कैसा है इस हेखसे यही प्रयोजन है कि सब मनुष्यमात्रको देखना सनना किखना आदि करना सहज होगा और पक्षी प्रतिपक्षी होके विचार कर ईसाई मतका अन्दोलन सब कोई कर सकेंगे इससे एक यह प्रयोजन सिद्ध होगा कि मनुष्योंको धर्मविषयक ज्ञान बढकर यथायोग्य सत्याऽ-सत्य मत और कर्राज्याऽकर्राज्य कर्मसम्बन्धी विषय विदित होकर सत्य और कत्तव्यकर्मका स्वीकार, असत्य और अकत्तव्यकर्मका परि-त्याग करना सहजतासे हैं स्थाना। सब मनुष्योंको अचित है कि

सबके मतविषयक पुस्तकोंको देख समम कर कुछ सम्मति वा अस-म्मति देवें वा लिखे नहीं तो सना करें, क्योंकि जैसे पढ़नेसे पण्डित होता है वैसे सुननेसे बहुञ्जत होता है। यदि श्रोता दूसरेको नहीं सममा सके तथापि आप स्वयं तो समम ही जाता है, जो कोई पश्च-पात रूप यानारूढ़ होके देखां हैं उनको न अपने और न पराये गण होष विदित हो सकते हैं मनुष्यका आत्मा यथायोग्य सत्यासत्यके निर्णय करनेका सामर्थ्य रखता है जितना अपना पठित वा अत है उतना निश्चय कर सकता है यदि एक मत वाले दूसरे मत वालेके विषयोंको जाने और अन्य न जाने तो यथावत् सेवाद नहीं हो सकता किन्तु अज्ञानी किसी भ्रमरूप बाडेमें घिर जाते हैं ऐसा न हो इसलिये इस प्रन्थमें प्रचरित सब मतोंका विषय थोड़ा २ लिखा है इतने ही से शेष विषयोंमें अनुमान कर सकता है कि वे सच्चे हैं वा भूठे, जो २ सर्वमान्य सत्य विषय हैं वे तो सबमें एकसे हैं मागड़ा भूठे विषयोंमें होता है। अथवा एक सन्धा और दूसरा भूठा हो तो भी कुछ थोड़ासा विवाद चलता है। यदि वादीप्रतिवादी सत्यासत्य निश्चयके लिये बादप्रतिवाद करें तो अवश्य निश्चय हो जाय। अब मैं इस १३ वें समुक्षासमें ईसाईमत विषयक थोडासा छिलकर सबके सम्मुख स्थापित करता हं विचारिये कि कैसा है।।

#### अलमितिछेखेन विश्वक्षणवरेषु॥



#### अथ कुश्चीनमतविषयं समीक्षिष्यामः

WATER OF THE PARTY

अब इसके आगे ईसाइयोंके मन विषयमें लिखते हैं जिससे सक्को विदित हो जाय कि इनका मन निर्देश और इनकी बाइबल पुस्तक ईश्वरकृत है वा नहीं रिप्रथम बाइबलके तौरेनका विषय लिखा जाता है:—

१—आरम्भमें ईश्वरने आकाश और पृथितीको सृजा और पृथिवी वेडौल और सूनी थी। और गहिराव पर अनियारा था औरईभरका आत्मा जलके ऊपर डोलता था। पर्व १। आय॰ १। २॥

समीक्षक—आरम्भ किसको कहते हो ? ईसाई - सृष्टिके प्रथमीन्यत्तिको ।

समीक्षक—क्या यही सृब्टि प्रथम हुई इसके पूर्व कभी नहीं हुई थी ?

ईसंई—इम नहीं जानते हुई थी वा नहीं ईश्वर जाने।

समीक्षक — जब नहीं जानते तो इस पुस्तक पर विश्वास क्यों किया ? कि जिससे सन्देहका निवारण नहीं होसकता और इसीके भरोसे छोगों को उपदेश कर इस सन्देहके भरे हुए मनमें क्यों कसाते हो ? और निःसन्देह सर्वशंकानिवारक वेदमतको स्वीकार क्यों नहीं करते ? जब तुम ईश्वरकी सुष्टिका हाल नहीं जानते तो ईश्वरको केसे जानते होगे ? आकाश किसको मानते हो ?

**ई**स:ई—पोछ और ऊपरको।

समीक्षक—पोलकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई क्योंकि यह विभु पदांध और अतिसूक्ष्म है और ऊपर नीचे एकसा है। जब आकाश नहीं सूजा था तब पोल और आकाश था वा नहीं ? जो नहीं था तो ईरवर जगत्का कारण और जीव कहां रहते थे ? विना आकाशके कोई पदांध स्थित नहीं हो सकता इसीलिये तुम्हारी बाइबलका कथन युक्त नहीं। ईरवर बेडौल, उसका ज्ञान कर्म बेडौल होता है वा सब हौलवाला ?

ईसाई—डौलवाला होता है।

समीक्षक—तो यहां ईश्वरकी बनाई पृथिवी वेडौठ थी ऐसा क्यों ठिखा ?

ईसाई—वेडोलका अथं यह है कि ऊ ची नीची थी बराबर नहीं।

'समीक्षक—किर बराबर किसने की १ और क्या अब भी ऊ ची
नीची नहीं है १ इसलिये ईरवरका काम बेडोल नहीं हो सकता, क्योंकि
वह सर्वज्ञ है, उसके काममें न भूल न चूक कभी हो सकती है ! और
बाइवलमें ईरवरकी सृष्टि बेडोल लिखी इसलिये यह पुस्तक ईरवरकृत
नहीं हो सकता है। प्रथम ईरवरका आतमा क्या पदार्थ है?

ईसाई--चेतन।

समीक्षक--- शह साकार है वा निराकार तथा व्यापक है वा एकदेशी।

ईसाई—निराकार चेतन और व्यापक है परन्तु किसी एक सनाई पर्वत, चौथा आसमान आदि स्थानों में विशेष करके रहना है।

समीक्षक — जो निराकार है तो उसको किसने देखा ओर व्याप-कका जल पर डोलना कभी नहीं हो सकता भला जब ईश्वरका आत्मा जल पर डोलना था तब ईश्वर कहां था ? इससे यही सिद्ध होता है कि ईश्वरका शरीर कहीं अन्यत्र स्थित होगा अथवा अपने कुछ आत्माके एक दुकड़ेको जल पर बुलाया होगा जो ऐसा है तो विभु और सर्वज्ञ कभी नहीं हो सकता जो विभु नहीं तो जगत्की रचना धारण पालन

## समुक्लास] बाइबिलमें छुष्टि, समीक्षा । ६३१

भीर जीवोंक कर्मोकी व्यवस्था वा प्रलय कभी नहीं कर सकता क्योंकि जिस पदार्थका संरूप एकदेशी उसके गुण, कर्म, स्वभाव भी एकदेशी होते हैं जो ऐसा है तो वह ईश्वर नहीं हो सकता क्योंकि ईश्वर सर्ववयापक, अनन्त गुण कर्म स्वभावयुक्त सिक्चिदानन्दस्वरूप, नित्य, शुद्ध सुद्ध, मुक्तस्वभाव, अनादि अनन्तादि स्थ्रणयुक्त वेदोंमें कहा है उसीको मानो तभी तुम्हारा कल्याण होगा अन्यथा नहीं!। १।।

२ — और ईश्वरने कहा कि उजियाला होने और उजियाला होगया॥ और ईश्वरने उजियालेको देखा कि अच्छा है॥ पर्व१। आपा०३। ४॥

समीक्षक—क्या ईश्वरकी बात जड़रूप उजियालेने सुन ली १ जो सुनी हो तो इस समय भी सूर्य्य और दीप अग्निका प्रकाश हमारी तुम्हारी बात क्यों नहीं सुनता १ प्रकाश जड़ होता है वह कभी किसीकी बात नहीं सुन सकता क्या जब ईश्वरने उजियालेको देखा तभी जाना कि उजियाला अच्छा है १ पहिले नहीं जानता था जो जानता होता तो देखकर अच्छा क्यों कहता १ जो नहीं जानता था तो वह ईश्वर ही नहीं इसलिये तुम्हारी बाइबल ईश्वरोक्त और उसमें कहा हुआ ईश्वर सर्वज्ञ नहीं है।। २।।

३—और ईरवरने कहा कि पानियोंके मध्यमें आकाश होवे और पानियोंको पानियोंसे विभाग करे तब ईश्वरने आकाशको बनाया और आकाशके नीचेके पानियोंको आकाशके ऊपरके पानियोंसे विभाग किया और ऐसा होगया। और ईश्वरने आकाशको खंग कहा और सांक और बिहान दूसरा दिन हुआ। । पर्व १। आ० ६। ७। ८ ॥

समीक्षक—क्या आकाश और जलने भी ईरवरकी बात सुन ली १ क्षीर जो जलके बीचमें आकाश न होता तो जल रहता ही कहां १ प्रथम आयतमें आकाशको सृजा था पुनः आकाशका बनानाः व्यक्षे हुआ। जो आकाशको स्वर्ग कहा तो वह सर्वव्यापक है इसल्कि स्वर्का स्वर्ग हुआ फिर ऊपरको स्वर्ग है यह कहना व्यर्थ है। जब सूर्व्य उल्ला ही नहीं हुआ था तो पुनः दिन और रात कहांसे होगई ऐसी असम्भव बातें आगेकी आयतोंमें भरी हैं ॥ ३॥

४—तब ईश्वरने कहा कि हम आदमको अपने स्वरूपमें अपने समान बनावें ।। तब ईश्वरने आदमको अपने स्वरूपमें उत्पन्न किया उसने उसे ईश्वरके स्वरूपमें उत्पन्न किया उसने उन्हें नर और नारी बनाया ।। और ईश्वरने उन्हें आशीष दिया ।। पर्व १ । आ० २६ । २७ । २८ ।।

समीक्षक—-यदि आदमको ईरवरने अपने स्वरूपमें बनायां तो ईरवरका स्वरूप पवित्र, ज्ञानस्वरूप, आनन्दमय आदि लक्षणयुक्त है उसके सदृश आदम क्यों नहीं हुआ है जो नहीं हुआ तो उसके स्वरूप पमें नहीं बना और आदमको उत्पन्न किया तो ईरवरने अपने स्वरूप ही को उत्पत्तिवाला किया पुनः वह अनित्य क्यों नहीं १ और आद-मको उत्पन्न कहांसे किया १

ईसाई—मट्टीसे बनाया। समीक्षक—मट्टी कहांसे वनाई ? ईसाई—अपनी कुद्रत अर्थात् सामर्थ्यसे। समीक्षक—ईश्वरका सामर्थ्य अनादि है वा नवीन ? ईसाई—अनादि है।

समीक्षक — जब अनादि है तो जगत्का कारण सनातन हुआ फिर अभावसे भाव क्यों मानते हो ?

ईसाई—सृष्टिके पूर्व ईश्वरके विना कोई वस्तु नहीं थी।

समीक्षक — जो नहीं थी तो यह जगत कहांसे बना ? और ईश्व-रका सामर्थ्य द्रव्य है वा गुण ? जो द्रव्य है तो ईश्वरसे भिन्न दूसरा पदार्थ था और जो गुण है तो गुणसे द्रव्य कभी न ीं बन सकता जैसे रूपसे अग्नि और रससे जल नहीं बन सकता और जो ईश्वरसे जगत् बना होता तो ईश्वरके सदृश गुण, कम, स्वभाववाला होता, उसके गुण, कम, स्वभावके सदृश न होनेसे यही निश्चय है कि ईश्वरसे मही बना किन्तु जगत्के कारण अर्थात् परमाणु आदि नामवाले जड़से बना है, जैसी कि जगत्की उत्पत्ति वेदादि शाकोंमें लिखी है वैसी ही मान लो जिससे ईश्वर जगत्को बनाता है. जो आदमका भीतरका स्वरूप जीव और बाहरका मनुष्यके सदश है तो वैसा ईश्वरका स्वरूप क्यों नहीं १ क्योंकि जब आदम ईश्वरके सदश बना तो ईश्वर आद-मके सदश अवश्य होना चाहिये ॥ ४॥

५—तब परमेश्वर ईश्वरने भूमिकी धूळसे अहमको बनाया और इसके नथुनोंमें जीवनका श्वास फूंका और अहम जीवता प्राण हुआ।। आर परमेश्वर ईश्वरने अहनमें पूर्वकी ओर एक बाड़ी लगाई और उस आदमको जिसे उसने बनाया था उसमें रक्खा।। और उस बाड़ीके मध्यम जीवनका पेड़ और भले बुरेके झानका पेड़ भूमिसे दगाया।। पर्व २। आ० ७। ८। ह।।

समीक्षक—जब ईश्वरने अदनमें बाड़ी बनाकर उसमें आदमको रक्ष्या तब ईश्वर नहीं जानता था कि इसको पुनः यहांसे निकालना पड़ेगा? और जब ईश्वरने आदमको धूलीसे बनाया तो ईश्वरका स्वरूप नहीं हुआ और जो है तो ईश्वर भी धूलीसे बना होगा? जब उसके नथुनोंमें ईश्वरने श्वास फूका तो वह श्वाश ईश्वरका स्वरूप था वा भिन्न ? जो भिन्न था तो ईश्वर आदमके स्वरूपमें नहीं बना जो एक है तो आदम और ईश्वर एकसे हुए और जो एकसे हैं तो आदम और ईश्वर एकसे हुए और जो एकसे हैं तो आदम और ईश्वर एकसे हुए और जो एकसे हैं तो आदम और ईश्वर एकसे हुए और जो एकसे हैं तो आदम और ईश्वर एकसे हुए और जो एकसे हैं तो आदम आगे, फिर वह ईश्वर क्योंकर हो सकता है ? इसल्ये यह तौरेतकी बात ठीक नहीं विदित होती और यह पुस्तक भी ईश्वरकृत नहीं है।।।।।

६ — और परमेश्वर ईश्वरने आहमको बड़ी नींदमें डाला और बह सोगया तब उसने उसकी पसिलयोंमेंसे एक पसली निकाडी और उसकी सिन्त मांस भर दिया और परमेश्वर ईश्वरने आदमकी उस पसलीसे एक नारी बनाई और उसे आदमके पास छाया ॥ पर्व २ । आ० २१। २२॥

समीक्षक — जो ईरबरने आदमको धूळीसे बनाया तो उसकी की धूळीसे क्यों नहीं बनाया ? और जो नारीको हड्डीसे बनाया तो आदमको हड्डीसे क्यों नहीं बनाया ? और जैसे नरसे निकळनेसे नारी नाम हुआ तो नारीसे नर नाम भी होना चाहिये और उनमें परस्पर प्रेम भी रहे जैसे कीके साथ पुरुष प्रेम करे बैसे पुरुषके साथ की भी प्रेम करे। देखो विद्वान छोगो ! ईरवरकी कैसी पदार्थविद्या अर्थात् "फिलासफी" चिलकती है ! जो आदमकी एक पसली निकाक कर नारी बनाई तो सब मनुष्योंकी एक पसली कम क्यों नहीं होती ? और स्त्रीके शरीरमें एक पसली होनी चाहिये क्योंकि वह एक पसलीसे बनी है क्या जिस सामग्रीसे सब जगत् बनाया उस सामग्रीसे स्त्रीका शरीर नहीं बन सकता था ? इमलिये यह बाइबलका सृष्टिकम सृष्टिविद्यासे विरुद्ध है ॥ ६ ॥

७—अब सर्प्य भूमिक हर एक पशुसे जिसे परमेश्वर ईश्वरने बनाया था धूर्त था और उसने स्त्रीने कहा क्या निश्चय ईश्वरने कहा है कि तुम इस बाड़ीके हर एक पेड़से न खाना ॥ और स्त्रीने सर्पसे कहा कि हम तो इस बाड़ीके पेड़ों का फल खाते हैं। परन्तु उस पेड़का फल जो बाड़ीके बीचमें है ईश्वरने कहा कि तुम उसे न खाना और न छूना न हो कि मरजाओ। तब सर्पने स्त्रीसे कहा कि तुम निश्चय न मरोगे। क्योंकि ईश्वर जानता है कि जिस दिन तुम उसे खाओगे हुम्हारी आंखें खुउ जायेंगी और तुम भले बुरेकी पहिचानमें ईश्वरके समान हो जाओगे। और जब स्त्रीने देखा वह पेड़ खानेमें सखाद और हिन्दों सुन्दर और बुद्धि हेनेके योग्य है तो उसके फलमेंसे लिया और खाया और अपने पतिको भी दिया और इसने खाया तब उन होनोंकी आंखें खुउ गई और वे जान गये कि हम नंगे हैं सो उन्होंने अबजीरके पत्तोंको मिलाके सिया और अपने लिये ओढ़ना बनाया तब एरमेश्वर ईश्वरने सर्प्यसे कहा ि जो तूने यह किया है इस कारण तू सारे ढोर और इरएक बनके पश्चसे अधिक स्नापित होगा

# समुद्धास] ईसाई ईरवरका वहकाना। ६३५

तू अ ने पेटके बळ चलेगा और अपने जीवन भर धूळ खाया करेगा॥ आर में तुम्ममें और स्त्रीमें तेरे दंश और उसके वंशमें वैर डालूंगा वह तेरे शिरको कुचलेगा और तू उसकी एड़ीको काटेगा॥ और उसने स्त्रीको कहा कि मैं तेरी पीड़ा और गर्मधारणको बहुत बढ़ाऊ गा, तू पीड़ासे बालक जनेगी और तेरी इच्छा तेरे पति पर होगी और वह तुम्म पर प्रभुगा करेगा॥ और उसने आदमसे कहा कि तू ने जो अपनी पत्नीको शब्द माना है और जिस पेड़से मैंने तुम्मे खानेको बर्जा था तूने खाया है इस कारण भूमि तेरे लिये स्नापित है अपने जीवन भर तू उससे पीड़ाके साथ खायगा॥ और वह कांटे और ऊटकटारे तेरे लिये उगावेगी और तू खेतका साग पत खायगा॥ तौरेत उत्पत्ति पर्व ३। आ १२। २। ३। ४। १। ६। ७। १४। १६। १६। १८। १८।

, समीक्षक—जो ईसाइयोंका ईरवर सर्वज्ञ होता तो इस धूर्त सर्प्य अर्थात् रीतानको क्यों बनाता ? और जो बनाया तो वही ईरवर अप-राधका भागी है क्योंकि जो वह उसको दुष्ट न बनाता तो वह दुष्टता क्यों करता ? और वह पूर्व जन्म नहीं मानता तो विना अपराध उसको पापी क्यों बनाया ? और सच पूछो तो वह सर्प्य नहीं था किन्तु मनुष्य था क्योंकि जो मनुष्य न होता तो मनुष्यकी भाषा क्योंकर बोल सकता ? और जो आप भूठा और दूसरेको भूठमें खलावे उसको रीतान कहना चाहिये सो यहां रीतान सत्यवादी और इससे असने उस स्त्रीको नहीं बहकाया किन्तु सच कहा और ईरवरने आदम और इव्वासे भूठ कहा कि इसके खानेसे तुम मर जाओगे जब वह पेड़ ज्ञानदाता और अमर करनेवाला था तो उसके फल खानेसे क्यों बर्जो और जो बर्जा तो बह ईरवर मूठा और बहकाने बाला ठहरा। क्योंकि उस वृक्षके फल मनुष्योंको ज्ञान और मुलकारक थे अज्ञान और मृत्युकारक नहीं, जब ईरवरने फल खानेसे वर्जा तो उद्य वृक्षकी उत्पत्ति किसलिये की थी ? जो अपने किय की तो क्या

आप अज्ञानी और मृत्युधर्मवाला था ? और जो दूसरोंके लिये बनाया तो फळ खानेमें अपराध कुछ भी न हुआ और आजकल कोई भी क्क ज्ञानकारक और मृत्युनिवारक देखतेमें नहीं आता, क्या ईश्वरने इसका बीज भी नष्ट कर दिया? ऐसी ब तोंसे मनुष्य छली कपटी होता है तो ईश्वर वैसा क्यों नहीं हुआ ? क्यों कि जो कोई दूसरेंसे छड कपट करेगा वह छडी कपटी क्यों न होगा ? और जो इन तीनोंको शाप दिया वह विना अपराधंत है पुनः वह ईश्वर अन्यायकारी भी हुआ और यह शाप ईश्वरको होना चाहिये क्योंकि वह मूठ बोला धीर उनको बहकाया यह "फिजासफी" देखी क्या विना पीडाके गर्भ-धारण और बालकका जन्म हो सकता था ? और विना श्रमके कोई अपनी जीविका कर सकता है ? क्या प्रथम कांटे आदिके प्रक्षा न थे ? और जब शाक पात खाना सब मनुष्योंको ई खरके करनेसे उचित हुआ तो जो उत्तरमें मांस खाना बाइबलमें छिवा वह मूठा क्यों नहीं और जो वह सचा हो तो हह मूठा है जब अद स्का कुछ भी अपराध सिद्ध नहीं होता तो ईसाई छोग सब मनुष्योंको आदमके अपराधसे सन्तान होने पर अपराधी क्यों कहते हैं ? भला ऐसा पुस्तक और ऐसा ईश्वर कभी बुद्धिमानोंके सामने योग्य हो सकता है ? ॥ ७ ॥ 🗸

— और परमेश्वर ईश्वरने कहा कि देखों ! आदम भड़े बुरेंके जाननेमें हममेंसे एककी नाई हुआ और अब ऐसा न होने कि वह अपना हाथ डाले और जीवनके पेड़मेंसे भी लेकर खाने और अमर होजाय सो उसने आदमको निकाल दिया और अदनकी बाड़ीकी पूर्व और करोबीम चमकते हुए खड़ग जो चारों ओर घूमते थे, छिये हुए ठहराये जिनसे जीवनके पेड़के मार्गकी रखनाली करें॥ पर्व ३। आ० २२। २४॥

समीक्षक — भला ! ईश्वरको ऐसी ईब्यां और भ्रम क्यों हुआ कि ज्ञानमें हमारे तुल्य हुआ ? क्या यह बुरी बात हुई ? यह शङ्का ही क्यों पड़ी ? क्योंकि ईश्वरके तुल्य कभी कोई नहीं हो सकता ' परन्तु इस छेखसे यह भी सिद्ध हो सकता है कि वह ईश्वर नहीं था किन्तु मनुष्य विशेष था, बाइबलमें जहां कहीं ईश्वरकी बात आती है वहां मनुष्यके तुल्य ही लिखी आती है, अब देखो । आदमके ज्ञानकी बढ़तीमें ईरवर कितना दुःखी हुआ और फिर अमर वृक्षके फल खानेमें कितनी ईच्या की, और प्रथम जब उसको बारीमें रक्खा तब उसको भविष्यत्का ज्ञान नहीं था कि इसको पुनः निकालना पड़ेगा इसलिये **ईसाइयोंका ई**श्वर सर्वज्ञ नहीं था और चमकते खड़गका पहिरा रक्खा यह भी मनुष्यका काम है ईश्वरका नहीं ।। ८ ।।

E-और कितने दिनोंके पीछे यों हुआ कि काइन भूमिके फळों-मेंसे परमेश्वरके लिये भेट लाया।। और हाबीज भी अपनी झण्ड \* मेंसे पहिलौठी और मोटी २ भेड़ लाया और परमेश्वरने हाबील और **इसकी मेटका आदर किया पर**न्तु कानइका, उसकी मेटका आदर न किया इसिळिये काइन अतिकृपित हुआ और अपना मुंह फुळाया।। तब परमेश्वरने काइनसे कहा कि तू क्यों कुद्ध है और तेरा सुँह क्यों फुल गया॥ तौ० पर्व ४। आ०३।४।६॥

समीक्षक-यदि ईश्वर मांसाहारी न हो तो भेडकी भेट और हाबीलका सत्कार और काइनका तथा उसकी भेटका ंतिरस्कार क्यों करता ? और ऐसा मागड़ा छगाने और हाबीछके मृत्यका कारण भी ईरवर ही हुआ और जैसे आपसमें मनुष्य छोग एक दूसरेसे बातें करते हैं वैसे ही ईसाइयोंके ईश्वरकी बातें हैं बगीचेमें आना जाना उसका बनाना भी मनुष्योंका कर्म है इससे विदित होता है कि यह बाइबल मनुष्योंकी बनाई है ईश्वरकी नहीं ।। ६ ।।

१० - जब परमेश्वरने काइनसे कहा तेरा भाई हाबिल कहां है स्रोर वह बोला में नहीं जानता क्या में अपने भाईका रखवाला है।। तब उसने कहा तुने क्या किया तेरे भाईके छोहका शब्द भूमिसे मुसे

<sup>\*</sup> मेड् वकरियोंके फुंड ॥

पुकारता है।। और अब तूपृथिवीसे सापित है।। तौ० पर्व ४। आ० ६।१०। ११॥

समिक्षिक—क्या ईश्वर काइनसे विना पूछे हाबिलका हाल नहीं जानता था और लोहका शब्द भूमिसे कभी किसीको पुकार सकता है? ये सब बातें अविद्वानोंको हैं इसलिये यह पुस्तक न ईश्वर और न विद्वानका बनाया हो सकता है।। १०।।

११—और हन्क मतूसिलहकी उत्पत्तिके पीछे तीनसौ वर्षलों ईश्व-रके साथ २ चलता था ।। तौ० पर्व ४ । आ॰ २२ ।।

समीक्षक—भला ईसाइयोंका ईश्वर मनुष्य न होता तो हनूक उसके साथ २ क्यों चलता ! इससे जो वेदोक्त निराकार ईश्वर है उसीको ईसाई लोग मानें तो उनका कल्याण होवे !! ११ !!

१२—और उनसे बेटियां उत्पन्न हुई।।। तो ईश्वरके पुत्रोंने बादमकी पुत्रियोंको देखा कि वे सुन्दरी हैं और उनमेंसे जिन्हें उन्होंने बाहा उन्हें ज्याहा।। और उन दिनोंमें पृथिवी पर दानव थे और उसके पीछे भी जब ईश्वरके पुत्र आदनकी पुत्रियोंसे मिले तो उनसे बालक उत्पन्न हुए जो बलवान हुए जो आगोसे नामी थे॥ और ईश्वर ने देखा कि आदमकी दुष्टता पृथिवी पर बहुत हुई और उनके मनकी चिंता और भावना प्रतिदिन केवल बुरी होती है।। तब आदमीको पृथिवी पर उत्पन्न करनेसे परमेश्वर पल्लतया और उसे अतिशोक हुआ।। तब परमेश्वरने कहा कि आदमीको जिसे मैंने उत्पन्न किया आदमीसे लेके पगुनलों और रंगवैयोंको और आकाशके पिक्षयोंको पृथिवी परसे नष्ट करूंगा क्योंकि उन्हें बनानेसे में पल्लताता हूं।। तौठ पर्व ६। आ० १। २। ४। १। ६। ७।।

समीक्षक — ईसाइयोंसे पृछना चाहिये कि ईश्वरके बेटे कौन हैं १ जोर ईश्वरकी की, सास, श्वसुर, साला और सम्बन्धी कौन हैं क्योंकि अब तो आदमीकी बेटियोंके साथ विवाह होनेसे ईश्वर इनका सम्बन्धी हुआ और जो उनसे उत्पन्न होते हैं वे पुत्र और प्रपीत हुए क्या ऐसी बात ईश्वर और ईश्वरके पुस्तककी हो सकती है ? किन्तु यह सिद्ध होता है कि उन जङ्गंळी मनुष्योंने यह पुस्तक बनाया है, वह ईश्वर ही नहीं जो सर्वज्ञ न हो न भविष्यत्की बात जाने वह जीव है क्या जब सृष्टि की थी तब आगे मनुष्य दुष्ट होंगे ऐसा नहीं जानता था ? और पछताना अति शोकादि होना भूळसे काम करके पीछे पश्चात्ताप करना आदि ईसाइयोंके ईश्वरमें घट सकता है कि ईसाइयोंका ईश्वर पूर्ण विद्वान योगी भी नहीं था नहीं तो शान्ति और विज्ञानसे अतिशोकादिसे पृथक् हो सकता था। भळा पशु पश्ची भी दुष्ट होगये यदि वह ईश्वर सर्वज्ञ होता तो ऐसा विष्यं दी क्यों होता ? इसळिये यह न ईश्वर और न यह ईश्वरकृत पुस्तक हो सकता है जैसे वेदोक्त परमेश्वर सब पाप, क्छेश, दुःख, शोकादिसे रहित "सिच्च्हानन्तस्वरूप" है उसको ईसाई छोग मानते वा अब भी मानें तो अपने मनुष्यजन्मको सफळ कर सकें।। १२॥

ड १३—उस नावकी लम्बाई तीनसी हाथ और चौड़ ई पचास हाथ और ऊंचाई तीस हाथकी होवे ।। तू नावमें जाना तू और तेरे बेटे और तेरी पत्नी और तेरी बेटों की पत्नियाँ तेरे साथ और सारे शरीरों मेंसे जीवता जन्तु हो २ अपने साथ नावमें छेना जिससे वे तेरे साथ जीते रहें वे नर और नारी होवें ॥ पंछी मेंसे उसके भांति २ छे और ढोर क्ष में से उसके भांति २ के और पृथिवी के हरएक रेंगवें यों मेंसे भांति २ के इरएकमेंसे दो २ तुम्ह पास बावें जिससे जीते रहें ।। और तू अपने लिये खानेको सब सामग्री अपने पास इकट्ठा कर वह तुम्हारे और उनके लिये भोजन होगा।। सो ईश्वरकी सारी आज्ञाके समान नूड़ने किया।। तो ० पर्व ६। आ० १६। १८। १८। २०। २१। २२।।

, समीभ्रक—भळा कोई भी विद्वान् ऐसी विद्यासे विरुद्ध असम्भव बालके वक्ताको ईशवर मान सकता है १ क्योंकि इतनी बड़ी चौड़ी

<sup>\*</sup> चौपावे ।

ų١,

कंची नावमें हाथी, हथनी, कंट, कंटनी आदि कोड़ों जन्तु और उनके खाने पीनेकी चीने वे सब कुटुम्बके भी समा सकते हैं ? यह इसिंख्ये मनुष्यकृत पुस्तक है जिसने यह लेख किया है वह विद्वान् भी नहीं था।। १३।।

१४—और नूह परमेश्वरके लिये एक वेदी बनाई और सारे पिवत पशु और हरएक पिता पंलियों मेंसे लिये और होमकी मेट उस वेदी पर चढ़ाई और परमेश्वरने सुगन्ध सूचा और परमेश्वरने अपने मनमें कहा कि आदमीके लिये में पृथिवीको किर कभी लाप न टूंगा। इस कारण कि आदमीके मनकी भावना उसकी लड़ाईसे बुरी है और जिस रीतिसे मैंने सारे जीवधारियोंको मारा किर कभी न मारूंगा। सौ० पर्व० ८। सा० २०। २१॥

समीक्षक—वेदी के बनाने, होम करनेके लेखसे यही सिद्ध होता है कि ये बातें वेदोंसे बाइबलमें गई हैं क्या परमेश्वरके नाक भी है कि जिससे सुगन्ध सूंबा ? क्या यह ईस इयों का ईश्वर मनुष्यवत् अल्पन्न नहीं है ? कि कभी शाप देता है और कभी पछताता है, कभी कहता है शाप न दूंगा, पहिले दिया था और फिर भी देगा प्रथम सबको मार हाला और अब कहता है कि कभी न माहंगा !!! ये बातें सब लड़कों की सी हैं ईश्वरकी नहीं और न किसी विद्वानकी क्योंकि विद्वानकी भी बात और प्रतिक्वा स्थिर होती है। १४॥

१६—और ईश्वरने नूहको और उसके वेटोंको आशीव दिया और इन्हें कहा ॥ कि हरएक जीता चलता जन्तु तुम्हारे भोजनके िक्ये होगा मैंने हरी तरकारीके समान सारी वस्तु तुम्हें दी केवल मास इसके जीव अर्थात उसके लोहू समेत मत खाना ॥ ती • पर्व ६। आ० १।३।४॥

समीक्षक—क्या एकको प्राणकष्ट देकर दूसरोंको आनन्द करानेसे इयादीन ईसाइयोंका ईश्वर नहीं है ? जो माता पिता एक छड़केको भरवाकर दूसरेको खिळावे तो महापापी नहीं हों ? इसी प्रकार यह बात है क्योंकि ईरवरके लिये सब प्राणी पुत्रवत् हैं। ऐसा न होनेसे कि इनका ईरवर कसाईवत् काम करता है और सब मनुष्योंको हिंसक भी इसीने बनाया है, इसलिये ईसाइयोंका ईरवर निर्दय होनेसे पापी क्यों नहीं है।। १४।।

१६—और सारी पृथिवीपर एकही बोळी और एकही भाषा थी।।
फिर उन्होंने कहा कि आओ हम एक नगर और एक गुम्मट जिसकी
चोटी स्वर्गलों पहुंचे अपने लिये बनावें और अपना नाम करें। न हो
कि हम सारी पृथिवी पर छित्र भिन्न होजायें।। तब ईश्वर उस नगर
और उस गुम्मटके जिसे आदमके सन्तान बनाते थे देखनेको उतरा।।
तब परमेश्वरने कहा कि देखों ये लोग एक ही हैं और उन सबकी
एक ही बोली है अब वे ऐसा २ कुछ करने लगे सो वे जिस पर मन
लगावेंगे उससे अलग न किये जायेंगे।। आओ हम उतरें और वहां
उनकी भाषाको गड़बड़ावें जिससे एक दूसरेकी बोली न समर्में।। तब
परमेश्वरने उन्हें वहांसे सारी पृथिवी पर छिन्न भिन्न किया और वे उस
नगरके बनानेसे अलग रहे।। तो० पर्व ११। आट १।४।४।६।०।८।।

समीक्षक—जब सारी पृथिवीपर एक भाषा और बोली होगी इस समय सब मनुष्योंको परस्पर अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ होगा परन्तु क्या किया जाय यह ईसाइयोंके ईर्ण्यक ईश्वरने सबकी भाषा गड़बड़ाके सबका सत्यानाश किया उसने यह बड़ा अपराध किया! क्या यह शैतानके कामसे भी बुरा काम नहीं है! और इससे यह भी विदित होता है कि ईसाइयोंका ईश्वर सनाई पहाड़ आदि पर रहता था और जीवोंकी उन्नति भी नहीं चाहता था यह विना एक अविद्वानके ईश्वर की बात और यह ईश्वरोक्त पुस्तक क्योंकर हो सकता है! ॥१६॥

१७—तब उसने अपनी पत्नी सरीसे कहा कि देखा में जानता हूं पू देखनेमें सुन्दर की है।। इसिंख्ये यों होगा कि जब मिश्री तुमे देखें सब वे कहेंगे कि यह उसकी पत्नी है और मुक्ते मार डांकेंगे परन्तु सुमे जीती रक्खेंगे।। तु कहियों कि मैं उसकी बहिन हुं जिससे तेरे कारण मेरा भला होय और मेरा प्राण तेरे हेतुसे जीता रहे ॥ तौ॰ पर्व १२ । आ॰ ११ । १२ । १३ ॥

समीक्षक—अब देखिये ! अबिरहाम बड़ा पैगम्बर ईसाई और मुसलमानोंका बजता है और उसके कम मिथ्याभाषणादि बुरे हैं, भला जिनके ऐसे पैग्रम्बर हों उनको विद्या वा कल्याणका मार्ग कैसे मिल सके रे।। १७।।

१८—और ईश्वरने अविरहामसे कहा तू और तेरे पीछे तेरा वंश उनकी पीढ़ियों में मेरे नियमको माने तुम मेरा नियम जो मुमसे और तुमसे और तेरे पीछे तेरे वंशसे है जिसे तुम मानोगे सो यह है कि तुममेंसे हर एक पुरुषका खतनः किया जाय। और तुम अपने शरीर की खलड़ी काटो और मेरे और तुम्हारे मध्यमें नियमका चिह्न होगा और तुम्हारी पीढ़ियों में रहे। एक आठ दिनके पुरुषका खतनः किया जाय जो घरमें उत्पन्न होय अथवा जो किसी परदेशीसे जो तेरे वंशका न हो॥ रूपेसे मोळ लिया जाय जो तेरं घरमें उत्पन्न हुआ हो और जो तेरे रूपेसे मोळ लिया गया हो अवश्य उसका खतनः किया जाय और मेरा नियम तुम्हारे मांसमें सर्वदा नियमके लिये होगा। और जो अखतनः वालक जिसकी खलड़ीका खतनः न हुआ हो सो प्राणी अपने छोगसे कट जाय कि उसने मेरा नियम तोड़ा है।। तौ० पर्व १७। अशा० ह। १०। ११। १२। १३। १४।।

समीक्षक—अब देखिये ईरवरकी अन्यथा आज्ञा कि जो यह खत-नः करना ईरवरको इष्ट होता तो उस चमड़ेको आदि सृष्टिमें बनाता ही नहीं और जो यह बनाया है वह रक्षांथ है जैसा आंखके ऊपरका चमड़ा क्योंकि वह गुप्तस्थान अतिकोमल है जो उस पर चमड़ा न हो तो एक कीड़ीके भी काटने और थोड़ीसी चोट लगनेसे बहुतसा दुःख होवे और वह लघुराङ्कांके परचात् कुछ मूर्याश कपड़ोंमें न लगे इत्यादि बातोंक लिये इसका काटना बुरा है और अब ईसाई लोग इस आज्ञाको क्यों बी करते है यह आज्ञा सदांके लिये है इसके न करनेसे ईसाकी गवाही जोकि व्यवस्थाके पुस्तकका एक विन्दु भी भूठा नहीं है मिथ्या हो गई इसका सोच विचार ईसाई कुछ भी नहीं करते ।।१८॥

े १६ — जब ईश्वर अविरहामसे बातें कर चुका तो ऊपर चळा गया।। तो • पर्व। १७। आ० २२।।

समीक्षक—इससे यह सिद्ध होता है कि ईश्वर मनुष्य या पक्षिवत् था जो ऊपरसे नीचे और नीचेसे ऊपर आता जाता रहता था यह कोई इन्द्रजाळी पुरुषवत् विदित होता है।। १६।।

२०-फिर ईश्वरने उसे ममरेके बळतोंमें दिखाई दिया और दह दिनको घामके समयमें अपने तम्बूके द्वार पर बैठा था।। और उतने अपनी आंखें उठाई और क्या देखा कि तीन मनुष्य उसके पास खड़े हैं और उन्हें देखके वह तम्बूके द्वार परसे उनकी भेटको दौड़ा और भूमि तक दण्डवत की !! और कहा है मेरे स्वामि! यदि मैंने अब आपकी दृष्टिमें अनुप्रह पाया है तो मैं आपकी विनती करता हूं कि भपने दासके पाससे चले न जाइये।। इच्छा होय तो थोडा जल लाया **जाय और अपने चरण धो**इये और पेड़ तले विश्राम कीजिये।। और में एक कौर रोटी छाऊं और आप तृष्त हूजिये। उसके पीछे आगे षढ़िये क्यों कि आप इसीलिये अपने दासके पास आये हैं तब वे बोले कि जैसा तू ने कहा वैसा कर और अबिरहाम तम्ब्रमें सरः पास **इतावळीसे गया और** उसे कहा कि फ़ुरती कर और तीन नपुआ चोखा पिसान लेके गूंध और उसके फुळके पका ।। और अविरहाम झुण्डकी ओर दौड़ा गया और एक अच्छा कोमल बछड़ा लेके दासको दिया और उसने भी उसे सिद्ध करनेमें चटक किया।। और उसने मक्खन और दूध और दह बछड़ा जो पकाया था लिया और उसके आगे धरा और आप उसके पास पेड़ तले खड़ा रहा और उन्होंने स्वाया ।। तौ० पर्व १८ । सा• १।२।३।४।६।७।८।। समीक्षक—अब देखिये ! सज्जन छोगो ! जिनका ईश्वर बछडेका मांस खावे उसके उपासक गाय बछड़े आदि पशुओंको ज्यों छोडें ? जिसको कुछ दया नहीं और मांसकें खानेमें आतुर रहे वह विना हिंसक मनुष्यके ईश्वर कभी हो सकता है ? और ईश्वरके साथ दो मनुष्य न जाने कौन थे ? इससे विदित होता है कि जङ्गछी मनुष्योंकी एक मण्डली थी उनका जो प्रधान मनुष्य था उसका नाम बाइबलमें ईश्वर रक्खा होगा इन्हीं बातोंसे बुद्धिमान् लोग इनके पुस्तकको ईश्वरकृत नहीं मान सकते और न ऐसेको ईश्वर समस्ते हैं ॥ २०॥

२१—और परमेश्वरने अविरहामसे कहा कि सरः क्यों यह कहके मुस्कुराई कि जो मैं बुढ़िया हूं सचमुच बालक जनूंगी क्या परमेश्वरके लिये कोई बात असाध्य है ।। तौ० पर्व १८ । आ● १३ । १४ ।।

समीक्षक—अब देखिये ! कि क्या ईसाइयों के ईश्वरकी छीछा कि जो छड़के वा खियों के समान चिड़ता और ताना मारता है !!! ।। २१ ॥

२२—तब परमेश्वरने सदूममूरा पर गन्धक और आग परमेश्वरकी ओरसे वर्षाया॥ और उन नगरोंको और सारे चौगानको और नगरोंके सारे निवासियोंको और जो कुछ भूमि पर उगता था उल्ला दिया॥ तौo उत्पठ पर्वठ १६। आठ २४। २५॥

समीक्षक—अब यह भी छीछा बाइबछके ईश्वरकी देखिये। कि जिसको बालक आदि पर भी कुछ दया न आई। क्या वे सब ही अपराधी थे जो सबको भूमि उछटाके दबा मारा १ यह बात न्याय, दया और विवेकसे विरुद्ध है जिनका ईश्वर ऐसा काम करे उनके उपासक क्यों न करें १॥ २२॥

२३—आओ हम अपने पिताको दाखरस पिछावें और हम उसके साथ शयन करें कि हम अपने पितासे वंश चछावें। तब उन्होंने उस रात अपने पिताको दाख रस पिछाया और पहिछोठी गई और अपने पिताके साथ शयन किया।। हम उसे आज रात भी दाखरस पिछावें तू जाके शयन कर। सोछ्तकी दोनों बेटियां अपने पितासे गर्भिणी हुईं।। तौ॰ उत्पठ पर्व १६। आ० ३२। ३४। ३६।।

समीक्षक—देखिये ! पिता पुत्री भी जिस्सं मद्यपानके नशेमें कुकर्म करनेसे न बच सके ऐसे दुष्टं मद्यको जो ईसाई आदि पीते हैं उनकी बुगईका क्या पारावार है ? इसलिये सज्जन लोगोंको मद्यके पीनेका नाम भी न लेना चाहिये ॥ २३॥

२४—और अपने कहनेके समान परमेशवर्रने सरासे भेट किया और अपने वचनके समान परमेशवरने सराके विषयमें किया ॥ और सरा गर्भिणी हुई ॥ तौठ उत्पठ पर्व २१। आठ १।२॥

समीक्षक — अब विचारिये कि सरासे भेट कर गर्भवतीकी, यह काम कैसे हुआ ? क्यों विना परमेश्वर और सराके तीसरा कोई गर्भस्थापनका कारण दीखता है है ऐसा विदित होता है कि सरा परमेश्वरकी कृपासे गर्भवती हुई !!!।। २४॥

२४—तब अबिरहामने बड़े तड़के उठके रोटी और एक पखालमें जल लिया और हाजिरः के कन्धे पर धर दिया और लड़केको भी उसे सौंपके उसे विदा किया।। उसने लड़केको एक भाड़ीके तले डाल दिया।। और वह उसके सन्मुख बैठके चिल्ला चिल्ला रोई।। तब ईश्वर ने उस बालकका शब्द सुना।। तौ० उत्प॰ पर्व २१। आ० १४। १४। १६। १७।।

समीक्षक—अब देखिये ! ईसाइयोंके ईश्वरकी छीछा कि प्रथम तो सरःका पक्षपात करके हाजिरःको वहांसे निकछवादी और चिल्छा २ रोई हाजिरः और शब्द सुना छड़केका यह कैसी अद्भुत बात है ? यह ऐसा हुआ ोगा कि ईश्वरको भ्रम हुआ होगा कि वह बालक ही रोता है भछा यह ईश्वर और ईश्वरकी पुस्तककी बात कभी हो सकती है ? विना साधारण मनुष्यके वचनके इस पुस्तकमें थोड़ीसी बात सत्य के सब असार भरा है ॥ २४॥

२६—और इन बार्तोंक पीछे यों हुआ कि ईश्वरने अविरहामकी परीक्षा किई और उसे कहा। हे अविरहाम! तू अपने बेटेको अपने इक्छोठे इजहाकको जिसे तू ज्यार करता है छै। उसे होमकी मेटके

लिये चढ़ा और अपने बेटे इजहाकको बांधके उसे वेदीमें लकड़ियों पर धरा ॥ और अबिरहामने छुरी लेके अपने बेटेको घात करने के लिये हाथ बढ़ाया ॥ नव परमेश्वरके दूतने स्वर्ग परसे उसे पुकारा कि अबिरहाम २ अपना हाथ लड़के पर मत बढ़ा उसे कुछ मत कर क्योंकि मैं जानता हूं कि तू ईश्वरसे डरता है ॥ तौ० उत्प० पर्व २२। आ० १ । २ । १ । १० । ११ । १२ ॥

समीक्षक—अब स्पष्ट हो गया कि वह बाइबलका ईश्वर अल्पन्न है, सर्वज्ञ नहीं और अबिरहाम भी एक भोळा मनुष्य था नहीं तो ऐसी चेटा क्यों करता ? और जो बाइबलका ईश्वर सर्वज्ञ होता तो उसकी भविष्यत् श्रद्धाको भी सर्वज्ञतासे जान लेता इससे निश्चित होता है कि ईसाइयोंका ईश्वर सर्वज्ञ नहीं ॥ २६॥

' २७--सो आप इमारी समाधिनमेंसे चुनके एकमें अपने मृतकको गाड़िये जिसने आप अपने मृतकको गाड़ें॥ तौठ **इत्पठ पर्व २३।** आठ ई॥

समीक्षक — मुद्दीके गाड़नेसे संसारकी बड़ी हानि होती है क्योंकि वह सड़के वायुको दुर्गन्थमय कर रोग फैछा देता है।

प्रश्न—देखो । जिससे प्रीति हो उसको जलाना अच्छी बात नहीं और गाड़ना जैसा कि उसको सुद्धा देना है इसल्प्रिये गाड़ना अच्छा है।

उत्तर — जो मृतकसे प्रीति करते हो तो अपने घरमें क्यों नहीं रखते ? और गाइते भी क्यों हो ? जिस जीवात्मासे प्रीति थी वह निकल गया अब दुर्गन्थमय मृद्दीसे क्या प्रीति ? और जो प्रीति करते हो तो उसको पृथिवीमें क्यों गाइते हो क्योंकि किसीसे कोई कहे कि तुमको भूमिमें गाइ देवें तो वह सुन कर प्रसन्न कभी नहीं होता उसके मुख आंख और शरीर पर धूल, पत्थर, ईंट, चूना डालना, छाती पर पत्थर रखना कौनसी प्रीतिका काम है ? और सन्दूकमें डालके गाइने मेसे बहुत दुर्गन्थ होकर पृथिवीसे निकल वायुको बिगाइ कर दाकण

रोगोत्पत्ति करता है दूसरा एक मुदेंके लिये कमसे कम ६ हाथ लम्बी खोर ४ हाथ चौड़ी भूमि चाहिये इसी हिसाबसे सो हजार वा लाख स्थया कोड़ों मतुष्यों के लिये कितनी भूमि व्यर्थ रुक जाती है न वह खेत, न बागोचा और न बसनेके कामकी रहती है इसलिये सबसे बुरा गाड़ना है, उससे कुछ थोड़ा बुरा जलमें डालना क्योंकि उसको जल जन्तु उसी समय चीर फाड़के खा लेते हैं परन्तु जो कुछ हाड़ वा मल जलमें रहेगा वह सड़कर जगत्को दुःखदायक होगा उससे कुछ एक थोड़ा बुरा जङ्गलवं छोड़ना है क्योंकि उसको मांसाहारी पशु पक्षो लूच खायंगे तथापि जो उसके हाड़की मज्जा और मल सड़कर जितना दुर्गन्य करेगा उतना जगत्का अनुपकार होगा और जो जलाना है वह सर्वोत्तम है क्योंकि उसके सब पदार्थ अणु होकर वायुमें उड़ जायंगे।

प्रश्न—जलानेसे भी दुर्गन्थ होता है।

उत्तर—जो अविधिसे जलावें तो थोड़ासा होता है परन्तु गाड़ने खादिसे बहुत कम होता है और जो विधिपूर्वक जैसा कि वेदमें लिखा है मुदेंके तीन हाथ गहरी, साढ़े तीन हाथ चौड़ी, पांच हाथ लम्बी, तलेमें डेढ़ बीता अर्थात् चढ़ा उतार वेदी खोदकर शरीरके बराबर घी उसमें एक सेरमें रती भर कस्तुरी, मासा भर केशर डाल न्यूनसे न्यून आधमन चन्दन अधिक चाहें जितना ले अगर तगर कपूर आदि और पलाश आदिकी लकड़ियोंको वेदीमें जमा उस पर मुदी रखके पुनः चारों ओर ऊपर वेदीके मुखसे एक २ बीता तक भरके घी की आहुति देकर जलाना चाहिये इस प्रकारसे दाह करें तो कुछ भी दुर्गन्थ न हो किन्तु इसीका नाम अन्त्येष्टि, नरमेघ, पुरुषमेय यहा है और जो दिद हो तो बीस सेरसे कम घी चितामें न डाले चाहें वह भीख मांगने वा जाति बालेके देने अथवा राजसे मिलनेसे प्राप्त हो परन्तु उसी प्रकार दाह करें और जो घृतादि किसी प्रकार न मिल सके तथापि गाड़ने आदित केवल लकड़ीसे भी मृतकका जलाना उत्तम है

है क्योंकि एक विश्वाभर भूमिमें अथवा एक वेदीमें लाखों कोड़ों मृतक जल सकते हैं, भूमि भी गाड़नेके समान अधिक नहीं बिगड़ती और कबरके देखनेसे भय भी होता है इससे गाड़ना आदि सर्वथा निषिद्ध है।। २७।।

२८—परमेश्वर मेरे स्वामी अविरहामका ईश्वर धन्य जिसने मेरे स्वामीको अपनी दया और अपनी सबाई विना न छोड़ा, मार्गमें परमेश्वरने मेरे स्वामीके भाइयोंके घरकी ओर मेरी अगुआई किई॥ ती॰ उत्प० पर्व २३। आ० २७॥

समीक्षक—क्या वह अविरहाम ही का ईश्वर था ? और जैसे आजकल विगारी व अगुवे लोग अगुवाई अर्थात् आगे २ चलकर मांग दिखलाते हैं तथा ईश्वरने भी किया तो आजकल मांग क्यों नहीं दिखलाता ? और मनुष्योंसे बातें क्यों नहीं करता ? इसलिये ऐसी बातें ईश्वर व ईश्वरके पुस्तककी कभी नहीं हो सकती किन्तु जङ्गली मनुष्योंकी हैं॥ २८॥

२६—इसमअऐलके बेटोंके नाम ये हैं—इसमअएलका पहिलेखा नवीत और कींदार और अदबिएल और मिवसाम और मिसमाअ और दूमः और मस्सा। हदर और तैमा, इत्रू, नफीस और किद्मः॥ तौ० उत्प० पर्व २५। आ• १३। १४। १५॥

समीक्षक—यह इसमअऐळ अविरहामसे उसकी हाजिरः दासीका हुआ था॥ २६॥

३०—मैं तरे पिताकी रुचिके समान स्वादित भोजन बनाऊ'गी खोर तु अपने पिताके पास ले जाइयो जिससे वह खाय और अपने मरनेसं आगे तुक्ते आशीप दंवे। और रिवकः ने अपने घरमेंसे अपने जेटे बंटे एसीका अच्छा पहिरावा लिया और बकरीके मेम्नोंका चमड़ा उसके हाथों और गलेकी चिकनाई पर लपेटा तब यअकूब अपने पितासे बोला कि मैं आपका पित्लीटा ऐसी हूं आपके कहनेके समान मैंने किया है उठ बैठिये और मेरे अहेरके मांसमेंसे खाइये जिसते

ख्यापका प्राण मुक्ते आशीष दे॥ तौठ उत्पठ पर्व २७। आग्राट । १०। १५। १६। १६॥

समीक्षक—देखिये ! ऐसे भूठ कपटसे आशीर्वाद छेके पश्चात् सिद्ध और पैगम्बर बनते हैं क्या यह आश्चर्यकी बात नहीं है ? और ऐसे ईसाइयोंके अगुआ हुए हैं पुनः इनके मतकी गड़बड़में क्या न्यूनता हो ? ॥ ३० ॥

३१—ओर यअकूब विहानको तड़के उठा और उस पत्थरको जिसे उसने अपना उसीसा किया था खम्भा खड़ा किया और उस पर तेळ डाळा॥ और उस स्थानका नाम बैतएळ रक्खा ॥ और यह पत्थर जो मैंने खम्भा खड़ा किया ईश्वरका घर होगा ॥ तो० उत्प० पर्व २८ आ० १८ । १६ । २२ ॥

समीक्षक—अब देखिये ! जङ्गालियोंके काम, इन्हींने पतथर पूजे और पुजवाये और इसको मुसलमान लोग "बयतलमुक्द्स" कहते हैं क्या यही पत्थर ईरवरका घर और उसी पत्थरमात्रमें ईरवर रहता था १ वाह ! वाह !! जी क्या कहना है, ईसाई लोगो ! महाबुत्परस्त तो सुम्हीं हो ॥ ३१ ॥

३२—धीर ईरवरने राखिलको स्मरण किया और ईश्वरने इसकी सुनी और उसकी कोखको खोला और वह गर्भिणी हुई और बेटा जनी और दोटी कि ईरवर मेरी निन्दा दूर किई॥ तौ० उत्प॰ पर्व ३०। आ॰ २२। २३॥

समीक्षक—वार ईसाइयोंके रिवर ! क्या बड़ा डाक्टर है स्त्रियोंकी कोस्त्र सोस्त्रनेको चौनसे शस्त्र व औषध थे जिनसे सोस्त्री ये सब बातें अन्याधुन्धकी हैं॥ ३२॥

३३—परन्तु ईर्दर आरामी लावनकने स्वप्नमें रातको आया भौर उसे कहा कि चौकस रह तु ई्रवर यअकूबको भला बुरा मत कह, क्योंकि अपने पिताके घरका निपट अभिलाषी है तूने किसलिये मेरे देवोंको चुराया है।। तौ॰ उत्प० पर्व ३१। आ० २४। ३०॥ कि

समीक्षक-यह हम नमूना लिखते हैं हजारों मनुष्योंको स्वप्नमें आया, बातें किई, जागृत साक्षात् मिला, खाया, विया, आया, गया आदि बाइबलमें लिखा है परन्तु अब न जाने वह है व नहीं ? क्योंकि अब किसीको स्वप्न व जागृत्में भी ईश्वर नहीं मिलता और यह भी विदित हुआ कि वे जङ्गळी छोग पाषाणादि मूर्त्तियोंको देव मानकर पूजते थे परन्तु ईसाइयोंका ईश्वर भी पत्थर ही को देव मानता है नहीं तो देवांका चुराना कैसे घटे १॥३३॥

३४-और यअकूब अपने मार्ग चला गया और ईऱवरके दूत उससे आमिले ॥ और यअकृवने उन्हें देखके कहा कि यह ईश्वरकी सेना है ॥ तौ० उत्प• पर्व ३२। आ० १।२॥

समीक्षक-अब ईसाइयोंके ईश्वरके मनुष्य होनेमें कुछ भी संदिग्ध नहीं रहा क्योंकि सेना भी रखता है जब सेना हुई तब शस्त्र भी होंगे और जहां नहां चढ़ाई करके लड़ाई भी करता होगा नहीं तो सेना रखनेका क्या प्रयोजन है १॥ ३४॥

३५--और यअकूब अंकला रह गया और यहां पी फटेलों एक जन उससे महयुद्ध करता रहा। और जब उसने देखा कि वह उस पर प्रवल न हुआ तो उसकी जांघको भीतरसे हुआ तब यअकुबके जांघकी नस उसके संग मह्युद्ध करनेमें चढ़ गई ॥ तब वह बोर्छा कि मुक्ते जाने दे क्योंकि पौ फटती है और वह बोला में तुक्ते जाने न दें जंगा जब लों तु मुभे आशीष न देवे ॥ तब उसने उसे कहा कि तेरा नाम क्या ? और वह बोला कि यअकुव।। तब उसने कहा कि तेरा नाम आगेको यअकूव न होगा परन्तु इसरायेल क्योंकि तूने **ईश्वरके आ**गे और मनुष्योंके आगे राजाकी नाई मह्युद्ध किया और जीता ॥ तब यअकूबने यह कहिके उससे पूछा कि अपना, नाम बता-इये और वह बोला कि तू मेरा नाम क्यों पूछता है और उसने उसे बहां आशीष दिया ॥ और यशकूबने इस स्थानका नाम फनूएल रक्खा क्योंकि मैंने ईश्वरको प्रदक्ष देखा और मेरा प्राण बचा है।। और

# समुल्लास] बाइबिलमें वेदोक्त नियोग। १६५१

जब वह फन्एछसे. पार चला तो सूर्य्यकी ज्योति उस पर पड़ी और वह अपनी जांघसे लक्कड़ाता था इसिलये इसरायेलके वंश उस जांघकी नसको जो चढ़ गई थी आज लों नहीं खाते क्योंकि उसने यअकूबके जांघकी नसको चढ़ गई थी ह्युआ था। तौठ उत्पठ पर्वठ २३। आठ २४। २५। २६। २७। २८। २८। ३०। ३१। ३२॥

समिश्रक—जब ईसाइयोंका ईश्वर घ्यखाड़मह है तभी हो सरः और राखल पर पुत्र होनेकी कृपा की भला यह कभी ईश्वर हो सकता है ? और देखों! लीला कि एक जना नाम पूछे तो दूसरा अपना नाम ही न बतलावे ? और ईश्वरने उसकी नाड़ोको चढ़ा तो दी और जीला गया परन्तु जो डाफ्टर होता तो जांघी नाड़ीको अच्छी भी करता और ऐसं ईश्वरकी भक्तिसे जैसा कि यशकूब छङ्गड़ाता रहा तो अन्य भक्त भी लँगड़ाते होंगे जब ईश्वरको प्रत्यक्ष देखा और मह्युद्ध किया यह बात विना शरीरवालेके कैसे हो सकती है ? यह केबल लड़क्यनकी लीला है ॥ ३४ ॥

३६—और यहूदाहका पहिलौठा एर परमेश्वरकी हिन्टमें दुष्ट्र था सो परमेश्वरने उसे मार डाला ॥ तब यहूदाहने ओनानको कहा कि अपनी भाईकी पत्नी पास जा और उससे न्याह कर अपने भाईके लिये वंश चला ॥ और ओनानने जाना कि यह वंश मेरा न होगा और यों हुआ कि जब वह अपनी भाईकी पत्नी पास गया तो वीर्यको भूमि पर गिरा दिया ॥ और उसका वह कार्य्य परमेश्वरकी हिन्दमें दुरा था इसलिये उसने उसे भी मारडाला ॥ तौ• उत्प० पर्व ३८॥ आ० ० । ८ । १०॥

समीक्षक—अब देख लीजिये ! ये मनुष्योंके काम हैं कि ईश्वरके जब उसके साथ नियोग हुआ तो उसको क्यों मारडाला १ उसकी ! बुद्धि शुद्ध क्यों न करदी और वेदोक्त नियोग भी प्रथम सर्वत्र चलता । था यह निश्चय हुआ कि नियोगकी वार्ते सब देशोंमें चलती थीं ! ३६॥ ।

### तौरेत यात्राकी पुस्तक

३७—जब मूसा सयाना हुआ ओर अपने भाइयों मेंसे एक इब-रानीको देखा कि मिश्री उस मार रहा है।। तब उसने इधर उधर हृष्टि किई देखा कि कोई नहीं तब उसने उस मिश्रीको मारडाला और बाल्धमें उसे लिया दिया।। जब वह दूसरे दिन बाहर गया तो देखा दो इबरानी आपुसमें भगड़ रहे हैं तब उसने उस अंधेरीको कहा कि तू अपने परोसीको क्यों मारता है।। तब उसने कहा कि किसने तुभे हम पर अध्यक्ष अथवा न्यायी ठहराया क्या तू चाहता है कि जिस रीतिसे तुने मिश्रीको मारडाला मुभे भी मार डाले तब मृसा दरा और भाग निकला।। तौठ या॰ प० २। आ० ११।१२।१३। १४।१४॥

समीक्षक—अव देखिये ! जो बाइबलका मुख्य सिद्धकर्त्ता मतका आचार्य्य मूसा कि जिसका चरित्र क्रोधादि दुगुंगोंसे युक्त मनुष्यकी हत्या करनेवाला और चोरवन् राजदण्डसे बचनेहारा अर्थात् जब बातको लिपाता था तो भूठ बोलनेवाला भी अवश्य होगा ऐसेको भी जो ईश्वर मिला वह पैगम्बर बना उसने यहूदी आदिका मत चलाया वह भी मूसा ही के सदश हुआ। इसल्यि ईसाइयोंके जो मूल पुरुषा हुए हैं वे सब मूसासे आदि ले करके जङ्गली अवस्थामें थे, विद्याऽ-वस्थामें नहीं इटादि ॥ ३०॥

३८—आर फसह मेम्ना मारो ।। और एक मूठी जूफा लेको कोर उस उस लोहमें जो बासनम है बोग्के ऊपरकी चौखटके और द्वारकी दोनों ओर उससे लागे और तुममेंसे कोई बिहानलों अपने घरके द्वारसे बाहर न जावे ।। क्योंकि परमेश्वर मिश्रके मारनेके लिये आरपार जायगा और जब वह ऊपरकी चौखट पर और द्वारकी दोनों ओर लोहूको देखे तब परमेश्वर द्वारसे बीत जायगा और नाशक दुम्हारे घरोंमें न जाने देगा कि मारे ।। तौ० या० प● १२। आ० २१। २२। २३।।

### समुक्कास] निरंपराच दंड देनेबाला ईश्वर । ६५३

समीक्षक—भला यह जो टोने टामन करनेवालेके समान है वह ईश्वर सर्वक्ष कभी हो सकता है ? जब लोहूका छापा देखे तभी इस-रायेल कुलका घर जाने अन्यथा नहीं। यह काम श्रुद्र बुद्धिवाले मनुष्यके सदृश है इससे यह विदित होता है कि ये वार्ते किसी जङ्गाली मनुष्यकी लिखी हैं॥ ३८॥

३६ — और यों हुआ कि परमेश्वरने आधीरातको मिश्रके देशमें सारे पहिलौठेको फिरा ऊनके पहिलौठेसे लेके जो अपने सिहासन पर बैठता था उस बन्धुआके पहिलौठे लों जो बन्दीगृहमें था पशुनके पहिलौठे समेत नाश किये और रातको फिरा ऊन उठा वह और उसके सब सेवक और सारे मिश्री उठे और मिश्रमें बड़ा विलाप था क्योंकि कोई घर न रहा जिसमें एक न मरा॥ तौ० या० प० १२। बा० २६। ३०॥

समीश्रक—वाह! बच्छा आधीरातको डाकूके समान निर्देयी होकर ईसाइयोंके ईश्वरने छड़के वाले, बृद्ध और पशु तक भी विना अपराध मार दिये और कुछ भी दया न आई और मिश्रमें बड़ा विलाप होता रहा तो भी क्या ईसाइयोंके ईश्वरके चित्तसे निष्ठुरता नष्ट न हुई? ऐसा काम ईश्वरका तो क्या किन्तु किसी साधारण मनुष्यके भी करनेका नहीं है। यह आश्चर्य नहीं क्योंकि छिखा है "मांसाहारिणः कुतो दया" जब ईसाइयोंका ईश्वर मांसाहारी है तो इसको दया करनेसे क्या काम है।। ३६॥

४० — परमेश्वर तुम्हारे लिये युद्ध करेगा ॥ इसरायेलके सन्तानसे कहा कि वे आगे बढ़े ॥ परन्तु तू अपनी छड़ी उठा और समुद्ध पर अपना हाथ बढ़ा और उससे दो भाग कर और इसरायेलके सन्तान समुद्रके बीचो बीचसे सूखी भूमिमें होकर चले जायेंगे॥ तौ॰ या० प० १४। आ० १४। १६। १६॥

समीक्षक—क्यों जी आगे तो ईश्वर भेड़ोंके पीछे गड़रियेके समान इसमेख इळके पीछे २ डोब्स करता था अव त जाने कहां , अक्टर्यान

[त्रयोदका

होगया १ नहीं तो समुद्रके बीचमेंसे चारों ओरके रेखगाडियोंकी सडक बनवा हेते जिससे सब संसारका उपकार होता और नाव आदि बना-नेका श्रम छूट जाता। परन्तु क्या किया जाय ईसाइयोंका ईश्वर न जाने कहां छिप रहा है ? इत्यादि बहुतसी मूसाके साथ असम्भव छीला बाइबलके ईश्वरने की हैं परन्तु यह विदित हुआ कि जैसा ईसाइ-योंका ईश्वर है वैसे ही उसके सेवक और ऐसी ही उसकी बनाई पुस्तक है। ऐसी पुस्तक और ऐसा ईश्वर इम लोगोंसे दूर रहे तभी अच्छा 11 80 11

४१ - क्यों कि मैं परमेश्वर तेरा ईश्वर ज्वलित सर्वशक्तिमान हुं पितरों के अपराधका दण्ड उनके पुत्रोंको जो मेरा बैर रखते हैं उनकी तीसरी और चौथी पीढीओं देवेया हूं ॥ तौ० या० प● २०। आ० ४॥

समी अक-भला यह किस घरका न्याय है कि जो पिताके अपरा-धसे ४ पीढ़ी तक दण्ड देना अच्छा समम्मना। स्या अच्छे पिताके हुए और दृष्टके अच्छे सन्तान नहीं होते ? जो ऐसा है तो चौथी पीढ़ी सक दण्ड कैसे दे सकेगा ? और जो पांचवीं पीडीसे आगे दुष्ट होगा उसको दण्ड न दे सकेगा. विना अपराध किसीको दण्ड देना अन्याय-कारीकी बात है।। ४१॥

४२-विश्रामके दिनको उसे पवित्र रखनेके लिये स्मरण कर।। 👺 दिनलों तु परिश्रम कर ।। और सातवां दिन परमेश्वर तेरे ईश्वर का विश्राम है। परमेश्वरने विश्राम दिनको आशीष दी।। तौ० याव पं २०। आ०८। है।।

समीक्षक-क्या रविवार एक ही पवित्र और छः दिन अपवित्र हैं ? और क्या परमेश्वरने छः दिन तक बडा परिश्रम किया था ? कि जिससे थकके सातवें दिन सोगया ? और जो रविवारको आशी-र्वाद दिया तो सोमवार आदि छः दिनोंको क्या दिया ? अर्थात् शाप दिया होगा ऐसा काम विद्वानका भी नहीं तो ईश्वरका क्योंकर हो सकता है ? भठा रविवारमें क्या गुण और सोमवार बादिने क्या दोष समुज्लास] विषयी, हत्यारे प्रसा। ६५५ किया था कि जिससे एकको पवित्र तथा वर दिया और अन्योंको ऐसे ही अपवित्र कर दिये।।। ४२॥

४३—अपने परोसी पर भूठी साक्षी मत दे। अपने परोसीकी स्त्री और उसके दास उसकी दासों और उसके बैठ और उसके गवह स्मीर किसी वस्तुका जो तेर परोसीकी है छाउच मत कर ॥ तौठ या॰ प॰ २०। आ॰ १६। १७॥

समीक्षक—बाह ! तभी तो ईसाई लोग परदेशियोंके माल पर ऐसे हुकते हैं कि जानों प्यासा जल पर, भूखा अन्न पर, जेसी यह केबल मतलबसिन्धु और पक्षपातकी बात है ऐसा ही ईसाइयोंका ईरवर अवस्य होगा । यदि कोई कहे कि हम सब मनुष्यमात्रको परोसो मानते हैं तो सिवाय मनुष्योंके अन्य कौन स्त्री और दासी बाले हैं कि जिनको अपरोसी गिनें ? इसल्यि ये बातें स्वाधी मनुष्योंकी हैं ईरवरकी नहीं।। ४३।।

४४—सो अब लड़कोंमेंसे हरएक बेटेको और हरएक स्त्रीको जो पुरुषसे संयुक्त हुई हो प्राणसे मारो ।। परन्तु वे बेटियां जो पुरुषसे संयुक्त नहीं हुई हैं उन्हें अपने लिये जीती रक्सो ।। तौ० गिनती● प● ३१। आ० १७। १८ ।।

समीक्षक—वाहजी ! मूसा पैगम्बर और तुम्हारा ईश्वर धन्य है ! कि जो की, वाउक, बृद्ध और पशु आदिकी हत्या करनेसे भी खलग न रहे और इससे स्पष्ट निश्चित होता है कि मूसा विषयी था, क्योंकि जो विषयी न होता तो अक्षत योनि अर्थात् पुरुषोंसे समागम न की हुई कन्याओंको अपने लिये मंगवाता व उनको ऐसी निर्दय व विषयीपनकी आज्ञा क्यों देता ? ।। ४४ ॥

४५—जो कोई किसी मनुष्यको मारे और वह मरजाय वह निश्चय घात किया जाय।। और वह मनुष्य घातमें न छगा हो परन्सु ईश्वरने उसके हाथमें सौंप दिया हो तब मैं तुमे भागनेका स्थान बता हुंगा।। तौ० या० प० २१। आ • १२। १३।।

समीक्षक-जो यह ईश्वरका न्याय सन्ना है तो मुसा एक आदमी को मार गाडकर भाग गया था उसको यह दण्ड क्यों न हुआ ? जो कही ईश्वरने मूसाको मारनेके नितित्त सौंपा था तो ईश्वर पक्षपाती हुआ क्योंकि उस मुसाका राजासे न्याय क्यों न होने दिया ? ।।४४॥

४६--और कुरालका बलिदान बैलोंसे परमेश्वरके लिये चढाया ॥ सौर मुसाने आधा लोहू लेके पात्रोंमें र**स्**ला सौर साधा लोहू वेदी पर छिड़का ।। और मूसाने उस लोहको लेके लोगों पर छिड़का और कहा कि यह लोहू उस नियमका है जिस परमेश्वरने इन बातोंके कारण तुम्हारे साथ किया है।। और परमेश्वरने मूसासे कहा कि पहाड़ पर मुक्त पास आ और वहां रह और तुभे पत्थरकी पटियां और ज्यवस्था और आज्ञा जो मैंने लिखी है दूंगा।। तौ० या• प० २४। **छा**० ४। ६। ८। १२॥

समीक्षक-अब देखिये ! ये सब जङ्गली लोगोंकी बातें हैं व नहीं भौर परमेश्वर बैलोंका बलिदान लेता और बेदी पर लोह छिडकता यह कैसी जङ्गलीपन, असभ्यताकी बात है ? जब ईसाइयोंका खुदा भी बैलोंका बलिदान लेवे तो उसके भक्त गायके बलिदानकी प्रसादीसे पेट क्यों न भरें ? और जगत्की हानि क्यों न करें ? ऐसी २ बुरी बातें बाइबलमें भरी हैं इसीके कुसंस्कारोंसे वेदोंमें भी ऐसा भूठा दोष खगाना चाहते हैं परन्तु वेदोंमें ऐसी बातोंका नाम भी नहीं। ब्योर यह भी निश्चय हुआ कि ईसाइयोंका ईरवर एक पहाड़ी मनुष्य था, पहाड पर रहता था जब वह खुदा स्याही, लेखनी, कागूज नहीं बना जानता भौर न उसको प्राप्त था इसीलिये पत्थरकी पटियोंपर लिख २ देता था और इन्हीं जङ्कालियोंके सामने ईश्वर भी बन बैठा था।। ४६॥

४७—और बोलाकि तूमेरारूप नहीं देख सकता द्योंकि मुक्ते देखके कोई मनुष्य न जिथेगा॥ और परमेश्वरने कहा कि देख एक स्थान मेरे पास हैं और तू उस टी छे पर खड़ा रह ॥ और यों होगा कि जब मेरा विभव चलक निकलगा तो में तुसे पहाड़के दरा-

### समुल्लास] गौबैल-बिलभोगी ईश्वर। ६५७

रमें रक्षूंगा और जबलों निकलूं तुक्ते अपने हाथ ले **डांपूंगा। और** अपना हाथ उठा लूंगा और तूमेरा पीछा देखेगा परन्तु मेरा रूप दिखाई न देगा।। तौ० या० प० ३३। आ० २०। २१। २२। २३॥

समीक्षक — अब देखिये ! ईसः इयोंका ईश्वर केवल मनुष्यवत् शरीरधारी और मुसासे केसा प्रपश्च रचके आप खयं ईश्वर बन गया जो पीछा देखेगा रूप न देखेगा तो हाथसे उसको ढांप दिया भी न होगा जब खुदाने अपने हाथसे मुसाको ढांपा होगा तब क्या उसके हाथका रूप उसने न देखा होगा ? ।। ४७ ।।

### लय व्यवस्थाकी पुस्तक तौ० ।

४८—और परमेश्वरने मुसाको बुळाया और मण्डलीके तम्यूमेंसे यह वचन उसे कहा कि।। इसराएलके सन्तानमें बोल और उन्हें कह यदि कोई तुममें से परमेश्वरके लिये भेट जावे तो तुम ढोरमें से अर्थात् गाय बैल और मेड़ बकरीमें से अपनी भेट लाओ।। तो० लय ज्यवस्थाकी पुस्तक प० १ सा० १ । २ ।।

समीक्षक — अव विचारिये ! ईसाइयोंका परमेश्वर गाय बैठ आदिको भेट छेनेवाला जो कि अपने लिये बलिदान करानेके लिये उप-देश करता है वह बैल गाय आदि पशुआंके लोहू मांसका भूला प्यास्त है वा नहीं ? इसीसे वह अहिंसक और ईश्वर कोटिमें गिना कभी नहीं जा सकता किन्तु मांसाहारी प्रपंची मनुष्यके सदृश है ॥४८॥

४२ — और वह उस वैलको परमेश्वरके आगे विल करे और हारूनके बेटे याजक छोहूको निकट लावे और लोहूको यहवेदीके चारों भोर जो मण्डलीके तम्बूके द्वार पर है छिड़कें ॥ तब वह उस मेटके बिल्हानकी खाल निकाले और उसे दुकड़ा २ करे ॥ और हारूनके बेटे याजक यहवेदी पर आग रक्ते और उस पर लकड़ी चुनें ॥ और हारूनके वेटे याजक उसके दुकड़ोंको और शिर और चिकनाईको उन लकड़ियों पर जो यहवेदीकी आग पर हैं विधिसे घरें ॥ जिसते

षाळिद्रानकी भेट होवे जो आगसे परमेश्वरके सुगन्थके <mark>लिये भेट किया</mark> गया || तौ० लयज्यवस्थाकी पुस्तक प०१ आ∙ १ | ६ | ७ | ८ | ६ |।

समीक्षक—तिक विचारिये ! कि वैउको परमेश्वरके आगे उसके भक्त मारें और वह मरवावे आर छोडूको चारों और छिड़कें, अग्निमें होम करें, ईश्वर सुगन्थ छेबे, भछा यह कसाईके घरसे दुछ कमती छीछा है ? इसीसे न वाइवछ ईश्वर कृत और न वह जङ्गछी मनुष्यके सदश छीछाधारी ईश्वर हो सकता है ॥ ४६ ॥

्र०—िफर परमेश्वर मूसासे यह कहके बोला यदि वह अभिषेक किया हुआ याजक लोगोंके पापके समान पाप करे तो वह अपने पाप के कारण जो उसने किया है अपने पापकी भेटके लिये निसखोट एक बिल्या परमेश्वरके लिये लावे॥ और बिल्याके शिर पर अपना हाथ रक्खे और बिल्याको परमेश्वरके आने बली करे ॥ लयज्यवस्था तो० प० ४। आ० १। ३। ४॥

समीक्षक—अब देखिये ! पार्पोके छुड़ानेके प्रायश्चित्त, स्वयं पाप करे गाय आदि उत्तम पशुओंकी इयाकरे और परमेश्वर करब वे धन्य हैं ईसाई छोग कि ऐसी बातोंके करने हारेको भी ईश्वर मानकर अपनी मुक्ति आदिकी आशा करते हैं !!!।। ४०।।

५१—जब कोई अध्यक्ष पाप करे।। तब वह बकरीका निसस्बोट नर मेम्ना अपनी मेटके लिये लावे।। और उसे परमेश्वरके आगे बली करे यह पापकी मेट हैं॥ तौठ लयु पठ ४। आठ २२। २३। २४॥

समीक्षक—वाहजी ! वाह !! यदि ऐसा है तो इनके अध्यक्ष अर्थात न्यायाधीश तथा सेनापित आदि पाप करनेसे क्यों डरते होंगे ? आप तो यथेष्ठ पाप करें और प्रायश्चित्तके बदलेमें गाय, बिछया, बकरे आदि के प्राण लेंने, तभी तो ईसाई लोगो किसी प्रशु वा पक्षीके प्राण लेंने में शंकित नहीं होते । सुनो ईसाई लोगो ! अब तो इस जङ्गली मतको छोड़के सुसभ्य धममय वेदमतको स्वीकार करो कि जिससे तुम्झरा कस्याण हो ॥४१॥

## समुद्धास] ईसाई-ईश्वर-पुजारीकी लीला। ६५६

५२ — ब्योर यदि उसे भेड़ ढानेकी पूंजी न हो तो वह अपने किये हुए अपराधके लिये दो पिंडुिकयां और कपोतके दो बच्चे परमेश्वरके लिये लावे ॥ और उसका शिर उसके गलेके पाससे मरोड़ डाले परन्तु अलग न करे । उसके किये हुए पापका प्रायश्चित्त करे और उसकेलिये क्षमा किया जायगा पर यदि उसे दो पिंडुिकयां और कपोतके दो बच्चे छानेकी पूंजी न हो तो सेर भर चोखा पिसानका दशवां हिस्सा पापकी मेटके लिये लावे \* उस पर तेल न डाले ॥ और वह श्रमा किया जायगा ॥ तों ले ले प० ६ आ० ७ । ८ । १० । ११ । १३ । १३ ॥

समीक्षक—अब सुनिये ! ईसाइयों में पाप करनेसे कोई धनाड्य भी न डरता होगा और न दिरद्र क्योंकि इनके ईश्वरने पापोंका प्राय-रिचत करना सहज कर रक्खा है, एक यह बात ईसाइयोंकी बाइबलमें बड़ी अद्भुत है कि बिना कष्ट किये पापसे पाप छूट जाय क्योंकि एक तो पाप किया और दूसरे जीवोंकी दिसा की और खूब आनन्दसे मांस

<sup>\*</sup> इस ईश्वरको धन्य है ! कि जिसते बछड़ा, भेड़ी और बकरीका बचा, कपोत और पिसान [ आटे ] तक लेनेका नियम किया । अद्मुत बात तो यह है कि कपोतके बच्चे "गरदन मरोरवाके" लेता था अर्थात् गईन तोड़नेका परिश्रम न करना पड़े इन सब बातों के देखनेसे विदित होता है कि जंगलियों में कोई चतुर पुरुष था वह पहाड़ पर जा बैठा और अपनेको ईश्वर प्रसिद्ध किया, जो जंगली अज्ञानी थे उन्होंने स्सीको ईश्वर स्वीकार कर लिया । अपनी युक्तियों से वह पहाड़ पर ही खानेके लिये पशु पश्ची और अन्नादि मंगा लिया करता था और गौज करता था । उसके दूत फरिश्ते काम किया करते थे । सज्ज्ञन मेंग विचारें कि कहां तो बाइबलमें बछड़ा, भेड़ी, बकरीका बचा, कपोत गौर "अच्छे" पिसानका खानेवाला ईश्वर और कहां सर्वव्यापक, वैज्ञ, अजनमा, निराकार, सर्वशिक्तमान् और न्यायकारी इत्यादि चम गुणयुक्त वेदोक्त ईश्वर १।

स्वाया और पाप भी छूट गया, भला कपोतके बच्चेका गला मरोड़नेसे वह बहुत देर तक तड़फता होगा तब भी ईसाइयोंको दया नहीं साती। दया क्योंकर आवे इनके ईश्वरका उपदेश ही हिंसा करनेका है और जब सब पापोंका ऐसा प्रायश्चित है तो ईसाके विश्वाससे पाप छूट जाता है यह बड़ा आडम्बर क्यों करते हैं। ४२।।

५३—सो उसी बलिदानकी खाल उसी याजककी होगी जिस्ते विसे चढ़ाया और समस्त भोजनकी भेट जो तन्द्रमें पकाई जावे और सब जो कड़ाहीमें अथवा तवे पर सो उसी याजककी होगी॥ तो ● लय पर ७। आ० ८। ह ॥

समीक्षक—हम जानते थे कि यहां देवीके भीप और मन्दिरोंके पुजारियोंकी पोपलीला विस्त्र है परन्तु ईसाइयोंके ईरवर और उनके पुजारियोंकी पोपलीला उससे सहस्रगुणा बढ़कर है क्योंकि चामके दाम और भोजनके पर्श्व खानेको आवें किर ईसाइयोंने खूब मौज उड़ाई होगी और अब भी उड़ाते होगे ? भला कोई मनुष्य एक लड़केको मरवावे और दूसरे लड़केको उसका मांस खिलावे ऐसा कभी हो सकता है ? वैसे ही ईश्वरके सब मनुष्य और पशु, पक्षी अ दि सब जीव पुत्रवत् हैं। परमेश्वर ऐसा काम कभी नहीं कर सकता, इसीसे यह बाइबल ईश्वरक्तत और इसमें लिखा ईश्वर और इसके माननेवाले धर्मझ कभी नहीं हो सकते, ऐसी ही सब बातें लयव्यवस्था आदि पुस्त-कोंमें भरी हैं कहांवक गिनावें ॥ १३॥

#### गिनतीकी पुस्तक।

५४—सो गद्हीने परमेश्वरके दूतको अपने हाथमें तळवार हैंवें हुये मार्गमें खड़ा देखा तब गद्दी मार्गसे अछग खेतमें फिरगई, डसे मार्गमें फिरनेके छिये बछआमने गद्दीको छाठीसे मारा ।। तब परमे-भरने गद्दीका मुंद खोळा और उसने बछआमसे कहा कि मैंने तेए क्या किया है कि तूने मुफे अब तीन बार मारा ।। तो । गि० पर्य

# समुल्लास] मनुष्यवत् देहधारी ईश्वर । ६६१

२२ । आ० २३ । २८ ॥.

समीसक—प्रथम तो गद्दे तक ईश्वरके दूर्तोंको देखते थे और आजकड़ विशव पाद्री आदि श्रेष्ठ वा अश्रेष्ठ मनुष्योंको भी खुदा वा उसके दूत नहीं दीखते हैं क्या आजकल परमेश्वर और उसके दूत हैं वा नहीं ! यदि हैं तो क्या बड़ी नींदमें सोते हैं ? वा रोगी अथवा अन्य भूगोलमें चले गये ? वा किसी अन्य धन्धेमें लग गये वा अब ईसाइ-यांसे रूट होगये ? अथवा मर गये ? विदित नहीं होता कि क्या हुआ अनुमान तो ऐसा होता है कि जो अब नहीं हैं, नहीं दीखते तो तब भी नहीं थे और न दीखते होंगे किन्तु ये केवल मनमाने गपोड़े उद्यों हैं।। ४४।।

### समुएलकी दूसरी पुस्तक।

४६—और उसी रात ऐसा हुआ कि परमेश्वरका वचन यह कह के नातनको पहुंचा। कि जा और मेरे सेवक दाऊदसे कह कि परमेश्वर यों कहता है मेरे निवासके छिये तू एक घर बनायेगा क्यों जबसे इसरायलके सन्तानको मिश्रते निकाल लाया मैंने तो आजके दिनलों घरमें वास न किया परन्तु तम्बूमें और डेरेमें फिरा किया॥ तौठ समुपलको दूसरी पुठ पठ ७। आठ ४। ६। ६॥

सत्रीश्चक अब कुछ सन्देह न रहा कि ईसाइयों का ईश्वर मतुष्य-वत् देहधारी नहीं है। और उठहना देता है कि मैंने बहुत परिश्रम किया इधर उधर डोठता फिरा तो अब दाऊद घर बनादे तो उसमें आराम करूं, क्यों ईसाइयों को ऐसे ईश्वर और ऐसे पुस्तकको माननेमें उज्जा नहीं आती १ परन्तु क्या करें विचारे फँस ही गये अब निकठ-नेके छिये बड़ा पुरुषार्थ करना उचित है।। ४४।।

## राजाओंका पुस्तक।

 १६ — और बाबुउके राजा नवृखुइन जरके राज्यके उन्नीसर्वे वर्ष के पांचवें मास सातवी तिथिमें बाबुछके राजाका एक सेवक नवृस्त् अहान जो निज सेनाका प्रयान अध्यक्ष था यरूसळममें आया और उसने परमेश्वरका मन्दिर और राजाका भवन और यरूसळमके सारे घर और हरएक बड़े घरको जळा दिया और कसदियोंकी सारी सेनाने जो उस निज सेनाके अध्यक्षके साथ थी यरूसळमकी भीतोंको चारों ओरसे ढादिया।। तौ• रा० प० २६। आ• ८। ६। १०।।

समीक्षक—क्या किया जाय ईसाइयोंके ईश्वरने तो अपने आरामके लिये दाऊद आदिसे घर बनवाया था उसमें आराम करता होगा,
परन्तु नवूसर अहानने ईश्वरके घरको नष्ट भ्रष्ट कर दिया और
ईश्वर वा उसके दूतोंकी सेना कुछ भी न करसकी प्रथम तो इनका
ईश्वर वड़ी लड़ाइयां मारता था और विजयी होता था परन्तु अब
अपना घर जला तुड़वा बैठा न जाने चुगचाप क्यों बैठा रहा १ और
न जाने उसके दूत किघर भाग गये १ ऐसे समय पर कोई भी काम
न आया और ईश्वरका पराक्रम भी न जाने कहां उड़ गया १ यदि
यह बात सच्ची हो तो जो २ विजयकी बातें प्रथम लिखीं सो २ सब
व्यर्थ ही गई क्या मिस्नके लड़के लड़ियों के मारनेमें ही शूरवीर बना
था अब शूरवीरों के सामने चुपचाप हो बैठा १ यह तो ईसाइयों के
ईश्वरने अपनी निन्दा और अप्रतिष्ठा कराली ऐसे ही हजारों इस
पुस्तकमें निकम्मी कहानियां भरी हैं॥ ४६॥

## ज्बूर दूसरा भाग

# कालके समाचारकी पहिली पुस्तक।

५७—सो परमेश्वर मेरे ईश्वरने इसराएछ पर मरी भेजी और इसराएछमेंसे सत्तर सहस्र पुरुष गिर गये ॥ काछ० दू०२।प० २१। आ॰ १४॥

समीक्षक—अब देखिये ! इसराएलके ईसाइयोंके ईश्वरकी खीळा जिस इसराएल कुलको बहुतसे वर दिये थे और रात दिन जिनके पालनमें डोलता था अब ऋट क्रोधित होकर मरी डालके सत्तर सहस्र '

मनुष्योंको मारडाला जो यह किसी कविने लिखा है सत्य है कि:-क्षणे रुष्टः क्षणे तुष्टो रुष्टस्तुष्टः क्षणे क्षणे। अव्यवस्थितचित्तस्य प्रसादोऽपि भयङ्करः ॥ ६॥

जैसं कोई मनुष्य क्षणमें प्रसन्न, क्षणमें अप्रसन्न होता है अर्थात् क्षण २ में प्रसन्न अपसन्न होवे उसकी प्रसन्नता भी भयदायक होती है

वैसी छीला ईसाइयोंके ईश्वरकी है।। ५७॥

### ऐय्बकी पुस्तक।

४८—और एक दिन ऐसा हुआ कि परमेश्वरके आगे ईश्वरके पुत्र आ खड़े हुए और शैतान भी उनके मध्यमें परमेश्वरके आगे आ खड़ा हुआ। और परमेश्वरने शेतानसे कहा कि तू कहांसे आता है तब शैतानने उत्तर देके परमेश्वरसे कहा कि पृथिवी पर घूमते और इधर उथरसे फिरते चला आता हूं। तव परमेश्वरने शैतानसे पूछा कि तूने मेरे दास ऐयूवको जांचा है कि उसके समान पृथिवीमें कोई नहीं है वह सिद्ध और खरा जन ईश्वरसे डरता और पापसे अलग रहता है और अबलों अपनी सन्नाईको धर रक्खा है और तूने मुक्ते डसे अकारण नाश करनेको उभारा है। तब शैतानने उत्तर देके परमेश्वरसे कहा कि चामके छिये चाम हां जो मनुष्यका है सो अपने प्राणके लिये देगा। परन्तु अब अपना हाथ बढ़ा और उसके हाड़ मांसको छू तब वह निःसन्देह तुमे तेरे सामने त्यागेगा तब परमेश्वरने शैतानसे कहा कि देख वह तेरे हाथमें है केवल उसके प्राणको बचा। तब शेतान परमेश्वरके आगेसे चला गया और ऐयूबको शिरसे तलवेलीं बुरे फोड़ोंसे मारा॥ जबूर ऐयू० प०।२ आ०१।२।३।४।४। 11013

समीक्षक—अब देखिये ! ईसाइयोंके ईश्वरका सामर्थ्य कि शैतान उसके सामने उसके भक्तोंको दुःख देता है, न शतानको इण्ड, न अपने भक्तोंको बचा सकता है और न दूर्तोंमेंसे कोई उसका सामना कर सकता है। एक शैतानने सबको भयभीत कर रक्खा है और ईसाइयोंका ईश्वर भी सर्वज्ञ नहीं है जो सर्वज्ञ होता तो येयूवकी परीक्षा शैतानसे क्यों कराता १॥ ४८॥

### उपदेवाकी पुस्तक।

५६—हां मेरे अन्तःकरणने बुद्धि और ज्ञान बहुत देखा है और मैंने बुद्धि और बौहापन और मृदृता जाननेको मन छगाया मैंने जान लिया कि यह भी मनका मूंसह हैं। क्योंकि अधिक बुद्धिमें वडा शोक है और जो ज्ञानमें बढता है सो दुःखमें बढ़ता है ॥ ज० उ० प० १। **ब्या**० १६ । १७ । १८ ॥

समीक्षक - अव देखिये ! जो बुद्धि और ज्ञान पर्यायवाची हैं अनको दो मानते हैं और बुद्धि वृद्धिमें शोक और दुःख मानना विना ध्यविद्वानोंके ऐसा लेख कौन कर सकता है ? इसलिये यह बाइबल **ई**श्वरकी बनाई तो क्या किसी विद्वान्की भी बनाई नहीं है।। ५६॥ •

यह थोड़ासा तौरेत जबूरके विषयमें लिवा, इसके आगे कुछ मतीरचित आदि इब्जीलके विषयमें लिखा जाता है कि जिसकी **ईस**ई लोग बहुत प्रमाणभूत मानते हें जिसका नाम इबजील रक्खा है उसकी परीक्षा थोडीसी लिखते हैं कि यह कैसी है।

#### मत्तीरचित इञ्जील।

६०—यीशुख़ीष्टका जन्म इस रीतिसं हुआ उसकी माता मरिय-मकी यूलकरों मंगनी हुई थी पर उनक इकट्ठा होनके पहिले ही वह देख पड़ी कि पवित्र आत्मासे गर्भवती है देखो परमेश्वरके एक दूतने स्वप्नमें उसे दर्शन दे कहा, हे दाउदके सन्तान यूसफ तू अपनी स्त्री मरियमको वहां छानेसे मत डर क्योंकि जो गर्भ रहा सो पवित्र आत्मासे है।। इंप०१। आ०१८। २०॥

समीक्षक—इन बातोंको कोई विद्वान् नहीं मान सकता कि जो

प्रत्यक्षादि प्रमाण और सृष्टिकमसे विरुद्ध हैं इन बातोंको मानना मुर्ख मनुष्य जङ्गिलियोंका काम है सम्य विद्वानोंका नहीं, भला जो परमेश्वरका नियम है उसको कोई नोड़ सकता है ? जो परमेश्वर भी नियमको उलटा पलटा करे नो उसकी आज्ञाको कोई न माने और वह भी सर्वज्ञ और निर्धम है, ऐसे नो जिस २ कुमारिकांके गर्भ रहजाय तब सब कोई ऐसे कह सकते हैं कि इसमें गर्भका रहना ईश्वरकी ओरसे है और भूठ मृठ कहदे कि परमेश्वरकं दनने मुक्को स्वप्नमें कह दिया है कि यह गर्भ परमात्माकी ओरसे है, जैसा यह असम्भव प्रपंच रचा है वैसा ही सूर्यसे कुन्तीका गर्भवती होना भी पुराणोंमें असम्भव लिखा है, ऐसी २ बातोंको आंखके अन्धे गांठके पूरे लोग मानकर भ्रमजालमें गिरते हैं यह ऐसी बात हुई होगी किसी पुरुषके साथ समागम होनेसे गर्भवती अपिराम हुई होगी, उसने वा किसी दूसरेने ऐसी असम्भव बात उड़ादी होगी कि इसमें गर्भ ईश्वरकी ओरसे है। ६०।।

६१—तब आत्मा यीयुको जङ्गलमें लेगया कि शैतानसे उसकी परीक्षा कीजाय वह चालीस दिन और चालीस रात उपवास करके पीछे भूखा हुआ तब परीक्षा करनेहारेने कहा कि जो तू ईश्वरका पुत्र है तो कहदे कि ये पत्थर रोटियां बन जावें ॥ इं ● प० ४। आ० १। २।३॥

समीक्षक— इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि ईसाइयोंका ईश्वर सर्वज्ञ नहीं क्योंकि जो सर्वज्ञ होता तो उसकी परीक्षा शैतानसे क्यों कराता स्वयं जान छेता भछा किसी ईसाईको आजकछ चाछीस रात चाछीस दिन भूखा रक्खें तो कभी बच सकेगा ? और इससे यह भी सिद्ध हुआ कि न वह ईश्वरका बेटा और न छुछ उसमें करामात अर्थात् सिद्धि थी नहीं तो शैतानके सामने पत्थरकी रोटियां क्यों, न बना देता ? और आप भूखा क्यों रहता ? और सिद्धान्त यह है कि जो परमेश्वरने पत्थर बनाये हैं उनको रोटी कोई भी नहीं बना सकता खोर ईरवर भी पूर्वकृत नियमको उलटा नहीं कर सकता क्योंकि वह सर्वज्ञ और उसके सब काम विना भूछ चूकके हैं।। ६१।।

६२ — उसने उनसे कहा मेरे पीछे आओ में तुमको मनुष्यों के महुदे बनाऊ गावे तुरन्त ज.छोंको छोड़के उसके पीछे हो छिये।। इँ० प०४। आ●१६। २०। २१।

समीक्षक-विदित होता है कि इसी पाप अर्थात् जो तौरेतमें दश **भाज्ञाओं** में लिखा है कि (सन्तान लोग अपने माता पिताकी सेवा भौर मान्य करें जिससे उनकी उमर बढ़े सी ) ईसाने न अपने माता पिताकी सेवाकी और दूसरेको भी माता पिताकी सेवासे हुडाये इसी अपराधसे चिरष्जीवी न रहा और यह भी विदित हुआ कि ईसाने मनुष्योंके फँसानेके लिये एक मत चलाया है कि जालमें मच्छीके समान मनुष्योंको स्वमतमें फँसाकर अपना प्रयोजन सार्धे जब ईसा ही ऐसा था तो आजकलके पादरी लोग अपने जालमें मतुष्योंको फँसावें तो क्या आश्चर्य है ! क्यों कि जैसे बड़ी बड़ी और बहुत मच्छियांको जालमें फँसानेवालेकीयतिष्ठा और जीविकः अच्छी होती है ऐसे ही जौ बहुतोंको अपने मतमें फँसाले उसकी अधिक प्रतिष्ठा और जीविका होती है। इसीसे ये लोग जिन्होंने वंद और शास्त्रको न पढा न सुना उन विचारे भोले मनुष्योंको अपने जालमें फँसाके उसके मा बाप क़ुद्रम्ब आदिसे पृथक् कर देते हैं इससे सब बिद्वान आय्योंको उचित है कि स्वयं इनके भ्रमजालते बचकर अन्य अपने भोले भाइयोंके षचानेमें तत्वर रहें ।। ६२ ॥

६३—तब यी ग्रुसारे गालील देशमें उनकी सभाओं में उपदेश करता हुआ और राज्यकी सुसमाचार प्रचार करता हुआ और छोगों में हरएक रोग और हर न्याधिको चङ्गा करता हुआ फिरा किया। सब रोगियों को जो नानाप्रकारके रोगों और पीड़ाओं से दुःखी थे और भूतप्रस्तों और मृगीवाले और अर्द्राङ्कियों को उस पास्र छाये और उसने चङ्गा किया॥ इं म पि ४ आ १ २३ २४।२४॥

समीक्षक—जैसे आजकल पीपलीला निकालने मन्त्र पुरश्चरण आशीर्वाद बीज और भस्मकी चुट्की देनेसे भूतोंको निकालना रोगोंको छुडाना सञ्चा हो तो वह इंजीलकी बात भी सच्ची होवे इस कारण भोले मनुष्योंको भ्रममें फँसानेके लिये ये बातें हैं जो ईसाई लोग ईसाकी बानोंको मानते हैं तो यहांके देवी भोषोंकी बातें क्यों नहीं मानते ? क्योंकि वे बातें इन्हींके सदृश हैं।। ६३।।

६४-धन्य वे जो मनमें दीन हैं क्योंकि स्वर्गका राज्य उन्हींका है। क्योंकि मैं तुमसे सच कहता हूं कि जबलों आकाश और पृथिवी टल न जार्ये तबलों व्यवस्थासे एक मात्रा अथवा एक विन्दु विना पूरा हुए नहीं दलेगा। इसलिये इन अति छोटी आजाओं मेंसे एकको लोप करें और लोगों हो वैसे ही सिखावे वह स्वर्गके राज्यमें सबसे छोटा कहावेगा। इं मत्ती • प० १। आ० ३। ४। १८। १६॥

सभीक्षक-जो स्वर्ग एक है तो राजा भी एक होना चाहिए इस-लिये जितने दीन हैं वे सब स्वर्गको जावेंगे तो स्वर्गमें राज्यका अधि-कार किसको होगा अर्थात परस्पर लडाई भिडाई करेंगे और राज्य-व्यवस्था खण्ड बण्ड हो जायगी और दीनके कइनेसे जो कंगले लोगे तब तो ठीक नहीं, जो निरिममानी छोगे तो भी ठीक नहीं, क्यों कि दीन और अभिमानका एकार्य नहीं किन्त जो मनमें दीन होता है उसको सन्तोष कभी नहीं होता इसलिए यह बात ठीक नहीं। जब आकाश पृथिवी टलजायें तब व्यवस्था भी टल जायगी ऐसी अतिस्थ व्यवस्था मनुष्योंकी होती है सर्वज्ञ ईश्वरकी नहीं और यह एक प्रछो-भन और भयमात्र दिया है कि जो इन आज्ञाओं को न मानेगा वह स्वर्गमें सबसे छोटा गिना जायगा ॥ ६४॥

६५-इमारी दिन भरकी रोटी आज हमें दे। अपने लिये पृथिती पर धनका संचय मत करो।। इं म० प०६। आ० ११। १६॥

समीक्षक—इससे विदित होता है कि जिस समय ईसाका जन्म हुआ है उस समय छोग जङ्गछी और दरिद्र थे तथा ईसा भी वैसा ही दरिद्र था इसीसे तो दिन भरकी रोटीकी प्राण्तिके लिये ईश्वरकी प्रार्थना करता और सिखलाता है। जब ऐसा है तो ईसाई लोग धन संवय क्यों करते हैं उनको चाहिये कि ईसाके ववनसे विरुद्ध न चल-कर सब दान पुण्य करके दीन होजायें ।। ६४।।

६६-हरएक जो मुम्तवे हे प्रभु २ कहता है स्वर्गके राज्यमें प्रवेश नहीं करेगा।। इं ० म० प० ७। अ.० २१।।

समीक्षक-अब विचारिये बडे २ पादरी विशप साहेब और कृश्चीन लोग जो यह ईमाका वचन सत्य है ऐसा सममें तो ईसाको प्रभु अर्था गृईश्वर कभी न कहें. यदि इस बातको न मानेंगे तो पापसे कभी नहीं बच सकेंगे ॥ ६६ ॥

६७-- उस दिनमें बहुतेरे मुक्तते कहेंगे तब मैं उनसे खोछके कहंगा मैंने तुमको कभी नहीं जाना है कुकर्म्म करनेहारे सुमासे दूर होओ।। इं० म० पा ७। आ० २२। २३।।

समीक्षक—देखिये ईसा जङ्गली मनुष्योंको विश्वास करानेके लिये स्वर्गमें न्यायाधीश बनना चाहता था, यह केवल भोले मनुष्योंको प्रलो-भन देनेकी बात है।। ६७॥

६८-और देखो एक कोढ़ीने आ उसको प्रण.म कर कहा हे प्रभु ! जो आप चाहें तो मुक्ते शुद्ध कर सकते हैं, यीशुने हाथ बढ़ा डसे छुके कहा मैं तो चाहता हूं शुद्ध होजा और उसका कोढ तुरन्त ग्रद्ध होगया।। इं० म० प० 🖂 । आ० २ । ३ ।।

समीक्षक-ये सब बातें भोले मनुष्योंके फँसानेकी हैं क्योंकि जब साई लोग इन विद्या, सृष्टिकमविरुद्ध बातोंको सत्य मानते हैं तो . प्रकाचार्य्य, धन्वन्तरि, कश्यप आदिकी बातें जो पुराण और भारतमें अनेक दैत्योंकी मरी हुई सेनाको जिला दी. बृहस्पतिके पुत्र कचको कुड़ा २ कर जानवर और मच्छियोंको खिला दिया फिर भी शुका-बार्यने जीता कर दिया पश्चात कचको मारकर शकाचार्यको खिला. देया फिर भी उसको पेटमें जीता कर बाहर निकाल, आप मरगया

डसको कचने जीता किया, कश्यप भृषिने मनुष्यसिंहत वृक्षको तक्ष-कसे भस्म हुए पीछे पुनः वृक्ष और मनुष्यको जिल्ला दिया धन्वन्तिने छाखों मुर्ने जिलाये, लाखों कोड़ी आदि रोगियोंको चङ्गा किया, लाखों अन्धे और बहिरोंको आंख और कान दिये इत्यादि कथाको मिथ्या क्यों कहते हैं १ जो उक्त बातें मिथ्या हैं तो ईसाकी बात मिथ्या को नहीं जो दूसरेकी बातको मिथ्या और अपनी भूठीको सच्ची कहते हैं तो हठी क्यों नहीं १ इसलिए ईसाइयोंकी बातें केवल हठ और लड़कोंके समान हैं।। ६८।।

हि — तब भूतप्रस्त मनुष्य कबरस्थानोंसे निकल उससे आमि हैं जो यहांलों अतिप्रचंड थे कि उस मांगसे कोई नहीं जासकता था लोड़ हें खो उन्होंने चिल्लाके कहा है यीशु ईश्वरके पुत्र ! आपको हमसे क्या काम क्या आप समयके आगे हमें पीड़ा देनेको यहां आये हैं सो भूतोंने उससे विनती कर कहा जो आप हमको निकालते हैं तो सूज रोंके झुण्डमें पैठने दीजिये उसने उनसे कहा जाओ और वे निकलके सूजरोंके झुण्डमें पैठ और देखो सुजरोंका सारा झुण्ड कड़ाड़े परसे समुद्रमें दौड़ गया और पानीमें डूब मरा ॥ इं • म • प० ८ । आ०२८ २६ । ३० । ३१ । ३२ । ३३ ॥

समीक्षक—अला यहां तिनक विचार करें तो ये बातें सब भूठें हैं क्योंकि मरा हुआ मनुष्य कबरस्थानसे कभी नहीं निकल सकता है किसी पर न जाते न संवाद करते हैं ये सब बातें अज्ञानी लोगोंकी हैं जो कि महाजङ्गली हैं वे ऐसी बातों पर विश्वास लाते हैं और क सूअरोंकी हत्या कराई, सूअरवालोंकी हानि करनेका पाप ईसाको हुझ होगा और ईसाई लोग ईसाको पापक्षमा और पवित्र करनेवाला मान हैं तो उन भूतोंको पवित्र क्यों न कर सका ? और सूअरवालोंक हानि क्यों न भरही ? क्या आजकलके सुशिक्षित ईसाई अंगरेस ले हानि क्यों न भरही ? क्या आजकलके सुशिक्षित ईसाई अंगरेस ले हन गपोड़ोंको भी मानते होंगे ? यदि मानते हैं तो अमजाल कहे हैं॥ ६६॥

७०—देखो लोग एक अर्थाङ्गीको जो खटोले पर पड़ा था उस पास लाये और यीग्रुने उनका विश्वास देखके उस अर्थाङ्ग से कड़ा हे पुत्र ! ढाढस कर तेरे पाप क्षमा किये गये हें मैं धर्मियोंको नहीं परन्तु पापियोंको पश्चात्तापके लिये बुलाने आया हूं !! इं• म० प० ह । आ० २ ! १३ !!

समीक्षक—यह भी बात बैसी ही असम्भव है जैसी पूर्व लिख आये हैं और जो पाप क्षमा करनेकी बात है वह केवल भोठे लोगोंको प्रलोभन देकर फँसासा है। जैसे दूसरेके पीये मद्य भाग और अफीम खायेका नशा दूसरेको नहीं प्राप्त हो सकता बैसे ही किसीका किया हुआ पाप किसीक पास नहीं जाता किन्तु जो करता है वही भोगता है, यही ईश्वरका न्याय है, यदि दूसरेका किया पाप पुण्य दूसरेको प्राप्त होवे अथवा न्यायाधीश स्वयं ले लेवे वा कर्ताओं ही को यथा-योग्य फल ईश्वर न देवे तो वह अन्यायकारी होजावे, देखो धर्म ही कल्याणकारक है ईसा वा अन्य ोई नहीं और धर्मात्माओंके लिये ईसा आदिकी कुछ आवश्यकता भी नहीं और न पापियोंके लिये, क्योंकि पाप किसीका नहीं छूट सकता।। ७०।।

७१—यीग्रने अपने १२ शिष्योंको अपने पास बुलाके उन्हें अग्रुद्ध भूतों पर अधिकार दिया कि उन्हें निकालें और हरएक रोग और हर व्याधिको चङ्का करें। बोलनेहारे तो तुम नहीं हो परन्तु जुम्हारे पिताका आत्मा तुममें बोलता है। मत समस्तो कि मैं पृथिवी पर मिलाप करवानेको नहीं, परन्तु खड्ग चलवानेको आया हूं। मैं मतु-ाष्यको उसके पितासे और वेटीको उसकी मासे और पतोहूको उसकी साससे अलग करने आया हूं। मतुष्यके घरहीके लोग उसके बैरी 'होंगे॥ इं० मण्य० १०। आ० १३। ३४। ३६॥

इ समीक्षक—ये वे ही शिष्य हैं जिनमेंसे एक ३०) (तीस ) रू० के स्त्रोभ पर ईसाको पकड़ावेगा और अन्य बद्छ कर अलग २ भागेंगे, भिरा ये बार्ते जब विद्या ही से विरुद्ध हैं कि भूनोंका आना वा निका-

## समुक्लास] परस्पर विद्रोहकारी ईसा । ६७१

खना, बिना ओषि वा पथ्यके व्याधियोंका छूटना सृष्टिकमसे अस-म्भव है इसिंखेने ऐसी २ बातोंका मानना अज्ञानियोंका काम है, यदि जीव बोळनेहारे नहीं ईश्वर बोळनेहारा है तो जीव क्या काम करते हैं ? और सत्य वा मिथ्याभाषणके फळ सुख वा दुःखको ईश्वर ही भोगता होगा यह भी एक मिथ्या बात है। और जैसा ईसा फूट कराने और छड़ानेको आया था वही आजकळ कळह छोगोंमें चळ रहा है, यह कैसी बुरी बात है कि फूट कराने ने संबंधा मनुष्योंको दुःख होता है और ईसाइयोंने इसीको गुरुमन्त्र समम्क लिया होगा क्योंकि एक दूसरेकी फूट ईसा ही अच्छी मानता था तो यह क्यों नहीं मानते होंगे ? यह ईसा ही का काम होगा कि घरके छोगोंके शत्रु घरके छोगोंको बनाना, यह श्रेष्ठ पुरुषका काम नहीं॥ ७१॥

७२—तत्र यीग्रुने उनसे कहा तुम्हारे पास कितनी रोटियां हैं उन्होंने कहा सात और छोटी मछिलयां तब उसने छोगोंको भूमि पर बैठनेकी आज्ञा दी तब उसने उन सात रोटियोंको और अछिलयोंको धन्य मानके तोड़ा और अपने शिष्योंको दिया और शिष्योंने छोगोंको दिया सो सब खाके तृप्त हुए और जो दुकड़े बच रहे उनके सात टोकरे भरे उठाये जिन्होंने खाया सो स्त्रियों और बालकोंको छोड़ चार सहस्र पुरुष थे।। इं० म० प० १६। आ० ३४। ३६। ३६। ३६। ३८। ३८ ।३८ ।३८ ।

समीक्षक—अब देखिये ! क्या यह आजकलके भूठे सिद्धों और इन्द्रजाली आदिके समान छलकी बात नहीं है ? उन रोटियोंमें अन्य रोटियां कहांसे आगई ! यदि ईसामें ऐसी सिद्धियां होतीं तो आप भूखा हुआ गुलरके फल खानेको क्यों भटका करना था, अपने लिये मिट्टी पानी और पत्थर आदिसे मोहनभोग रोटियां क्यों न बनाली ! ये सब बार्ते लड़कोंके खेलपनकी हैं जैसे कितने ही साधु वैरागी ऐसी छलकी बार्ते करके भोले मनुष्योंको ठगते हैं वैसे ही ये भी हैं।। ७२।।

७३ — और तब वह हरएक मनुष्यको उसके कार्यके अनुसार फ छ देगा।। इंम० प० १६। आ० २७॥ समीक्षक—जब कर्मानुसार फठ दिया जायगा तो ईसाइयोंका पाप ध्रमा होनेका उपदेश करना व्यर्थ है और वह सच्चा हो तो यह मून्या होने, यदि कोई कहे कि क्षमा करनेके योग्य क्षमा किये जाते और ध्रमा न करनेके योग्य क्षमा नहीं किये जाते हैं यह भी ठीक नहीं क्योंकि सव कर्मोका फठ यथायोग्य देने ही से न्याय और पूरी द्या होती है। ७३।।

७४ — हे अविश्वासी और हठीटे टोगो! मैं तुमसे सत्य कहता हूं यदि तुमको राईके एक दानेके तुल्य विश्वास हो तो तुम इस पहा-इसे जो कहोगे कि यहांसे वहां चला जाय वह चला जयगा और कोई काम तुमसे असाध्य नहीं होगा।। इं म० प० १७। आ० १७। ३०।।

समीक्षक—अब जो ईसाईछोग उपरेश करते फिरते हैं कि "आओ हमारे मतमें पाप क्षमा कराओ मुक्ति पाओ" आदि वह सब मिथ्या बातें हैं। क्योंकि जो ईसामें पाप छुड़ाने, विश्वास जमाने और पवित्र करतेका सामर्थ्य होता तो अपने शिष्योंके आत्माओंको निष्पाप विश्वासी पवित्र क्यों न कर देता ? जो ईसाके साथ २ घूमते थे जब उन्हींको शुद्ध, विश्वासी और कल्याण न कर सका तो वह मरे पर न जाने कहां है ? इस समय किसी को पित्रत्र नहीं कर सकेगा, जब ईसाके चेठे राईभर विश्वाससे रहित थे और उन्होंने यह इश्वील पुस्तक बनाई है तब इसका प्रमाण नहीं हो सकता क्योंकि जो अवि-. श्वासी अपवित्रात्मा अधर्मी मनुष्योंका छेख होता है उस पर विश्वास करना कल्याणकी इन्छा करने वाले मनुष्योंका काम नहीं और इसीसे यह भी सिद्ध हो सकता है कि जो ईसाका वचन सन्धा है तो किसी ईसाईमें एक राईके दानेके समान विश्वास अर्थात् ईमान नहीं है जो कोई कहे कि हममें पूरा वा थोड़ा विश्वास है तो उससे कहना कि आप इस पहाडको मार्गमेंसे हटा देवें यदि उनके हटानेसे हटजाय तो भी पूरा विश्वास नहीं किन्तु एक राईके दानेके बराबर है और जो

समुद्धास] राईके बराबर विश्वास। ६७३

न हटा सके तो समम्मो एक छीटा भी विश्वास, ईमान अर्थात् धर्मका ईसाइयों में नहीं है यदि कोई कहे कि यहां अभिमान आदि दोषों का जाम पहाड़ है तो भी ठीक नहीं क्यों कि जो ऐसा हो तो मुद्दें, अन्धे, केड़ी, भूतमस्तों को चङ्का कहना भी आठसी, अज्ञानी, विषयी और आन्तों को बोध करके सचेत कुशल किया होगा जो ऐसा मानें तो भी ठीक नहीं क्यों कि जो ऐसा होता तो स्वशिष्यों को ऐसा क्यों न कर सकता ? इसलिये असम्भव बात कहना ईसाकी अज्ञानताका प्रकाश करता है भला जो कुछ भी ईसामें विद्या होती तो ऐसी अटाटूट जङ्गली-पनकी बातें क्यों कह देता ? तथापि (निरस्तपादणे देश एरण्डोऽपि हुमायते) जैसे जिस देशमें कोई भी वृक्ष न हो तो उस देशमें एरण्ड-का वृक्ष ही सबसे बड़ा और अच्छा गिना जाता है वैसे महाजङ्गली अविद्यानों के देशमें ईसाका भी होना ठीक था पर आजकल ईसाकी क्या गणना हो सकती है है।। ७४॥

ं ७५—मैं तुम्हें सच कहता हूं जो तुम मन न फिराओ और बाल-कोंके समान न होजाओ तो स्वर्धक राज्यमें प्रवेश करने पाओगे॥ इं• म० प• १८। आ० ३॥

समीक्षक — जब अपनी ही इंच्छास मनका किराना स्वांका कारण और न फिराना नरकका कारण है तो कोई किसीका पाप पुण्य कभी नहीं है सकता ऐसा सिद्ध होता है और वालकके समान होनेके टेखसे यह विदित होता है कि ईसाकी बातें विद्या और सृष्टिकमसे बहुतसी विरुद्ध थीं और यह भी उसके मनमें था कि छोग मेरी बातोंको बालक के समान मानलें, पूछें गाछें कुछ भी नहीं, आंख मीचके मान टेवें बहुत से ईसाईयोंकी बालखुद्धिवत् चेष्टा है नहीं तो ऐसी युक्ति विद्यासे विरुद्ध बातें क्यों मानते ? और यह भी सिद्ध हुआ जो ईना आप विद्याहीन बालखुद्धि न होता तो अन्यको बालवत् बननेका उपदेश क्यों करता ? क्योंक जो जैसा होता है वह दूसरेको भी अपने सदश बनाना चाहता ही है।। ७१।।

७६ — में तुमसे सच कहता हूं धनवानोंको स्वर्गके राज्यमें प्रवेश करना कठिन होगा फिर भी में तुमसे कहता हूं कि ईश्वरके राज्यमें धनवानके प्रवेश करनेसे ऊंटका सूईके नाकेमेंसे जाना सहज है ॥ इ० म० प० १६ । आ० २३ । २४ ॥

समीक्षक—इससे यह सिद्ध होता है कि ईसा दिर्द्ध था धनवान लोग उसकी प्रतिष्ठा नहीं करते होंगे इसलिये यह लिखा होगा परन्तु यह वात सच नहीं क्योंकि धनाढ यों और दिर्हों में अच्छे बुरे होते हैं जो कोई अच्छा काम करें वह अच्छा और दुरा करें वह बुरा फल पाता है और इससे यह भी सिद्ध होता है कि ईसा ईश्वरका राज्य किसी एक देशमें मानता था, सर्वत्र नहीं, जब ऐसा है तो वह ईश्वर ही नहीं, जो ईश्वर है उसका राज्य सर्वत्र हे पुनः उसमें प्रवेश करेगा वा न करेगा यह कहना कंवल अविद्याकी बात है और इससे यह भी आया कि जितने ईसाई धनाह्य हैं क्या वे सब नरक ही में जायेंगे ? दिख्य सब स्वर्गमें जायेंगे ? भला तिनकसा विचार तो ईसामसीह करते कि जितनी सामग्री धनाढ योंक पास होती है उतनी दिस्तोंके पास नहीं, यदि धनाह्य लोग विवेकसे धर्ममार्गमें व्यय करें तो दिद्ध नीच गतिमें पड़े रहें और धनाह्य उत्तम गतिको प्राप्त हो सकते हैं।। ७६।।

७७—यीशुने उनसे कहा में तुमसे सच कहता हूं कि नई सृष्टिमें जब मनुष्यका पुत्र अपने ऐश्चर्यके िहासन पर बैठेगा तब तुम भी जो मेरे पीछे हो लिये हो बारह सिंहासनों पर बैठके इस्रायेखके बारह कुर्छों का न्याय करोगे जिस किसीने मेरे नामके लिये घरों वा भाइयों वा बहिनों वा पिता माता वा स्त्री वा लड़कों वा भूमिको त्यागा है सो सौ गुणा पावेगा और अनन्त जीवनका अधिकारी होगा॥ इंड म० प० १६ । आ० २८ । २६ ॥

समीक्षक—अब देखिये ! ईसाके भीतरकी छीछा कि मेरे जालसे मरे पीछे भी छोग न निकल ज य और जिसने ३०) रुपयेके छोमसे अपने गुरुको पकड़ मरवाया वैसे पापी भी इसके प्रस सिंहासन पर

बैठेंगे और इस्रायेलके कलका पक्षपातसे न्याय ही न किया जायगा किन्तु उनके सब गुनः माफ और अन्य कुलोंका न्याय करेंगे, अनु-मान होता है इसिछिये ईसाई छोग ईसाइयोंका बहुत पश्चपात कर किसी गोरेने कालेको मार दिया हो तो भी बहुधा पक्षपातसे निरपराधी कर छोड देते हैं ऐसा ही ईसाफे खर्गका भी न्याय होगा और इससे बडा दोष आता है क्योंकि एक सृष्टिकी आदिमें मरा और एक क्रयामतकी रातके निकट मरा, एक तो आदिसे अन्त तक आशा ही में पड़ा रहा कि कब न्याय होगा और दूसरेका उसी समय न्याय हो गया यह कितना बड़ा अन्याय है और जो नरकमें जायगा सो अनन्त कालतक नरक भोगे और जो र्ख्यमें जायगा बह सदा र्ख्य भोगेगा यह भी बड़ा अन्याय है क्योंकि अन्तवाले साधन और कर्मोंका फल अन्तवाला होना चाहिये और तुल्य पाप वा पुण्य दो जीवोंका भी नहीं हो सकता इसलिये तारतम्यसे अधिक न्यून सुख दुःख वाले अनेक स्वर्ग और नरक हों तभी सुख दुःख भोग सकते हैं सो ईसाइयोंके पुस्तकमें कहीं **•**यवस्था नहीं इसिलिये यह पुस्तक ईश्वरकृत वा ईसा ईश्वरका बेटा कभी नहीं हो सकता, यह बड़े अनर्थकी बात है कि कदापि किसीके मा बाप सौ सौ नहीं हो सकते किन्तु एककी एक मा और एक ही बाप होता है अनुमान है कि मुसलमानोंने जो एकको ७२ खियां बहिश्तमें मिलती हैं लिखा है सो यहींस लिया होगा ।। ७७॥

७८—भोरको जब बहम घरको फिर जाता था तब उसको भूख छगी और मार्गमें एक गूलरका वृक्ष देखके वह उस पास आया परन्तु उसमें और कुछ न पाया केवल पत्ते और उसको कहा तुम्ममें फिर कभी फल न लगेंगे इस पर गूलरका पेड़ तुरन्त सुख गया ॥ इं • म • प • २१। आ० १८ । १६॥

समीक्षक—सब पादरी लोग ईसाई कहते हैं कि वह बड़ा शान्त शामान्वित और क्रोधादि दोषरहित था परन्तु इस बातको देखनेसे झात होता है कि ईसा क्रोधी और ऋतुके झानरहित था और वह जंगली मनुष्यपनके स्वभावयुक्त वर्तता था, भला जो वृक्ष जड़ पदार्थ है उसका क्या अपराध था कि उसको शाप दिया और वह सूख गया, उसके शापसे तो न सुखा होगा किन्तु कोई ऐसी ओषधि डालनेसे सुख गया हो तो आश्चर्य नहीं ॥ ७८ ॥

७६ — उन दिनों क्लेशके पीछे तुरन्त सूर्य अधियारा हो जायगा और चाँद अपनी ज्योति देगा नारे आकाशसे गिर पहेंगे और आ-कामकी सेना डिग जायगी ॥ इंब्स०प॰ २४ आ० २६॥

समीक्षक—बाहजी ईसा ! तारोंको किस विद्यासे गिर पडना आपने जाना और आकाशकी सेना कौनसी है जो डिग जायगी **१** जो कभी ईसा थोडी भी विद्या पढता तो अवश्य जान होता कि ये तारे सब भगोल हैं क्योंकर गिरंगे इससे विदित होता है कि ईसा बढ़ईके कुलमें उत्पन्न हुआ था सदा लकड़े चीरने, छीलना काटना और जोडना करता रहा होगा जब तरङ्ग उठी कि मैं भी इस जङ्ग्छी देशमें पैगम्बर हो सकूंगा बार्ते करने छगा, कितनी बार्ते उसके मुखसे अच्छी भी निकली और बहुतसी बुरी, वहांके लोग जङ्गली थे मान बैठे, जैसा आजकल यूरोप देश उन्नतियुक्त है वैसा पूर्व होता तो इसकी सिद्धाई कुछ भी न चलती अब कुछ विद्या हुए पश्चात् भी व्यवहारके पेच और हठसे **इस** पोल मतको न छोड़कर सर्वथा सत्य वेदमार्गकी ओर नहीं झकते यही इनमें न्यूनना है ॥ ७६ ॥

८०—आकाश और पृथिवी टल जायंगे परन्तु मेरी बातें कभी न टलेंगी ।। इं० म० प० २४ । आ० २५ ।।

समीक्षक—यह भी बात अविद्या और मूर्वताकी है भला आकारा हिलकर कहां जायगा जब आकाश अतिसूक्ष्म होनेसे नेत्रसे दीखता नहीं तो इसका हिल्ना कौन देख सकता है ? और अपने मुखसे अपनी बड़ाई करना अच्छे मनुष्योंका काम नहीं ॥ ८०॥

· ८१—तब वह उनसे जो बाई ओर है कहेगा हे स्नापित छोगो ! मेरे पाससे उस अनन्त आगमें जाओ जो शैतान और उसके द्तोंके

लिये तैयारकी गई है।। इं० म० प० २४। आ॰ ४१।।

· समीक्षक—भला यह कितनी बड़ी पक्षपातकी बात है जो अपने शिष्य हैं उनको स्वर्ग और जो दूसरे हैं उनको अनन्त आगमें गिराना परन्तु जब आकाश ही न रहेगा ते! अनन्त आग नरक बहिश्त कहां रहेगी ! जो शैतान और उसके दृतोंको ईश्वर न बनाता तो इतनी मरककी तैयारी क्यों करनी पडती ? और एक शैतान ही ईश्वरके भयसे न डरा तो वह ईश्वर ही क्या है क्योंकि उसीका दत होकर बागी होगया और ईश्वर उसको प्रथम ही पकडकर बन्दीगृहमें न डाल सका न मार सका पुनः उसकी ईश्वरता क्या जिसने ईसाको भी चालीस दिन दुःख दिया ? ईसा भी उसका कुछ न कर सकातो ईश्वरका बेटा होना व्यर्थ हुआ इसलिये ईसा ईश्वरका न बेटा और न बाइबलका ईश्वर, ईश्वर हो सकता है।। ८१।।

्र---तब बारह शिब्योंमेंसे एक यहदाह इसकरियोती नाम एक शिष्य प्रधान याजकोंके पास गया और कहा जो में यीशुको आप लोगोंके हाथ पकडवाऊ तो आप लोग मुक्ते क्या देंगे उन्होंने उसे तीस रूपये देनेको ठहराया ॥ इं॰ म० प० २६ । आ० १४ । १४ ॥

समीक्षक-अब देखिये। ईसाकी सब करामात और ईश्वरता यहां खुळ गई क्योंकि जो उसका प्रधान शिष्य था वह भी उसके साक्षात् संगसे पवित्रातमा न हुआ तो औरों को वह मरे पीछे पवित्रातमा क्या कर सकेगा ? और उसके विश्वासी छोग उसके भरोसेमें कितने ठगाये जाते हैं क्योंकि जिसने साक्षात् सम्बन्धमें शिष्यका कुछ कल्याण न किया वह मरे पीछे किसीका कल्याण क्या कर सकेगा।। 🖘 🕕

८३—जब वे खाते थे तब यीशुने रोटी लेके धन्यवाद किया और इसे तोड़के शिष्योंको दिया और कहा लेओ खाओ यह मेरा देह है मीर उसने कटोरा लेले धन्यवाद माना और उसको देके कहा तुम इससे पीयो क्योंकि यह मेरा छोहू अर्थात् नये नियमका है।। इं० मक प० रहे। आ० रहे। २७। २८॥ ं

समिक्षक—मछा यह ऐसी बात कोई भी सभ्य करेगा विना अविद्वान् जंगली मनुष्यके, शिष्योंसे खानेकी चीजको अपने मांस और
पीनेकी चीजोंको लोडू नहीं कह सकता और इसी बानको आजकलके
ईसाई लग्न अभुभोजन कहते हैं अर्थान् खाने पीनेकी चीजोंमें ईसाके
मांस और लोहूकी भावना कर खाते पीने हैं यह किननी बुरी बात है ?
जिन्होंने अपने गुरुके मांस लोहूको भी खाने पीनेकी भावनासे न छोड़ा
तो और को कैसे लोड़ सकते हैं ॥ ८३॥।

प्र - और वह पिताको और जब दो के दोनों पुत्रोंको अपने सङ्ग लेगाया और शोक करने और बहुत उदास होने लगा तब उसने उनसे कहा कि मेरा मन यहां लों अति उदास है कि मैं मरने पर हूं और थोड़ा आगे बढ़के वह मुंहके बल गिरा और प्रार्थना की है मेरे पिता जो होसके तो यह कटोरा मेरे पाससे टल जाय ।। इं० म० प० ३६। आ० ३७। ३८ । ३६ ।।

समीक्षक—देखो ! जो वह केवल मनुष्य न होता, ईश्वरका बेटा और त्रिकालदर्शी और विद्वान होता तो ऐसी अयोग्य चेटा न करता इससे स्पष्ट विदित होता है कि यह प्रपंच ईसाने अथवा उसके चेलोंने भूठ मूठ बनाया है कि वह ईश्वरका बेटा भूत भविष्यन्का वेता और पाप क्षमाका कर्ता है इससे समम्मना चाहिये यह केवल साधारण सूधा सचा अविद्वान्था न विद्वान, न योगी, न सिद्ध था।। ८४॥

्र्य चह बो अता ही था कि देखो यहूदाह जो बारह शिष्यों में से एक था आ पहुंचा और छोगों के प्रधान याजकों और प्राचीनों की ओरसे बहुत छोग खड़्ड और छाठियां छिये उसके संग यीशुके पकड़वा-नेहारेने उन्हें यह पता दिया था जिसको में चूंमूं उसको पकड़ों और वह तुरन्त यीशु पास आ बोछा हे गुरु प्रणाम और उसको चूंमा। तब उन्होंने यीशु पर हाथ डाछके उसे पकड़ा तब सब शिष्य उसे छोड़के भागे। अन्तमें दो भूठे साक्षी आके बोछे इसने कहा कि में ईश्वरका किंदर दा सकता हूं उसे तीन दिनमें फिर बना सकता हूं। तब महा-

### समुक्लास] ईसाके शिष्योंका लोभ। ६७६

याजक खड़ा हो यीशुसे कहा क्या तू कुछ उत्तर नहीं देता ये छोग तेरं विरुद्ध क्या साक्षी देते हैं। परन्तु यीगु चुप रहा इस पर महायाजकने उससे कहा में तुभे जीवते ईश्वरकी किया देता हूं हमसे कह तू ईश्व-रका पुत्र ख़ीष्ट है कि नहीं। थीश उससे बोला तू तो कहचुका तब महायाजकने अपने वस्त्र फाडके कहा यह ईश्वरकी नि दा कर चुका है अब हमें साक्षियोंका और क्या प्रयोजन देखो तुमने अभी उसके मुखसे ईश्वरकी निन्दा सुनी है। अब क्या विचार करते हो तब उन्होंने उत्तर दिया वह बंधके योग्य है। तब उन्होंने उसके मुंद पर थूका और उसे घू से मारे औरोंने थपेड़े मारक कहा हे ख़ीड़ हमसे भविष्यत्वाणी बोल किसने मुभ्ते मारा। पितरस बाहर अङ्गतेमें बैठा था और एक दासी उस पास आके बोली तू भी यीशु गालीखीके सङ्ग था उसने सभोंके सामने मुकरके कहा में नहीं जानता तु क्या कहती। जब वह बाहर डेवढीमें गया तो दूसरी दासीने उसे देखके जो लोग वहां थे उनसे कहा यह भी यीशु नासरीके सङ्ग था। उसने किया खाक फिर मुकरा कि मैं उस मनुष्यको नहीं जानता हूं तब वह धिकार देने और किया खाने लगा कि मैं उस मनुष्यको नहीं जनता हूं ॥ इं० म॰ प० २६। आ० ४७।४८।४६।४०। ६१।६२।६३।६४।६४। ईई | ई७ ई८ | ई€ | ७० | ७१ | ७२ | ७४ ॥

समीक्षक—अब देख लीजिये कि जिसका इतना भी सामर्थ्य वा प्रताप नहीं था कि अपने चेलेको दृढ़ विश्वास करा सके और वे चेले चाहे प्राण भी क्यों न जाते तो भी अपने गुरुको लोगसे न पकड़ाते, न मुकरते, न मिथ्याभाषण करते, न मूकी किया खाते और ईसा भी कुळ करामाती नहीं था जैसा तौरेतमें लिखा है कि लूतके घर पर पाहुनोंको बहुतसे मारनेको चढ़ आये थे वहां ईश्वरक दो दृत थे उन्होंने उन्होंको अन्धा कर दिया यद्यपि यह भी बात असम्भव है तथापि ईसामें तो इतना भी सामर्थ्य न था और आजकळ कितना बढ़ावा उसके नाम पर ईसाइयोंने बढ़ा रक्खा है, भला ऐसी दुईशासे मरनेसे

त्रयोदश

स्राप स्वयं ज़म्ह वा समाधि चडा अथवा किसी प्रकारसे प्राण छोडता तो अच्छा था परन्तु वह बुद्धि विना विद्याके कहांसे उपस्थित हो । वह ईसा यह भी कहता है कि ॥ ८४॥

⊏ई—में अभी अपने पितासे विनती नहीं करता हूं और वह में¢ पास स्वर्गद्वांकी बारह सेनाओंसे अधिक पहुंचा न देगा।। इं० म० प॰ २६। आ० ४३॥

समीक्षक-धमकाता भी जाता अपनी और अपने पिताकी बड़ाई भी करता जाता पर कुछ भी नहीं कर सकता देखों आश्चर्यकी बात जब महायाज इते पुछा था कि ये छोग तेरे विरुद्ध साक्षी देते हैं इस हा उत्तर दे तो ईसा चुप रहा यह भी ईसाने अच्छा न किया क्योंकि जो सच था वह वहां अवश्य कह देता तो भी अच्छा होता ऐसी बहुतसी अपने चमण्डकी बातें करनी उचित न थीं और जिन्होंने ईसा पर भूठा दोष लगाकर मारा उनको भी उचित न था क्योंकि ईसाक, उस प्रकारका अपराध नहीं था जैसा उसके विषयमें उन्होंने किया परन्तु वे भी तो जङ्गळी थे न्यायकी बातोंको क्या समम्हें ? यदि ईसा भूठ मुठ ईश्वरका बेटा न बनता और वे उसके साथ ऐसी बुराई न वर्तते तो दोनोंके लिये उत्तम काम था परन्तु इतनी विद्या धर्मात्मा और न्यायशीलता कहांसे लावें १॥ ८६॥

८७--यीशु अध्यक्ष आगे खड़ा हुआ और अध्यक्षते उससे पूछा क्या तू यहूदियोंका राजा है, यीशुने उससे कहा आप ही तो कहते हैं। जब प्रधान याजक और प्राचीन छोग उस पर दोष छगाते थे तब **उसने कुछ उत्तर नहीं** दिया तत्र पिलातने उससे कहा क्या तू नहीं सनता कि वे लोग तेरे विरुद्ध कितनी साक्षी देते हैं। परन्तु उसने एक बातका भी उसको उत्तर न दिया यहांछों कि अध्यक्षने बहुत अवभा किया पिछातने उनसे कहा तो मैं यीशुसे जो खीष्ट कहावता है क्या करं से भोंने उससे कहा वह कुश पर चढ़ाया जाने और यीशुको कोड़े मारके कूश पर चढ़ा जानेको सौंप दिया तब अध्यक्षके योधाओंने

यीशुको अध्यक्ष भवनमें लेजाके सारी पलदन उस पास इकद्वीकी और जन्होंने उसका वस्त्र उतारके उसे खाल बागा पहिराया **और कांटोंका** मुक्ट गुंथके उसके शिर पर रक्खा और उसके दहिने हाथ पर नर्कट दिया और उसके आगे घुटने टेकक यह कहके उसे ठट्टा किया है यह-दिशोंके राज। प्रमाम और उन्होंने उस पर धूका और उस नर्कटको छै इसके शिर पर मारा जब वे उससे ठट्टा कर चुके तब उससे वह बागा उतारके मसीका वस्त्र पहिराके उसे क्रूश पर चढ़ानेको छे गये। जब वे एक स्थान पर जो गल गया था अर्थात् खोपडीका स्थान कडाता है पहुंचे तब उन्होंने सिरकेमें पित्त मिलाक उसे पीनेको दिया परन्त उसने चीखके पीना न चाहा तब उन्होंने उसे क्रूश पर चड़ाया और उन्होंने उसका दोष रत्र उसके शिरके ऊपर लगाया तब दो डाकू एक इहिनी ओर और दूसरा बाई ओर उसके संग क्रुशों पर चढाये गये। जो छोग उधरसे आते जाते थे उन्होंन अपने शिर हिलाके आर यह कहकं उसकी निंदा की है मन्दिरके दाहनेहार अपनेको बचा जो त ईश्वरका पुत्र है तो क्रूश परसे उतर आ। इसी रीतिसे प्रधान याज-कोंने भी अध्यापकों और प्राचीनोंके संगियोंने ठठ्ठा कर कहा उसने औरोंको बचाया अपनेको बचा नहीं सकता है जो वह इस्रायंछका राजा है तो क्रश परसे अब उतर आवे और हम उसका विश्वास करेंगे। वह ईश्वर पर भरोसा रखता है यदि ईश्वर उसको चाहता है तो उसको अब बचावे क्योंकि उसने कहा में ईश्वरका पुत्र हूं जो डाकू उसके संग चढ़ाये गये उन्होंने भी इसी रीतिसे उसकी निन्दाकी दो प्रहरसे तीसरे प्रहरलों सारेदेशन अन्यकार होगया तीसर प्रहरके निकट यीशूने बड़े शब्दसे पुकारके कहा "एडी एडीडामा सबक्तनी" अर्थात् हे मेरे ईश्वर हे मेरे ईश्वर तूने क्यों मुक्ते त्यागा है जो छोग वहां खड़े थे उनमेंसे कितनोंने यह सुनके कहा वह एलियाहको बुछाता है (उनमेंसे एकने तुरन्त दौड़के इसपंज लेके सिर्कमें भिगीया और नल पर रखके इसे पीनको दिया तब यीशुने फिर बड़े शब्दसे पुकारके प्राण त्यागा ।। इ°• म० प० २७ । आ० ११ । १२ । १३ । १४ । २२ । २३ । २४ । २६ । २७ । २८ । ३० । ३१ | ३३ । ३४ । ३७ । ३८ । ३८ । ४० । ४१ । ४२ । ४३ । ४४ । ४६ । ४७ । ४८ | ४६ । ४७

सभी कि — सर्वथा यीगुके साथ उन दुष्टोंने बुरा काम किया परन्तु यी पुका भी दोष है क्योंकि ईश्वरका न कोई पुत्र न वह किसीका बाप है क्यांकि जो वह किसीका बाप होवे तो किसीका श्वसुर श्याला सम्बन्धी आदि भी होवे और जब अध्यक्षने पूछा था तब जैसा सच था उत्तर देना था और यह ठीक है कि जो २ आश्चर्य कर्म प्रथम किये हुए सच होते तो अब भी क्रूश परसे उत्तर कर सबको अपने शिष्य बना लेना और जो वह ईश्वरका पुत्र होना तो ईश्वर भी उसको बचा लेना जो वह त्रिकालदर्शी होता तो सिकेमें पित्त मिले हुएको चीलक क्यों छोड़ना वह पिले है ही से जानता होता और जो वह करामाती होता तो पुकार २ के प्राण क्यों त्यागता १ इससे जानना चाहिये कि चाहे कोई कि ननी ही चतुराई करे परन्तु अन्तमें सच सच और भूठ भूठ हो जाता है इससे यह भी सिद्ध हुआ कि यीग्रु एक उस समयके जङ्गली मनुष्योंने छुछ अच्छा था न वह करामाती, न ईश्वरका पुत्र और न विद्वान् था क्योंकि जो ऐसा होता तो ऐसा वह दुःल क्यों भोगता १ ॥ ८७ ॥

्र — और देखों बड़ा भूइं डोल हुआ कि परमेश्वरका एक दूत उतरा और आके कवरके द्वार परस पत्थर लुढ़कांके उस पर बैठा। वह यहां नहीं है जैसे उसने कहा वैस जी उठा है। जब वे उसके शिष्यों को सन्दंश जाती थी देखो यीशु उनसे आमिला कहा कल्याण हो और उन्होंने निकट आ उसके पांव पकड़के उसको प्रणाम किया। तब यीशुने कहा मत उरो जांक मेरे भाइयोंसे कड़दो कि वे गालीलको जावें और वहां वे मुक्ते दंखेंगे ग्याग्ह शिष्य गालीलको उस परवत पर गये जो थीशुने उन्हें बताया था। और उन्होंने उसे देखके उसको प्रणाम किया पर कितनों को सन्देह हुआ। यीशुने उन पास आ उनसे कहा स्वर्गमें और पृथिवी पर समस्त अधिकार मुक्तको दिया गया है! और देखो मैं जगत्के अन्त छों सब दिन तुम्हारे संग हूं।। इं० म० प० २८। आ० २। ६। १। १०। १६। १७। १८। २०।।

समीक्षक—यह बात भी मानने योग्य नहीं क्योंकि सृष्टिकम और विद्याविरुद्ध है, प्रथम ईरवरक पास दूतोंका होना उनको जहां तहां भेजना उररस उतरना क्या तहसीलद्वारी कलेकरीके समान ईरवरको बना दिया ? क्या उसी शरीरसे स्वर्गको गया और जी उठा ? क्योंकि उन क्षियोंने उनके पग पकड़के प्रणाम किया तो क्या वही शरीर था ? और वह तीन दिनलों सड़ क्यों न गया और अपने मुखसे सबका अधिकारी बनना केवल दम्भकी बात है शिष्योंसे मिलना और उनसे सब बातें करनी असम्भव हैं क्योंकि जो ये बातें सच हों तो आजकल भी कोई क्यों नहीं जी उठते ? और उसी शरीरसे स्वर्ग भी क्यों नहीं जाते ? यह मत्तीरचित इञ्जीलका विषय हो चुका अब मार्करचित इञ्जीलके विषयमें लिखा जाता है।। ८८।।

#### मार्करचित इञ्जील।

्र — यह क्या बढ़ई नहीं ॥ इं० मार्क० प० ६ ॥ आ० ३ ॥ समीक्षक — असलमें यूसफ बढ़ई था इसलिये ईसा भी बढ़ई था कितने ही वर्ष तक बढ़ईका काम करता था पश्चात पैगम्बर बनता २ ईश्वरकः बेटा ही बन गया और जङ्गली लोगोंने बना लिया तभी बड़ी कारीगरी चलाई । काट कूट फूट फाट करना उसका काम है ॥ ८९ ॥

#### ळुकरचित इञ्जोल।

६ • — यीशुने उससे कहा तू सुभे उत्तम क्यों कहता है कोई उत्तम नहीं हैं अर्थात ईश्वर ।। छ० प० १८ । आ० १६ ।।

ं समीश्रक—जब ईसा ही एक अद्वितीय ईश्वर कहता है तो ईसा-इयोंने पनित्रात्मा पिता और पुत्र तीन कहांसे बना दिये।। ६ ●।।

६१--तब उसे हेरोदके पास मेजा। हेरोद यीशुको देखके अति

आनिन्दित हुआ क्योंकि वह उसको बहुत दिनने देखना चाहता था इसिलिये कि उसके विषयमें बहुतसी वार्ते सुना थी और उसका कुछ आश्चर्य कर्म्म देखनेकी उसको आशा हुई उसने उससे बहुत बार्ते पृली परन्तु उसने उसे कुछ उत्तर न दिया।। ल्रुक० प० २६। आ० ८। १।

समीक्षक—यह बात मत्तीरचितमें नहीं हैं इसिंखेये ये साक्षी बिगड़ गये। क्योंकि साक्षी एकसे होने चाहियें और जो ईसा चतुर और करामाती होता तो (हेरोदको) उत्तर देना और करामात भी दिख-छाता इससे विदित होता है कि ईसामें विद्या और करामात कुछ भी न थी।। हर।।

#### योहनरचित सुसमाचार

६२—आदिमें बचन था और बचन ईश्वरक संग था और बचन ईश्वर था। वह आदिमें ईश्वरक संग था। सब कुछ उसके द्वारा सृजा गया और जो सृजा गया हे कुछ भी उस विना नहीं सृजा गया। इसमें जीवन था और वह जीवन मनुष्योंका उजियाला था।। प० १। आ० १। २। ३। ४।।

समीक्षक—आदिमें वचन विना वक्ताके नहीं हो सकता और जो वचन ईरवरक संग था तो यह कहना व्यथ हुआ और वचन ईरवर कभी नहीं हो सकता क्योंकि जब वह आदिमें ईरवरके संग था तो पूर्व वचन वा ईरवर था वह नहीं घट सकता, वचनके द्वारा सृष्टि कभी नहीं हो सकती जबतक उसका कारण न हो और वचनके विना भी चुपचाप रह कर कर्ता सृष्टि कर सकता है, जीवन किसमें वा क्या था इस वचनसे जीव अनादि मानोगे, जो अनादि है तो आदमके नथुनोंमें श्वास फूंकना भूठा हुआ और क्या जीवन मनुष्यों ही का उजियाला है परवादिका नहीं।। हर।।

६३ - और वियारीके समयमें जब शैतान शिस्रोनके पुत्र विहूदा

**5**24

इस्करियोतिके मनमें उसे पकड़वानेका मत डाल चुका था।। यो० पण १३। सा० २।।

समीक्षक—यह बात सच नहीं क्योंकि जब कोई ईसाइयोंसे पृछेगा कि शंतान सबको बहकाता है तो शेतानको कौन बहकाता है, जो कही शंतान आपसे आप बहकता है तो मनुष्य भी आपसे आप बहक सकते हैं पुनः शेतानका क्या काम और यदि शेतानका क्याने और बहकानेवाला परमेश्वर है तो वही शेतानका शेतान ईसाइयोंका ईश्वर ठहरा परमेश्वर ही ने सबको उसके द्वारा बहकाया, भरू ऐसे काम ईश्वर के हो सकते हैं ? सच तो यही है कि यह पुस्तक ईसाइयोंका और ईसा ईश्वरका बेटा जिन्होंने बनाये वे शेतान हों तो हों किन्तु न यह ईश्वरकृत पुस्तक न इसमें कहा ईश्वर और न ईसा ईश्वरका बेटा हो सकता है।। ह ३।।

६४—नुम्हारा मन ज्याकुळ न होते, ईश्वर पर विश्वास करों और मुम्मपर विश्वास करों मेरे पिताके घरमें बहुतसे रहनेके स्थान हैं नहीं तो मैं तुमसे कहता में तुम्हारे िक्ष्ये स्थान तैयार करने जाता हूं। और जो में जाके तुम्हारे िक्ष्ये स्थान तैयार करं तो फिर बाके तुम्हें अपने यहां छे जाऊंगा कि जहां मैं रहूं तहां तुम भी रहो। यीशुने उससे कहा में ही मार्ग औ सत्य भी जीवन हूं। विना मेरे द्वारासे कोई पिताके पास नहीं पहुंचता है। जो तुम मुमे जानते तो मेरे पिताको भी जानते ॥ यो० प० १४। आ० १। २। ३। ४। ४। ६। ७।।

समीक्षक—अब देखिये ये ईसाके बचन क्या पोपलीलासे कमती हैं, जो ऐसा प्रपञ्च न रचता तो उसके मतमें कौन फैसता क्या ईसाने अपने पिताको ठेकेमें लेलिया है और जो वह ईसाके वश्य है तो परा-धीन होनेसे वह ईश्वर ही नहीं क्योंकि ईश्वर किसीकी सिफारिश नहीं सुनता, क्या ईसाके पहिले कोई भी ईश्वरको नहीं प्राप्त हुआ होगा, ऐसा स्थान आदिका प्रलोभ न देता और जो अपने मुखसे आप मार्ग सत्य और जीवन बनता है वह सब प्रकारसे दम्भी कहाता है इससे यह बात सत्य कभी नहीं हो सकती॥ १४॥

६५ — में तुमसे सच २ कहता हूं जो मुक्त पर विश्वास करे जो काम में करता हूं उन्हें वह भी करेगा और इनसे बड़े काम करेगा॥ यो० प० १४। स्माट १२॥

समीक्षक—अब देखिये जो ईसाई छोग ईसा पर पूरा विश्वास रखते हैं वैसे ही मुर्दे जिलाने मादि काम क्यों नहीं कर सकते और जो विश्वाससे भी आश्चर्य काम नहीं कर सकते तो ईसाने भी आश्चर्य कम नहीं किये थे ऐसा निश्चित जानना चाहिये क्योंकि स्वयं ईसा ही कहता है कि तुम भी आश्चर्य काम करोगे तो भी इस समय ईसाई कोई एक भी नहीं कर सकता तो किसकी हियेकी आंख फूट गई है वह ईसाको मुद्दें जिलाने आदिका कामकर्ता मान लेवे॥ १४॥

६६—जो अद्वैत सत्य ईश्वर है।। यो० प० १७। आ० ३।। समीक्षक—जब अद्वैत एक ईश्वर है तो ईसाइयोंका तीन कहना सर्वथा मिथ्या है॥ ६६॥

इसी प्रकार बहुत ठिकाने इब्जीलमें अन्यथा बातें भरी हैं॥

#### योहनके प्रकाशित वाक्य।

बब योहनकी अद्भुत बातें सुनोः---

६७—और अपने २ शिर पर सोनेके मुकुट दिये हुए थे। और सात अग्निदीपक सिंहासनके आगे जलते थे जो ईश्वरके सातों आतमा हैं। और सिंहासनके आगे कोचका समुद्र है और सिंहासनके आस पास चार प्राणी हैं जो आगे और पीछे नेत्रोंसे भरे हैं।। यो० प्र● प● ४। आ० ४। ४। ६!।

समीक्षक—अब देखिये एक नगरके तुल्य ईसाइयोंका स्वर्ग है और इनका ईश्वर भी दीपकके समान अग्नि है और सोनेका मुकुटादि वाभूक्षण धारण करना और आगे पीछे नेत्रोंका होना असम्भावित है इन बातोंको कौन मान सकता है १ और वहां सिंहादि चार पशु छिखे हैं॥ १७॥

६८—और मैंने सिंहासन पर बैठनेहारेके दहिने हाथमें एक पुस्तक देखा जो भीतर और पीठ पर लिखा हुआ था और सात छापोंसे उस पर छाप दी हुई थी। यह पुस्तकें खोडने और उसकी छापें तोड़नेके योग्य कौन है। और न स्वर्गमें न पृथिवी पर न पृथिवीके नीचे कोई वह पुस्तक खोडने अथवा उसे देखने सकता था। और मैं बहुत रोने लगा इसलिये कि पुस्तक खोडने और पढ़ने अथवा उसे देखनेके योग्य कोई नहीं मिछा।। यो० प० प० ५ आ० १।२ ।३।४॥

समीक्षक—अब देखिये ईसाइयोंके स्वर्गमें सिंहासनों और मनुष्योंका ठाठ और पुस्तक कई छापोंसे बन्ध किया हुआ जिसको खोळने आदि कम करनेवाला स्वर्ग और पृथिवी पर कोई नहीं मिला, योहनका रोना और पश्चात एक प्राचीनने कहा कि वही ईसा खोळने वाला है, प्रयोजन यह है कि जिसका विवाह उसका गीत देखों ! ईसा ही के ऊपर सब माहात्म्य झुकाये जाते हैं परन्तु वे बातें केवल कथनमात्र हैं ॥ ह्या।

हर — और मैंने दृष्टि की और देखों सिंहासनके और चारों प्राणियोंके बीचमें और प्राचीनोंके बीचमें एक मेम्ना जैसा बध किया हुआ खड़ा है १ जिसके सात सींग और सात नेत्र हैं जो सारी पृथि-बीमें भेजे हुए ईश्वरके सातों आतमा हैं ।। यो• प्र० प० १ । आ० ६ ।।

समीक्षक — अब देखिये ! इस योहनके स्वप्नका मनोव्यापार उस स्वर्गके बीचमें सब ईसाई और चार पशु तथा ईसा भी है और कोई नहीं यह बड़ी अद्भुत बात हुई कि यहां तो ईसाके दो नेत्र थे और सींगका नाम भी न था और स्वर्गमें जाके सात सींग और सात नेत्रवाला हुआ ! और वे सातों ईश्वरके आत्मा ईसाके सींग और नेत्र बन गये थे ! हाय ! ऐसी बातोंको ईसाइयोंने क्यों मान लिया ? भळा कुळ तो बुद्धि लाते ॥ हह ॥

१०० — और जब उसने पुस्तक लिया तब चारों प्राणी और चौबीसों प्राचीन मेम्नेके आगे गिर पड़े और हरएकके पास बीण थी और धूपसे भरे हुए सोनेके पियाले जो पवित्र छोगोंकी प्रार्थनायें हैं।। थो• प्र० प० ४। आ० ८॥

समीभ्रक--भला जब ईसा स्वर्गमें न होगा तब ये विचारे धूप दीपं नैवेश आर्ति आदि पूजा किसकी करते होंगे ? स्वोर यहां प्रोटस्टेंट ईसाई लोग वुत्परस्ती (मृर्तिगृजा) को खण्डन करते हैं और इनका स्वर्ग वुत्परस्तीका घर बन रहा है।। १००।।

१०१ — और जब मेम्ने छ पोंमेंसे एकको खोळा तब मैंने दृष्टि की खारों प्राणियों मेंसे एकको जैसे मेघ गर्जनेके शब्दको यह कहते सुना कि आ और देख ओर मेंने दृष्टि की और देखो एक श्वेत घोड़ा है सौर जो उस पर बेठा है उस पास धनुष है और उसे मुकुट दिया गया खाँग वह जय करता हुआ और जय करनेको निकळा। सौर जब उसने दूसरी छाप खोळी। दृसरा घोड़ा जो ठाळ था निकळा उसको यह दिया गया कि पृथिवी पंग्से मेळ उठा देवे। और जब उसने सीसरी छाप खोळी देखो एक काळा घोड़ा है। और जब उनसे चौथी छाप खोळी देखो एक भीळासा घोड़ा है और जो उस पर बेठा है उसका नाम मृत्यु है इत्यादि॥ यो० प्र० प० ६। आ० १। २। ३। ४। ६। ७। ८।।

समीक्षक—अब देखिये यह पुराणोंसे भी अधिक मिथ्या लीला हैं धा नहीं ? भला पुस्तकोंके बन्धनोंके छापेके भीरत घोड़ा सवार क्योंकर रह सके होंगे ? यह स्वप्नेका बरड़ाना जिन्होंने इसको भी सत्य माना है । उनमें अविद्या जितनी कहें उतनी ही थोड़ी है ॥१०१॥

१०२ — और वे बड़े शब्दसे पुकारते थे कि हे स्वामी पवित्र और सत्य कबलों तू न्याय नहीं करता है और पृथिवीके निवासियोंसे हमारे लोहूका पलटा नहीं लेता है। और हरएकको उजला वस्न दिया गया और उनसे कहा गया कि जबजों तुम्हारे सक्की दास भी और सुम्हारे भाई जो तुम्हारी नाई बध किये जाने पर हैं पूरे न हों तबलों और थोड़ी देर विश्राम करो।। यो प्राप्त प्राप्त है। साठ १०। ११।। समीक्षक — जो कोई ईसाई होंगे वे होंड़े सुपूर्व होकर ऐसा न्याय

करानेके लिये रोया करेंगे, जो वेदमार्गका स्वीकार करेगा उसके न्याय होनेमें कुछ भी देर न होगी ईसाइयोंसे पूछना चाहिये क्या ईश्वरकी कचहरी अजकल बन्द है। और न्यायका काम भी नहीं होता न्यायाधीश निकम्मे बैठे हैं ? तो कुछ भी ठीक २ उत्तर न दे सकेंगे और इनका ईश्वर बहक भी जाता है क्योंकि इनके कानेसं मद इनके शत्रुसे पळटा छेने लगता है और देशिले स्वभाववाल हैं कि मरे पीछे स्ववैर लिया करते हैं शान्ति कुछ भी नहीं और जहां शान्ति नहीं वहां दुःखका क्या पारावार होगा ॥ १०२ ॥

१०३—और जैसे बड़ी बयारसे हिलाए जाने पर मूलरके वृक्षसे उसके कच्चे गुलर महते हैं तैसे आकाशके तारे पृथिवी पर गिर पडे और आकाश पत्रकी नाई जो छपेटा जाता है अछम हो गया।। यो• प्र० प० ६। आ ० १३ । १४ ॥

 समीक्षक—अब देखिये योहन भविष्यद्वक्ताने जब विद्या नहीं है तभी तो ऐसी अण्ड बण्ड कथा गाई, भला तारे सब भूगोल हैं एक पृथिवी पर कैसे गिर सकते हैं ? और सूर्यादिका आकर्षण उनको इधर उधर क्यों आने जाने देगा ॥ और क्या आकाशको चटाईके समान सम-फता है ? यह आकाश साकार पदार्थ नहीं है जिसको कोई छपेटे वा इकट्टा कर सके इसलिये योहन आदि सब जङ्गली मनुष्य थे उनको इन बातोंकी क्या खबर १ ॥ १०३ ॥

१०४—मैंने उनकी संख्या सुनी इस्राएलके सन्तानोंके समस्त कुलमेंसे एक लाख चवालीस सहस्र पर छाप दी गई यिहदाके कुलमेंसे बारह सहस्र पर छाप दी गई।। यो॰ प्र० प० ७। आ० ४। ४।।

समीक्षक-क्या जो बाइबलमें ईरवर लिखा है वह इस्राएल आहि कुलोंका स्वामी है वा सब संसारका १ ऐसा न होता तो बन्हीं जङ्गिले-योंका साथ 🖣 में देता १ और उन्हींका सहाय करना था दूसरेका नाम निशान भी नहीं छेता इससे वह ईश्वर नहीं और इस्राएउ कुछादिके मनुष्यों पर छाप लगाना अल्पन्नता अथवा योहनकी मिथ्या करूपना है।। १०४॥

१०५—इस कारण वे ईश्वरके सिंहासनके आगे हैं और उसके मिन्दिरमें रात और दिन उसकी सेवा करते हैं ॥ यो० प्र० प० ७ । आ ११ ॥

समीक्षक—क्या यह महाबुत्परस्ती नहीं है १ अथवा उनका ईश्वर देहधारी मनुष्य तुल्य एकदेशी नहीं है १ और ईसाइयोंका ईश्वर रातमें सोता भी नहीं है यदि सोता है तो रातमें पूजा क्योंकर करते होंगे १ तथा उसकी नींद भी उड़जाती होगी और जो रात दिन जागता होंगा तो विक्षित्र वा अति रोगी होगा ॥ १०४॥

ड १०६—और दूसरा दूत आके वेदीके निकट खड़ा हुआ जिस पास सोनेकी घूपदानी थी और उसको बहुत घूप दिया गया और घूपका घूआं पिवत्र छोगोंकी प्रार्थनाओं के सङ्ग दूतके हाथमेंसे ईश्वरके भागे चढ़ गया। और दूतने वह घूपदानी छेके उसमें वेदीकी आग भरके उसे पृथ्वी पर डाला और शब्द और गर्जन और बिजुलियां भीर भूइ डोल हुए ।। यो० प० प० ८ । आ० ३ । ४ । ४ ।।

समीक्षक—अब देखिये स्वर्ग तक वेदी घूप दीप नैवेद्य तुरहीके शब्द होते हैं क्या वैरागियों के मन्दिरसे ईसाइयों का स्वर्ग कम है है कुछ घूम धाम अधिक ही है ।। १०६।।

१०७—पित दूनने तुरही फूंकी और छोहूसे मिले हुए ओरे और आग हुए और वे पृथिवी पर डाले गये और पृथिवीकी एक तिहाई जलगई।। यो• प्र• प० ८। आ० ७॥

समीक्षक—वाहरे ईसाइयोंके भविष्यद्वक्ता ! **ईश्वर, ईश्वरके दूत** तुरहीका शब्द और प्रलयकी लीला केवल लड़कोंहीका खेल दीखता है ॥ १०७॥

१०८—और पांचवें दूनने तुरही फूंकी और मैंने एक तारकों देखा जो स्वर्गमेंसे पृथिवी पर गिरा हुआ था और अथाह कुण्डके कुएकी कुन्जी उसको दीगई और उसने अथाह कुण्डका कूप खोजा और कूपमेंसे बड़ी भट्टीके धूए की नाई धूआं उठा और उस धूए मेंसे टिड्डियां पृथिवी पर निकड़ गई और जैसा पृथिवी के बीहुओं को अधिकार होता है तैसा उन्हें अधिकार दिया गया और उनसे कहा गया कि उन मनुष्योंको जिनके माथे पर ईश्वरकी छाप नहीं है पांच मास उन्हें पीड़ा दी जाय।। यो० प्र० प्र० है। आ० १। २। ३। ४। ४।।

समीक्षक—क्या तुरुीका शब्द सुनकर तारे उन्हीं दूनों पर और उसी स्वर्गमें गिर होंगे १ वहां तो नहीं गिरे भला वह कूप वा टिड्डियां भी प्रलयके लिये ईश्वरने पाली होंगी और छापको देख बांच भी लेती होंगी कि छापवालोंको मत काटो १ यह केवल भोले मनुष्योंको उरपाके ईसाई बनालेनेका धोखा देना है कि जो तुम ईसाई न होंगे तो तुमको टिड्डियां कार्टेगी, ऐसी बार्ते विद्यादीन देशमें चल सकती हैं आर्थ्यावर्त्तमें नहीं क्या वह प्रलयकी बात हो सकती है १॥ १०८ ॥

१०६ — और घुड़चढ़ोंकी सेनाओंकी संख्या बीस करोड़ थी॥
 यो० प० ६ । आ० १६॥

समीक्षक—भछा इतने घोड़े स्वर्गमें कहां ठहरते कहां चरते और कहां रहते और कितनी छीद करते थे ? और उसका दुर्गन्थ भी स्वर्गमें कितना हुआ होगा ? वस ऐसे स्वर्ग, ऐसे ईश्वर और ऐसे मतके छिये हम सब आर्थ्योंने तिछा छि दे दी है ऐसा बखेड़ा ईसाइ-योंके शिर परसे भी सर्वशक्तिमानकी कृपासे दूर हो जाय तो बहुत अच्छा हो ॥ १०६॥

११० — और मैंने दूसरे पराक्रमी दूनको स्वांसे उत्तरते देखा जो मेघको ओड़े था और उसके शिरपर मेघ, धतुष् था और उसका मुंह सूर्य्यकी नाई और उसके पांव आगके खम्मोंके ऐसे थे। और उसने अपना दहिना पांव समुद्र पर और वांयां पृथिवी पर रक्खा।। योठ प्र० प० १० १ आठ १। २। ३।।

भसमीक्षक—अब देखिये इन दूर्तोंकी कथा जो पुराणों वा भांटोंकी कथाओंसे भी बढ़कर है ॥ ११०॥ १११—और लग्गोके समान एक नर्कट मुक्ते दिया गया और कहा गया कि उठ ईश्वरके मन्दिरको और वेदी और उसमेंके भजन करने हारोंको नाप।। यो० प्रणाप० ११। अण्या।

समीक्षक—यहां तो क्या परन्तु ईसाइयोंके तो स्वर्गमें भी मन्दिर क्रमाये और नापे जाते हैं अच्छा है उनका जैसा, स्वर्ग है वैसी ही वार्ते हैं इसिलये यहां प्रभुभोजनमें ईसाके शरीरावयव मांस लोहूकी भावना करके खाते पीते हैं और गिर्जामें भी हुंश आदिका आकार बनाना आदि भी बुत्परस्ती है।। १११।।

११२ — और स्वर्गमें ईश्वरका मिन्दर खोळा गया और उसके नियमका सन्दृक उसके मिन्दिरमें दिखाई दिया। यो॰ प्र० प० ११। आ॰ १६॥

े समीक्षक—स्वर्गामें जो मिन्द्रिर है सो हर समय वन्द्र रहना होगा कभी २ खोळा जाता होगा क्या परमेश्वरका भी कोई मिन्द्रिर हो सकता है ? जो वेदोक्त परमातमा सर्वव्यापक है उसका कोई भी मिन्द्रिर नहीं हो सकता। हां ईसाइयोंका जो परमेश्वर आकारवाळा है उसका खाहें स्वर्गामें हों चाहें भूमितें हो और जैसी छीछा टंटन पूं पूं की यहां होती है वैसी ही ईसाइयोंके स्वर्गमें भी। और नियमका सन्दृक भी कभी २ ईसाई छोग देखते होंगे उससे न जाने क्या प्रयोजन सिद्ध करते होंगे सच तो यह है कि ये सब बातें मनुष्योंको छुभानेकी हैं।। ११२।

११३—और एक वड़ा अ अर्घ स्वांमें दिखाई दिया अर्थात् एक खी जो सुस्यं पहिने है और चाँद उसके पोओं तले है और उसके शिर पर बारह तारोंका मुक्ट है। और वह गर्भवती होके चिल्लाती है क्योंकि प्रसवकी पीड़ा उसे लगी है और वह जननेको पीड़ित हैं। और दूसरा आश्चर्य स्वांमें दिखाई दिया और देखों एक बड़ा लाल अजगर है जिसके सात शिर और दश सींग हैं और उसके शिरों, पर साल राजमुक्ट हैं। और उसकी पूंछने अ काशके तारोंकी एक तिहाईको

स्वींचके उन्हें पृथिवी पर डाला ।। यो० प० प० १२ । आ० १।२।३।४॥ स्वींचके उन्हें पृथिवी पर डाला ।। यो० प० प० १२ । आ० १।२।३।४॥

समीक्षक—अब देखिये लम्बे चौड़े गपोड़े, इनके स्वर्गमें भी बिचारी खी चिछानी है उसका दुःख कोई नहीं सुनता न मिटा सकता है और उस अजगरकी पूंछ कितनी बड़ी थी जिसने तारोंको एक तिहाई पृथिवी पर डाला, भला पृथिवी तो छोटी है और तारे भी बड़े २ लोक हैं इस पृथिवी पर एक भी नहीं समा सकता किन्तु यहां यही अनुमान करना चाहिये कि ये तारोंकी तिहाई इस बातके लिखने वालेके घर पर गिरे होंगे और जिस अजगरकी पूंछ इतनी बड़ी थी जिससे सब तारोंकी तिहाई लपेट कर भूमि पर गिरा दी वह अजगर भी उसीके घरमें रहता होगा।। ११३।।

११४—और स्वर्गमें युद्ध हुआ मीख्येल और उसके दून अजग-रसे छड़े और अजगर और उसके दृत लड़े ॥ यो० प्र० प० १२। आ० ७॥

समीक्षक—जो कोई ईसाइयोंके र्स्वामें ज:ता होगा वह भी छड़ा-ईमें दुःख पाता होगा ऐसे स्दर्गकी यहांसे आश छोड़ हाथ जोड़ बैठ रहो जहां शान्तिभङ्क और उपद्रव मचा रहे वह ईसाइयोंके योग्य है॥ ११४॥

११५—और वह बड़ा अजगर गिराया गया हा वह प्राचीन सांप जो दियावल और शतान कहावता है जो सारे संसारका भरमानेहारा है ॥ यो० प्र० प० १२ । आ • ६ ॥

समिक्षिक—क्या जब वह शैतान स्वर्गमें था तब छोगोंको नहीं भरमाता था १ और उसको जन्म भर बन्दीमें चिरा अथवा मार क्यों न डाला १ उसको पृथिवी पर क्यों डाल दिया १ जो सब संसारको भरमानेवाला शैतान है तो शैतानको भरवानेवाला कौन है १ यदि शैतान स्वयं भर्मा है तो शैतानके विना भरमनेहारे भर्मेंगे और जो उसको भरमानेहारा परमेश्वर है तो वह ईश्वर ही नहीं ठहरा। विदिन तो यह होता है कि ईस.इयोंका ईश्वर भी शैतानसे डरता होगा क्योंकि जो शेतानसे प्रवठ है तो ईश्वरने उसे अपराध करते समय ही दण्ड क्यों न दिया ? जगतमें शेतानका जितना राज्य है उसके सामने सहस्रांश भी ईसाइयोंके ईश्वरका राज्य नहीं इसीलिये ईसाइयोंका ईश्वर उसे हटा नहीं सकता होगा इससे यह सिद्ध हुआ कि जैसा इस समयके राज्याधिकारी ईसाई डाकू चोर आदिको शीघ दण्ड देते हैं वैसा भी ईसाइयोंका ईश्वर नहीं, पुतः कोन ऐसा निर्वद्धि मतुष्य है जो वैदिकमतको छोड़ कपोलकलिपत ईसाइयोंका मत स्वीकार करें ? 1१११।

१४६—हाय पृथिवी और समुद्रके निवासियो ! क्योंकि शैतान तुम पास उत्तरा है॥ यो० प्र० प० १२ । अ.० १२ ॥

, समीक्षक—क्या वह ईश्वर वहींका रक्षक और स्वामी है १ पृथिवी, मनुष्यादि प्राणियोंका रक्षक और स्वामी नहीं है १ यदि भूमिका राजा है तो शितानको क्यों न मारसका १ ईश्वर देखता रहता और शितान बहकाता फिरता है तो भी उसको वर्जना नहीं, विदित तो यह होता है कि एक अच्छा ईश्वर और एक समर्थ दुष्ट दूसरा ईश्वर हो रहा है ॥ ११६॥

११७—और बयाळीस मास लों युद्ध करनेका अधिकार उसे दिया गया। और उसने ईश्वरके विकद्ध निन्दा करनेको अपना मुँइ खोला कि उसके नामकी और उसके तम्बूकी और स्वर्गमें वास करने-हारोंकी निन्दा करे। और उसको यह दिया गया कि पवित्र लोगोंसे युद्ध करे और उन पर जय करे और हरएक कुछ और भाषा और देश पर उसको अधिकार दिया गया।। यो० प्र• प॰ १३। आ० १।६। ७।।

समीक्षक—भठा जो पृथिवीके छोगोंको बहकानेके छिये शैतान और पशु आदिको भेजे और पवित्र मनुष्योंसे युद्ध करावे वह काम डाकुओंके सर्दारके समान है वा नहीं है ऐसा काम ईरवरके भक्तोंका नहीं हो सकता॥ ११७॥

११८ —और मैंने दृष्टिकी और देखो मेम्ना सियोन पर्वत पर

खडा है और उसके सङ्ग एक लाख चत्रालीस सङ्घ्राजा थे जिनके माथे पर उसका नाम और उसके पिताका नाम छिखा है।। यो॰ प्र० प० १४। आ० १॥

समीक्षक-अब देखिये जहां ईसाका बाप रहता था वहीं उसी सियोन पहाड पर उसका छड़का भी रहता था परन्तु एक छाख चवा-**औ**स सहस्र मनुष्योंकी गणना क्यांकर की १ एक छाख चवालीस सहस्र ही स्वर्गके वासी हुए। शेष करोड़ों ईसाइयोंके शिर पर न मोहर लगी ? क्या ये सब नरकमं गयं ? ईसाइयोंको चाहिये कि सियोन पर्वत पर जाके देखें कि ईसाका बाप ओर उसकी सेना वहां है वा नहीं ? जो हो तो यह छेख ठीक है नहीं तो मिथ्या, यदि कहीं से वहां आया तो कहांसे आया ? जो कहो स्वर्गते तो क्या वे पक्षी हैं कि इतनी बड़ी सेना और आप ऊपर नीचे उडकर आया जाया करें ? यदि वह आया जाया करता है तो एक जिलेके न्यायाधीशके समान हुआ और वह एक दो वा तीन हो तो नहीं बन सकेगा किन्तु न्युतसे न्यूत एक २ भूगोछतें एक २ ईश्वर चाहिये क्योंकि एक दो तीन अनेक ब्रह्माण्डोंका न्याय करने और सर्वत्र युगपद् घूमनेमें समर्थ कभी नहीं हो सकते ॥ ११८॥

११६ — आत्मा कहता है हां कि वे अपने परिश्रमसे विश्राम करेंगे परन्तु उनके कार्य उनके संग हो लेते हैं।। यो प्रबंप० १४। आ० १३॥

समीक्षक-देखिये ईसाइयोंका ईश्वर तो कहता है उनके कर्म उनके संग रहेंगे अर्थात कर्मानुसार फल सबको दिये जायंगे और यह लोग कहते हैं कि ईसा पापोंको छेछेगा और क्षमा भी किये जायंगे यहां बुद्धिमान विचारें कि ईश्वरका वचन सन्ना वा ईसाइयोंका १ एक कतम दोनों तो सच्चे हो ही नहीं सकते इनमेंसे एक भूठा अवश्य होगा हमको क्या, चाहें ईसाइयोंका ईश्वर मूठा हो वा ईसाई छोग ॥ ११६ ॥ ं १२०—और उसे ईश्वरके कोपके बड़े रसके कुग्डमें डाछा। और रसके कुण्डका रौन्दन नगरके बाहर किया गया और रसके कुण्डमें से घोड़ोंकी लगाम तक लोहू एकसौ कोश तक बह निकला।। यो० प्र० प० १४। आ० १६। २०।।

समीक्षक—अब देखिये इनके गपोड़े पुराणोंसे भी बढ़कर हैं वा नहीं ! ईसाइयोंका ईश्वर कोप करते समय बहुन दुःखित होजाता होगा और जो उसके कोपके कुण्ड भरे हैं षया उसका कोप जल है ? वा अन्य द्रवित पदार्थ है कि जिसके कुण्ड भरे हैं ? और सो कोस तक कथिरका बहना असम्भव है क्योंकि कथिर वायु लगनेसे मन्ट जम-जाता है पुनः क्योंकर वह सकता है ? इसलिये ऐसी बातें मिथ्या होती हैं !! १२०!!

१२१—और देखो र्खामें साक्षीके तंबूका मन्दिर खोळा गया।। यो० प्र० प० १४ । आ० ४ ॥

समीक्षक-- नो ईसाइयों का ईश्वर सर्वज्ञ होता तो साक्षियों का क्या काम ? क्यों कि वह स्वयं सब कुछ जानता होता इससे सर्वथा यही निश्चय होता है कि इनका ईश्वर सर्वज्ञ नहीं क्यों कि मनुष्यवन् अल्पज्ञ है वह ईश्वरताका क्या काम कर सकता है ? नहिं नहिं नहिं और इसी प्रकरणमें दृतों की बड़ी २ असंभव वाते छिखी हैं उनको सत्य कोई नहीं मान सकता करांतक छियें इस प्रकरणमें सर्वथा ऐसी ही बातें भरी हैं।। १२१।।

१२२ — ओर ईश्वरने उसके कुकर्मीको स्मरण किया है। जैसा तुम्हें उसने दिया है तैसा उसको भर देखो और उसके कर्मोंके अनुसार दूना उसे दे देओ ॥ यो० प्र० प० १८ । आ० ४ । ६ ॥

समीक्षक—देखो प्रत्यक्ष ईसाइयोंका ईश्वर अन्यायकारी है क्योंकि न्याय उीको कड़ते हैं कि जिसने जैसा वा जितना कर्म किया उसको वैसा और उतना ही फउ देना उससे अधिक न्यून देना अन्यायकारी के उपासना करते हैं वे अन्यायकारी क्योंन हों।। १२२।।

### समुल्लास] ईसाइयोंके स्वर्गमें विवाह। ६६७

१२३—क्योंकि मेम्नेका विवाह आपहुंचा है और उसकी स्त्रीने अपनेको तैयार किया है।। यो० प्र० प्र० १६। आ। ७।।

समीक्षक—अब सुनिये ! ईसाइयोंके स्वर्गमें विवाह भी होते हैं ! क्योंकि ईसाका विवाह ईरवरन वहीं किया, पूछना चाहिये कि उसके श्वश्र सासु शालादि कीन थे और लड़के वाले कितने हुए ? और वीर्यके नाश होनेसे बल, बुद्धि, पराक्रम, आयु आदिके भी न्यून होनेसे अबतक ईसाने वहां शरीर त्याग किया होगा क्योंकि संयोगजन्य पदार्थका वियोग अवश्य होता है अवतक ईसाइयोंने उसके विश्वासी धोखा खाया और न जाने कवतक धोखेंने रहेंगे ॥ १२३॥

१२४—और उसने अजगरको अर्थात् प्राचीन सांपको जो दिया-बल और शेतान है पकड़के उसे सहस्र वर्षलों बांध रक्खा और उसको अथाह कुण्डमें डाला और बन्द करके उसे छापदी जिसते वह जबलों सहस्र वर्ष पूरे न हों तबलों फिर देशोंके लोगोंको न भरमावे ॥ यो० प्र० प० २० । आ० २ । ३ ॥

समीक्षक—देखो मरूं मरूं करके शैतानको पकड़ा और सहस्र वर्ष तक बन्द किया फिर भी छूटेगा क्या फिर न भरमावेगा ? ऐसे दुष्टको तो बन्दीगृहमें ही रखना था मारं विना छोड़ना ही नहीं । परन्तु यह शैतानका होना ईसाइयोंका भ्रममात्र है वास्तवमें कुछ भी नहीं केवल लोगोंको डराके अपने जालमें लानेका उपाय रचा है। जैसे किसी धूर्तने किन्हीं भोले मनुष्योंसे कहा कि चलो तुमको देवताका दर्शन कराऊं किसी एकान्त देशमें लेजांके एक मनुष्यको चतुभुज बनाकर रक्खा माड़ीमें खड़ा करके कहा कि आंख मीच लो जब में कहूं तब खोलना और फिर जब कहूं तभी मीच लो जो न मीचेगा वह अन्धा हो जायगा। वैसी इन मन वालेंकी वाते हैं कि जो हमारा मजहव न मानेगा वह शैतानका लहक या हुआ है जब वह सामने आया तब कहा देखो ! और पुनः शीन्न कहा कि मीचलो जब फिर माड़ीमें छिप गया तब कहा खोलो । देखो नार यगको ! सबने दर्शन किया। वैसी लीला मजहबियों की है इसलिये इनकी मायामें किसीको न फँसना चाहिये।। १२४॥

१२५ — जिसके सन्मुखसे पृथिवी और आकाश भाग गये और उनके लिये जगह न मिली। और मैंने क्या छोटे क्या बड़े सब मृत-कोंको ईश्वरके आगे खड़े देखा और पुस्तक खोले गये और दूसरा पुस्तक अर्थात् जीवनका पुस्तक खोला गया और पुस्तकोंमें लिखी हुई धानोंसे मृतकोंका विचार उनके क मौंके अनुसार किया गया॥ यो० प्र० प० २०। आ० ११। १२॥

समीक्षक—यह देखो छड़कपनकी बात भछा पृथिवी और आकाश कैसे भाग संकंगे ? और वे किस पर ठहरेंगे। जिनके सामनेसे भगे और उद्यादा सिहासन और वह कहां ठहरा ? और मुर्दे परमेश्वरके सामने खड़े किये गये तो परमेश्वर भी बैठा वा खड़ा होगा! क्या यहां की कचहरी और दृकानके समान ईश्वरका व्यवहार है जो कि पुस्तक छेखानुसार होता है ? और सब जीवोंका हाल ईश्वरने लिखा वा उसके गुमाश्तोंने ? ऐसी २ बातोंसे अनीश्वरका ईश्वर और ईश्वरका अनीश्वर ईसाई अ.हि मन वालोंने बना दिया।। १२४।।

१२६ — उनमें से एक मेरे पास आया और मेरे संग बोला कि आ मैं दुलहिनको अर्थात् मेम्नेकी स्त्री को तुमेत दिखाऊँगा। यो ० प्र० प०२१। आ०१॥

समीयक—भला ईसाने स्वर्गमें दुलिहन व्यर्थात् स्वी अच्छी पाई मौज करता होगा, जो २ ईसाई वहां जाते होंगे उनको भी स्त्रियां मिलती होंगी और लड़के वाले होते होंगे और बहुत भीड़के हो जानेसे रोगोत्पत्ति होकर मरते भी होंगे। ऐसे स्वर्गको दूरसे हाथ ही जोरना अच्छा है॥ १२६॥

१२७—और उसने उस नलसे नगरको नापा कि साढ़े सातसौ कोशका है उसकी लम्बाई और चौड़ाई और ऊंचाई एक समान है। और उसने उसकी भीतको मनुष्य अर्थात् दूतके नापसे नापा कि

# समुछास] ईसाइघोंके स्वर्गका वर्णन । , ६९९

एकसी चवाळीस हाथकी है और उसकी भीतकी जुड़ाई सुरुपकात्तकी थी और तगर निर्मल सोनेका था जो निर्मल कांचके समान था और नगरके भीतकी नेवें हरएक बहुमूल्य पत्थरसे सँवारी हुई थीं पित्लिली नेवें हरएक बहुमूल्य पत्थरसे सँवारी हुई थीं पित्लिली नेव सुर्व्यकान्तकी थी, दूसरी नीलमणिकी, तीसरी लालड़ीकी, चौथी मरकतकी, पांचवीं गोमेदककी छठवीं माणिक्यकी, सातवीं पीतमणिकी, आठवीं पेरोजकी, नवीं पुलराजकी, दशवीं लड़सनियेकी, एग्यारहवीं धूम्मकान्तकी, बारहवीं मर्टीपकी और वारह फाटक बारह मोती थे एक र मोतीसे एक र फाटक बना था और नगरकी सड़क स्वच्छ कांचके ऐसे निर्मल सोनेकी थी॥ यो• प्र० प• २१। आ० १६। १७। १८। १२।

समिश्रक—सुनो ईसाइयोंके स्वर्गका वर्णन ! यदि ईसाई मरते जाते और जन्मत जाते हैं तो इतने बड़े शहरमें कैसे समा सकेंगे ? क्योंकि उसमें मनुष्योंका आगम होता है और उससे निकलते नहीं और जो यह बहुमूल्य रत्नोंको बनी हुई नगरी मानी है, और सर्व सोनेकी है इत्यादि लेख केवल मोठे २ मनुष्योंको बहकाकर फँसानेकी लीला है। भला लम्बाई चौड़ाई तो उस नगरको लिखी सो हो सकती परन्तु उ चाई स हे सातसों कोश क्योंकर हो सकती है ? यह सर्वथा मिथ्या क्योंलकरूपनाकी बात है और इतन बड़े मोती कहांसे आये होंगे ? इस लेखके लिखने वालेक घरके घड़े मेंसे यह गयोड़ा पुराणका भी बाप है।। १२७॥

१२८—और कोई अपित्रत्र वस्तु अथवा घिनित कर्म करनेहारा अथवा भूठ पर चळनेहारा उसमें किसी रीतिसे प्रवेश न करेगा ॥ यो० प्र० प० २० । आ ● २७ ॥

समीक्षक—जो ऐसी बात है तो ईसाई छोग क्यों कहते हैं कि पापी छोग भी स्वर्गमें ईसाई होनेसे जा सकते हैं ? यह ठीक बात नहीं है यदि ऐसा है तो योहजा स्वप्नेकी मिथ्या बातोंका करनेहारा स्वर्गमें प्रवेश कभी न कर सका होगा और ईसा भी स्वर्गमें न गया होगा क्योंकि जब अकेला पापी स्वगंको प्राप्त नहीं हो सकता तो जो अनेक पापियोंके पापके भारसे युक्त है वह क्योंकर स्वगंवासी हो सकता है १॥ १२८॥

१२६ — और अब कोई श्राप न होगा और ईस्वरका और मेम्नेका सिंहासन उसनें होगा और उसके दास उसकी सेवा करेंगे और ईस्वरका मुंद देखेंगे और उसका नाम उसके माथे पर होगा और वहां रात न होगी और उन्हें दी सकका अथवा सूर्यकी ज्योतिका प्रयोजन नहीं क्योंकि परमेश्वर ईस्वर उन्हें ज्योति देगा वे सदा सर्वदा राज्य करेंगे॥ यो • प्र • प्र २ आ • ३ । ४ । ४ ॥

समीक्षक—देखिये यही ईसाइयोंका स्वर्गवास ! स्या ईश्वर और ईसा सिहासन पर निरन्तर बैठे रहेंगे ? और उनके दास उनके सामने सदा मुंद देखा करेंगे ? अब यह तो किश्ये तुम्हारे ईश्वरका मुंद यूरोपि-यनके सदश गोरा वा अफ्रोका वालोंके सदश काला अथवा अन्य देशवालोंके समान है ? यह तुम्हारा स्वर्गभी बन्धन है क्योंकि जहां छोटाई बड़ाई है और उसी एक नगरमें रहना अवश्य है तो वहां दुःख क्योंन होता होगा ? जो मुखवाला है वह ईश्वर सर्वज्ञ सर्वेश्वर कभी नहीं हो सकता ॥ १२६॥

१३०—देख में शीब आना हूं और मेरा प्रतिकल मेरे साथ **दै** जिसतें हरएकको जिसा उसका कार्य्य ठइरेगा वैसा फल देक गा॥ यो० प्र• प० २२॥ आ० १२॥

समीश्रक—जब यं ी बात है कि कर्मानुसार फछ पाते हैं तो पापों की क्षमा कभी नहीं होती और जो क्षमा होती है तो इंजीलकी बातें क्रूठी। यदि कोई कहे कि क्षमा करना भी इंजीलमें लिखा है तो पूर्वापर विरुद्ध अर्थात् "हल्फदरोग्री" हुई तो भूठ है इसका मानना छोड़ देओ। अब कहां तक लिख इनकी बाइवलमें लःखों बातें खण्डनीय हैं यह तो थोड़ासा चिह्नमात्र ईसाइगों की बाइवल पुस्तकका दिख्लाया है इतने ही से बुद्धिमान् लोग बहुत समम्हलेंगे थोड़ीसी बातों को छोड़ शेष

सब मूळ भरा है, जैसे मूठके संगसे सत्य भी शुद्ध नहीं रहता वैसा ही षाइबल पुस्तक भी माननीय नहीं हो सकता किन्तु वह सत्य तो वेदांके स्वीकारमें गृहीत होता ही है।। १३०॥

इति श्रीमहयानन्दसरस्वतीस्वामिनिर्मिते सत्यार्थप्रकारो सुभाषावि-भूषिते कुश्चीनमतविषये त्रयोदशः समुहःसः सम्पूर्णः ॥१३॥



# अनुभृमिका (४)

~@:@~

जो यह १४ चवदहवां समुहास मुसलमानोंके मतविषयमें लिखा है सो केवल कुरानके अभिप्रायसे, अन्य प्रन्थके मतसे नहीं क्योंकि मुसलमान कुरान पर ही पूरा २ विश्वास रखते हैं, यद्यपि फिरके होनेके कारण किसी शब्द अर्थ आदि विषयमें विरुद्ध बात है तथापि कुरान पर सब ऐकमत्य हैं जो क़ुरान अर्बी भाषामें है उस पर मौल-वियोंने उर्दमें अर्थ लिखा है उस अर्थका देवनागरी अक्षर और आर्य-भाषान्तर कराके पश्चात् अर्बीके बड़े २ विद्वानोंसे शुद्ध करवाके लिखा गया है यदि कोई कहे कि यह अर्थ ठीक नहीं है तो उसकी **एचित है कि मौ**लवी साहबोंके तर्जुमोंका पहिले खण्डन, करे पश्चात् इस विषय पर लिखे क्योंकि यह लेख केवल मनुष्योंकी उन्नति और सत्यासत्यके निंणयके लिये सब मतोंके विषयोंका थोड़ा २ झान होवे इससे मनुष्योंको परस्पर विचार करनेका समय मिले और एक दूस-रेके दोर्षोंका खण्डन कर गुणोंका प्रहण करें न किसी अन्य मत पर न इस मत पर मूठ मूठ बुराई वा भलाई लगानेका प्रयोजन है किन्तु जो २ भलाई है वही भलाई और जो बुराई **है वही बुराई सबको** विदित होवे न कोई किसी पर मूठ चला सके और न सत्यको रोक सके और सत्यासत्य विषय प्रकाशित किये पर भी जिसकी इच्छा हो बह न माने वा माने किसी पर बलात्कार नहीं किया जाता और यही सजनोंकी रीति है कि अपने वा पराये दोषोंको दोष और गुणोंको गुण जान कर गुणोंको प्रहण और दोषोंका त्याग करें और हठियोंका हठ दुराप्रह न्यून करें करावें क्योंकि पक्षपातसे क्या २ अनर्थ जगत्में न हुए और न होते हैं। सचतो यह है कि इस अनिश्चित क्षणभञ्ज जीव-

नमें पराई हानि करके लाभसे स्वयं रिक्त रहना और अन्यको रखना मनुष्यपनसे विहा है इसमें जो कुछ विरुद्ध लिखा गया हो उसको सज्जन लोग विदित कर देंगे तत्परचात् जो उचित होगा तो माना जायगा क्योंकि यह लेख हठ. दुराष्ट्रह, ईर्ब्या, द्वेष, वाद विवाद और विरोध घटानेके लिये किया गया हैं न कि इनको बढ़ानेके अर्थ क्योंकि एक दूसरेकी हानि करनेसे पृथक् रह परस्परको लाभ पहुंचाना हमारा मुख्यकम है। अब यह चौदहवें समुलाशमें मुसलमानोंका मतविषय सब सज्जनोंके सामने निवेदन करता हूं विचार कर इष्टका महण अनिष्टका परिलाग की जिये।।

अलमतिविस्तरेण बुद्धिमद्वर्येषु॥

इत्यनुभूमिका।।



हुन्तर स्टून्स्य स्टून्स्

## अथ यवनमतविषयं समीक्षिष्यामहे

इसके आगे मुसलमानोंके मतविषयमें लिखेंगे॥

#### - THE

१---आरंभ साथ नाम अञ्चाहके क्षमा करनेवाला द्यालु॥ मंजिल १। सिपारा १। सूरत १॥

समीक्षक—मुसलमान लोग ऐसा कहते हैं कि यह कुरान खुदाका कहा है परन्तु इस वचनसे विदित होता है कि इसका बनानेवाला कोई दूसरा है क्योंकि जो परमेश्वरका बनाया होता तो "आरंभ साथ नाम अहाहके" ऐसा न कहता किन्तु आरंभ वास्ते उपदेश मनुष्योंके" ऐसा कहता ! यदि मनुष्योंको शिक्षा करता है कि तुम ऐसा कहो तो भी ठीक नहीं, क्योंकि इससे पापका आरंभ भी खुदाके नामसे होकर उसका नाम भी दृषित होजायगा। जो वह क्षमा और दया करनेहारा है तो उसने अपनी सुब्टिमें मनुष्योंके सुखार्थ अन्य प्राणियोंको मार, दारुण पीडा दिलाकर मरवाके मांस खानेकी आज्ञा क्यों दी ? क्या वे प्राणी अनपराधी और परमेश्वरके बनाये हुए नहीं हैं ? और यह भी कहना था कि परमेश्वरके नाम पर अच्छी बातोंका आरंभ" बुरी बातोंका नहीं इस कथनमें गोलमाल है, क्या चोरी, जारी, मिथ्यामा-षगादि अधर्मका भी आरंभ परमेश्वरके नःम पर किया जाय ? इसीसे देख लो कसाई भादि मुसलमान, गाय भादिके गले काटनेमें भी "विसमिहाह" इस वचनको पढ़ते हैं जो यही इस को पूर्वोक्त अर्थ है तो बुराइयोंका आरंभ भी परमेश्वरके नाम पर मुसलमान करते हैं मीर मुसलम,नोंका "ख़ुदा" द्यालु भी न रहेना क्योंकि उनकी द्या

हन पर्युओं पर न रही ! और जो मुसल्लमान लोग इसका अर्थ नहीं जानते तो इस वचनका प्रकट होना व्यर्थ है यहि मुसलमान लोग इसका अर्थ और करते हैं तो सुधा अर्थ क्या है १ इत्यादि॥ १ ॥

२ — सब स्तुति परमेश्वरके बास्ते है जो परवरिदेगार अर्थात् पाछन करनेहारा है सब संसारका । क्षमा करने वाला द्यं छु है।। मं० १। सि० १। सूरतुल्फःतिहा आ० १।२।।

समीक्षक—जो कुरानका खुरा संसारका पालन करनेहारा होता ब्योर सब पर क्षमा और द्या करता होता तो अन्य मत बाले ब्योर पशु आदिको भी मुसलमानोंके हाथसे मरवानेका हुक्म न देता। जो क्षमा करनेहारा है तो क्या पापियों पर भी क्षमा करेगा ? ब्योर जो बैसा है तो आगे लिखेंगे कि "काफिरोंको क्षतल करो" अर्थात् जो कुरान और पैगम्बरको न मानें वे काफिर हैं ऐसा क्यों कहता ? इस-लिये कुरान ईश्वरक्कत नहीं दीखता।। २॥

३—मालिक दिन न्यायका ।। तुम्म ही को हम भक्ति करते हैं और तुम्म ही से सहाय चाहते हैं ।। दिखा इमको सीया रास्ता ।। मं०१। सि०१। सु०१। आ०३। ४। ४।

समीक्षक—क्या खुदा नित्य न्याय नहीं करता १ किसी एक दिन न्याय करता है १ इससे तो अधेर विदित होता है ! उसीकी असि करना और उसीसे सहाय आहना तो औक परन्तु क्या खुरी बातका भी सहाय आहना ? और सुधा मार्ग एक मुसलमानों ही का है वा इसरेका भी १ सूधे मार्गको मुसलमान क्यों नहीं महण करते १ क्या सूधा रास्ता खुराईकी ओरका तो नहीं चाहते १ यदि भलाई सबकी एक है तो किर मुसलमानों ही में विशेष कुछ न रहा और जो दूस-रोंकी भलाई नहीं मानते तो पक्षपाती हैं ॥ ३ ॥

४ - अन क्रोगोंका रास्ता कि जिनपर तूने निआमत की और उनका मार्ग मत दिखा कि जिनके ऊपर तूने गज़ब अर्थात् अत्यन्त कोशकी द्वित की और न गुमराहोंका मार्ग हमकी दिखा ॥ मं० १। सि•।१। सू•। सा० ६। ७॥

समीक्षक - जब मुसलमान लोग पूर्व जनम और पूर्वकृत पाप पुण्य नहीं मानते हो किन्ही पर निआमत अर्थात् फूजल वा दया करने और किन्हीं पर न करनेसे खुदा पक्षपाती हो जायगा, क्योंकि विना पाप पुण्य सुख दुःख देना केवल अन्यायकी बात है और विना कारण किसी पर दया और किसी पर क्रोधदृष्टि करना भी स्वभावसे बहिः है। वहः दया अथवा कोच नहीं कर सकता और जब उनके पूर्व संचित पुण्या पाप ही नहीं तो किसी पर दया और किसी पर क्रोध करना नहीं हो सकता । ऑर इस सूरतकी टिप्पन "यह सूरः अल्लाह साहंबने मनुष्यों-के मुख्ये कहलाई कि सदा इस प्रकारते कहा करें" जो यह बात है ती "अलिफ वे" आदि अक्षर खुरा ही ने पढ़ाये होंगे, जो कही कि विनान अक्षर ज्ञानके इस सुरको कैसे पढ सके क्या कण्ठ ही से बुलाए और बोलते गये ? जो ऐसा है तो सब क़रान ही कंठसे पढाया होगा इससे। ऐसा समम्भना चाहिये कि जिस पुस्तकों पश्चपातकी बातें, पाई जांग्रं वह पस्तक ईश्वरकृत नहीं हो सकता, जैसा कि अरबी भाषामें उतार-नेसे अरबवालोंको इसका पहना सुगम अन्य भाषा बोलनेवालोंकोई कठिन होना है इससे ख़ुदामें पक्षपात आता है और जैसे परमेश्वरने सिष्टस्थ सब देशस्य मनुष्यों पर न्यायदृष्टिसे सब देशभाषाओंसे विलक्षण संस्कृत भाषा कि जो सब देशवालोंके लिये एकसे परिश्रमस्के विदित होती है उसीमें वंदोंका प्रकाश कि या है, करता तो यह दोक नहीं होता ॥ ४ ॥

4—यह पुस्तक कि जिसमें सन्देह नहीं परहेजगाँरोंको मार्ग दिखलाती है। जो ईमान लाते हैं साथ गैक (परोक्ष) के नमाज पढ़ते और उस वस्तुसे जो हमने दी खंच करते हैं।। और वे लोग जो उस किताब पर ईमान लाते हैं जो रखते हैं तेरी और वा मुक्तसे पहिलें उतारी गई और विश्वास क्रयामत पर रखते हैं। ये लोग अपने मालिक की शिक्षा पर हैं और ये ही क्षुटकारा पानेवाले हैं। निश्चय जो

## सम्रह्मास] बड़े अन्याय और अन्धेरकी बात । ७०७

काफिर हुए और उनपर तेरा डराना न डराना समान है वे ईमान न छावेंगे।। अलाह ने उनके दिलों कानों पर मोहर करदी और उनकी आंखों पर पर्दा है और उनके वास्ते बड़ा अजाब है।। मं०१। सि० १। सूरत २। आ● १।२।३।४।↓। ६॥

समीक्षक-क्या अपने ही मुखसे अपनी कितावकी प्रशंसा करना खुदाकी दम्भकी बात नहीं ? जब परहेज़गार अर्थात् धार्मिक लोग हैं वे तो स्वतः सच्चे मार्गमें हैं और जो भूठे मार्ग पर हैं उनको यह कुरान मार्ग ही नहीं दिख्छ। सकता फिर किस कामका रहा ? क्या पाप पुण्य और पुरुषार्थके विना खुदा अपने ही खज़ानेसे खुर्च करनेको देता है ? जो देता है तो सबको क्यों नहीं देता ? और मुसलमान छोग परिश्रम क्यों करते हैं और जो बाइबल इब्जील आदि पर विश्वास करना योग्य है तो मुसलमान इक्जील आदि पर ईमान जैसा कुरान पर है वैसा क्यों नहीं छाते ? और जो छाते हैं तो कुरान \* का होना किसलिये ? जो कहें कि कुरानमें अधिक बातें हैं तो पहिश्री किताबमें लिखना ख़ुदा भूल गया होगा। और जो नहीं भूला तो करा-नका बनाना निष्प्रयोजन है। और हम देखते हैं तो बाइबल और कुरानकी बातें कोई कोई न मिछती होंगी नहीं तो सब मिछती हैं एक ही पुस्तक जैसा कि वेद है क्यों न बन या ? क्रवामत पर ही विश्वास रखना चाहिये अन्य पर नहीं १॥१।२।३॥ क्या ईसाई और मुसलमान ही खुराकी शिश्वा पर हैं उनमें कोई भी पापी नहीं है ? क्या ईसाई और मुसलमान अधर्मी हैं वे भी ह्युटकारा पार्वे और दूसरे धर्मातमा भी न पार्वे तो बड़े अन्याय और अन्धेरकी बात नहीं हैं ? ।। ४ ॥ और क्या जो लोग मुसलमानी मतको न माने उन्हींको काफिर कहना यह एकतर्फी डिगरी नहीं है १॥ जो परमेश्वर ही ने उनके

श्रवास्तवमें यह शब्द "कुरआन" है परन्तु भ षामें छोंगोंके बोख-नेमें "कुरान आता है इसिखये ऐसा ही खिता है।

सन्तःकरण और कानों पर मोहर लगाई और उसीसे वे पाप करते हैं तो उनका कुछ भी दोष नहीं, यह दोष खुदा ही का है फिर उन पर सुख दुःख वा पाप पुण्य नहीं हो सकता पुनः उसको सजा क्यों करता है ? क्योंकि उन्होंने पाप वा पुण्य स्वतन्त्रतासे नहीं किया ॥ ४ ॥

६—उनके दिलोंमें रोग है अल्लाहने उनका रोग बढ़ा दिया।।मं० १। सि० १। सु० २। आ८ ६।।

समीक्षक—भञ्जा विना अनराध खुराने उनका रोग बढ़ाया द्या न आई उन विचारोंको बड़ा दुःव हुआ होगा ! क्या यह रोतानसे बढ़ कर रोतानपनका काम नहीं है ? किसीके मन पर मोहर खगाना, किसीका रोग बढ़ाना यह खुराका काम नहीं हो सकता, क्योंकि रोगका बढ़ाना अपने पापीसे है ॥ ६॥

७—जिसने तुम्हारे वास्ते पृथित्री विद्धौना और आसमानकी
 छतको बनाया ॥ मं•१। सि०१। सू०२। आ०२१॥

समीक्षक—भला आसमान छत किसीकी हो सकती है र यह अवि-द्याकी बात है आकाशका छतके समान मानना हंसीकी बात है यदि किसी प्रकारकी पृथिवीको आसमान मानते हो तो उनके घरकी बात है।। ७।।

- जो तुम उस वस्तुले सन्देहमें हो जो हमने अपने पैग्रम्बर के ऊपर उतारी तो उस कैसी एक सूरत छे आओ और अपने साक्षी छोगोंको पुकारो अल्छाहके विना तुम सच्चे हो जो तुम ।। और कभी न करोगे तो उस आगसे उरो कि जिसका इन्धन मनुष्य है और काफिरोंके वास्ते पत्थर तैयार किये गये हैं।। मं० १। सि० १। सु० २। आ० २२। २३॥
- समीक्षक—भला यह कोई बात है कि उसके सदृश कोई सूरत न बने १ क्या अकवर बादशाहके समयमें मौलवी फैजीने विना नुक्रतेका कुरान नहीं बना लिया था। वह कौनसी दोजलकी आग है १ क्या इस आगसे न डरना चाहिये १ इसका भी इन्धन जो कुछ पड़े सब है।

जैसं कुरानमें लिखा है कि काफिरोंके वास्ते पत्थर तैयार किये गये हैं तो वैसे पुराणोंमें लिखा है कि म्लेच्छोंके लिये घोर नरक बना है ! अब कहिये किसकी बात सच्ची मानी जाय ? अपने २ वचनसे दोनों स्वर्गगामी और दूसरेके मतसे दोनों नरकगामी होते हैं इसलिये इन सबका मगड़ा भूठा है किन्तु जो धार्मिक हैं वे सुख और जो पापी हैं वे सब मतोंमें दुःख पार्वेगे ॥ ८॥

६—और आनन्दका सन्देसा दे उन लोगोंको कि ईमान लए और काम किए अच्छे यह कि उनके वास्ते बिडिस्ते हैं जिनके नीचेसे चलती हैं नहरें जब उसमेंसे मेवोंके भोजन दिये जायेंगे तब कहेंगे कि वह वो वस्तु हैं जो हम पहिले इससे दिये गये थे और उनके लिये पवित्र बीबियां सदैव वहां रहनेवाली हैं।। मं• १। सि० १। सू० २। आ० २४॥

मिसंशक—मला यह कुरानका बहिरत संसारसे कौनसी उत्तम बात वाला है ? क्योंकि जो पर्ध संसारमें हैं वे ही मुसलमानोंके स्वर्गमें हैं और इतना विशेष है कि यहां जैसे पुरुष जन्मते मरते और आते जाते हैं उसी प्रकार स्वर्गमें नहीं किन्तु यहांकी खियां सदा नहीं रहतीं और वहां बीवियां अर्थात् उतम खियां सदा काल रहती हैं तो जवतक क्रयामतकी रात न आवेगी तबतक उन बिचारियोंके दिन कैसे कटते होंगे ? हां जो खुराकी उन पर कुपा होती होगी ! और खुदा ही के आश्रय समय काटती होंगी तो ठीक है ! क्योंकि यह मुसलमानोंका स्वर्ग गोकुलिये गुसाइयोंके गोलोक और मिहरके सटश दीखना है क्योंकि वहां स्त्रियोंका मान्य बहुत, पुरुषोंका नहीं, वैसे ही खुदाके घरमें स्त्रियोंका मान्य अधिक और उत्तपर खुराका प्रेम भी बहुत है उन पुरुषोंपर नहीं, क्योंकि बीवियोंको खुदाने बिहरतमें सदा रक्खा और पुरुषोंको नहीं, वे बीवियां बिना खुदाकी मर्जी स्वर्गमें कैसे ठहर सकती ? जो यह बात ऐसी ही हो तो खुदा स्त्रियोंमें कैस जाय ! ॥ह॥

कहा जो तुम सच्चे हो मुफ्ते उनके नाम बताओ ।। कहा हे आदम ! उनके नाम बता दे तब उसने बना दिये तो खुराने फ़रिश्तोंसे कहा कि क्या मैंने तुमसे नहीं कहा था कि निश्चय में पृथिवी और आसमानकी छिपी वस्तुओंको और प्रकट छिपे कमोंको जानता हूं।। मं• १। सि० १। सू० २। आ० २६। ३१॥

समीक्षक—भला ऐसे फ़रिश्तों को घोला देकर अपनी बड़ाई करना खुराका काम हो सकता है ? यह तो एक दम्भकी बात है, इसको कोई विद्वान नहीं मान सकता और न ऐसा अभिमान करता। क्या ऐसी बातोंसे ही खुरा अपनी सिद्धाई जमाना चाहता है ?, हां जंगली लोगोंमें कोई कैसा ही पालग्ड चला लेने चल सकता है, सम्यजनोंमें नहीं।।१०॥ ४१—जन हमने फ़रिश्तोंसे कहा कि बाबा आदमको दण्डवत् करो देला सभीने दण्डवत् किया परन्तु शैतानने न माना और अभिमान किया क्योंकि वो भी एक काफिर था॥ मं० १। सि० १। सू॰ २। आ० ३२॥

समीक्षक—इसले खुदा सर्वज्ञ नहीं अर्थात भूत, भविष्यत और वर्तमानकी पूरी बार्त नहीं जानता जो जानता हो तो शैतानको पैदा ही भों किया और खुदामें कुछ तेज नहीं है क्योंकि शैतानते खुदाका हुकम ही न माना और खुदा उसका कुछ भी न कर सका। और देखिये एक शैतान काफिरने खुदाका भी छक्का छुड़ा दिया तो मुसलमानोंके कथनानुसार भिन्न जहां कोड़ों काफिर हैं वहां मुसलमानोंके खुदा और मुसलमानोंकी क्या चल सकती है ? कभी २ खुदा भी किसीका रोग बढ़ा देता, किसीको गुमराह कर देता है, खुदाने ये बात शैतानसे सीखी होंगी और शैतानने खुदासे, क्योंकि विना खुदाके शैतानका उस्ताद और कोई नहीं हो सकता॥ ११॥

१२—हमने कहा कि जो आदम तु और तेरी जोरू बहिश्तमें रह-कर आनन्दमें जहां चाहो खाओ परन्तु मत समीप जाओ उस वृक्षके कि पापी हो जाओगे। शैतानने उनको डिगाया कि और उनको बिंद- श्तके आनन्द्से खोदिया तब हमने कहा कि उतरो तुम्हारेमें कोई पर-स्पर शत्रु है तुम्हारा ठिकाना पृथिवी है और एक समय तक लाम है आदम अपने मालिककी कुछ बातें सीख कर पृथिवी पर आगया।। मं० १। स० २। आ० ३३। ३४। ३४॥

समीक्षक—अब देखिये खुदाकी अल्पज्ञता अभी तो र्खामें रह-नेका आशीर्वाद दिया और पुनः थोडी देरमें कहा कि निकलो जो भविष्यत् बातोंको जानता होता तो वर ही क्यों देता ? और बह-कानेवाले शतानको दण्ड देनेसे असमर्थ भी दीख पड़ता है और वह षृक्ष किसके लिये उत्पन्न किया था १ क्या अपने लिये या दूसरेके छिये जो दूसरेके छिये तो क्यों रोका ? इसिछिये ऐसी बार्ते न ख़दाकी और न उसके बनाये प्रतकमें हो सकती हैं आदम साहेब खदासे कितनी बातें सीख आये ? और जब पृथिवी पर आदम साहेब आये तब किस प्रकार आये ? प्या वह बहिश्त पहाड पर है वा आकाश पर ? उससे कैसे उतर आये ? अथवा पक्षीके तुल्य आये अथवा जैसे क्रपरसे पत्थर गिर पड़े १ इसमें यह विदित होता है कि जब आदम साहेब मुझी से बनाये गये तो इनके खर्गमें भी मट्टी होगी ? और जितते वहां और हैं वे भी वैसे ही फ़रिश्ते आदि होंगे क्योंकि मट्टीके शरीर विना इन्द्रिय भाग नहीं हो सकता जब पार्थिव शरीर है तो मृत्यु भी अवश्य होना चाहिये यदि मृत्यु होता है तो वे वहांसे फहां जाते हैं ? और मृत्यु नहीं होता तो उनका जन्म भी नहीं हुआ जब जन्म है तो मृत्य अवश्य ही है यदि ऐसा है तो कुरानमें छिखा है कि बीवियां सदैव बहिश्तमें रहती हैं सो भूठा हो जायगा क्योंकि उनका भी मृत्यु अवश्य होगा जब ऐसा है तो बहिश्तमें जानेवालेंका भी मृत्य अवश्य होगा ॥ १२ ॥

१३—उस दिनसे डरो कि जब कोई जीव किसी जीवसे भरोसा न रक्षेगा न उसकी सिफ़ारिश स्वीकार की जावेगी न उससे बद्छा डिया जावेगा और न वे सहाय पार्वेगे ॥ मं १। सि १। सू १। सू आ० ४६॥

समीक्षक—क्या बर्तमान दिनोंमें न डरें ? बुराई करनेमें सब दिन डरना चाहिये जब सिफ़ रिश न मानी जावेगी तो फिर पैगम्बर की गवाही वा सिफ़ारिशसे खुदा स्वर्ग देगा यह बात क्योंकर सच हो सकेगी ? क्या खुदा बहिश्तवाओं ही का सहायक है दोज़ख़वाओंका नहीं यदि ऐसा है तो खुदा पक्षपाती है।। १३।।

१४--हमने मूसाको किताब और मोजिजे दिये।। हमने उनको कहा कि तुम निन्दित बन्दर हो जाओ यह एक भय दिया जो उनके सामने और पीछेसं उनको और शिक्षा ईमानदारोंको।। मं १। सि १। स्२२। आ० ४०। ६१।।

। समीक्षक — जो मूसाको किताब दी तो कुरानका होना निर्धक है और उसको भारवर्धशक्ति दी यह बाइबल और कुरानमें भी लिखा है परन्तु यह बात मानने योग्य नहीं क्योंकि जो ऐसा होता तो अब भी होता जो अब नहीं तो पहिले भी न था, जैसे स्वार्थों लोग आजकल भी अविद्वानोंके सामने विद्वान बन जाते हैं वैसे उस समय भी कपट किया होगा क्योंकि खुरा और उसके सेवक अब भी विद्यमान हैं पुनः इस समय खुरा अध्वर्यशक्ति क्यों नहीं देता ? और नहीं कर सकते जो मूसाको किताब दी थी तो पुनः कुरानका देना क्या आवश्यक था क्योंकि जो भलाई खुराई करने न करनेका उपदेश सर्वत्र एकता हो तो पुनः भिन्न २ पुस्तक करनेसे पुनरक्त होप होता है क्या मूसाजी आदिको दी हुई पुस्तकोंमें खुरा भूल गया था ? खुराने निन्दित बन्दर हो जाना केवल भय दनेके लिये कहा था तो उसका कहना मिथ्या हुआ वा छल किया जो ऐसी बार्ते करता है और जिसमें ऐसी बार्ते हैं वह न खुरा और न यह पुस्तक खुदाका बनाया हो सकता है ॥ १४ ॥

१५—इस तरह खुदा मुदोंको जिलाता है और तुमको।। अपनी निशानिया दिखलाता है कि तुम समम्हो।। मं० १। सि० १। सू० २

## समुक्लास] खुदाका मुद्दीका जिलाना। ७१३

मा• ६७॥

समीक्षक-क्या मुद्दोंको खुदा जिलाता था तो अब क्यों नहीं जिलाता ? क्या क्रयामतकी रात तक क्रवरोंमें पड़े रहेंगे ? आजकल दौरासुपुर्द हैं ? क्या इतनी ही ईश्वरकी निशानियां हैं ? पृथिवी, सूर्य, चन्द्रादि निशानियां नहीं हैं। क्या संसारमें जो विविध रचना विशेष प्रसक्ष दीखती हैं ये निशानियां कम हैं १।। १५।।

१६—वे सदैव काल बहिश्त अर्थात् वैदुण्ठमें वास करनेवाले हैं।। मं० १। सि० १। सुब २। आ० ७४॥

समीक्षक-कोई भी जीव अनन्त पाप करनेका सामर्थ्य नहीं रखता इसल्यि सदैव स्वर्ग नरकमें नहीं रह सकते और जो खुदा ऐसा करे तो वह अन्यायकारी और अविद्वान् होजावे क्रवामतकी रात न्याय होगा तो मनुष्योंके पाप पुण्य बराबर होना उचित है जो कर्म अनुन्त नहीं है उसका फल अनन्त कैसे हो सकता है ? और सृष्टि हुए सात आठ हज़ र वर्षोंसे इधर ही बतलाते हैं क्या इसके पूर्व खुदा निकम्माबैठाथा? और क्रयामतके पीछे भी निकम्मारहेगा है ये बातें सद लड़कोंके समान हैं क्योंकि परमेश्वरके काम सदैव वर्तमान रहते हैं और जितने जिसके पास पुण्य हैं उतना ही उसको फाउ देता है इसिंख्ये क़ुरानको यह दात सच्ची नहीं ।। ५६ ॥

१७--जब हमने तुमसे प्रतिज्ञा कराई न वहाना छोहू अपने आप-सके और किसी अपने आपसके घरोंसे न निकलना फिर प्रतिज्ञाकी तुमने इसके तुम ही साक्षी हो।। फिर तुम वे छोग हो कि अपने आपसको मार इ.लो हो एक फिरकेको आपमेंसे घरों उनकेसे निकाल देते हो ॥ मं∙ १। सि०१। सू॰ २। आ० ७७। ७८।।

सभीक्षक-भला प्रतिक्षा करानी और करनी अल्पज्ञों की बात है वा परमात्माकी १ जब परमेश्वर सर्वज्ञ है तो ऐसी कड़कूट संसारी मनुष्यके समान क्यों करेगा १ भछा यह कौनसी भछी बात है कि आपसका छोहू न बहाना अपने मत वाछोंको घरसे न निकालना धर्थान् दूसरे मत वालोंका लोहू बहाना और घरसे निकाल देना ? यह मिथ्या मूर्खता और पश्पातकी बात है। क्या परमेश्वर प्रथम ही से नहीं जानता था कि ये प्रतिज्ञासे विरुद्ध करेंगे ? इससे विदित होता है कि मुसलमानोंका खुदा भी ईसाइयोंकी बहुतसी उपमा रखता है और यह छुरान स्वतन्त्र नहीं बन सफता क्योंकि इसमेंसे थोड़ीसी बातोंको लोड़कर बाकी सब बातें बाइवलकी हैं॥ १७॥

१८—ये वे लोग हैं जिन्होंने आखरतके बद्छे जिन्दगी यहांकी मोल लेली उनसे पाप कभी हलका न किया जावेगा 'और न उनको सहायता दी जावेगी ॥ मं∙ १। सि•१। सू•२। आ० ७६॥

समीक्षक—भठा ऐसी ईर्घ्याहेषकी वार्ते कभी ईश्वरकी ओरसे हो सकती हैं ? जिन लोगोंके पास हलके किये जायेंगे वा जिनको सहा-यता दी जावेगी वे कोन हैं ? यदि ये पापी हैं और पापोंका दण्ड दिये विना हलके किये जावेंगे तो अन्याय होगा जो सज़ा देकर हलके किये जावेंगे तो अन्याय होगा जो सज़ा पाके हलके हो सकते हैं। और दण्द देकर भी हलके न किये जावेंगे तो भी अन्याय होगा। जो पापोंस हलके किये जाने वालोंसे प्रयोजन धम्मीत्माओंका है तो उनके पाप तो आपही हलके हैं खुदा क्या करेगा ? इससे यह लेख विद्वानका नहीं। और वास्तवमें धमीत्माओंको सुख और अध-मियोंको दुःख उनके कार्योंके अनुसार सदेव होना चाहिये॥ १८॥

१६ — निरचय हमने मूसाको किताब दी और उसके पीछे हम पैग्रम्बरको छाये और मरियमके पुत्र ईसाको प्रकट मोजिजे अर्थात् दैवीशिक्त और सामर्थ्य दिये उसके साथ रूहुळ्कुद्स \* के जब तुम्हारे पास उस वस्तु सिहत पैग्रम्बर आया कि जिसको तुम्हारा जी चाहता नहीं फिर तुमने अभिमान किया एक मतको ह्युठळाया और एकको

 <sup>\*</sup> रुहुल्कुद्स कहते हैं जबरईलको जो हरदम मसीहके साथ ।
 रहता था।

## समुह्णास] खुदाके शरीकोंको फौज। ७१५

मार डालते हो ।। मं० १। सि० १। सू० २। आ० ८०॥

समीक्षक — जब कुरानमें साक्षी है कि मूसाको कि जब दी तो उसको मानता मुसलमानों को आवश्यक हुआ ओर जो २ उस पुस्तकमें दोष हैं वे भी मुसलमानों के मतमें आगिर और "मौज़िने" अर्थात दैवी-शक्ति बातें सब अन्यथा हैं भोले भाले मनुष्यों को बहकाने के लिये भूठ मृठ चलाली हैं क्यों कि सृष्टिकम और विशासे विरुद्ध सब बातें भूठी ही होती हैं जो उस समय "मौज़िने" थे तो इस समय क्यों नहीं ? जो इस समय नहीं तो उस समय भी न थे इसमें कुल भी सन्देह नहीं ।। १६ ।।

२०—और इसते पढ़िले काफ़िरों पर विजय चाहते थे जो कुछ पहिचाना था जब उनके पास वह अथा मह काफ़िर होगए काफ़िरों पर छानत है अछाहकी ॥ मं०१। सि०१। सु०२। आ० ८२॥

समीक्षक—क्या जैसे तुम अन्य मत वालोंको काफिर कहते हो बैसे वे तुमको काफिर नहीं कहते हैं ? और उनके मतके ईश्वरकी ओर से धिकार देते हैं फिर कड़ो कौन सचा और कौन भूठा ? जो विचार करके देखते हैं तो सब मत वालोंमें मूठ पाया जाता है और जो सच है सो सबमें एकसा, ये सब लड़ाइयां मूंबताकी हैं।। २०।।

२१—आनन्दका सन्देशा ईमानदारोंको अझाइ, फ़रिस्तों पैगान्वरों जिवरईल और मीकाइलका जो शत्रु है अझह भी ऐसे काफिरोंका शत्रु है।। मं०१। सि०१। सु०२। आ०६०॥

समीक्षक—जब मुसलमान करते हैं कि खुरा लगारिक है फिर यह फ़ीजकी फ़ीज शरीक कहांसे करती ? क्या जो औरोंका शत्रु वह खुराका भी शत्रु है ? यदि ऐसा है तो ठीक नहीं क्योंकि ईश्वर किसीका शत्रु नहीं हो सकता।। २१।।

२२ — और कड़ो कि क्षमा मांगते हैं हम क्षमा करेंगे तुम्हारे पाप और अधिक भछाई। करने वालोंके ॥ मं०१।सि०२।सु०२। आ। १४॥ समीश्रक—भला यह खुद्दाका उपदेश सवको पापी बनानेवाला है वा नहीं ? क्योंकि जब पाप क्षमा होनेका आश्रय मनुष्योंको मिलता है तब पापोंसे कोई भी नहीं डरता इसल्यि ऐसा कहनेवाला खुरा और यह खुराका बनायाहुआ पुस्तक नहीं हो सकता क्योंकि वह न्यायकारी है अन्याय कभी नहीं करता और पाप क्षमा करनेमें अन्यायकारी हो सकता है।। २२।।

२३ - जब मूसाने अपनी कौमके लिये पानी मांगा हमने कहा कि अपना असा (दण्ड) पत्थर पर मार उसमेंसे बारह चश्मे बह निकले । मं• १। सि० १। सू• २। आ० ५६॥

समीक्षक—अब देखिये इन असम्भव बातोंके तुल्य दूसरा कोई कहेगा १ एक पत्थरकी शिलामें डण्डा मारनेसे बारह भरनोंका निक-लना सर्वथा असम्भव है, हां उस पत्थरको भीतरसे पोला कर उसमें पानी भर बारह लिंद्र करनेसे सम्भव है, अन्यथा नहीं ॥ २३ ॥

२४ — और अल्लाह खास करता है जिसको चाहता है साथ दया अपनीके ॥ मं•१। सि०१। सू०२। आ०६७॥

समीक्षक—क्या जो मुख्य और दया करनेके योग्य न हो उसको भी प्रधान बनाता और उस पर दया करना है ? जो ऐसा है तो खुदा बड़ा गड़बड़िया है क्योंकि फिर अच्छा काम कौन करेगा ? और बुरे कर्म कौन छोड़िया ? क्योंकि खुदाकी प्रसन्नता पर निर्भर करते हैं कर्मफ उपर नहीं इससे सबको अनास्था होकर कर्मोच्छेद्प्रसङ्ख होगा।। २४॥

२५ —ऐसा न हो कि काफिर छोग ईच्या करके तुमको ईमानसे फेर देवें क्योंकि उनमेंसे ईमानवार्छोंके बहुतसे दोस्त हैं।। मं०१। सि०१। सू०२। ब्या० १०१॥

समीक्षक—अब देखिये खुदा ही उनको चिताता है कि तुम्हारे ईमानको काफिर छोग न डिगा देवें क्या वह सर्वक्ष नहीं है १ ऐसी बातें खुदाकी नहीं होसकती है।। २४।।

## सम्रुष्लास] सर्वेशिक्तिमानका अर्थविवेचन। ७१७

ं २६ — तुम जिथर मुंह करो उधर ही मुंह अल्लाहका है।। मं०१। सि०१। सु०२। आ०१०७॥

समीक्षक—जो यह बात सन्वी है तो मुसलमान किवलेकी ओर मुंह क्यों करते हैं। जो कहें कि हमको किवलेकी ओर मुंह करनेका हुक्म है तो यह भी हुक्म हैं कि चाहे जियरको ओर मुख करो, क्या एक बात सन्वी ओर दूसरी भूठी होगी ? और जो अल्लाहका मुख है तो वह सब ओर हो ही नहीं सकता क्योंकि एक मुख एक ओर रहेगा सब ओर क्योंकर रह सकेगा ? इसलिये यह संगत नहीं !! २६ !!

२७—जो अ.समान और भूमिका उत्पन्न करने बाला है जब बो कुछ करना चाहता है यह नहीं कि उसको करना पड़ता है किन्तु उसे कहता है कि होजा बस होजाता है।। मं०१। सि०१। सू०२। आ●१०६॥

समीक्षक—भछा खुराने हुक्म दिया कि होजा तो हुक्म किसने सुना ? ओर किसको सुनाया ? और कौन बन गया ? किस कारणसे बनाया ? जब यह छिखते हैं कि सृष्टिकं पूर्व सिवाय खुराके कोई भी दूसरी वस्तु न थी तो यह संसार कहांसे आया ? विना कारणके कोई भी कार्य्य नहीं होता तो इतना बड़ा जगत् कारणके विना कहांसे हुआ यह बात केवछ छडकपनकी है।

पूर्वपक्षी-नहीं २ खुदाकी इच्छासे।

जत्तरपक्षी—क्या तुम्आरी इच्छाते एक म्बतिकी टांग भी बन जासकरी है शे कहते हो कि खुदा कि इच्छास यह सब कुछ जगत् बन`गया।

पूर्वपक्षी—खुदा सर्वशक्तिमान् है इसिक्ये जो चाहे सो कर छेता है।

उत्तरपक्षी-सर्वशक्तिमानका प्रा अर्थ है ?

, पूर्वपक्षी—जो चाहे स्रो करसके।

उत्तरपक्षी— 🗣 अ खुदा दूसरा 🥞 दें। भी बना सकता है 🖁 अपने

अाप मर सकता है ? मूर्ख रोगी और अज्ञानी भी बन सकता है ? प्रविपक्षी—ऐसा कभी नहीं बन सकता ।

उत्तरपश्ची—इसिंखये परमेश्वर अपने और दूसरोंके गुण. कर्म, स्वभावके विरुद्ध कुछ भी नहीं कर सकता जैसे संसारमें किसी वस्तुके बनने बनानेमें तीन पदार्थ प्रथम अवश्य होते हैं:—एक बनानेवाला जैसे कुम्हार, दूसरी घड़ा, बननेवाली मिट्टी और तीसरा उसका साधन जिससे घड़ा बनाया जाता है, जैसे कुम्हार, मिट्टी और साधनसे घड़ा बनता है और बननेवाले घड़के पूर्व कुम्हार, मिट्टी और साधन होते हैं बैस ही जगन्के बननेसे पूर्व जगन्का कारण प्रकृति और उनके गुण, कर्म, स्वभाव अनादि हैं इसिल्ये यह कुरानकी बात सर्वथा असरम्भव हैं।। २७।।

२८—जब हमने छोगोंके छिये काबेको पवित्र स्थान सुख देनेवाला बनाया तुम नमाजके छिये इवराहीमके स्थानको पकड़ो ॥ मं०१। सि०१।सु०२। मा०११७॥

समीक्षक — स्या कावे के पिहले पित्रत्र स्थान खुदाने कोई भी न बनाया था र जो बनाया था तो कावेके बनानेकी कुछ आवश्यकता न थी, जो नहीं बनाया था तो विचारे पूर्वोत्पन्नोंको पित्रत्र स्थानके विना ही रक्खा था र पिहले ईश्वरको पित्रत्र स्थान बनानेका स्मरण न रहा होगा ।। २८॥

२६ — वो कौन मनुष्य हैं जो इबराहीमके दीनसे फिर जार्ने परन्तु जिसने अपनी जानको मूर्ख बनाया और निश्चय हमने दुनियांमें उसीको पसन्द किया और निश्चय साखरतमें वो ही नेक है। मं०१। सि०१। स्०२। स्०२। आ०१२२।।

समिक्षक —यह कैसे सम्भव है कि इबराहीमके दीनको नहीं मानते थे सब मूर्ख हैं ? इबराहीमको ही खुदाने पसन्द किया इसका क्या कारण है ? यदि धर्मात्मा होनेके कारणसे किया तो धर्मात्मा और भी बहुत हो सकते हैं ? यदि विना धर्मात्मा होनेके ही पसन्द किया तो

#### समुद्धास] मुसलमानोंकी बुतपरस्ती। ७१६ अल्याय हुआ । हो यह हो तीर है कि हो आहिए होता है वही हैंगर

अन्याय हुआ । हां यह तो ठीक है कि जो धर्मात्मा होता है वही ईश्व-रको प्रिय होता है अधर्मी नहीं ।। २६ ।।

३०—िनरचय हम तेरे सुख को आसमानमें फिरता देखते हैं अवश्य हम तुभे उस किबलेको फेरेंगे कि पसन्द करे उसको बस अपना मुख मस्जिदुल्हरामकी ओर फेर जहां कहीं तुम हो अपना मुख उसकी ओर फेर लें।। मं॰ १। सि०२। सू०२। आ० १३६। समीक्षक— क्या यह छोटी जुल्परस्ती है ? नहीं बड़ी।

पूर्वपक्षी—हम मुसलमान लोग बुत्परस्त नहीं है किन्तु बुतशिकन अर्थात् मृत्तीको तोड़नेहारे हैं क्योंकि हम किबलेको खुदा नहीं समम्पते।

उत्तरपक्षी—जिनको तुम बुतपरस्त समम्मते ही वे भी उन २ मृत्तीको ईश्वर नहीं समम्मते किन्तु उनके सामने परमेश्वरकी भक्ति करते हैं यदि बुतोंके तोड़नेहारे हो तो उस मस्जिद किबले बड़े बुत्को क्यों न तोड़ा ?

पूर्वपश्ली—बाहजी । हमारे तो किवलेकी ओर मुख फेरनेका कुरा-नमें हुक्स है और इनको वेदमें नहीं है फिर वे बुत्परस्त क्यों नहीं ? और हम क्यों ? क्योंकि हमको खुदाका हुक्त बजाना अवश्य है ।

खतरपशी—जैसे तुम्हारे लिये छुरानमें हुष्म है वैसे इनके लिये षुराणमें आज्ञा है। जैसे तुम छुरानको खुराका कुळाम समम्प्रते हो वैसे पुराणी पुराणों को खुराके अवतार व्यासजीका वचन समम्प्रते हैं तुममें और इनमें बुत्परस्तीका छुळ भिन्नभाव न ीं है प्रत्युत तुम बड़े बुत्पर्स्त और ये छोटे हैं प्रोंकि जबतक कोई मनुष्य अपने घरमेंसे प्रविष्ट हुई बिल्लीको निकालने छगे तबतक खसके घरमें ऊट प्रविष्ट होजाय वैसे ही मुहम्मद साहेबने छोटे बुतको मुसलमानोंके मतसे निकाला परन्तु बड़े बुत्! जो कि पहाड़ सदृश मण्डकेकी मस्जिद है वह सब मुसलमानोंके मतमें प्रविष्ट करादी ख्या यह छोटी बुत्परस्ती है दें हो जो हम छोग वैदिक हैं वैसे ही तुम छोग भी वैदिक हो जाओ तो बुत्परस्ती आदि बुराइयोंसे बच सको अन्यथा नहीं, तुमको जबतक अपनी

बड़ी बुत्परस्तीको न निकाल दो तवतक दूसरे छोटे युत्परस्तोंके खण्ड-नसे लिजन होके निवृत्त रहना चाहिये और अननेको बुत्परस्तीसे प्रथक करके पवित्र करना चाहिये॥ ३०॥

32-जो लोग अल्लाहके मार्गमें मारे जाते हैं उनके लिये यह मत कहो कि ये मृतक हैं किन्तु वे जीवित हैं।। मं०१। सि●।२। स• २। आ० १४४॥

समीक्षक-भला ईश्वरके मार्गमें मरने मारनेकी प्या आवश्यकता है ? यह क्यों नहीं कहते हो कि यह बात अपने मतलब सिद्ध करनेके लिये है कि यह लोभ देंगे तो लोग खूब लड़ेंगे अपना विजय होगा मारनेसे न डरेंगे छट मार करानेसे ऐश्वर्य प्राप्त होगा, पश्चात विषया-नन्द करेंगे इत्यादि स्वप्रयोजनके लिये यह विपरीत व्यवहार किया है।। ३१।।

३२ - और यह कि अल्लाह कठोर दुःख देनेवाला है। शैतानके पीछे मत चलो निश्चय वो तुम्हारा प्रत्यक्ष रात्र है उसके विना और कुछ नहीं कि बुराई और निर्लड़जताकी साज्ञा दे सौर यह कि तुम कही अल्छाह पर जो नहीं जानते ।। मं १। सि० २ । स० २ । **आ०** 848 | 848 | 844 ||

समीक्षक- वा कठोर दुःख देनेवाला द्यालु खुदा पापियों, पुण्यात्माओं पर है अर्थवा मुसलमानों पर द्यालु और अन्य पर दयाहीन है जो ऐसा है तो वह ईश्वर ही नहीं हो सकता। और पक्ष-पाती नहीं है तो जो मनुष्य कहीं धर्म करेगा उस पर ईश्वर इयाद्ध भौर जो अधर्म करेगा उस पर दण्डदाता होगा तो फिर बीचमें मुह-म्मद साहेव और क़रानको मानना आवश्यक न रहा। और जो सबको बुराई करानेवाला मनुष्यमात्रका शत्र शैतान है उसकी बाउने बत्पन्न ही स्यों किया ? क्या वह भविष्यत्की बात नहीं जानता था जो कही कि जानता था परन्तु परीक्षाके छिये बनाया तो भी नहीं बन सकता, क्योंकि परीक्षा करना अल्पलका काम है सर्वज्ञ सो सब

### समुष्ठास] शौतानको बहकानेवाला खुदा। ७२१

जीवोंके अच्छे बुरे कर्मोंको सदासे ठीक २ जानता है और शैतान सबको बहकाता है तो शैतानको किसने बहकाया है जो कही कि शैतान आप बहकता है तो अन्य भी आपसे आप बहक सकते हैं बीचमें शैतानका क्या काम ? और जो खुदा ही ने शैतानको बहकाया तो खुदा शैतानका भी शैतान ठहरेगा ऐसी बात ईश्वरकी नहीं हो सकती और जो कोई बहकाता है वह कुसंग तथा अविद्यासे आन्त होता है।। ३२॥

३३ — तुम पर मुर्दार, लोहू और गोश्त सूत्ररका हराम है और अन्हलाहके विना जिस पर कुछ पुकारा जावे ॥ मै० १। सि०२। सू२। आ०१४६॥

े समीक्षक—यहां विचारना चाहिये कि मुद्दां चाहे आपसे आप मरे वा किसीके मारनेसे दोनों बराबर हैं, हा इनमें कुछ भेद भी हैं लथापि मृतकपनमें कुछ भेद नहीं और एक सूअरका निषेध किया तो क्या मनुष्यका मांस खाना उचित है ? क्या यह बात अच्छी हो सकती है कि परमेश्वरके नाम पर शत्रु आदिको अत्यन्त दुःख देके प्राणहत्या करनी ? इससे ईश्वरका नाम कर्जकित हो जाता है, हां ईश्वरने विना पूर्वजन्मके अपराधके मुस्तअमानोंके हाथसे दारुण दुःख क्यों दिखाया ? क्या उन पर द्यालु नहीं है ? उनको पुत्रवत् नहीं मानता ? जिस क्सुसे अधिक उपकार होवे उन गाय आदिके मारनेका निषेध न करना जानो हत्या कराकर खुदा जगत्का हानिकारक है दिसारूप पापसे कर्छकित भी हो जाता है ऐसी बातें खुदा और खुदाके पुस्तककी कभी नहीं हो सकती !! ३३ !!

३४—रोज़की बात तुम्हारे िस्ये हलाल की गई कि मदनोत्सव इरमा अपनी बीबियोंसे वे तुम्हारे वास्ते पर्दा हैं और तुम उनके िस्ये पर्दा हो अल्लाहने जाना कि तुम चोरी करते हो अर्थात् व्यभिचार इस फिर अल्लाहने क्षमा किया तुमको बस उनसे मिल्लो और ढूंढो जो अल्लाहने तुम्हारे हिस्ये दिखा दिया है अर्थात् संतान खाओ पिक्सो यहां- तक कि प्रकट हो तुम्हारे लिये काले तागेसे सुपेद तागा वा रातसे जब दिन निकले ॥ मं•१। सि०२। सू•२। आ०१७२॥

समीक्षक—यहां यह निश्चित होता है कि जब मुसलमानोंका मत चला वा उसके पहिले किसी न किसी पौराणिकको पूछा होगा कि चान्द्रत्यण वा जो एक महीने भरका होता है उसकी विधि क्या है वह शास्त्रविधि जो कि मध्याहमें चन्द्रकी कला घटने बढ़नेके अनुसार म्र.सांको घटाना बढ़ाना और मध्याह दिनमें खाना लिखा है उसको न जानकर कहा होगा कि चन्द्रमाका दर्शन करके खाना उस ो इन मुसलमान लोगोंने इस प्रकारका कर लिया परन्तु व्रतमें स्नीसमागमका त्याग है यह एक बात खुदाने बढ़कर कह दी कि तुम स्त्रियोंका भी समागम भले ही किया करो और रातमें चाहे अनेक बार खाओ, मला यह व्रत क्या हुआ है दिनको न खाया रातको खाते रहे, यह सुष्टिक-मत विपरीत है कि दिनमें न खाना रातमें खाना। ३४॥

३५—अल्लाहके मांगमें छड़ो उनसे जो तुमसे छड़तें हैं॥ मार डालो तुम उनको जहां पाओ॥ क्वतलसे कुफ़ बुरा है॥ यहांत क उनसे छड़ो कि कुफ़ न रहे और होवे दीन अल्लाहका॥ उन्होंने जितनी ज़ियादती करी तुम पर उतनी ही तुम उनके साथ करो ॥ मं•१। सि०२।स्०२। अा०१७४।१७६।१७६।१७८।

समीक्षक—जो कुरानमें ऐसी बातें न होती तो मुस्र उमान लोंगः इतना बड़ा अपराध जो कि अन्य मत वालों पर किया है न करते और विना अपराधियोंको मारना उन पर बड़ा पाप है। जो मुसल-मानके मतका प्रहण न करना है उसको कुफ़ कहते हैं अर्थात् कुफ़से कतलको मुसलमान लोग अच्छा मानते हैं अर्थात् जो हमारे दीनको न मानेगा उसको हम कुनल करेंगे सो करते ही आये मजहब पर लड़ते २ आप ही राज्य आदिसे मु होगये और उनका मत अन्य मत वालों पर अतिकठोर रहता है क्या चोरीका बदला चोरी है ? कि जितना अपराध हमारा चोर आदि करें क्या हम भी चोरी करें ? यह सर्वथा

## समुक्लास] विना पुण्य पापके रिज्क। ७२३

अत्य प्रका वत , क्या कोई अज्ञानी हमको गालियें दे क्या हम भी उसको गाली देवें रै यह बात न ईश्वरकी और न ईश्वरके भक्त विद्वानकी और न ईश्वरोक्त पुस्तककी हो सकती यह तो केवल स्वार्थी ज्ञानरहित मनुष्योंकी है ॥ ३५॥

३६ — अह. इ. मताड़ेको मित्र न्ीं रखता॥ ऐ. छोगो जो ईमान छ.ये हो इसल.ममें प्रवेश करो ॥ मं०१। सि०२। सृ•२। आर• १६०। १६३॥

समीक्षक — जो मत्पड़ा करनेको खुदा मित्र नहीं समम्मता तो क्यों भाग ही मुसलम नोंको मत्पड़ा करनेमें प्रेरणा करता है और मत्पड़ालू मुसलमानोंसे मित्रता क्यों करता है ? क्या मुसलमानोंके मतमें मिलने ही से खुदा राजी है तो वह मुसलमानों ही का पश्चाती है सब संसा-रका ईश्वर नहीं इससे यहां यह विदित होता है कि न कुरान ईश्वर-कृत और न इसमें कहा हुआ ईश्वर हो सकता है।। ३६।।

' ३७—खुदा जिसको चाहे अनन्त रिजक देवे ॥ मं० १। सि० २। स्ट०२। आ० १६७॥

समीक्षक—क्या विना पाप पुण्यके खुदा ऐसे ही रिज़क देता है है फिर भलाई बुराईका करना एकसा ही हुआ क्योंकि सुख दुःख प्राप्त होना उसकी इच्छा पर है इससे धर्मसे विमुख होकर मुसलमान लोग क्येष्टाचार करते हैं और कोई २ इस कुरानोक्त पर विश्वास न करके धर्मारमा भी होते हैं ।। ३७ ।।

३८ — प्रश्न करते हैं तुम्प्तसे र जस्वलाको कह वो अपवित्र है पृथक रहो मृतु समयमें उनके समीप मत आओ जबतक कि वे पवित्र न हों लब नहा लेंबें उनके पास उस स्थानसे जाओ ख़ुद्दाने आज्ञा दी।। तुम्हारी बीबियां तुम्हारे लिये सेतियां हैं बस जाओ जिस तरह चाहो अपने खेतमें। तुमको अल्लाह लग्गव (बेकार, व्यर्थ) शपथमें नहीं पकड़ता।। मं० १। सि० २। स्०२। आ० २०६। २०६। २०८।। समीधक — जो यह र जस्बलाका स्पर्श सक्क न करना लिखा है बह अच्छी बात है परन्तु जो यह स्त्रियोंको खेतीके तुल्य छिखा और जैसा जिस तरहसे चाहो जाओ यह मतुष्योंको विषयी करनेका कारण है। जो खुदा बेकारी शपथ पर नहीं पकड़ता तो सब ऋठ बोठेंगे शपथ सोड़ेंगे। इससे खुदा कूठका प्रवत्तक होगा॥ ३८॥

३६ — बो कौन मनुष्य है जो अल्लाहको उधार देवे अच्छा बस अल्लाह द्विगुण करे उसको उसके वास्ते ॥ मं०१ सि०२। सू०२। आ०२२७॥

समीक्षक—भला खुदाको कर्ज (उधार) \* लेनेसे च्या प्रयोजन ? जिसने सारे संसारको बनाया वह मनुष्यसे क्रिज लेता है ? कदापि नहीं। ऐसा तो विना समभे कहा जा सकता है। च्या उसका खुनाना खाली होगया था ? क्या वह हुंडी पुड़ियां व्यापारादिमें मग्न होनेसे टोटेमें फंस गया था जो उधार लेने लगा ? और एकका दो दो देना स्वीकार करना है क्या यह साह्कारों का काम है ? किन्तु ऐसा काम तो दिवालियों का खंच अधिक करनेवाले और आय न्यून होनेवालों को करना पड़ता है ईश्वरको नहीं।। ३६।।

४० — उनमेंसे कोई ईमान न लाया और कोई काफिर हुआ जो अक्षाह चाहता न लड़ते जो चाहता है अल्लाह करता है।। मं॰ १ सि॰ ३। सू॰ २। आ॰ २३४।।

समिक्षक—क्या जितनी छड़ाई होती हैं वह ईश्वर ही की इच्छासे ? क्या वह अधम करना चाहे तो कर सकता है ? जो ऐसी बात है तो वह खुदा ही नहीं क्योंकि भछे मतुष्योंका यह कर्म नहीं कि

<sup>#</sup>इसी आयतके भाष्यमें तफसीरहुसेनीमें लिखा है कि एक मनुष्य मुहम्मद साहेबके पास आया उससे कहा कि ऐ रस्टूलझह खुदा क्रज क्यों मागता है ! उन्होंने उत्तर दिया कि तुमको बहिश्तमें हे जानेके लिये उसने कहा जो आप जमानत हैं तो में दूं मुहम्मद साहेबने उसकी जमानत हें डी खुदाका भरोसा न हुआ उसके दूतका हुआ। ॥

शान्तिभङ्ग करके छड़ाई करावें इससे विदित होता है कि यह छुरान न ईश्वरका बनाया और न किसी धार्मिक विद्वान्का रचित है।।४०।।

४१—जो कुछ आसमान और पृथिवी पर है सब उसीके लिये है।। चाहें उसकी कुरसीने आसमान और पृथिवीको समा लिया है।। मं०१।सि०३।सू२।आ०।२३७॥

समीक्षक — जो ब्याकाश भूमि । परार्थ हैं वे सब जीवोंके लिये परमात्माने उत्पन्त किये हैं अपने लिये नहीं क्योंकि वह पूर्णकाम है उसको किसी पदार्थको अपेक्षा नहीं जब उसकी कुर्सी है तो वह एक-देशी है जो एकरेशी होता है वह ईश्वर नहीं कहाता क्योंकि ईश्वर तो व्यापक है ॥ ४१॥

४२ — अहाह सूर्य्यको पूर्वसे छाता है बस तृ पश्चिमसे लेआ बस जो काफ़िर हैरान हुआ था निश्चय अहाह पापियोंको मार्ग नहीं दिख-छाता ॥ मं० १। सि० ३। सू॰ २। आ० २४०॥ (

सूमीक्षक—देखिये यह अविद्याकी बात! सूर्य्य न पूर्वसे परिचम और न परिचमसे पूर्व कभी आता जाता है वह तो अपनी परिधिमें घूमता रहता है इससे निश्चित जाना जाता है कि कुरानके कर्ता को न खगोळ और न भूगोळ विद्या आती थी जो पापियों को मांग नहीं बत- छाता तो पुण्यात्माओं के लिये भी मुसळमानों के खुदाकी आवश्यकता नहीं क्यों कि धर्मात्मा तो धर्म मांगमें ही होते हैं, मांग तो धर्मसे भूळे हुए मनुष्यों को बतळाना होता है सो कर्त्तव्यके न करनेसे कुरानके कर्ताकी बड़ी भूळ है। ४२॥

४३ — कहा चार जानवरींसे छे बनकी सूरत पहिचान रख फिर इर पहाड़ पर बनमेंसे एक एक टुकड़ा रख दे फिर बनको बुला दौड़ते तेरे पास चले आवेंगे॥ मं०१। सि०३। सू०२। आ० २४२॥

समीश्रक—शह २ देखोजी मुसलमानीका खुदा भागमनीके समान खेल कर रहा है। क्या ऐसी ही बाजोंसे खुदाकी खुदाई है र बुद्धिमान लोग ऐसे खुदाको बिजाजिल देकर दूर रहेंगे और मूर्ख लोग फैसेंगे इससे खुरा ही बड़ ईके बदल चुराई उसके पल्ले पड़ेगी ॥ ४३ ॥

४४-- जिस हो चाहे नीति देता है।। मं०१। सि०३। स्०२। सा०२४१॥

समीक्षक—जब जिसको चाहता है उसको नीति देता है तो जिसको नहीं चाहता है उसको अनीति देता होगा यह बात ईश्वरताकी नहीं। किन्तु जो पक्षपात छोड़ सबको नीतिका उपदेश करता है वही ईश्वर और आप्त हो सकता है अन्य नहीं।। ४४॥

४५——वह कि जिस हो चाहेगा क्षमा करेगा जिसको चाहे दण्ड देगा क्योंकि वह सब वस्तु पर बल्लान् इ ॥ मं० १। सि● ३। सू० २ सा० २६६ ॥

समीक्षक—क्या क्षमाके योग्य पर क्षमा न करना अयोग्य पर क्षमा करना गवरगंड राजाके तुल्य यह कर्म नहीं है रै यदि ईश्वर जिसको चाहता पापा वा पुण्यात्मा बनाता तो जीवको पाप पुण्य न छगाना चाहिये जब ईश्वरने उसको वैसा ही किया तो जीवको इस्ख सुख भी होना न चाहिये, जैसे सेनापितकी अज्ञासे किसी भृत्यने किसीको मारा वा रक्षाकी उसका फल्लभागी वह नहीं होता वैसे वे भी नहीं ॥ ४५॥

४६ — कह इससे अच्छी और षया परहेज़गारों को खबर दूं कि आकाह की ओरसे बहिएतें हैं जिनमें नहरें चलती है उन्हीं में सदैव रह-नेवाली शुद्ध बीवियां हैं अलाह की प्रसन्नतासे अलाह उनको देखनेवाला है साथ बन्दों के ।। मं• १। सि० ३। स्• ३। आ० ११।।

समीक्षक—भठा यह र्स्का है किंवा वेश्यावन इसको ईश्वर कहना वा स्त्रैण ? कोई भी बुद्धिमान ऐसी बार्ते जिसमें हों उसको परमेश्वरका किया पुस्तक मान सकता हैं ? यह पक्षपात क्यों करता है ? जो बीवियां बिश्तमें सदा रहती हैं वे यहां जन्म पाके वशां गई हैं वा वहीं धत्पन्न हुई ह ? यदि यहां जन्म पाकर वशां गई ई और जो कु गामतकी रातसे पहिले ही वहां बीवियोंको बुला खिया तो उनके खांबिन्सोंको समुल्लास] कुरानतत्त्रीका पक्षपात अन्याय । ७२७ को न बुला लिया १' और क्रयामतकी रातमें सबका न्याय होगा इस नियमको क्यों तोड़ा १ यदि वहीं जन्मी हैं तो क्रयामत तक वे क्यों कर निर्वाह करती हैं १ जो उनके लिये पुरुष भी ह तो यहांसे बहिश्तमें जानेवाले मुसलमानोंको खुरा बीबियां कहांसे देगा १ और जैसे बीबियां बहिश्तमें सदा रहने वाली बनाई वैसे पुरुषोंको वहां सदा रह नेवाले को निर्दा निर्दा काया १ इसलिये मुसलमानोंका खुरा अन्यायकारी, बेसमम है ॥ ४६॥

४७—निश्चय अझाहकी ओरसे दीन इसलाम है ॥ मं०१। सि०३। सु०३। आ०१६॥

समीक्षक — क्या अलाह मुसलमानों ही का है औरोंका नहीं दें क्या तेरहसो वर्षोंके पूर्व ईश्वरीय मत था ही नहीं दें इसल्ये कुरान ईश्वरका बनाया तो नहीं किन्तु किसी पश्चपातीका बनाया है ॥ ४७॥

ध्—प्रत्येक जीवको पूरा दिया जावेगा जो कुछ उसने कमाया और वे न अन्याय किये जावेंगे।। कह या अछाह तू री मुल्कका मालिक है जिसको चाहे देता है जिसको चाहे छीनता है जिसको चाहे प्रतिष्ठा देता है जिसको चाहे अप्रतिष्ठा देता है सिव कुछ तेरे ही हाथमें है प्रत्येक वस्तु पर तू ही बलवान है।। रातको दिनमें और दिनको रातमें पैठाता ह और मृतकको जीवितसे जीवितको मृतकसे निकालता है और जिसको चाहे अनन्त अब देता ह ॥ मुसलमानोंको चचित है कि काकिरोंको मित्र न बनावें सिवाय मुसलमानोंको चचित है कि काकिरोंको मित्र न बनावें सिवाय मुसलमानोंके जो कोई यह करे बस वह अछाहको ओरसे नहीं। कह जो तुम चाहते हो अखाहको तो पक्ष करो मेरा अछाह चाहेगा तुमको और तुम्हारे पापको क्षमा करेगा निश्चय करणामय है॥ मं १। सि० ३। सू०३। स्था० २१ । २२ । २३ । २४ । २० ।।

समीक्षक—जब प्रत्येक जीवको कर्मोका पूरा २ फछ दिया जायेख तो क्षमा नहीं किया जायगा और जो क्षमा किया जायगा तो पूरा फछ नहीं दिया जायगा और खन्याय होगा, जब विना उत्तम कर्मोक राज्य देगा तो भी अन्यायकारी होजायगा भछा जीवितसे मृतक और मृतकसे जीवित कभी हो सकता है ? क्योंकि ईश्वरकी व्यवस्था अच्छेय अभेय है कभी अवल बद्दु नहीं हो सकती। अब देखिये पक्षपातकी बातें कि जो मुसलमानके मज़हबमें नहीं हैं उनको काफिर ठहराना उनमें श्रेष्ठोंसे भी मित्रता न रखने और मुसलमानोंमें दुष्टोंसे भी मित्रता रखनेक लिये उपदेश करना ईश्वरको इश्वरतासे विहः कर देता है इससे यह कुरान, कुरानका खुदा और मुसलमान लोग केवल पक्षपात अविद्याक भरे हुए हैं इसीलिये मुसलमान लोग अन्धेरेमें हैं और देखिये मुहम्मद साहेबकी लीला कि जो तुम मेरा पक्ष करोगे तो खुदा तुम्हारा पक्ष करेगा और जो तुम पक्षपातरूप पाप करोगे उसकी क्षमा भी करेगा इससे सिद्धहोता है कि मुहम्मदसाहेबका अन्तः करण शुद्ध नहीं था इसीलिये अपने मतलव सिद्ध करनेकेलिये मुहम्मद साहेबने कुरान बनाया वा बनवाया ऐसा विदित होता है ।।४८।।

४६ — जिस समय कहा फ़रिश्तोंने कि ऐ मर्थ्यम तुम्सको अहाहने पसन्द किया और पवित्र किया ऊपर जगत्को स्त्रियोंके ॥ मं० १। सि० ३। सु० ३। आ॰ ३४ ॥

समिक्षक—भला जब आजकल खुदाके फ़रिश्ते और खुदा किसीसे बातें करनेको नहीं आते तो प्रथम कैसे आये होंगे ? जो कह! कि पहिलेके मनुष्य पुण्यात्मा थे अबके नहीं तो यह बात मिथ्या है किन्तु जिस समय ईसाई और मुसलमानोंका मत चला था उस समय उन देशोंमें जङ्कली और विद्याहीन मनुष्य अधिक थे इसीलिये ऐसे विद्याविरुद्ध मत चल गये अब विद्वान अधिक हैं इसीलिये नहीं चल सकता किन्तु जो २ ऐसे पोकल मज़हब हैं वे भी अस्त होते जाते हैं वृद्धिकी तो कथा ही क्या है ॥ ४६॥

१०—उसको कहता है कि हो बस होजाता है। क्लाफिरोंने धोका दिया, ईश्वरने धोका दिया, ईश्वर बहुत मकर करनेवाळा है॥ मं० १। सि॰ ३। सु॰ ३। आ० ३६। ४६॥

## समुल्लास] मुसलमानोंसे खुदाका मोह। ७२९

समीक्षक—जब मुसलमान लोग खुदाके सिनाय दूसरी चीज नहीं मानते तो खुदाने किसते कहा १ और उसके कहनेसे कौन होगया १ इसका उत्तर मुसलमान सात जनममें भी नहीं दे सकेंगे क्योंकि विना उपादान कारणके कार्य कभी नहीं हो सकता बिना कारणके कार्य्य कहना जानो अपने मा बापके बिना मेरा शरीर होगया ऐसी बात है। जो धोखा खाता अर्थात् छल और दंभ करता है वह ईश्वर तो कभी नहीं हो सकता किन्तु उत्तम मनुष्य भी ऐसा काम नहीं करता ॥४०॥

६१—क्या तुमको यह बहुत न होगा कि अछाह तुमको तीन हज़ार फ़रिश्तोंके साथ सहाय देवे।। मं०१। सि०४। सू०३। सा० ११०।।

समीक्षक—जो मुसउमानोंको तीन हज़ार फ़रिश्तोंके साथ सहाय देता था तो अब मुसउमानोंकी बादशाही बहुत सी नड होगई और होती जाती है क्यों सहाय नहीं देता १ इसिअये यह बात केवल क्रोम देके मूर्लोंको फँसानेके लिये महा अन्यायकी बात है ॥ ४१ ॥

५२ — ओर काफिरों पर इमको सहाय कर ॥ अलाह तुम्हारा उत्तम सहायक और कारसाज़ है जो तुम अलाहके मार्गमें मारे जाबों वा मरजाओ अलाहकी द्या बहुत अच्छी है ॥ मं०१। सि०४। स्०३। आ०१३०। १३३। १४०॥

समिश्रक—अब देखिये मुसलमानोंकी भूल कि जो अपने मतसे भिन्न हैं उनके मारनेके लिये खुदाकी प्रार्थना करते हैं क्या परमेश्वर भोला है जो इनकी बात मान लेवे ? यदि मुसलमानोंका कारसाज़ अलाह ही है तो फिर मुसलमानोंके कार्य नष्ट क्यों होते हैं ? और खुदा भी मुसलमानोंके साथ मोहसे फँसा हुआ दीख पड़ता है जो ऐसा पश्चपाती खुदा है तो धर्मातमा पुरुषोंका उपासनीय कभी नहीं हो सकता।। ४२॥

४३—और अलाइ तुमको परोश्रह नहीं करता परन्तु अपने पेग-म्यरोंसे जिसको चाहे पसन्द करे बस अलाह और उसके रसूछके. माय ईमान लाओ ॥ मं० १। सि॰ ४। सू० ३। आ० १५६।।

समीक्षक — जब मुसलमान लोग सिवाय खुदाके किसोके साथ द्दीमान नहीं लाते और न किसीको खुदाका साम्मी मानते हैं तो पैग्रम्बर साहेबको क्यों ईमानमें खुदाके साथ शरीक किया ! अलाहने पैग्रम्बरके साथ ईमान लाना लिखा इसीसे पैग्रम्बर भी शरीक होगया पुनः लाश-रीक कहना ठीक न हुआ यदि इसका अर्थ यह सममः जाय कि मुद-म्मद साहेबके पैग्रम्बर होने पर विश्वास लाना चाहिये तो यह प्रश्न होता है कि मोहम्मद साहेबके होनेको क्या आवश्यकता है ? यदि खुदा इसको पैग्रम्बर किये विना अपना अभीष्ट कर्य्य नहीं कर सकता तो अवश्य असमर्थ हुआ।। १३।।

६४—ऐ ईमानवाळो ! संतोष करो परस्पर थामे रक्खो और छड़ा-ईमें छगे रहो अझ.इसे डरो कि तुम छुटकारा पाओ ॥ मं•१। सि० ४। सू०३। आ०१७⊏॥

समीक्षक—यह कुरानका खुदा और पैग्राम्बर दोनों छड़ाईब ज़ थे, जो छड़ाईकी आज्ञा देता है वह शान्तिसंग करनेवाछा होता है क्या नाममात्र खुदासे डरनेसे छुटकारा पाया जाता है ? वा अधर्मयुक्त छड़ाई आदिसे डरनेसे, जो प्रथम पक्ष है तो डरना न डरना बराबर और जो दितीय पक्ष है तो ठीक है।। ४४॥

५५—ये अलाहकी हहूँ हैं जो अलाह और उसके रसुउकां कहा मानेगा वह बहिश्तमें पहुंचेगा जिनमें नहरें चलती हैं और यही बड़ा प्रयोजन है। जो अल्लाहकी और उसके रसुलकी आज्ञा भङ्ग करेगा और उसकी हहाँसे बाहर होजायगा वह सदैव रहने वाली आगमें जलाया जायगा और उसके थिये खराव करनेवाला दुःख है।। मं०१। सि०४। सु०४। आ०१३। १४।।

समीक्षक—खुदा ही ने मुहम्मद साहेब पैग्राम्बरको अपना शरीक कर लिया है और खुदा कुरान ही में लिखा है और देखो खुदा पैग्राम्बर साहेबके साथ कैसा फँसा है कि जिसने बहिश्तमें रसुलका सामा कर

## समुह्णास] खुदा और शौतानकी तुलना। ७३१

दिया है। किसी एक बातमें भी मुसल्प्रमानोंका खुदा स्वतन्त्र नहीं तो लाशरीक कहना व्यर्थ है ऐसी २ बार्ने ईश्वरोक्त पुस्तकमें नहीं हो सकतीं।। ४४।।

४६—और एक त्रसरेणुकी बराबर भी सन्छाह अन्याय नहीं करता और जो भलाई होवे उसका दुगुण करेगा उसको ॥ मं०१। सि०४। स्०४। आ०३७॥

समीक्षकं—जो एक त्रसरेणु भी खुदा अन्याय नहीं करता तो पुण्यको द्विगुग क्यों देता ? और मुसल्यानोंका पक्षपात क्यों करता है ? बास्तवमें द्विगुग वा न्यून फड़ कर्मोका देवे तो खुदा अन्यायी हो जावे ।। ५६॥

े ५७ - जब तेरे पाससे बाहर निकड़ते हैं तो तेरे कहनेके सिवाय (विपरीत) सोचने हैं अल्लाह उनकी सलाहको लिखता है।। अल्लाहने उनकी कमाई वस्तुके कारणसे उनको उल्टा किया ख्या तुम चाहते हो कि अल्लाहके गुमराह किये हुए को मांग पर लाओ बस जिसको खाल्लाह गुमराह करे उसको कहापि मांग न पावेगा।। मं• १। सि• ६। स्०४। आ० ८०। ८७॥

समीक्षक — जो अल्लाह बातों को लिख वही खाता बनाता जाता है तो सर्वज्ञ नहीं ? जो सर्वज्ञ है तो लिखनेका क्या काम ? और जो मुसलमान कहते हैं कि शेतान ही सबको बहकानेसे दुष्ट हुआ है तो जब खुदा ही जीशोंको गुमराह करता है तो खुदा और शेतानमें क्या मेद रहा ? हां इतना मेद कह सकते हैं कि खुदा बड़ा शेतान वह छोटा शेतान क्योंकि मुसलमानों ही का कोल है कि जो बहकाता है वही शेतान है तो इस प्रतिज्ञासे खुदाको भी शेतान बना दिया।। ४७।।

६८—और अपने हाथांको न रोकें तो उनको पकड़ लो और जहां पाओ मारडालो ॥ मुसलमानको मुसलमानका मारना योग्य नहीं जो कोई अनजानसे मारडाले बस एक गर्दन मुसलमानका लोड़ना है और खून बहा उनलोगोंकी ओरसेहुई जो उस कोमसे होने और तुम्हारे लिये जो दाम कर देवे जो दुश्मनकी कौमसे हैं।। और जो कोई मुसलमानको जानकर मारडाले वह सदैव काल दोजखमें रहेगा उस पर अल्लाहका कोथ और लानत है।। मं०१। सि॰४। सू० ४। आ॰ ६०। ६१। ६२।।

समीक्षक—अब देखिये महापक्षपालकी बात है कि जो मुसलमान न हो उसको जहां पाओ मारदालों और मुसलमानोंको न मारना भूलसे मुसलमानोंको मारनेमें प्रायश्चित और अन्यको मारनेसे बहिश्त मिलेगा ऐसे उपदेशको कूपमें डालना चाहिये ऐसे २ पुस्तक ऐसे २ पैगम्बर ऐसे २ खुदा और ऐसे २ मतसे सिवाय हानिके लाभ कुछ भी नहीं ऐसोंका न होना अच्छा और ऐसे प्रमादिक मतोंसे बुद्धिमानोंको अलग रहकर वेदोक्त सब बातोंको मानना चाहिये क्योंकि उसमें असत्य किन्तिन्तमात्र भी नहीं है और जो मुसलमानको मारे उसको दोज़ल मिले और दूसरे मत बाले कहते हैं कि मुसलमानको मारे तो खंग मिले अब कहो इन दोनों मतोंमेंसे किसको माने किसको छोड़ें किन्तु ऐसे मूढ़ प्रकल्पित मतोंको छोड़कर वेदोक्त मत स्वीकार करने योग्य सब मनुष्योंके लिये हैं कि जिसमें आर्थ्य मार्ग अर्थात् अन्ठ पुरुषोंके मार्गमें चलना और दस्यु अर्थात् दुष्टोंके मार्गसे अलग रहना लिखा है सबौतम है।। ४८।।

४६ — और शिक्षा प्रकट होनेके पीछे जिसने रसूछसे विरोध किया और मुसछमानोंसे विरुद्ध पक्ष किया अवश्य हम उसको दोज्ञ-खमें भेजेंगे।। मं• १। सि० ४। सु० ४। आ• ११३।।

समीक्षक—अब देखिये खुदा और रसुछकी पक्षपातकी बाते, मुह्म्मद साहेब आदि सममते थे कि जो खुदाके नामसे ऐसी हम न छिखेंगे तो अपना मज़हब न बढ़ेगा और पदार्थ न मिछेंगे आनन्द भोग न होगा इसीसे बिदित होता है कि वे अपने मतछत्र करनेमें पूरे थे और अन्यके प्रयोजन बिगाड़नेमें, इससे ये अनाम थे इनकी बातका प्रयाण आप बिद्वानोंके सामने कभी नहीं हो सकता ।। १६ वा

६०—जो अल्लाह फ़रिश्तों किताबों रसूल और क्रयामतके साथ कुफ करे निश्चय वह गुमराह है।। निश्चय जो लोग ईमान लाये फिर काफिर हुए फिर फिर ईमान लाये पुनः फिर गये और कुफ्तमें अधिक बढ़े अल्लाह उनको कभी क्षमा न करेगा और न मार्ग दिख-खावेगा।। मं०१। सि० ६। सू●४। आ० १३४। १३६।।

समीक्षक म्था अब भी खुदा लाशरीक रह सकता है ? क्या लाशरीक कहते जाना और उसके साथ बहुतसे शरीक भी मानते लाना यह परस्पर विरुद्ध बात नहीं है ? क्या तीन वार क्षमाके पश्चात् खुदा क्षमा नहीं करता ? और तीन वार कुफ करने पर रास्ता दिखलाता है ? वा चौथी वारसे आगे नहीं दिखलाता, यदि चार चार बार भी कुफ सब लोग करें तो कुफ बहुत ही बढ़जाये।। ६०।।

६१—निश्चय अल्लाह बुरे लोगों और काफिरोंको जमा करेगा होज़लमें ॥ निश्चय बुरे लोग धोखा देते हैं अल्लाहको और उनको वह धोला देता है ॥ ऐ ईमानवालो मुसलमानोंको छोड़ काफिरोंको मित्र मत बनाओ ॥ मं०१। सि०५। सू०४। आ● १३८ । १४१। १४३॥

समीक्षक—मुसलमानोंके बहिश्त और अन्य लोगोंके दोज़क़में जानेका क्या प्रमाण ? बाहजी बाह ! जो बुरे लोगोंके घोलेमें आता और अन्यको घोला देता है ऐसा खुदा हमसे अलग रहे किन्तु जो घोलेबाज़ है उनसे जाकर मेल करें और वे उससे मेल करें क्योंकि—

#### ( यादशी शीतला देवी तादशी खरवाहनः )

जैसेको तैसा मिले तभी निर्वाह होता है जिसका खुदा घोखेवाज़ है उसके उपासक लोग घोखेवाज़ क्यों न हों ? क्या दुष्ट मुसलमान हो उससे मित्रता और अन्य श्रेष्ठ मुसलमान भिन्नसे शत्रुता करना किसीको वित हो सकता है ॥ ६१॥

६२-ए लोगो निश्चय तुम्हारे पास सत्यके साथ खुदाकी बोरसे

पैगम्बर आया बस तुम उनपर ईमान छाओ ॥ अल्छाइ माबूद अकेछा है॥ मं० १ । सि० ६ । स० ४ । आ० १६७ । १६८ ॥

समीक्षक—क्या जब पैगम्बर पर ईमान लाना लिखा तो ईमानमें पैगम्बर खुदाका शरीक अर्थात् साम्ही हुआ वा नहीं ? जब अल्लाह एक्देशी है व्यापक नहीं तभी तो उसके पाससे पैगम्बर आते जाते हैं तो वह ईश्वर भी नहीं होसकता। कहीं सर्वदेशी लिखते हैं कहीं एक-देशी इसते विदित होता है कि कुरान एकका बनाया नहीं किन्तु बहु-तोने बनाया है ॥ ६२॥

६३ — तुम पर इराम किया गया मुद्दार, छोहू सूअरका मांस, जिस पर अल्छाहके विना कुछ और पढ़ा जावे, गछा घोटे, छाठी मारे, ऊपरसे गिर पड़े, सींग मारे और दरदका खाया हुआ। मं०२। सि० है। स० ४। आ० ३॥

समीक्षक—क्या इतने ही पदार्थ हराम हैं अन्य बहुतसे पशु तथा तिय्यंक् जीव कीड़ी आदि मुसलमानोंको हलाल होंगे ? इस वास्ते यह मनुष्योंकी कल्पना है ईश्वरकी नहीं इससे इसका प्रमाण भी नहीं।।६३।।

६४—और अल्लाहको अच्छा उधार दो अवश्य में तुम्हारी बुराई पूर करूंगा और तुम्हें बहिश्तोंमें मेजूंगा॥ मं० २ । सि● ६ । सू० ५१ आ० १०॥

समीक्षक—वाहजी ! मुसलमानोंके खुदाके घरमें कुछ भी धन विशेष नहीं रहा होगा जो विशेष होता तो उधार क्यों मांगता ? और उनको क्यों बहक ता कि तुम्हारी बुराई हुड़ाके तुमको स्वर्गमें भेजूंगा ? यहां विदित होता है कि खुदाके नामसे मुहम्मद साहेबने अपना मतलब साधा है।। हुए।।

६५ — जिसको चाहता है क्षमा करता है जिसको चाहे दुःख देता है।। जो कुउ किसीको भी न दिया वह तुम्हें दिया।। मं० २। सि० ६। सु० ६। अ.● १६। १८ ।।

सनीअक-जैसे शतान जिसको चाइता पापी बनाता वैसे ही

## समुह्णास] क्षमा करना पापोंको बढ़ाना। ७३५

मुसलमानोंका खुदा भी शैतानका काम करता है ? जो ऐसा है तो फिर बहिश्त और दोज़खों खुदा जावे क्योंकि वह पाप पुण्य करने बाला हुआ, जीव पराधीन है जैसी सेना सेनापतिके आधीन रक्षा करती और किसीको मारती है उसकी भलाई बुराई सेनापतिको होती है सेना पर नहीं।। है ।।

६६—आज्ञा मानो अल्लाहको और आज्ञा मानो रसूलकी ॥ मं• २। सि० ७। स० ४। आ० ८६॥

समीक्षक—देखिये यह बात खुदाके शरीक होनेकी है, फिर खुदाको "लाशरीक" मानना व्यर्थ है ॥ ६६ ॥

६७—अल्लाहने माफ किया जो हो चुका और जो कोई फिर करेगा अल्लाह उससे बदला लेगा।। मं• २ सि० ७। सू०्रा आ०६,२॥

समीक्षक—िकये हुए पापोंका क्षमा करना जानो पापोंको करनेकी आज्ञा देके बढ़ाना है। पाप क्षमा करनेकी बात जिस पुस्तकमें ही वह म इंश्वर और न किसी विद्वानका बनाया है किन्तु पापकंद्रक है, हो आगामी पाप ह्युड़वानेके छिये किसीसे प्रार्थना और स्वयं छोड़नेके छिये पुरुपांच पश्चात्ताप करना उचित है परन्तु केवछ पश्चात्ताप करना रहे छोड़े नहीं तो भी कुछ नहीं हो सकता।। है ।।

६८ — और उस मनुष्यसे अधिक पापी कौन है जो अस्छाह पर भूठ बांघ लेता है और कहता है कि मेरी ओर वहीकी गई परन्तु बही उसकी ओर नहीं की गई और जो कहता है कि मैं भी उतास्त्रा कि जैसे अस्छाह उतारता है। मं•२। सि• ७। सू• ६। खा•।। ६४।

समीक्षक —इस बातसे सिद्ध होता है कि जब मुहम्मद साहेब कहते थे कि मेरे पास खुदाकी ओरसे आयर्ते आती हैं तब किसी दूसरेने भी मुस्मद सहेब क तुरुब की अरची ोगी कि मेर पास भी आयर्ते उत-रती हैं मुक्तको भी पैग्रम्बर मानो इस को इटाने और अपनी प्रतिष्ठा बदानेक लिये मुस्मद साहेबने यह उपाय किया होगा।। ६८॥ ६६ — अवश्य हमने तुमको उत्पन्न किया किर तुम्हारी सूरतें बनाई किर हमने फरिरतोंसे कहा कि आहमको सिजदा करो, बस उन्होंने सिजदा किया परन्तु शैतान सिजदा करनेवालोंमेंसे न हुआ।। कहा जब मैंने तुफे आज्ञा दी किर किसने रोका कि तुने सिजदा न किया, कहा में उससे अच्छा हूं तूने मुम्हको आगसे और उसको मिट्टीसे उत्पन्न किया।। कहा बस उसमेंसे उत्तर यह तेरे बोग्य नहीं है कि तू उसमें अभिमान करे।। कहा उस दिन तक ढीछ दे कि कबरोंमेंसे उठाये जावें।। कहा निश्चय तू ढीछ दिये गयोंसे है।। कहा बस इसकी कसम है कि तृते मुम्हको गुमराह किया अवश्य में उनके लिये तेरे सीचे मार्ग पर बेठूंगा॥ और प्राया तु उनको धन्यवाद करनेवाला न पावेगा कहा उससे दुदेशाके साथ निकल अवश्य जो कोई उनमेंसे तेरा पक्ष करेगा तुम सबसे दोज़लको भरूंगा॥ मं० २ । सि• ८ । सू• ७। था० १० । ११ । १२ । १३ । १४ । १६ । १६ । १७ ॥

समीक्षक—अब ध्यान देकर सुनी खुदा और शैतानके स्ताड़ेको एक फ्रिश्ता जैसा कि चपराी हो, था, वह भी खुदासे न दवा और खुदा उसके आत्माको पित्र भी न कर सका, फिर ऐसे बागीको जो पापी बनाकर गदर करनेवाला था उसको खुदाने छोड़ दिया। खुदाकी यह बड़ी भूल है। शितान तो सबको बहकाने वाला और खुदा शैतानको बहकाने वाला और खुदा शैतानको बहकाने वाला होनेसे यह सिद्ध होता है कि शैतानका भी शैतान खुदा है कि तूंने मुक्ते गुमराह किया इससे खुदान पवित्रता भी नहीं पाई जाती और सब बुराइयोंका चलानेवाला मुख्कारण खुदा हुआ। ऐसा खुग्न मुसलमानों ही का हो सकता है अन्य अच्छ विद्वानोंका नहीं और फिरश्तोंस मुख्यवत् वार्तालाप करनेसे देहधारी, अल्पइ, न्यायरहित मुसलमानोंका खुदा है इसीसे बिद्वान लोग इसलामके मजहबको प्रसन्न नहीं करते।। हह ॥

७०—निश्चय तुम्हारा मालिक अञ्जाह है जिसने आसमानों स्वीर पृथिवीको छः दिनमें स्त्यन्न किया फिर करार पकड़ा वर्श पर । समुह्णास] कुरानमें पूर्वापर विरोध। ७३७ दीनतासे अपने मालिक हो पुकारो॥ मं०२। सि० ८। सू० ७।

ब्बा० ६३ । ६४ ॥

समीक्षक—भला जो छः दिनमें जगत्को बनावे (अर्श) अर्थात् ऊपरके प्रकाशमें सिहासन पर आराम करे वह ईरवर संवशक्तिमान और ज्यापक कभी हो सकता है ? इसके न होनेसे वह खुदा भी नहीं कहा सकता। क्या तुम्हारा खुदा बिधर है जो पुकारनेसे सुनता है ? वे सब बातें अनीश्वरकुत हैं इससे कुरान ईश्वरकुत नहीं हो सकता यदि छः दिनोंमें जगत् बनाया सातवें दिन अर्शा पर आराम किया तो थक भी गया होगा और अवतक सोता है वा जागता है ? यदि जागता है तो अब कुछ काम करता है वा निकम्मा सैल सपट्टा और ऐश करता किरता है।। ७०।।

७१ — मत फिरो पृथिवी पर मनगड़ा करते ॥ मं०२। सि**०८।** सृ०७। सा० ७३॥

समीक्षक—यह बात तो अच्छी है परन्तु इससे विपरीत दूसरे स्थानोंमें जिहाद करना और काफ़िरोंको मारना भी लिखा है अब कहो पूर्वापर विरुद्ध नहीं है ? इसने यह विदित होता है कि जब मुह-म्मद साहेब निर्वे हुए होंगे तब उन्होंने यह उपाय रचा होगा और सबल हुए होंगे तब फगड़ा मचाया होगा इसीते ये बातें परस्पर विरुद्ध होनेसे दोनों सत्य नहीं हैं।। ७१।।

७२—बस एक ही वार अपना असा डाल दिया और वह अजगर था प्रत्यक्ष ॥ मं•२। सि०६। सु• ७। आ० १०४॥

समिक्षक — अब इसके लिखनेते विदित होता है कि ऐसी भूठी बातोंको खुदा और मुहम्मद साहेब भी मानते थे जो ऐसा है तो ये दोनों विद्वान नहीं थे क्योंकि जैसे आंखसे देखने हो और कानसे सुन-नेको अन्यथा कोई नहीं कर सकता इसीसे ये इन्द्रजालकी बातें हैं।। ७२।।

७३ - बस हमने उस पर मेहका तूपान मेजा टीड़ी, चिचड़ी

भीर मैंडक और छोहू।। बस उनसे हमने बहुला लिया और उन हो इबोटिया दरियावमें।। और हमने बनी इसराईलको दरियावसे पार स्तार दिया। निश्चय वह दीन भूठा है कि जिसमें हैं और उनका कार्य भी भाठा है।। मं २। सिंव ६। सूव ७। आ० १३०। १३३। १३७। १३८॥

समीक्षक-अब देखिये जैसा कोई पाखण्डी किसीको डरपावे कि हम तुम्त पर सर्पोंको मारनेके छिये भें जेंगे ऐसी यह भी बात है भछा जो ऐसा पश्चपाती कि एक जातीको डुवा दे और दूसरेको **पार उतारे** वह अधर्मी खुदा क्यों नहीं ? जो दूसर मनोंको कि जिसमें हजारों कोडों मनुष्य हों भूता बतलावे और अपनेको सन्ना उससे परे सूठा दूसरा मत कौन हो सकता है ? क्योंकि किसी मतमें सब मनुष्य बुरे और भन्ने नहीं हो सकते यह इकतफी डिगरी करना महामूर्खीका मत है क्या तौरेत जबूरका दीन. जो कि उनका था, मून्ठा होगया १ वा उनका कोई अन्य मज़हब था कि जिसको सुठा कहा और <sup>4</sup> जो वह अन्य मजहन था तो कौनसा था कड़ी जिसका नाम कुरानमें हो।।७३॥ ७४ — बस तुम्हको अलबता देख सकेगा जब प्रकाश किया उसके माळिकने पहाडकी ओर उसको परमाणु २ किया गिर पडा मसा बेडीश ॥ मं० २ । सि॰ ६ । सू॰ ७ । आ॰ १४२ ॥

समीक्षक-जो दंखनेमें आता है वह व्यापक नहीं हो सकता और ऐसे चमत्कार करता फिरता था तो खुदा इस समय ऐसा चमत्कार किसीको क्यों नहीं दिखलाता ? सर्वथा विरुद्ध होनेसे यह बात मानने योग्य नहीं ॥ ७४ ॥

७४-और अपने मालिक को दीनता डरसे मनमें याद कर धीमी **भावाजसे सुबहको और शामको।। मं २। सि० ६। सु∙७।** अं ० २०४॥

 समीक्षक—कहीं २ कुरानमें ळिखा है कि बड़ी आवाजसे अपने मालिकको पुकार और कही २ धीरे २ ईश्वरका स्मरण कर, अब

## समुह्रास] मुसलमानोंका पक्षपाती खुदा। ७३६

किहिये कोनसी बात सच्ची ? जोर कोनसी बात भूठी ? जो एक दूसरी बातसे विरोध करती है वह बात प्रमत्त गीतके समान होती है वदि कोई बात भ्रमसे विरुद्ध निकल जाय उसको मान छे तो कुछ चिन्ता नहीं ।। ७४ ।।

७६ — प्रश्न करते हैं तुम्म को छुटोंसे कह छुटें वास्ते अलाहके और रसूछके और डरो अलाहसे ॥ मं०२।सि०६।सू०८। आ०१॥

समीक्षक—जो छुट मचावें, डाक्क्रेक कर्म करें करावें और खुदा तथा पैग्रम्बर और ईमानदार भी बनें, यह बड़े आश्चर्यकी बात है और अखाहका डर बतलाते और डांकादि बुरे काम भी करते जायें और "उत्तम मत हमारा है" कहते लग्जा भी नहीं। हठ छोड़के सत्य वेद-मतका ग्रहण न करें इससे अधिक कोई बुराई दूसरी होगी है।। ७६।।

७७ — और काटे जड़ काफिरोंकी ।। मैं तुमको सहाय दूंगा साथ सहस्र फरिश्तोंके पीछे २ आनेवाले ॥ अवश्य में काफिरोंके दिलोंमें भय डालूंगा बस मारो ऊपर गईनोंके मारो उनमेंसे प्रत्येक पोरी (संबी) पर ।। मं० २ । सि० १ । सु० ८ । आ० ७ । २ । १२ ।।

समीक्षक—वाह नी वाह ! कैसा खुदा और कैसे पैग्रम्बर दयाहीन. जो मुसलमानी मतसे भिन्न काफिरोंकी जड़ कटवावे और खुदा आज़ा देवे उनकी गईन मारो और हाथ पगके जोड़ोंको काटनेका सहाय और सम्मति देवे ऐसा खुदा लंकेशसे क्या कुछ कम है ! यह सब प्रपश्च कुरानके कर्त्ताका है खुदाका नहीं, यदि खुदाका हो तो ऐसा खुदा हमसे दूर और हम उससे दूर रहें॥ ७७॥

७८—अलाह मुसलमानों के साथ है।। ऐ लेगो जो ईमान लाये हो पुकारना स्वीकार क्रर वास्ते अलाहके और वास्ते रसूलके।। ऐ लोगो जो ईमान लाये हो मत चोरी करो अलाहकी रसूलकी और मत चोरी करो अमानत अपनीको॥ और मकर करता था अलाह और अल् यह भला मकर करने वालोंका है॥ मं•२। सि•६। सू०८। आ० १६। २४।२७।३०॥ समीक्षक—क्या अल्लाइ मुसलमानोंका पक्षपाती है ? को ऐसा है तो अधम करता है। नहीं तो ईश्वर सब सृष्टि भरका है। क्या खुदा विना पुकारे नहीं सुन सकता ? बिधर है ? और उसके साथ रसूलको शरीक करना बहुन बुरी बात नहीं है ? अल्लाहका कोनसा खुजाना भरा है जो चोरी करेगा ? क्या रसूल और अपने अमानतकी चोरी छोड़कर अन्य सबकी चोरी कि मा करे ? ऐसा उपदेश अविद्वान और अधर्मियोंका हो सकता है। भला जो मकर करता और जो मकर करनेवालेका संगी है वह खुदा कपटी छली और अधर्मी क्यों नहीं ? इसल्ये यह कुरान खुदाका बनाया हुआ नहीं है किसी कपटी छलीका बनाया होगा, नहीं तो ऐसी अन्यया बार्ने लिखित क्यों होतीं।।७८॥

७६ — और छड़ो उनसे यहां तक कि न रहे फितना अर्थात् बल काफिरोंका और होवे दीन तम.म वास्ते अल्लाहके ॥ और जानो तुम यह कि जो कुछ तुम छुटो किसी वस्तुसे निश्चय वास्ते अल्लाहके है पांचवां हिस्सा उसका और वास्ते रसूछके ॥ मं० २। सि० ६। सू० ८। आ० ३६। ४१॥

समीक्षक—ऐसे अन्यायसे छड़ने छड़ाने वाला मुसलमानोंके खुदासे भिन्न शान्तिभङ्गकर्ता दूसरा कौन होगा ? अब देखिये मजहब कि अल्डाह और रस्छके वास्ते सब जगत्को लूटना छुटवाना छुटेरोंका काम नहीं है ! और लूटके मालमें लुदाका हिस्सेदार बनना जानो डाकू बनना है और ऐसे छुटेरोंका पक्षपाती बनना खुदा अपनी खुदाईमें बट्टा लगाता है । बड़े आर्थ्यकी बात है कि ऐसा पुस्तक, ऐसा खुदा और ऐसा पेगम्बर संसारमें ऐसी उपाधि और शान्तिभङ्ग करके मनुष्योंको दुःख देनेके लिये कहांसे आया ? जो ऐसे २ मत् जगत्में प्रचलित न होते तो सब जगत् आनन्दमें बना रहता ॥ ७६ ॥

८० — और कभी देखे जब काफिरोंको फ़रिश्ते कड़न करते हैं मरो हं मुख उनके और पीठें उनकी और कहते चखो अजाब चल्छ-नेका।। हमने उनके पापसे उनको मारा और हमने फिराआनकी कौमको डुबो दिया।। और तैयारी करो वास्ते उनके जो कुछ तुम कर सको।। मं०२।सि०६।स०८।आ०८।१४।१६॥

समीक्षक स्यों जी आजक उस्सने रूम आदि और इक्क्टेण्डने मिश्रकी दुर्दशा कर डाली फ्रिंरित कहां सो गये ! और अपने सेवकों के शाव्योंको खुदा पूर्व मारता खुनाता था यह बात सच्ची हो तो आजक की ऐसा करे, जिससे ऐसा नहीं होता इसिंडिये यह बात मानने योग्य नहीं । अब देखिये यह केसी बुरी आज्ञा है कि जो कुछ तुम कर सको वह भिन्नमतवालोंके लिये दुःखदायक कर्म करो ऐसी आज्ञा विद्वान और धार्मिक द्यालुकी नहीं हो सकती, फिर लिखते हैं कि खुदा द्यालु और न्यायकारी है ऐसी बातोंसे मुसलम: नोंके खुदासे न्याय और द्यादि सद्गुण दूर बसते हैं।। ८०।।

्र—ऐ नबी किफायत है तुम्मको अलाह और उनको जिन्होंने मुसलमानोंसे तेरा पक्ष किया ॥ ऐ नबी रगवत अर्थात् चाह चस्का है मुसलमानोंको ऊपर लड़ाईके, जो हों तुममेंसे २० आदमी सन्तोष करने वाले तो पराजय कर दो सौका ॥ बस खाओ उस वस्तुसे कि लुटा है तुमने हलाल पवित्र और उरो अलाइसे वह क्षमा करने वाला दयालु है ॥ मं० २ । सि० १० । सू० ८ । आ० ६३ । ६४ । ६८ ॥

समीक्षक—भला यह कौनसी न्याय, विद्वता और धर्मको बात है कि जो अपना पक्ष करे और चाहे अन्याय भी करे उसीका पक्ष और लाभ पहुंचांवे ? और जो प्रजामें शांतिभक्क करके लड़ाई करे करावे और लूट मारके पदार्थों को हलाल बतलावे और फिर उसीका न म क्षमावान दयालु लिले यह बात खुदाकी तो क्या किन्तु किसी भले आदमीकी भी नहीं हो सकती ऐसी २ बातोंसे कुरान ईश्वरवाक्य कशी नहीं हो सकता॥ ८१॥

८२—सदा रहेंगे बीच उसके अल्लाह समीप है उसके पुण्य बड़ा । ऐ छोगो जो ईमान छाये हो मत पढ़ड़ो बार्पो अपनेको और भा थीं अपनेको मित्र जो दोस्त रक्खें कुफको ऊपर ईमानके।। फिर उसा टो साहाहने तसन्छी अपनी उपर रसूछ अपनेके और उपर मुसलमानोंके और उतार लक्ष्मर नहीं देखा तुमने उनको और अजाब किया उन लोगोंको और यही सज़ा है काफिरोंको ॥ फिर फिर वावेगा अलाह पीछे उसके उपर ॥ और लड़ाई करो उन लोगोंसे जो ईमान नहीं लाते ॥ मं० २ । सि० १० । सू॰ १ । आ० २१ । २२ । २६ । २६ । २८ ॥

समीक्षक—भला जो बहिश्तवालोंके समीप अलाह रहता है तो सर्वव्यापक क्योंकर हो सकता है ? जो संवव्यापक नहीं तो सृष्टि-कर्ता और न्यायाधीश नहीं हो सकता। और अपने मा, बाप, भाई और मित्रका हुड़वाना केवल अन्यायकी बात है, हां जो वे बुरा उप-देश करें, न मानना परन्तु उनकी सेवा सदा करनी चाहिये। जो पहिले खुड़ा मुसलमानों पर बड़ा सन्तोषी था और अनके सहायके लिये लश्कर उतारता था सच होता तो अब ऐसा क्यों नहीं करता? और जो प्रथम काफिरोंको दण्ड देता और पुनः उसके उत्पर आता था तो अब कहां गया ? क्या विना लड़ाईके ईमान खुड़ा नहीं बना सकता ? ऐसे खुड़ा के हमारी ओरसे सड़ा तिलाखाल है, खुड़ा क्या है एक खिलाडी हे ? ॥ ८२॥

्र—और हम बाट देखने वाले हैं वास्ते तुम्झारे यह कि पहुंचावे तुमको अलाह अज़ाब अपने पाससे वा हमारे हाथोंसे ॥ मं∘२। सि॰ १०। सु० १। आ॰ ५२॥

समीक्षक—क्या मुसलमान ही ईश्वरकी पुलिस बन गये हैं कि अपने हाथ वा मुसलमानों के हाथसे अन्य किसी मन वालोंको पकड़ा देता है ? क्या दूसरे कोड़ों मनुष्य ईश्वरको अप्रिय हैं ? मुसलमानों में पार्ची भी प्रिय हैं यदि ऐसा है तो अन्धेर नगरी गवरगण्ड राजाकी सी व्यवस्था दीखती है आश्चर्य है कि जो बुद्धिमान, मुसलमान हैं वे भी इस निमूल अयुक्त मतको मानते हैं ॥ ८३॥

८४-प्रतिका की है अक्षाहने ईमान वालोंसे और ईमानवालियोंसे

बहिरतें चलती हैं नीचे उनकेसे नहरें सदेव रहनेवाळी बीच उसके और घर पवित्र बीच बहिरतों अदनके और प्रसन्नता अल्लाहकी ओर बड़ी है और यह कि वह है मुराद पाना बड़ा॥ बस ठट्टा करते हैं उनसे ठट्टा किया अल्लाहने उनसे ॥ मं० २। सि० १०। सू० हे। अ.० ७२। ८०॥

समीक्षक—यह खुदाके नामसे स्त्री पुरुषोंको अपने मतलबके लिये लोभ देना है क्योंकि जो ऐसा प्रलोभ न देते तो कोई मुहम्मद साहेबके जालमें न फंसना ऐसे ही अन्य मत वाले भी किया करते हैं। मनुष्य लोग तो आपसमें ठट्टा किया ही करते हैं परन्तु खुदाको किसीसे ठट्टा करना उचित नहीं है यह कुरान क्या है बड़ा खेल है।। ८४।।

८५—परन्तु रसूल और जो लोग कि साथ उसके ईमान लाये जिहाद किया उन्होंने साथ घन अपनेके तथा जान अपनीके और इन्हीं लोगोंक लिये भलाई है॥ और मोहर रक्खी अलाहने ऊपर दिल्लों, उन-केके बस वे नहीं जानते॥ मं• २ सि० १० सू० ६ आ० ८६। ६२॥

समीश्रक—अब देखिये मतलबसिन्धु ी बात कि वे ही भले हैं जो मुहम्मद साहेबके साथ ईमान लाये और जो नहीं लाये वे बुरे हैं! क्या यह बात पश्चपात और अविद्यासे भरी हुई नहीं है? जब खुदाने मोहर ही लगा दी तो उनका अपराध पाप करनेमें कोई भी नहीं किन्तु खुदा ही का अपराध है क्योंकि उन विचारोंको भल ईसे दिलों पर मोहर लगाकर रोक दिये यह कितना बड़ा अन्याय है !!! ॥ ८४ ॥

्र६ — ले माल उतकेसे खेरात कि पवित्र करे तू उनको अर्थाक्ष बाहरी और शुद्ध कर तू उनको साथ उसके अर्थात् गुप्तमें ॥ निश्चय अलाहने मोल ली है मुसलमानोंसे जाने उनकी और माल उनके बद्ले कि वास्ते उनके बहिरत है लड़ेंगे बीच मार्ग अलाहके बस मारेंगे और मर जावेंगे ॥ मं० २ । सि० ११ । सू० ६ । आ● १०२ । ११० ॥ ✔ समीक्षक — वाहजी वाह । मुस्माद साहेंच आपने तो गोकलको

गुसाइयोंकी बरावरी करली क्योंकि उनका माल लेना और उनकी पवित्र करना यही वात तो गुसाइयोंकी है। वाह खुदाजी! आपने अच्छी सोदागरी लगाई कि मुसलमानोंके हाथसे अन्य गरीबोंके प्राण लेना ही लाभ सममा और उन अनाथोंको मरवाकर उन निर्देयी मनुष्योंको ख्वंग देनेसे दया और न्यायसे मुसलमानोंका खुदा हाथ धो बैठा और अपनी खुदाईमें बट्टा लगाके बुद्धिमान् धार्मिकोंमें घृणित हो गया॥ ८६॥

्र — ऐ लोगों जो ईमान लाये हो लड़ों उन लोगोंसे कि पास तुम्हारे हैं काफिरोंसे और चाहिये कि पावें बीच तुम्हारे दृढ़ता ।। क्या नहीं देखते यह कि वे बलाओं में डाले जाते हैं हरवर्षके एक वार वा दो बार फिर वे नहीं तोवा: करते ओर न वे शिक्षा एकड़ते हैं।। मं ०२। सि ०१९। सु०१। आ०१२२। १२५।।

समीक्षक—देखिये ये भी एक विश्वासवातकी बातें खुदा मुसल-मानोंको सिखलाता है कि चाहे पड़ोसी हों या किसीके नोकर हों जब अवसर पार्वे तभी लड़ाई वा घत करें ऐसी बातें मुसलमानोंसे बहुत बन गई हैं इसी कुरानके लेखते अब तो मुसलमान समम्बके कुरानोक्त बुराइयोंको छोड़ दें तो बहुत अच्छा है॥ ८७ ।।

८८ — निश्चय परवरिंदगार तुम्हारा अक्षाह है जिसने पैदा किया आसमानों और पृथिवीको बीव छः दिनके फिर क्ररार पकड़ा ऊपर अर्शके तदवीर करता है कामकी॥ मं० ३ सि॰ ११ सू०१० आ० ३॥

समिक्षक—आसमान आकाश एक और विना बना अनादि है उनका बनाना छिखनेसे निश्चय हुआ कि वह कुरानकर्ता पदार्थिवद्याको नहीं जानता था? क्या परमेश्यरके सामने छः दिन तक बनाना पड़ना है? तो जो "हो मेरे हुक्मसे और होगया" जब कुरानमें ऐसी छिखा है फिर छः दिन कभी नहीं छा सकते, इसने छः दिन छगना भूठ है जो वह व्यापक होता तो ऊपर आकाशक कों ठहरता? और जब कामकी तदवीर करता है तो ठीक तुम्हारा खुदा मनुष्यके समान है

समुक्लास] खुड़ाको निज्ञानी ऊंटनी। ७४५ क्योंकि जो सर्वज्ञ है वह बैठा २ क्या तहवीर करेगा है इससे विहित होना है कि ईश्वरको न जननेवाले जङ्गाओं छो तेने यह पुस्तक बनाया होगा॥ ८८॥

८६—शिक्षा और दया वास्ते मुसलमार्नोके ॥ मं• ३ । सि॰ ११।

स् १। झा० ४४॥

समीक्षक — हा यह खुग मुमलमानों ही का है १ दूसरोंका नहीं और पक्षपाती है। जो मुसलमानों ही पर दया करे अन्य मनुष्यों पर नहीं, यदि मुसलमान ईमानदारोंको कहते हैं तो उनके लिये शिक्षाकी आवश्यकता ही नहीं और मुसलमानोंते निन्नोंको उपदेश नहीं करता हो खुदाकी विद्या ही व्यर्थ है।। ८६॥

ह०-परी ग टेवे तुम हो कौन तुमोंसे अच्छा है कमोमें जो कहे तू अवश्य उठाये जाओगे तुम पीछे मृत्युके॥ मं०३ सि०११। सू०

११। अ०७॥

सम क्षक — जब कर्मों की परीक्षा करता है तो संबन्न ही नहीं और जो मृ यु पीछे उठता है तो दौड़ासुपुद रखा। है और अपने नियम जो कि मरे हुए न जीवें उसको तोड़ता है यह खुदाको बट्टा छगाना है ॥६०।

ह१—और कहा गया ऐ पृथित्री अपना पानी निगलजा और ऐ असमान बस कर और पानी सूख गया॥ और ऐ कीम यह है नियानी ऊंटनी अल्लाइकी वास्ते तुम्हारे बस छोड़ दो उसको बीच पृथिवी अलाइके खाती फिरे मं० ३। सि॰ ११। सू॰ ११। आ॰ ४३। ६३॥

समीक्ष क्र—स्या छड़कपन जी बात है ! पृथिती और आकाश कभी बात सुन सकी हैं ! वाइनी वाद ! खुराके ऊंटनी भी है तो ऊंट भी होगा ! तो हाथी, घोड़े, गो अदि भा होंगे ? और खुराका ऊंटनी से खेन ख़िजान क्या अच्छी बात है ! क्या ऊंटनी पर चढ़ना भी है जो ऐसी बातें हैं नो नाबीकी सी घसड़ पसड़ खुराके घरमें भी हुई ।।६१॥ १००० हर —और सर्वेद रहनेदाले बीच उसके जबनक कि रहें आसमान स्मोर पृथिवी और जो लोग सुभागी हुए बस बहिश्तके सदा रहनेवाले हैं जबनक रहें आसमान और पृथिवी।। मं•३। सि•१२। सू•११। अ१०१०५। १०६॥

समोक्षक — जब दोज़ ब और बहिश्तमें क्षयामतके पश्चात् सब छोग जायेंगे फिर आसमान और पृथिवी किसिंछिये रहेगी है और जब दोज़ख और बहिश्तके रहनेकी आसमान पृथिवीके रहने तक अविध हुई तो सदा रहेंगे बहिश्त वा दोज़खने यह बात भूठी हुई ऐसा कथन अविद्वानोंका होता है ईश्वर वा विद्वानोंका नहीं ॥ हर ॥

ह३ — जब यूपुफते अपने बापसे कहा कि ए बाप मेरे, मैंने एक स्वप्नमें देखा॥ मं०३। सि• १२। सु०। १२। आ० ४ से ४६ तक॥ समीक्षक — इस प्रकरणमें पिता पुत्रका संवादरूप किस्सा कहानी

भरी है इसिलिये कुरान ईश्वरका बनाया नहीं कि ती मनुष्यने मनुष्योंका इतिहास लिख दिया है।। हु३।।

६४—अहाह वह है कि जिसने खड़ा किया आसमानको विना खम्में हे विते हो तुम उसको फिर ठउरा ऊपर अर्शके आज्ञा बंतने-वाला किया सूरज और चांदको ॥ और वही है जिसने विद्याया पृथि-वीको ॥ उतारा आसमानसे पानी बस वहे नाले साथ अन्दाज अपनेके अहाह खोलता है भोजनको वास्ते जिसके चाहे और तङ्ग करता है॥ मं ३। सि १३। सू० १३। अ. ०२।३१७। २६॥

समीक्षक—मुसलमानोंका खुरा पदार्थविद्या कुछ भी नहीं जानता था जो जानता तो गुरुख न होते त आसमानको खम्मे लगानेकी कथा करानी कुछ भी न छिखता यहि खुरा अंग्रहर एक स्थानों रहता है तो वह सर्वग्रिकमान और संख्यापक नहीं हो सकता। और जो खुरा मेवविद्या जानता तो आकाशसे पानी उतारा लिख पुनः यह क्यों न लिखा कि पृथिवीसे पानी उत्पर चढ़ाया इससे निश्चय हुआ कि कुरानका बनानेवाला मेवकी विद्याको भी नहीं जानता था। और जो विना अच्छे बुरे कार्मोंके सुख दुःख देता है तो पक्षपाती अन्यायकारी निरक्षरभद्र है ॥ ६४ ॥

६४-- कह निश्चय अलाह गुमराह करता है जिसको चाहना है भौर मार्ग दिखलाता है तर्फ अपनी उस मनुष्यको रुजू करता है।। मं० है। सि॰ १३। स॰ १३। आ० २७॥

समीक्षक-जन अलाह गुमराह करता है तो खुदा और शैतानमें मेर हुआ र जब कि शतान दूसरोंको गुमराह अर्थात् बहकानेसे बुरा कहता है तो खुदा भी वैसा ही काम करनेसे बुरा शैतान क्यों नहीं ? और बहकानके पापसे दोज़खी प्यों नहीं होना चाहिये ? ।।६४।।

१ ६—इसी प्रकार उनारा हमने इस कुरानको अर्बी जो पक्ष करेगा त् उनकी इच्छाका पीछे इसकें कि आई तेरे पास विद्यासे ॥ बस सिवाय इसके नहीं कि अपर तेरे पैगाम पहुंचाना है और अपर हमारे है हिसाब छेना ॥ मं• ३ । सि० १३ । सु• १३ । आ• ३७ ॥

समीक्षक—कुरान कियरकी ओरसे उतारा १ ₹या खुदा ऊपर रहता है ! जो यह बात सब है तो वह एक्ट्रेशी होनेसं ईश्वर ही नहीं हो सकता क्योंकि ईश्वर सब ठिकाने एकरस ज्यारक है, पैग्र म पहुं-चाना हलकारेका काम है और हलकारेकी आवश्यकता उसीको होती है जो मनुष्यवन् एकदेशी हो और हिसाव लेना देन भी मनुष्यका काम है ईश्वरका नहीं च्योंकि वह सर्वज्ञ है यह निश्चय होता है कि किसी अस्पन्न मनुष्यका बनाया कुरान है ॥ ६६॥

६७-और किया सूर्य चन्द्रको सदैव फिरनेवाले ॥ निश्चय **आदमी अवश्य अन्याय और पाप करनेवाल! है।। मं०३। सि● १३।** स० १४। आ• ३३। ३४॥

समीक्षक—₹या चन्द्र सूर्य सदा फिरते और पृथिवी नहीं फिरती 🖁 जो पृथिवी नहीं फिरे तो कई वर्षोंका दिन रात होवे। और जो मनुष्य निश्चय अन्याय और पाप करनेवाला है तो कुरानसे शिक्षा करना व्यर्थ है क्योंकि जिनका स्वभाव पाप ही करनेका है तो उनमें पुण्यातमा कभी न होगा और संसारमें पुण्यातमा और पापातमा सदा दीखते हैं इसिळिये ऐसी बान ईश्वरकृत् पुस्तकृकी नहीं हो सकती।। १७॥

६८ — बस ठीक करूं में उसको और फूंक दूं बीच उसके रूह अप-नीसे बस गिरपड़ो वास्ते उसके सिज़दा करते हुए ॥ कहा ऐ रब मेरे इस कारण कि गुमराह किया तू ने मुक्तको अवश्य जीनत दूंगा मैं बास्ते उनके बीच पृथित्रीके और गुमराह करूंगा ॥ मं० ३ । सि० १४। सू० १४ । आ० ३६ से ४६ तक ॥

समीक्षक—जो खुदाने अपनी रूह आहम साहबों डाछी तो वह भी खुदा हुआ और जो वह खुदा न था तो सिजदा अर्थात् नमस्का-रादि भक्ति करनेमें अपना शरीक बर्मो किया १ जब शैतानको गुमराह करनेवाळा खुदा ही है तो वह शैतानका भी शैतान बड़ा भाई गुरु क्यों नहीं १ क्योंकि तुम लोग बहकानेवालेको शैतान मानते हो तो खुदाने भी शैतानको बहकाया और प्रत्यक्ष शैतानने कहा कि में बहकाक गा किर भी उसको दण्ड देकर केंद्र क्यों न किया है और मार क्यों न डाला १॥ ह ।।

हर — और निश्चय भेजे हमने बीच हर उम्मतके एैराम्बर ॥ जब चाहते हैं हम उसको यह कहने हैं हम उसको हो बस हो जाती हैं॥ मं० ३। सि• १४ । सू० १६ । आ० ३५ । ३६ ॥

समीक्षक—जो सब कौमों पर पैग्रम्बर भेजे हैं तो सब छोग जो कि पैग्रम्बरकी राय पर चछते हैं वे काफिर कों ? का दूसरे पैग्रम्बर का मान्य नहीं सिवाय तुम्हार पेग्रम्बर के पर संबंधा प्रशासकी बात है जो सब देशमें पेग्रम्बर भेजे तो अध्यावत्त्रमें कौनसा भेजा इसिछिये यह बात मानने योग्य नहीं । जब खुदा चाहता है और कहता है कि पृथिवी हो जा वह जड़ कभी नहीं सुन सकती, खुदाका हुक्म कोंकर बन संकंगा ? और सिवाय खुदांक दूसरी चीज नहीं मानते तो सुना किसने ? और हो कौनसा गया ? यह सब अविद्याकी बातें हैं ऐसी बातोंको अनजान छोग मान छेते हैं ॥ हह ॥

े १०० - और नियत करते हैं वास्ते अलाहके बेटियां पवित्रता है

## समुक्लास] न्याय विषयमें गड़बड़ाध्याय । ७४६

्डसको और वास्ते उनके हैं जो कुछ चाहें।। कसम अलाहकी अवश्य भेजे हमने रेगम्बर।। मंठ ३। सि० १४। सू० १६। आठ १६। ६२॥

समीक्षक—अलाह बेटियोंसे क्या करेगा ? बेटियां तो किसी मतु-ब्यको चाहियें, क्यों बेटे नियत नहीं किये जाते और बेटियां नियत की जाती हैं ? इसका क्या कारण है ? बताइये ? कमम खाना फूठोंका काम है ख़दाकी बात नहीं क्योंकि बहुया संसारमें ऐसा देखनेमें आता है कि जो फूठा होता है वहीं कुसम खाता है सक्षा सोगन्ध क्योंखावे १००॥

१०१ — ये छोग वे हैं कि मोहर रक्खी अझाहने ऊपर दिखें उनके और कानों उनके और आंखों उनकीके और ये छोग वे हैं बेखबर ॥ और पूरा दिया जावेगा हर जीवको जो ऊछ किया है और वे अन्याय न किये जावेंगे॥ मं∙ ३। सि• १४। सू• १६। मा• ११४। ११८ ॥

समीक्ष क जब जुदा ही ने मोहर छगा दी तो वे विचार विना अपराध मारे गये क्योंकि उनको पराधीन कर दिया यह कितना बड़ा अपराध है ? और फिर कहते हैं कि जिसने जितना किया है उतना ही उसको दिया जायगा न्यूनाधि क नहीं, भछा उन्होंने स्वतन्त्रतासे पाप किये ही नहीं किन्तु जुदाके करानेसे किये पुनः उनका अपराध ही न हुआ उनको फड़ न मिछना चाहिये इसका फछ जुदाको मिछना उचित है और जो पूरा दिया जाता है तो क्षमा किस बातकी की जाती है और जो भूमा की जाती है तो न्याय उड़ जाता है ऐसा गड़बड़ाध्याय ईश्वरका कभी नहीं हो सकता किन्तु निवृद्धि छोकरोंका होता है।।१०१॥

१०२ — और किया हमने दोजलको वास्ते काफिरोंके घेरने वाल स्थान ।। और हर मादमीको लगा दिया हमने उसको अमलनामा उसका बीच गर्दन उसकीके और निकालंगे हम वास्ते उसके दिन क्रगमतके एक किताब कि दिलेगा उसको खु अ हुआ। और बहुत मारे हमने कुरन्तसे पीछे नृद्देश। मंग्धा सिंग १६। सूर्व १७। आ० ७। १२। १६।।

समीक्षक-यदि काफिर वे ही हैं कि जो कुरान, पैग्रेम्बर और कुरानके कहे खुरा सातवें आसमान और नमाज़ अदिको न मार्ने और उन्हीं के लिये दाज़ल होने तो यह बात केवल पक्षपातकी ठहरे क्योंकि कुरान ही के मानने वाले सब अच्छे और अन्यके मानने वाले सब बुरे कभी हो सकते हैं । यह वडी लडकपनकी बात है कि प्रत्येककी गईनमें कमपुस्तक, हम तो किसी एककी भी गईनमें नहीं देखते। यदि इसका प्रयोजन कर्मीका फल देना है तो फिर मनुष्योंके दिखों नेत्रों आदि पर मोहर रखना और पापींका क्षमा करना क्या खेळ मचाया है ! क्रयाम-तकी रातको किताब निकालेगा खुरा तो आज कल वह किताब कहां है ? क्या साहकारकी बही समान छिखता रहता है ? यहां यह विचा-रना चाहिये कि जो पूर्व जनम नहीं तो जीवोंके कर्म ही नहीं हो सकते फिर कर्मकी रेखा क्या लिखी ? और जो विना कर्मके लिखा तो बन-पर अन्याय किया क्योंकि विना अच्छे बुरे कमौके उनको दुःख सुख क्यों दिया ? जो कही कि खुराकी मरजी तो भी उसने कन्याय किया, अन्याय उसको कहते हैं कि विना बुरे भन्ने कर्म किये दुःख सुखरूप फल न्यूनाधिक देना और उसी समय कि खुदा ही किताब बांचेगा वा कोई सरिश्तेदार सुनावेगा ? जो खुदा ही ने दीर्घकाल सम्बन्धी जीवोंको विना अपराध मारा तो वह अन्यायकारी होगया जो अन्यायकारी होता है वह खुदा ही नहीं हो सकता।। १०२।

१०३ — जोर दिया हमने समृदको ऊंटनी प्रमाण ।। जोर बहका जिसको बहका सके ।। जिस दिन बुळावेंगे हम सब छोगोंको साथ पेशवाओं उनकेके बस जो कोई दिया गया अमलनामा उसका बीख दाहने हाथ उसके के ॥ मैं । ४। सि १५। सू० १७। जा० ६७। हर । दृह ।।

े समीक्षक—बाहजी जितनी खुदाकी आश्चयं निशानी हैं बनमें से एक ऊंटनी भी खुदाके होनेमें प्रमाण अथवा परीक्षामें साधक है े यदि खुदाने शैतानको बहकानेका हुक्म दिया तो खुदा ही शेखानका सरदार और सब पाप करनेवाला ठइरा ऐसे को खुदा करना केवल कम सममाकी वात है। जब क्रयामतको अर्थात् प्रलय ही में न्याय करने करानेकं लिये पेग्रान्वर और उनके उपदेश माननेवालोंको खुदा बुला-दंग तो जवतक प्रलय न होगा तवतक सब दौरासुपुर्द रहेंगे और दौरासुपुर्द सबको दुःखदायक है जवतक न्याय न किया जाय। इसलिये शीव न्याय करना न्यायाधीशका उत्तम काम है यह तो पोपा-बाईका न्याय ठहरा जैसे कोई न्यायाधीश कहे कि जवतक पचास वर्ष तकके चोर और साहूकार इकट्ठेन हों तवतक उनको दंड वा प्रतिद्वा न करनी चादिये वैसा ही यह हुआ कि एक तो पचास वर्ष तक दौरासुपुर्द रहा और एक आज ही पकड़ा गया ऐसा न्यायका काम नहीं हो सकना न्याय तो वेद और मतुस्मृति देखो जिसमें क्षणमात्र भी विलम्ब नहीं होता और अपने २ कर्मानुसार दंड वा प्रतिष्ठा सदा पाते रहते हैं दूसरा पेग्रम्बरोंको गवाहीके तुल्य रखनेसे ईश्वरकी सर्वझताकी हानि है, भला ऐसा पुस्तक ईश्वरक्तन और ऐसे पुस्तकका उपदेश करनेवाला ईश्वर कभी हो सकता है ? कभी नहीं ।। १०३ ॥

१०४ —ये लोग वास्ते उनके हैं वाग हमेशः रहनके, चलती हैं नीचे उनकेसे नहरें गहिना पहिराये जावेंगे बीच उसके कंगन सोनेके से और पोशाक पहिनेंगे वस्न हरित लाहीकीसे और ताफ़तेकीसे तिकये किये हुए बीच उसके ऊपर तक़्तोंके अच्छा है पुण्य और अच्छी है बहिश्त लाभ उठानेकी।। मं० ४। सि० १४। सू० १८। ब्या० ३०।।

समिश्रक—नाहजी वाह! क्या कुरानका स्वगं है जिसमें बाग, गहने, कपड़े, गदी, तिकये आनन्दके छिये हैं भछा कोई बुद्धिमान यहां विचार करे तो यहांसे वहां मुसलमानोंकी बहिरतमें अधिक कुछ भी नहीं है सिवाय अन्यायके, वह यह है कि कम उनके अन्तवाके और फल उनके अनन्त और जो मीठा नित्य खावे तो थोड़े दिनमें विषके समान प्रतीत होता है जब सदा वे सुख भोगेंगे तो उनको सुख ही दुःखरूप होजायगा इसल्ये महाकहरपर्यन्त मुक्त सुख भोगके पुन-

र्जन्म पाना ही सत्य सिद्धान्त है ॥ १०४॥

१०५—और यह बस्तियां हैं कि मारा हमने उनको जब अन्याय किया उन्होंने और हमने उनके मारनेकी प्रतिज्ञा स्थापन की ॥ मं० ४। सि० १५। सु० १८। आ० ५७॥

समीक्षक—भठा सब बस्ती भर पापी भी होसकती है। और पीछेसे प्रतिज्ञा करनेसे ईश्वर सर्वज्ञ नहीं रहा क्योंकि जब उनका अन्याय देखा तो प्रतिज्ञाकी पहिले नहीं जानता था इससे द्याहीन भी ठड्रा।। १०४॥

१०६ — और वह जो छड़का बस थे मा बाप उसके ईमान वाले बस डरे हम यह कि पकड़ उनको सरकशीमें और कुफ्रमें ॥ यहांतक कि पहुंचा जगह डूबने सूर्य्यकी पाया उसको डुबना था वीच चश्मे कीचड़के। कहा उनने ऐजुलक़ रनेन निश्चय याजूज माजूज फिसाइ करनेवाले हैं बीच पृथिवीके॥ मं० ४। सि०१६। सू०१८। आ० ७८। ८४। ६२॥

समीक्षक—भला यह खुराकी िकतनी वेसमम्म है ! राष्ट्रासे डरा कि लड़कों के मा वाप कहीं मेरे मागंसे बहका कर उल्लेट न कर दिये जाते, वह कभी ईश्वरकी बात नहीं हो सकती । अब आगेकी अवि-धाकी बात देखिये कि इस किताबका बनानेवाला स्ट्यंको एक म्मीलमें रात्रिको हूवा जानता है फिर प्रातःकाल निकलता है मला स्ट्यं तो पृथिवीसे बहुत बड़ा है वह नदी वा म्मील वा समुद्रमें कैसे हूब सकेगा इससे यह विदित हुआ कि कुरानके बनानेवालेको भूगोल खगोल की विद्या नहीं थी जो होती तो ऐसी विद्याविकद्ध बात क्यों लिख देता ? और इस पुस्तकके मानने वालोंको भी विद्या नहीं है जो होती तो ऐसी मिथ्या बातोंसे युक्त पुस्तकको क्यों मानते ? अब देखिये खुदाका अन्याय आप ही पृथिवीको बनानेवाला राजा न्यायाधीश है और याजून माजूनको पृथिवीको क्रसाद भी करने देता है वह ईश्वरताकी बातते विवह है इसने ऐसी पुस्तकको जक्कली छोग माना करते हैं

विद्वांन नहीं ॥ १०६॥

समोक्षक—अन बुद्धिमान विचारलें कि फ्रिरिश्ते सब खुदाकी रूह हैं तो खुरासे अलग पदार्थ नहीं हो सकते दूसरा यह अन्याय कि वह मर्यम कुमारीके लड़का होना किसीका संग करना नहीं चाहती थी परन्तु खुदाके हुक्मसं फ्रिरिश्तेने उसको गंभवती किया यह न्यायसे विरुद्ध बात है। यहां अन्य भी असम्यताकी बातें बहुत लिखी हैं उनको लिखना उचित नहीं सममा।। १०७॥

१०८ — क्या नहीं देखा तूरे यह कि मेजा हमने शैतानों को उत्पर क्व.फिरोंके बदकाते हैं उनको बहकाने कर मं० ४ । सि॰ १६ । सू० १६ । आ॰ ८१॥

समीक्षक—जब खुदा ही शितानोंको बहकानेके लिये भेजता है तो बहकाने वालोंका कुछ दोष नहीं हो सकता और न उनको दण्ड हो सकता और न शितानोंको क्योंकि यह खुदाके हुक्मसे सब होता है इसका फल खुदाको होना चाहिये, जो सबा न्यायकारी है तो उसका फल दोजल आपही भोगे और जो न्यायको छोड़के अन्यायको करे सो अन्यायकारी हुआ अन्यायकारी ही पापी कहाता है।। १०८ ।।

१०६---और निश्चय क्षमा करनेवाळा हूं वास्ते उस मनुष्यके तोबाः क्षेट की और ईमान लाया कर्म किये अच्छे फिर मार्ग पाया।। मं० ४। सि॰ १६। स० २०। आ० ७८॥

समीक्षक - जो तोबाःसे पाप क्षमा करनेकी बात कुरानमें है यह सबको पापी करनेबाली है क्योंकि पापियोंको इससे पाप करनेका साहस बहुत बढ जाता है इससे यह पुस्तक और इसका बनानेवाला पापियोंको पाप करानेमें होंसला बढानेवाले हैं इससे यह पस्तक परमेश्वरकत और इसमें कहा हुआ परमेश्वर भी नहीं हो सकता 11 308 11

११० - और किये हमने बीच पृथिवीके पहाड ऐसा न हो कि हिळ जावे।। मं० ४। सि० १७। सू० २१। आ०३●॥

समीक्षक - यदि कुरानका बनानेवाला पृथिवीका घूमना आदि जानता तो यह बात कभी नहीं कहता कि पहाडों के धरनेसे प्रुधिवी नहीं हिलती शङ्का हुई कि जो पहाड़ नहीं धरता तो हिल जाती इतने कहने पर भी भूकम्पमें क्यों डिग जाती है ॥ ११०॥

१११ - और शिक्षा दी हमने उस औरतको और रक्षाकी उसने अपने गृह्य अंगोंकी बस फंक दिया हमने बीच उसके रूह अपनीको ।। मं० ४। सि० १७। सु० २१। आ• ८८॥

समीक्षक-ऐसी अश्लील बातें जुदाकी पुस्तकमें जुदाकी क्या और सभ्य मनुष्यकी भी नहीं होती. जब कि मनुष्योंमें ऐसी बातोंका छिलना अच्छा नहीं तो परमेश्वरके सामने क्योंकर अच्छा हो सकता है ? ऐसी बातोंसे कुरान दृषित होता है यदि अच्छी बात होती तो अतिप्र-शंसा होती जैसे वेदोंकी ।। १११ ॥

११२-क्या नहीं देखा तूने कि अलाइको सिजदा करते हैं जो कोई बीच आसमानों और पृथिवीके हैं सुर्व्य और चन्द्र तारे और पहाड कृक्ष और जानवर ॥ पहिनाये जायेंगे बीच उसके कक्कन सोनेसे भौर मोती और पितनावा उनका बीच उसके रेशमी है।। और पित्रक रख घर मेरेको वास्ते गिर्द फिरनेवार्ळोके और खडे रहनेवार्ळोके॥

फिर चा िये कि दूर करें मैठ अपने और पूरी करें मेटें अपनी और चारों ओर फिरें घर कड़ी मके ॥ तो कि नाम अलाहका याद करें ॥ मं० ४। सि॰ १७। सु॰ २२। आ० ११। २३। २४। २८। ३३॥

समीक्षक—मला जो जड़ वस्तु है परमेशवरको जान ही नहीं सकते फिर वे उसकी भक्ति क्यों कर कर सकते हैं? इससे यह पुस्तक ईश्वरकृत तो कभी नहीं हो सकता किन्तु किसी आन्तका बनाया हुआ दीखता है वाह! बड़ा अच्छा स्वर्ग है जहां सोने मोतीके गहने और रेशमी कपड़े पहिरनेको मिले यह विहश्त यहां के राजाओं के घरसे अधिक नहीं दीख पड़ता। और जब परमेशवरका घर है तो वह उसके घरमें रहता भी होगा फिर बुत्परस्ती क्यों न हुई है और दूसरे बुत्परस्तों का खण्डन कों करते हैं? जब खुदा भेट लेता अपने घरकी परिक्रमा करनेकी आज्ञा देता है और पशुआंको मरवाके खिलाता है तो यह खुदा मिन्दर वाले और भैरव, दुर्गाके सहश हुआ और महाबुत्परस्तीका चलाने वाला हुआ कोंकि मूर्तियोंसे मस्ज़िद बड़ा बुत् है इससे खुदा और मुसउमान बड़े बुत्परस्त और पुराणो तथा जैनी छोटे बुत्परस्त हैं॥ ११२॥

११३—फिर निश्चय तुम दिन क्रयामतके उठाये जाओगे ॥ मं• ४ । सि० १८ । स्र॰ २३ । अर• १६ ॥

समीक्षक — क्रय मत तक मुर्दे क्रवरमें रहेंगे वा किसी अन्य अगाइ ? जो उन्हीं गं रहेंगे तो सड़े हुये दुर्गन्थरूप शरीरमें रह कर पुण्यातमा भी दुःख भोग करेंगे ? यह न्याय अन्याय है और दुर्गन्थ अधिक होकर रोगोत्पत्ति करनेसे खुदा और मुसल्लमान पापभागी होंगे॥ ११३॥

११४ — उस दिनकी गवाही देवेंगे ऊपर उनके जवाने उनकी और हाथ उनके और पांव उनके साथ उस वस्तुके कि थे करते।। अल्छाह नूर है आसमानोंका और प्रथिवीका नूर उसके कि मानिन्द ताककी है बीच उसके दीप हो और बीच दीप कंदीप शीशोंके हैं वह कंदीप मानो

कि तारा है चमकता रोशन किया जाता है दीपक वृक्ष मुबारिक जेतू-नके से न पूर्वकी ओर है न पश्चिमकी समीप है तेल उसका रोशन हो जावे जो न लेंगे ऊपर रोशनीके मार्ग दिखाता है अल्लाह नूर अपनेके जिसको चाहता है॥ मं॰ ४। सि॰ १८। सू० २४। आ० २३। ३४॥

समीक्षक—हाथ पा आदि जड़ होनेसे गवाही कभी नहीं दे सकते यह बात सृष्टिकमते विरुद्ध होनेसे मिथ्या है क्या खुदा आग बिजुजी है ? जैसा कि ट्टान्त देते हैं ऐसा ट्टान्त ईश्वरमें नहीं घट सकता हां किसी साकार वस्तुमें घट सकता है ॥ ११४॥

११६ — और अल्डाइने उत्पन्न किया हर जानवरको पानी ने बस कोई उनमेंसे वह है कि जो चलता है पेट अपनेके ॥ और जो कोई आज्ञा पालन करे अलाइकी रसूल उसकेकी ॥ कह आज्ञा पालन कर खुदाकी रसूल उसकेकी ॥ और आज्ञा पालन करो रसूलकी ताकि द्या किये जाओ ॥ मं० ४ । सि० १८ । सू॰ २४ । आ॰ ४४ । ५१ । ६३ । ६४ ॥

समीक्षक—यह कौनसी फिडासफ़ी है कि जिन जानवरों के शरी-रमें सब तत्त्व दीखते हैं और फहना कि केवल पानीसे उत्पन्न किया है यह केवल अविद्याकी बात है जब अलाहके साथ पैग्राम्बरकी आज्ञा पालन करना होता है तो खुदाका शरीक होगया वा नहीं ? यदि ऐसा है तो क्यों खुदाको लाशरीक कुरानमें लिखा और कहते हो है।। ११४॥

११६—और जिस दिन कि फर जावेगा आसमान साथ बद्छीके स्मीर उतारे जावेंगे फ़रिश्ते बस मत कहा मान काफ़िरोंका स्मीर मगड़ा कर उससे साथ मगड़ा बढ़ा। और बदछ डाछता है अछाइ बुराइयों उनकीको भछाइयोंसे।। और जो कोई तोवाः करे स्मीर कर्म करे सन्छे बस निश्चय आता है तर्फ अच्छाइकी।। मं० ४ सि० १९। सू० २५। सा० २४। ४६। ६७। ६८।।

समीक्षक यह बात कभी सच नहीं हो सकती है कि आकाश बहुकों के साथ फट जावे यदि आकाश कोई मूर्तिमान पहार्थ हो तो फट सकता है। यह मुसलमानोंका कुरान शांतिभक्क कर गदर कंगड़ा मचाने वाला है इसीलिये धार्मिक विद्वान लोग इसको नहीं मानते। यह भी अच्छा न्याय है कि जो पाप और पुण्यका अदला बदला हो जाय। क्या यह तिल और उदड़कीसो बात जो पलटा हो जावे १ जो तोबाः करनेसे पाप छूटे और ईश्वर मिले तो कोई भी पाप करनेसे न लरे इसिलिये ये सब बार्ते विद्यासे विकद्ध हैं।। ११६॥

११७ —बही नी हमने तर्फ़ मुसाकी यह कि ठे चल रातको बन्दों मेरेको निरचय तुम पीछा किये जाओगे ॥ बस भेजे लोग फिरोनने बीच नगरोंके जना करनेवाले ॥ और वह पुरुष कि जिसने पैदा किया मुक्तको है बस वही मार्ग दिखलाता है ॥ और वह जो खिलाता है मुक्तको पिलाता है सुक्त को और वह पुरुष कि आशा रखता हूं मैं यह कि क्षमा करे बास्ते मेरे अपराध मेरा दिन क्रायमतके ॥ मं० ५ । सि० १६ । सु० २६ । आ० ६० । ६१ । ७६ । ७० । ८० ॥

समोक्षक—जब खुदाने मुसाकी ओर वही भेजी पुनः दाजद, ईसा स्मो मुहम्मद साहेबकी ओर किताब क्यों भेजी कि परमेश्वरकी बात सदा एकसी और बे मूळ होती है। और उसके पीछे कुरान तक पुरतकों का भेजना पहिळी पुस्तकको अपूर्ण भूळपुक्त माना जागगा। यदि ये तीन पुस्तक सच्चे हैं तो वह कुरान भूळा होगा। चारों क जो कि परस्पर प्रायः विरोध रखा हैं उनका संवधा सन्य होना नहीं हो सकता यदि खुदाने रूह अर्थात् जीव पैदा किये हैं तो वे मर भी जायंगे सर्थात् उनका कभी अभाव भी होगा को परमेश्वर ही मनुष्यादि प्राणियों को खिळाता पिछाता है तो किसीको रोग होना न चाहिये और सबको तुल्य भोजन देना चाहिये, पश्चपातसे एकको उतम और दूसरेको निकृष्ट जैसा कि राजा और कुक्क के श्रेष्ठ निकृष्ट भोजन मिळता है न होना चाहिये। जब परमेश्वर ही खिळाने पिछाने और पश्च कराने बाळा है तो रोग ही न होना चाहिये परन्तु मुसळमान आदिको भी रोग होते हैं, यदि खुदा ही रोग हुड़कर आराम करने बाळा है, से रोग होते हैं, यदि खुदा ही रोग हुड़कर आराम करने बाळा है,

तो मुसलमानोंके शरीरमें रोग न रहना चाहिये। यदि रहता है तो खुरा पूरा वैद्य नहीं है। यदि पूरा वैद्य है तो मुसलमानोंके शरीरमें रोग ज्यों रहते हैं। यदि वही मारता और जिल्लात है तो उसी खुराको पाप पुण्य लगता होगा। यदि जन्म जन्मान्तरके कर्मानुसार व्यवस्था करता है तो उसका कुछ भी अपराथ नहीं। यदि वह पाप क्षमा और न्याय क्रयामतकी रातमें करता है तो खुरा पाप बढ़ने वाला होकर पापयुक्त होगा यदि क्षमा नहीं करता हो यह कुरानकी बात सूठी होनेसे बच नहीं सकती है।। ११७॥

११८—तहीं तू आदमी मानिन्द हमारी बसले आ कुछ निरानी जो है तु सच्चोंसे ॥ कहा यह ऊटनी है वास्ते उसके पानी पीना है एक वार ॥ मं• ४ । सि० १६ । सू• २६ । आ० १४० । १५१ ॥

समं अक—भंज इस बातको कोई मान सकता है कि पत्थर से कंटनी निकन्ने वे लोग जङ्गजो थे कि जिन्होंने इस बातको मान खिया और कंटनीकी निशानी देनी केवल जङ्गली व्यवहार है ईश्वरकृत नहीं यदि यह किताब ईश्वरकृत होती तो ऐसी व्यर्थ बातें इसमें न होतीं।। ११८।।

११६ — ऐ मूसा बात यह है कि निश्चय में सल्डाह हूं गाछित्र। और डाल दे असा अपना बस जब कि देखा उसकी हिल्जा था मानो कि वह सांप है ऐ मूसा मत डर निश्चय नहीं डरते समीन मेरे पैग-म्बर ॥ अडाह नहीं कोई माबूद परन्तु वह मालिक अश बड़ेका। यह कि मत सरकशी करो ऊपर मेरे और चड़े आओ मेरे पास मुसल-मान होक्र ॥ मं•्धा सि• १९। सू० २७। आ• ६। १०। २६। ३१॥

समीक्षक — और भी देखिये अपने मुख आप अल्डाह बड़ा ज़बर-दस्त बतता है, अपने मुखने अपनी प्रशंजा करना श्रेम्ड पुरुषका भी काम नहीं तो खुद्दाका क्योंकर हो सकता है है तभी तो इन्द्र नालका लग्का दिखला जङ्गली मनुष्योंको बशकर आप जंगलस्य खुदा बन बैठा। ऐसी बात ईश्वरके पुस्तकमें कभी नहीं हो सकती यदि वह बड़े अर्था अर्थात् सातवे आसमानका मालिक है तो वह एकदेशी होनेसे क्षेत्रर नहीं हो सकता है, यदि सरकशी करना बुरा है तो खुदा और सुदम्मद साहेवने अगनी स्तुतिते पुस्तक क्यों भर दिये ! सुदम्मद साहेवने अनेकोंको मारे इससे सरकशी हुई वा नहीं ! यह छुरान पुनरुक्त और पूर्वापर विरुद्ध वानोंने भरा हुआ है ॥ ११६ ॥

१२०—और देखेगा तृ पहाड़ोंको अनुमान करता है उनको जमे हुए आर वे चड़े जाते हैं मानिन्द चलने बादलोंकी कारीगरी अल्लाह कि जिसने टड़ किया हर वस्तुको निश्चय वह ख़बरदार है उस बस्तुके कि करते हो ॥ मं० ५। सि० २०। सू• २७। आ० ८८॥

• समीअ़क- - वहलों के समान पहाड़का चलता कुरान बतानेवालों के देशमें होता होगा अन्यत्र नहीं और खुदाकी ख़बरद री शैतान बागीको न पकड़ने और न दंड देनेसे ही विदित होती है जिसने एक बागीको भी अवनक न पकड़ पाया न दंड दिया इससे अधिक असावधानी क्या होगी १।। १२०।।

१२१—बस दृष्ट मारा उसको मूसाने बस पूरी की आयु उसकी कहा ऐ रब मेर निश्चय मेंने अन्याय किया जान अपनीको बस ्मा कर मुम्कको सब क्षमा कर दिया उसको निश्चय वह क्षमा करनेवाला दयालु है।। और मालिक तेरा उत्पन्न करता है जो कुछ चाहता है और पसन्द करता है। मं० १। सि० २०। सू० २८। आ० १४।। १६। १६।

समीक्षक—अब अन्य भी देखिये मुसलमान और ईसाइयोंके पैगम्बर और खुदा कि मूसा पैगम्बर मनुष्यकी हत्या किया करे और खुदा क्षमा किया करे ये दोनों अन्यायकारी हैं वा नहीं है क्या अपनी इन्छा ही से जैसा चाहता है वैसी खत्पति करता है ? क्या अपनी अपनी इन्छा ही से एकको राजा दूसरेको कङ्गाल और क्काने विद्वान और दूसरेको मूंब आदि किया है ? यदि ऐसा है तो ब क्काने स य और न न्यायकारी होनेसे खुदा ही हो सकता है।। १२१॥

[चतुर्वेश

१२२--और आज्ञा दी हमने मनुष्यको साथ मा बापके भलाई करना और जो मत्गड़ा करें तुमति दोनों यह कि शरीक छावे तू साथ मेर उस वस्तको कि नहीं वास्ते तेरे साथ उसके ज्ञान बस मत कहा मान उन दोनोंका तर्फ मेरी है।। और अवश्य भेजा हमने नृहको तर्फ कीम उसके कि बस रहा बीच उनके हज़ार वर्ष परन्तु पचास वर्षकमा। मं• ४। सि० २० — २१! सू० २६। आ० ७। १३॥

समीक्षक-माता पिताकी सेवा करना अच्छा ही है जो खुदाके साथ शरीक करनेके लिये कहे तो उनका कहा न मानना यह भी ठीक है परन्तु यदि माता पिता मिथ्याभाषण दि करनेकी आज्ञा देवे तो **क्या मान हेना चाहिये ? इसलिये यह बात आधी अच्छी और आधी** बुरी है। क्या नूर आदि पैग्रम्बरों ही को खुदा संसारमें भेजता है ? तो अन्य जीवोंको कौन भेजता है ? यदि सबको वही भेजता है तो सभी पैग्रम्बर क्यों नहीं ? और प्रथम मनुष्योंकी हज़ार वर्षकी आयु होती थी तो अब क्यों नहीं होती ? इसलिये यह बात ठीक नहीं १२२

े १२३ - अल्लाह पहिली बार करता है उत्पत्ति फिर दुसरी वार करेगा उसको फिर उसीकी ओर फेर जाओगे।। और जिस दिन वर्षा अर्थात खड़ो होगी क्रयामत निराश होंगे पापी।। बस जो छोग कि ईमान लाये और काम किये अच्छे बस वे बीच बाग के सिंगार किये जावेंगे ॥ और जो भेजदें हम एक बाब बस देखे उस खेतीको पीली हुई ॥ इसी प्रकार मोहर रखता है अहाह ऊपर दिलों उन छोगोंके कि नहीं जानते ॥ मं० ४। सि॰ २१। स॰ ३०। आ० १०। 88 188 1 80 1 85 11

समीक्षक—यदि अहाह दो बार धत्पत्ति करता है तीसरी बार नहीं तो उत्पत्तिकी आदि और दूसरी बारके अन्तमें निकम्मा बैठा रहता होगा ? और एक तथा दो बार इत्पत्तिके पश्चात् उसका सामर्थ्य निकस्मा और न्यर्थ हो जायगा यदि न्याय करनेके दिन पापी स्त्रेग निराश हों तो अच्छी बात है परन्त इसका क्रयोजन यह तो कहीं नहीं है कि मुसलमानोंके सिवाय सब पापी समम कर निराश किये जायं है क्यों कि कुरानमें कई स्थानों में पापियों से औरोंका ही प्रयोजन है। यदि बगीचेमें रखना और शृङ्कार पिहराना ही मुसलमानोंका खंग है तो इस संसारके तुल्य हुआ और वहां माली और सुनार भी होंगे खावा खुदा ही माली और सुनार आदिका काम करता होगा यदि किसीको कम गहना मिलता होगा तो चोरी भी होती होगी और बहिश्तसे चोरी करनेवालोंको दोज़खमें भी डालता होगा, यदि ऐसा होता होगा तो सदा बहिश्तमें रहेंगे यह बात भूठ हो जायगी, जो किसानोंकी खेती पर भी खुदाकी हिष्ट है सो या दिशा खेती करनेके अनुभव ही से होती है और यदि मानाजाय कि खुदाने अपनी विद्यास सब बात जानली है तो ऐसा भय देना अपना धमण्ड प्रसिद्ध करना है। यदि अलाहने जीवोंक दिलों पर मोहर लगा पाप कराया तो उस पापका भागी वही होवे जीव नहीं हो सकते जैसे जय पराजय सेना-धीशका होता है वैसे ये सब पाप खुदा ही को प्राप्त होतें 1। १२३।।

१२४—ये आयते हैं किताब हिक्मतवालेकी। उत्पन्न किया आसमानोंको विना सुतून अर्थात् खंभेके देखते हो तुम उसको और डाड़े
बीच पृथिवीके पहाड़ ऐसा न हो कि हिल जावे।। क्यों नहीं देखा तूने
यह कि अल्लाह प्रवेश कराता है रातको बीच दिनके और प्रवेश कराता
है कि दिनको बीच रातके।। बचा नहीं देखा कि किशितयां चलती हैं
बीच दर्याक साथ निआमतों अल्लाहक तो कि दिखलावे तुमको निशानियां अपनी।। मं० ४। सि॰ २१। सू० ३१। आ० १।६।
२८।३०।।

समीक्षक—बाहजी वाह! हिक्मतवाळी किताब! कि जिसमें सर्वथा विद्यासे विरुद्ध आकाशकी उत्पत्ति और उसमें खंभे लगानेकी शंका और पृथिवीको स्थिर रखनेक लिये पहाड़ रखना! थोड़ी सी विद्या बाला भी ऐसा लेख कभी नहीं करता और न मानता और हिक्मत देखों कि जहां दिन है बहां रात नहीं और जहां रात है वहां दिन नहीं उसको एक दूसरेमें प्रवेश कराना छिखता है यह बड़े अविद्वानों ी वात है इसिछिये यह कुरान निद्याकी पुस्तक नहीं हो सकती
क्या यह विद्याविरुद्ध बात नहीं है कि नोका मनुष्य और किया कोशछादिसे चलती है वा खुदाकी कुपासे यदि छोहे वा पत्थरोंकी नौका
बनाकर समुद्रमें चलावें तो खुदाकी निशानी हूब जाय वा नहीं इसछिये यह पुस्तक न विद्वान् और न ईश्वरका बनाया हुआ हो सकता
है।। १२४।।

१२५—तद्वीर करता है कामकी आसमानसे तर्फ पृथिवीकी फिर चढ़जाता है तर्फ उसकी बीच एक दिनके कि है अवधि उसकी सहस्र वर्ष उन वर्षोंसे कि गिनते हो तुम ।। यह है जाननेवाला गेवका और प्रत्यक्षका गालित्र दयालु किर पुष्ट किया उसको और फूंका बीच उसके रूह अपनीसे कह कब्ज करंग। तुमको फ़रिश्ता मौतका वह जो नियत किया गया है साथ तुम्हारे ।। और जो चाहते हम अवश्य देते हम हरएक जीवको शिक्षा उसकी परन्तु सिद्ध हुई बात मेरी ओरसे कि अवश्य भरूंगा में दोज़लुको जिनोंसे और आदमियोंसे इक्ट्टे ।। मं० १। स० २१। स० २१। स० २१। स० ११। । ११।।

समीक्षक — अब ठीक सिद्ध होगया कि मुसलमानोंका खुदा मनुब्यवन् एकदेशी है क्योंकि जो व्यापक होता तो एक देशसे प्रबन्ध
करना और उनरना चढ़ना नहीं हो सकता यदि खुदा फरिश्तेको
भेजता है तो भी आप एकदेशी होगया। आप आसमान पर टंगा बैठा
है। और फरिश्तोंको दोड़ाता है। यदि फरिश्ते रिश्वत लेकर कोई
मामला बिगाइदें वा किसी मुदेंको छोड़ जाय तो खुदाको क्या मालूम
हो सकता है । मालूम तो उसको हो कि जो सर्वज्ञ तथा सर्वव्यापक
हो सो तो है ही नहीं होता तो फरिश्तोंके मेजने तथा कई लोगोंकी
कई प्रकारसे परीक्षा लेनेका क्या काम था । और एक हज़.र वर्षोंमें
सथा आने जाने प्रबन्ध करनेसे सर्वशक्तिमान् भी नहीं। यदि मौतका
फरिश्ता है तो उस फरिश्तेका मारने वाला कीनसा मृत्यु है । यदि

## समुञ्जास] खुदा पापी अन्यायी निर्देयी। ७६३

वह नित्य है तो अमरपनमें खुद्कि वरावर शरीक हुआ, एक फरिस्ता एक समयमें दोज़ल भरनेके लिये जीवोंको शिक्षा नहीं कर सकती और उनको विना पाप किये अपनी मर्जीसे दोज़ल भरके उनको दुःख देकर तमाशा देखता है तो वह खुदा पापी अन्यायकारी और द्याहीन है। ऐसी बार्ते जिस पुस्तकमें हों न वह विद्वान और ईश्वरकृत और को दया न्यायहीन है वह ईश्वर भी कभी नहीं हो सकता ॥१२४॥

१२६—कह कि कभी न लाभ देगा भागना तुम्मको जो भागो तुम मृत्यु वा कृतलसे ॥ ऐ बीबियो नबीकी जो कोई बावे तुममेंसे निलंक जाता प्रत्यक्षके दुगुणा किया जावेगा वास्ते उसके अज्ञाब और है यह ऊपर अलाहके सहल ॥ मं॰ ४ सि० २१ । सू व्वा अवि १६। व्या

समीक्षक—यह मुहम्मद साहेबने इसिंखिये लिखा लिखवाया होगा कि लड़ाईमें कोई न भागे हमारा विजय होवे मरनेस भी न डरे ऐश्वर्य बढ़ें मज़;ब बढ़ा लेवें ? और यहि बीबी निंल्जतासे न आवे तो क्या पैग्रम्बर साहेब निर्लज्ज होकर आवें ? बीबियोंपर अज़ाब हो, और पैग्रम्बर साहेब पुर अज़ाब न होवे यह किस परका न्याय है।।१२६।।

१२७—और अटकी रही बीच घरों अपनेके आज्ञा पालन करों अज्ञाह और रस्कृती सिवाय इसके नहीं ।। बस जब अदा करकी जैदने हाजित उससे ज्याह दिया हमने तुम्मसे उसको ताकि न होनें उपर ईमानवाओं के तंगी बीच बीबियोंसे लेपालकों उनके के जब अदा करलें उनसे हाजित और है आज्ञा खुराकी कीगई ॥ नहीं है उपर मबीके कुछ तंगी बीच वस्तुके ।। नहीं है मुहम्मद बाप किसी मर्जोका और हलालकी की ईमानवाली जो देवे विना मिहरके जान अपनी बास्ते नबीके ।। ढील देवे तू जिसको चाहे उनमेंसे और जगह देवे वर्ष अपनी जिसको चाहे नहीं पाप उपर तेरे ।। ऐ लोगो ! जो ईमान लये हो मत प्रवेश करो घरोंमं पैग्रम्बरके ॥ मंग्र १। सि० २२। सु० ३३। आ० ३३। ३०। ३८। ४०। ४०। ४८। ४८।।

'समीशक —यह बड़े भन्यायकी बात है कि की घरमें कैदके समान

रहे और पुरुष खुले रहें, क्या क्षियोंका चित्त शुद्ध वायु, शुद्ध देशमें अप्रमण करना, सुब्टिके अनेक पदार्थ देखना नहीं चाहता होगा ? इसी अपराधसे मुसलमानोंके लडके विशेषकर सयलानी और विषयी होते हैं अक्षाह और रसूलकी एक अविरुद्ध आज्ञा है वा भिन्न २ विरुद्ध १ यदि एक है तो दोनोंकी आज्ञा पालन करो कहना व्यर्थ है और जो भिन्न २ विरुद्ध है तो एक सच्ची और दूसरी भूठी ? एक खुदा दूसरा शैतान हो जायगा। और शरीक भी होगा ? वाह कुरानका बुदा और पैग्रम्बर तथा कुरानको ! जिसे दूसरेका मतछव नष्ट कर अपना मत-छव सिद्ध करना इष्ट हो ऐसी लीला अवश्य गचता है इससे यह भी सिद्ध हुआ कि मुहम्मद साहेब बड़े विषयी थे यदि न होते तो ( लेपा-छक ) बेटेकी स्त्रीको जो पत्रकी स्त्री थी अपनी स्त्री क्यों कर छेते ? भौर फिर ऐसी बातें करनेवालेका खुदा भी पक्षपाती बना और अन्या-यको न्याय ठहराया। मनुष्यों में जो जंगली भी होगा वह भी बेटेकी स्त्रीको छोडता है और यह कितनी बड़ी अन्यायकी बात है कि नबीको विषयासक्तिकी लीला करनेमें कुछ भी अटकाव नहीं होता। यदि नबी किसीका बाप नथा तो जैद ( लेपालक ) बेटा किसका था ! और यों लिखा ? यह उसी मतलबकी बात है कि जिससे बेटेकी स्त्रीको भी घरमे डालनेसे पैग्रम्बर साहेब न बचे अन्यसे क्योंकर बचे होंगे १ ऐसी चतुराईस भी बुरी बातमें निन्दा होना कभी नहीं छूट सकता क्या जो कोई पराई स्त्री भी नबीत प्रसन्न होकर निकाह करेना चाहे तो भी हलाल है ! और यह महा अधर्मकी बात है कि नबी तो जिस स्त्रीको चाहे छोड देवे और मुहम्मद साहेबकी स्त्री लोग यदि पैग्रम्बर अपराधी भी हो तो कभी न छोड सकें। जैसे पैग्रम्बरके घरोंमें अन्य कोई व्यभिचार दृष्टिसे प्रवेश न करें तो वैसे पैग्रम्बर साहेब भी किसीके घरमें प्रवेश न करें क्या नबी जिस किसीके घरमें चाहें निश्शक्क प्रवेश करें और माननीय भी रहें ? भला कौन ऐसा हृदयका भन्धा है कि जो इस कुरानको ईश्वरकृत और मुहम्मद सहिवको

## समुक्कास] गदर मचाने बाल खुदा । ७६५

पैगम्बर और कुरानोक्त ईश्वरको परमेश्वर मान सके। बड़े आश्चर्यकी बात है कि ऐसे युक्तिशून्य धर्मविरुद्ध बातोंसे युक्त इस मतको अर्बरे-शनिवासी सादि मनुष्योंने मान छिया।।। १२७।।

१२८—नहीं योग्य वास्ते तुम्हारे यह कि दुःख दो रसूछको यह कि निकाह करो बीवियों उसकीको पीछे उसके कभी निश्चय यह है समीप अल्छाहके बड़ा पाप।। निश्चय जो छोग कि दुःख देते हैं अल्छाहको और रसुछ उसके को छानतकी है उनको अल्छाहने।। और वे छोग कि दुःख देते हैं मुसलमानोंको और मुसलमान औरतोंको विना इसके बुरा किया है उनहोंने बस निश्चय उठाया उन्होंने बौहतान अर्थात् भूठ और प्रत्यक्ष पाप॥ छानत मारे जहां पाये जावें पकड़े जावें कितछ किये जावें लुब मारा जाना॥ ऐ रब हमारे दे उनको द्विगुण अज़ाबसे और छानतसे बड़ी छानत कर॥ मं० १। सि॰ २२। सू॰ ३३। आ० १०। १४। १४। १८ । १६॥

समिक्षक — बाह क्या खुदा अपनी खुदाईको धंमके साथ दिखला रहा है ? जैसे रस्उको टुग्व देनेका निषेध करना तो ठीक है परन्तु इसरेको टुग्व देनेमें रस्ठको मी रोकना योग्य था सो क्यों न रोका ? क्या किसीके टुग्व देनेसे अलाह भी टुग्वी हो जाता है यदि ऐसा है तो वह ईश्वर ही नहीं हो सकता ? क्या अलाह और रस्ठको टुग्व देनेका निषेध करनेसे यह नहीं सिद्ध होता कि अलाह और रस्ठको टुग्व देनेका निषेध करनेसे यह नहीं सिद्ध होता कि अलाह और रस्ठक जिसको चाहें टुग्व देने ? अन्य सबको टुग्व देना चाहिये ? जैसा मुसलमानों और मुसलमानोंकी खियोंको टुग्व देना चाहिये ? जैसा मुसलमानों और मुसलमानोंकी खियोंको टुग्व देना चार है तो इनसे अन्य मनुष्योंको टुग्व देना भी अवश्य बुरा है ॥ जो ऐसा न माने तो उसकी यह बात भी पक्षपातकी है, बाह गुग्र मचानेवाछे खुरा और नबी जैसे ये निद्यी संसारमें हैं वैसे और बहुत थोड़े होंगे जैसा यह कि अन्य छोग जहां पाये जावें मारे जावें पकड़े जावें लिखा है वैसी ही मुसलमानों पर कोई आहा देवे तो मुसलमानोंको यह वात बुरी लगेगी या नहीं ? बाह क्या दिसक देगस्वर आदि हैं कि जो परमेश्वरसे प्रार्थना

करके अपनेसे दूसरों को दुगुण दुःख देनेके लिये प्रार्थना करना लिखा है यह भी पक्षपात मतलवसिन्शुपन और महा अधर्मकी बात है इससे अबतक भी मुसलमान लोगोंमेंसे बहुतसे शठ लोग ऐसा ही कर्म कर-नेमें नहीं डरते यह ठीक है कि शिक्षांके विना मनुष्य पशुके समान रहता है।। १२८।।

१२६ — और अल्लाह वह पुरुष है कि भेजता है ह्वाओं जो बस उठाती हैं बादलों को बस हां क लेते हैं तर्फ़ शहर मुर्देकी बस जीवत किया हमने साथ उसके पृथिवीको पीछे मृत्यु उसकी के इसी प्रकार क्वबरों में से निकलना है ॥ जिसने उतारा बीच घर सदा रहने के दया अपनीसे नहीं लगती हमको बीच उसके मेहनत और नहीं लगती बीच उसके मांदगी ॥ मं० १। सि० २२। सू० ३१। आ० १। ३१॥

समीक्षक—वाह क्या फिलासफ़ी खुदाकी है भेजता है वायुको वह उठाता फिरता है बहुलोंको और खुदा उससे मुद्दांको जिलाता फिरता है यह बात ईश्वर सम्बन्धी कभी नहीं हो सकती क्योंकि ईश्वरका काम निरन्तर एकसा होता रहता है जो घर होंगे वे विना बनावटके नहीं हो सकते और जो बनावटका है वह सदा नहीं रह सकता जिसके शरीर है वह परिश्रमके विना दुखी होता और शरीर वाला रोगी हुए विना कभी नहीं बचता जो एक खीसे समागम करता है वह विना रोगके नहीं बचता तो जो बहुत खियोंसे विषयभोग करता है उसकी क्या ही दुदंशा होती होगी इसलिये मुसलमानोंका रहना बहिश्तमें भी सुखदायक सदा नहीं हो सकता॥ १२९॥

१३० — कसम है कुरान दृढ़की निश्चय तू मेजे हुओं से है। उस पर मार्ग सीधेके उतारा है गालिब दयाबानने।। मं॰ १। सि० २३। सू० ३६। आ० १। २।।

समीक्षक—अब देखिये यह कुरान खुदाका बनाया होता तो वह इसकी सोगन्ध क्यों खाता रे यदि नवी खुदाका मेजा होता तो ( लेपा-लक ) बेटेकी की पर मोहित क्यों होता ? यह कथनमात्र है कि कुरा- नके माननेवाले सीधे मार्ग पर हैं क्योंकि सीया मार्ग बही होता है जिसमें सत्य मानता, सत्य बोजना, सत्य करना पक्ष्यत रहित न्याय धर्मका आचरण करना आदि है और इससे विश्रतिका त्याग करना सो न कुरानमें न मुसलमानोंमें और न इनके जुदामें ऐसा स्वभाव है यदि सब पर प्रबल पैग्रम्बर मुहम्मद साहेब होते तो सबसे अधिक विद्यावान और शुभगुणयुक्त क्यों न होते ? इसलिये जैसी फूंजड़ी अपने बेरोंको खट्टा नहीं बतलाती वैसी यह बात भी है।। १३०।।

१३१ — और फ़्रंका जावेगा बीव सूर्के बस नागहां वह क्रवरों नेंसे मालिक अपनेकी दोंड़ेंगे।। और गबाही देवेंगे पांव उनके साथ उस वस्तुके कमाते थे सिबाय इसके नहीं कि आज्ञा उसकी जब चाहे उत्पन्न करना किसी वस्तुका यह कि कहता वास्ते उनके कि हो जा इस हो जाता है।। मं० १। सि० २३। सू० ३६। आ • ४८। ६१। ७८॥.

समीक्षक—अब सुनिये कटपटांग बातें पग कभी गवाही दे सकते हैं ? खुदाके सित्राय उस समय कौन था जिसको आज्ञा दी शिकसने सुना ? ओर कौन बन गया शियदि न थी तो यह बात क्रिटी और जो थी तो बह बात जो सित्राय खुदाके कुछ चीज नहीं थी और खुदाने सब कुछ बना दिया बह क्रिटी।। १३१॥

१३२—फिराया जावेगा उसके ऊपर पियाला शराब शुद्धका ।। सपैद मज़ा देने वाली वास्ते पीने वालोंके ।। समीप उनके बैठी होंगी नीचे आंख रखने वालियां सुन्दर आंखों बालियां।। मानों कि वे अण्डे हैं छिपाये हुए।। क्या बस हम नहीं मरेंगे।। और अवश्य लुत निश्चय पैगम्बरोंसे था।। जब कि मुक्ति दी हमने उसको और लोगों उसके को सबको।। परन्तु एक बुढ़िया पीछे रहने वालोंमें है।। फिर मारा हमने औरोंको।। मं० ६। सि० २३। सू० ३७। आ० ४३। ४४। ४६। ४७। ४६। १२६।

समीक्षक—क्योंजी यहां तो मुसलमान लोग शराबको बुरा बत-काते हैं परन्तु इनके स्वर्गमें तो निदयांकी निदयां बहती हैं इतना अच्छा है कि यहां तो किसी प्रकार मद्य पीता हुड़ाया परन्तु यहां के बद्दे वहां उनके स्वर्गमें बड़ी ख़राबी है! मारे स्त्रियों के वहां किसीका चित्त स्थिर नहीं रहता होगा! और बड़े २ रोग भी होते होंगे! यदि शरीरबाले होते होंगे तो अवश्य मरेंगे और जो शरीरवाले न होंगे तो भोग विलास ही न कर सकेंगे। किर उनका स्वर्गमें जाना व्यर्थ है॥ यदि लुतको पैगम्बर मानते हो तो जो बाइबलमें लिखा है कि उससे उसकी लड़कियोंने समागम करके दो लड़के पैदा किये इस बातको भी मानते हो वा नहीं र जो मानते हो तो ऐसेको पैगम्बर मानना व्यर्थ है और जो ऐसे और ऐसोंके संगियोंको खुदा मुक्ति देता है तो वह खुदा भी वैसा ही है, क्योंकि बुढ़ियाकी कहानी कहने वाला और पश्चपातसे दूसरोंको मारनेवाला खुदा कभी नहीं हो सकता ऐसा खुदा मुसलमानों ही के घरमें रह सकता है अन्यत्र नहीं ॥ १३२ ॥

६८।६६।७०।७१।७२॥

समीक्षक-यंदि वहां जैसे कि क़रानमें बाग बगीचे नहरें मका-नादि छिले हैं वैसे हैं तो वे न सदासे थे न सदा रह सकते हैं क्यों कि जो संयोगसे पदार्थ होता है वर संयोगके पूर्व न था अवस्य भावी वियोगके अन्तमें न रहेगा, जब वह बहिश्त ही न रहेगी तो उसमें रहनेवाले सदा क्योंकर रह सकते हैं ? क्योंकि लिखा है कि गादी निक्ये मेवे और पीनेके पढार्थ बडां मिलेंगे इससे यह सिद्ध होता है कि जिस समय मुसलमानोंका मजहब चला उस समय अर्ब देश विशेष धनाढ्य न था इसलिये मुह्म्मद साहेबने तकिये आदिकी कथा सुनाकर गरीकों को अपने मतमें फँसा छिया और जहां स्त्रियां हैं वहां निरन्तर सख कहां ? ये स्त्रियां वहां करांसे आई हैं ? अथवा बहिश्तकी रहने बाली हैं यदि आई हैं तो जावेंगी और जो व कि रहने वाली हैं तो क्क्यामतके पूर्व क्या करती थीं क्या निकम्मी अपनी उमरको बहा रही थीं १ अंब देखिये खुदाका तेज कि जिसका हक्म अन्य सब फ़रिश्तोंने माना और आदम साहेबको नमस्कार किया और शैतानने न माना खुदाने रीतानसे पूछा कहा कि मैंने उसकी अपने दोनों हाथोंसे बनाया त्तु अभिमान मत कर इससे सिद्ध होता है कि कुरानका ख़दा दो हाथ वास्त्र मनुष्य था इसलिये वह व्यापक वा सर्वशक्तिमान कभी नहीं हो सकता और रैतानने सत्य कहा कि मैं आदमसे उत्तम हूं इसपर खुदाने गुम्सा क्यों किया १ क्या आसमान ही में खुदाका घर है १ पृथिवीमें नहीं ? तो क वेको खुदाका घर प्रथम पयों लिखा ? भला परमेश्वर **अपनेमेंसे वा सृ**ष्टिमेंसे अलग कैसे निकाल सकता है ? और वह सृष्टि सब परमेश्वरकी है इससे विदित हुआ कि कुरानका खुदा बहिश्तका जिल्लेदार था खुदाने उसको छानत धिकार दिया और केंद्र कर छिया और शैतानने कहा कि है मालिक ! मुम्म हो क्रयामत तक छोड़ है खुदाने खुशामदसे क्रायमतके दिन तक छोड़ दिया जब शैतान छटा सो स्तुदासे कहता है कि अब में खुब बहकाऊ गा और गदर मचाऊ मा

तब खुदाने कहा कि जितनेको तूं बहकावेगा में उनको दोजखों डाल दूंगा और तुम्मको भी। अब सज्जन लोगो! विचारिये कि शैतानको बहकानेवाला खुदा है वा आपसे वह बहका ? यदि खुदाने बहकाया तो बह शैतानका शैतान ठहरा यदि शैतान स्वयं बहका तो अन्य जीव भी स्वयं बहकेंगे शैतानकी जरूरत नहीं और जिससे इस शैतान बाग़ीको खुदाने खुला छोड़ दिया इससे विदिन हुआ कि वह भी शैतानका शरीक अर्थम करानेमें हुआ यदि स्वयं चोरी कराके दण्डदेवे तो उसके अन्यायका कुछ भी पारावार नहीं ॥ १३३॥

१३४—अहाह क्षमा करता है पाप सारे निश्चय वह है क्षमा करनेवाला दयाला।। और पृथिबी सारी मूठीमें है उसकी दिन क्रयाम-तके और आसमान लपेटे हुए हैं बीच दहिने हाथ उसके के।। और चमक जावेगी पृथिबी साथ प्रकाश मालिक अपनेके और रक्खे जावेंगे कर्मपत्र और लावेगा पेगम्बरोंको और ग्रवाहोंको और फैसल किया जावेगा।। मंठ है। सिठ २४। सूठ ३६। आठ ६४। ६८। ७७॥

समिक्षक—यदि समप्र पापों को खुदा क्षमा करता है तो जानो सब संसारको पापी बनाता है और दयाहीन है क्योंकि एक दुष्ट पर दया और क्षमा करनेसे वह अधिक दुष्टता करेगा और अन्य बहुत धर्मात्मा-धोंको दुःख पहुंचावेगा यदि कि च्चित् भी अपराध क्षमा क्षिया जावे तो अपराध ही अपराध जगतमें छा जावे। क्या परमेश्वर अनिवत् प्रकाशवाला है ? और क्मंपत्र कहां जमा रहते हैं ? और कौन लिखता है ? यदि पैग्नवरों और गवाहोंके भरोसे खुदा न्याय करता है तो वह असर्वज्ञ और असम्ध है, यदि वह अन्याय नहीं करता न्याय ही करता है तो कमोंके अनुसार करता होगा वे कम्म पूर्वापर वर्त्तमान जन्मोंके हो सकते हैं तो फिर क्षमा करना, दिखें पर ताला लगाना और शिक्षा न करना, शैतानसे बहकवाना, दौरासुपुर्द रखना केवल अन्याय है।। १३४॥

१३६-- उतारना किताबका अक्षाह गालिक जाननेवालेकी ओरसे

है॥ क्षमाकरवेवाला पापोंकायोर स्वीकार करनेवाला तोवाःका॥ मं०६। सि•२ं४। सु०४०। आर०१।२।।

समीक्षक—यह बात इसिलय है कि भी है लोग अलाहके नामसे इस पुस्तकको मान लेवें कि निसमें थो इासा सत्य छोड़ असत्य भरा है और वह सत्य भी असत्यके साथ मिलकर बिगड़ासा है इसिल्यें कुरान और कुरानका खुड़ा और इसिंगे माननेवाले पाप बढ़ानेहारे और पाप करने कराने वाले हैं।। क्योंकि पापका क्षमा करना अत्यन्त अवर्म है किन्तु इसीसे मुसलमान लोग पाप और उपद्रव करनेमें कम दरते हैं।। १३४।।

१३६ — बस नियत किया उसको सात आसमान बीच दो दिनके स्नौर डाल दिया हमने बीच उसके काम उसका ॥ यहां तक कि जब जावेंगे उसके पास साक्षी देंगे उपर उनके कान उनके और स्नौलं उनकी और चमड़े उनके उनके कमसे ॥ और कहेंगे वास्ते चमड़े स्नपनेके क्यों साक्षी दी तुमने उपर हमारे कहेंगे कि बुलाया है हमको स्नाहने जिसने बुलाया हर वस्तुको ॥ अवश्य जिलानेवाला है मुद्दोंको ॥ मं० है। सि० २४। सू० ४१। आ० १२। २०। २१। ३६॥

समीक्षक—वाहजी वाह मुसलमानी ! तुम्हारा खुदा जिसको तुम संवशिकमान मानते हो तो वह सात आसमानोंको दो दिनमें बना सका ? वस्तुतः जो सर्वशिक्तमान है वह क्षणमात्रमें सबको बना सकता है । भला कान, आंख और चमड़ेको ईश्वरने जड़ बनाया है वे साक्षी कैसे दे सकेंगे ? यदि साक्षी दिलावें तो उसने प्रथम जड़ क्यों बनाये ? कोर व्यपना पूर्वापर नियमविरुद्ध क्यों किया ? एक इससे भी बढ़कर मिथ्या बात यह है कि जब जीवों पर साक्षी दी तबसे जीव अपने २ बमड़ेसे पूछने लगे कि तूने हमारे पर साक्षी क्यों दी चमड़ा बोलेगा कि खुदाने दिलाई में क्या करू भला यह बात कभी हो सकती है ? जैसे कोई कहे कि बन्ध्या है तो उसके पुत्रका मुख मेंने देखा यदि पुत्र है तो बन्ध्या क्यों ? जो बन्ध्या है तो उसके पुत्र ही होना असम्भव है इसी प्रकानकर्यों ? जो बन्ध्या है तो उसके पुत्र ही होना असमभव है इसी प्रकान

रकी यह भी मिथ्या बात है। बिद वह मुद्दोंको जिलाता है तो प्रथम मारा ही क्यों १ क्या आप भी मुद्दी हो सकता है वा नहीं यदि नहीं हो सकता तो मुद्देंपनको बुरा क्यों समम्मता है १ और क्यामतकी रात तक मृतक जीव किस मुसलमानके घरमें रहेंगे १ और खुदाने विना अपराध क्यों दौरासुपुद रकला ! शीघ न्याय क्यों न किया १ ऐसी २ बार्तोसे ईश्वरतामें बट्टा लगता है ॥ १३६ ॥

१३७—वास्ते उसके कूं जियां हैं आसमानोंकी और पृथिवीको खोलता है भोजन जिसके वास्ते चाहता है और तक्क करता है ॥ उत्पन्न करता है जो कुछ चाहता है और देता है जिसको चाहे वेटियां और देता है जिसको चाहे वेटे ॥ वा मिल्रा देता है उनको बेटे और वेटियां और करदेता है जिसको चाहे वांमा ॥ और नहीं है शक्ति किसी आदमीको कि वात करें उसते अल्लाह परन्तु जी में डालने कर वा पीछे परदे \* के सेवा भेजे फारिश्ते पैगाम लानेवाला ॥ मं ६। सि॰ २५। सू० ४२। आ० १०। ४७। ४८। ४६।। ८ समीक्षक—खुदाके पास कुंजियोंका भण्डार भरा होगा। क्योंकि

 समाक्षक—खुदाक पास क्यानयाका भण्डार भरा हागा। क्याकि सब ठिकानेके ताले खोलने होते होंगे! यह लड़कपनकी बात है क्या जिसको चाहता है उसको विना पुण्य कर्मके ऐश्वर्थ्य देता है १ आर

<sup>\*</sup> इस जायतके भाष्य "तफ़तीरहुसैनी" में लिखा है कि मुहम्मद् साहेब दो परदोंमें थे और खुराकी आवाज सुनी। एक परदा ज़रीका या दूसरा श्वेत मोतियोंका और दोनों परदोंके बीचमें सत्तर वर्ष चलने योग्य मार्ग था ? बुद्धिमान् लोग इस बातको निचारें कि यह खुदा है वा परदेकी ओट बात करनेवाली की ? इन लोगोंने तो ईश्वर ही की दुईशा कर डाली। कहां वेद तथा उपनिषदादि सद्मंथोंमें प्रतिपादित गुद्ध परमात्मा और कहां कुरानोक्त परदेकी ओट बात करनेवाला खुदा। सच ो यह है कि अरबके अधिद्वान लोग थे उत्तम बात लाते किसके घरसे।।

सङ्ग करता है ? यदि ऐसा है तो वह बड़ा अन्यायकारी है। अब देखिये कुरान बनानेवालेकी चतुराई कि जिससे स्त्रीजन भी मोहित होके फैंसे यदि जो कुछ चाहता है उत्पन्न करता है तो दूसरे खुदाको भी स्त्यन कर सकता है वा नहीं । यदि नहीं कर सकता तो सर्वशः किमत्ता यहां पर अटक गई, भला मनुष्योंको तो जिसको चाहे बेटे बेटियां खुदा देता है परन्तु मुरगे, मच्छी, सूअर आदि जिनके बहुत बेटा बेटियां होती हैं कौन देता है ? और खी उरुप के समागम विना क्यों नहीं देता ? किसीको अपनी इच्छासे बांम रखक दुःख क्यों देता है ? वाह पया खुदा तेजस्वी ह कि उसके सत्मने कोई बात ही नहीं कर सकता १ परन्तु उसने पहिले कहा है कि परदा डालके बात कर सकता है वा फरिश्ते छोग खुरासे बात करते हैं अथवा पैग्रम्बर, जो ऐसी बात है तो फ़रिश्ते और पैग्रम्बर खूब अपना मतलब करते होंगे ! यदि कोई कहे खुद्। सर्वज्ञ सर्वन्यापक ह तो परदेसे बात करना अथवा डाकके तुल्य खबर मङ्गाके जानना लिखना व्यर्थ है और जो ऐसा है तो वह खुदा ही नहीं किन्तु कोई चालाक मनुष्य होगा इसलिये यह क्करान ईश्वरकृत कभी नहीं हो सकता ॥ १३७॥

१३८—और जब आया ईसा साथ प्रमाण प्रत्यक्षके मं० ६ ।सि० २५ । सु० ४३ । आ • ६२ ॥

समीक्षक—यदि ईसा भी भेजा हुआ खुराका है तो उसके उपदे-शासे विरुद्ध कुरान खुराने को बनाया १ और कुरानसे विरुद्ध अंजीठ है इसलिये ये किताबें ईरवरकृत नहीं हैं॥ १३८॥।

१३६ —पकड़ो उसको बस घतीटो उसका बीचों वीच दोज बके॥ इसी प्रकार रहेंगे और ब्याह देंगे उनको साथ गोरियों अच्छी आंख बाळियोंके॥ भं० ६। सि० २४। सू० ४४। आ० ४४। ४१॥

समीक्षक—बाह क्या खुद्दा न्यायकारी होकर प्राणियों को प्रकृहाता भौर घती खात है १ जब मुसलमानों का खुदा ही ऐसा है तो क्यों इपासक मुसलमान अनाथ निवंत्रों को पकड़ें घसीटें तो इसने क्या आश्चर्य है ? और वह संस्थारी मनुष्योंके समान विवाह भी कराता है जानो कि मुसलमानोंका पुरोहित ही है ॥१३२॥

१४०—बस जब तुम मिलो उन लोगांस कि काफिर हुए बस मारो गर्दन उनकी यहांतक कि जब चूर कर दो उनको बस दृढ़ करो केंद्र करना और बहुत बस्तियां हैं कि वे बहुत किन्न भी शिक्तमं बस्ती तेरीसे जिससे निकाल दिया तुम्को मारा हमने उसको बस न कोई हुआ सहाय देनेवाला उनका ॥ तारीफ़ उस बहिश्तकी कि प्रतिज्ञा किये गये हैं परहेज़गार बीच उसके नहरें हैं विन बिगाई पानिकी और नहरें हैं दूधकी कि नहीं बदला मज़ा उनका और नहरें हैं शराबकी मज़ा देनेवाली वास्ते पीनेवालों के और शहद साफ कि ये गये कि और वास्ते उनके बीच उसके मैवे हैं प्रत्येक प्रकारसे दान मालिक उनकेसे॥ मं० ६। सि० २६। सू० ४७। आ॰ ४। १३। १४॥

समीक्षक—इसीसे यह कुरान खुदा और मुसलमान ग्रहः मचाने, सबको दुःख देने और अपना मतलब साधनेवाले द्या हीन हैं जैता यहां लिखा है वैसा ही दूसरा कोई दूसरे मत बाला मुसलमानों पर करे तो मुसलमानों को वैसा ही दुःख जैता कि अन्यको देते हैं, हो वा नहीं १ और खुदा बड़ा पक्षगती है कि जिन्होंने मुद्दमद साहेवको निकाल दिया उनको खुदाने मारा, भला जिसमें ग्रुद्ध पानी, दूध मद्य और शह दकी नहरें हैं वह संसारसे अधिक हो सकता है १ और दूधकी नहरें कभी हो सकती हैं क्योंकि वह थोड़े समयमें बिगड़ जाता है इसीलिये घुद्धिमान लोग कुरानके मतको नहीं मानते॥ १४०॥

१४१—जब कि हिलाई जावेगी पृथिवी हिलाये जाने कर ॥ और इड़ाए जावेंगे पहाड़ उड़ाये जाने कर ॥ इस हो जावेंगे भुनगे टुकड़े २ ॥ बस साहब दाहनी ओर वाले क्या हैं साहब दाहनी ओरके ॥ और बाई ओर वाले क्या हैं बाई ओरके ॥ ऊपर पलक्क सोने के सारोंसे चुने हुए हैं ॥ तिकये किये हुए हैं ऊपर उनके आमने सामने ॥ और फिरंगे ऊपर उनके छड़के सदा रहनेवाले ॥ साथ आबखोरोंके

और अक्षताबोंके ॥ और प्यालोंके शराब साफसे ॥ नहीं माथा दुखाये जावेंगे उससे और न विरुद्ध बोलेंगे॥ और मेरे उस किस्मसे कि पसन्द करें ॥ और गोश्त जानवर पश्चियोंके उस किल्मसे कि पसन्द करें ॥ और वास्ते उनके खोरते हैं अच्छी आंखोंबाछी ॥ मानिन्द मोतियों छिपाये हुओं भी और बिछीने बड़े ॥ निश्चय हमते उत्पन्न किया है औरतोंको एक प्रकारका उत्पन्न करना है।। बस किया है हमने **उनको कुमारी ॥ सुहागवालियां बराबर अवस्था वालियां यस भरने-**बाले हो उससे पेटोंको । बस कसम खाता हूं मैं साथ गिरने नारोंके ।। मं० ७ । सि० २७ । सू० ५६ । आ ० ४ । ६ । ६ । ६ । १४ । १६।१७।१८।२०।२१।२२।२३।२४।३४। ३६। ३७।३८। 4819411

समीक्षक-अब देखिये कुरान बनानेवालेकी लीलाको भला पृथिवी तो हिलती ही रहती है उस समय भी हिलती रहेगी इससे यह सिद्ध होता है कि करान बनाने वाला पृथिवीको स्थिर जानता था। भला पहाडोंको क्या पक्षीवत उडा देगा ? यदि भुनुगे होजावेंगे तो भी सृक्ष्म शरीरधारी रहेंगे तो फिर उनका दूसरा जन्म क्यों नहीं ? वाहजी जो खुदा शरीरधारी न होता तो उसके दाहिनी ओर और बाई ओर कैसे खड़े हो सकते ? जब वहां पलक्क सोनेके तारोंसे बुने हुए हैं तो बर्ट्ड सुनार भी वहां रहते होंगे और खटमछ काटते होंगे जो उनकी रात्रिमें सोने भी नहीं देते होंगे क्या वे तिकये लगाकर निकम्मे बहि-श्तमें बैठे ही रहते हैं ? वा कुछ काम किया करते हैं यदि बैठे ही रहते होंगे तो उनको अन्न पचन न होनेसे वे रोगी होकर शीव मर भी जाते होंगे ? और जो काम किया करते होंगे तो जैसे मिहनत मज़दूरी यहां करते हैं वैसे ही वहां परिश्रम करके निर्वाह करते होंगे फिर बहांसे वहां बहिश्तमें विशेष क्या है ? कुछ भी नहीं, यदि वहां लड़के सदा रहते हैं तो उनके मा बाप भी रहते होंगे और सासू श्वसुर भी रहते होंगे तब तो बड़ा भारी शहर बसता होगा फिर मलमूत्रासिके

बढ़नेसे रोग भी बहुतसे होते होंगे क्यों कि जब मेवे खावेंगे गिछासों में पानी पीनेंगे और प्यालोंते मद्य पीनेंगे न उनका शिर द्वेगा और न कोई विरुद्ध बोलेगा यथेष्ट मेवा खावेंगे और जानवरों तथा पिस-योंके मांस भी खार्वेगे तो अनेक प्रकारके दुःख, पश्ची, जानवर वहां होंगे हत्या होगी और हाड जहां तहां बिखरे रहेंगे और कसाइयोंकी दकाने भी होंगी। वाह क्या कहना इनके बहिश्तकी प्रशंसा कि वह अरबदेशसे भी बटकर दीखती है ॥। और जो मद्य मांस पी खाके <del>एन्मत होते हैं इसलिये अच्</del>छी २ स्त्रियां और लौंडे भी व**हां अवश्य** रहने चाहियें नहीं तो ऐसं नशेब जोंके शिरमें गरमी चढके प्रमत्त होजावें। अवश्य बहुत स्त्री पुरुषोंक बैठने सोनेके लिये बिछौने बड़े २ चाहिये जब खुदा कुमारियोंको बहिश्तमें उत्पन्न करता है तभी तो कुमारे छड़कोंकों भी उत्पन्न करता है भला कुमारियोंका तो विवाह जो यहां से उम्मेदवार होकर गये हैं उनके साथ खुदाने लिखा पर उन सदा रहनेवाले लड़ होंका भी किन्हीं कुमारियोंके साथ विवाह न लिखा तो क्या वे भी उन्हीं उम्मेदवारोंके साथ कुमारिवत् दे दिये जायेंगे ? इसकी व्यवस्था कुछ न िख्सी यह खुद्दामें बड़ी भूल 🖷 ों हुई 🖁 यदि बराबर अवस्था वाली सुदागिन सियां पतियोंको पाके बिश्तमें रहती हैं तो ठीक नहीं हुआ क्योंकि स्त्रियोंसे पुरुषका आयु दूना ढ़ाईगुना चािये यह तो मुसलमानोंके बहिश्तकी कथा है। और नरकवाले सिंदोड अर्थात् थोरके वृक्षों को खाके पेट भरेंगे तो कण्टक वृक्ष भी दोज़ खमें होंगे तो कांटे भी छगते होंगे और गर्म पानी पियेंगे इत्यादि दुःख दोज्ञुखमें पावेंगे कुलमका खाना प्रायः भूठोंका काम है सच्चोंका नहीं यदि खुदा ही क्रसम खाता है तो वह भी भूठसे अलग नहीं हो सकता ॥ १४१ ॥

१४२ — निश्चय अलाह मित्र रखता है उन लोगोंको कि लड़ते हैं भीच मांग उसके के ।। मं० ७। सि० २८। सू० ५६। आ० ४॥ समीक्षक — बाह ठीक है ऐसी २ वालोंका उपदेश करके विचारे

## समुल्लास] मुहम्मद साहेबकी कामातुरता । ७७७

व्यरव देशवासियोंको सबसे लड़ाके शहु बनाकर परस्पर दुःख दिलाया भौर मज़दबका मंतडा खड़ा करके लड़ाई फैलावे ऐसेको कोई बुद्धिमान् ईश्वर कभी नहीं मान सकते जो जातिमें विरोध बढ़ावे व**ही सबको** दुःखदाता होता है।। १४२।।

१४३—ए नबी क्यों हराम करता है उस वस्तुको कि हरू छ किया है खुदाने तेरे लिये चाहता है तु प्रसन्नता बीबियों अपनीकी और अलाह क्षमा करनेवाला दयालु है।। जल्दी है मालिक उसका जो वह तुमको छोड़ दे तो, यह कि उसको तुमसे अच्छी मुसलमान और ईमान वालियां विवीयां बदल दे सेवा करने वालियां तोवाः करने वालियां भक्ति करने वालियां रोज़ा रखनेवालियां पुरुष देखी हुई और विन देखी हुई।। मं० ७ सि॰ २८। सू० ३६। आ० १। ६॥

समीक्षक - ध्यान देकर देखना चाहिये कि बदा वया हआ महम्मद साहेबके घरका भीतरी और बाहरी प्रबन्ध करनेवाला भत्य ठहरा ॥ प्रथम आयत पर दो कहानियां हैं एक तो यह कि मुस्म्मद साहेबको शहदका शर्बत प्रिय था। उनकी कई बीबियां थीं उनमेंसे एकके घर पीनेमें देर छगी तो दूसरियोंको असह प्रतीत हुआ उनके कहने सुननेके पीछे मुद्रमाद साहेब सौग्रन्द खा गये कि हम न पीरंगे। दसरी यह कि उनकी कई बीबियोंमेंसे एककी बारी थी उसके यहां रात्रिको गये तो वह न थी अपने बापके यहां गई थी। मुहम्मद साहे-बने एक छौंडी अर्थात् दासीको बुलकर पवित्र किया। जब बीबीको इस की खबर मिछी तो अपसन्त होगई तब मुस्मद सहेबने सीगन्द स्ताई कि मैं ऐसान करूंगा। और बीबीते भी कह दिया कि तुम किसीसे यह बात मत कहना बीबीने स्वीकार किया कि न कहंगी। फिर उन्होंने दूसरी बीबीसे जा कहा। इस पर यह आयत अद्भान खतारी जिस वस्तुको हमने तेरे पर हळाळ किया उसको तू हराम क्रों करता है १ बुद्धिमान् छोग विवारें कि भला कहीं चुदा भी किसीके षरका निमटेरा करता फिरता है ? और मुहम्मद साहेबके तो आच- रण इन बातोंसे प्रगट ही हैं क्योंकि जो अनेक स्त्रियोंको रक्खे वह ईश्वरका भक्त वा पैग्रम्बर कैसे हो सके र बौर जो एक स्त्रीका पक्षपातसे अपमान करे और दूसरीका मान्य करे वह पक्षपाती होकर अधर्मी क्यों नहीं और जो बहुतसी स्त्रियोंसे भी सन्तुष्ट न होकर बादियोंके साथ फँसे उसको छजा। भय और धर्म कहांसे रहे ? किसीने कहा है कि:—

## कामातुराणां न भयं न लजा।

जो कामी मनुष्य हैं उनको अधर्मसे भय वा लज्जा नहीं होती और इनका खुरा भी मुहम्मद साहेबकी स्त्रियों और पैग्रम्बरके मग्र-हेका फैसला करनेमें मानी सरपंच बना है अब बुद्धिमान लोग विचा-रहें कि यह क़रान विद्वान वा ईश्वरकृत है वा किसी अविद्वान मतलब-सिन्धका बनाया ? स्पष्ट विदित हो जायगा और दूसरी आयतसे प्रतीत होता है कि महम्मद साहेबसे उसकी कोई बोबी अप्रसन्न होगई होगी उस पर ख़ुदाने यह आयत उतार कर उसको धमकाया होगा कि यदि त गडबड़ करेगी और मुहम्मद साहेब तुभे छोड़ देंगे तो उनको उनका खुदा तुमासे अच्छी बीबिया देगा कि जो परुषसे न मिळी हों। जिस मनुष्यको तनिकसी बुद्धि है वह वि्चार छे सकता है कि ये खुरा बुदाके काम हैं वा अपने प्रयोजन सिद्धिके, ऐसी २ बातोंसे ठीक सिद्ध है कि खुरा कोई नहीं करता था, केवल देशकाल देखकर अपने प्रयोजनके सिद्ध होनेके छिये खुः की तर्फसे मुहम्मद साहेब कह देते थे। जो लोग खुदा ही की तर्फ लगाते हैं उनको हम क्या सब बुद्धिमान् यही कहेंगे कि खुदा क्या ठहरा मानो मुहम्मद साहेबके लिये बीवियां लानेवाला नाई ठहरा ॥ १४३ ॥

१४४—हे नवी मागड़ा कर काफ़िरों और गुप्त शत्वओंसे और सकती कर ऊपर उनके।। मं० ७। सि० २८। सू० ६६। आ० १॥ े समीक्षक—देखिये मुसलमानोंके खुदाकी लीला अन्य मत वालोंसे

छड़नेके लिये पैग्रम्बर और मुसलमानोंको उचकाता है इसलिये मुस-छमान लोग उपद्रव करनेमें प्रवृत्त रहते हैं परमात्मा मुसलमानों पर छपाहिष्ट करे जिससे ये लोग उपद्रव करना छोड़के सबसे मित्रतासें वर्ते ॥ १४४ ॥

१४४—फट जावेगा आसमान बस वह उस दिन सुस्त होगा। । जोर फ़रिश्ते होंगे ऊपर किनारों उसके के और उठावेंगे तख्त मालिक तेरेका ऊपर अपने उस दिन आठ जन।। उस दिन सामने लाये जाओगे तुम न लिपी रहेगी कोई बात लिपी हुई। बस जो कोई दिया गया कमपत्र अपना बीच दाहिने हाथ अपनेके बस कहेगा लो पढ़ों कमपत्र मेरा।। और जो कोई दिया गया कमपत्र बीच वार्ये हाथ अपनेके बस कहेगा हाय न दिया गया होता में कमपत्र अपना।। मंद ७। सि० २६। सू० हहा अ० १६। १७। १८। १८। १८। १८।

समीश्रक—चाह क्या फिलासफ़ी और न्यायकी बात है भला खाकाश भी कभी फट सकता है? क्या वह वक्षके समान है जो फट जावे ? यदि उत्परके लोकको आसमान कहते हैं तो यह बात विद्यास विरुद्ध है।। अब कुरानका खुदा शरीरधारी होनेमें कुछ संदिग्ध न रहा क्योंकि तख्त पर वैठना आठ कहारोंसे उठवाना विना मूर्त्तिमान्के कुछ भी नहीं हो सकता है जो सामने वा पीछे भी आना जाना मूर्तिमान् ही का हो सकता है जब वह मूर्तिमान् है तो एकदेशी होनेसे सर्वझ, संव्यापक, सर्वशक्तिमान नहीं हो सकता और सब जीवेंके सब कमोंको कभी नहीं जान सकता, यह बड़े आश्चर्यकी बत्त है कि पुण्यात्माओंके दादने हाथमें पत्र देना, बचवाना, बहिश्तमें मेजना और पापात्माओंके दादने हाथमें कमंपत्रका देना नरकमें मेजना कमेपत्र बांचके न्याय करना भला यह व्यवहार सर्वज्ञका हो सकता है! कदापि नहीं यह सब लीला लड़कपनकी है।। १४१।।

ै १४६—चढ़ते हैं फ़रिश्ते और रूह तर्फ उसकी वह अज़ाब होगा क्षेत्र उस दिनके कि है परिमाण उसका पद्मास हज़ार वर्ष ॥ जब कि निकर्लेंगे क्वबरोंमेंसे दौड़ने हुए मानो कि वह बुर्तोंके स्थानोंकी ओर दौड़ते हैं ॥ मं• ७॥ सि० २६ । सु० ७•। आ० ४। ४२॥

समीक्षक — यदि पचास हज़ार वर्ष दिनका परिमाण है तो पचास हज़ार वर्षकी रात्रि क्यों नहीं ? यदि उतनी बड़ी रात्रि नहीं है तो उतना बड़ा दिन कभी नहीं हो सकता क्या पचास हज़ार वर्षों तक खुदा फ़रिश्ते और कम्बन्नाले खड़े वा बैठे अथवा जागते ही रहेंगे यदि ऐसा है तो सब रोगी हो कर पुनः मर ही जायेंगे !! क्या क्रव-रोंस निकल कर खुदाकी कचहरीकी ओर दोंड़ेंगे ? उनके पास सम्मन क्रवरोंमें क्योंकर पहुंचेगे ? और उन विचारोंको जो कि पुण्यात्मा वा पापात्मा है इनने समय तक सभीको क्रवरोंमें दोरेसुपुदं केद क्यों रक्वा ? और आजकल खुदाको कचहरी बन्द होगी और खुदा तथा फ़रिश्ते निकम्मे बैठे होंगे ? अथवा क्या काम करते होंगे ? अपने २ स्थानोंमें वैठे इधर उधर धूमते, सोते, नाच तमाशा देखते वा ऐश आराम करते होंगे ऐसा अधर किसीके राज्यमें न होगा ऐसी २ बातोंको सिवाय जङ्गिल्योंके दूसरा कीन मानेगा !! १४६ !!

१४७—निश्चय उत्पन्न किया तुमको कई प्रकारसे ।। क्या नहीं देखा तुमने कैसे उत्पन्न किया अझाहने सात आसमानोंको ऊपर तहे॥ और किया चांदको बीच उसके प्रकाशक और किया सूर्यको दीपक ।। मं० ७। सि० २६। सू**०** ७१। आ० १४। १६। १६।।

समीक्षक—यदि जीवोंको खुदाने उत्पन्न किया है तो वे नित्य समर कभी नहीं रह सकते है फिर बहिश्तमें सदा क्योंकर रह सकेंगे जो उत्पन्न होता है वह वस्तु अवश्य नष्ट हो जाना है। आसमानको ऊपर तले केंसे बना सकता है है क्योंकि वह निराकार और विभु पदार्थ है, यदि दूसरी चीजका नाम आकाश रखते हो नो भी उसका आकाश नाम रखता वर्यथ है यदि उत्पर तले आसमानोंको बनाया है तो उन सबके बीचमें चांद सूर्य्य कभी नहीं रह सकते जो बीचमें रक्खा जाय तो एक उत्तर और एक नीचेका पदार्थ प्रकाशित है दूस-

## समुद्धास] कुरानसे विरुद्ध आचरण। ७८१

रैसे लेकर सबमें अन्धकार रहना चाहिये ऐसा नहीं दीखता इसिंखें यह बात सर्वथा मिथ्या है।। १४७॥

१४८—यह कि मसजिंदे वास्ते अल्लाहके है बस मत पुकारो साथ अल्लाहके किसीको मं० ७। सि०२६। सू० ७२। आ०१८।।

समीक्षक —यदि यद बात सत्य है तो मुसलमान लोग "लाइलाइ इिल्लाः महम्मद्रंसुल्लाः" इस कलमेमें खुदाके साथी मुहम्मद साहेबको क्यों पुकारते हैं ? यह बात कुरानसे विरुद्ध है और जो विरुद्ध नहीं करते तो इस कुरानकी बातको मून्ठ करते हैं। जब मसर्जिंद खुदाके घर हैं तो मुसलमान महागुत्परस्त हुए क्योंकि जैसे पुरानी, जैनी छोटीसी मूर्तिको ईश्वरका घर माननेसे चुत्परस्त ठहरते हैं तो ये लोग क्यों नहीं है।। १४८।।

१४६—इकट्ठा किया जावेगा सूर्य्य और चांद्।। मं० ७। सि० २६। सु० ७४। आ० ६।।

समीक्षक—भला सूर्य चाद कभी इकट्ठे हो सकते हैं ? देखिये यह कितनी बेसमम्म हो बात है और सूर्य चन्द्र ही के इकट्ठे करनेमें क्या प्रयोजन था अन्य सब लोकोंको इकट्ठे न करनेमें क्या युक्ति है ऐसी २ असम्भव बातें परमेश्वरकृत कभी हो सकती हैं ! विना अविद्वानोंके अन्य किसी विद्वानकी भी नहीं होतीं।। १४९।।

१५० — और फिरेंगे ऊपर उनके छड़के सदा रहनेवाछे जब देखेगा तू उनको अनुमान करेगा तू उनको मोती विखरे हुए॥ और पहनाये जावेंगे कङ्कन चांदीके और पिछावेगा उनको रब उनको शराब पवित्र॥ मं० ७। सि० २६। सू० ७६। आ० १६। २१॥

समीक्षक—क्यों जी मोतीके वर्ण से छड़के किसि छिये वहां रहते जाते हैं १ क्या जवान छोग सेवा वा सीजन उनको तुम नहीं कर सकतीं। क्या आधर्य है कि जो यह महा बुरा कम छड़कोंके साथ सुष्टजन करते हैं उसका मूल यही छुरानका वचन हो। और बहिश्तमें स्वामी सेवकभाव दोनेसे स्वामीको अनन्द और सेवकको परिश्रम दोनेसे दुःख तथा पश्चपात क्यों है १ और जब खुदा ही मद्य पिछावेगा तो कह भी उनका सेवकवत् ठहरेगा फिर खुदाकी बड़ाई क्योंकर रह सकेगी १ ओर वहां बहिश्तमें खी पुरुषका समागम और गंभस्थित और उड़केवाले भी होते हैं वा नहीं १ यदि नहीं होते तो उनका विषय-सेवन करना व्यथं हुआ और जो होते हैं तो वे जीव कहांसे आये १ और विना खुदाकी सेवाके बहिश्तमें क्यों जन्मे १ यदि जन्मे तो उनको विना ईमान लाने और खुदाकी भक्ति करनेसे बहिश्त मुक्त मिल गया किन्हीं विचारों को ईमान लाने और किन्हीं को विना धर्मके सुख मिल जाय इससे दूसरा बड़ा अन्याय कौनसा होगा १॥ १५०॥

१५१—बद्दल दिये जावेंगे कर्मानुसार ॥ और प्याले हैं भरे हुए ॥ जिस दिन खड़े होंगे रूह और फ़रिश्ते सफ बांधकर ॥ मं∙ ७ । सि∙

३० सू॰ ७८ आ० २६। ३४। ३८॥

समिश्रक—यदि कर्मानुसार फल दिया जाता तो सदा बहिश्तमें रहनेवाले हुरें फ्रिरिश्त और मोतीके सदश बड़कोंको कौन कर्मके अनु-सार सदाके लिये विहिश्त मिला १ जब प्याले भर २ शराव पियेंगे तो मस्त होकर क्यों न लड़ेंगे १ रूह नाम यहां एक फ्रिरिश्तेका है जो सब फ्रिरिश्तोंसे बड़ा है क्या खुइ। रूह तथा अन्य फ्रिरिश्तोंको पंक्तिबद्ध खड़े करके पलटन बांधेगा १ क्या पलटनसे सब जीवोंको सज़ा दिलावेगा १ खीर खुदा उस समय खड़ा होगा वा बैठा १ यदि क्रयामत तक खुदा अपनी सब पलटन एकत्र करके शेतानको पकड़ ले तो उसका राज्य निक्कंटक हो जाय इसका नाम खुदाई है ॥ १४१॥

१५२ — जब कि सूर्य लगेटा जावे ।। और जब कि तारे गदले हो जावें ।। और जब कि पहाड़ चं अये जावें ।। और जब आसमानकी खाल उतारी जावे ॥ मं• ७। सि० ३०। सू० ८१। आ• १।२। ३।११॥

समीक्षक—यह बड़ी बैसममत्त्री बात है कि गोछ सूर्यलोक छपेटा भावेगा है और तारे गदले क्योंकर हो सकेंगे है और पहाड़ जड़ होनेसे कैसे चलेंगे ? और आकाशको क्या पशु सममा कि उसकी खाल निकाली जावेगी ? यह बड़ी ही बेसममा और जक्क्ष्णीपनकी बात है।। १४२।।

११३ —और जब कि आसमान फट जावे॥ और जब तारे माड़ जावें॥ और जब दर्श चीरे जावें॥ और जब क्ववरें जिला कर उठाई जायें॥ मं• ७। सि० ३०। सु० ८२। आ• १।२।३।४॥

समीक्षक—वाहजी कुरानके बनानेवाले किलासफर आकाशकों क्योंकर फाड़ सकेगा ? और नारोंको कैसे माड़ सकेगा ? और दर्या क्या लकड़ी है जो चीर डालेगा ? और कबरें क्या मुदें हैं जो जिला सकेगा ? ये सब बातें लड़कोंके सदश हैं ॥ १५३॥

११४—क्रसम है आसमान बुजों वालेकी।। किन्तु वह कुरान है बड़ा बीच लोह महफूज़ (रक्षा) के।। मं ७। सि २०। स्०८१। सा०१।२१॥

समीक्षक—इस कुरानके बनानेवा है ने भूगोळ खगोळ कुछ भी नहीं पढ़ा था नहीं तो आकाशको किछेके समान बुजों वाळा क्यों कहता है यदि मेषादि राशियोंको बुजें कहता है तो अन्य बुजें क्यों नहीं है इस-िंथे ये बुजें नहीं हैं किन्तु सब तारे छोक हैं ॥ क्या वह कुरान खुदाके पास है ? यदि यह कुरान उसका किया है तो वह भी विद्या और युक्तिसे विरुद्ध अविद्यासे अधिक भरा होगा ॥ १५४॥

११६—निश्चय वे मकर करते हैं एक मकर ॥ और मैं भी मकर ं करता हूं एक मकर ॥ मं• ७। सि० ३०। सू• ⊏६ ॥ आ•१६ । १६॥

समीक्षक—मकर कहते हैं ठगपनको क्या खुदा भी ठग है ? और क्या चोरीका जवाब चोरी और भूठका जवाब मूठ है ? क्या कोई चोर भले आदमीके घरमें चोरी करे तो क्या भले आदमीको चाहिये कि उसके घरमें जाके चोरी करे ? बाह ! बाहजी ! ! कुरानके बनाने-धाले।। ११४।। १५६ — और जब आवेगा मालिक तेरा और फ्ररिश्ते पंक्तिः बांधके॥ और लाया जावेगा उस दिन दोज़खको॥ मै० ७। सि● ३०। सु०८६। आ• २१। २२॥

समीक्षक—कहो जी जैसे कोटपाळजी सेनाध्यक्ष अपनी सेनाको हेकर पंक्ति बांध फिरा करे वैसा ही इनका खुरा है ? पया दोजलको षड़ासा सममा है कि जिसको उठाके जहां चाहे वहां लेजावे यदि इतना छोटा है तो असंख्य कैरी उसमें कैसे समा सकेंगे।। १५६॥

१५७—वस कहा था वास्ते उनके पैग्रम्बर खुदाकेने रक्षा करो कटनी खुदाकीको और पानी पिळाना उसकेको।। बस झुठछाया उसको बस पांव काटे उसके बस मरी डाळी ऊपर उनके रव उनकेने ।। मं० ७। सि० ३०। सु० ११। आ० १३। १४।।

समीक्षक—क्या खुदा भी ऊंटनीपर चढ़के सैल किया करता है ? नहीं तो किसलिये रक्खी और विना क्यामतके अपना नियम तोड़ उत्तपर मरी रोग क्यों डाला ? यदि डाला तो उनको दण्ड किया फिर क्यामतकी रातमें न्याय और उस रातका होना मूठ समम्हा जायगा इस ऊंटनीके लेखसे यह अनुमान होता है कि अरब देशमें ऊंट ऊंट-नीके सिवाय दूसरी सवारी कम होती है इससे सिद्ध होता है कि किसी अरबदेशीने कुरान बनाया है।। १४७।।

१६८ — यों जो न रुकेगा अवश्य घसीटेंगे उसको हम साथवाळों माथेके ॥ वह माथा कि मूठा है और अपराधी ॥ हम बुलावेंगे फरिश्ते दोज़लकेको ॥ मं० ७। सि॰ ३०। सू॰ ६६। आ० १६। १६। १८॥

समीक्षक - इस नीच चपरासियों के काम घसीटनेसे भी खुदा न षचा। भला माथा भी कभी मूठा और अपराधी हो सकता है ? सिवाय जीवके भला यह कभी खुदा हो सकता है कि जैसे जेलखाने के दारोगाको बुलवा भेजे ?॥ १४८।॥

१५६ — निश्चय उतारा हमने कुरानको बीच रात कुद्रके ।। और

समुक्तास] कुरानका रातको उतरना। ७८५ क्या जाने तूक्या है रात करर ॥ उतरते हैं फरिश्ते और पवित्रात्मा बीच उसके साथ आज्ञा मालिक अपनेके वास्ते हर कामके ॥ मै० ७। सि॰ ३०। स॰ १०। स॰ १। २। ४॥

समिक्षक—यदि एक ही रातमें कुरान उतारा तो वह आयत अर्थात् इस समयमें उतरी और धीर २ उतारा यह बात सत्य कों कर होस-केगी ? और रात्रि अन्धेरी है इसमें क्या पूछना है, हम लिख आये हैं कपर तीचे कुछ भी नहीं हो सकता और यहां लिखते हैं कि फरिरते और पित्रतामा खुदाके हुकमसे संसारका प्रवन्य करनेके लिये आते हैं इससे स्पष्ट हुआ कि खुदा मनुष्यवत् एकदेशी है। अवतक देखा था कि खुदा, फरिरते और पैयम्बर तीन ही कथा है अब एक पवित्र तमा चौथा निकल पड़ा! अब न जाने यह पौ मा पित्रततमा क्या है? यह तो इसाइयों के मत अर्थात् पिता पुत्र और पित्रतामा तीनके माननेसे चौथा भी बढ़ गया। यदि कही कि हम इन तीनों को खुदा नहीं मानते, ऐसा भी हो परन्तु जब पवित्रातमा प्रथक है तो खुदा फरिरते और पैयम्बरको पवित्रातमा कहना चाहिये वा नहीं ? यदि पवित्रातमा है तो एक ही का नाम पवित्रातमा क्यों ? और घोड़ आदि जानवर रात दिन और छुरान आदिकी खुदा क्रसमें खाता है, क्रसमें खाना भछे छोगोंका काम नहीं । १४६ ।।

यब इस कुरानके विषयको लिखके बुद्धिमानोंके सत्मुख स्थापित करता हूं कि यह पुस्तक कैसा है ? मुम्फसे पूछो तो यह किताब न ईरबर न विद्यानकी बनाई और न विद्यानकी हो सकती है। यह तो बहुत थोड़ासा दोष प्रकट किया इसलिये कि लोग घोखेमें पड़कर अपना जनम ल्यर्थ न गमावें। जो कुळ इसमें थोड़ासा सत्य है वह वेदादि विद्या पुस्तकोंके अनुकूल होनेसे जैसे मुम्फो प्राह्य है वैसे अन्य भी मज़हबके हठ और पक्षपातरहित विद्यानों और बुद्धिमानोंको प्राह्य है इसके विना को कुळ इसमें है वह सब अविद्या अमजाल और मनुष्यके आत्माको प्राप्त है वह सब अविद्या अमजाल और मनुष्यके आत्माको प्राप्त बनाकर शांतिभक्क कराके उपद्रव मचा मनुष्योंमें विद्रोह फैळा

परस्पर दुःखोन्नति करनेवाला विषय है। और पुनरुक्त दोषका तो कुरान जानो भण्डार ही है, परमात्मा सब मनुष्गों पर क्रपा करे कि सबसे सब ग्रीति, परस्पर मेल और एक दूसरेके सुखकी उन्नति कर्ने में प्रवृत्त हों। जैसे में अपना वा दूसरे मतमतान्तरों का दोष पक्षपात-रहित होकर प्रकाशित करता हूं इसी प्रकार यदि सब विद्वान् लोग करें तो क्या कठिनता है कि परस्परका विरोध छूट मेल होकर आनन्दमें एकमत होके सयकी प्राप्ति सिद्ध हो। यह थोड़ासा कुरानके विषयमें लिखा, इसको बुद्धिमान धार्मिक छोग प्रन्थकारके अभिग्रायको समस्त लाभ लेवें। यदि कहीं भ्रमसे अन्यथा लिखा गया हो तो उसको शुद्ध कर लेवें।।

अब एक बात यह शेष है कि बहुतसे मुसलमान ऐसा कहा करते और लिखा वा छपवाया करते हैं कि हमारे मज़ इनकी बात अथवंवेद में लिखी है इसका यह उत्तर है कि अथवंवेद में इस बातका नाम निशान भी नी है।

ेप्रश्न—क्या तुमने सब अर्थश्रवेद देखा है यदि देखा है तो अहोप-निषद् देखो यह साक्षात उसमें लिखी है, फिर क्यों बहते हो कि अर्थब-वेदमें मुसलमानोंका नाम निशान भी नहीं है।।

अथाल्लोऽपनिषदं च्याख्यास्यामः।

अस्माक्लां इक्छे मित्रावरुणा दिव्यानि धत्ते ॥ इक्लक्छेवरुणो राजा पुनद्दुः ॥ ह्या मित्रो इक्लां इक्लक्छे इक्लां वरुणो मित्रस्तेजस्कामः ॥ १ ॥ होतारमिन्द्रो होतारमिन्द्र महासुरिन्द्राः ॥ अक्लो क्येष्ठं श्रेष्ठं परमं पूर्णं ब्रह्माणं अक्लाम् ॥२॥

अक्लोरस्लमहामदरकषरस्य अक्लो अक्लाम्॥३॥ आउक्लाबुक्रमेककम्॥अक्लाबुक निखातकम्॥४॥ अक्लो यज्ञोन हुतहुत्वा ॥ अक्लासूर्य्य चन्द्र सर्व नक्षत्राः ॥ ५ ॥

अक्ला ऋषीणां सर्वदिव्यां इन्द्राय पूर्वं माया परमन्तरिक्षाः ॥ ६ ॥

अक्लः पृथिव्या अन्तरिक्षं विश्वरूपम् ॥ ७ ॥ इक्लाँ कवर इक्लाँ कवर इक्लाँ इक्लक्लेति इक्लक्लाः ॥ ⊏ ॥

् ओम् अव्लाइक्लक्ला अनादिस्वरूपाय अथवेणा-स्यामा हुं हीं जनानपशुनसिद्धान् जलचरान् अहष्टं कुरु कुरु फट् ॥ ६ ॥

असुर संहारिणी हुं हूीं अक्लोरसूल महमदरक-बरस्य अक्लो अक्लाम इक्लक्लेति इक्लक्लाः ॥१०॥

इत्यल्छोपनिषत् समाप्ता ।

जो इसमें प्रत्यक्ष मुहम्मद साहब रसूल लिखा है इससे सिद्ध होता है, कि मुसलमानोंका मत वेदमूलक है।।

उत्तर—यदि तुमने अर्थवंदे न देखा हो तो हमारे पास आओ आदिसे पृतिं तक देखो अथवा जिस किसी अर्थवंदेदीके पास बीस काण्डयुक्त मन्त्रसंहिता अर्थवंदेदको देख छो कहीं तुम्हारे पैग्नम्बर साह-बका नाम वा मतका निशान न देखोगे और जो यह अल्छोपनिषद् है बह न अर्थवंदेदमें न उसके गोपश्रष्ठाद्यण वा किसी शाखामें है यह तो अकबरशाहके समयमें अनुमान है कि किसीने बनाई है इसका बनाने-षाछा कुछ अरबी और उरुछ संस्कृत भी पढ़ा हुआ दीखता है क्योंकि इसमें अरबी और संस्कृतके पद लिखे हुए दीखते हैं देखों (अस्माझां इस्ले भित्रा वरुणा दिञ्यानि धते ) इत्यादिमें जो कि दश अङ्कमें लिखा है जैसे—इसमें (अस्माहां और इल्ले) अरबी और (मित्रा वरुणा दिञ्यानि धत्ते ) यह संस्कृत पद लिखे हैं वैसे ही सर्वत्र देखनेमें आनेसे किसी संस्कृत और अरबीके पढ़े हुए ने बनाई है। यदि इसका अर्थ देखा जाता है तो यह क्रित्रम अयुक्त वेद और ज्याकरण रीतिसे विरुद्ध है जैसी यह उपनिषद् बनाई है, वैसी बहुतसी उपनिषदें मतमनान्तर बाले पक्षपातियोंने बनाली है जैसी कि स्वरोगेपनिषत्, नृसिंहतापनी, रामतापनी, गोपालतापनी, बहुतसी बनाली हैं।

प्रभ--आज तक किसीने ऐसा नहीं कहा अब तुम कहते हो हम तुम्हारी बात कैसे माने ?

बतर—तुम्हारे मानने वा न माननेसे हमारी बात सूठ नहीं हो सकती है. जिस प्रकारसे मेंने इसको अयुक्त ठहराई है, उसी प्रकारसे जब तुम अथर्ववेद गोपथ वा इसकी शाखाओंसे प्राचीन लिखित पुस्त-कोंमें जैसाका तैसा लेख दिखलाओं और अर्थसंगतिसे भी शुद्ध करी तब तो सप्रमाण हो सकती है।

प्रभ—देखो हमारा मत कैसा अच्छा है कि जिसमें सब प्रकारका सुख और अन्तमें मुक्ति होती है।

उत्तर—ऐसे ही अपने अपने मत वाले सब कहते हैं कि हमारा ही मत अच्छा है बाको सब बुरे विना हमारे मतके दूसरे मतमें मुक्ति नहीं हो सकती। अब हम तुम्हारी बातको सच्ची माने वा उनकी ? हम तो यही मानते हैं कि सद्यभाषण, अहिंसा, द्या आदि शुभ गुण सब मतोंमें अच्छे हैं बाकी वाद, विवाद, ईच्या, हेंब, मिथ्याभ षणादि कम सब मतोंमें बुरे हैं। यदि तुमको सत्यमत महणकी इच्छा हो तो वैदिक-मतको महण करो।।

इसके आगे स्वमन्तव्यामन्तव्यका प्रकाश संक्षेपते छिखा जायगा। इति श्रीमद्यानन्दसरखतीखामिनिर्मिते सत्यार्थप्रकाशे सुमाषादि-भूषिते यक्नमतविषये चतुर्दशः समुक्षसः सम्पूर्णः ॥१४॥।

# <sup>कृ</sup> स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाशः

सर्वतन्त्र सिद्धान्त अर्थात् साम्राज्य सार्वजनिक धर्म जिसको सदासे सब मानते आये, मानते हैं और मानेंगे भी इसीलिये उसकी सनातन नित्यथम कहते हैं कि जिसका विरोधी कोई भी न होसके यदि स्रविद्यायक जन अथवा किसी मत वालेके भ्रमाये हुए जन जिसकी अन्यथा जाने वा माने उसका स्वीकार कोई भी बद्धिमान नहीं करते किन्तु जिसको आप्त अर्थात् सत्यमानी, सत्यवादी, सत्यकारी, परोप-कारक पक्षपातरहित विद्वान मानते हैं वही सबको मन्तव्य और जिसको नहीं मानते वह अमन्तव्य होनेसे प्रमाणके योग्य नहीं होता। अब जो वेदादि सत्यशास्त्र और ब्रह्मासे छेकर जैमिनिमुनि पर्यन्तों के माने हुए ईश्वरादि पदार्थ हैं जिनको कि मैं भी मानता हं सब सज्जन महाशयोंके सामने प्रकाशित करता है। मैं अपना मन्तव्य उसीको जानता है कि जो तीन क छमें सबको एकसा मानने योग्य है। मेरा कोई नवीन करूपना वा मतमतान्तर चढानेका देशमात्र भी अभिपाय नहीं है किन्त जो सत्य है इसको मानना मनवाना और जो असत्य है इसको छोडना और छडवाना मुम्तको अभीष्ट है यदि में पक्षपात करता तो आर्यार्वत्तेमें प्रचरित मतोंमेंसे किसी एक मतका आयरी होना किन्त जो २ मार्ट्यावर्त वा अन्य देशों में अर्थम्युक्त चाल चलन हैं उनका स्वीकार और जो धर्भयुक्त बाते हैं उनका त्याग नहीं करता न करना चाहता हूं क्योंकि ऐसा करना मनुष्यधर्मसे बहिः है। मनुष्य उसाको कहना कि मननशील होकर स्वातमवन् अन्यों के सुख दुःव और हानि छामको सममे, अन्यायकारी बछवानसे भी न हरे और धर्मातमा निवलत भी दरता रहे, इतना ही नहीं किन्त अपने सर्व सामर्थ्यसे धर्मात्माओं की चाहे वे महा अनाथ निबंख और गुणरहित क्यों न हों धनकी रक्षा, उन्नित, प्रियाचरण और अधर्मी चाहे चक्रवर्ती सनाथ महाबखवान और गुणवान भी हो तथापि उसका नाश, अवनित और अपियाचरण सदा किया करे अर्थात् जहांतक होसके वहांतक अन्यायकारियों के बखकी हानि और न्यायकारियों के बखकी उन्नित सर्वथा किया करे, इस काममें चाहे उसकी कितना ही दारुण दुःख प्राप्त हो, चाहे प्राण भी भले ही जावें परन्तु इस मनुष्यपनरूप धमसे पृथक् कभी न होवे, इसमें श्रीमान् महाराजा भन् हरिजी आदिने रलांक कहे हैं उनका लिखना उपयुक्त समक्ष कर लिखना हूं—

निन्दन्तु नीतिनियुणा यदि वा स्तुवन्तु,

लक्ष्मीः समाविदातु गच्छतु वा यथेष्टम् ।

अद्यैव वा मरणभस्तु युगान्तरे वा,

न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥१॥

भतृहरिः ।

न जातु कात्रान्न भयान्न लोभाद्, धर्मं त्यजेज्जीवितस्पापि हेतोः।

धर्मी नित्यः सुखदुःखे त्वनित्ये, जोवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः ॥ २ ॥

महार रते।

एक एव सुद्धद्वर्जी निधनेष्यनुयाति यः। द्यारीरेण समं नादां सर्वप्रन्यद्वि गच्छति ॥३॥

मनुः।

सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः॥ येनाकमन्त्युषयो श्वासकामा यत्रं तत्सत्यस्य परमं निधानम् ॥ ४ ॥ नहि सत्यात्परो धर्मी नानृतात्पातकं परम् । नहि सत्यात्परं ज्ञानं तस्मात् सत्यं समाचरेत् ॥५॥

इन्हीं मदाशयोंके श्लोकोंके अभिप्रायके अनुकूल सबको निश्चय रखना योग्य है अब मैं जिन २ पदार्थोंको जैसा २ मानना हूं उन २ का वर्णन संक्षेपसे यहां करता हूं कि जिनका विशेष व्याख्यान इस प्रन्थमें अपने २ प्रकरणमें कर दिया है इनमेंसे—

१—प्रथम "ईश्वर" कि जिसके ब्रह्म, परमात्मादि नाम हैं, जो सिन्विदानन्दादि लक्षणयुक्त है जिसके गुण, कम, स्वभाव पवित्र हैं, जो सर्वह्म, निराकार, सर्वव्यापक, अजन्मा, अनन्त, सर्वशक्तिमान, ह्यालु, न्यायकारी, सब सृष्टिका कर्ता, धर्ता, हर्ता, सब जीवोंको कर्मानुसार सत्य न्यायसे फड़दाता आदि लक्षणयुक्त है उसीको परमेश्वर मानता है।

२—चारों "वेदों" (विद्या धमयुक्त ईश्वरप्रणीत संहिता मन्त्रभाग) को निर्भ्रान्त खतः प्रमाण मानता हूं व खयं प्रमाणरूप हैं कि जिनके प्रमाण होनेमें किसी अन्य प्रनथकी अपेक्षा नहीं, जैसे सूर्य्य वा प्रदीप अपने स्वरूपके स्वतः प्रकाशक और पृथिव्यादिके भी प्रकाशक होते हैं वैसे चारों वेद हैं और चारों वेदोंक ब्राह्मण, छः अङ्क, छः उपाङ्क, चार उपवेद और ११२७ (ग्यारहसी सत्ताईस) वेदोंकी शाखा जो कि वेदोंके व्याख्यानरूप ब्रह्मादि महर्षियों के बनाये प्रनथ हैं उनको परतः प्रमाण अर्थात् वेदों के अनुकूछ होनेसे प्रमाण और जो इनमें वेदविकद्ध वचन हैं उनका अप्रमाण करता हूं॥

े ३ — जो पक्षपातरहित न्यायाचरण, सत्यभाषणादियुक्त स्थाया

वेदोंसे अविरुद्ध है उसको "धम" और जो पक्षपातसहित अन्याया-चरण मिथ्याभाषणादि ईश्वराज्ञाभंग वेदविरुद्ध है उसको "अधर्म" मानता हूं।।

४— नो इन्छा, द्वेष, सुख, दुःख और ज्ञानादि गुणयुक्त अरूपज्ञ

नित्य है उसीको "जीव" मानता हुं।।

4—जीव और ईश्वरस्वरूप और वैधर्म्यसे भिन्न और व्याप्य व्यापक और साधर्म्यसे अभिन्न है अर्थात् जैसे आकाशसे मूर्तिमान् द्रव्य कभी भिन्न न था, न है, न होगा और न कभी एक था, न है, न होगा इसी प्रकार परमेश्वर और जीवको व्याप्य व्यापक, जपास्य उपासक और पिता पुत्र आदि सम्बन्ध्युक्त मानता हूं॥

६—"अनादि पदार्थ तीन हैं एक ईश्वर, द्विनीय जीव, तीसरा प्रकृति अर्थात् जगत्का कारण इन्हींको नित्य भी कहते हैं, जो नित्य

पदार्थ हैं उनके गुण, कर्म, स्वभाव भी नित्य हैं॥

७— "प्रवाहसे अनादि" जो संयोगसे द्रव्य, गुण, कर्म डत्पन्न होते हैं वे वियोगके पश्चात् नहीं रहते परन्तु जिससे प्रथम संयोग होता है वह सामर्थ्य उनमें अनादि है और उसते पुनरिष संयोग होगा तथा वियोग भी, इन तीनोंको प्रवाहसे अनादि मानता हूं॥

দুনিঃ" उसको कहते हैं जो पृथक् द्रव्योंका ज्ञान युक्तिः

पूर्वक मेल होकर नानारूप बनना ॥

६ — "स्टिका प्रयोजन" यही है कि जिसमें ईश्वरके सृष्टिनि-मित गुण, कम, स्वभावका साफल्य होना। जैसे किसीने किसीसे पूछा कि नेत्र किसिंडिये हैं ! उसने कहा देखनेके लिये। वैसे ही सृष्टि करनेके ईश्वरके सामर्थ्यकी सफलता सृष्टि करनेमें है और जीवोंके कमोंका यथावत् भोग करना आदि भी।।

१०—"सृष्टिसकर्नृक" है इसका कर्त्ता पूर्वीक ईश्वर है क्योंकि सृष्टिकी रचना देखने और जड़ पदार्थमें अपने आप यथायोग्य बीजा-दि स्वरूप बननेका सामर्थ्य न होनेसे सृष्टिका "क्र्सी" अवश्य है।।

• ११-- "बन्ध" सनिमित्तक अर्थात् अविद्या निमित्तसे है । जो २ पापकर्म ईश्वरभिन्नोपासना अज्ञानादि सब दुःख फछ करने वाछे हैं इसिंध्ये यह "बन्ध" है कि जिसकी इच्छा नहीं और भोगना पडता हैं।।

१२ - "मुक्ति" अर्थात् सर्व दुःखोंसे छूटकर बन्धरहित सर्वत्र्या-पक ईश्वर और उसकी सृष्टिमें स्वेच्छासे विचरना, नियत समय

पर्यन्त मुक्तिके आनन्दको भोगके पुनः संसारमें आना ।।

१३-- "मुक्तिके साधन" ईश्वरोपासना अर्थात् योगाभ्यास, धर्मा-नुष्टान, ब्रह्मचर्य्यसे विद्याप्राप्ति, आप्त विद्वानोंका संग, सत्यविद्या, सुविचार और पुरुषार्थ आदि हैं।।

१४- "अर्थ" वह है कि जो धर्म ही से प्राप्त किया जाय और

जो अधर्मसे सिद्ध होता है उसकी अनर्थ कहते हैं।।

: १४—"काम" वह है कि जो धर्म और अर्थसे प्राप्त किया साय ॥

१६-- "वर्णाश्रम" गुण कर्मोंकी योग्यतासे मानता है।।

१७ - "राजा" उसीको कहते हैं जो शुभ गुण, कर्म, स्वभावसे प्रकाशमान, पक्षपातरहित न्यायधर्मकी सेवा, प्रजाओं में पितृवत् वर्ते भौर उनको पुत्रवत् मानके उनकी उन्नति और सुख बढःनेमें सदा यत्न किया करे।।

१८—"प्रजा" उसको कइते हैं कि जो पवित्र गुण, कम, स्वभा-बको धारण करके पक्षपात रहित न्याय धर्मके सेवनसे राजा और प्रजाकी उन्नति चाहती हुई राजितदोह रहित राजाके साध प्रत्रवत् वर्से ॥

१६-जो सदा विचार कर असत्यको छोड़ सयका पहण करे अन्यायक रियोंको हटावे और न्यायकारियोक्तो बढावे अपने आत्माके समान सबका सुख चाहे सो "न्यायकारी" है उसको मैं भी ठीक मानता हूं ॥

२०—"देव" विद्वानोंको और अविद्वानोंको "असुर" पापियोंको "राक्षस" अनाचारियोंको "पिशाच" मानता हूं ॥

२१—उन्ही विद्वानों, माता, पिता, आचि।र्य्य, अतिथि, न्याय-कारी राजा और धर्मात्मा जन, पतिव्रता स्त्री और स्त्रीव्रत पतिका सत्कार करना "देवपूजा" कहाती है, इससे विपरीत अदेवपूजा, इनकी मृत्तियोंको पूज्य और इतर पाष,णादि जड़मूर्त्तियोंको सर्वथा अपूज्य सममता हूं।।

२२--"शिश्ला" जिससे विद्या, सभ्यता, धर्मात्मता, जितेन्द्रिय॰ सादिकी बढ़ती होवे और अविद्यादि दोष छूटें उसको शिक्षा कहते हैं॥

२३—"पुराण" जो ब्रह्मादिके बनाये ऐतरेयादि ब्राह्मण पुस्तक हैं उन्हींको पुराण, इतिहास, कल्प, गाथा और नाराशंसी नामसे मानता हूं अन्य भागवतादिको नहीं ॥

२४—"तीर्थ" जिससे दुःखसागरसे पार खतरे कि जो सत्य-भाषण, विद्या, सत्संग, यमादि योगाभ्यास, पुरुषार्थ, विद्यादानादि शुभ कर्ष हैं उन्हों को तीर्थ सममता हूं इतर जलस्थलादिको नहीं ॥

२५—"पुरुषार्थ प्रारब्यसे बड़ा" इसल्प्रिये है कि जिससे संचित प्रारब्य बनते जिसके सुयरनेसे सब सुयरते और जिसके बिगड़नेसे सब बिगड़ते हैं इसीसे प्रारब्यकी अपेश्ना पुरुषार्थ बड़ा है।।

२६—"मनुष्य" को सबसे यथायोग्य स्वात्मवन सुख, दुःख, हानि, छाभमें वर्तना श्रेष्ठ, अन्यथा वर्तना बुरा समम्प्तना हूं॥

२७—"संस्कार" उसको कइते हैं कि जिससे शरीर, मन और बात्मा उत्तम होने वह निषेकादि श्मशानान्त सोख्ड प्रकारका है इसको कर्तक्य सममता हूं और दाहके पश्चात मृतकके खिये कुछ भी न करना बाहिये।।

२८—"यहाँ उसको कइते हैं कि जिसमें विद्वानोंका सत्कार यथायोग्य शिल्प अर्थात् रसायन जोकि पदार्थविद्या उससे उपयोग और विद्यादि शुअगुणोंका दान अग्निहोत्रादि जिनसे वायु, खूटि, जऊ, धोषधिकी पवित्रता करके सब जीवोंको सुख पहुंचाना है, उसको उत्तम समकता हूं॥

२६ — जसे "आर्य" श्रेष्ठ और "दस्यु" दुष्ट मनुष्योंको कहते हैं

वैसे ही मैं भी मानता हूं॥

३०—"आर्र्यावर्तां देश इस भूमिका नाम इसिंख्ये है कि इसमें आदि सृष्टिते आर्य्य लोग निवास करते हैं, परन्तु इसकी अविध उत्तरमें हिमालय, दक्षिणमें विन्ध्याचल, पश्चिममें अटक और पूर्वमें ब्रह्मगुत्रा नदी है, इन चारों के बीचमें जितना देश है उसकी "आर्या करते और जो इनमें सद्दा रहते हैं उनको भी आर्य्य कहते हैं॥

३१—जो साङ्गोरांग वेदविद्याओंका अध्यापक सत्याचारका प्रहण और मिथ्याचारका त्याग करावे वह "आचार्य" कहाता है।

३२—"शिष्य" उसको कहते हैं कि जो सत्यशिक्षा और विद्याको प्रहण करने योग्य घर्मात्मा, विद्याप्रहणकी इच्छा और आचार्यका प्रिय करनेवाला है ॥

३३—"गुरु" माता पिता और जो सत्यको प्रहण करावे सौर असत्यको छुडावे वह भी "गुरु" कहाता है ॥

३४- "पुरोहित" जो यजमानका हितकारी सत्योपरेष्टा होते ।।

३४-- "उपाध्याय" जो वेहां का एकदेश वा अंगोंको पढ़ाता हो ॥

३६— "शिष्टाचार" जो धर्माचरणपूर्वक ब्रह्मचयसे विद्याप्रहण कर प्रत्यक्षादि प्रमाणों सं सत्यासत्यका निर्णय करके सत्यका ब्रहण अस-त्यका परित्याग करना है यही शिष्टाचार और जो इसको करता है वह शिष्ट कहाता है।

३७-प्रत्यक्षादि बाठ "प्रमाणों" को भी मानता हूं॥

३८—"आप्त" जो यथार्थवक्ता, धर्मात्मा, सबके सुखके छिये प्रयत्न करता है उसी हो "आप्त" कहता हूं॥

३६ — "परीक्ष" पांच प्रकारकी है इसमेंस प्रथम जो ईश्वर उसके । गुण कम स्वभाव और वेदिवचा, दूसरी प्रत्यक्षादि आठ प्रमाण, तीसरी सृष्टिकम, चौथी आप्तोंका व्यवद्वार और पांचवीं अपने आत्माकी पवित्रता विद्या इन पांच परीक्षाओं से सत्याऽसत्यका निर्णय करके सत्यका प्रहण असत्यका परित्याग करने, चाहिये॥

४०—"परोपकार" जिससे सब मतुष्यों के दुराचार दुःख हुटें श्रेष्ठाचार और सुख बड़ें उसके करने को परोपकार कहता हूं॥

४१—"स्वतन्त्र" "परतन्त्र" जीव अपने कार्मोमें स्वतन्त्र और कम्फल भोगनेमें ईश्वरकी व्यवस्थासे परतन्त्र, वैसे ही ईश्वर अपने सत्याचार आदि काम करनेमें स्वतन्त्र है॥

४२—"स्वर्ग" नाम सुख विशेष मन्ग और उसकी सामग्रीकी प्राप्तिका है।

४३—"नरक" जो दुःख विशेष भोग और उसकी सामग्रीकी प्राप्ति होना है॥

४४— "जन्म" जो शरीर धारण कर प्रकट होना सो पूर्व, पर खोर मध्य भेदसे तीनों प्रकारका मानत हूं॥

४५-शरीरके संयोगका नःम "जन्म" और वियोगमात्रको "सृत्यु" कहते हैं।।

४६— "विवाह" जो नियम विकास प्रसिद्धिसे अपनी इच्छा करके पाणिप्रहण करना वह "विवाह" कहाता है ॥

४७ - "नियोग" विवाहके पश्चान् पतिके मरजाने आदि वियोगों अथवा नपुंसकत्वादि स्थिर रोगोंमें स्त्री वा आपत्कालमें पुरुष स्ववर्ण बा अपनेसे उतम वर्णस्य स्त्री वा पुरुषके साथ सन्तानोत्पत्ति करना॥

४८—"स्तुनि" गुणकीर्तान श्रवण और ज्ञःन होना इसका फउ प्रीति सादि होते हैं ॥

४६ — "प्रार्थना" अपने सामर्थ्यके उपरान्त ईश्वरके सम्बन्धसे जो विज्ञान आदि प्राप्त होते हैं उनके लिये ईश्वरसे याचना करना स्मोर इसका फल निरिममान आदि होता है ॥

५०-- "उपासना" जैसे ईश्वरक गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र है

हैसे अपने फरना ईश्वरको सर्वव्यापक अपनेको व्याप्य जानके ईश्व-रके समीप हम और हमारे समीप ईश्वर है ऐसा निश्चय योगाभ्या-ससे साक्षात करना उपासना कहाती है इसका फल झानकी उन्नति आदि है।

११— "सगुणिनर्गुणस्तुतिप्रार्थनोपासना" जो जो गुण परमेश्वरमें हैं उनसे गुक्त और जो जो नहीं हैं उनसे पृथक् मानकर प्रशंसा करना सगुणिनर्गुण स्तुति ग्रुभ गुणोंके महणकी इच्छा और दोष हुड़ानेके लिये परमात्माका सहाय चाहना सगुणिनर्गुण प्रार्थना और सब गुणोंसे सिहत सब दोषोंसे रहित परमेश्वरको मानकर अपने आत्माको उसके और उसकी आज्ञाके अपण कर देना सगुणिनर्गुणोपासना होती है।

ये संक्षेपसे स्वसिद्धान्त दिखळा दिये हैं इनकी विशेष व्याख्या इसी "सत्यार्थ प्रकाश" के प्रकरण २ में है तथा भुग्वेदादिभाष्यभूमिका आदि प्रत्योंमें भी छिखी है अर्थात् जो २ वात सबके सामने माननीय है उनको मानता अर्थात् जैसे सत्य बोळना सबके सामने अच्छा और मिथ्या बोळना झुरा है ऐसे सिद्धान्तों हो स्वीकार करता हूं और जो मतमतान्तरके परस्पर विरुद्ध मगड़े हैं उनको में प्रसन्न नहीं करता क्योंकि इन्हीं मतबाळोंने अपने मतोंका प्रचारकर मनुष्योंको फैसाके परस्पर शत्रु बना दिये हैं। इस बातको काट सर्व सत्यका प्रचारकर सबको ऐक्यमतमें करा, हेष हुड़ा, परस्परमें हद प्रीतियुक्त कराके सबसे सबको सुख लाभ पहुंचानेक लिये मेरा प्रयत्न और अभिप्राय है सर्वशक्तिमान परमात्माकी कृपा सहाय और आप्तजनोंकी सहानुभूतिसे "यह सिद्धान्त सर्वत्र भूगोलमें शीघ प्रवृत्त हो जावे" जससे सब लोग सहजसे धम्मार्थ काम मोक्षकी सिद्धि करके सदा उन्तर और आनन्दित होते रहें यही मेरा मुख्य प्रयोजन है।

अस्मतिविस्तरेण बुद्धिमद्वर्य्येषु ॥

अोम् शन्नो मिन्नः शं वरुणः । शन्नो भवत्य-र्ध्यमा ॥ शन्न इन्द्रो वृहस्पतिः । शन्नो विष्णुइ-इक्रमः ॥ नमो ब्रह्मणे । ननस्ते वायो । त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि । त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्मावादिषम् । श्वतमवा-दिषम् । सस्यमवादिषम् । तन्मामावीत् । तद्वक्तार-मावीत् । आवीन्माम् । आवीद्वक्तारम् । ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरित्र,जकाचार्याणां परमिवदुषां श्रीविरजा-नन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण श्रीमद्द्यानन्दसरस्वतीस्वामिना वरिष्तिः स्वमन्तव्यामन्तव्यसिद्धान्तसमन्वितः सुप्रमाणयुक्तः सुभाषाविभूषितः सत्यार्थप्रकाशोऽयं मन्थः सम्पूर्तिमगमत् ॥



## सत्यार्थप्रकाश — परिशिष्ट

# शंका-समाधान

<u>্রে</u>:ক্র

( मुरादाबाद निवासी पं० ज्वालाप्रसाद शम्मी कृत 'दयानन्दतिमिरभास्कर' तथा श्री पं० तुलसी राम स्वामि कृत 'भास्करप्रकाश' के आधार पर )

#### प्रथम समुखासः

शंक:--ओ३म्कारकी ३ मात्राओंसे जो अर्थ स्वामीजीने ख्रिये हैं वे किसी मंत्र, ब्राह्मण, शास्त्र, पुराणादिसे नहीं मिछने।

समाधान—श्री स्वा० दय नन्द जी सरस्वतीने 'ओइम्' का अर्थ करते हुए 'अ' का अर्थ विराट् अग्नि और विश्वादि, 'ड' का अर्थ हिरण्यार्भ, वायु, तैजसादि और 'म' का अर्थ ईश्वर, आदित्य और प्राज्ञ किया है, वह माण्डूक्योपनिषद् तथा अन्य वैदिक शास्त्रोंके आधारोंपर किया है।

## जागरितस्थानो वैश्वानरोऽकारः प्रथमा मात्रा ।ह।

माण्डूक्योपनिषद् ।

जागरितस्थानः—जागरितं प्रकाशितं यथा स्यात् तथा स्थीयते जगत। येन स जागरितस्थानः ।

जिसकी सहायतासे जगत् संबदा जागरित प्रकाशित अर्थात् अपन्ते नियममें रहता है इसीसे परमात्माका नाम 'जागरितस्थान' है। जागरितस्थान और विराद दोनोंका अर्थ एक ही हैं इस कारण इसका अर्थ विराद किस्ता एया है।

## ८०० सत्यार्थप्रकादा परिदाष्ट ।

## वैश्वानरो अग्निः। वैश्वानरो पिराइ इत्युच्यते

वेदान्तसारः खं० १७।

मृतीय अर्थ 'विश्व' किया है। जैसे वैश्वानर शब्दका एक देश विश्व शब्द है उसी प्रकार 'ओइम्' में 'अ' है। जैसे 'अ' दी प्याप्ति बाणीमें है उसी प्रकार 'ओइम्' निष्ठ 'अ' पदवाच्य परमात्माकी ज्याप्ति जगत्में है इस कारण 'ओइम्' में 'अ' का अर्थ 'विश्व' किया है।

नेसा आचार्य गौड़पादने भी अपनी कारिकामें कहा है-

## ः विश्वस्यात्वविवक्षायामादिसामान्यमुत्कटम् । मात्रासम्प्रतिपत्तिः स्यादाप्तिसामःन्यमेव च ॥

(गौड़पादीयकारिका १६)

'स्रो३म्' की मात्रा 'स्र' से विश्वको 'स्र' कहा गया है इससे स्राहित्य और व्याप्तिसामान्य ये दो अर्थ स्पष्ट होते हैं।

इसी कारण 'अ' का अर्थ दिर द, अग्नि, और विदव आदि अर्थ स्रयक्तिक और सप्रमाण ही है।

## स्वप्रस्थानस्तैजस उकारो द्वितीया मात्रा ।१०।

माण्डूक्य उपनिषद्।

स्वप्नस्य स्थानं स्वप्नस्थानः । अर्षत्वारतु पुस्त्वम् ॥

पुंस्त्वम्। जगत्के स्वप्न अर्थात् शयन करनेका स्थान वह पर-मातमा ही है। स्वप्नस्थान और हिरण्यगर्भ दोनों शब्दोंके अर्थ एक ही हैं।

वायुका को ३म्के 'उ' से साधर्म्य है इसी कारण इकारसे 'वायु' कहा गया है।

'सेपा अनस्तमिता देवता यद् वायुः, इत्यादि शृहदारण्यकेके उत्क-पंवीयन करनेके कारण ही 'उकार' का अर्थ तैजस किया गया है।

## तैजसस्योत्वविज्ञान उत्कर्षो दश्यते स्फुटम् । मात्रासम्प्रतिपत्तौ स्यादुभयत्वं तथाविधम् ॥

(गौडुपादीय कारिका २०)

'ओ३म्' में 'उ' से तैजसका ज्ञान होनेसे परमात्मामें उत्कर्षकी प्रतीति होती है।

## सुषुप्तस्थानः प्राज्ञो मकारस्तृतीया मात्रा ॥११॥

( माण्डूक्योपनिषद् )

सुषुद्रतस्थान अर्थात् सुषुद्रत अवस्थामें परमात्माके साक्षी रहनेके कारण ही परमात्माको सुषुद्रतस्थान करा गया है उस समय परमात्माका ऐश्वयं अवाधित रूपसे विद्यमान रहता है। इसी कारण सुषु- द्रस्थानका अर्थ ईश्वर है।

अनादित्व और मान इन दो सामान्य धर्मोको बोधित करनेके लिये 'म्' का अर्थ आदित्य और प्राज्ञ किया गया है।

#### मकारभावे पाजस्य मानसामान्यमुच्यते । मात्रासम्प्रतिपत्तौ तु लयसामान्यमुच्यते ॥२६॥

( दौडपादीय कारिका )

प्राज्ञके साथ समानता होनेके कारण उसका अर्थ 'मान' सामान्य है। 'म' की आदित्यके साथ समानता होनेसे उसका अर्थ अनादित्व स्रोर प्रकाशकत्व प्रतीत होता है।

शंका—"शन्नो मित्रः" इस मन्त्रका अर्थ "दिवसका अभिमानी दैवता जो मित्र सो हमको सुखकारी हो" ऐसा अर्थ न करके खामीजीने मनमाना अर्थ किया है सो त्याज्य है।

समाधान—खामीजीने जितने हेतु अपने अर्थकी पुष्टिमें दिये हैं उनका खण्डन किये विना, केवळ "त्याज्य" है कहनेसे त्याज्य नहीं हो सकता। खामीजीने प्रकरण पर बळ दिया है, कि स्तुति प्रार्थना हपासनाके प्रकरणमें मित्रादि नामोंसे ईश्वर ही का प्रहण योग्य है, जिसको उन्होंने विस्तारपूर्वक सिद्ध किया है। और आपने अपने अर्थ की पुष्टिमें कोई प्रमाण नहीं दिया इसिलये आपकाही अर्थ त्याज्य है।

शंका—स्वामीज्ञीने तो ईशादि दश उपनिषद माने हैं परन्तु जब मतलब पड़ा नब कैबल्योपनिषद् भी मान बैठे तथा उसमेंसे "सब्रह्मा सविष्णुठ" इस प्रमाणसे ब्रह्मा विष्णु आदि परमात्माके नाम सिद्ध किये हैं। ऐसा क्यों किया ?

समाधान—स्वामी जी "इन्द्रं मित्रं वरुणमिनमाहु" इत्यादि वेद् मन्त्रोंसे सिद्धं कर चुके हैं कि ये सब नाम प्रार्थनोपासनामें ईश्वरके हैं। वेदके अनुकूछ चाहे जिस उपनिषद् वा अन्य किसी प्रन्थका प्रमाण दिया जा सकता है। केवस्योपनिषद् तो क्या! आपके सम्मुख तो अस्लोपनिषद्का भी प्रमाण दिया जा सकता है क्योंकि आप उसको मानते हैं। जिन पुस्तकोंको आप मानते हैं, उनमेंसे किसी वाक्यको प्रमाण स्वरूप लिखना अन्यथा नहीं है, क्योंकि आपके मतमें तो "संस्कृत स्थाक्यं प्रमाणम्" है।

शंका—जब स्वामीजी मंगळाचरणको नहीं मानते तो खयं "शन्नो मित्रादि" से मंगळाचरण क्यों किया ?

समाधान—स्वामीजी तान्त्रिकादि लोगोंकी परिपाटी "भैरवायनमः, दुर्गायैनमः, हनुमतेनमः।" इत्यादिका खण्डन करते हैं। मृषि लोगोंकी परिपाटी अथ आदिसे मङ्गलाचरण करना अच्छा मानते हैं अतः मृषि परिपाटीसे उन्होंने मङ्गलाचरण किया है। देखो यही मन्त्र वैतिरीय उपनिषद्के आरम्भमें भी आया है।

## (द्वितीय समुल्लासः)

शंका—स्वामीजीने शिक्षा विषयमें लिखा है "धन्य वह माता है जो गर्भाधानसे लेकर जवनक पूरी विद्या न हो तब तक सुशीलताक्स भ्यदेश करें" अतः गर्भाधानसे सुशीलताका उपदेश बालकको कैसे कर सकती है ? यह असम्भव है।

समाधान-क्य आप नहीं जानते:-

आहार शुद्धे: सत्व शुद्धिः सत्व शुद्धौ ध्रुवा स्पृतिः।

आहारकी गुद्धिसे सत्वकी गुद्धि और सत्वकी गुद्धिमें स्मृति निश्चढ होती है। अर्थात् खाने पीने आदि व्यवहारोंका प्रभाव, शीछ आदिपर पड़ता है और मानाके अङ्गासे सन्तानके अङ्गाबनते हैं। यथा

#### अङ्गादङ्गासंस्रवसि हृद्याद्धि जायसे॥

है पुत्र ! तू अङ्ग २ से टपकता और हृदयसे अधिकृत हो उत्पन्त होता है। जब कि मानाके अङ्ग अङ्गसे सन्तानके अङ्ग बनते और माताके भोजनादि व्यवस्थाका प्रभाव, शीठ व्यादि पर पड़ना है तब गर्भाधानसे ही ठेकर माताके अच्छे व्यवहारोंका प्रभाव होकर सन्तान स्ववश्य सुशीठ हो सकती है।

#### (तृतीय समुञ्जासः)

शंका—यज्ञोपवीत विना वेद और गायत्री पाठका अधिकार नहीं फिर स्त्रियोंके लिये पठन पाठनकी व्यवस्था क्यों लिखी ?

समाधान—देखो स्त्रियोंक लिये यज्ञोपवीत और वे**द पाठकी व्याज्ञा** शास्त्रोंमें है वा नहीं।

१ इमं मन्त्रं पत्नि पठेत् ॥ श्रीतसूत्र ॥ इस मन्त्रको पत्नि पढे !

२ **देदं प**रन्यै प्रदाय वाचयेत् ॥ श्रौतसूत्र ॥ स्त्रीको पुस्तक देकर वेद बचवावे।

याज्ञवरक्य मुषिकी स्त्री मैत्रेयी ब्रह्मवादिनी थी यह बृहद्वारण्यक एपनिषद्में लिखा है। यदि स्त्रियोंको वेदपाठका अधिकार न होता तो मैत्रेयी ब्रह्मवादिनी कैसे हुई ?

शंकरदिनिवजयमें मण्डनमिश्रकी स्त्री विद्याधरीका श्रीशंकराचार्य

से शास्त्रार्थ करनेकी वार्ता प्रसिद्ध है, शास्त्रोंमें स्त्रियोंको पढ़नेका अधिकार न होता तो वेद विषयक शास्त्रार्थोंमें विद्यावरी, गागीं, और सुलभादि देवियां कैसे भाग लेती और भी प्रमाण सुनो—

पुराकल्पे तु नारीणां मौजीबन्धनमिष्यते।

अध्यापनश्च वेदानां सावित्री वचनं तथा॥यमस्यति॥

प्राचीन कालमें स्त्रियां भी ब्रह्मचर्य्य धारण करती थी और मूंजकी मेखला (यज्ञोपत्रीत) पहनती थी, वेद पढ़ती थी, और सावित्री-गुरुमन्त्र अर्थात् गायत्रीमन्त्रका पाठ करती थी।

स्त्रियोंको यज्ञ करनेका एक और प्रमाण-

शतपथ काण्ड ११—४—१ में प्रजापितने मित्र विन्दाको **उपदेश** दिया है—"यझैनैतान पुनर्याचस्व" इनकी याचना तुम य**झ द्वारा** करो ।

भागवतमें मुनि "कश्यप" अपनी स्त्री अदितिको कहते हैं। अप्यग्नयस्तु वेलायां न हुता हविषा सति। त्वयोद्विग्नधिया भद्रे प्रोषिते मिय कर्हिचित्॥

(स्क• ८, स• ४६)

हे सित ! साध्वि ! मेरे परदेशमें चले जानेपर ठीक समय यज्ञाग्निओंमें आहुति डालनेमें तृने भूल तो न की थी ?

इसपर अदितिने उत्तर दिया है कि — मैं नियमसे अग्निहोत्र आदि कार्य करती थी। इत्यादि।

खमराज श्रीकृष्णदास वस्वई द्वारा मुद्रित सिद्धान्त कौमुद्रीकी पूर्व पीठिका एष्ट १३—१४ में श्री काशीशेष बेंकटाचल शास्त्री कृत विम्रुनी कल्पतरुमें उक्त विद्वान् लिखते हैं।

"स्त्रियोऽपि विद्याध्ययनाध्यापनयोरधिकारिण्यो भवन्ति" स्त्रियां भी. विद्याके पढ़ने और पड़ानेकी अधिकारिणी होती हैं! शंका—स्वामीजीने जो सृष्टि कमके विरुद्ध बातोंको असम्भव मानकर त्याज्य बनाया है सो ठीक नहीं, क्योंकि परमातमाकी विभू-तिका अन्त कोई नहीं जान सकता, जब नहीं जान सकता तब उसको सृष्टिका कम किसीको कैसे विदित हो सकता है। उसकी सृष्टिमें सब कुछ है और हो सकता है।

समाधान—निस्सन्देह परमातमा अनन्त और उसकी समस्त सृष्टिका क्रम मनुष्यको अविद्येय है, परन्तु इससे क्या सम्भव असम्म-वकी व्यवस्थाका छोन हो जायगा ? स्वामीजीने उतनी ही बातों को असम्भव लिखा है। जो रात्रि दिन एक क्रमसे हमारे आपके देखनेमें आती है परमात्माकी यह सृष्टि जहांतक हमारा ज्ञान नहीं पहुंचा चाहे कैसी ही हो, परन्तु तथापि जानी हुई बातों में कोई क्रम अवश्य है। यदि क्रम न हो तो गेहूं बोने वाले कृषकको यह विश्वास न होना चाहिये कि इसके फल गेहूं ही होंगे। कहाचित् चणे आदि हो जावें।

शंका—स्वामीजी भृषियोंको पूर्ण विद्वान लिखकर भी उनके प्रन्थोंमें वेदानुकूछ मानना अन्य न मानना लिखते हैं इसलिये वे नास्तिक हैं क्योंकि वे भृषि प्रणीत आप्तोक्त प्रन्थोंका अपमान करते हैं, मनुने लिखा है किः—

## योवमन्येत ते मूखे हेतुशास्त्राश्रयाद् द्विजः। स साधुभिषेहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिन्दकः॥

जो वेद और शास्त्रोंका अपमान करे वह वेद निन्दक नास्तिक जाति, पंक्ति और देशसे बाहर किया जावे।

समाधान—"पूर्ण विद्वान् ऋषि थे" इसका तात्पर्य यह नहीं हो सकता कि वे वेद प्रणेना परमात्मासे भी अधिक थे, किल्लु मनुष्यों में वे पूर्ण विद्वान् थे। उनके वेद विरुद्ध वचनको (यदि उनके नमन्द्रों से उनका वा उनके नामाने अन्य किसीका कोई वचन वेद विद्वाद्व जान

पड़े ) न मानना उनका अपमान नहीं, किन्तु मान्य है ? क्योंकि मतु आदि सृषि लिख गये हैं कि वेद बाह्य स्मृति माननीय नहीं, यथाः— या वेद बाह्या स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः । इत्यादि

और जो वेद शास्त्रका अपमान करे वह बाहर किया जावे। यह वचन स्वामीजी पर नहीं, किन्तु आप पर घटता है क्योंकि स्वामीजी तो यह कहते हैं कि "वेद विरुद्ध स्मृति वाष्य नहीं मानना" इससे वे वेदोंका मान्य करते हैं और आप उनके विरुद्ध मानो यह कहते हैं कि वेद विरुद्ध भी स्मृतिवाक्य मानना। वेदका अपमान साक्षात् आप (पौराणिक) करते हैं ओर ऋषियोंका भी अपमान इसिल्ये करते हैं कि ऋषि लोग वेद वाह्य स्मृतियोंको नहीं मानते और आप मानते हैं। इस प्रकार, आप, वेद और ऋषि दोनोंका अपमान करते हैं। इसलिये आप ही नास्तिक ठहरते हैं आपको ही जाति, पंकि और देशसे बाहर कर देना उचित है।

## (चतुर्थ समुल्लासः)

शंका—स्वामीजीने चौथे समुद्धासमें सामीप्यमें जो विवाह नहीं करनेका लिखा है सो ठीक नहीं। दूरके विवाहमें हम पुत्र पुत्रि-योंके गुण दोषको नहीं जान सकते अतः विना जाने विवाह करना उचिन नहीं। स्वामीजीने जो "परोक्षप्रियाइव हि देवा प्रत्यश्रद्धियाः" शतपथका प्रमाण दिया है, वह भी "कहींका ईट कहींका रोड़ा" के समान है। शतपथ १४।१।१।१३ में "परोक्ष कामा ही देवाः" इस प्रकारका पाठ है, इसका अर्थ है "देवता परोक्ष प्रिय हैं प्रत्यक्षसे द्वेष करते हैं। स्वामीजीने इसे जवरदस्ती विवाहके प्रकरणमें जोड़ दिया।

समाधान—"असिपण्डा च॰" इस मनुस्मृतिके अनुसार सामी-प्यमें विवाह नहीं करना और उस मनु धर्मशास्त्रकी आज्ञाकी पुष्टिमें जो ८ युक्तियां स्वामीजीने दी उसे विचारपूर्वक देखिये। "परोक्षप्रियाइव हि देवाः" इस वचनको स्वामीजीने विवाहपरक नहीं बताया, किन्तु रष्टान्त दिया है कि "जैसे देवता परोक्ष प्रिया हैं वैसं मनुष्योंके इन्द्रियोंमें भी देवता रहते हैं इस कारण मनुष्यको भी दूरसे मिळी वस्तुमें प्रीति अधिक होती है इसळिये दूरस्थोंका त्रिवाह अधिक प्रीति प्रद होगा, यह तात्पर्य है, और मनुके वाष्ट्रयको ब्राह्मण प्रन्थसे पुष्ट किया है। रही यह बात कि रातपथमें यह पाठ ऐसा नहीं है जैसा स्वामीजीने सत्यार्थ प्रकाशमें उद्भृत किया है। इसका उत्तर यह है—गोपथ ब्राह्मणमें यह पाठ कई ठिकाने भाया है। प्रपाठक १ किएडका १ तथा २ तथा किण्डका ७ में ३ वार किण्डका ३६ में।

परोक्ष प्रिया इव हि देवा भवन्ति प्रत्यक्ष द्विषः॥
गोपथ कण्डिका ३६॥

आपने जो "परोक्षकामाहि देवाः।" शतपथका वचन छिखा है इसका भी अर्थ यही है कि देवता परोक्ष वस्तुकी कामना करते हैं।

सत्यार्थ प्रकाशमें गोपथके स्थानमें शतपथ कैसे छिखा गया स्रो

सुनिये ।

स्वामीजी लेख पण्डिलोंको लिखाया करते थे स्वामीजीने गोपथ जोर शतपथ दोनों ही ब्राह्मणोंको देख लिखा था शतपथके "परोक्ष-कामाहि देवा" का जोर गोपथक "परोक्षप्रिया इवहि देवाः भवन्ति प्रत्यक्षित्रियः" का एक ही आशय होनेसे सम्भव है "गोपथ" के स्थानमें "शतपथ" कह दिया हो वा पण्डिलोंने लिख लिया हो। सन १८८४ प्रयागके छपे दूसरे संस्करण तकके सत्यार्थ प्रकाशमें जितने प्रमाण छपे हैं उनमें सब प्रन्थोंके नाम मात्र ही छपे हैं विशेष पते नहीं छपे, यदि पते देख २ कर लिखाते तो सम्भव है यह भूछ न होती। पीछसे लोगोंके हल्ले मचानेसे सम्बत् ११४८ के अजमेरके छपे सत्यार्थ प्रकाशमें मनु आदि प्रन्थोंके बहुतसे पते पण्डिलोंसे देख कर छपो हैं। अबतक भी कई पते नहीं छपते तथा कई पते

ठीक नहीं किये गये इसके छिये परोपकारिणी तथा सार्वदेशिक सभाको इस ओर ध्यान अवश्य देना चाहिये।

ं शंका—स्वामीजीने जो नियोगकी बात लिखी है उसको कोई बुद्धिमान् तो क्या निर्बुद्धि, दिषयी लम्पट स्त्री पुरुष भी नहीं मान सकते।

समायान—नियोगका विषय स्वामीजीने अपने मनसे नहीं लिखा इसके लिये वेद, स्मृति तथा प्राचीन इतिहास महाभारतादिके अनेक प्रमाण दिये हैं।

प्राचीन वैदिक कालमें विवाहका मुख्योद्देश्य सन्तानोत्पत्ति ही था उस समयमें सन्तान न होनेकी अवस्थामें कुलनाशके भयसे भृषि मुनि विद्वान, महापुरुषोंसे नियोग द्वारा वीर्थ्य प्रहण कर उच्चकुल तककी क्षियें सन्ताने उत्पन्न करती थीं निसके प्रमाण स्वामीजीने सत्यार्थ प्रकाशमें दिये हैं। यह बात दूसरी है कि वर्तमान व्यभिचारके युगमें जब कि विवाह विषय वासनाकी तृन्तिके ही उद्देश्यसे किये जाते हैं नियोग भी व्यभिचारसा ही प्रतीत हो। किन्तु जो पुराणोंको धर्मप्रन्थ स्वीकार करते हैं व नियोग पर कैसे आक्षेप कर सकते हैं जब कि पुराणोंमें नियोगसे भी बढ़ चढ़कर बातें लिखी हैं जैसे—

भागवत (स्क० ६, अ० ६) में छिखा है

रथीतरस्याप्रजस्य भार्यायां तन्तवेऽतिथिः। अंगिरा जनयामास ब्रह्मवर्चस्विनः सुतान्॥२॥ एते क्षेत्रप्रसूता वै पुनस्त्वाङ्गिरसा स्मृताः। रथीतराणां प्रवराः क्षत्रोपेता द्विजातयः॥६॥

अम्बरीवके वंशमें पृषद्श्वके पुत्र रथीरतके कोई सन्तान न था, इसने सन्तित्पूत्रकी रक्षाके लिये अंगिरा झृषिसे प्रार्थना की। अंगि-राने रथीतरकी भार्यान ब्रह्मवर्चस्वी पुत्र पेदा किये। जो रथीतरके क्षेत्रज पुत्र होकर भी आंगिरस कहाये। रथीतर वंशियोंके वे ही प्रवर क्षत्रियोंके वंशमें होकर भी बाह्मण द्विजाति कहाते हैं।

भागवत ( स्क॰ ६ अ० ६ ) में

तत ऊर्ध्व स तत्याज स्त्रीसुखं कर्मणाऽप्रजः।

वशिष्ठस्तदनुज्ञातो मदयन्त्यां प्रजामधात् ॥

राजा विशापने किसी ब्राह्मणके इस शापभयसे कि भोग करते समय उसकी मृत्यु होगी सब प्रकारका दिषयसुख छोड़ दिया। विशान छने उसकी आज्ञासे मदयन्त्रीमें प्रजाको उत्पन्न किया।

महाभारत ( आदि पर्व अ० १०४ ) में ज्ञात्वा चैनं स वबे ऽथ पुत्रातें भरतर्षभ ! ॥४३॥ संतानार्थे महाभाग भार्यासु मम मानद् । पुत्रान् धर्मार्थे कुदालान् उत्पाद्यितुमईसि ॥४४॥ एवमुक्तः स तेजस्वी तं तथेत्युक्तवान् ऋषिः। तस्मै सराजा खां भार्यां सुदेष्णां प्राहिणोत्तदा ४५ तां स दीर्घतमाऽङ्गेषु स्पृष्ट्वा देवी तथाव्रवीत्। भविष्यन्ति क्रमारास्ते तेजसादित्यवर्चसः ॥५२॥ अङ्गो वङ्गः कलिङ्गश्र पुण्ड्रः सुद्यश्र ते सुताः। तेषां देशाः समाख्याताः स्वनामकथिता भुवि ५३ अङ्गस्याङ्गोऽभवद्देशो वङ्गो वङ्गस्य च स्मृतः। कर्लिगविषयश्चैव कर्लिगस्य च स स्मृतः ॥५४॥ पुण्ड्रस्य पुण्ड्राः प्रख्याताः सुम्हाः सुम्हस्य चस्मृताः एवं बलः पुरावंदाः प्रख्यातो वै महर्षिजः ॥५५॥

-

काशीके चन्द्रवंशी राजा बलिने झृषि दीर्घतमाको तेजस्त्री विद्वान् देखकर अपने पुत्र उत्पन्न करानेके निमित्त वरण किया और प्रार्थनाकी 'हे महाभाग! मेरी भार्याओं में आप धर्म और अर्थमें कुराछ पुत्रोंको उत्पन्न करें।' ऐसी प्रार्थना सुनकर तेजस्वी झृषिने कहा 'तथास्तु'। राजा अपनी धर्मपत्नी सुदेष्णाको उसके पास मेज दिया।

मृषि दीर्घतमाने उसके अंगोंको स्पर्श करके कहा दिवि ! तुम्हारे पुत्र आदित्यके समान तेजस्वी होंगे ! उनके नाम अङ्ग, बङ्ग, किङ्ग, पुण्डू, सुम्ह, ये हैं। उनके नामसे भारतवर्षके बड़ बड़े राष्ट्र बने ! ये बल्किका वंश महर्षिके वीयसे उत्पन्न हुआ प्रसिद्ध है।

शान्तनुकी स्त्रो सत्यवतीने सन्तानकं निमित्त जब भीष्मसे कहा तब भीष्म कहते हैं (आदि •, अ० १०३)

शांतनोरिप संतानं यथा स्यादक्षयं भुवि । तत्ते धर्मं प्रवक्ष्यामि क्षात्रं राज्ञि सनातनम् ॥२५॥ श्रुत्वा तं प्रतिपद्यस्व प्राज्ञैः सह पुरोहितैः । आपद्धर्मार्थकुश्चलैलीकतन्त्रमवेक्ष्य च ॥३६॥

( अ० १०४ ) मं—

जामदग्न्येन रामेण, पितुर्वधममृश्यता।
त्रिः सप्तकृत्वः पृथिवी कृता निःक्षत्रिया पुरा ॥४॥
एवं निःक्षत्रिये लोके कृते तेन महर्षिणा।
ततः संभ्य सर्वाभिः क्षत्रियाभिः समन्ततः ॥४॥
उत्पादितान्यपत्यानि ब्राह्मणैवेंदपारगैः।
पाणिग्राहस्य तनय इति वेदेषु निश्चितम् ॥६॥
धर्ममनसि संस्थाप्य ब्राह्मणांस्ताः समभ्ययुः।

#### लोकेप्याचरितो दृष्टः क्षत्रियाणां पुनर्भवः ॥ ॥

हेरानि । शान्तनुकी सन्तान भी नष्ट न हो ऐसा सनातन धर्म मैं तुमे बतलाता हूं, उसको सुनकर आपद्धमें कुशल बृद्धिमान पुरोहितों द्वारा लोकतन्त्र (लोकमर्यादा) पर दृष्टि रखकर उसपर विचार कर।

राम जामरान्यने अपने पिताके बधको न सहत करके २१ बार पृथ्वीको क्षित्रयोंसे रहित करिद्या ! तब सब क्षत्राणियोंने वेदके विद्वान ब्राह्मणोंसे संग करके पुत्र उत्पन्न कर लिये थे । क्योंकि वेदनें यह सिद्धान्त निश्चय किया गया है कि पुत्र 'पाणिप्रहण करनेवाले पितका ही कहावे ।' इधर वैदिक धर्मको मनमें रखकर ब्राह्मणोंने उन क्षत्रा-णियोंसे सङ्ग किया और लोकमें भी क्षत्रियोंमें पुनर्भव (पुनः विवाह ) द्वारा पुत्रको प्राप्त करनेको रीति देखी जाती है।

इसके अिरिक्त धृतराष्ट्र, पाण्डुकी उत्पत्ति, भरद्वाजकी उत्पत्ति बादि सभी नियोग विधिसे हुई है। इसमें महाभारत पुराण आदि सभी समान रूपसे सहमत हैं। मनुने नियोगकी आज्ञा दी है। नियो-गज पुत्रको धर्मशास्त्रकार क्षेत्रज पुत्रक नामसे पुकारते हैं।

#### (पश्रम समुल्लास)

शंका-स्वामी जीका लिखना है कि-

#### "विविधानि च रहानि विविक्ते पूपपाद्येत्"

नाना प्रकारक रत्न सुवर्गादि धन विविक्त अर्थात् संन्यासियोंको देवे। यह और भी धन छेनेको कपट जाल बनाया है। आय समाजी उपरिलिखित रलोकका अध र मनुस्मृतिका निम्न श्लोक बताते हैं—

"धनानि तु यथाशक्ति विष्रेषु प्रतिपादयेत्। वेदवितसु विविक्तेषु प्रेत्य स्वर्ग समस्तुते॥"

मनु० ११ । 🕻 ॥

' सो विद्वान् लोग इसके अर्थको विचार, इसते सत्यासियोंको द्रव्य देनेका कोई भी पद नहीं है। किन्तु इस श्लोकका यह अथ है कि अनेक प्रकारसे धन यथा शक्ति ब्राह्मणोंको देने चाहिये, जो कि वेद पढ़े हैं और (विविक्तेषु पुत्रकलता द्यवरुद्धेषु ) कुटुम्बी है। ऐते ब्राह्मणोंको देनेसे शरीर त्यागने उपरान्त स्वर्ग होता है।

समाधान—हमारा कहना है कि मनु ११। ६ के पाठते सर्याथ प्रकाशस्थ पाठमें भी अर्थ भेड़ नहीं है। आप जो "विविक्तेषु" का अर्थ "पुत्री स्त्री आदिमें फँते कुटुम्बी" कहते हैं सो "विचिर् पृथमावे" धात्वर्थसे उल्लाह है। उसका अर्थ पुत्रादिसे पृथक् सन्यस्त है, आप पुत्रादिमें फँसे गृहस्थ कुटुम्बीका अर्थ करते हैं।

#### (सप्तम समुक्लास)

' शंका—सप्तम समुल्छासमें स्वामीजीने जो ३३ देवताओंका वर्णन किया है जिसके छिपे "त्रयस्त्रि शस्त्रिशता" वेदका प्रमाण दिया है। इस मन्त्रमें तो ३०३३ गिनतीका वर्णन है, किर स्व.मीजीने ३३ की ही गिनती कैसे की १

समाधान — "त्रयस्त्रिशस्त्रिशता" यह पाठ ही अशुद्ध छन गया है। शुद्ध पाठ इस प्रकार है "त्रयस्त्रिशता" जिसमें ३३ से अधिकका वर्णन नहीं। देखिये वेदोंके प्रमाण-—

श्रयस्त्रिण्डाता ॥ यज्ञः १४ । ३१ ॥

थे त्रिंदाति त्रयस्परो देवासः॥ ऋ० ६।२।३५।१।

इसमें भी ३३ ही देवता लिखे हैं।

यस्य त्रयस्त्रिदाइ वा निधिम् । अथर्व १०।७।२३॥ यस्य त्रयस्त्रिदाइ वा अंगे० ॥ अथर्व १०।७।२७॥

इत्यादि अनेक प्रमाणोंसे देवतोंकी ३३ संख्या प्रमाणित होती है भीर शतपथ बाह्मणके कांड ११ के अनुसार भी ३३ ही सिद्ध होते हैं। शंका—स्वामीजीने कहीं तो देवता शब्द विद्वानोंके लिये प्रयोग किया है कहीं इन्द्रादि शब्द ईश्वर वाचक कहें हैं। ऐसा क्यों ?

समाधान—विद्वानोंको देवता मानना सूर्यादिके देवता माननेका बाधक नहीं हो सकता। क्या एक प्रकरणमें एक पदार्थको देवता मान-कर दूसरे प्रकरणमें दूसरे पदार्थको देवता मानना कोई विरोधकी बात है ?

देखिये निरुक्तकार क्या लिखते हैं:--

#### देवो दानाद्वा दीपनाद्वा चोतनाद्वा चुस्थानी भवतीति वा॥ निरुक्त अ०७ खं० १५॥

दान, दीपन, द्योतन और गुस्थान (प्रकाश स्थान) होनेंसे "देवता" होता है। यद्यपि पूर्णदान पूर्ण प्रकाश, पूर्ण द्योतन (जताना) का स्थान तो अचिन्तनीय ज्योतिष्मान सचिवदानन्द परमातमा ही है और इस कारण ये सब अर्थ असीमभावसे उसीमें मुख्य करके घटते हैं, तथापि सांसारिक सुख भोगके अभिज्ञां मध्यम अधिकारियोंके लिये इनके अभीष्ट इन्द्रियोपभोग्य स्वादु रस सुगन्धादिसे होने बाले सुखोंकी प्राप्तिक अर्थ सूर्यादि भौतिक पदार्थ भी (जो बद्धा बुद्धिसे इपास्य नहीं हैं) समीप प्रकाशादि दिन्य गुर्णोंके धारण करने बाले होनेसे गौण भावसे "देवता" हैं। जिनका वर्णन यजुर्वेदके अध्याय १४। २०॥ में भी आया है।

शंका—स्वामीजीने ईश्वरको मनुष्यवत् समम लिया है यदि वह साकार हो जाय तो व्यापक न रहे, उसका कोई बनाने वाळा हो जाय। जब कि ईश्वर सब शक्तिमान् है, तो वह आकार वाळा होकर भी शक्ति वा झानसे रहित नहीं हो सकता। जिस समय प्रळय होती है उस समय वह निराकार, जब उसमें सुष्टि रचनाकी इच्छा होती है तभी उसको सगुण वा साकार कहते हैं, यहां न्यायी दयालु, आदि नाम साकारमें हो घटते हैं। यजुर्नेद शतपथ बाह्मगर्मे स्पष्ट लिखा है:— उभयं वा एतत्प्रजापितिनिरुक्तरचाऽनिरुक्तरच परि-मितरचापरिमितरच यद्यचजुषा करोति यदेवास्य निरुक्तं परिमित्र एरूपं तदस्य तेन संस्करेत्यथ यत् मृष्णो यदेवास्थानिरुक्तमपरिमित रूपं तदस्य तेन संस्करोतीति ब्राह्मणम् ॥ श०कां० १४।१।२।१८॥

परमेश्वर दो प्रकारका है परिमित अपरिमित, निरुक्त और अनि-हक्त इस कारण जो कर्म यजुर्वेदके मन्त्रोंसे करता है उसके द्वारा परमेश्वरके उस रूपका संस्कार करता है, जो निरुक्त और परिमित नाम है और जो तृष्णोभाव सम्पन्न है अर्थात् अध्यात्म मन्त्रका ही मनन करता है उससे परमेश्वरके रूपका संस्कार करता है, जो अनि-हक्त और अपरिमित नाम है इससे प्रत्यक्ष परमेश्वरमें निराकारता साकारता पाई जाती है।

समाधान—यहां प्रथम तो प्रजापित शब्दसे यक्षका प्रहण है क्योंकि (यहां वे प्रजापितः) यहा प्रजाका पाउन करता है और कर्मकाण्ड सांसारिक अग्नि वायु झृगािद देवतोंके छिये होता है तथा क्षानकाण्ड वा उपासनाकाण्ड ईश्वर विषयक होता है इसिछिये यहां कर्मकाण्डके प्रकरणमें भौतिक पदार्थोका यहा ही प्रजापित समम्मना वाहिये और ऐसा मानने पर यह अर्थ होगा कि—

(उभय वै एतत् प्रजापित ) यज्ञ निश्चय दो प्रकारका है ( निरु-क्तिआऽनिरुक्ति ) निरुक्त जिसका निवचन किया जाय और अनिरुक्त जिसका निवचन न किया जाय तथा (परिमितश्चाऽपरिमि-सञ्च ) परिमाणयुक्त और परिमाण रहित (तद्यद्यजुषा करोति ) सो भोकि ,यजुर्देदस करता तब (यदेवास्य निरुक्त परिमितध्नंरूपम् ) जो इस यज्ञका निरुक्त और परिमित स्वरूप है (तदस्य तेन संस्क-रोति ) इसके इस स्वरूपका उस यजुः से संस्कार करता है (अथ धतुष्णीम्) और जो कि चुप होकर होमादि करता है तब (यदे-धास्याऽनिरुक्तमऽपरिमिनर्थं रूपम्) जो हो इसका अनिरुक्त और धापरिमित रूप हैं (नदस्य तेन संस्करोति) उस स्वरूपका चुप होकर इस कमसे संस्कार करता है (इति ब्राह्मणम्) यह ब्राह्मण पूरा हुआ अर्थात् यक्षका थोड़ासा वर्णन मनुष्य कर सकता है समस्त मही, यक्षके थोड़े स्वरूपका मनुष्य परिमाण जान सकता है सबको नहीं। बस जहां तक जान सकता है, वहां तक वर्णनकर सकता है। जहां तक वर्णन कर सकता है वहां तक परिमाण जानता है वहां तक थजुर्वेदके मत्रोंसे वर्णन करता हुआ अग्निहोन्नादि करे। और क्योंकि हुछ यक्षका स्वरूप वर्णन और परिमाणसे बाहर हैं इस लिये हुछ। चुप होकर भी करना चाहिये।

और यदि थोडी देरके लिये यह भी मानले कि ईश्वरका ही बर्णन है तो भी उसका साकार निराकार होना इससे नहीं पाया जाता परमेश्वर भी समस्त भावसे निर्वचनमें नहीं आता अनन्त होनेसे परन्तु थोड़ासा निर्वचन उसका शास्त्र द्वारा हो सकता है, बस जितना कि परमात्माका हम वर्णन कर सकते हैं उस अंशमें वह निरुक्त और शेषमें अनिरुक्त और वर्णन करने तक परिमित और बर्णनसे बाहर अपरिमित है जैसा कि—

#### तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ॥ यजुः

वह सब जगत्के भीतर और जगन्से बाहर भी है बस जगत्के भीतर जितना परमेश्वर है उतना कथिन्यन निरुक्त और परिमित तथा जो अनन्त जगत्के बाहर है उतना अनिरुक्त और अपरिमित है। परन्तु साकार और निराकार इससे भी नहीं पाया जाता।

प्रश्त— है वाव ब्रह्मणो लपे मूर्न चामून चेति ईश्वरके दो रूप हैं, एक मृर्तिमान एक अमृर्तिमान (एकं रूपं बहुधाया करोति) बोर एक रूपको जो बहुत प्रकारका करता है। इस मंत्रसे तथा बोरोंसे भी सर्व कारण बीजस्थानापन्न परमात्मामें साकारता इस प्रकारसे प्रकट है।

समाधान—ब्रह्मके दो रूप हैं। इसका तात्पय यह नहीं है कि
ब्रह्म स्वरूपतः दो प्रकारका है। किन्तु यह तात्पय है कि मूर्त और
ब्रम्म् दो प्रकारके पदार्थोंका स्वामी ब्रह्म है। यदि लोकमें यह कहा
ब्राय कि देवदत्तके दो गो है, एक लाल और एक काली। तो क्या
इससे कोई यह समम्म सकता है कि देवदत्त स्वयं काली और लाल
गोके आकारका है। कभी नहीं। आपने एक आरम्भका टुंकड़ा लिख
दिया। यदि इससे अगला पाठ भी आप लिखते तो स्पष्ट प्रतीत हो
जाता कि ब्रह्मके निजके दो रूप नहीं हैं किन्तु दो रूपोंका स्वामी ब्रह्म
है। जैसा कि ठीक पाठ यह है—

"द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्त चैवा मूर्त च" बागे चल कर इसे स्पष्ट किया है कि—

"तदेतत्मृतं यदन्यद्वायोश्चान्तरिक्षाच्च"

( बृह्दारण्य उप० प्रपाठ्क ब्राह्मण ३ का॰ २ )

अर्थात् यह मूर्त है जो वायु और अन्तरिश्वसे अन्य पदार्थ है। अर्थात् प्रथ्वी, जल अग्नि मूर्त अर्थात् दृश्य हैं। फिर आगे

"अथामूर्तं वायुश्चान्तरिक्षं च" कां० ३

और वायु तथा अन्तरिक्ष अमृतं हैं अब विचारिए कि पांच सत्वोंमें दो अमृतं तीन मृतं स्पष्ट गिनाए हैं वा निजके ब्रह्म दो प्रकारके बनाये हैं ?

शंका—स्वामीजीने ईश्वरको अज अकाय बता कर ईश्वरके अवतार होनेमें सन्देह करते हैं तो, जीवात्मा भी अज और व्यापक अवण करा जाता है, उसका भी जन्म न होना चाहिये।

समाधान-जीवातमा केवल स्वरूपतः अज है परन्यु सर्व दशीय बही, यदि सर्व देशीय हो तो मृत्यु न होना चाहिये। तथा एक हैशमें होने वाले कार्मोंका वृतान्त अन्य देशस्थ जीवारमाओंको ज्ञात भी होता चाहिये। स्वामीजी केवल अज अकाय होनेसे ही परमा-स्माको निराकार अवतार रहित मानते हों सो नहीं किन्तु वह सर्वव्यापक होनेसे देह विशेषके बन्धनमें नहीं आसकता। यह स्वामी-जीका कथन है।

शंका—"न तं विदाधः" यजु॰ १७। ३१ में छिला है कि "उस परमेश्वरको तुम नहीं जानते फिर यह स्वामीजीने कैसे जान लिया कि वह अवतारादि धारण नहीं कर सकता ?

समाधान—हम पूछते हैं कि आपने यह कैसे जान लिया कि परमेश्वर अवतार धारण करता है ? जब कि कहते हो कि उसे कोई नहीं जानता। हम तो (न तं विदाय) का यह तात्पर्य सममते हैं कि परमातमा मन और बुद्धिका पूर्णरूपसे विषय नहीं हो सकता।

#### (अमष्ट समुक्लासः)

शङ्का—"देवादिवदिष लोके" इस ब्रह्म सुत्रसं यह मालूम होता है कि जैसं लोकमें देवादि सिद्ध लोग बिना सामग्रीके अपनी विचित्र शक्ति पदार्थोंको रच लेते हैं, जैसे वक्तुली विना वीर्यके केवल मेघ-गर्जनसे ही गर्भवती होजाती है वा मकड़ी विना सूतके ही जाला पूरती है; ऐसे ही विना प्रकृतिके केवल ब्रह्मने जगत् रच लिया।

समाधान—जिस प्रकार देवादि सिद्ध कोटिके मनुष्योंके पास धार्यय रूपसे विचित्र सामग्री वर्तमान रहती है, और बकुछीके गर्माथ मेच गर्जन ही में वायु द्वारा वीर्य प्राप्त होता है और जिस प्रकार मुक्झिका आत्मा अपने स्थूछ शरीरमें छिपे हुए सुतोंको फेळाता है, इसी प्रकार बद्धा भी अन्यक्त अदृश्य प्रकृतिको विकृति करके ही जग्निको बनाता है। यदि नियत सामग्री की आवश्यकता नहीं होती तो राजादि छोग देवादि सिद्ध पुरुषोंसे राज्यादि करणार्थ नवीन पृथिवी बनवाकर राज्य करते, बकुछोक समान काकी और मनुष्यकी स्त्री भी कैच मर्जनसे गर्भवती हो जाती, मक्झोक समान विना सुतके जुळाहे

भी कपड़ा बुन लेते । परन्तु विना सामग्री यथार्थमें कोई कार्य नहीं बनता। यह बात दूसरी है कि सामग्री प्रत्यक्ष हो वा छिपी अदृश्य हो ।

शंका—इसमें कोई प्रमाण नहीं कि आदिमें तिब्बतमें ही मानुषी छप्टि हुई।

समाधान-

"तस्माद्वा एतस्मादात्मनः आकाराः सम्भूतः आकाराद्वायुः वायोरग्निः अग्नेरापः अद्भ्यः पृथिवी पृथिव्यान्नम् अन्नाद्वेतः रेतसः पुरुषः ॥"

( तैति • ब्रह्मानन्द वल्ली अनु० १ )

अर्थात् प्रथम परमात्माने आकाश तत्त्वको उत्पन्न किया फिर बायु, फिर अग्नि, फिर जल, फिर पृथिवी, फिर अन्न, फिर बीर्य और फिर मनुष्यको ।

इससे स्पष्ट है कि उत्पत्ति कममें पुरुषकी उत्पत्ति कन्नके पश्चात् है। अन्न पृथिवीसे उत्पन्न होते हैं ? पृथिवीकी ऊँच। भाग तिब्बत ही प्रथम ठण्डा और अन्न उपजाने योग्य हो सकता था। इसी प्रकार अगिनमय पिण्डसे जलमय पिण्ड तत्पश्चात् मृण्यमय पिण्ड, नत्पश्चात् अन्नसे मनुष्य जातिकी उत्पत्ति हो सकती है। इसी विचारसे स्वामी-जीने तिब्बतमें मनुष्योंकी आदि सृष्टि लिखी है।

शक्का — त्रिविष्टपका नाम अर्थावर्त क्यों न हुआ जब कि आर्थ प्रथम वहीं जन्मे।

समाधान—३ तीन वेदों, ३ तीन वर्णों तथा अन्य त्रयी विद्याओंका स्थान होनेसे उस देशका नम त्रिविष्टप हो गया। जो आर्यावर्त नामसे कुछ घटिया नाम नहीं। आर्य और दस्युओंका विभाग जब तक भिन्न २ देशोंमें न हुआ तब तक किसी देशका नाम आर्यावर्त रखना आवश्यक भी न था।

(दशम समुह्लासः)

शङ्का स्वामीजीने लिखा है कि "उष्णदेश हो तो सब शिखा सदिन छेदन करा देना चाहिये। सारांश प्रत्यक्ष शिखा न रखनेका आदेश है, यह ईसाई मुसलमानादि अवैदिक मनुष्योंकासा आदेश है।

समाधान - स्वामीजीने शिखा, सूत्र दोनोंक घारण करनेका स्वष्ट स्वादेश सत्यार्थ प्रकाशमें दिया है। देखो--सत्यार्थ प्रकाश १० वा समुद्ध सः--

"क्षीर मुण्डन.....के पश्चात् केवछ शिलाको रखके अन्य डाढ़ी

मुंछ भौर शिरके बाल सदा मुण्डवाते रहना चाहिये"

जहां शिखा छेइनका आदेश है उसके पहले लिखा है कि "जो शीत प्रधान देश हो तो कामाचार है (अर्थान् वहां लाचारी है) वहां बाहे जितने केश रक्ले" (इसी प्रकार) "जो अति उष्ण देश हो तो सब शिखा सहित छेइन करा देना चाढिये"

अति उष्ण देश आर्यार्वन देशको नहीं कह सकते, किन्तु अफिका बादिको अत्युष्ण देश कहते हैं। स्वामीजीके लेखोंमें शिखा सूत्र खागकी निन्दा निम्न शब्दोंसे स्पष्ट पाई जाती है।

देखो सत्यार्थ प्रकाश ११ वां समुल्लास, 🛚 बाह्य समाजकी आलो-

चना प्रकरणमें:---

"और जो विद्याका चिन्ह यहोपवीत और शिखाको छोड़ मुसल-मान ईसाइयों म सहश बन बैठना यह भी व्यर्थ है जब पतलून आदि बक्त पहिरते हो और "तमगों" की इच्छा करते हो तो क्या यह्मोपवीत, आदिका कुछ बड़ा भार हो गया था ?"

शङ्का—स्वमीजीने १० वें समुक्तासमें एक स्थान पर लिखा है कि "मद्यमांसाहारी म्लेच्छ कि जिनका शरीर मद्य मांसके परमाणुओं-द्दीसे पृरित है, उनके हाथका न खावें। तो किर शुर्रों के हाथका खाना क्यों लिखा १ क्यों कि वे भी मांस खाते हैं।

समाधान-शूद्र आर्योंके चारों वर्ण (अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ) के अन्तर्गत हैं जैसे ब्राह्मणादि द्विज शास्त्रानुसार मांसाहारी नहीं वैसे शुद्र भी नहीं हैं (वैसे तो वर्तमानमें ब्राझार्गोमें भी अनेक मांसाहारी हैं) स्व मीजीने खान पानका विषय आचार अनाचारके प्रकरणमें रक्खा है और "आचारः परमो धर्मः" शास्त्र वाक्य पर बड़ा बल दिया है और मनुस्मृतिका निम्न श्लोक—

#### लशुनं गृञ्जनं चैव पलाण्डुं कबकानि च। अभक्ष्याणि द्विजातीनाममेध्य प्रभवाणि च॥

मनु• ५ । ५ ॥

वर्ध — लहसन, शलाम, पियाज, कुकुर मूना और जो मलीन विष्टा मूत्रादिके संसर्गस इत्पन्त हुए शाक, फल मूलादि द्विज अर्थात् बाह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्रोंको भी न खाना चाहिये। तथा—

#### वर्जयेन्मधुमांसं च ॥ मनु० २ । १७७ ॥

मद्य, मांस, गांजा, भांग, अफीम आदि भी वर्जित हैं। मद्य मांसाहारी म्लेच्छोंके हाथका खाना वर्जित करते हुए खामीजीने लिखा है कि "मुसलमान, ईसाई आदि मद्य मांसाहारियोंके हाथके खानेमें आयोंको भी मद्य मांसादि खाना पीना अपराध पीछे लग पड़ता है, परन्तु आपसमें आयोंका एक भोजन होनेमें कोई दोष नहीं दीखता"।

#### (एकाद्दा समुख्रास)

शङ्का—इस समुल्लासमें स्वामीजोने सब मत प्रवत्तक आचायोंको बड़े ही अनादर युक्त शब्दोंमें वर्णन कर आलोचना की है। क्या यह स्वामीजीको उचित था र

समाधान—एक सिखने नामानरेश श्री सरदार हीरासिंहको कहा था कि देखिये सत्यार्थ प्रकाशमें स्वामी द्यानन्दने गुरुनानकके विषयमें कैसे अपमान जनक शस्द लिखें हैं, "इस पर बुद्ध महाराजने जो उत्तर दिया वह उपग्रंक शंकाका अच्छी प्रकारसे समाधान करता है। महाराजने कहा "गुरुनानके बाबा थे और स्वामी द्यानन्द भी बाबा थे दोनों ही एक कोटिके महापुरुष होनेसे परस्पर एक दूसरेकी आखोन चना करनेका अधिकार रखते हैं। इसमें हम साधारण व्यक्तियोंको न पडना चाहिये। हमें तो दोनों ही के उपदेशोंसे लाभ उठाना चाहिये।"

शङ्का—स्वाम जीने गुरुनानकजीके मतके विषयमें आलोचना करते हुए जो "वेद पढ़न ब्रह्मामरे" मुख्यमनी पौड़ी ७। चौठ ८ का वाक्य उद्भृत किया है वह मुख्यमनी अथवा सिखोंके किसी मन्थमें यह वाक्य नहीं मिलते स्वामीजीने कैसे लिख दिया। ?

समाधान—प्रयागके छपे दूसरे संस्करण तकके सत्यार्थ प्रकाशमें जितने प्रमाण छपे हैं, उनमें सब प्रत्थोंके नाम मात्र ही छपे हैं, पते विशेष नहीं छपे। पीडेसे छोगोंके हल्छे मचाने पर सम्बत १९४८ के अजमेरके छपे सत्यार्थ प्रकाशमें प्रत्थोंके बहुतसे पते पण्डितों स ढूंढवा-कर छपाये गये हैं। "वेद पहन ब्रह्मा मरे" व्यास्थके अन्तमें भी सुख-मनी पौड़ी ७। चौठ ८॥ का पता छपा है।

अजमेरके छपे पांचवें वा छट्टे संस्करण सत्याध प्रकाशमें एक विज्ञापन छपा है जिसमें लिखा गया है कि आर्य पिथक "पं० लेखरा-मजीसे सत्याध्यं प्रकाश संशोधित कराकर छापा है, जिसमें कि पाठक्षेत्र, आदि ठीक कर दिये गये हैं उस समय यदि सुखमनीमें "वेद् पढ़त ब्रह्मा मरे" वाच्य न होते वा पाठ मेड़ होता तो ठीक कर दिये होते । अपितु पहले संस्करणमें पता नहीं लिखा था बादमें पता भी खिख दिया। इससे प्रतीत होता है कि प्राचीन छपी वा हस्तिलिखत सन् १८८४ के पहलेकी "सुखमनी" में यह वाच्य अवश्य रहे होंगे पीछे निकाल दिये गये हों तो क्या आश्चर्य है। जब कि बत्तमानमें भी इस आश्यके बाक्य सिखोंकी पुस्तकोंमें मिलते हैं जैसे कि—

नाभि कमलते ब्रह्मा उपजे,वेद पढ़े मुख कंठ सवार । ताको अन्त न जाई लखणा, आवत जावत रहे गवार॥ राज गुजरी १।२। ब्रह्म १

#### कोश्म्

# सत्यार्थप्रकाशः

#### प्रमाण सूची •>>>≪

<b>অ</b>	<b>अतपास्त्वनधायानः, १२६</b>
<b>अ</b> इ सयपा वियपा वाधम्मि ४८४	अनप्ततनूर्न तदामो, ४०६
अकामस्य किया ६१,३४२	अतिथिदेवो भव,
<b>अ</b> ग्निवायुरविभ्यस्तु; २६६	अतिथिगृहानागच्छेन्, ४२३
<b>अ</b> ग्निरूणो जलं शीतं ५४१	अत्र पूर्व महादेवः, ४२६
अग्निर्यथंको भुवनं प्रविष्टः ३८८	अता चराचरप्रहणात्, १५
भग्निर्वा अश्वः, ३८०	अथ किमेतैर्वा पयेऽन्ये, ३६७
व्यक्तिहोत्रं त्रया वेदाः ५४०	अथ तत्पूर्वकं त्रिविधमनुम,नं, ६५
अग्निहोत्रं समादाय, १५५	अथतद्वचनेनैव, ५६२
बाने नय सुपथा, २४०	अथ त्रिविधदुःखात्य०, २८, ३४०
भाने ऋग्वेदो वायोर्यजु०, २६४	<b>अ</b> थ यान्यष्टाचत्वारिष्ठं ५१
आनेर्वयं प्रथमस्यामृतानां, ३१८	बाध यानि चतुश्चत्वारिष्वं ५०
अङ्गादंगात्सम्भवसि, १४८, ८०३	बय योगानुशासनम्, २८
अंगो वंगः कलिङ्गश्च, ८०६	<b>अथ श</b> ब्दानुशासनम्,       २७
अङ्गस्यांगोऽभवद्देशो, ८०१	अथातो धर्म जिज्ञासा, २७
अजामेकां लोहितशुक्क २४७,२७४	अथातो धर्म व्याख्यास्यामः २८
अज्ञो भवति वै बारुः, ३४६ ५२१	<b>अ</b> थातो ब्रह्म जिज्ञासा २८
अणुमहदिति तस्मिन ७५	अथो ज्ञानान्त्रितो वैभा० ५५२
<b>अत</b> एव चानन्याधिपतिः, ३६४	अया मृतं वायुध्या ८१६

শ্ব	1 -1 4	6	
<b>अ</b> धोद्रमन्तरं कुरुते २	६१	अन्तःशाक्तः वहिःशेवाः	४७३
alaid / a	१६	<b>अन्तस्तद्धर्मो</b> पदेशात्	३६४
addagated and	, <u> </u>	अन्धंतमः प्रविशन्ति	४१५
<b>अ</b> दुष्ट ।वधाः	४५	अन्तंहि गौः	३८०
ald Soud and		अन्यथा सर्वदोषाणां	૪૬રૂ
सद्भिगात्राणि शुध्य ४३,१		अन्यमिन्छस्य सुभगे पति०	१४८
MACOULA Form	१५	अन्यानि प्रकुर्वीत,	१८६
Mandal Y.	0.0		90
अधर्मदण्डनं लोके,	२१€	अपरस्मित्रपरं युगपत् •	488
अधर्मेणैधते तावत्, १	१२८	व्यपाणिपादो जवनो गृहीता	
क्षघोद्द्रांच्ट्रनेष्कृतिकः	१३०	अपि यत्सुकरं कर्म,	<b>१</b> ८६
अध्यक्षान विविधान कुर्याद्	१६०	भप्यानयस्तु वेलायां,	20%
क्षध्यापनमध्ययनं,	१०८	अपां समीपे नियतो,	୪
अध्यापनं ब्रह्मयझः	१२•	अप्रयत्नः सुखार्थेषु,	१५६
अध्यात्मरतिरासीनो,	१६१	अप्सु शीतता	ĘE
अनादे रागमस्यार्थी	५६२	अभावाद् भावोत्पत्ति नी	, रद३
अनाहूतः प्रविशति,	१३६	अभक्ष्याणि द्विजातीनां	३४४
सनाहृतः प्रापराणः 	३१७	अभावं बादिरराह हो वं,	३१५
अनावृत्तिः शब्दादनावृत्तिः	₹ <b>0</b> ७	अभिवादनशी उस्य,	५७
धनित्याशुचिदुःखाऽना०	् २⊏३	अभ्यंगमञ्जनं चाक्र्णोः	५६
अनिमित्ततो भावोत्पत्तिः	354	अभ्याद्यामि सभिध•,	१५७
अनुपपत्तस्तु न शारीरः	२१ <b>६</b>	अमात्ये दण्ड आयत्तो,	१८८
अनुबन्धंपरिज्ञाय,	रर्८ १८६	~ ~ 4	१६४
अनुरक्तः शुचिंदक्षः,	-		२५३
<b>अ</b> नुसरणं सावड,	५६७	~ ~ ~ ~ ~ ~ ~ ~ ~ ~ ~ ~ ~ ~ ~ ~ ~ ~ ~ ~	30 %
अनेन क्रमयोगेन,	<b>५</b> ⊂		
<b>अ</b> तेन विधिना सर्वो,	१६३	te	14 1×2
<b>अनेन आत्मना जीवेनानु०</b>	ર્ષ	` <b>!</b>	4 42
व्यत्सर्याम्यधिदेवा <b>दिषु</b>	्३६	अर्थसम्पादनार्थं च,	4.1
			,

<b>=</b> 78	सत्यार्थ	प्रकादा ।	
अर्थानुपार्ज्य बहुशो	४४६	अहंब्रह्मास्मि,	२५३
थलन्य चैव लिप्सेत,	६३१	अहम्भुवं वसुनः पूर्व	२२६
अल <sup>्</sup> नं मिच्छेह्ण्डेन,	२६४	अहिंसयेन्द्रियास <b>ङ्गे</b>	१६२
<b>अ</b> झा यज्ञेन	<b>4</b> 50	अइंभैरवस्त्वं भैरवी,	३७६
बाल्लो रसूलमहमद,	७८६	अिंसयैव भूतानां,	५७, ३४६
<b>अ</b> ङ्गः पृथिवया	ড <b>্</b> ড	अहिसा सूनृतास्ते	<b>५</b> ८२
<b>अ</b> हा ऋषीगां	<b>৩</b> ८७	आ	
अिद्यायां बहुधा वर्त्त् <b>•</b>	३४१		
अविद्यायां मन्तरे वर्त्ता०	१५६	आ कारसहिताबुद्धिः,	४५२
<b>अ</b> विद्याऽस्मितारागद्वेषा	<b>३</b> २५	आकृष्णेनरजस्। वर्रा०	
अव्यङ्गागी सौम्यनाम्नी,	६ ६	आचाराद्विच्यतो	६२
अन्ननाममन्त्राणा,	<b>१</b> ८१	आचाराहमते ह्यायुः	१३३
अष्टवर्षा भवेत गौरी	£ o	आचारः परमो धर्मः	६१, ३४
अष्टादशपुराणानाः;	880	अ <sub>।चार्य उपनयमानो</sub>	३४६
अष्टापाद्यंतु शूद्रस्य;	<b>२</b> २४	आचार्यदेवो भव, ३	४६, ४२३
अश्वस्यात्र हि शिश्नंतु	५४२	आचार्यो ब्रह्मचर्येण	४२२
धरवालम्भं गवालम्भं	१५१	आज्यं मेवः	३८०
अञ्चनश्च समुन्नद्वो	१३६	आत्मज्ञानं समारम्भ,	१३४
असतो मा सद् गमय	२४•	आत्मेहागच्छतु	४१५
धसद्वा इदमप्र आसीत्,	२७६	आत्मेव ह्यात्मनो बन्धुः	: ३१७
असिषण्डाच या मातुः,	દક્ષ	आत्मै इमम आसीत्	२७५
<b>अ</b> सुरसंहारिणीह०	<b>3</b> 50	आद्ञायूक्मे <b>कम्</b>	બ≒ફ
अस्म'ला इला	<b>७८</b> ६	आदानमप्रिय <b>करं</b>	२०७
आस्मिन्नस्य च तद्योगं	<b>3</b> 84	आदावन्तेच यन्नास्ति,	२७८
<b>ध</b> हन्यहन्यवेक्षेत,	२२४	<b>अ</b> ।दित्यसंयोगास् भूतपूर्व	
अहमन्त्रमहमन्त्रमहमन्त्रम्,	१६	आधेनवो धुनयन्ताम०	१० <b>१</b>
अहमिन्द्रो न पराजित्ये,	२२६	आधेयशक्ति योग इति,	৬১

		•••	
बानाः अंशक्लाः प्रोक्ताः	<del>५</del> २१	इदानामिव सर्वत्र तत्प०	३१८
भाषो नारा इति व्रोक्तः	१६	इन्द्रानिलयमार्काणां,	१७७
<b>मा</b> प्तोपदेशः शब्दः,	Ęu	इन्द्रियदोषात् संस्कार	હર્ફ
<b>मा</b> प्तःसर्वेषु वर्णेषु,	२१६	इन्द्रियाणीहागच्छन्तु	४१५
<b>भायति</b> सर्वकार्याणां,	२०५	इन्द्रियाणां जये योगं,	१८२
<b>भा</b> यत्यां गुणदोषज्ञः,	२०५	इस्ट्रियाणां प्रसङ्गेन ५६,३३	।⊏,३४६
आयं गौः प्रश्निरकमीद्,	३०२	इन्द्रियाणां विचरतां, ४	६, ३४५
मारम्भहचिता धैर्य,	३३४	इन्द्रियाणां निरोधेन,	१६२
व्यार्यता पुरुषज्ञान	२१०	इन्द्रियार्थसन्निकार्षी० ६१	<sub>४</sub> , <b>१३</b> २
बार्याधिष्ठिता वा शूद्राः,	343	्इन्द्रो जयाति न पराजयात	॥ १७६
<b>भा</b> लस्यं मदमोहीच	१३६	इन्द्रोमहा रोक्सी	8
<b>मान्</b> तानां गुरुकुलाद्,	.35.	इन्द्रमित्रं वरुणमरिन,	, ૪
<b>धा</b> सनंचेव <sup>ं</sup> यानंच,	२०१	इमं मन्त्रं पत्नी पठेन्, ६०	, ८•३
भासमुद्रात् वे पूर्वाद्,	२६६	इमं देवा असपत्नं सुवध्वं,	१७६
नासीदीदं नमोभूतम्	२८०	इमां त्वमिन्द्र मीढंवः	१ <b>४</b> १
बाहवेषु मिथोऽन्योऽन्यं,	9€0	इलां कवर इलां	450
<b>आहार शुद्धे स</b> त्व	COR	इयं विसृष्टियंत आवभूव	२७२
_		इहेदमिति यतः कार्यकारण	योः ७४
₹		ई	

इन्छाद्वेषप्रयत्न सुख, ७१, २५१ इतरथाऽन्धपरम्परा, ३७४ इतइद्मिति यतस्तद्द्रिय, ७० इतिवराझो दाढची, ४५३ इतिहास पुराणः पञ्चमी, ४४१ इतिहासपुराणाभ्यां, ४४१ इतहासपुराणाभ्यां, ४५१ इस्यिष्ट दशमि अध्यत्ति, ४६६

ईशाबास्य मिदं सर्वं, · १२६ ईश्वरासिद्धेः, १४६ ईश्वरः कारण पुरुषकर्मा० २८३

ेच्धा दाधार ष्ट्रंथिबीसुत १०१ जबावचेषु भूतेषु १६९ जतसः परयम्पद्धशः कार्ष, ८२

_	P	à
-	_	•

### सत्यार्थप्रकाश ।

<b>एत शूद्र उतआर्थे</b> ,	२६७	एकमेव तु शूद्रस्य	१११
<b>उत्क्षेपणमवक्षेपणमा</b> ०	<b>હ</b> રૂ	एक द्रव्यमगुणसंयोगविभागेष	ৰ ৩३
उत्थाय पश्चिमे यामे	२०१	एकः शयीत संवत्र	٧æ
उत्पग्नन्ते च्यवन्ते च	४१८	एकः शतं योधयति	१८८
<b>उन्पादितान्यपत्यानि</b>	८१०	एकाकिनश्चात्ययिके	२०१
<del>ष</del> दीर्घ्वनार्घभिजीव,	१४४	एकोऽपि वेदविद् धर्म	<b>१८</b> १
<b>उपदेश्योपदेष्ट्टत्वात्तत्सिद्धिः</b>	३७४	एकोऽहमस्मीत्यात्मानं	२१७
चपरुध्यारिमासोत, 🔒	२०६	एकादश्यामन्ते पापानि०	४६४
<b>डपस्थमुद्</b> रं जिह्वा,	२१६	एगो अगरू एगो,	५ <b>६</b> ६
डमयं वा एतत्त्रजा,	हु२३	एतद्देशप्रसूतस्य,	<b>3</b> 34
<b>-</b>		एतमर्गिन वदन्त्येके,	8
<b>ऊनषोडशवर्षायाम</b> प्राप्तः	33	एतेम दिगन्तरालानि व्या॰	७१
<b>71</b>		एतेन नित्येषु नित्यत्वमुक्तं	99
		एते क्षेत्रप्रसूता वै	505
मृर्वेद विद्यजुर्विष	१८१	एतेषु हि दर्ध सर्व वसु 🔧	३०४
मृचोऽक्षरे परमे व्योमन् ८ः		एवं गृहाश्रमे स्थित्वा	१५५
मृतंच स्वाध्यायप्रवचनेच,	48	एवं नि क्षत्रिये लोके	<b>5</b> ₹•
मृतुकालाभिगामी स्यात्	११६	एवमप्युपन्यासात्पूर्वभावा०	83€
मृतं तपः सत्यं तप	805	एवमुक्तः स तेजस्वी	307
मृत्विक पुरोहिताचार्यः	१२६	एवमेव खडु सौम्यानेन	२७६
मृषियकं देवयकं	१२०	एवं बिजयमानस्य	१६४
सृषयो ( मन्त्रदृष्ट्य )	२६८	एवं सर्वं मिदं राजा	२११
Ų		एवं सर्वविधायेद	१६६
एक एव सुहृद्धमी २१३	030	एवं सर्वानिमान राजा	२२४
एकक्षणा भवेद् गौरी,	€5	एष वोऽभिहितो धर्मी	१६६
एक पापानि कुरते,	१३१	एषामन्यतमे स्थाने ,	388
पदः प्रजायते अन्तु	१११	एषु स्थानेषु भूयिष्ठं	२१३

નવાવ	
· <b>ਦੇ</b>	कारणगुणपूर्वकः कार्य, ७५, २७६
<b>ऐन्द्रस्थानम</b> भि प्रेप्सुः २२१	कारणभावात् कार्यभावः, ७५
धे ही कड़ी चामुण्डाये ४७१	कारण।भावात्कःयोभावः, ७५
ओ	कार्यकारणभावाद्वा, ५४६
<b>ओं</b> अग्नये स्वाहा• १२४	क.यांन्तरप्रादुर्भावाच्च, ७०
	कार्योपाधिरयं जीवः २५७
भों अहा इह्हां ७८७	कार्षावर्गं भवेद् दण् <b>ड्यः २२१</b>
ओं वं ब्रह्म ३	किं सोऽपि जगणि जाओं ५८६
ओं नमोनारायणाय, ४०७	किं भणिमो किं करिमो ५८६
ओं ब्रह्मादयो देवास्तृप्यन्ताम् १२२	कुरु नई कुलसी सहसा, ६२५
ओं मरीच्यादय ऋषयः १२३	कुर्वन्नेवंह कर्नाण जिजीबि २४१
स्रोमित्ये नदश्चरमुत्गी ३, २८	कुइस्तिद् दोषा कुह बस्तो, १४४
स्रोमित्येतदक्ष∢िमंदं, ३,२८	
ओं सानुगायेन्द्राय नमः १२५	कृतिः कमण्डलुमीण्ड्यं, ५५२
ओं सत्य नाम कर्त्ता पु <b>रुष,</b> ४८२	<b>क</b> त्वा विधानं मूळेतु, ् २०६
औरसः क्षेत्रजश्चैव १४७	<del>ष</del> ञ्जतकेशन् वश्मश्चः, १६१
<b>85</b>	केशान्तं षोडशे वर्षे. ३४३
	क्रियागुणवत्समवायि ६८
कइया होही दिवसी, ४९४	क्रियागुण व्यपदेशाभावात् ७६
कतम एको देव इति, ४२३	कुभ्यंतं न प्रतिकुभ्येत्, १६१
कन्यानां सम्प्रदानं ४१, ६२	क्लेशकर्मविपाकाशयै० २४६
<b>क</b> स्य नृतं कतमस्यामृतानां ३१८	क्षणिकः सर्व संस्काराः ५५२
क्रव्वं अणो गजम्भं ६०●	भ्रत्रियस्य परो धर्मः,        १६६
कश्यपः कस्मात्पश्यको ४४७	भणे रूष्टः भणे तुन्टो, ३६३
कामजस्य प्रसक्तो हि १८३	श्लीणस्य <b>चैवक्रमशो;</b> २ <b>०३</b>
काममामरणात्तिष्ठेत्, १००	श्चिप्रंविज्ञानाति; १३५
कामात्मता न प्रशस्ता ५५, ३४२	•
कामाद्दश गुणं पूर्व, २१६	ग

<b>द</b> २द ,	सत्यार्थ	प्रकाश ।	110°
गङ्गागङ्गपति योष्ट्रयाद्,	४३७	. ত	•
गन्धर्वा गुह्यका यश्रा	३३८	छन्दोबाह्मणानिच सद्धि,	
गम्भीरोत्तानमेदेन,	४४६		च् <b>६</b>
गढभणरति परियाउ,	६२२	छिन्नेमुले <b>दृ</b> श्चो नश्यति,	<b>३३४</b>
गिरिपृष्ठं समारह्य	२००	छादयत्र्यकमिन्दुविधु	४५७
गुरुगानुमतः स्नात्वा	€3	<b>ज</b>	
गुरुलोभी चेठा लालची	880	जइन कुणसि तबचरणं	<b>\$</b> 50
गुरुं वा बालकृद्धौ वा	२२२	जउक्दबं मन्नाण	န်၁၀
गुरुष्ठह्या गुरुर्विष्णुः	४३६	जइ जाणसि जिणनाहो	४६४
गुरोः प्रेतस्य शिष्यस्तु	३२	जगाम गोकुछं प्रति	४५१
गुरुमांश्च स्थापयेदाप्तान्	२∙६	जन्छ पसुमहिसलरका,	450
गुहां प्रविष्टवातमानी हि,	३६४	जन्माद्यस्य यतः	२७३
गृहस्थस्तु यदा <b>प</b> श्येद्०	१४५	जम्मीर जिणस्स,	५६३
प्रामस्याधि <b>प</b> ति कुर्याद्	१६५	जम्बुद्वीवषमाणं तुळ जोयाण	, ६२४
प्रामे दोषान समुल् <b>पन्ना</b> न्	१६५	जल चन्द्रनधूपनैस्थ ।	485
घ		जलपवितर स्थल पवितर	820
घट्ये कया क्रोशदशकमधः	४०१	जह जह तुट्टई धम्मो,	५८६
चड्य ४४। मगराद्रशसम्ब	804	जागरितस्थानो वैश्वानरो,	330
ঘ		जातोवा निचरं जीवेत्	33
<b>'प</b> तस्रोऽवस्थाः शरीरस्य,	५२	जामदान्येन रामेण,	८१∙
<del>प</del> तुर्भिरपि <del>पै</del> वेतैः,	१६२	जिण आणा ए धम्मो,	५६०
वारणाश्च सुपर्णाश्च,	३३८	जिनवर खाणाभंग	<b>ধ</b> ട്
चितितनमात्रेण सदात्मक,	ર્€૪	जीवेशोच बिग्रुद्वा चित्	२५७
'चिदचिद् द्वे परेतत्वे	६६७	<del>ङ्</del> येष्ठोपवीयसो म <sub>ं</sub> टवर्श	१४७
चित्रवन्दणगो,	4.80	जो अञ्चणि <b>अगुण</b>	448
चतना रक्षणो जीवो,	५७६	जोगो,	480
वेसाण बन्धियाणयः	455	को देहगुद्धधम्म	421

1		16	
शादवा चैव संबब्धेऽथ	50 <b>€</b>	तदा द्रष्टुः स्वरूपे	३४●
ज्ञानेन्द्रियाणि पंचैव	५४६	तदेक्षत बहुस्यां प्रजायेय,	२७६
<b>ज्ञा</b> नं परमगुद्यं मे	83=	तद्रदुष्ट ज्ञान,	99
भ		तदिज्ञानार्थं सगुरुमे,	425
महिला महा नटाइचैव	<b>३</b> ₹८ '	. तन्मामवतु तद्वक्तारं,	ę
<b></b>	777	तपत्यादित्यव <del>च्च</del> ैव,	१७८
		तपःश्रद्धे ये ह्युपवसन्स्य०	, १५६
इका धर्मष्टका कर्म,	६२१	तपोष्पवित्रं वितत	४०७
त		तम आसीत्तमसा मृद्र,	२७२
त आकारोन विद्यन्ते,	৩৩	तमसो लक्षण कामो,	३३५
तं इया हमाण अहमा.	५ <b>६</b> ३	तदेतत्मूर्तं	८१६
तच्चैतन्य विशिष्ठ देह	एव, ५३६	तस्मात्काश्यप्य इमाः	୪୪७
तच्चेदेतस्मिन् वयसिः	५०, ५१	तस्मादहोरात्रस्य संयोगे,	१२०
तत ऊर्ध्वं तत्याज.	<b>८०६</b>	तस्मादादौ सर्वकार्ये,	૪૬ ૪
ततश्च जीवनोपायो	५४२	तस्माद्वा एतस्मादात्मन ७	२८६
ततो विराडजायत विर	ाजो, 🎍	तस्मादेताः सदा पूज्याः,	११७
त्त्रयत्त्रीति संयुक्तं	३३४	तस्माद्धमै सहायार्थ,	१३२
तत्रस्थिताः प्रज्ञाः सर्वाः	२००	तस्मै स विद्वानुपसन्नाय,	५१८
तत्राहिंसा सत्यास्तेय,	(६, २४२	तस्याहुः संप्रणेतारं, े	१७६
<b>ब</b> त्वमसि	२५३	तस्यमध्ये सुपर्याप्तं,	१८५
तत्सुष्टा तदेवाणु	२४	ताण अन्नन्तुनो अस्थि,	<b>င်္</b> ဝဝ
तृतस्यादायुध सम्पन्नं,	१८८	तामनेन विधानेन,	१४६
तथा कार्यं समाप्येव, 🗸	858	तापसा यतयो विप्राः	₹₹5
तद्वस्यास्योद्वहेद् भार्याः,	• १८ <b>८</b> े	तापः पुण्ड्रं तथा नाम	goફ
तदस्यन्त्विमोक्षोपर्वगः	368	ता स दीर्घतमां के सु	508
तदात्मक्रस्तवन्तर्यामी,	२४४	तिच्छराणं पूजा सम्मक्त	180
तदन्तरस्य संबस्य	८१५	तिहु अण जणी महन्तं,	४६३
		<i>≦</i> 7 '	47

#### सत्यार्थपकादा ।

230

E 50	(11, 31, 31	<	
तीक्ष्णश्चेवमृदुश्चेव;	१९६	दण्डस्य पातनं चैव,	१८३
तेजो रूपंस्पर्शवन्,	ξE	दण्डव्यूरो न तनमार्ग	२●६
तेजोऽसि तेजो महि धेहि,	ॱ२३७	दशावरा वा परिषद्,	१८१
तेथूळापल्ळे विहुस,	६२४	दश कामसमुत्थानि,	१८३
ते ब्रह्मल'के ह परान्तकाले	, ३१६	दशमे ऽहनि किंचित्पुराण०,	888
तेषां प्राम्याणि कर्माणि,	१६५	दह्यन्ते ध्यायमानानां, ४४,	१६२
तेषामर्थे नियु जीत,	<b>१</b> ८६	दं दुर्गायै नमः,	४७१
तेषांमाद्यं ऋणादानं	२१३	दिवि सोमोऽधिश्रितः	३०२
तेषां स्वं खमभिप्रायं,	१८६	दिव्यो द्यपूर्तः पुरुषः	३६६
तेजसस्योत्वविज्ञान,	८०१	दीर्घाध्वनि यथादेशं,	२२४
ते सार्थ चिन्तयेन्नित्यं	१८६	दुःख जनमप्रवृत्तिदोष	३१६
तं प्रतीतं स्वधर्भेण,	६३	दुःख मायतनं चैत	४४२
ते राजा प्रणयन् सम्यक्	१७६	दुःखसंसारिणः स्कन्धा	४४२
तं सभा च समितिश्च सेना	च १७५	दुराचारो हि पुरुषो 🏄	१३३
त्रयस्त्रिधं शता	८१२	दुष्येयुः सर्ववर्णाश्च,	१७६
व्रयाणामपि चैतेषां,	३३४	दुहिता दुहिता दूरेहिता,	६५
श्रयो वेदस्य कर्तारो	५४२	दूरंचैवप्रकुर्वीत,	१८६
त्रिष्वप्येतेषु दत्तं हि,	१३०	दूत एव हि संधत्ते,	155
श्रीणिवर्षाण्युदीक्षेत,	१०•	दूषितोऽपि चरेद् धमै,	१६२
<sub>त्री</sub> णि राजाना विदये पुरूर्ति	णे, १७४	दूरेकरण दूरेम्मि,	४६४
त्रैविद्योहैतुकस्तर्की,	१८१	दृढ़कारी मृदुर्शन्तः,	१३२
त्रैविद्यभ्यस्त्रयी विद्यां,	१८२		, १६ <b>१</b>
त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि,	१, ४२३	देवत्वं सात्विका यान्ति,	३३७
	`	देवराद्वा सपिण्डाद्वा,	१४७
<b>द</b>		देवो द।नाद्वा	<b>5</b> १३
दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वाः	, <b>१</b> ७८	देवरः कस्माद् द्वितीयो वर	
इण्डो हि सुमहत्तेजो,	३७१	देवाधीन जगत्सर्व,	888

	प्रमाण	सूची ।	<b>⊏</b> ₹१
देशना लोकनाथानां,	48€	गूतं च जनवादं च	ં
दोसिस दोरविद्यति,	<b>\$</b> ?E		-
द्रव्यगुणकर्मणां द्रव्यं∙,	<b>હરે</b>	<b>ਜ</b>	
द्रव्यगुणयोः सजातीयाठः	৬४	न काष्ठे विद्युते देवी,	४१३
द्रव्यत्वं गुणत्वं कर्मत्वंच,	७४	नगरे नगरे चैव,	१६५
द्रव्याणां द्रव्यं कार्यसामान्यं	७३	न शाह्ममिति वाचयं हि,	४१४
द्रव्याभ्रय्यगुणवान संयोग,	७२	न चतुष्ट्वमैतिह्यार्थापसित	eβ
द्वयोस्रयाणां पञ्चानां	१६४	नच पुनरावर्तते,	३१७
इयोरप्येतयो प्रूं,	१८३	नच हन्यात् स्थञा <b>रूदं</b>	१८०
द्वादशाहबदुभय विधं,	३१४	न चागम विधि	४६०
द्वासुपर्णा सयुजा सखाया	२७४	न जातु कामः कामानां,	३४५
द्वेवावब्रह्मणो	<b>८</b> १६	नचान्यर्थ प्रधाने	५६०
, we		नजातुकामान्तभया०,	<b>680</b>
घ		न तस्य कार्यं करणं च•	२४५
धनानितु यथा शक्ति	<b>5</b> 28	न तस्य प्रतिमा अस्ति,	४१५
धंनुदुंगै महीदुगै	<b>१</b> 55	न तिष्ठति तुयः पूर्वाः,	-१२०
धर्म एव हती हन्ति,	२१३	नतु कार्यामावान् कार,	હ્ય
धर्मचयया जघन्यो वर्ण,	१०७	न तेन वृद्धोभवति,	३४६
र्घम प्रधान पुरुषं,	१३२	न निरोधो नचोत्पत्तिः,	३०८
धर्मकंच कृतइंच 1	२१०	न मित्रकरणाद्राजा,	<b>२</b> २२
धर्मध्वजी सदालुब्धः,	१३•	नमो त्रह्मण नमस्ते वायो,	१
धर्ममनसि संस्थाप्य,	<b>5</b> 80	नमो अरिहाणं,	<b>€</b> 00
र्धमविशेष प्रसूतः इ.	ξς	नमुकार उपदे	<b>€</b> ●o
धर्मोविद्धस्त्वधर्मेण,	२१३	नर्क्षद्वक्ष नदीनाम्नी,	88
धर्म शनैः संचितुयात्,	. १३१	नमस्तीर्थ्याय च	४३८
धिक्-धिक् कपार्क भस्म,	٤5	न मांस मक्षण दोवो 🕝	308
षृतिःश्वमादमोऽस्तेयं,	. १६३	न वरेद् यावनी भाषां	-384

<b>५२</b> र	(वर्ट्स स्ट	મલાયા	
नवकारेण विवीही,	५६७	निन्दन्तुनीतिनि•,	<b>v</b> ęo
न वेतियो यस्य गुणप्रकर्ष,	५३०	नियतं धर्मसाहित्यमुमयोः,	<b>છ</b> ંછ
नवे सशरीरस्य सतःप्रिया	, १६०	निव तास्य यावद्भिः	१८६
न हायनैन पिलतः,	३४६	निवेदिभिः समप्यैव,	४६३
नृद्धि सत्यात् परोधर्मी	v&?	निषेवते प्रशस्तानि,	१३४
नष्टे मृते प्रव्रक्तिते .	१५१	निष्क्रमणं प्रवेशनमि•	90
नुष्टे मूले नैव फलं	३५६	नेतरोऽनुप <del>पत्तेः</del> ,	<b>3</b> 84
नसुप्तं न विसन्नाहं	980	नेह नानास्ति किंचन,	१७७
नस् <b>व</b> र्गी नापवर्गीवा	५४१	नैत्यिके नास्त्यनध्यायो,	५७
नाततायिवधे दोषो,	२२२	नोच्छिन्दयादात्मनो मूलां,	339
नाधर्मश्चरितो छोके,	१२८	नोच्छिष्टं कस्यचिद्	240
नानक ब्रह्मज्ञानी आप	४≒३	नोद्धहेत्कपिलां कन्यां	€ 6
नापृष्टः कस्यचिद् ह्र्यात्,	३४४		
नाप्राप्यमभिवांऽछन्ति,	१३५	े प्र	
नामांपितस्स असुह	५८४	पंचविंशे ततो वर्षे	५₹
नामुत्रहि सदायार्थ,	१३१	पंचावयवयोगात्सु <b>खम्,</b>	६११
नायुधव्यसनं प्राप्तं,	१ <b>६</b> १	पंचाराद् भाग आदेयः,	२११
नारायणां पद्मभवंच देवां	४२४	पंचेन्द्रियाणि शब्दावा०,	५५२
नाविरतो दुश्चरितान्	१४८	पठितव्यां,	४७६
नास्यच्छिद्रं परोविद्यात्,	१६४	पण्डताई पाने पढ़ी	858
नास्तिको वेदनिन्दकः	४१८	पणपाललरक योयण,	६२३
नास्ति घटो गेह इति	હર્ફ	पतितोऽपि द्विजः श्रेष्ठः,	१५१
नासतो विद्यते भावो,	२६२	परीक्ष्य लोकान् कर्म•,	१५६
नाहं मोहं व्यवीमि ,	४३६	परोक्षप्रियाहि देवाः, ६४,	و دې
निमहं प्रकृतीनां च -	<b>२०२</b>	पबित्र ते वितत ब्रह्मणस्पते	
नित्यायाः सत्वर जस्तम्सा	, २६१	पशुश्चित्तिहतः स्वर्ग ३८१,	483
नित्येष्वभावादनित्येषु	400	पश्रुनां रक्षणं द्वानों,	880
		The state of the s	•

मनाण स्	Ų.	1
---------	----	---

⊏३३ पानं दुजेन संस्रीः, २५३ १३८ प्रज्ञानं ब्रह्मः; पानमक्षाः श्चियंश्चेव, \$23 प्रत्वहं देशहधीशचः -२१२, २२६ पादो धर्मस्य कर्तारं, २१३ प्रस्थानुमानंचः; 442 पाष्ट्रिक्तो विक्रमस्थान १२ई प्रधानशक्तियोगाच्चे र 38€ पाशबद्धी भवेजजीवः. प्रमाणानि च कुर्वीतः 305 200 पिताचार्यः सुहृत्माता, २२१ प्रमाणाभावात्तातिसद्धेः રકદ पितृदेवो भव, **३४६,** ४२३ प्रवृत्तवाक् चित्र**क**थ 159 पितृमिर्झातृभिरचेताः ४२३, ११६ प्रवृत्ते भैरवीचके 394 पीत्वा पीत्वा पुनःपीत्वा, २७५ प्रश्नावतारयोश्चैव ४५२ पुण्ड्रस्य पुण्ड्राः प्रख्याताः 302 प्रशसितारं सर्वेषाम० ŧ पुत्रेषणायाश्च वित्तेषणाया० 8:0 प्रसिद्धसाधम्यां**त् साध्य**• 66 पुमां सं क्षहबेद्राजा, २२४ प्रहर्षयेदवळ' **२**०६ पुराकल्पेतु नारीणां, 608 प्राजापत्यां निरूप्येष्टि १६० पुराण विद्यावेदः, કાર प्राजापत्यां निरूप्येष्टि सर्व १६० पुराणान्यखिलानि च, सप्तर प्राज्ञं कुळीनं शूरंच २१० पुरुषएवेदधंसर्वेयद्, **२**9२ ४१५ प्राणा इहागन्छन्त् पुरुषा बहुवी राजन् ११८ प्राणापाननिमेषोन्मेष, 98, 248 पुरुषोवाबै यञ्चस्तस्यः 40 प्राणाय नमो यस्युसर्व० B परोहितां प्रकुवीत, 265 १६२ प्राणायामा ब्राह्मणस्य **पूरु**याभूषियतब्या**१व** धर३ प्राणायमैदहेदूदोषान् १६२ 'प्ञयोदेबवत्पति **ध**२३ प्रातःकाछे शिवां दृष्ट् बा 830 पूर्वीरहं शरदः शश्रमाणाः, १०१ पृथिव्यापस्तेजो बायुराव, प्रातः प्रातग्रं हपतिनी ξZ १२० पुथिन्यादिस्तपरसगन्य, व्रोषितो धर्मकार्यार्थ 186 99 पैशुन्य' साहसं द्रोहः **१८३ मन्छ**र्दनविधारणाम्यां 88 फलं कतक इक्षस्य: प्रजाना रक्षणंदालं **११**0

#### सत्यार्थप्रकाश।

•	•	•	
बन्ध्याष्टमेऽधिवेद्याद्ये;	१४८	भरम देत अवतारहिं	8⊏4
बलस्य स्वामिनश्च	२०२	भर्तारं ल घयेषा की	२२४
बहुगुण विद्यानिखयो	463	भद्रं भद्रमिति ब्रूयाद्	११८
बहुत्वं परिगृह्वीयान्	<b>૨१</b> ફ	भं भेरवाय नमः	४७१
बाना बड़ा दयालका	⊌રુફ	भरम रोग तब ही मिट्य!,	४८६
बुद्धिवृद्धिकराण्याशु	११९	भवान करूप विकरूपेषु	8 <b>હ</b> ⊂
बुद्धवा च सर्व तत्वेन	१८८	भावं जैमिनि विकल्पो	३१५
वोधं न्तीतिहि प्राहु	४५२	भावोनुवृत्ते रेवहेतु	৬২
वौद्धानां सुगतो देवो	५५१	भिद्यते हृदयप्रन्थिः;	३३३२
ब्रह्मचर्याश्रम समाप्य	१५५	भिन्दाचैव तड़ागानि,	२०३
ब्रह्मचर्येण कन्यायुवान	. <b>E</b> o	भुक्तेन केवछंन स्त्री;	६०६
ब्रह्मजेग हिंमाणियां;	५१५	भूरानये प्राणाय स्वाहा 👝	४७
बह्यादयो देवास्तृ	१२२	भूरमि भूमिरस्य,	8
ब्रह्मसम्बन्धकरणात्	४१३	भूभुं वः स्वः तत्सवितु०	४२
ब्रह्मवा इदमय आसीत्	<b>२७</b> ५	मेदव्यपदेशास;	३१५
ब्रह्मविश्वसृजोधमी	336	मेदव्य <b>पदेशाचा</b> न्यः	३६५
ब्रह्मवाषयां जनार्दृनः	308	म	
ब्राह्मभाष्त्रेन संस्कार	१७४	मकारभावे प्राज्ञस्य,	<b>⊏</b> •१
ब्राह्मे मुहूर्ते बुद्धयेत	१२८	मघवन मर्त्य वाइदंशरीर	426
ब्राह्मणेण जैमिनिरुप०	<b>3</b> €8	मदं मांसंच मीनं च,	३७५
<b>बाह्या देवस्तथैवार्षः</b>	११२	मन्त्रबाह्मणयोर्वेदनाम	२ <b>६</b> ८
ब्राह्मणस्याणां वर्णानां		मन्येतारि यदा राजा,	२०२
<b>ब्रह्मण</b> स्य च <b>ुः</b> षष्टिः	२२१	महान्त्यपि समृद्वानि	84
<b>ब्राह्मणोऽस्यमुखमासीद</b>	१०५	महमा नांव प्रतापकी,	876
ब्रा <b>द्य</b> णानीतिहासान्	८५, ४४२	माताचेव पिता तस्या,	2.10
			-

_			
माता पिता तथा भ्राता,	<b>E</b> 5	यशस्य सुकृतं किचित्	१६१
मातापितृभ्यां यामीभिः,	१२६	य <b>ब</b> क्षुषा न पश्यति,	४१६
माता शत्रु पिता वैरी	38	यचान्यद्सदनस्तद्सत्,	<b>હ</b> ૈ
मातृदेवोभव०	४२३	यच्छेद्वा मनसी प्राज्ञः	१५८
मातृ देवोभव पितृदेवो भव	388	यच्छ्रोत्रेण न शृषोति	४१६
मातृमान् पितृमान्,	२६	यचरखाणं तुविहितुच्छम्	५६७
मातृयोनिपरित्यज्ञ्य,	३७५	यजाप्रतोदूरमुदैति,	२३७
मानसं मनसैवायं	३३४	यज्वान ऋषयो देवाः	३३८
मानोमहान्तमुत,	२४०	यतीनां कांचनं दद्यात्	१ <b>७</b> •
मानो बधीः पितरं मोत ३४८	,,૪૨૨	यतश्च भयमाशंकेत्	२०६
मांसानां खादनं तद्वत्,	५४२	यतो वा इमानि भूतानि,	२७२
मार्य उषाटय०,	४७१	यत्कर्म कृत्वा कुर्वश्च,	३३५
मुन्यन्ने विविधेर्मेध्ये,	१४५	यत् दुःव समायुक्तं,	३३४
मृतं शरीरमुत्थाप्य,	१३१	यत्तुं स्यानमोहसंयुक्तं, (	3 <b>3</b> 8
मुतानामपि जन्तूनां,	488	यत्राणेन न प्राणिति,	४१६
धृतानामिह जन्तूनां,	358	यत्प्रज्ञानमुत चेतो,	२३⊏
मृगयाक्षो दिवाखप्न,	१८३	यत्रधर्मो ह्यधर्मेण	२१३
मूले मूखाभावाद मूखं	२८३	यत्रनायस्तु पूज्यन्ते,	११७
मेरोहरेशच द्वीवर्षी,	38€	यत्रश्यामोळोहित हो,	३७६
मोहाद् राजा स्वराष्ट्रंयः,	१ <b>६</b> ४	यत्सर्वेणेच्छति ज्ञातं,	३३५
मौलान् शास्त्रविदः शूरान्,	१८६	यथाकाष्ट्रमयो हस्ती,	<b>३</b> ४६
म्लेच्छदेशस्त्वतः परः	₹85	यथा नदी नदा सर्वेः	१५२
म्लेच्छवाचश्चार्यवाचः	285	यथा प्छत्रनौपढेन,	१३०
		यथा फलेन युज्येत,	338
घ		यथाल्पाल्पमदन्त्याद्यं,	3.88
य आत्मा अवहतपाटमा	३१६	यथा यथाहि परुषः.	998
य आत्मनि तिष्ठननात्मनो,	રેક્ષ	यथावस्थिततत्वानां (	<b>4</b> 51
			- T 1

ट३६	सत्याः	र्थप्रकादा ।	
यथावायुं समाश्रित्य	१५३	यस्माहचोऽपातक्षन्,	. રફ્ક
यथेमां वाचं कल्याणी,	58	यस्मात्त्रयोऽप्याश्रमिणः,	१५३
यथोद्धरतिनिर्दाता,	१ <b>१</b> ४	यस्मादेते मुख्यास्तस्मा,	१०६
यधोर्णनाभिः सृजते,	२७८	यस्मिन्तृत्तः साम०	२३८
यथैनं नाभिसंदध्युः,	२०५	यं वदन्ति तमो भूता,	१८१
यदहरेव विरजेत	१४८	यस्यत्रय क्षिशद्देवा	<b>≒</b> १२
यदातुस्यात्परीक्षीणो,	२०२	यस्यनाममहद्यशः	४३६
यदा पञ्चावतिष्ठन्ते,	३१५	यस्यमन्त्रं न जानन्ति,	₹00
यदापरबलानांतु,	२०२	यस्यविद्वान्हि वदतः,	ર ૄે હ
यदात्रहष्टामन्येत,	२०२	यस्यवाङ् मनसंशुद्धे,	45
यदा भावेन भवति,	१६२	यस्यस्तेनः पुरे नास्ति	२२२ -
यदामन्येत भावेन,	२०२	यस्मेदकार्य्यं कारणं	<b>છ</b> છ
यदा यदाहि धर्मस्य,	२४८	यादशी शीतला देवी,	<b>⊕</b> ३३
<b>य</b> दावगच्छेदायत्यां	२०२	यां मेघांदेवगणाः	' २३७
यग्रत्परवशं कर्म,	१३३	यान्यनवद्यानि कर्माणि,	૨૭
यदिगच्छेत्परं छोकं	५४१	यान्यस्माकं सुचरितानि	३८
यदि तत्र पि संपश्येद्	२०३	यावज्जीवं सुखं जीवेत् ५३	= 585
यदिहि स्त्री नरोचेन,	११६	या वेदबाह्या स्मृतयः, ४१८	, (o î
यद्गत्वा न निवर्शन्ते	३१८	युगपञ्ज्ञानानुत्पत्तिः,	ં હશે
यद्वयोरनयोर्वेत्थ,	२१६	युवाः सुवासाः परिवीत,	१∙१
यद्वाचानभ्युद्ति	<b>४</b> १ई	येकार्मिकभ्योऽर्थमेव,	१६५
यनमनसामनुते	४१६	येत्रिंशति	<b>5</b> १२
यनमनसा ध्यायति तद्वाचा,	१६	येनयेन यथांगेन	<b>२२१</b>
यमान् सेवेत सततं,	48	येनकर्माण्यपस्रो	२३€
यमेन वायुना	४६२	येनास्मिन कर्मणा छोके	<b>3</b> 4
यमुत्तरा उताउ	६२६	येनास्य पितरो याता	१०छ
यस्तु भीतः पराष्ट्रतः	१६१	येनेदं भूतं भुवन	314

योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धि	88	रुद्राक्षान् कण्ठदेशे	335
योगरिचत्तनिवृत्तिनिरोधः	३४०	रूपरसगन्यस्पर्शवती	ξE
योदत्वा सर्वभूतंभ्यो	१६१	रूपरसगन्धस्पर्शाः संख्या	७२
योऽनधीत्यद्विजा वेद	<b>k</b> =	रूप्रसस्पर्शवत्यापो	ξ₹
	ર, <b>३</b> ४ <b>३</b>	रूपविज्ञानवेदना संज्ञा	४४६
योवे ब्रह्माणं	२६५	रे जीव भव दुहाई इका	५७६
यो यदेषां गुणो देहे	३३४	ल	
₹		लक्षण प्रमाणाभ्यां वस्तुः	95
रजखळा पुष्करं तीथै	રૂ હર્ફ	<b>छिबता पिक्षिका हस्ता</b>	६०६
रंग है कालिया कन्तको	830	लाभः खप्नो धृतिः क्रौयँ	३३५
रथाश्वं बलिनां छत्रं	१६१	लोभात्सहस्र दण्ड्यस्तु	२१६
रथीतरस्या प्रजस्य	505	ळोभ।न्मोहाद्भयान्मैत्राद्	२१€
रथेन वायु वेगेन	888	व	
रागादि ज्ञान सन्तान	४४२	वकवच्चिन्तयेदर्थान्	१६४
रागादीनां गणो यः स्यात्	४४२	वर्जयेन्मधुमांसंच ५८	, ३५५
राजधर्मान् प्रवक्ष्यामि	१७४	वनेषु च विहत्यैवं	१५७
राजाभवत्यनेन।स्तु	२१३	वन्ने मिनारया ड वि <b>जे</b>	\$£0
राजानः क्षत्रियारचैव	३३८	वयणे विसु गुरुजिण	५६२
राज्ञश्रदशुरुद्वारं	१८१	वयाई इमे	५६६
राज्ञो हि रक्षाधिकृतः	१६५	वशे ऋत्वेन्द्रियमामं	३४४
राम रटत जग जोर न	४८७	वारदण्डं प्रथमं कुर्याद्	२१६
राम बिना सब भूठ	४८६	वाच्यार्था नियताः	१३२
राष्ट्रमेव विश्याहिनत	१७५	वाग्दुष्टात्तस्कराच्चेव	२२२
राष्ट्रं वा अश्वमेधः	३८०	विक्रोशन्त्योयस्य राष्ट्राद् (	345
राष्ट्रस्य संप्रहं नित्यं	१ <b>६</b> ४	विक्रीय शूर्पं विचचार योगी	
<b>द</b> चिजिनोक्त तत्वपु	५८२	विजानीद्यार्थान्येच दस्यवः	२६७

スキス	सत्यार्थ	ोप्रकादा ।
वित्तम् बन्धुर्वैयः कर्म	₹86	वैश्वदेवस्य सिद्धस्य
विनाशकाले विपरीत	३७०	व्यवस्थितः पृथिव्यां
विप्राणां ज्ञानतो ज्येष्ट्यम्	<b>३</b> ४६	व्यसनस्य <b>च मृ</b> त्योश् <b>च</b>
वित्ति <del>प</del> डरिन्दि सशरीरम्	६२०	
विद्याञ्चाऽविद्याञ्च	<b>ૅ</b> ફ૦૭	হা
विद्याविलास मनसो	Хο	शत्रुसेविनि मित्रेच
विद्वद्भिः संवितः सद्भिः	<b>३४</b> २	शरीरकर्षणात्त्राणाः
विद्वत्वञ्च नृपत्वञ्च	१७२	शरीरजैः कर्म दोषैः
		<b>^ ^</b> .

.१२६ ६**६** 

१८३

२०६ १८४

३३४ शन्नो मित्रः शंवरुणः विविधानि च रत्नानि १७०,८११ १, ७६८ शमो दमस्तपः विंशतीशस्तु तत्सर्वं 438 १०६ विशेषण भेद व्यपदेशाभ्यां शरीरश्चोभयेऽपिहि भेदेन ४३६ ર્€ ફ शान्तनोरपि सन्तानं विश्वस्पात्व विवक्षायां **5**80 C00 विश्वानिदेव सवित शाश्वतीभयः 'समाभयः ४७ २७४ वृषो हि भगवान् धर्म श्रुचिना सत्यसन्धेन २१३ १७६ शुद्धे मार्गे जाया वेतनस्यैव चादानं २१२ 458 श्रुनांच पतितानां च १२६ वेद पढत ब्रह्मः मरे ४८२ वेद पत्न्ये प्रदाय शूद्रो ब्राह्मणतामेति **८०३** १०७ वेद मनूच्याचार्यो अन्ते शून्यं तत्वभावो Şξ २८३ शोचिन जामयो यत्र वेदशास्त्रपुराणानि ₹ 5k ११७ वेदः स्मृतिः सदाचारः ६२, ३४३ शौचसन्तोष तपः ५६, २४३ शौर्यं तेजो धृतिद्धियं वेदाभ्यासस्तपोज्ञानं ३३५ ११०

वेदानधीय वेदी वा शृण्वन् श्रोत्रम्भवति ξ3 ३१४ वेदान्त विज्ञान सुनि श्रावणस्यामलं पक्षं 348 ४६३ वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च ५७, ३४५ श्रीकृष्णः शरणं मम ४६२ वेदोपकरणे चैव ५७ श्रीकृष्णः शरणं मम सहस्त्र ४६२ वेदोऽखिलो धर्म मूलम् श्रीमन्नारायण चरण **३**४२ ४०७ वैदिकेः कर्मिभः पुण्यैः श्रीमते नारायणाय **3**83 6 **0** 8

	प्रमाण	सूची।	352
श्रीमते रामानुजाय	४०७	सर्यं शानमनन्तं ब्रह्म	<b>\$</b> \$ ?
श्रीमङ्गागवत नाम	४५२	सत्ये रतानां सततं	१३७
श्रुत्वा तम्प्रतिपद्यस्व	८१०	सत्व रजस्तमसां	२७५
श्रुत्वा स्पृष्टवाच मेधावी	३४५ -	सत्वं ज्ञानं तमो ज्ञानं	338
श्चुतिरपि प्रधान	₹४६	स्वप्नस्थानस्ते	۲.00
श्वतिस्मृत्युद्धितं धर्मम्	३४२	स्थाणुरयं भारहारः	<b>ζ</b> ₹
श्चतं प्रज्ञानुगं यस्य	१३ <b>७</b>	सदकारणवनिनत्यं	<b>9</b>
श्रोतुः परोक्षितो जन्म	<b>४</b> ५३	सदसत्	÷ ی
श्रोत्रोपलब्धिबुद्धि	७२	सदा त्रहृष्ट्या भाव्यं	११ <b>७</b>
श्लोकार्द्धेन प्रवक्ष्यामि	२८५	स दाधार पृथिवी	<b>, ३</b> ०२
) <b>प</b>		सदिति यज्ञो द्रव्यगुण	ري <b>ادم</b>
षट् त्रिंशदाब्दिकं चर्यं	ķ٥	सदेशान विविधान	₹8€
षड्भिज्ञो दशबलो ये	KUE	सदेवेदं सौम्येदमम आसीन	
पडामशा दराग्या प	4 ,-	सदेव सोम्येदमम २५४	, <b>३</b> ৩ <b>५</b>
स		सन्तानार्थं महाभाग	८०६
स एष पूर्वेषामपि	२६७	सन्तुष्टो भार्यया भत्ता १०	
संकल्पमूलः कामो वै	३ <b>४</b> २	सन्यिन्तु द्विविधं विद्यात्	<b>२</b> ०१
सबासत्	<b>હ</b> દ્વ	स ब्रह्मा स विष्णुः	8
सतान् अनुपरिकामेत्	१६५	सर्पयगात् शुक्रमकाय,	२३६
सत्तामात्राच्चेति लब्धैश्वर्य	રક્રફ	स पृब्वेष मपि गुरुः,	१६
सत्यं श्रूयात् प्रियं श्रूयात्	<b>१</b> १⊏	सप्पो इकं मरणं,	६८५
संत्यज्य प्राम्यमाहार	१४५	सप्तकस्यास्य वर्गस्यः;	१८३
सत्यं साक्ष्ये ब्रुवन	२ <b>१</b> ६	सभा वा न् प्रवेष्टव्या,	२१३
सत्येनोत्तभिता	300	सभान्तः साक्षिणः प्राप्तान्	- २१६
~ .	२१७	सम्य सभामे पाहि,	१७५
सत्यधर्मायंष्ट्रतेषु	१२६	समक्षदशनात् साक्ष्यं, 🧦	284
सत्यमेव जयतं	360	समत चरण सहिता,	444

	,	•	
<b>5</b> 80	सत्याथ	प्रकाश।	•
समाधिर्निधूतमलस्य;	२४२	सर्वे वेदा यत् <b>पदमा,</b>	3
समाननीर्थे वासी,	४३८	सर्देष मेव दानानां,	६२
समान यानकर्माच,	२०१	सर्वोपायैस्तथा कुर्यात्;	२०४
समीक्ष्य सघृतः सम्यक्,	१७६	सशाक्य सिंहः सर्वोधः	४४६
समोत्तमाधमैः राजा,	१६०	ससंधार्यः प्रयत्नेनः;	१५३
सम्पाद्य ऽविभीतः स्वेन	४३६	संगोविजाण अहिरेत	ķςu
सम्मानाद् ब्राह्मणो नित्यं,	45	संशोध्य त्रिविधं मार्गः;	<b>२</b> ०५
सम्बन्धामावान्नानुमानं,	२४६	सहजा देशकाळोत्था;	४६३
स य एवो अणिमा,	२५४	सं रत।न्योधयेदल्पान्	२०६
सरजो हरण भैक्ष भुजो,	င့် င <b>်</b>	साक्षी दृष्टश्चतादन्यद्;	२१६
सरस्वती दृषद्वत्योः;	२६६	साचेदक्षतयोनिः स्याद्	१३६
स राजा पुरुषोदण्डः;	१७८	सामि अणाई अणन्ते;	४६८
स वा एष एतेन दैवेन	३१६	सामान्यं विशेष इति बुद्धयपै	क्षं ७४
सर्व मनिस्यमुत्पत्ति	२८४	सामृतः पाणिभिष्नत्तिः;	३७
सर्वमभावो भावे	ર⊂ક	सायं सायं गृहपतिन्धें;	१२०
सर्वनियं पश्चभूत	<b>२</b> ८४	सांवत्सरिकमाप्तैश्च;	<b>१</b> ६०
सर्वं पृथगभावलक्ष	<b>ર</b> ≒૪	साहसेषु च सर्वेषु;	२१६
सर्वे खरिवदं ब्रह्मतज्जलाः;	२७७	साहसे वर्तमानस्तु;	२२ <b>२</b>
सर्व खल्विदं ब्रह्म नेह	₹9	सीमाविवाद्धम्रचः;	२१२
सर्व परवशं दुःखं;	१३३	सुखार्थिनः कुतोविद्या	० ६९
सर्वेतु समवेक्ष्येदं;	३४२	सुषारथिरश्वानिव;	२३८
सर्वज्ञः सुगतो वुद्धः	४५६	सुप्रघ्नद्रोण्यभिभवस्तद्	४५३
सर्वज्ञो दृश्यते	५६०	सुषुप्रस्थानः प्राज्ञो,	50 <b>१</b>
सर्वज्ञो वीतरागादिः	४५६	सूर्याचन्द्रमसौ धाता । २८१	
सर्वज्ञोक्तया वाक्यं	<b>५</b> ६२	संनापति बलाध्यक्षौ	२०६
<b>सर्वथाऽनवद्ययोगानां</b>	४८२	सैनापत्यंच राज्यभ्य,	१८०
सर्वस्य संसारस्य दुःखा	४४८	सोऽग्निभवति वायुश्च;	१७८

•			
सोमः प्रथमो विविदे	१४६	स्वभावेनैव यद्	२१३
सोमसद् पितर	१२३	स्वयं भूर्याधातध्यतोऽर्थान्;	र६४
सोऽसहायेन मृहेन;	309	स्वयं कृतश्च कार्मार्थ	२•१
सीत्रामण्यां सुरापित्रेत्;	3.0€	स्वाध्याये नार्चये	१२•
क्षियो रत्नान्यथो विद्याः	225	स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद्	१५६
स्त्रियां तु रोचमानायां	₹₹	स्वाध्यायेन ब्रतिहोंमेः	4
स्त्रीपु धर्मी विभागश्च	२ <b>१२</b>	स्वाध्यायेन जपैहोंमैः	१•३
स्त्री शुद्री नाधीयताम्	56	_	
स्त्रीणां साक्ष्यं स्त्रियः केर्युः	२१६	₹	
स्थाणुरयं भारहारः किञः,	<b>≒</b> ₹	हर्रिहरति पापानि;	830
स्थावराः कृमिकीटाञ्च	३३७	हस्तिनश्च तुरंगा <b>श्च</b> ;	३३८
स्थिर। दः सन्त्त्रःयुधः	<b>१</b> ७७	हालां पिवति दीक्षितस्य	ર ૭૭
स्पर्शवान् वायुः	<b>ξ &amp;</b>	हा हा गुरु अ अ कजद;	454
स्यन्दनारवैः समे युद्धयेद्	२०६	हिमाद्रेः सचिवस्यार्थे	४५२
र्खगस्थिता यदातृ <sup>ि;</sup> ;	५४१	िहरण्यगर्भः समवः; ८,२३१	,२ <b>७२</b>
स्याद्स्ति जीव इति प्रथमी	<b>५</b> ५६	ि हिरण्य भूमिसम्त्राप्त्या २१०	,२१२
स्यान्नास्तिजीवो द्विीय	**	हीनक्रियं निष्पुरुषं;	24
स्यादवक्तव्यो जीवः	<b>લલ</b> ફૈ	हां ही हूं वग <b>ल मुख्ये</b>	४०१
स्यादस्तिनास्ति नास्ति;	ष्ठ्रई	ह्रीश्री क्ली;	४०१
स्यादस्ति अवक्तन्यः	५५६	ह्रं फट स्वाहा;	Raś
स्यान्नास्ति अवक्तव्यः	४५६	हे <b>यंहिकर्तरागादि</b>	445
स्यादस्ति न।स्ति अवक्त०	<b>પ</b> પર્ફ	होतारमिद्रो	<b>6</b> ८६



#### बो३म्

# सत्यार्थप्रकाशः

#### विषयानुक्रमणिका

**→>**€€

विपय	पृष्ट से	पृष्टतक
<b>आ</b> भग्निहोत्र	୪ୡ	४७
<b>अ</b> नुभूमिका ( <b>उत्तरार्द्ध</b> )	<b>ર</b> ેફ	३६४
"" ( <b>२</b> )	४३६	५३७
" " (ą)	६२७	
" " (8)	७०२ (	७०३
<b>अवतार खण्डन</b>	२४७	२४६
<b>अ</b> प.ठ्य प्रत्थ	<b>5</b> \$	٦ŧ
<b>अमृ</b> ₁सरका तालाव	४३३	
<b>भ</b> रुजेपनिषद् समीक्षा	<b>७</b> ८६	ডব্ৰ
<b>अ</b> भ्रमेवादि य <b>ज्ञ व्यारूया</b>	<b>3</b> 50	३८१
<b>अ</b> ष्टःदश विवाद	२१३	२१५
असत्य साक्षीको दण्ड व्यवस्था	<b>२</b> १६	२२०
, শা		
<b>धा</b> चार् अनाचार व्या <b>ड्या</b>	३४२	३४६
आर्थ और इस्यु	२६७	२६८
भार्यावर्त्तकी महिमा	<b>a</b> ek	ەر ق
आस्तिक नास्तिक संबाद	483	445

सत्यार्थप्रकादा ।		⊏8३
ई		ŧ
<b>ई</b> श्वर जीवमें भेद	२५१	ર્યક
ू संगुणनिर्णुण व्याख्या	२६२	२६३
ू संवशक्तिमान	२८१	२८३
<b>ू का स</b> .मर्थ्य	२४४	२४५
្ត្វី की प्रार्थना-उपासना	२३ ७	રકક
ुँ नाम न्याख्या	8	२६
ूँ सिद्धि	२३१	२३७
<b>ईसा</b> ई मत समीश्रा	६२ <b>६</b>	७०१
ु , में ईश्वरकी असमर्थता	<b>६</b> ६ <b>३</b>	
ूँ में <b>ईश्वर गो</b> मञ्जूक	€83	
ू	६६१	
ू ,     ,	<b>\$3</b> 5	
🗝 🦷 🦼 ईश्वर मांसाहारी	ĘĘo	
ु " " पिता पुत्रीका मैथुन	६४५	
ूँ	६६७	•
, , , सृष्टि समीक्षा	<b>६</b> २६	६३१
,, ,, ,, राईके बराबर विश्वास	६७२	ξυ
"" "स्वर्ग विषयक गपोड़े	६६०	EEK
😠 😠 😼 महा अन्याय	६७४	•
,, ,, असम्भव गप्पे	६८●	
साईयोंके र्स्वामें विवाह	<b>६</b> ६ <b>७</b>	
सायोंके स्वंगका वर्णन	<b>₹</b> ₹	७०१
साका लोभी चेला जिसने ईसाको पकड्वायाः	६७७	६७६
साके आधीन ईश्वर	ĘCŁ	
सिको फांसी 🕡 🏬 📜	<b>\$</b> <8	

#### ८४४ विषयानुक्रमणिका ।

Q		
पकादरी समीक्षा	<b>४</b> ६५	<b>୫</b> ६७
<b>ক</b>		
<b>फ</b> ्रीर गंथ समीशा	४८१	५००
करदा प्रवन्ध	<b>२</b> ११	<b>२</b> १ <b>२</b>
करिकड व्याख्या	<b>33</b> 4	3 : 8
<b>५९१त्र</b> सुपात्रका लक्षण	ક <sub>ર્</sub> ર	8 ई 8
<b>कु</b> शिआ निवारण	3.9	3,5
<b>कृ</b> ष्णजी पर टां)न	४५३	
कुरान खुदाका बजा हुआ नहीं	<b>હ</b> ે8	
इरान कथित सुदा पश्चराती है	७०५	
कुरानको न मानने वाला काफिर	و وي	
कुरान कथित बहिस्तका वर्णन	<b>૭</b> ૦ <b>૨</b>	•
कुरान में खुराका मुर्रोको जिलाना	७१३	
🎍 🎍 📆 संके शरीकोंकी फौज़	७१५	
" " 🤫 सुरा कठोर दण्ड देनेवाला	७२०	
,, " बिना पुण्य पापके रिजक	७२३	
" " कर्जेम भूरा खुदा	<b>હર</b> છ ·	
🎍 🍃 खुदाकी कुरसी	<b>●</b> ₹	
" 🍃 स्तुदा और शैतानकी तुस्ता	<b>७३</b> १	
"     ,       अमुसलमानोंको मारनेकी आज्ञा	931	
🕌 " " घोखवाज खुरा	933	
🎍 " पूर्वापर विरोध	939	
" " खुराकी निंदय आज्ञा	७४१	
इरान् मनुष्योंका इतिहास है	€୪୍ବି	_
💂 📜 करानकी व्यर्थ शिक्षा	<b>69.</b>	(

सत्यार्थप्रकारा ।		ESA
🚆 " 🥞 रानमें न्याय विषयमें गड़बड़:ध्याय	<b>6</b> 86	
क्करान कथित स्वर्ग	<b>€</b> £9	
कुरानमें तोबासे पाप श्रमा	<b>•</b> \ <b>3</b>	e≾s
, , महाबुतपरस्ती	●२६	
कुरानी किरानी आदि चारोंकी किताबोंमें विरोध	87 <b>9</b>	
क्रुरानमें विद्या विरुद्ध बातें	●६१	
क्रुरान कथित खुरा पापी, अन्यायी और निंदयी	કૈફેર	<b>७</b> ६ है
कुरानमें उटपटांग बातें	• •	ک;•
क्रुरानमें बहिश्तका वर्णन	ک, 🗷	<b>03</b> °
कुरानके विरुद्ध आचरण	9:5	
कुरानका रातको उतरना	<b>9</b> <8	<b>O</b> CY
<b>4</b>		
स्वावियोंकी समीक्षा	<b>66</b> 8	800
ग		
गङ्गा महातम्य समीक्षा	હદ્વેષ્ઠ	83=
गर्भाधान रक्षा	११३	११४
गया श्राद्ध समीक्षा	४२६	
गरुड़ पुराण समीभ्रा	87€	४६२
शुह्र मन्त्र व्याख्या	<b>ક્ષ</b> ર	४३
गुरु महात्म्य समीक्षा	838	. ୫୫°
गोकल्पि गुसर्ष्ट्र मन समीक्षा	850	800
गोमेथादि यज्ञ समीश्रा	\$=0	3-8
ब्रह्भन्छ समीश्चा	\$3	₹8
	४४४	४५८
गृहस्थोंके धर्य और न्यवहार	224	
गृह त्रमकी श्रेष्ठता	<b>१</b> ४२	•

=8 <i>6</i>	सत्यार्थप्रकाचा ।		
) विषय		<b>K</b> a	से पृष्ठ
चक्रोकितोंकी माया चारवाक मत समीक्षा चिदाभास अध्यारीप	याखोचना <b>ज</b>	80७ 성축도 <b>2</b> 06	<b>४०६</b> ५ <b>४</b> ६ <b>३</b> १२
अगतकी उत्पत्ति और जगत्नाथ समीक्षा जनम पत्र समीक्षा जनमें की अनेकता ज्वाला मुखी समीक्षा जातिमेद जीवकी स्वतन्त्रता परतः जीव और ईश्वरमें मेद् जीवों की गति जैनियोंसे मूर्ति पूजाका जैन बौद्ध सम्बन्ध जैनोंका ईश्वरपर बाक्षेष	न्त्रता	マピーマピーマピーマピーマピーマピーマミューの はない マストラー マストラ マンドラ マンドラ マンドラ マンドラ マンドラ マンドラ マンドラ マンド	き ?
जैन प्रन्थोंमें जगतकर्ताः जैन प्रन्थोंमें मुक्ति जैनोंका धर्म जैन प्रन्थोंमें मृत्तिपूजा जैने प्रन्थोंमें मृतिपूजा जैने मुक्तिका वर्णन जैन प्रन्थोंमें कुआं, तळाव		**************************************	\$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$ \$

बिषयानुक्रमणिका ।		≈8⁄9
विषय	da da	से पृष्ट
जैन साधुओंके छक्षण	<b>६</b> •६	६१२
जैन प्रन्थोंमें हरे शांक मादिका निषय	<b>६</b> १२	<b>बै</b> १४
मैनोंके तीर्थकरोंके शरीरोंकी छम्बाई और आयु	<b>ફે</b> શ્પ	र्हश्द
नैनमन्थोंमें भूगोछ विद्या	६१	<b>६₹६</b>
स		
तपकी महिमा	४०८	
तीर्थ माहात्म्य	४३६	४३८
₹	. , ,	
इण्ड धर्म	३●१	१८२
दण्ड कोमल और कठोर	<b>२</b> २१	१२८
द्रव्यगुण कर्म निरूपण	<b>\$</b> G	ଓର୍ଶ
दादु पन्थ समीक्षा	854	•
दुर्ग विधान	१८६	
देवी भागवत समीक्षा	४•२	४०३
देशाटनसे हानि छाभ विवे <b>चन</b>	₹8€	३५२
धर्म जिज्ञासा और परीक्षा	1.00	
यम ।जज्ञासा भार पराक्षा	६१५	440
भरसिंह महताकी डुंडी	४३२	
नवीन वेदान्त मत समीक्षा	<b>\$</b> =4	155
नाक्कटोंका सम्प्रदाय	યુંગ્ર	404
नानक पन्थ समीक्षा	8८१	854
मास्तिकोंका खण्डन	र⊏३	रदद
नियोग मीमांसा	१४०	840

### सत्यार्थप्रकाश।

विषय	বৃত্ত	से पृष्ठ
प		
पञ्चमहायज्ञविधि-त्याख्या	१२•	१२६
पश्चायतन पूजा	४२३	४२४
षठन पाठन व्यवस्था	50	58
पण्डितोंके लक्ष्मण	१३४	१३६
पाखिणडयों के स्था	१३०	१३३
पाइच अपाठ्य प्रन्थ	′ <b>5</b> 9	5
पांच प्रकारकी परीक्षा	Ęs	
पुनर्विवाह समीक्षा	<i>3</i>	१४७
पुराणोंके कर्ता	880	४४२
पुराणोंकी समीक्षा	<b>8</b> 8 <b>\$</b>	४ <b>५</b> २
पृथ्वीका धूमना	३०२	308
प्रमाण आठे प्रकारके	Ę¥	ŧ۷
प्राणायाम शिक्षा .	RS	<b>ક</b> ષ
ų		
बन्ध और मीक्ष व्याख्या	308	
षाइबित्रमें नियोग	६५१	
षाल शिक्षा	२९	३२
बाउ विवाह समीक्षा	<i></i> છ	१०
<b>बु</b> तपरस्त ईसाई	€8€	
बोध मन समीक्षा	<b>લક</b> ર્	<i>जब</i> क्ष
ब्रह्मचर्न्य शिक्षा	40	48
<b>ब्रह्म</b> चारीके दृत	<i>ai</i> -2	38
ब्राह्मण और पोप	३७१	304
ब्राह्म समाजके गुण दोष	8400	

विषयानुक्रमणिका ।		<b>⊏</b> 88
, विषय	वेड ५	रुषु १
बिन्धेश्वरी देवी	४६४	
<b>ਮ</b>		
भक्ष्याभक्ष्य विवेचन	३५४	<b>३</b> ६२
अक्ष्याभक्ष्य जिन्दा	<b>ે</b> .૩	
भूतप्रेत निषेध भस्म धारण समीक्षा	⊌∘રે <sup>`</sup>	•
म्	- •	
•	****	
मथुरा तीन छोकसे निराली	<b>४</b> ३६	- 9t.
मनुष्योंकी सृष्टि	<b>२</b> ह <b>४</b>	२६५
मरियमका गर्भ	<b>દ</b> ્દે <b>ય</b>	
मंगळाचरण समीक्षा	<b>ર</b> ૃ	<b>२</b> ८
मुर्दे गाड़नेकी हानियां	<b>€8</b> €	ફ8⊏
मुक्ति और बन्ध	३१ <b>३</b>	३ <b>२</b> १
मुक्तिके साधन	<b>3</b> २१	३२७
मुक्तिमें जीव	<b>33</b> 3	
मुसलमानी मत समीक्षा	७०४	৩८८
मुसलमानोंकी बुतपरस्ती	७१६	
<b>, कापक्ष</b> पति खुदा	3ફ્ર€	
, की मतलब सिन्युकी बात	७४३	
, कार्स्वग	७६१	
गुहम्मद साहबकी कामातुरता	७७७	49=
मुहम्मद साहबका ( लेपालक )		
बेटेकी स्त्रीसे निकाह	<b>9</b> { <b>3</b>	હર્ <del>ફ</del> ્ષ
मूर्खके उक्षण	<b>१</b> ३६	•
	888	<b>કર</b> ર
मृतिपूजा समीक्षा	<b>ક</b> રે8	224
्रमूर्तिका चमत्कार	- ,-	• • • •
<b>48</b>		

विषय	वेह	से पृष्ट
मूर्तिपूजा वैदिक नहीं	४६७	४७०
प	•	
यम नियम व्या <b>ख्या</b>	५५	ķe
योगाभ्यास	કેરે	કેક
₹	•	~~
राज आर्य सभा	<b>{@</b> 8	<b>१</b> ७८
र। जवशावली	४३१	४३४
राजधर्म व्याख्या	<b>\$</b> 08	२२८
राजाकी दिनचर्या	२०●	२०१
राज्यके अधिकारी	१०७	<b>₹</b> ∘⊆
राज्य प्रबन्ध	१६५	२००
रुद्राक्ष धारण	४०३	(**
रामेश्वर समीक्षा	४२६	४३०
रामसनेही समीक्षा	854	880
₹		
लड़के ल <b>ड़कियोंकी शिक्षा</b>	80	<b>ઇ</b> ૨
छाटभेरव और <b>औरङ्गजेव</b>	<b>ક</b> રફ	- •
•		
वर्ण व्यवस्था	• • •	_
वानप्रस्थविधि	83	<i>e</i> 3
वाममार्गका खण्डन	१४४	१५६
वाममार्ग समीक्षा	३७५	३७६
विद्या अविद्या	४७१	8 ७२
	• <del></del>	<b>9</b> 5
29 29	३०●	३०८

विषयानुक्रमणिका ।		<b>=</b> 4 ?
विषय	æ	से पृष्ट
विद्यार्थियोंके लभूण	१३६	१३७
विवाहमें त्याज्य कुछ	१३	£9
विवाह आठ प्रकारके	११२	
वेदोंका प्रकाश	२६५	२६८
ू की शाखा 	२६६	₹ <b>9</b> ᠀
ूँ , की नित्यता	₹ <b>9</b> 0	२७१
🍃 का प्रकाश अन्यलोकमें	३०५	३०६
वैष्णव मत समीक्षा	<b>૪૭</b> ર	४७ई
व्यूह रचना	२●८	२ <b>१</b> १
च		
शत्वसे व्यवहार	२०६	२०७
शास्त्रों में अविरोध	⊏६	<b>6</b> \$
» 9	२८€	२ <b>९</b> १
शिष्योंको उपदेश	ફ્	६३
शीतला और जन्त्र, मन्त्र, तन्त्रादि समीक्षा	३५	३६
<b>ग्र</b> द्धि	४३	88
शुद्रके हाथका खाना	३५३	
शैवोंका उद्य	386	४०२
शैव मत समीक्षा	<b>89</b> २	893
शंकराचार्यका उदय	353	३८४
स		
सखरी निखरी विवेचन	३५२	
सनातन शब्दकी व्याख्या	<b>1</b> 08	
सब तिथियोंमें उपवास	<b>४</b> ६५	
<b>सन</b> मतोंसे सत्य प्रहणका विचार	488	-

<b>-u</b>	2
63	₹

## सत्यार्थप्रकादा ।

विषय	ãã	से पृष्ट
सन्धिके छ अङ्ग	<b>२</b> ०३	\\ <b>25</b>
सर्वशक्तिमानका अर्थ विवेचन	<b>२३</b> ४	104
सर्वशक्तिमान्का अर्थ विवेचन	रदर रदर	
संजीवनी नामक इतिहास	800	
संन्यासविधि-कर्राव्य शिक्षा	१५७	0
साधुओंके लक्षण	₹ <b>1</b> 5	१७३
साक्षी कई प्रकारके	२१ <u>७</u> २१७	204
सुख दुःखका लक्ष्म	<b>१</b> ३४	२१८ -
सूर्य ज्योतिष सिद्धान्त		• •
सूर्यादि चन्द्रलोक	<b>३</b> ०३	<b>३</b> ०४
सोमनाथ समीक्षा	₹a¥	३०५
स्त्रीशिक्षा	830	<b>४३</b> २
स्वदेशी राज्यकी उत्तमना	55	<b>€</b> २
स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश	२६६	_
स्वयम्बरकी रीति	350	७६८
स्वामीनारायण मत समीक्षा	१००	१०२
सृष्टि उत्पत्ति	<b>ķ0</b> 0	५ <b>०</b> १
» 💂 के तीन कारण	२७२ २ <b>०</b> १	२७३
💂 का कम	<b>૨૭</b> ५	250
स्टिका प्रलय	<b>२६१</b> २–	२६४
	₹50	
<b>5</b>		
हरिवर्ष अर्थात् यूरोप	3∤•	
हरद्वार समीक्षा	<b>४</b> ३३	838
होमके लाभ	69	88

## वेदतत्व प्रकाश

ऋषि द्यानन्द प्रणीत पुस्तक। में ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका वैदिक सिद्धान्तों के मनन करने के लिये मुख्य प्रन्थ हैं। इसमें वेद विषयक जानने योग्य ६० विषयों का वेदादि सन शास्त्रों के प्रमाण देकर विचार-पूर्ण प्रतिपादन किया गया है। जैसे— वेदोत्पत्ति, वेदों में विज्ञान, कर्म, उपासना काण्ड, वेदोक्त धर्म, वेदों में तार, रेल तथा विद्युत ऋदि। वेदों पर पाश्चात्य तथा भार-ताय बद्धानों के द्वारा किये गये ऋदों के उत्तर भी दिये गये हैं।

महर्षि ने यह प्रन्थ स्वयं संस्कृत में रचा था। इसका हिन्दी अनुवाद ऋषि के पास रहने वाले पीराणिक संस्कार वाले पिएडतों ने किया था। जिन्होंने ऋषि के भावों के प्रतिकूल तथा कई स्थलों पर ऋषि सिद्धान्त-विरुद्ध भी अनुवाद कर दिया है जो कि आज भी अजमेर से वही अशुद्ध टीका वाले संस्करण निकल रहे हैं। हमने इस ऋषि प्रणीत प्रन्थ को गुरुकुल कांगड़ी के विद्वान स्नातक श्री पं० सुखदेव जी वेदालङ्कार में सम्पादन कराकर ऋषि प्रणीत संस्कृत के अनुकूल भाषा टीका टिप्पणियों सिहत प्रकाशित किया है। जिसकी आर्य जगन के विद्वानों ने बड़ी प्रशंसा की है तथा इसे प्रत्येक वैदिक धर्मी के स्वाध्याय योग्य बना दिया है। ६५० पृष्ट के वृहन प्रन्थ का मृल्य कपड़े की पक्की जिल्ट सिहत २) मात्र रक्का है।

CARACACACAS AND CONTRACTOR CONTRACTOR

पता—गोविन्दराम हामानन्द त्रार्य साहित्य भवन नई सड़क देहली।

ORECTA DE CORECTA E

#### लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी, पुस्तकालय L.B.S. National Academy of Administration, Library

#### संसूरी MUSSOORIE

#### यह प्रतक निम्नाँकित तारीख तक वापिस करनी है। This book is to be returned on the date last stamped

दिनांक Date	उधारकर्ता की संख्या Borrower's No.	दिनांक Date	उधारकर्ता को संख्या Borrower's No.
4 JUL 1996	2515		
man have sale a 1999, 117 more record before			
	1		



#### 1 294.5563 IBRARY 4295 LAL BAHADUR SHASTRI

# National Academy of Administration MUSSOORIE

Accession No. 121516

- Books are issued for 15 days only but may have to be recalled earlier if urgently required.
- 2. An over-due charge of 25 Paise per day per volume will be charged.
- Books may be renewed on request, at the discretion of the Librarian.
- Periodicals, Rare and Reference books may not be issued and may be consulted only in the Library.
- Books lost, defaced or injured in any wayshall have to be replaced or its double price shall be paid by the borrower.

Halm to been this hook fresh clean & moving